महावीर शासन जैनागम ग्रन्थमाला

निसीहज्झयणं

(मूलपाठ, संस्कृत छाया, हिन्दी अनुवाद, टिप्पण तथा परिशिष्ट सहित)

भगवान–महावीर
(ई.पू. ५९९–ई.पू. ५२७)

वाचना–प्रमुख
आचार्य तुलसी

प्रधान संपादक
आचार्य महाप्रज्ञ
आचार्य महाश्रमण

महावीर शासन जैनागम ग्रन्थमाला

निसीहज्झयणं

(मूलपाठ, संस्कृत छाया, हिन्दी अनुवाद, टिप्पण तथा परिशिष्ट सहित)

वाचना-प्रमुख
आचार्य तुलसी

प्रधान संपादक
आचार्य महाप्रज्ञ
आचार्य महाश्रमण

अनुवादक, विवेचक
डॉ. साध्वी श्रुतयशा

जैन विश्व भारती
लाडनूं - ३४१ ३०६ (राजस्थान)

प्रकाशक : जैन विश्व भारती
पोस्ट : लाडनूं-३४१३०६
जिला : नागौर (राज.)
फोन नं. : (०१५८१) २२६०८०/२२४६७१
ई-मेल : jainvishvabharati@yahoo.com

© जैन विश्व भारती, लाडनूं

प्रथम संस्करण : २०१४

पृष्ठ संख्या : ५२९+४०=५६९

मूल्य : १,०००/- (एक हजार रुपये मात्र)

मुद्रक : पायोराईट प्रिण्ट मीडिया प्रा. लि., उदयपुर

NISĪHAJJHAYAṆAṂ

(Text, Sanskrit Rendering and Hindi Version with notes)

(Vācanā-pramukha)
ĀCĀRYA TULSĪ

Chief Editor
ĀCĀRYA MAHĀPRAJÑA
ĀCĀRYA MAHĀŚRAMAṆA

Editor

Dr. Sādhvī Śrutayaśā

JAIN VISHVA BHARATI
Ladnun - 341 306 (Rajasthan) INDIA

Publishers :
Jain Vishva Bharati
Ladnun - 341 306 (Raj.)
Phone : (01581) 226080/224671
E-mail : jainvishvabharati@yahoo.com

© Jain Vishva Bharati, Ladnun

First Edition : 2014

Pages : 529+ 40 =569

Price : 1,000/-

Printed by : Payorite Print Media Pvt. Ltd., Udipur

समर्पण

।। १ ।।

पुट्ठो वि पण्णा-पुरिसो सुदक्खो,
आणा-पहाणो जणि जस्स निच्चं ।
सच्चप्पओगे पवरासयस्स,
भिक्खुस्स तस्स प्पणिहाणपुव्वं ।।

जिसका प्रज्ञा-पुरुष पुष्ट पटु,
होकर भी आगम-प्रधान था ।
सत्य-योग में प्रवर चित्त था,
उसी भिक्षु को विमल भाव से ।।

।। २ ।।

विलोडियं आगमदुद्धमेव,
लद्धं सुलद्धं णवणीयमच्छं ।
सज्झाय-सज्झाण-रयस्स निच्चं,
जयस्स तस्स प्पणिहाणपुव्वं ।।

जिसने आगम-दोहन कर-कर,
पाया प्रवर प्रचुर नवनीत ।
श्रुत-सद्ध्यान लीन चिर चिंतन,
जयाचार्य को विमल भाव से ।।

।। ३ ।।

पवाहिया जेण सुयस्स धारा,
गणे समत्थे मम माणसे वि ।
जो हेउभूओ स्स पवायणस्स,
कालुस्स तस्स प्पणिहाणपुव्वं ।।

जिसने श्रुत की धार बहाई,
सकल संघ में मेरे मन में ।
हेतुभूत श्रुत-सम्पादन में,
कालुगणी को विमल भाव से ।।

विनयावनत

आचार्य तुलसी

अन्तस्तोष

जैन श्वेताम्बर तेरापंथ धर्मसंघ के नवमाधिशास्ता परमपूज्य आचार्य तुलसी ने आगम सम्पादन का महान संकल्प स्वीकार किया। उनके वाचनाप्रमुखत्व की शीतल छाया में कार्य का शुभारम्भ हुआ। परमपूज्य आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने अपने प्रज्ञा-परिश्रम से प्रस्तुत गुरुतर कार्य को आगे बढ़ाया। आज भी वह कार्य अविच्छिन्न रूप से चल रहा है। मैं आत्मतोष का अनुभव कर रहा हूं कि हमारे धर्मसंघ के अनेक साधु और साध्वियां इस कार्य की परिसम्पन्नता के लिए कृतसंकल्प है।

प्रस्तुत आगम के संपादन में परमश्रद्धेय गुरुदेव तुलसी का महान् अनुग्रह रहा है। परमपूज्य आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने अनुवाद, विवेचन आदि कार्य में अपना पुनीत मार्गदर्शन और अमूल्य समयनियोजन किया है। परम उपकारी गुरुद्वय के प्रति पुनः पुनः श्रद्धा प्रणति। आचार्य महाप्रज्ञजी के महाप्रयाण के बाद उनकी भूमिका निर्वहन करने का सुअवसर मुझे प्राप्त हुआ। इसके अतिरिक्त प्रस्तुत आगम के सुसम्पादन में जिनका संविभाग रहा है, वह संक्षेप में इस प्रकार है–

संपादक और विवेचक	:	**साध्वी श्रुतयशा**
सहयोगी	:	**मुख्यनियोजिका साध्वी विश्रुतविभा**
	:	**साध्वी मुदितयशा**
	:	**साध्वी शुभ्रयशा**

संविभाग हमारा धर्म है। जिन-जिन ने इस गुरुत्तर प्रवृत्ति में उन्मुक्तभाव से अपना संविभाग समर्पित किया है, उन सबके प्रति मैं मंगलकामना करता हूं कि उनका भविष्य इस महान् कार्य का भविष्य बने।

- आचार्य महाश्रमण

प्रकाशकीय

सानुवाद आगम ग्रन्थों के प्रकाशन की महत्त्वपूर्ण योजना के अन्तर्गत निम्न प्रकाशित आगम विद्वानों द्वारा समादृत हो चुके हैं।

१. दसवेआलियं	६. अणुओगदाराइं
२. सूयगडो (भाग-१,२)	७. नंदी
३. उत्तरज्झयणाणि	८. णायाधम्मकहाओ
४. ठाणं	९. उवासगदसाओ
५. समवाओ	

इसी शृंखला में छेदसूत्रों के अन्तर्गत 'निसीहज्झयणं' का प्रस्तुत प्रकाशन पाठकों के हाथों में पहुंच रहा है।

मूल संशोधित पाठ, उसकी संस्कृत छाया और हिन्दी अनुवाद के साथ-साथ प्रत्येक उद्देशक के विषय-प्रवेश की दृष्टि से आमुख और विस्तृत टिप्पणों से अलंकृत 'निसीहज्झयणं' का यह प्रकाशन आगम-प्रकाशन के क्षेत्र में अभिनव स्थान प्राप्त करेगा, ऐसा लिखने में संकोच नहीं होता।

बीस उद्देशकों में विभाजित इस आगम के अन्त में दिए गए परिशिष्ट ज्ञानवृद्धि की दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी हैं। वे परिशिष्ट इस प्रकार हैं—

१. शब्द : अनुक्रम	३. विशेषनाम वर्गानुक्रम
२. विशेषनामानुक्रम	४. प्रयुक्त ग्रन्थ-सूची

प्रस्तुत प्रकाशन से पूर्व सानुवाद आगम प्रकाशन की योजना के अन्तर्गत आचार्य महाप्रज्ञ द्वारा रचित—आचारांगभाष्यम् सन् १९९४ में प्रकाशित हो चुका है। उक्त प्रकाशन के बाद भगवई (विआहपण्णत्ती) खण्ड १,२,३,४ मूलपाठ, संस्कृत छाया, हिन्दी अनुवाद, भाष्य तथा परिशिष्ट-शब्दानुक्रम आदि, जिनदास महत्तरकृत चूर्णि एवं अभयदेवसूरिकृत वृत्ति सहित प्रकाशित हुआ। पूर्व प्रकाशनों की तरह ही वाचनाप्रमुख गणाधिपतिश्री तुलसी के तत्त्वावधान में आचार्य महाप्रज्ञ द्वारा संपादित ये प्रकाशन विद्वानों द्वारा भूरि भूरि प्रशंसित हुए हैं।

आचार्य महाश्रमण द्वारा सम्पादित प्रस्तुत आगम के प्रस्तुतीकरण में डॉ. साध्वी श्रुतयशाजी का मुख्य श्रम लगा है। सहयोगी के रूप में इन तीन साध्वियों का प्रचुर योगदान रहा है— मुख्यनियोजिका साध्वी विश्रुतविभाजी, साध्वी मुदितयशाजी और साध्वी शुभ्रयशाजी।

प्रस्तुत प्रकाशन को पाठकों के सम्मुख रखते हुए जो प्रसन्नता हो रही है, वह शब्दों में व्यक्त नहीं की जा सकती। विश्वास है, यह प्रकाशन अनुसंधित्सु विद्वानों को अत्यन्त लाभप्रद सिद्ध होगा।

जैन विश्व भारती, लाडनूं

ताराचंद रामपुरिया

सम्पादकीय

जैन वाङ्मय में आगम साहित्य का गरिमापूर्ण स्थान है। साध्वाचार का पुष्ट आधार आगमों को माना जाता है। बत्तीस आगम जैन श्वेताम्बर तेरापंथ सम्प्रदाय में प्रमाणभूत माने गए हैं। उनमें भी ग्यारह अंगों को स्वतःप्रमाण होने का गौरव प्राप्त है। साधु-साध्वी समुदाय में आगम के स्वाध्याय को महत्त्व प्रदान किया जाता है।

प्राचीन काल में आगम-ज्ञान कण्ठाधारित और मस्तिष्काधारित रहता था। समय का चक्र आगे बढ़ा, वह हस्तलेखनाधारित बन गया और वर्तमान में वह मुद्रणाधारित भी बन चुका है। प्रकाशित ग्रन्थों का स्वाध्याय में बहुत उपयोग हो रहा है।

मूल पाठ (टेक्स्ट) का स्वाध्याय अच्छा है, परन्तु उसका अर्थबोध और व्याख्याबोध हो जाए तो बहुत अधिक लाभ हो सकता है। संभवतः इसी आधार पर हिन्दी आदि अनेक भाषाओं में आगमों का अनुवाद किया गया है और उन पर भाष्य, टीका, टिप्पण आदि का निर्माण किया गया है।

जैन श्वेताम्बर तेरापंथ सम्प्रदाय के नवमाधिशास्ता परमपूज्य गुरुदेव श्री तुलसी के नेतृत्व और वाचनाप्रमुखत्व में वि.सं. २०१२ में जैन आगमों के सम्पादन, संशोधन, अनुवादन, टिप्पणलेखन आदि का कार्य प्रारम्भ हुआ। आचार्य महाप्रज्ञजी (तत्कालीन मुनि नथमलजी, टमकोर) इस कार्य के मुख्य संवाहक बने। अब तक बत्तीस आगमों का मूलपाठ प्रकाशित हो चुका है। दसवेआलियं, उत्तरज्झयणाणि, अणुओगदाराइं, नंदी, सूयगडो, ठाणं, समवाओ, णायाधम्मकहाओ, उवासगदसाओ–ये नौ आगम मूलपाठ, हिन्दी अनुवाद और टिप्पण आदि सहित प्रकाशित हो चुके हैं। 'आयारो' पर आचार्य महाप्रज्ञजी द्वारा प्रणीत संस्कृत भाष्य हिन्दी और अंग्रेजी अनुवाद सहित प्रकाशित हो चुका है। भगवई (विआहपण्णत्ती) के चार खण्ड भी मूलपाठ, अनुवाद, संस्कृत छाया और हिन्दी भाष्य सहित प्रकाशित हो चुके हैं। अब 'निसीहज्झयणं' प्रस्तुत किया जा रहा है। इसमें मूलपाठ, संस्कृत छाया, हिन्दी अनुवाद, व्याख्यात्मक टिप्पण एवं परिशिष्ट शोभायमान हो रहे हैं। परमपूज्य गुरुदेव श्री तुलसी का वरदहस्त वाचनाप्रमुखत्व के रूप में प्राप्त है। परमपूज्य गुरुदेव आचार्यश्री महाप्रज्ञजी के सान्निध्य, निर्देशन और प्रधान-सम्पादकत्व में प्रस्तुत आगम का कार्य गतिमान हुआ। बाद में आचार्य महाप्रज्ञजी द्वारा किया जाने वाला कार्य मैंने संभाला। ऐसे ग्रन्थ के संशोधन आदि का कार्य करने का अवसर मिलना भी अपने आपमें विशिष्ट बात है।

प्रस्तुत आगम के अनुवाद, संस्कृतछाया-लेखन, टिप्पणलेखन आदि में हमारी विदुषी शिष्या डॉ. साध्वी श्रुतयशाजी का मुख्य श्रम लगा है। इसमें उनकी प्रतिभा का अच्छा उपयोग हुआ है। इस कार्य में हमारी तीन अन्य शिष्याएं–मुख्यनियोजिका साध्वी विश्रुतविभाजी, डॉ. साध्वी मुदितयशाजी एवं डॉ. साध्वी शुभ्रयशाजी का भी सहकार रहा है। 'निसीहज्झयणं' ग्रन्थ के सम्पादन की सम्पन्नता के अवसर पर मैं अपने महान गुरुद्वय परमपूज्य गुरुदेव श्री तुलसी और परमपूज्य आचार्यश्री महाप्रज्ञजी का स्मरण करता हूं।

आचार्य महाश्रमण

भूमिका

जैन साहित्य का प्राचीनतम भाग आगम है। आगम का अर्थ है—आप्त का वचन।[१] आप्तपुरुष राग-द्वेष से उपरत होते हैं। वे यथार्थ के ज्ञाता तथा प्रज्ञापक होते हैं। इसलिए उनकी वाणी को आगम कहा गया है। आगमों का प्राचीनतम वर्गीकरण समवाओ में मिलता है। वहां आगम के दो भेद प्रज्ञप्त हैं—१. द्वादशांग गणिपिटक और २. चतुर्दश पूर्व।[२] दूसरा वर्गीकरण अनुयोगद्वार में है। आर्यरक्षित ने सम्पूर्ण आगम साहित्य को चार अनुयोगों में विभक्त किया। वे इस प्रकार हैं—१. चरणकरणानुयोग २. धर्मकथानुयोग ३. गणितानुयोग ४. द्रव्यानुयोग।[३] तीसरा वर्गीकरण नंदी का है। नंदी में सूत्रकार ने अंगप्रविष्ट और अंगबाह्य ये दो भेद करके अंगबाह्य के आवश्यक और आवश्यक व्यतिरिक्त ये दो भेद और किए है। वहां कालिक और उत्कालिक का भेद भी प्रज्ञप्त है।[४] यद्यपि ठाणं में भी अंगप्रविष्ट और अंगबाह्य का उल्लेख है लेकिन वहां अंगबाह्य का संक्षिप्त प्रज्ञापन है।[५] अंगबाह्य ग्रंथों की सबसे बड़ी तालिका नंदी में उपलब्ध होती है।[६] वर्तमान में जो वर्गीकरण प्राप्त होता है, वह इस प्रकार है—१. अंग २. उपांग ३. मूल ४. छेद। यह सबसे अर्वाचीन वर्गीकरण है। प्रभावक चरित में इसका संकेत प्राप्त होता है।[७]

वर्तमान वर्गीकरण के अनुसार दसाओ, कप्पो, ववहारो और निसीहज्झयणं—ये चारों छेदसूत्र हैं। नंदी में अंगबाह्य कालिक ग्रंथों की सूची है। वहां इन चारों का एक क्रम में उल्लेख है। चतुर्विध अनुयोग की दृष्टि से इन चारों का समावेश चरणकरणानुयोग में किया गया है। ओघनिर्युक्ति-भाष्य में उल्लेख आता है—ये चारों ही अनुयोग अपने-अपने विषय में सर्वशक्तिसंपन्न हैं तथापि चरणकरणानुयोग इन सबमें महर्द्धिक है क्योंकि शेष तीनों अनुयोग भी चारित्र की प्रतिपत्ति एवं सुरक्षा के हेतु बनते हैं।[८]

'छेदसूत्र' नामकरण

'छेद' शब्द 'छिद्' धातु के साथ घञ् प्रत्यय के योग से निष्पन्न हुआ है। इसका अर्थ है—काटना, गिराना, तोड़ना, खंड-खंड करना, निराकरण करना, छिन्न भिन्न करना इत्यादि।[९]

दिगम्बर परम्परा का एक ग्रंथ है—छेदपिंड। वहां प्रायश्चित्त के आठ पर्यायवाची नाम निर्दिष्ट हैं। उनमें एक नाम है—छेद।[१०]

प्राचीन आगमों में 'छेदसूत्र' नाम का कोई उल्लेख प्राप्त नहीं होता है। इसका सबसे प्राचीन उल्लेख आवश्यक निर्युक्ति में प्राप्त होता है। निर्युक्तिकार ने लिखा है—'महाकल्पसूत्र और सभी छेदसूत्र कालिक सूत्र हैं। इनका समावेश चरणकरणानुयोग में होता है।'[११] बाद में विशेषावश्यक भाष्य[१२], निशीथभाष्य[१३], व्यवहारभाष्य[१४] में भी इस शब्द का प्रयोग हुआ है।

---

१. आवचू १ पृ. २८—आगमो णाम अत्तवयणं।
२. सम., प्रकीर्णक समवाय सू. ८८
३. दअचू पृ. २, आवनि गा. ४७८
४. नंदी, सू. ७४-७६,८०
५. ठाणं २/१०४-१०६
६. नंदी सू. ७४-७९
७. अणु. भू. पृ. १०
८. ओभा. गा. ६,७
सविसयबलवत्तं पुण जुज्जइ तहवि अ महिड्ढिअं चरणं।
चारित्तरक्खणट्ठा जेणिअरे तिन्नि अणुओगा।।
चरणपडिवत्तिहेउं धम्मकहा कालदिक्खमाईआ।
दविए दंसणसुद्धी दंसणसुद्धस्स चरणं तु।।
९. आप्टे (संस्कृत हिन्दी कोश)
१०. छेद गा. ३
पायच्छित्तं छेदो मलहरणं पावणासणं सोही।
पुण्ण पवित्तं पावणामिदि पायछित्तनामाइं।।
११. आवनि. ७७७
जं च महाकप्पसुयं जाणि अ सेसाणि छेअसुत्ताणि।
चरणकरणाणुओगो त्ति कालियत्थे उवगयाणि।।
१२. विभा. गा. २७७७
१३. निभा. गा. ६१९०
१४. व्यभा. गा. १८२९

छेदसूत्र मूलतः प्रायश्चित्तसूत्र हैं। व्यवहारभाष्य में आलोचना, व्यवहार और शोधि को प्रायश्चित्त का पर्याय माना गया है।[1] प्रायश्चित्त के द्वारा चित्त की विशोधि होती है।[2] इस दृष्टि से विचार करें तो छेदसूत्रों को आलोचना सूत्र, प्रायश्चित्त सूत्र अथवा विशोधि सूत्र भी कहा जा सकता है। छेदसूत्रों के लिए 'पदविभाग सामाचारी' शब्द का भी उल्लेख मिलता है।[3] यहां प्रश्न होता है कि फिर इन सूत्रों को 'छेदसूत्र' की संज्ञा क्यों दी गयी ?

विद्वानों ने 'छेदसूत्र' नाम की अन्वर्थता के संदर्भ में अनेक दृष्टियों से विमर्श किया है। वह संक्षेप में इस प्रकार है—

१. चारित्र के पांच प्रकार हैं। वर्तमान में सामायिक चारित्र इत्वरिक—सीमित काल वाला होता है। छेदोपस्थापनीय चारित्र जीवन पर्यन्त अनुपालनीय होता है। प्रायश्चित्त का संबंध छेदोपस्थापनीय चारित्र से है। इस दृष्टि से प्रायश्चित्त सूत्रों को छेदसूत्र की संज्ञा दे दी गयी—ऐसी संभावना है।

२. दसाओ, कप्पो, ववहारो और निसीहज्झयणं—ये चारों नौवें पूर्व से उद्धृत हैं। पूर्वों से छिन्न—पृथक् किए जाने से इस वर्गीकरण के आगमों का नाम छेदसूत्र हो गया।

३. प्रायश्चित्त के दस प्रकारों में मूल, अनवस्थाप्य और पारांचित—इन तीनों में प्रायश्चित्त-प्राप्त मुनि को नयी दीक्षा आती है। साधु की वर्तमान अवस्था में प्राप्त होने वाला अंतिम प्रायश्चित्त छेद है। आलोचना से छेद पर्यन्त प्रायश्चित्त वाले संख्या में भी अधिक होते हैं। फलतः प्रायश्चित्त सूत्रों का छेदसूत्र नामकरण हो गया—ऐसा प्रतीत होता है।

४. आवश्यक निर्युक्ति की वृत्ति में छेद और पदविभाग इन दोनों को समानार्थक माना गया है। वहां प्रायश्चित्तसूत्रों के लिए पहले पदविभाग सामाचारी शब्द के प्रयोग का भी उल्लेख है। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि 'छेद' शब्द पदविभाग सामाचारी के अर्थ में प्रयुक्त है। उल्लेखनीय है कि छेदसूत्रों का परस्पर कोई संबंध नहीं है। ये सभी स्वतंत्र हैं। इनकी व्याख्या विभागदृष्टि—छेददृष्टि से की गयी है। इसलिए पदविभाग सामाचारी के सूत्रों को छेदसूत्र की संज्ञा दी गई है।

५. आगम काल में छेदश्रुत को उत्तमश्रुत कहा जाता था। भाष्यकार ने भी 'छेयसुयमुत्तमसुयं' कहकर इसकी पुष्टि की है। 'छेदसूत्र' उत्तमश्रुत क्यों ? चूर्णिकार ने इस प्रश्न पर विमर्श करते हुए लिखा है—छेदश्रुत (छेदसूत्रों) में प्रायश्चित्तविधि का प्रज्ञापन है। उससे चारित्र की विशुद्धि होती है, इसलिए यह उत्तमश्रुत है।[4] उत्तमश्रुत शब्द पर विचार करते समय एक कल्पना यह भी होती है कि कहीं यह 'छेकश्रुत' तो नहीं है ? छेकश्रुत अर्थात् कल्याणश्रुत अथवा उत्तमश्रुत। दशाश्रुतस्कन्ध को छेदश्रुत का मुख्य ग्रंथ माना गया है।[5] वह प्रायश्चित्त सूत्र नहीं होकर आचार-सूत्र है। इसीलिए उसे चरणकरणानुयोग के विभाग में सम्मिलित किया गया है। इससे छेयसुत्त का छेकसूत्र होना अस्वाभाविक नहीं लगता। दसवेआलियं में 'जं छेयं तं समायरे' पद प्राप्त है।[6] इससे भी 'छेय' शब्द के छेक होने की पुष्टि होती है।

जिससे नियमों के अनुपालन में व्यवधान उत्पन्न न हो तथा निर्मलता की वृद्धि हो, उसे छेद कहते हैं। पंचवस्तु की हरिभद्र कृत टीका में प्राप्त इस उल्लेख के आधार पर भी यह संभावना की जा सकती है कि प्रायश्चित्त-प्रज्ञापक सूत्र ही वस्तुतः निर्मलता और पवित्रता का पथ प्रशस्त करते हैं, अतः वे ही छेदसूत्र हैं। 'छेद' नाम की सार्थकता इसी में निहित है।[7]

---

१. व्यभा. गा. १०६४
वबहारो आलोयण, सोही पच्छित्तमेव एगट्ठा।

२. वही, गा. ३५
पावं छिंदति जम्हा, पायच्छित्तं तु भण्णते तेण।
पाएण वा वि चित्तं, विसोहए तेण पच्छित्तं।।

३. (क) आवनि. ६६५
सामायारी तिविहा ओहे दसहा पयविभागे।।
(ख) आवहावृ.पृ. १७२—...पदविभागसामाचारी छेदसूत्राणि।..
...*पदविभागसामाचार्य्यपि* छेदसूत्रलक्षणान्नवमपूर्वादेव निर्यूढा।

४. निभा. गा. ६१८४ की चूर्णि पृ. २५३—छेयसुयमुत्तमसुयं......।
छेदसुयं कम्हा उत्तमसुयं? भण्णति—जम्हा एत्थ सपायच्छित्तो विधि भण्णति, जम्हा य तेण चरणविसुद्धी करेति, तम्हा तं उत्तमसुतं।

५. दशाचू. प. २
दसाओ......इमं पुण च्छेयसुत्तप्पमुहभूतं।

६. दसवे. ४/११

७. जैसिको. भाग २ पृ. ३०६
बज्झाणुट्ठाणेणं जेण ण बाहिज्जए तयं णियमा।
संभवइ य परिसुद्धं सो पुण धम्मम्मि छेउ त्ति।।

छेदसूत्र : कर्तृत्व और काल

आगमों की रचनाशैली के दो प्रकार रहे हैं—१. कृत और २. निर्यूढ़। अर्हत् अर्थ का प्ररूपण करते हैं और गणधर उसे सूत्र रूप में गुंफित करते हैं।[1] समय-समय पर स्थविरों ने भी आगमग्रन्थों की रचना की है। जिनकी स्वतंत्र रूप से रचना की जाती, वे कृत कहलाते, जैसे द्वादशांगी गणधरों द्वारा कृत है। उपांग भिन्न-भिन्न स्थविरों द्वारा कृत हैं।

जिन आगमग्रंथों का पूर्वों आदि से निर्यूहण करके तैयार किया जाता, वे निर्यूढ़ कहलाते हैं, जैसे—दसवेआलियं का निर्यूहण आचार्य शय्यंभव ने किया, छेदसूत्रों का निर्यूहण भद्रबाहु स्वामी ने किया इत्यादि। छेदसूत्र पूर्वों से निर्यूढ हैं, इसलिए इनका आगम साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान है।

दशाश्रुतस्कन्धनिर्युक्ति के अनुसार दसाओ, कप्पो और ववहारो—इन तीनों के निर्यूहणकर्ता अंतिम श्रुतकेवली भद्रबाहु स्वामी हैं।[2] दशाश्रुतस्कन्ध की चूर्णि में उल्लेख आता है कि 'दसाओ, कप्पो और ववहारो'—ये तीनों आगम प्रत्याख्यान पूर्व से निर्यूढ हैं।[3]

पञ्चकल्पभाष्य में भी भद्रबाहु को ही उक्त तीनों आगमों का निर्यूहक माना गया है जबकि पञ्चकल्प की चूर्णि में उक्त तीनों छेदसूत्रों की भांति आचारप्रकल्प (निसीहज्झयणं) के निर्यूहण-कर्ता के रूप में भी भद्रबाहु का उल्लेख है।[4] यहां प्रश्न होता है कि भाष्य और निर्युक्ति से भिन्न चूर्णि के उल्लेख का आधार क्या है? इस प्रश्न के समाधान में यह संभावना की जा सकती है कि निर्युक्तिकार और भाष्यकार को 'कल्प' शब्द से बृहत्कल्प और आचारप्रकल्प—इन दोनों का ग्रहण अभिप्रेत रहा हो। निशीथभाष्य में 'कल्प' शब्द के द्वारा दशाश्रुतस्कन्ध, बृहत्कल्प और व्यवहार—इन तीनों का ग्रहण किया गया है। छन्द रचना की दृष्टि से यह भी संभव है कि रचनाकार ने कल्प और प्रकल्प दोनों को एक ही शब्द (कल्प) के द्वारा सूचित किया है। यहां उल्लेखनीय है कि आचारप्रकल्प के निर्यूहण के विषय में विद्वानों में मतैक्य नहीं है।

'अणुओगदाराइं' में आगम के तीन प्रकार प्रज्ञप्त हैं—१. सूत्रागम २. अर्थागम और ३. तदुभयागम। अथवा १. आत्मागम २. अनंतरागम और ३. परंपरागम।[5] उत्तरवर्ती आचार्यों ने अर्थागम और सूत्रागम के मूलस्रोत, अनन्तर उपलब्धि और परम्पर उपलब्धि के संदर्भ में विचार किया है। अर्थागम की दृष्टि से अन्य आगमों की भांति छेदसूत्रों के भी मूलस्रोत तीर्थंकर और सूत्रागम की दृष्टि से मूलस्रोत गणधर हैं। इन ग्रंथों का निर्यूहण करने से वर्तमान स्वरूप के निर्माता अंतिम श्रुतकेवली आचार्य भद्रबाहु हैं। भद्रबाहु का समय विक्रम पूर्व चौथी शताब्दी (वीर निर्वाण की दूसरी शताब्दी) माना गया है। यहां उल्लेखनीय है कि छेदसूत्रों का निर्यूहण करने वाले श्रुतकेवली भद्रबाहु निर्युक्तिकार भद्रबाहु से भिन्न हैं। मुनि पुण्यविजयजी ने इस विषय में विस्तार से विवेचन किया है।[6] डॉ. जेकोबी एवं शुब्रिंग के अनुसार छेदसूत्रों का समय ई. पू. चौथी शताब्दी का अन्त एवं तीसरी शताब्दी का प्रारम्भ है। इनके रचयिता आचार्य भद्रबाहु हैं।[7]

छेदसूत्रों का निर्यूहण क्यों?

छेदसूत्रों का निर्यूहण क्यों किया गया? यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। दशाश्रुतस्कन्ध की चूर्णि में इसका समाधान प्राप्त होता है। चूर्णिकार ने लिखा है—अवसर्पिणी काल में श्रमणों की आयु और शक्ति क्षीण होती चली जाएगी। उस समय पूर्वों की ज्ञानराशि विच्छिन्न हो जाएगी। शरीर के वर्ण आदि पर्यवों की अनन्तगुण हानि होने से श्रमणों की ग्रहणशक्ति और धारणाशक्ति ह्रासोन्मुख हो जाएगी। बल, धृति, उत्साह, सत्त्व और संहनन इन सबकी हानि होगी। सूत्रार्थ की व्यवच्छित्ति न हो इस उद्देश्य से परानुकंपी भगवान भद्रबाहु ने शिष्यों पर अनुग्रह करके छेदसूत्रों का निर्यूहण किया। उन्होंने आहार, उपधि, प्रशंसा और कीर्ति के प्रयोजन से निर्यूहण नहीं

१. आवनि. गा. ९२
अत्थं भासति अरहा, सुत्तं गंथंति गणधरा निउणं।

२. दशानि. गा. १
वंदामि भद्दबाहुं पाईणं चरिमसयलसुयनाणिं।
सुत्तस्स कारगमिसिं दसासु कप्पे य ववहारे।।

३. दशाचू. प. ५
.....भद्दबाहुस्स ओसप्पिणीए पुरिसाणं आयुबलपरिहाणिं जाणिऊण चिंता समुप्पन्ना। पुव्वगते वोच्छित्ते मा साहू विसोधिं ण याणिस्संतित्ति काउं अंतो दसाकप्पववहारा निज्जूढा पच्चक्खाणपुव्वातो।

४. पंकभा. गा. १ एवं उसकी चूर्णि।

५. अणु. सू. ५५०,५५१

६. बृभा. भाग ६ की प्रस्तावना पृ. २२-४१

७. जैसाबृइ. भाग १ प्रस्ता. पृ. ५३-५४

किया।[१] भाष्य साहित्य में निर्यूहण के प्रयोजन का विस्तार से निरूपण है। व्यवहार भाष्य में उल्लेख है–'नौवां पूर्व सागर की भांति विशाल है। उसकी निरन्तर स्मृति तभी संभव है जब उसका बार-बार परावर्तन किया जाए। परावर्तन के अभाव में वह ज्ञान विस्मृत हो जाता है।[२] भद्रबाहु ने धृति, श्रद्धा आदि की क्षीणता देखी तो चारित्र की विशुद्धि एवं सुरक्षा के लिए भद्रबाहु ने दशा, कल्प और व्यवहार का निर्यूहण किया।[३]

निर्यूहण का दूसरा प्रयोजन बताते हुए भाष्यकार कहते हैं–'चरणकरणानुयोग का व्यवच्छेद होने का अर्थ है–चारित्र का व्यवच्छेद। अतः चरणकरणानुयोग की अव्यवच्छित्ति एवं चारित्र की सुरक्षा के उद्देश्य से भद्रबाहु ने इन ग्रंथों का निर्यूहण किया। भाष्यकार ने प्रसंगवश दृष्टान्त के द्वारा निर्यूहण के प्रयोजन को प्रस्तुति दी है।[४]

जिस प्रकार सुगंधित फूलों से युक्त कल्पवृक्ष पर चढ़कर फूल पाने की इच्छा तो अनेक लोग रखते हैं पर वे सभी वृक्ष पर आरोहण करने में समर्थ नहीं होते। उन व्यक्तियों पर अनुकम्पा करके कोई शक्तिशाली व्यक्ति उस वृक्ष पर चढ़ता है और अक्षम लोगों में वे फूल वितरित कर देता है। उसी प्रकार भद्रबाहु स्वामी ने चतुर्दशपूर्व रूपी कल्पवृक्ष पर आरोहण किया और दूसरों पर अनुकम्पा कर छेदग्रंथों का निर्यूहण किया।[५]

छेदसूत्रों की संख्या एवं महत्ता

छेदसूत्र संख्या में कितने हैं? इस संदर्भ में भिन्न-भिन्न मन्तव्य प्राप्त होते हैं। आवश्यक निर्युक्ति में छेदसूत्रों के साथ महाकल्प का उल्लेख है।[६] जीतकल्प की चूर्णि में कल्प, व्यवहार, कल्पिकाकल्पिक, क्षुल्लकल्प, महाकल्प, निशीथ और आदि शब्द से दशाश्रुतस्कन्ध–इनका छेदसूत्र के रूप में उल्लेख है।[७] सामाचारी शतक में छह छेदसूत्रों का उल्लेख है–१. दशाश्रुतस्कन्ध २. व्यवहार ३. बृहकल्प ४. निशीथ ५. महानिशीथ और ६. जीतकल्प।[८]

इन छह ग्रंथों में से पांच का उल्लेख नंदी में कालिक सूत्रों के अंतर्गत किया गया है।[९] जीतकल्प जिनभद्रगणी क्षमाश्रमण की रचना है। इसका प्रणयन नन्दी के उत्तरकाल में हुआ है। महानिशीथ की मूल प्रति वर्तमान में अनुपलब्ध है। हरिभद्रसूरि ने इसका विक्रम की आठवीं शताब्दी में पुनरुद्धार किया था, इसलिए इसे आगम की कोटि में नहीं रखा जा सकता। इस प्रकार वर्तमान में मौलिक छेदसूत्र चार ही रह जाते हैं।

जैन आगम वाङ्मय में छेदसूत्रों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। अनुयोग के चार प्रकारों में प्रथम स्थान चरणकरणानुयोग का है। छेद सूत्रों का समावेश चरणकरणानुयोग में है, इसलिए इनका आगम साहित्य में प्रथम स्थान है। इनमें श्रमणों की आचार-संहिता और अतिक्रमण होने पर स्वीकृत की जाने वाली प्रायश्चित्त संहिता का प्रज्ञापन है। प्रायश्चित्त से विशोधि होती है। प्रायश्चित्त प्राप्त करने के बाद व्यक्ति भविष्य में प्रमाद अथवा दोषाचरण से बचने का प्रयास करता है। आगम में प्रायश्चित्त के दस प्रकारों का उल्लेख है।[१०] ज्ञातव्य है कि जब तक चतुर्दशपूर्वी थे, जब तक प्रथम संहनन था, प्रायश्चित्त के दसों ही प्रकार प्रचलित थे। स्थूलभद्र स्वामी के साथ ही पूर्वों का तथा अंतिम दोनों प्रकार के प्रायश्चित्त का विच्छेद हो गया। वर्तमान में आठ प्रायश्चित्त ही प्रचलित हैं, जो तीर्थ पर्यन्त रहेंगे।[११] भाष्यकार का

---

१. दशानि. गा. ६ की चूर्णि
ओसप्पिणी समणाणं परिहायंताण आयुबलेसु होहिंतुवग्गहकरा पुव्वगतम्मि पहीणम्मि ओसप्पिणीए अणंतेहिं वण्णादिपज्जवेहिं परिहायमाणीए समणाणं ओग्गहधारणा परिहायंति बलधिति-विरिउच्छाहसत्तसंघयणं च। सरीरबलविरियस्स अभावा पढिउं सद्धा नत्थि संघयणाभावा उच्छाहो न भवति, अतो तेण भगवता पराणुकंपएण....मा वोच्छिज्जिस्संति एते सुत्तत्थपदा अतो अणुग्गहत्थं, ण आहारुवधिसेज्जादिकित्तिसद्दनिमित्तं वा निज्जूढा।

२. व्यभा. १७३८
सागरसरिसं नवमं अतिसयनयभंगगुविलता।

३. पंकभा. गा. २६-२९

४. वही, गा. ४२

५. वही, गा. ४३-४६

६. आवनि. ७७७

७. जीचू. पृ. १
कप्प - ववहार - कप्पियाकप्पिय - चुल्लकप्प - महाकप्पसुय - निसीहाइएसु छेदसुत्तेसु अइवित्थरेण पच्छित्तं भणियं।

८. समा. (आगम अधिकार)

९. नंदी सू. ७८
से. किं तं कालियं? कालियं अणेगविहं पण्णत्तं, तं जहा– १. उत्तरज्झयणाइं २. दसाओ ३. कप्पो ४. ववहारो ५. निसीहं ६. महानिसीहं.....।

१०. ठाणं १०/७३

११. निभा. गा. ६६८०

मन्तव्य है कि प्रायश्चित्त न हो तो चारित्र की विशुद्धि नहीं रह पाती।[१] इसलिए जितना महत्त्व चारित्र का है, उतना ही महत्त्व प्रायश्चित्त का है। छेदसूत्र प्रायश्चित्तविधि के संवाहक सूत्र हैं, अतः उनका महत्त्व स्वतः सिद्ध है। तत्त्वार्थवार्तिक में प्रायश्चित्त की निष्पत्ति को आठ रूपों में प्रस्तुत किया गया है।[२]

भाष्य साहित्य में सूत्र और अर्थ की बलवत्ता के विषय में विवेचन है। वहां प्रश्न किया गया—सूत्र और अर्थ में बलवान कौन? भाष्यकार कहते हैं—सूत्र से अर्थ बलवान होता है। पूर्वगत में सभी सूत्र एवं अर्थों का विविध प्रकार से विवेचन है। अतः पूर्वगत सबसे बलवान है। छेदसूत्र और उसके अर्थों से चारित्र के अतिचारों की विशुद्धि होती है। अतः पूर्वगत के बाद शेष सभी अर्थों से छेदसूत्रों का अर्थ बलवान है।[३]

छेदसूत्रों की महत्ता इस तथ्य से भी जानी जा सकती है कि एक गच्छ के संचालन का अधिकारी वही हो सकता है, जो गीतार्थ है। गीत और अर्थ—इन दो शब्दों से निष्पन्न 'गीतार्थ' का अर्थ है—छेदसूत्रों का ज्ञाता।[४] 'गीतार्थ' वह होता है जो छेदसूत्रों का ज्ञाता है। भाष्य-साहित्य में विहार के दो प्रकार प्रज्ञप्त हैं—१. गीतार्थ का विहार २. गीतार्थनिश्रित का विहार। इसका तात्पर्य है—एक अगीतार्थ मुनि स्वतंत्र विहरण का अधिकारी नहीं होता। वह गीतार्थ की निश्रा में ही विहार कर सकता है।[५] गीतार्थ के तीन प्रकार हैं।

१. जघन्य गीतार्थ—आचारप्रकल्प का धारक।

२. मध्यम गीतार्थ—दशा, कल्प और व्यवहार का धारक।

३. उत्कृष्ट गीतार्थ—चतुर्दशपूर्वी।

उक्त तीनों प्रकार के गीतार्थ की निश्रा में सबालवृद्ध गच्छ विहरण करता है।[६] गच्छ संचालक के लिए गीतार्थ (छेदसूत्रों का ज्ञाता) होना अत्यन्त आवश्यक है। गीतार्थ कालज्ञ और उपायज्ञ होता है। वह उत्सर्ग-अपवाद आदि विधियों को जानता है। वह जानता है कि किस कार्य में अधिक लाभ की संभावना है? किस कार्य के पीछे कर्ता का प्रयोजन क्या है? ग्लानत्व आदि आगाढ़ कारणों में प्रतिसेवना की औचित्य-सीमा क्या है? वह परिणामक को तथा उसकी धृति, शक्ति आदि को जानता है। वह एषणीय द्रव्यों की ग्रहण संबंधी यतनाविधि को जानता है। कार्य और अकार्य की निष्पत्ति को जानता है तथा इनके प्रतिपक्ष को भी जानता है।[७] इसलिए आचार्य आदि प्रधान पुरुषों के लिए गीतार्थ होना जरूरी माना गया है। यही कारण है कि प्राचीन आचार्यों ने पूर्वगत के बाद छेदसूत्रों के अर्थ को ही सबसे अधिक महत्त्व प्रदान किया है।

छेदसूत्रों की वाचना : अर्ह-अनर्ह

छेदसूत्रों में श्रमणों के आचारविषयक विधि-निषेध का प्रज्ञापन है। छेदसूत्रों को रहस्यसूत्र भी कहा जाता है।[८] रहस्य को जानना जितना कठिन है, उससे भी ज्यादा कठिन है, उसे पचाना। इसीलिए छेदसूत्रों की वाचना उसी को दी जाती है, जो योग्य है। भाष्य-ग्रंथों में छेदसूत्रों के अध्ययन की योग्यता पर विमर्श किया गया है। भाष्यकार के अनुसार तेरह प्रकार के व्यक्तियों को छेदसूत्रों की वाचना नहीं देनी चाहिए।[९]

---

१. निभा. गा. ६६७८

२. तवा. ९/२२

३. व्यभा. गा. १८२९
जम्हा हु होति सोधी छेदसुयत्थेण खलितचरणस्स।
तम्हा छेदसुयत्थो बलवं मोत्तूण पुव्वगतं।।

४. बृभा. गा. ६८९ की वृत्ति २०७
.....'गीतं मुणितं वैकार्थम्। ततश्च विदितः मुणितः परिज्ञातोऽर्थः छेदसूत्रस्य येन तं विदितार्थं खलु वदन्ति गीतार्थम्।

५. वही, गा. ६८८
गीयत्थो य विहारो बीओ गीयत्थनिस्सिओ भणिओ।
इत्तो तइयविहारो नाणुन्नाओ जिणवरेहिं।।

६. वही, गा. ६९३ की वृत्ति पृ. २०८
आयारपकप्पधरा, चउदसपुव्वी अ जे अ तम्मज्झा।
तन्नीसाए विहारो, सबालवुड्ढस्स गच्छस्स।।
आचारप्रकल्पधराः निशीथाध्ययनधारिणो जघन्या गीतार्थाः, चतुर्दशपूर्विणः पुनरुत्कृष्टाः, तन्मध्यवर्तिनः कल्प-व्यवहार-दशाश्रुतस्कन्धधरादयो मध्यमाः। तेषां....निश्रया सबाल-वृद्धस्यापि गच्छस्य विहारो भवति, न पुनरगीतार्थस्य स्वच्छन्दमेकाकिविहारः कर्तुं युक्तः।

७. वही, गा. ९५१ एवं उसकी वृत्ति पृ. ३००

८. (क) निभा. गा. ६२२७ की चूर्णि—'पवयणरहस्सं अववादपदं सव्वं वा छेदसुत्तं।
(ख) बृभा. गा. ६४९० एवं उसकी वृत्ति पृ. १७०६

९. वही, गा. ७६२,७६३
तिंतिणिए चलचित्ते गाणंगणिए अ दुब्बलचरित्ते।
आयरियपरिभासी वामावट्टे य पिसुणे य।।
आदीअदिट्ठभावे अकडसमायारी तरुणधम्मे य।
गव्विय-पइण्ण-निण्हइ छेअसुए वज्जए अत्थं।।

१. तिंतिणिक–तिंबुरुक वृक्ष की लकड़ी को जब प्रज्ज्वलित किया जाता है तो वह तड् तड् की आवाज करती है। इसी प्रकार गुरु के द्वारा उपालम्भ दिए जाने पर जो उसे सहन नहीं कर पाता और अपलाप शुरू कर देता है, वह तिंतिणिक कहलाता है। भाष्यकार ने आहारविषयक, उपकरणविषयक और वसतिविषयक तिंतिणक का उल्लेख किया है[१]।

२. चंचलचित्त–आगमों का पल्लवग्राही ज्ञान करने वाला। चंचलचित्त वाला यत्र तत्र के आलापकों को ही ग्रहण करता है।[२]

३. गाणंगणिक–छह माह की अवधि से पूर्व ही एक गण से दूसरे गण में संक्रमण करने वाला।[३]

४. दुर्बलचारित्र–धृति और वीर्य से परिहीन तथा पुष्ट कारण के बिना ही मूलगुण और उत्तरगुण संबंधी अपवादपदों की प्रतिसेवना करने वाला।[४]

५. आचार्य-परिभाषी–आचार्य को बालक, अकुलीन, मंदमेधा, द्रमक, बुद्धिविकल, अल्पलाभलब्धि वाला आदि कहकर उनका परिभव करने वाला।[५]

६. वामावर्त–गुरु की आज्ञा के विपरीत आचरण करने वाला, जैसे–'आओ' कहने पर चले जाना और 'जाओ' कहने पर तत्काल पास में आकर बैठ जाना।[६]

७. पिशुन–दूसरों के दोषों का उद्भावन कर प्रीति को समाप्त करने वाला।[७]

८. आदि-अदृष्टभाव–आवश्यक से सूत्रकृतांग पर्यन्त जो अभिधेय है, उसे आदिम-भाव कहा जाता है, उसे न जानने वाला।

९. कृतसामाचारीक–उपसम्पदा और मंडली–इन दोनों प्रकार की सामाचारी को सम्यक्तया जानकर उनका समाचरण न करने वाला।[८]

१०. तरुणधर्मा–अवधि से पूर्व छेदसूत्रों का अध्ययन करने वाला। उल्लेखनीय है कि निसीहज्झयणं के लिए तीन और अन्य तीनों छेदसूत्रों के लिए पांच वर्ष की संयमपर्याय आवश्यक है। इससे पूर्व इन ग्रंथों के अध्ययन के लिए मुनि तरुणधर्मा होता है।

११. गर्वित–थोड़ा सा अध्ययन कर गर्व से अविनीत होने वाला। ऐसे दुर्विनीत को विद्या देने या विनय की महत्ता बताने का अर्थ है–छिन्नकर्ण और छिन्नहस्त को आभरण देना।[९]

१२. प्रकीर्णक–छेदसूत्रों के रहस्यपूर्ण अर्थ को सुनकर उसे अपरिणत (अपरिपक्व) को बताने वाला। ज्ञातव्य है कि अपरिणत को उन रहस्यों पर प्रतीति नहीं होती। फलतः वह अर्हतों की अपकीर्ति करता है अथवा वह उत्प्रव्रजन कर देता है।[१०]

१३. निन्हवी–जिसके पास ज्ञान प्राप्त किया, उसके नाम का निन्हवन–गोपन करने वाला।[११]

उपर्युक्त तिंतिणिक, चपल आदि सभी प्रकार के शिष्य छेदसूत्रों की वाचना के अनर्ह होते हैं। इसलिए आचार्य को कसौटी में उत्तीर्ण उसी शिष्य को छेदसूत्रों के रहस्य बताने चाहिए जो परिणामक है। अपरिणामक बुद्धि से अपरिपक्व होता है। वह उत्सर्गमार्ग को बलवान मानकर चलता है। इसके विपरीत अतिपरिणामक अपवादरुचि वाला होता है। परिणामक वह होता है, जो बुद्धि से परिपक्व और यथार्थग्राही होता है। जो द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की सापेक्षता के आधार पर वर्तन करता है। वह जहां उत्सर्ग बलवान होता है, वहां उत्सर्ग-मार्ग का अनुसरण करता है और जहां अपवाद बलवान होता है, वहां अपवाद-पथ का अनुसरण करता है।[१२] पंचकल्पभाष्य में भी इसी तथ्य का प्रज्ञापन है।[१३]

---

१. बृभा. गा. ७६४
२. वही, गा. ७६५
३. वही, गा. ७६८
४. वही, गा. ७६९
५. वही, गा. ७७२
६. वही, गा. ७७४
७. वही, गा. ७७५
८. बृभा. गा. ७७६,७७७
९. वही, गा. ७८१,७८२
१०. वही, गा. ७८४,७८५
११. वही, गा. ७८६
१२. वही, गा. ७९२-७९७
१३. पंकभा. गा. १२२३–णाऊणं छेदसुत्तं, परिणामगे होति दायव्वं।

नाम : अन्वर्थता विमर्श

प्रस्तुत आगम का नाम निसीहज्झयणं है। निसीह शब्द के संस्कृत रूप दो बनते हैं—निशीथ और निषीध। निशीथ का अर्थ अप्रकाश है।[१]

अध्येता के तीन प्रकार होते हैं—अपरिणामक, परिणामक और अतिपरिणामक। अपरिणामक की बुद्धि परिपक्व नहीं होती और अतिपरिणामक की बुद्धि कुतर्कपूर्ण होती है। अतः ये दोनों निसीहज्झयणं पढ़ने के अधिकारी नहीं होते।[२] निशीथ प्रवचन रहस्य है।[३] निशीथभाष्य के अनुसार जो भिक्षु सूत्रोक्त अपवाद पदों के रहस्य को आजीवन धारण नहीं कर पाता, उन्हें अगीतार्थ भिक्षुओं को बताता रहता है, एक अपवाद की निश्रा में अन्य अपवादों का सेवन करता रहता है, ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि से सम्बन्धित योगों में प्रवृत्त नहीं होता, ऐसे भिन्नरहस्य, निश्राकर एवं मुक्तयोगी को निशीथ की वाचना नहीं देनी चाहिए। इसके विपरीत जीवनभर रहस्य को पचाने वाला, निष्पक्ष (राग-द्वेष रहित), पांच समितियों से समित एवं अशठभाव से चारित्र पालन करने वाला भिक्षु निशीथ की वाचना के योग्य होता है।[४]

दिगम्बर ग्रन्थों—षट्खण्डागम एवं गोम्मटसार जीवकाण्ड में णिसीह के स्थान में 'णिसीहिया' शब्द का प्रयोग मिलता है।[५] गोम्मटसार की टीका में इसका संस्कृत रूप 'निषिद्धिका' किया गया है।[६] हरिवंशपुराण में निशीथ के लिए निषद्यक शब्द का प्रयोग मिलता है।[७] इस प्रकार निषिद्धिका अथवा निषद्यक नामक ग्रन्थ—प्रायश्चित्त शास्त्र अथवा प्रमाददोष का निषेध करने वाला शास्त्र है। वेबर ने भी निसीह के निषेध अर्थ को संगत माना है।[८] 'निषेध', निषीध अथवा निषिद्धिका के अर्थ की दृष्टि से विचार किया जाए तो 'निशीथ' रूप अधिक संगत प्रतीत होता है, क्योंकि प्रस्तुत आगम विधि-निषेध का नहीं, प्रायश्चित्त का प्रतिपादक है तथा इस विषय में श्वेताम्बर एवं दिगम्बर—दोनों परम्पराएं एकमत हैं।[९]

प्रस्तुत आगम अपरिणामक एवं अतिपरिणामक, आदिअदृष्टधर्मा तथा अव्यक्त (अव्यंजनजात) के लिए अपाठ्य है, जनाकुल प्रदेश में इसकी वाचना निषिद्ध है। अतः निषिधिका अर्थात् स्वाध्यायभूमि में ही इसे पढ़ना चाहिए, अन्यत्र नहीं—इस दृष्टि से इसके निषिद्धिका—इस निषेधपरक अर्थ को भी संगत माना जा सकता है।

निसीहज्झयणं प्रायश्चित्त सूत्र है, उत्तम श्रुत है। इसका अध्ययन करते समय निषद्या की व्यवस्था की जाती थी।[१०] आलोचना के समय आलोचक आचार्य के लिए निषद्या की व्यवस्था करता था[११]—इस दृष्टि से इसका निषद्यक नाम भी संगत हो सकता है।

निशीथभाष्य के अनुसार आयारो तथा आयारचूला में उपदिष्ट क्रिया का अतिक्रमण करने पर जो प्रायश्चित्त प्राप्त होता है, वह निसीहज्झयणं में प्रज्ञप्त है।[१२] चूर्णिकार ने भी आयारचूला तथा निशीथ का सम्बन्ध प्रतिषेध सूत्र और प्रायश्चित्त सूत्र के रूप में प्रतिपादित किया है।[१३]

निशीथ चूर्णिकार के अनुसार प्रस्तुत आगम रहस्यमय है, हर किसी के लिए स्पष्ट नहीं है, अनधिकारी के लिए प्रकाश्य नहीं है, रात्रि या एकान्त में पठनीय है—इन दृष्टियों से 'णिसीह' का 'निशीथ' अर्थ अधिक संगत लगता है।

निशीथभाष्य एवं चूर्णि में 'णिसीह' शब्द की निक्षेप पद्धति से व्याख्या करते हुए बताया गया है कि जिससे अष्टविध कर्ममल का

---

१. निभा. गा. ६९—जं तु होइ अप्पगासं तं तु णिसीहं ति लोगसंसिद्धं।
२. वही, भा. १ पृ. १६५—पुरिसो तिविहो—परिणामगो अपरिणामगो अतिपरिणामगो, तो एत्थ अपरिणामग-अतिपरिणामगाणं पडिसेहो।
३. वही, भा. ४ पृ. २६१
४. वही, गा. ६७०२,६७०३
५. (क) षट्खं. १/९६
(ख) गोजी. ३६७
६. वही, ३६७ की वृत्ति—निषेधनं प्रमाददोषनिराकरणं निषिद्धिः संज्ञायां 'क'प्रत्यये निषिद्धिका तच्च प्रमाददोषविशुद्ध्यर्थं बहुप्रकारं प्रायश्चित्तं वर्णयति।
७. ह. पु. १०/१३८—निषद्यकाख्यमाख्याति प्रायश्चित्तविधिं परम्।
८. इण्डियन एण्टीक्वेरी २१, पृ. ९७ (निभा. १ भू. पृ. ९)
९. (क) निभा. गा. २
(ख) षट्. खं. १, पृ. ९८
१०. निभा. गा. ६६७३
११. वही, गा. ६३८९
१२. वही, गा. ७१
१३. वही, भा. १ चू. पृ. ३—तत्र प्रतिषेधः चतुर्थचूडात्मके आचारे यत् प्रतिषिद्धं तं सेवंतस्स पच्छित्तं भवतीति काउं।

निषीदन हो जाए–क्षय, क्षयोपशम एवं उपशम हो जाए, वह भाव निशीथ होता है। ज्ञातव्य है कि प्रस्तुत व्युत्पत्ति में 'निसीह' पद का सम्बन्ध सद् धातु से जोड़ा गया है, जो 'उपनिषद्' के समान गुरु के पास बैठ कर ग्रहण करने योग्य रहस्यविद्या की ओर संकेत करती है। जो निषीदन–अपगम करने वाला है, वह निशीथ है–ऐसा माना जाए, तब भी कर्ममल का अपगम करने के कारण प्रस्तुत आगम का निशीथ नाम सार्थक है। यद्यपि सभी आगम कर्ममल का अपगम करने में समर्थ होने से वे भी निशीथ हो सकते हैं किन्तु प्रस्तुत आगम अनर्ह व्यक्ति को सुनाया भी नहीं जा सकता। अतः यह अन्य आगमों से विशिष्ट है। इस प्रकार यह लौकिक एवं लोकोत्तर सभी शास्त्रों में विशिष्ट है।[१] संक्षेप में इन बातों को ध्यान में रखते हुए इसका निशीथ नाम ही अधिक अन्वर्थ प्रतीत होता है। इसे एक अध्ययन के रूप में मान्यता प्राप्त है। अतः इसे निशीथाध्ययन भी कहा जाता है।

निशीथ : एकार्थक नाम

निशीथभाष्यकार ने निशीथ के चार अन्य एकार्थक नाम बताए हैं–आचार, अग्र, प्रकल्प और चूलिका।[२]

- प्रायश्चित्त सूत्र चरणकरणानुयोग के विभाग में समाहित होते हैं, अतः इसका आचार नाम संगत है।
- आयारो के पांच अग्र हैं–आयारचूला की चार चूलाएं क्रमशः प्रथम चार अग्र हैं एवं पांचवां अग्र है–निसीहज्झयणं।
- नवम पूर्व की तृतीय वस्तु 'आचार प्राभृत' से प्रस्तुत आगम की प्रकल्पना–रचना की गई। अतः इसका नाम प्रकल्प है। प्रस्तुत आगम प्रकल्पन–छेदन करने वाला है, अतः इसका नाम प्रकल्प है।[३]

निशीथ भावप्रकल्प है क्योंकि इसमें मूलगुण एवं उत्तरगुण रूप भावों की प्रकल्पना की जाती है।[४] जिनकल्प को कल्पस्थित और स्थविरकल्प को प्रकल्पस्थित कहा जाता है।[५] निसीहज्झयणं में स्थविरकल्प का वर्णन है। अतः यह भावप्रकल्प है। जिनकल्पी एकान्ततः उत्सर्ग मार्ग पर चलते हैं। वहां कल्पिका प्रतिसेवना भी नहीं होती, दर्पिका की तो बात ही क्या?[६] अतः प्रायश्चित्त सूत्र का सम्बन्ध स्थविरकल्प (प्रकल्प) से है, कल्प (जिनकल्प) से नहीं। प्रस्तुत आगम में प्रायश्चित्त का वर्णन होने से यह प्रकल्प है।

- अग्र एवं चूला समानार्थक हैं। चूला, विभूषण एवं शिखर एकार्थक है। प्रस्तुत आगम नोआगमतः भाव चूला है।

निशीथ के लिए आचारप्रकल्प शब्द का प्रयोग भी मिलता है।[७]

आयारो एवं निसीहज्झयणं का आलोच्य सम्बन्ध

नंदी के कालिकसूत्रों के वर्गीकरण में उत्तराध्ययन, दशा, कल्प और व्यवहार के बाद निशीथ का नाम आता है।[८] वहां आयारो एवं निसीहज्झयणं के पारस्परिक सम्बन्ध का कोई आभास तक नहीं मिलता। नंदी तथा समवाओ में प्रज्ञप्त आयारो के पच्चीस अध्ययनों तथा आयारो के पचासी उद्देशन कालों से भी इसी तथ्य की पुष्टि होती है कि उस समय तक प्रस्तुत आगम को आयारो की पांचवीं चूला नहीं माना जाता था। यह एक स्वतंत्र आगम के रूप में मान्यता प्राप्त था।

ववहारो में आचारप्रकल्प का अनेकशः उल्लेख हुआ है। आवस्सयं में भी आचारप्रकल्प के अट्ठाईस अध्ययनों का प्रज्ञापन है–'अट्ठाविसतिविहे आयारपकप्पेहिं'। आवश्यक की हारिभद्रीया वृत्ति में प्रस्तुत सूत्रांश की व्याख्या में जिन अट्ठाईस भेदों का कथन हुआ है, वे आयारो, आयारचूला एवं निसीहज्झयणं की एकात्मकता के पुष्ट प्रमाण हैं। हरिभद्र ने प्रस्तुत संदर्भ में तीन गाथाएं उद्धृत की हैं–

---

१. निभा. गा. ७० चू.पृ. ३४,३५
२. वही, गा. ३–आयारो अग्गं चियं, पकप्प तह चूलिका *निसीहंति।*
३. वही, भा. १ चू. पृ. ३०–प्रकार्षाद्वा कल्पनं प्रकल्पः, नवमपूर्वात् तृतीयवस्तुनः आचारप्राभृतात्।
४. वही, भा. १ पृ. ३१–णो *आगम*ओ इमं चेव आयारपकप्पज्झयणं जेणेत्थ मूलुत्तरभावकप्पणा कज्जति।
५. वही, पृ. ३८–कप्पट्ठिता णाम जहाभिहिए कप्पे ठिता कप्पट्ठिता। ते य जिणकप्पिया। तप्पडिवक्खा पकप्पट्ठिता।
६. वही, गा ४, पृ. ४०८
७. (क) सम. सू. १३६
(ख) आवनि. पृ. २९१–आचारप्रकल्पः निशीथः।
८. नंदी सू. ७७–कालियं अणेगविहं पण्णत्तं, तं जहा–उत्तरज्झयणाइं, दसाओ, ववहारो, णिसीहं....

सत्थपरिण्णा लोगो विजओ य सीओसणिज्ज सम्मत्तं।
आवंति धुयविमोहो उवहाणसुय महापरिण्णा य।।
पिंडेसणसिज्जिरिया भासज्जाया य वत्थपाएसा।
उग्गहपडिमा सत्तेक्कतयं भावणविमुत्तीओ।।
उग्घायमणुग्घायं आरूवणा तिविहमो णिसीहं तु।
इय अट्ठावीसविहो आचारपकप्पणामोऽयं।।[१]

आयारो एवं निसीहज्झयणं के सम्बन्ध का उल्लेख आचारांगनिर्युक्ति में भी मिलता है।[२] निर्युक्तिकार ने आयारो तथा आयारचूला के साथ इसकी संयुक्त निर्युक्ति की रचना कर इनकी एकात्मकता जोड़ दी।[३] इससे प्रतीत होता है कि निशीथ की आचारांग चूला के रूप में स्थापना नंदी और निर्युक्ति की रचना के मध्यकाल में हुई थी।

आयारो तथा उसकी प्रथम चार चूलाएं दीक्षा पर्याय के अनन्तर क्रमशः पढ़ी जाती थी। प्राचीन काल में जब तक दसवेआलियं की रचना नहीं हुई थी, तब तक उपस्थापना के लिए शस्त्र परिज्ञा[४] एवं पिण्डैषणाकल्पिक होने के लिए पिण्डैषणा के सूत्रार्थ[५] का ज्ञान कराया जाता था किन्तु आचारप्रकल्प का अध्ययन करने के लिए कम से कम तीन वर्ष का दीक्षा पर्याय आवश्यक माना गया। तीन वर्ष की दीक्षापर्याय के बाद भी यदि वह अल्पवयस्क और अपरिपक्वबुद्धि है तो प्रस्तुत आगम के लिए अनर्ह होता है।

आयारो एवं निसीहज्झयणं के सम्बन्ध विषयक विमर्श से तीन प्रश्न उपस्थित होते हैं—

१. निसीहज्झयणं को आयारो के साथ ही क्यों जोड़ा गया।

२. यदि निसीहज्झयणं को आयारो की पांचवीं चूला मान ही लिया गया तो पुनः इसे पृथक् क्यों किया गया?

३. यदि प्रस्तुत आगम आयारो की चूला है तो इसे चूलिकासूत्रों में न रखकर छेदसूत्रों के वर्गीकरण में क्यों रखा गया?

प्रस्तुत आगम का निर्यूहण नवम पूर्व के आचार प्राभृत नामक वस्तु से हुआ है। इसका विषय भी आचार से संबद्ध है। जिन-जिन पदों का आयारचूला में निषेध किया गया है, उनका प्रस्तुत आगम में प्रायश्चित्त बतलाया गया है। आयारचूला प्रतिषेध सूत्र है और प्रस्तुत आगम प्रायश्चित्त सूत्र। अतः विषय साम्य की दृष्टि से इसका सम्बन्ध आयारो से जोड़ा गया।[६] निसीहज्झयणं का एक नाम आयार भी है जो उसकी आयारो से सम्बन्ध योजना का निमित्त हो सकता है। आचारांग निर्युक्ति का 'हवइ सपंचचूलो' तथा निशीथचूर्णि का 'पकप्पो आयारगतो'[७] वाक्यांश भी इसी ओर संकेत करता हैं।

आयारो की पांच चूलाएं हैं फिर एक इसी चूला को आयारो से पृथक क्यों किया गया? आयारो तथा उसकी प्रथम चार चूलाओं के लिए न दीक्षा पर्याय की सीमा है, न जन्म पर्याय की। आचार का ज्ञान प्रत्येक मुमुक्षु के लिए आवश्यक है। अतः प्रव्रज्या के अनन्तर चरणकरणानुयोग के प्रथम अंग के रूप में आयारो एवं आयारचूला का अध्ययन कराया जाता है। प्रस्तुत आगम तीन वर्ष की दीक्षा पर्याय वाले, वयस्क एवं परिणामक भिक्षु को ही पढ़ाया जा सकता है। अयोग्य एवं अनधिकारी को दिया गया ज्ञान दुरुपयोग का निमित्त बन सकता है। अतः अध्ययन की मर्यादा के कारण इसका पृथक्करण अनिवार्य हो गया होगा।

दसाओ, कप्पो एवं ववहारो—ये तीनों छेदसूत्र प्रत्याख्यान पूर्व से निर्यूढ हैं।[८] प्रस्तुत आगम भी उसी प्रत्याख्यान पूर्व की तृतीय आचार वस्तु के बीसवें प्राभृत से निर्यूढ है तथा शेष छेदसूत्रों के साथ इसकी आचार विषयक प्रतिपाद्य की समानता के कारण इसे छेदसूत्रों में परिगणित किया गया। आगमों के प्राचीन वर्गीकरण में छेदसूत्र नाम का कोई पृथक् वर्ग नहीं था। जैसे-जैसे श्रमण संघ में

---

१. आव. हारि. वृत्ति २ पृ. ११३
२. आनि. ११—हवइ सपंचचूलो।
३. वही, २९७—
जावोग्गहपडिमाओ पढमा सत्तिक्कगा बिइअचूला।
भावणाविमुत्ति आयारपकप्प तिन्नि इअ पंच।।
४. निभा. ३ पृ. २८०
५. व्यभा. ४ गा. १७४-१७६
६. निभा. १ चू.पृ. ३
७. वही, भा. ४ चू.पृ. २५४
८. दशाचू. पृ. २—कतरं सुत्तं? दसाउ कप्पो ववहारो य। कतरातो उद्धृतं? उच्यते—पच्चक्खाणपुव्वाओ।

आचारशास्त्रीय जटिलता बढ़ी, आचरण के नियमों में अपवाद बढ़े, वैसे-वैसे उसकी रहस्यमयता में भी वृद्धि होती गई एवं प्रायश्चित्तविधान में भी जटिलता आने लगी। अतः छेदसूत्रों का शेष आगमों से पृथक्करण अनिवार्य हो गया।

निसीहज्झयणं का कर्तृत्व

पञ्चकल्प चूर्णिकार ने भद्रबाहु स्वामी को आचारप्रकल्प, दशा, कल्प और व्यवहार—इन चारों आगमों का निर्यूहक बताया है।[१] दशाश्रुतस्कन्ध की निर्युक्ति[२] एवं पञ्चकल्पमहाभाष्य[३] में भद्रबाहु स्वामी को दशा-कल्प-व्यवहार का निर्यूहक (कर्त्ता) माना गया है। संभवतः छन्दरचना की दृष्टि से उन्होंने 'कप्प' पद के द्वारा कल्प एवं प्रकल्प दोनों का ग्रहण किया हो।

निसीहज्झयणं के कर्तृत्व के विषय में अर्थागम एवं सूत्रागम के मूलस्रोत, प्रथम उपलब्धि एवं पारम्परिक उपलब्धि की दृष्टि से विचार किया जाए तो प्रस्तुत आगम के अर्थागम के मूलस्रोत तीर्थंकर और सूत्रागम के मूलस्रोत गणधर हैं। अर्थागम गणधरों के लिए अनन्तरागम एवं गणधर शिष्यों के लिए परम्परागम है तथा सूत्रागम गणधर शिष्यों के लिए अनन्तरागम एवं गणधर प्रशिष्यों के लिए परम्परागम है।[४] इस दृष्टि से इसमें भद्रबाहु के कर्तृत्व की कोई अपेक्षा नहीं रहती। इस विरोधाभास की स्थिति में दशाश्रुतस्कन्ध की निर्युक्ति से हमें बहुत प्रकाश मिलता है। वहां दसाओ के विषय में बताया गया है—प्रस्तुत दशाएं अंगप्रविष्ट आगमों में प्राप्त दशाओं से छोटी हैं। इनका निर्यूहण शिष्यों के अनुग्रह के लिए स्थविरों ने किया।[५] उक्त चर्चा से यह फलित निकाला जा सकता है कि दसाओ के समान निसीहज्झयणं के अर्थदाता भगवान महावीर, सूत्रनिर्माता गणधर एवं वर्तमान संक्षिप्त रूप के निर्यूहक भद्रबाहु स्वामी हैं।

निशीथचूर्णि में प्राप्त प्रशस्ति गाथाओं के आधार पर इसे 'विशाखाचार्य द्वारा लिखित' माना जाता है। परन्तु यहां लेखन का अर्थ निर्माण (रचना) न होकर लिपिकरण होना चाहिए। इसके मुख्य हेतु ये हैं—

१. विशाखाचार्य दशपूर्वी थे जबकि निशीथभाष्य के अनुसार प्रकल्प अध्ययन चतुर्दशपूर्वी द्वारा निबद्ध है।[६]

२. दिगम्बर परम्परा में भद्रबाहु स्वामी के बाद विशाखाचार्य का नाम आता है। यदि उनके द्वारा निसीहज्झयणं की रचना की गई—ऐसा माना जाए तो निसीहज्झयणं का वर्तमान रूप दिगम्बर परम्परा में प्राप्त क्यों नहीं है—इसका कोई हेतु उपलब्ध नहीं होता।

३. उपर्युक्त प्रशस्ति गाथाओं में विशाखाचार्य के गुणों की प्रशस्ति की गई है, इससे निश्चित है कि वे गाथाएं उनके स्वयं के द्वारा रचित नहीं हो सकती। फिर किसने, कब इनकी रचना कर चूर्णि के अन्त में उनकी संयोजना की? इसके पुष्ट प्रमाण के अभाव में इन गाथाओं के आधार पर प्रस्तुत आगम के कर्तृत्व का निर्णय नहीं किया जा सकता।

प्रस्तुत आगम के निर्यूहक भद्रबाहु स्वामी निर्युक्तिकार भद्रबाहु स्वामी से भिन्न हैं। अतः उनका अस्तित्वकाल वीरनिर्वाण की दूसरी शताब्दी (विक्रमपूर्व चौथी शताब्दी) है।

रचना काल

दिगम्बर एवं श्वेताम्बर दोनों परम्परा की पट्टावलियां आचार्य भद्रबाहु तक समान रूप से चलती हैं। दोनों ही परम्पराओं में अंगबाह्य श्रुत की सूचि में निसीहज्झयणं का शब्दभेद से उल्लेख मिलता है। आचार्य भद्रबाहु द्वारा निर्यूढ़ ववहारो में आयारपकप्प का अनेकशः उल्लेख है। इन सब तथ्यों के आधार पर इसका रचना काल वी. नि. १५० के पश्चात् नहीं होना चाहिए।

आकार एवं विषयवस्तु

प्रस्तुत आगम एक अध्ययन है। इसके बीस उद्देशक हैं। उनमें से प्रथम उन्नीस उद्देशकों में प्रायश्चित्त का विधान है और बीसवें उद्देशक में प्रायश्चित्त देने की प्रक्रिया है।[७] पहले उद्देशक में मासिक अनुद्घातिक, दूसरे से पांचवें उद्देशक में मासिक उद्घातिक, छठे से

१. पंच. चू. प. १—तेण भगवता आयारपकप्प-दसा-कप्प-ववहारा य नवमपुव्वनीसंदभूता निज्जूढा।

२. दशा. नि. गा. १

३. पंच. भा. ११

४. निभा. १ चू. पृ. ४

५. दनि. ५,६

६. निभा. गा. ६६७४

७. वही, भा. ४ चू.पृ. ४०७—एगूणवीसाए उद्देसगेसु हत्थादि-वायणंतसुत्तेसु आवत्ति पच्छित्तणिबंधो कतो तेसिं च आवत्तीणं विसतिमुद्देसेण दाणं भणियं।

ग्यारहवें उद्देशक में चातुर्मासिक अनुद्घातिक और बारहवें उद्देशक से उन्नीसवें उद्देशक में चातुर्मासिक उद्घातिक प्रायश्चित्त के योग्य कार्यों का प्रज्ञापन किया गया है।

निशीथचूर्णि के अनुसार प्रस्तुत आगम में अर्थतः कथित प्रायश्चित्तों की संख्या अपरिमित है। सूत्रतः प्रायश्चित्तों की संख्या भाष्य एवं चूर्णि में इस प्रकार मिलती है[१]--

१. उद्घातिक मासिक--प्रथम उद्देशक--२५२

२. अनुद्घातिक मासिक--तृतीय यावत् पंचम उद्देशक ३३२

कुल मासिक प्रायश्चित्त--५८४

३. अनुद्घातिक चातुर्मासिक--षष्ठ यावत् एकादशम उद्देशक--६४४

४. उद्घातिक चातुर्मासिक--द्वादशम यावत् एकोनविंशतितम उद्देशक--७२४

कुल चातुर्मासिक प्रायश्चित्त--१३६८

कुल प्रायश्चित्त स्थान--१९५२

वर्तमान में इसके बीस उद्देशकों का आकार एवं अर्थाधिकार संक्षेप में इस प्रकार है--

उद्देशक	सूत्र संख्या	प्रायश्चित्त
१	५६	गुरुमास
२	५६	लघुमास
३	८०	लघुमास
४	११८	लघुमास
५	७८	लघुमास
६	७९	गुरुचतुर्मास
७	९२	गुरुचातुर्मास
८	१८	गुरुचतुर्मास
९	२९	गुरुचातुर्मास
१०	४१	गुरुचतुर्मास
११	९२	गुरुचतुर्मास
१२	४३	लघुचतुर्मास
१३	७५	लघुचतुर्मास
१४	४१	लघुचतुर्मास
१५	१५४	लघुचतुर्मास
१६	५१	लघुचतुर्मास
१७	१५२	लघुचतुर्मास
१८	७३	लघुचतुर्मास
१९	३६	लघुचतुर्मास
२०	५१	प्रायश्चित्त दान की प्रक्रिया
कुल सूत्र संख्या	१४१७	

इस प्रकार इसका सम्पूर्ण परिमाण २३७५ अनुष्टुप् श्लोक और २१ अक्षर अथवा कुल ग्रन्थाग्र ७६०२१ अक्षरपरिमाण है।

१. निभा. गा. ६४६९-६४७३ (सचूर्णि)

प्रस्तुत आगम के उद्देशकों का विभाजन मासिक उद्घातिक, मासिक अनुद्घातिक, चातुर्मासिक अनुद्घातिक एवं आरोपणा—इन पांच विकल्पों के आधार पर किया गया है। ठाणं में इन्हीं विकल्पों को आचारप्रकल्प कहा गया है।[1]

वस्तुतः प्रायश्चित्त के दो ही प्रकार हैं—मासिक और चातुर्मासिक। द्वैमासिक, त्रैमासिक, पाञ्चमासिक और षाण्मासिक—ये प्रायश्चित्त आरोपणा से बनते हैं। बीसवें उद्देशक का मुख्य विषय आरोपणा है। ठाणं में आरोपणा के पांच प्रकार प्रज्ञप्त हैं—१. प्रस्थापिता २. स्थापिता ३. कृत्स्ना ४. अकृत्स्ना और ५. हाडहडा।[2]

समवाओ में आरोपणा का विस्तार से वर्णन किया गया है। वहां आचारप्रकल्प (निशीथ) के अट्ठाईस प्रकार बतलाए गये हैं—

१. एक मास की
२. एक मास पांच दिन की
३. एक मास दस दिन की
४. एक मास पन्द्रह दिन की
५. एक मास बीस दिन की
६. एक मास पच्चीस दिन की
७. दो मास की
८. दो मास पांच दिन की
९. दो मास दस दिन की
१०. दो मास पन्द्रह दिन की
११. दो मास बीस दिन की
१२. दो मास पच्चीस दिन की
१३. तीन मास की
१४. तीन मास पांच दिन की
१५. तीन मास दस दिन की
१६. तीन मास पन्द्रह दिन की
१७. तीन मास बीस दिन की
१८. तीन मास पच्चीस दिन की
१९. चार मास की
२०. चार मास पांच दिन की
२१. चार मास दस दिन की
२२. चार मास पन्द्रह दिन की
२३. चार मास बीस दिन की
२४. चार मास पच्चीस दिन की
२५. उद्घातिकी आरोपणा
२६. अनुद्घातिकी आरोपणा
२७. कृत्स्ना आरोपणा
२८. अकृत्स्ना आरोपणा।[3]

निसीहज्झयणं की संक्षिप्त विषय वस्तु इस प्रकार है—

पहले उद्देशक में हस्तकर्म करने, सचित्त पुष्प आदि को सूंघने, गृहस्थ आदि से संक्रम, अवलम्बन, चिलिमिलि आदि बनवाने, सूई, कैंची आदि के परिष्कार करवाने, सूई, कैंची आदि को प्रातिहारिक रूप में ग्रहण करने के विषय में विविध विधियों के अतिक्रमण, पात्र एवं वस्त्र विषयक अतिक्रमणों, पूतिकर्म-भोग एवं गृहधूम उतरवाने आदि का गुरुमासिक प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है। दूसरे उद्देशक में दारुदण्डयुक्त पादप्रोञ्छन के निर्माण, ग्रहण, धारण, परिभोग एवं परिभाजन, अचित्त गंध को सूंघने, स्वयं पदमार्ग, संक्रम आदि का निर्माण, सूई, कैंची आदि के परिष्कार करने, सूक्ष्म असत्य एवं परुष भाषण, अदत्तग्रहण, अखण्ड चर्म एवं वस्त्र के धारण करने, नैत्यिक पिण्ड भोगने, नैत्यिक वास करने, अन्यतीर्थिक आदि के साथ भिक्षाचर्या, विहारभूमि, विचारभूमि एवं ग्रामानुग्राम परिव्रजन, मनोज्ञ आहार-पानी का उपभोग कर अमनोज्ञ का परिष्ठापन करने, शय्यातरपिंड एवं प्रातिहारिक शय्यासंस्तारक सम्बन्धी विविध विधियों के अतिक्रमण एवं प्रतिलेखन न करने आदि पदों का लघुमासिक प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है। तीसरे उद्देशक में धर्मशाला, आरामागार आदि में जाकर अशन आदि का अवभाषण करने, पैर, शरीर आदि के आमार्जन-प्रमार्जन आदि तथा केश, रोम, नख आदि के कर्त्तन-संस्थापन, सिर ढंकने, वशीकरणसूत्र के निर्माण तथा *गृह, गृहांगण, विविध फलों के सुखाने* के स्थान एवं अन्य सार्वजनिक स्थानों में परिष्ठापन करने का लघुमासिक प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है। चौथे उद्देशक में राजा, राजारक्षित आदि सम्मान्य लोगों को अपना बनाने, उनकी प्रशंसा करने एवं प्रार्थी बनने-बनाने का, कृत्स्न धान्य एवं

१. ठाणं ५/१४८
२. वही, ५/१४९
३. सम. २८/१

अननुज्ञात विगय खाने, स्थापनाकुलों में बिना पूछे जाने, अट्टहास एवं कलह करने आदि के साथ परस्पर पाद-परिमार्जन आदि कार्य करने एवं परिष्ठापनिका समिति विषयक अनेक अतिक्रमणों का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है। पांचवें उद्देशक में सचित्त वृक्ष के पास बैठने, खड़े होने, स्वाध्याय आदि अन्य क्रियाएं करने, अन्यतीर्थिक आदि से अपनी संघाटी सिलवाने, सचित्त, रंगीन एवं रंग-बिरंगे दारुदण्ड आदि के ग्रहण धारण एवं परिभोग, पादप्रोञ्छन, दण्ड, लाठी आदि को यथानुज्ञात समय पर न लौटाने, नवनिवेशित ग्राम आदि में भिक्षार्थ जाने, विविध वाद्यों आदि के शब्द करने, औद्देशिक, प्राभृतिकायुक्त एवं परिकर्मयुक्त उपाश्रय में रहने, असांभोजिक के साथ व्यवहार विधियों के अतिक्रमण, दृढ़ एवं धारणीय वस्त्र, पात्र आदि के परिष्ठापन एवं रजोहरण विषयक निर्देशों के अतिक्रमण का लघुमासिक प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है।

छठे एवं सातवें उद्देशक में अब्रह्म के संकल्प से की जाने वाली क्रियाओं के लिए गुरु चातुर्मासिक प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है। अब्रह्म हेतु स्त्री को प्रार्थना करने, हस्तकर्म करने, एतद् विषयक प्रच्छन्न या प्रकट लेख लिखने, लिखवाने, विविध प्रकार की माला, आभूषण, वस्त्र आदि के निर्माण, धारण एवं परिभोग तथा स्त्री, पशु, पक्षी आदि के साथ इस भावना से विविध क्रियाकलाप करने से ब्रह्मचर्य महाव्रत विराधित होता है। अतः इनका अनुद्घातिक चातुर्मासिक प्रायश्चित्त प्राप्त होता है। आठवें उद्देशक में प्रारम्भ में अकेली स्त्री के साथ विविध सार्वजनिक स्थानों में आहार-विहार, वार्तालाप आदि करने, निर्ग्रन्थी के साथ आर्त्तध्यानयुक्त होकर परिव्रजन आदि करने एवं गृहस्थ के साथ रात्रिसंवास आदि का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है तथा पश्चाद्वर्ती भाग में मूर्धाभिषिक्त राजा की अंशिका वाले अथवा उससे सम्बन्धित अशन, पान आदि को ग्रहण करने का गुरुचातुर्मासिक प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है। नौवें उद्देशक में भी राजा, राजपिण्ड एवं एतद्विषयक अतिक्रमणों के लिए गुरु-चातुर्मासिक प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है। दसवें उद्देशक में मुख्यतः आचार्यादि के प्रति परुष बोलने, आशातना करने, अनन्तकाय युक्त अथवा आधाकर्म आहार का भोग करने, शैक्षापहार एवं दिशापहार करने, प्रायश्चित्त के विपरीत प्ररूपण एवं दान, रात्रिभोजन विषयक अतिक्रमण, सेवाविषयक एवं पर्युषणा विषयक विविध विधियों के अतिक्रमण का गुरुचातुर्मासिक प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है।

ग्यारहवें उद्देशक में विविध धातुघटित एवं बहुमूल्य पात्रों के निर्माण, धारण एवं परिभोग, धर्म एवं अधर्म के अवर्ण एवं वर्णवाद अन्यतीर्थिक एवं गृहस्थ के पादपरिमार्जन, कायपरिमार्जन आदि करने, स्वयं तथा अन्य को भयभीत, विस्मापित एवं विपर्यस्त करने वैराज्य आदि में गमनागमन करने, परिवासित अशन, पान आदि के परिभोग, संखड़ी गमन, नैवेद्यपिण्ड के भोग, यथाच्छन्द की वन्दना-प्रशंसा करने, अयोग्य को दीक्षित करने, सचेल-अचेल के संवास एवं बालमरण की प्रशंसा आदि का गुरुचातुर्मासिक प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है।

बारहवें उद्देशक में करुणा भाव से त्रस प्राणियों को बांधने-खोलने, प्रत्याख्यान भंग करने, परित्तकाय संयुक्त आहार करने, सलोम चर्म पर बैठने, गृहस्थ के वस्त्र से आच्छन्न पीढ़े आदि पर बैठने, स्थावर काय के समारम्भ एवं सचित्त वृक्ष पर आरोहण करने, गृहस्थ के वस्त्र, पात्र एवं निषद्या का उपभोग करने, उसकी चिकित्सा करने, पुरःकर्मकृत हाथ आदि से भिक्षा ग्रहण तथा विविध दर्शनीय स्थलों को देखने की प्रतिज्ञा से जाने, कालातिक्रान्त एवं मार्गातिक्रान्त भोजन करने, परिवासित गोबर, आलेपन आदि का उपभोग करने एवं महानदियों में बारम्बार उत्तरण-संतरण का लघु चातुर्मासिक प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है। तेरहवें उद्देशक में अव्यवहित, सरजस्क, सस्निग्ध आदि पृथ्वी पर शय्या, निषद्या आदि करने, चलाचल स्थानों पर शय्या, निषद्या आदि करने, गृहस्थ एवं अन्यतीर्थिक के लिए कौतुककर्म, भूतिकर्म, प्रश्नाप्रश्न, व्यंजन, स्वप्न, मंत्र, विद्या आदि का प्रयोग करने, दर्पण, घी, तैल आदि में स्वयं का प्रतिबिम्ब देखने, वमन-विरेचन आदि करने, पार्श्वस्थ आदि शिथिलाचारियों को वन्दना-नमस्कार करने, धात्रीपिण्ड, दूतीपिण्ड आदि का भोग करने का लघुचातुर्मासिक दण्ड प्रज्ञप्त है। चौदहवें उद्देशक में पात्र-विषयक विविध अतिक्रमणों का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है। पन्द्रहवें उद्देशक में सचित्त एवं सचित्त प्रतिष्ठित आम्र एवं आम्रखण्ड को खाने, भिक्षु के प्रति आगाढ़ परुष आदि बोलने, अन्यतीर्थिक एवं गृहस्थ से स्वयं के पादप्रमार्जन, कायप्रमार्जन आदि करवाने, धर्मशाला, आरामागार आदि अस्थानों में परिष्ठापन करने, गृहस्थ आदि को आहार-वस्त्र आदि देने, पार्श्वस्थ आदि शिथिलाचारी साधुओं के साथ वस्त्र, पात्र, आहार आदि के आदान-प्रदान करने तथा विभूषा-भाव से स्वयं के पादप्रमार्जन, कायप्रमार्जन आदि करने एवं विभूषा के लिए वस्त्र, पात्र आदि को रखने, धोने आदि का लघुचातुर्मासिक प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है।

सोलहवें उद्देशक में सदोष शय्या, सचित्त एवं सचित्त प्रतिष्ठित इक्षु एवं इक्षुखण्ड खाने, वन में ईंधन आदि लाने के लिए प्रस्थित एवं प्रतिनिवृत्त आरण्यक लोगों से अशन आदि ग्रहण करने, संविग्न को असंविग्न और असंविग्न को संविग्न कहने, निह्नवों के साथ अशन,

वस्त्र आदि के आदान-प्रदान, जुगुप्सित कुलों में आहार, वस्त्र, स्थान आदि ग्रहण करने, पृथिवी, संस्तारक आदि पर अशन आदि रखने, गृहस्थ आदि के साथ उनसे आवेष्टित-परिवेष्टित होकर आहार करने, आचार्य-उपाध्याय की आशातना करने, अतिरिक्त उपधि रखने, सचित्त पृथिवी आदि संयम-विराधना वाले तथा चलाचल स्थानों पर उच्चार-प्रस्रवण के परिष्ठापन आदि का लघु चातुर्मासिक प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है। सत्रहवें उद्देशक में कुतूहल के कारण त्रस-प्राणियों को बांधने-खोलने, विविध प्रकार की मालाओं, आभूषणों, वस्त्रों को धारण करने आदि का, अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थ एवं निर्ग्रन्थी के द्वारा परस्पर पादप्रमार्जन, कायप्रमार्जन आदि करवाने, मालापहृत एवं उद्भिन्न भिक्षा ग्रहण करने, पृथिवी आदि पर प्रतिष्ठित एवं अत्युष्ण आहार आदि ग्रहण करने, आत्मश्लाघा आदि करने, तत, वितत आदि शब्दों को सुनने के संकल्प से जाने का लघुचातुर्मासिक प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है। अठारहवें उद्देशक में नौकाविहार एवं वस्त्र सम्बन्धी अनेक निषिद्ध पदों के अतिक्रमण का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है। उन्नीसवें उद्देशक में बहुमूल्य कस्तूरी आदि औषध द्रव्यों को क्रीत, उधार आदि रूपों में ग्रहण करने, मात्रातिक्रान्त ग्रहण करने आदि, स्वाध्याय सम्बन्धी विविध विधिनिषेधों के अतिक्रमण करने एवं व्युत्क्रम से वाचना देने, योग्य को वाचना न देने, अयोग्य को वाचना देने, पार्श्वस्थ आदि शिथिलाचारी साधुओं से वाचना ग्रहण करने एवं उन्हें वाचना देने आदि पदों का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है। बीसवें उद्देशक में दान प्रायश्चित्त एवं उसके विविध विकल्पों का सविस्तार वर्णन है।

प्रायश्चित्त के दस प्रकारों में प्रथम आठ प्रायश्चित्त तीर्थ पर्यन्त रहेंगे। उनमें अन्तिम दो—तप और छेद प्रायश्चित्त की दान-विधि का संक्षिप्त स्वरूप इस प्रकार उपलब्ध होता है—

निशीथ टब्बा, जयाचार्य कृत झीणी चर्चा, तात्विक ढाल ७ के आधार पर प्रायश्चित्त विधि का यंत्र—

प्रायश्चित्त	**प्रत्याख्यान**	**तप**	**छेद**
भिन्नमास	निर्विकृतिक २५	उपवास २५	दिन २५
लघुमास	पूर्वार्द्ध २७	उपवास २७	दिन २७
गुरुमास	एकासन ३०	उपवास ३०	दिन ३०
लघु चौमासी	आयंबिल ४	उपवास १०५	दिन १०५
गुरु चौमासी	उपवास ४	उपवास १२०	दिन १२०
लघु छहमासी	बेला ६	उपवास १६५	दिन १६५
गुरु छहमासी	तेला ६	उपवास १८०	दिन १८०

महानिशीथ के दूसरे अध्ययन, झीणी चरचा, तात्त्विक ढाल ८ के आधार पर उपवास आदि के अन्य मानदंडों की तालिका—

१.	१२०० गाथाओं का स्वाध्याय	१ उपवास
	१६०० नवकार का जप	१ उपवास
	२००० गाथाओं का वाचन	१ उपवास
२.	४५ नवकारसी	१ उपवास
	२४ प्रहर	१ उपवास
	१२ पुरिमार्द्ध (दो प्रहर)	१ उपवास
	१० अपार्ध (तीन प्रहर)	१ उपवास
	६ नीवी	१ उपवास
	४ एकासन	१ उपवास
	२ आयम्बिल	१ उपवास
३.	आगम की ८ गाथाओं का ध्यान में अर्थ सहित चिन्तन	१ उपवास
४.	आगम की १३ गाथाओं का सार्थ चिन्तन	२ उपवास
	आगम की २० गाथाओं का सार्थ चिन्तन	१ बेला
	आगम की ४० गाथाओं का सार्थ चिन्तन	१ तेला

आगम की ६० गाथाओं का सार्थ चिन्तन	१ चोला
आगम की ८० गाथाओं का सार्थ चिन्तन	१ पंचोला
आगम की १०० गाथाओं का सार्थ चिन्तन	१ छह का थोकड़ा
आगे २०-२० गाथाओं के क्रम से १-१ थोकड़े की वृद्धि	

५. पोष या माघ महीने में पछेवड़ी को ओढ़े बिना आगम की १३ गाथाओं का ध्यान करे तो १ उपवास, २५ गाथाओं का २ उपवास, ५० गाथाओं का ४ उपवास और १०० गाथाओं का ध्यान करे तो १० उपवास उतरते हैं।

६. पोष या माघ महीने में रात्रि में ८ हाथ का वस्त्र पहने ओढ़े तो प्रायश्चित्त रूप में प्राप्त १ तेला, २३ हाथ ओढ़े पहने तो १ बेला, ३८ हाथ ओढ़े पहने तो १ उपवास उतरता है।

७. वैशाख और ज्येष्ठ में १ प्रहर आतापना ले तो १ तेला उतरता है।[1]

रचना शैली

प्रस्तुत आगम छेदसूत्रों में आदिभूत है।[2] इसकी रचना शैली शेष छेदसूत्रों से भिन्न है। इसके उन्नीस उद्देशकों का प्रत्येक सूत्र 'सातिज्जति' क्रियापद से समाप्त होता है। इन सबकी पूर्णता प्रायश्चित्त के विधान के साथ होती है। बीसवें उद्देशक की रचना उन्नीस उद्देशकों से भिन्न प्रकार की है। उसमें तीन प्रकार के सूत्र हैं—आपत्तिसूत्र, आलोचनासूत्र एवं आरोपणा सूत्र। इन तीनों के पुनः दस-दस प्रकार हो जाते हैं। इनमें से प्रस्तुत उद्देशक में आपत्ति सूत्रों में कुछ सूत्रों का सूत्रतः कथन है और कुछ सूत्रों का अर्थतः। आलोचना एवं आरोपणासूत्रों में सकृत् सातिरेक संयोग सूत्र एवं आरोपणासूत्रों में सकृत् सातिरेक संयोग सूत्र तथा बहुशः सातिरेक संयोग सूत्र के एक-एक चतुष्क संयोगी भंग वाले सूत्र का सूत्रतः कथन है। शेष समस्त सांयोगिक भंगों वाले सूत्र अर्थतः गम्य हैं। निशीथ चूर्णिकार के अनुसार इन सांयोगिक सूत्रों की संख्या करोड़ों तक पहुंच जाती है।[3] इस प्रकार प्रस्तुत आगम बहुत संक्षिप्त शैली में रचित है। यद्यपि इसकी भाषा प्रायः सरल है पर विषय का प्रतिपादन सूचक एवं सांकेतिक शब्दों में किया गया है। अतः भाष्य एवं चूर्णि के अवलम्बन के बिना उनका हृदय-स्पर्श अत्यन्त दुष्कर है। इस दृष्टि से इसका शब्दशरीर जितना लघुतम है, अर्थशरीर उतना ही विराट है। भाष्य एवं चूर्णिगत विविध निक्षेपों पर आश्रित व्याख्या को पढ़ने से ऐसा प्रतीत होता है मानो सूत्र के एक-एक शब्द-बिन्दु में अर्थ-सिन्धु समाया हुआ है।

महत्त्व

छेदसूत्रों को जैन संघ की न्याय संहिता कहा जाता है। चतुर्विध अनुयोगों—चरणानुयोग, धर्मानुयोग, गणितानुयोग एवं द्रव्यानुयोग में मुनि के लिए सर्वप्रथम चरणानुयोग की वाचना अनिवार्य है। जो मुनि चरणानुयोग से पूर्व शेष तीनों में से किसी अनुयोग का वाचन करता है अथवा इन अनुयोगों का व्युत्क्रम से अध्ययन-अध्यापन करता है, वह उद्घातिक चातुर्मासिक प्रायश्चित्त का भागी होता है।[4] आवश्यक निर्युक्ति एवं निशीथ भाष्य के अनुसार सभी छेदसूत्रों का समावेश चरणानुयोग में होता है।[5] अतः आगम वाङ्मय में इनका प्रथम स्थान है।

भगवान महावीर संघ व्यवस्था के प्रति बहुत जागरूक थे। उन्होंने प्रारम्भ से ही श्रमणसंघ की आचारसंहिता और प्रायश्चित्त-संहिता पर बहुत गहरा ध्यान दिया था। सामान्यतः धार्मिक संघों में प्रचलित निषेध एवं प्रायश्चित्त-विधियां तात्कालिक घटनाओं पर आधारित होती हैं। छेदसूत्रों के कुछ निषेध और प्रायश्चित्त-विधियां घटनाओं पर आधृत हो सकती हैं पर मौलिक विधिनिषेध अहिंसा, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह की सूक्ष्म विचारणा से समुत्पन्न हैं। कुछ निषेध अन्यान्य भिक्षुसंघों में प्रचलित विधियों के परिणामों से सम्बन्धित भी हैं। इस प्रकार अनेक हेतुओं से समुत्पन्न निषेधों एवं प्रायश्चित्त विधियों का संकलन होने से आगम वाङ्मय में छेदसूत्रों का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

---

१. भिआको. २, पृ. ४०५,४०६
२. निभा. गा. ५९४७ छेदसुत्त णिसीहादी।
३. वही, भा. ४ चू. पृ. ३६४-३६७
४. (क) निसीह. १९/१६
(ख) निभा. ४ चू. पृ. २५३
५. (क) आवनि. गा. ४८०
(ख) निभा. गा. ६१९०

छेदसूत्रों में निसीहज्झयणं का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस विषय में कुछ हेतु ये हैं—

१. प्रस्तुत आगम आयारो की पांचवीं चूला (परिशिष्ट) है। चूर्णिकार के अनुसार शेष छेदसूत्र अंगबाह्य हैं जबकि निसीहज्झयणं अंग के अंतर्गत[१]।

२. ववहारो में प्रस्तुत आगम को मानदण्ड के रूप में प्रस्तुत किया गया है। तीन वर्ष की पर्याय वाला बहुश्रुत, बहुआगमज्ञ भिक्षु जो आचारकुशल, संयमकुशल, प्रवचनकुशल, प्रज्ञप्तिकुशल, संग्रहकुशल, उपग्रहकुशल, अक्षताचार, अशबलाचार, अभिन्नाचार एवं असंक्लिष्टाचार हो और कम से कम आचारप्रकल्प का धारक हो तो उसे उपाध्याय पद दिया जा सकता है।[२]

३. जिस भिक्षु ने आचारप्रकल्प का देशतः (सूत्र रूप से) अध्ययन किया हो और शेष (अर्थ रूप से) अध्ययन करने का संकल्प हो और उसका अध्ययन करले, उसे आचार्य अथवा उपाध्याय का आकस्मिक देहावसान होने पर आचार्य-उपाध्याय पद दिया जा सकता है। यदि संकल्पित होने पर भी वह आचारप्रकल्प के अवशेष भाग का अध्ययन नहीं करता तो उसे आचार्य-उपाध्याय पद नहीं दिया जा सकता।[३]

४. निसीहज्झयणं का अधिकारी वही व्यक्ति माना गया है, जो अवस्था एवं अवस्थाजनित परिपक्वता से युक्त हो। जो भिक्षु अव्यंजनजात हो, उपस्थ रोमराजि से रहित हो, उसे आचारप्रकल्प नहीं पढ़ाया जा सकता। जो व्यंजनजात हो, उसी को वह पढ़ाया जा सकता है।[४] परिपक्व बुद्धिवाला भी दीक्षित होते ही आचारप्रकल्प पढ़ने का अधिकारी नहीं होता। तीन वर्ष की दीक्षा पर्याय के बाद ही इसे पढ़ा जा सकता है।[५] यह समस्त विधान प्रस्तुत आगम के गांभीर्य की ओर महत्त्वपूर्ण संकेत है।

५. निसीहज्झयणं का ज्ञान पदस्थ मुनि के लिए अत्यन्त अपेक्षित माना गया है। इस ज्ञान को प्राप्त कर लेने के बाद साधु-साध्वी भुला नहीं सकती थीं। यदि कोई तरुण साधु अथवा साध्वी इसे भुला देती तो उसे उसका कारण पूछा जाता। यदि आबाधा के कारण इसकी विस्मृति होती है तो पुनः स्मरण करने पर उन्हें आचार्य-उपाध्यायादि पद दिए जा सकते हैं। यदि आचारप्रकल्प की विस्मृति प्रमाद के कारण हुई हो तो उस साधु अथवा साध्वी को यावज्जीवन कोई भी पद नहीं किया जा सकता।[६] इसी प्रकार स्वतन्त्र विहार के लिए भी प्रकल्पधर होना अनिवार्य माना गया है।

६. आचारप्रकल्प की विस्मृति नहीं होनी चाहिए। इसलिए स्थविर साधु-साध्वियों को आचारप्रकल्प की अव्यवच्छित्ति के लिए बैठे, सोते किसी भी अवस्था में उसकी परिवर्तना एवं प्रतिपृच्छा की अनुज्ञा दी गई है।[७]

७. प्रत्यक्षज्ञानी के अभाव में यथार्थ प्रायश्चित्त कैसे दिया जा सकता है—यह प्रश्न प्राचीन काल में बहुत चर्चा गया था। निशीथभाष्य एवं उसकी चूर्णि में उसकी चर्चा उपलब्ध होती है। प्रश्न का आधार यह था कि केवलज्ञानी, मनःपर्यवज्ञानी, अवधिज्ञानी, चतुर्दशपूर्वी, दशपूर्वी, नवपूर्वी—ये विच्छिन्न हो गए हैं। इनके साथ-साथ प्रायश्चित्त भी विच्छिन्न हो गया है।[८] इसके समाधान में कहा गया—तीर्थंकर, पूर्वधर आदि आगमपुरुष नहीं हैं किन्तु आज भी प्रत्यक्ष ज्ञानी द्वारा पूर्वश्रुत में निबद्ध प्रायश्चित्त-विधि आचारप्रकल्प में उद्धृत है इसलिए आचारप्रकल्पधर प्रायश्चित्त देने का अधिकारी है।[९] यदि निसीहज्झयणं का सूत्र और अर्थ उभय का धारक न हो तो केवल अर्थधर भी प्रायश्चित्त देने का अधिकारी है।[१०] इस प्रकार आलोचना एवं प्रायश्चित्त की दृष्टि से प्रस्तुत आगम का विशेष महत्त्व है।[११]

८. छेद-सूत्रों को उत्तम श्रुत कहा गया है क्योंकि उसमें प्रायश्चित्त सहित विधि का प्रज्ञापन हुआ है। प्रायश्चित्त से चारित्र विशुद्धि

---

१. निभा. ४ चू. पृ. २५४—कालियसुयं आयारादि एक्कारस अंगा, तत्थ पकप्पो आयारगतो। जे पुण अंगबाहिरा छेयसुयज्झयणा ते....

२. वव. ३/३

३. वही, ३/१०

४. वही, १०/२३,२४

५. वही, १०/२५

६. *वही,* ५/१५,१६

७. वही, ५/१८

८. निभा. ४ चू. पृ. ४०३—तित्थकरादिणो चोद्दसपुव्वादिया य जुत्तं सोहिकरा, जम्हा ते जाणंति जेण विसुज्झइ त्ति, तेसु वोच्छिण्णेसु सोही वि वोच्छिण्णा ?

९. वही, गा. ६६७४

१०. वही, गा. ६६७६

११. वही, भा. ४ चू.पृ. ४०३—इमं पकप्पज्झयणं चोद्दसपुव्वीहिं णिबद्धं, तं जो गणपरियट्टी सुतत्थे धरेति सो वि सोधिकरो भवति। अहवा—चोद्दसपुव्वेहिंतो णिज्जूहिओ एस पकप्पो णिबद्धो, तद्धारी सोऽधिकारीत्यर्थः।

को प्राप्त होता है।[1] उत्तमता की इस कसौटी की दृष्टि से निसीहज्झयणं सर्वोत्तम सिद्ध होता है क्योंकि इसमें एकमात्र प्रायश्चित्त का ही अधिकार है इसीलिए इसे जैन प्रायश्चित्त संहिता भी कहा जाता है।

९. प्रस्तुत आगम रहस्यबहुल है। उसे योग्य पात्र को उचित देश-काल में ही पढ़ाया जा सकता है। जो रहस्य को यावज्जीवन धारण न कर सके, अपवादपद का आश्रय लेकर अनाचार में प्रवृत्त हो जाए, ज्ञान, दर्शन आदि के विषय में सूत्रोक्त आचारविधि का सम्यक् पालन न करता हो, उसे इस आगम का ज्ञान तो क्या, श्रवण भी उपलब्ध नहीं हो सकता है। इन्हीं सब विशेषताओं के कारण छेदसूत्रों एवं विशेषतः निसीहज्झयणं को प्रवचन रहस्य कहा गया है।[2] अयोग्य को निशीथ की पीठिका का सूत्रार्थ प्रदान करने वाले को भी प्रवचन-घातक माना गया है।[3]

व्याख्या ग्रन्थ

१. निशीथ निर्युक्ति—आगमों की मूलस्पर्शी पद्यात्मक व्याख्या निर्युक्ति कहलाती है। वह व्याख्या साहित्य में सर्वाधिक प्राचीन एवं प्राकृतभाषा में निबद्ध पद्यमय रचना होती है। प्राचीनकाल में सूत्र की वाचना का क्रम अनुयोग पद्धति से होता था। सर्वप्रथम प्रत्येक सूत्र की संक्षिप्त गाथाबद्ध व्याख्या की जाती, जिसे शिष्य गण कंठस्थ कर लेते थे। इसी क्रम से प्राप्त निर्युक्ति गाथाओं को उत्तरवर्ती आचार्यों—भद्रबाहु, गोविन्दवाचक आदि ने संकलित एवं व्यवस्थित किया एवं व्याख्या क्रम में जहां सूत्रगत पदों या पदसमूहों की अन्य व्याख्या की अपेक्षा हुई, स्वयं गाथाओं का निर्माण कर उन्हें भी उसमें जोड़ दिया। इसलिए यह कहना कठिन है कि किसी निर्युक्ति में पूर्ववर्ती परम्परा से प्राप्त गाथाएं कितनी हैं एवं स्वयं उस आगम के निर्युक्तिकर्त्ता की कितनी है?

आयारो के निर्युक्तिकार आचार्य भद्रबाहु द्वितीय माने जाते हैं। उन्होंने आयारो एवं आयारचूला के पश्चात् आयारो की पांचवीं चूला की निर्युक्ति करने का संकल्प किया था।[4]

निशीथ की निर्युक्ति में उसकी सूत्रस्पर्शिक व्याख्या है। उसमें प्रायः सूत्र का संबंध एवं प्रयोजन बताया गया है। सूत्रगत शब्दों की व्याख्या में निक्षेपपद्धति का आश्रय लिया गया है। कालान्तर में भाष्यकार ने निर्युक्ति की गाथाओं को भाष्य का ही अंग बना लिया। फलतः भाष्य एवं निर्युक्ति परस्पर इतने एकमेक हो गए कि दोनों का पृथक्करण एक दुष्कर कार्य हो गया।

निशीथभाष्य में निर्युक्ति सम्मिलित हो गई, इसके कुछ प्रमाण इस प्रकार हैं—

१. अनेक गाथाओं के विषय में चूर्णिकार ने निर्युक्तिगाथा होने का उल्लेख किया है, जैसे—गा. ५९२, ६०१, ६१४, ६१९, ६३०, ६३९, ६८५ आदि।

२. अनेक गाथाओं एवं अन्य स्थलों में चूर्णिकार ने स्पष्टतः निर्युक्तिकार के रूप में भद्रबाहु का अथवा 'भद्रबाहुकृत गाथा' इस रूप में उल्लेख किया है, जैसे—

● इदानीं उद्देसकस्य.......भद्रबाहुस्वामी निर्युक्तिगाथा माह।[5] इस संदर्भ में ७७, २०७,२०८, २९२, ३२५, ४४३, ५४३, ५४५ आदि गाथाएं द्रष्टव्य हैं।

● अनेक गाथाएं निशीथ भाष्य एवं बृहत्कल्पभाष्य में समान हैं और उन्हें बृहत्कल्पभाष्य के टीकाकार ने निर्युक्ति गाथा कहा है, जैसे—

निभा. गा.	**बृभा. गा.**	**निभा गा.**	**बृभा. गा.**
१८८३	५५९६	२५०९	६३९३
१९६९	२८७९	३०५५	१९५४
३३५१	५२५४	३०७४	१९७३ आदि।

१. निभा. गा. पृ. २५३—जम्हा एत्थ सपायच्छित्तो विधि भण्णति, जम्हा य तेण चरणविसुद्धी करेति, तम्हा तं उत्तमसुयं।

२. वही, गा. ६२२७ सचूर्णि

३. वही, गा. ४९६

४. आनि. गा. ३६६
आयारस्स भगवओ, चउत्थ चूलाइ एस निज्जुत्ती।
पंचमचूल निसीहं तस्स य उवरिं भणीहामि।।

५. निभा. भा. २ चू. पृ. ३०७

कुछ गाथाओं के विषय में निशीथचूर्णि में 'एसा चिरंतणगाहा', बृहत्कल्पभाष्य की टीका में 'पुरातन' या 'चिरंतन गाथा' ऐसा उल्लेख मिलता है, इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि ये गाथाएं आचार्य भद्रबाहु से पूर्व किसी आचार्य द्वारा रचित होनी चाहिए। उनका आवश्यकतानुसार ग्रहण अथवा संकलन कर आचार्य भद्रबाहु द्वितीय ने उनकी व्याख्या की। इसका रचनाकाल विक्रम की छठी शताब्दी है--ऐसा आदरणीय मुनि पुण्यविजयजी ने प्रमाणतः सिद्ध किया है।[१]

२. निशीथभाष्य

निसीहज्झयणं तथा उसकी निर्युक्ति की पद्यमयी व्याख्या है--निशीथभाष्य। वर्तमान में उपलब्ध निशीथभाष्य निशीथनिर्युक्ति एवं भाष्य का संवलित रूप है। मुनिद्वय द्वारा सम्पादित इसकी प्रति में उसका पद्य परिमाण ६७०३ है।[२]

निशीथनिर्युक्ति के समान निशीथभाष्य में भी उसके रचनाकार एवं रचनाकाल विषयक कोई निर्णायक तथ्य उपलब्ध नहीं होता। समग्रता से निशीथभाष्य एवं उसकी चूर्णि का अध्ययन करने पर विद्वज्जन इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि भाष्यकार ने परम्परा से प्राप्त प्राचीन एवं समकालीन गाथाओं का यथास्थान यथावसर उपयोग करते हुए अपनी ओर से कुछ नवीन निर्मित गाथाओं की संकलना की है। प्रकाशित निशीथ भाष्य में कुल ६७०३ गाथाएं प्राप्त होती हैं। इनमें से अनेक गाथाएं व्यवहारभाष्य, बृहत्कल्पभाष्य, जीतकल्पभाष्य, विशेषावश्यकभाष्य, पिण्डनिर्युक्ति, उत्तराध्ययननिर्युक्ति, आवश्यकनिर्युक्ति एवं ओघनिर्युक्ति में भी प्राप्त होती हैं। यदि उन्हें इस भाष्य से अलग कर दिया जाए तो अवशिष्ट गाथाएं उपलब्ध गाथाओं के दशमांश के लगभग होंगी। ज्ञातव्य है कि पंडित दलसुख मालवणिया ने निशीथभाष्य एवं बृहत्कल्पभाष्य आदि कुछ ग्रन्थों की स्थूल तुलना 'निशीथ : एक अध्ययन' में प्रस्तुत की है। उन्होंने लिखा है--'निशीथभाष्य और व्यवहारभाष्य की गाथाओं की अकारादि क्रम से बनी सूची मेरे समक्ष न थी, केवल बृहत्कल्पभाष्य की अकारादिक्रम सूची ही मेरे समक्ष रही है। फिर भी जिन गाथाओं की उक्त तीनों भाष्यों में एकता प्रतीत हुई, उनकी सूची नमूने के रूप में यहां दी जाती है। इस सूची को अंतिम न माना जाए। इसमें वृद्धि की गुंजाइश है।'

आदरणीय मुनिश्री पुण्यविजयजी के अनुसार कल्प (बृहत्कल्प), व्यवहार एवं निशीथ लघुभाष्य की गाथाओं का अतिसाम्य इन तीनों को एककर्तृक मानने की ओर प्रेरित करता है। बृहत्कल्पभाष्य के टीकाकार क्षेमकीर्ति के अनुसार इन तीनों के कर्त्ता संघदासगणि सिद्ध होते हैं।[३] पंडित मालवणियाजी ने मुनिश्री के इस मत के प्रस्तुतीकरण के पश्चात् भाष्यकार के विषय में काफी विस्तृत विचारणा की है। उन्होंने ग्यारह प्रमाणों के आधार पर यह निष्कर्ष प्रस्तुत किया--

'निशीथ भाष्य तो निर्विवाद रूप से सिद्धसेन क्षमाश्रमणकृत है।[४]

निसीहज्झयणं के अनेक शब्दों पर भाष्यकार ने विविध निक्षेपों से व्याख्या की है। अनेक स्थलों पर सुदीर्घ ऊहापोह एवं चालना-प्रत्यवस्थान प्राप्त होता है तथा इस चिन्तन-मनन के क्रम में हमें केवल साधु के कर्तव्य-अकर्त्तव्य एवं प्रायश्चित्त का ही ज्ञान नहीं होता, अपितु प्राचीन भारतीय समाज व्यवस्था का भी बहुमखी ज्ञान प्राप्त होता है। मूलसूत्र का मर्मोद्घाटन भाष्य एवं चूर्णि में इतने सुन्दर, सहज एवं मनोवैज्ञानिक तरीके से हुआ है कि कोई तटस्थ से तटस्थ शोधकर्ता भी भाष्यकार की बहुश्रुतता से अभिभूत हुए बिना नहीं रह सकता। राजनीति, अर्थनीति, समाजनीति, संघ-व्यवस्था, इतिहास, भूगोल, ज्योतिष, आयुर्वेद, चिकित्सा, कर्म, निमित्त, लक्षण, विद्या-मंत्र आदि कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं, जिसके विषय में स्वल्प या यथेष्ट विचार इस लघुभाष्य में उपलब्ध न होते हों। साधना के मार्ग के उत्सर्ग एवं अपवाद में कब, किसका, कितना एवं किस प्रकार का बलाबल है, साधना की भूमिका में अनेकान्त दृष्टि से विचार करते हुए साधक किस प्रकार आराधना के पथ को प्रशस्त कर सकता है तथा आदर्श एवं यथार्थ का समन्वय करता हुआ किस प्रकार साधना के शिखर का आरोहण कर सकता है इत्यादि विषयों पर भाष्य में एक व्यापक दृष्टि उपलब्ध होती है।

१. बृभा. ६ प्रस्ता. पृ. १-१७
२. बृहत्कल्पभाष्य ६, पृ. ५५ के अनुसार उसकी पद्य संख्या ६५२९ तथा हमारे द्वारा सम्पाद्यमान सानुवाद भाष्य के अनुसार उसकी पद्य संख्या ६८१९ है। पुनरावृत्त गाथाओं की कम या अधिक गणना से यह संख्याभेद हुआ है ऐसा माना जा सकता है। प्रस्तुत आगम में सर्वत्र मुनिद्वय द्वारा सम्पादित प्रति के आधार पर ही प्रमाण उद्धृत हैं।
३. निभा. १ प्रस्ता. पृ. ३९
४. वही, पृ. ४३

निशीथ विशेष चूर्णि

निसीहज्झयणं का तीसरा व्याख्या ग्रन्थ विशेष चूर्णि है। यह जैन साहित्य का ही नहीं, सम्पूर्ण भारतीय साहित्य का महान् ग्रन्थ है। यह जैन आचार का शेखर ग्रंथ है। चूर्णिकार ने मुख्य प्रतिपाद्य के साथ पारिपार्श्विक विषयों का जिस कौशल के साथ संकलन-संग्रहण किया है, अन्यत्र दुर्लभ है। इसमें जैन आचारशास्त्र की जटिलतम गुत्थियों के रहस्योद्घाटन के साथ-साथ साधक के मानसिक आरोह-अवरोध का सूक्ष्मतम विश्लेषण उपलब्ध होता है।

चूर्णि की रचना मध्यकाल में हुई। उस समय साध्वाचार अपक्रान्ति के मोड़ पर स्थित था। देश एवं काल की बदलती परिस्थिति तथा हीयमान धृति-संहनन के कारण बदलती मनःस्थिति के फलस्वरूप स्थान-स्थान पर इसमें अपवादों को भी प्रचुरमात्रा में प्रश्रय प्राप्त हुआ है फिर भी इसमें दृढ़ मनोबली संयमी की निर्दोष जीवनचर्या को ही अग्रिम स्थान पर प्रतिष्ठित किया गया है।[१] सूत्र एवं भाष्य के एक-एक शब्द पर सुविस्तृत ऊहापोह, विविध प्रकार की सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक स्थितियों के सहज, सरल शैली में प्रतिपादन, भारतीय सभ्यता एवं राजनैतिक, धार्मिक एवं सामाजिक तथ्यों के ज्ञानोपयोगी विवेचन की दृष्टि से विशेष चूर्णि को विश्वकोष कहा जा सकता है। श्रमणाचार के सूक्ष्म विश्लेषण एवं जीवन के उतार-चढ़ाव के चित्रण की दृष्टि से इस पर 'यदिहास्ति तदन्यत्र, यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्' सूक्त सार्थक प्रतीत होता है। राजा के अन्तःपुर के अधिकारी, विविध राजकर्मचारी, राजाओं द्वारा किए जाने वाले महोत्सव, विरुद्धराज्य, वैराज्य आदि के कारण होने वाले उपद्रव एवं कष्ट आदि अनेक तथ्यों से भारतीय राजनैतिक स्थिति का चित्रण मिलता है। इसी प्रकार प्राचीन भारतीय समाज, भिन्न भिन्न जनपदों में विद्यमान विविध प्रकार की आचार-परम्पराएं, जातिवाद, कर्म एवं शिल्प विषयक भिन्न-भिन्न अवधारणाएं, विविध प्रकार के गृह एवं शालाएं, व्यापार-वाणिज्य, कृषि एवं वनस्पति सम्बन्धी विविध ज्ञातव्य तथ्यों के द्वारा चूर्णि समाज, राजनीति एवं संस्कृति के विषय में शोध करने वालों के लिए महत्त्वपूर्ण सामग्री प्रदान करती है। निशीथ विशेष चूर्णि में दसवेआलियं, उत्तरज्झयणाणि, ओवाइयं, भगवई के अतिरिक्त विविध निर्युक्तियों, भाष्यों एवं टीकाओं के उद्धरण प्राप्त होते हैं। साथ ही उसमें नरवाहन दन्तकथा, धूर्त्ताख्यान, मलयवती, विवाहपटल, वसुदेव चरित, सिद्धि-विनिश्चय आदि शताधिक ग्रन्थों के नाम और उद्धरण भी प्राप्त होते हैं जो चूर्णिकार के बाहुश्रुत्य को प्रमाणित करने में पर्याप्त हैं।

निसीहज्झयणं के निर्युक्ति एवं भाष्य में रचनाकार के नाम, काल, स्थान आदि की निर्णायक सूचना उपलब्ध नहीं होती, पर चूर्णिकार ने अपने माता, पिता और भाइयों के नामों सहित स्वयं अपना नाम और पद का भी कथन गूढ़-पदों में कर दिया है। बीसवें उद्देशक के अन्त में प्राप्त होने वाली गाथाओं के आधार पर सुबोधा व्याख्याकार श्रीचन्द्रसूरि ने विशेष चूर्णिकार का नाम 'जिनदासगणिमहत्तर' फलित किया है।[२]

निशीथ विशेष चूर्णि एक विशालकाय ग्रन्थ है। इसमें भाष्य की प्रायः सभी गाथाओं का विवरण विस्तार से उपलब्ध होता है। इसमें चूर्णिकार ने अपने युग का प्रतिबिम्ब शब्दबद्ध कर दिया है। इसका ग्रन्थमान लगभग २८००० पदपरिमाण है।

सुबोधा व्याख्या

यह निसीहज्झयणं के बीसवें उद्देशक की चूर्णि में आए हुए दुर्गम पदों की व्याख्या है। इसके कर्त्ता श्रीचन्द्रसूरि हैं। यह गद्यमय है। इसकी भाषा संस्कृत है। इसके आदि में दो पद्यों के द्वारा सम्बन्ध एवं अभिधेय का कथन किया गया है। आचार्य कहते हैं—श्री निशीथ की चूर्णि में बीसवें उद्देशक में जो कई दुर्ग पद अथवा वाक्य है, उनकी कुछ सुबोध व्याख्या करूंगा। यह निशीथसूत्रम् (निशीथभाष्य एवं चूर्णि) के चतुर्थ भाग में तीस पृष्ठों में प्रकाशित है। इसके अन्त में रचनाकार ने दो पद्यों में अपने नाम एवं रचनाकाल का उल्लेख किया है।

स्तबक—यह प्रस्तुत आगम की बालावबोध जैसी संक्षित गद्यमय व्याख्या है। इसे राजस्थानी में टब्बा कहते हैं। इसकी भाषा

१. निभा. गा. ४६० सचूर्णि
२. वही, भा. ४ पृ. ४४३

गुजराती और राजस्थानी का मिश्रित रूप है। इसके कर्त्ता संभवतः धर्मसी मुनि हैं।[१]

टब्बाकार ने सर्वप्रथम द्वादशांग रूप श्रुतदेव, अर्हत् प्रवचन, गणधर आदि को नमस्कार करते हुए निशीथ को निशीथ कहने के हेतुओं पर विचार करते हुए लिखा है–'पाप ने नसीते ते भणी.....उन्मार्ग चालतां ने एणे करी ने दंड रूप नसीत कहिजे ते भणी.....सर्व साध साधवी नो आचार नो निरणो करै.....' आदि।

टब्बा में अनेक सूत्रांशों की उदाहरण आदि के साथ संक्षिप्त एवं सरल व्याख्या की गई है। इस दृष्टि से उन्होंने निशीथ चूर्णिकार द्वारा की गई सूत्रानुसारी चूर्णि का क्वचित् अनुकरण किया है। वि.सं. २००१ में हिसार में हमारे धर्मसंघ के मुनिश्री सम्पतमलजी, डूंगरगढ़ द्वारा लिखित प्रति में टब्बा की कुल पत्र संख्या ५१ है। अन्त में दो संग्रहणी गाथाओं में निशीथ के लेखक के रूप में गुणानुवाद पूर्वक विशाखगणि को याद करते हुए टब्बे को सम्पन्न किया गया है। टब्बे के अन्त में यन्त्र के माध्यम से प्रत्येक उद्देशक के आदिसूत्र के आधार पर नाम यथा 'हत्थकम्म' 'दारुण्डनामा', 'आगंतारनामा' आदि के साथ उनकी सूत्र-संख्या का उल्लेख किया गया है तथा प्रत्याख्यान प्रायश्चित्त, तपः प्रायश्चित्त एवं छेद प्रायश्चित्त के आधार पर भिन्नमास आदि का परिमाण बतलाया गया है।

निशीथ की जोड़–यह तेरापंथ धर्मसंघ के चतुर्थ आचार्य श्रीमज्जयाचार्य द्वारा कृत भावानुवाद है। इसकी भाषा राजस्थानी है। यह गीतिकामय है। इसकी कुल पद्य संख्या ४०३ है। इसका रचनाकाल है वि.सं. १८८८।

निशीथ की हुण्डी–यह निसीहज्झयणं का संक्षिप्त सारांश है। इसके रचनाकार भी श्रीमज्जयाचार्य हैं। यह राजस्थानी भाषा की गद्यमय रचना है।

आचार्य महाश्रमण

---

१. टब्बे की प्रतियों में विशाखगणि एवं लिपिकर्ता मुनियों/सतियों का नाम मिलता है किन्तु मूल टब्बाकार ने अपना नाम, समय, स्थान आदि किसी का कथन नहीं किया। जैन साहित्य का बृहद् इतिहास (भाग-३) के लेखक डॉ. मोहनलाल मेहता (तत्कालीन अध्यक्ष, पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान) ने वाडीलाल मो. शाह कृत 'ऐतिहासिक नोंध' के आधार पर लोंकागच्छीय (स्थानकवासी) मुनि धर्मसिंह को भगवती, जीवाजीवाभिगम, प्रज्ञापना, चन्द्रप्रज्ञप्ति एवं सूर्यप्रज्ञप्ति के अतिरिक्त शेष २७ (सत्ताईस) आगमों का टब्बाकार बताया है। इन्होंने सरल सुबोध गुजराती मिश्रित राजस्थानी भाषा में इन बालावबोधों की रचना नवीन सम्प्रदाय–दरियापुरी सम्प्रदाय के उद्भव से पूर्व विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी में की। अतः हमने मुनि धर्मसिंह की टब्बाकार के रूप में संभावना की है।

संकेतसूची

ग्रन्थ संकेत	प्रयुक्त ग्रन्थ नाम
अचि.	अभिधान चिन्तामणि
अणु.	अणुओगदाराइं
अनुचू.	अनुयोगद्वार चूर्णि
अमवृ.	अनुयोगद्वार मलधारीया वृत्ति
अनुहारिवृ.	अनुयोगद्वार हारिभद्रीया वृत्ति
आयारो	आयारो
आचू.	आयारचूला
आचूटी.	आचारांग वृत्ति
आप्टे	आप्टे
आवचू.	आवश्यक चूर्णि
आवनि.	आवश्यक निर्युक्ति
आवहारिवृ.	आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति
उत्तर.	उत्तरज्झयणाणि
उनि.	उत्तराध्ययननिर्युक्ति
एकाको.	एकार्थक कोश
ओनि.	ओघनिर्युक्ति
ओभा.	ओघनिर्युक्तिभाष्य
ओवा.	ओवाइयं
कप्पो.	बृहत्कल्प सूत्र
गोजी.	गोम्मटसार जीवकांड
गोजीवृ.	गोम्मटसार जीवकांड वृत्ति
छेद.	छेदपिंड
जीचू.	जीतकल्प चूर्णि
जीभा.	जीतकल्पभाष्य
जैन आगम	जैन आगम साहित्य में भारतीय इतिहास
जैसाबृइ. (प्रस्ता.)	जैन साहित्य का बृहद् इतिहास (प्रस्तावना) (भा. १,२,३)
जैसिको.	जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश
ठाणं	ठाणं
णाया.	णायाधम्मकहाओ
तवा.	तत्त्वार्थवार्तिक
दशाचू.	दशाश्रुतस्कन्ध चूर्णि
दशानि.	दशाश्रुतस्कन्ध निर्युक्ति
दसवे.	दसवेआलियं
दसवे. अचू.	दशवैकालिक अगस्त्यसिंहकृत चूर्णि
दसवे. जिचू.	दशवैकालिक जिनदासकृत चूर्णि
दसवे. हाटी.	दशवैकालिक हारिभद्रीया वृत्ति
दसाओ	दशाश्रुतस्कन्ध
देशको.	देशी शब्दकोश
नव.	नवसुत्ताणि
नंदी	नंदी
नंदी चू.	नंदी सुत्तं (चूर्णि संयुक्त)
निभा.	निशीथभाष्य (निशीथ सूत्रम्)
निशी. (सं. व्या.)	निशीथ सूत्रम् (संस्कृत व्याख्या)
निशी. हि.	निशीथ सूत्रम् (हिन्दी अनुवाद सहित)
निसीह.	निसीहज्झयणं
नि. हुण्डी	निशीथ हुण्डी
पंचचू.	पंचकल्पभाष्य चूर्णि
पंचभा.	पंचकल्पभाष्य
पण्ण.	पण्णवणा
पाइय.	पाइयसद्दमहण्णवो
पाणिनि.	पाणिनिकालीन भारतवर्ष
पिनि.	पिण्डनिर्युक्ति
पिनिवृ.	पिण्डनिर्युक्ति वृत्ति
पिंप्रटी.	पिण्डविशुद्धि प्रकरण टीका
प्रसा.	प्रवचनसारोद्धार
बृभा.	बृहत्कल्पभाष्य

भग. (भा.)	भगवई (विआहपण्णत्ती) (भाग १-४)	षट् खं.	षट्खण्डागम
भानि.	भावप्रकाशनिघंटु	सम.	समवाओ
भिआको.	भिक्षु आगम विषय कोश	सामा.	सामाचारीशतक
महा. (अनु. प.)	महाभारत (अनुशासन पर्व)	सूय.	सूयगडो
रत्न. (भू.)	रत्नप्रकाश (भूमिका)	सूय. वृ.	सूत्रकृतांग वृत्ति
वव.	ववहारो	स्था. वृ.	स्थानांग वृत्ति
विभा.	विशेषावश्यकभाष्य	ह.पु.	हरिवंशपुराण
व्यभा.	व्यवहारभाष्य		

विषयानुक्रम

	पृ. सं.
पहला उद्देशक	
आमुख	
हस्तकर्म-पद	५
घ्राण-पद	६
अन्यतीर्थिक-अगारस्थित-कारण-पद	६
अनर्थ-पद	७
अविधि-पद	८
प्रातिहारिक-पद	८
अन्योन्य-पद	९
अविधि-पद	९
अन्यतीर्थिक-अगारस्थित-पद	१०
पात्र-पद	११
वस्त्र-पद	११
अन्यतीर्थिक-अगारस्थित-पद	१२
पूतिकर्म-पद	१२
टिप्पण	१३-१८
दूसरा उद्देशक	
आमुख	
पादप्रोंछन-पद	२३
घ्राण-पद	२४
स्वयमेवकरण-पद	२४
लघुस्वक-पद	२५
कृत्स्न-पद	२५
स्वयमेव-पद	२५
प्रतिग्रह-पद	२६
नैत्यिक-पद	२६
संस्तव-पद	२७
भिक्षाचरिका-पद	२७
अन्यतीर्थिक-अगारस्थित-अपारिहारिक-पद	२७
भोजनजात-पद	२८
पानकजात-पद	२८
बहुर्यापत्र-भोजन-पद	२८
शय्यातर-पद	२९
शय्या-संस्तारक-पद	२९
प्रतिलेखन-पद	३०
टिप्पण	३१-३९
तीसरा उद्देशक	
आमुख	
अवभाषण-पद	४५
भिक्षाचर्या-पद	४८
पादपरिकर्म-पद	४८
कायपरिकर्म-पद	४९
व्रणपरिकर्म-पद	५०
गंडादिपरिकर्म-पद	५१
कृमि-पद	५३
नखशिखा-पद	५३
दीर्घरोम-पद	५३
दंत-पद	५४
ओष्ठ-पद	५४
दीर्घरोम-पद	५५
अक्षिपत्र-पद	५५
अक्षि-पद	५५
दीर्घरोम-पद	५६
मलनिर्हरण-पद	५७
शीर्षद्वारिका-पद	५७
वशीकरणसूत्र-पद	५७
उच्चारप्रस्रवण-पद	५७
टिप्पण	६०-६७
चौथा उद्देशक	
आमुख	

	पृ. सं.
आत्मीकरण-पद	७३
अर्चीकरण-पद	७३
अर्थीकरण-पद	७४
कृत्स्न-ओषधि-पद	७५
विकृति-पद	७५
स्थापनाकुल-पद	७५
निर्ग्रन्थी के साथ व्यवहार-पद	७५
अधिकरण-पद	७६
हास्य-पद	७६
पार्श्वस्थ आदि का संघाटक-पद	७६
इक्कीस हस्त-पद	७७
आत्मीकरण-पद	७७
अर्चीकरण-पद	७८
अर्थीकरण-पद	७८
पादपरिकर्म-पद	७९
कायपरिकर्म-पद	८०
व्रणपरिकर्म-पद	८१
गंडादिपरिकर्म-पद	८१
कृमि-पद	८३
नखशिखा-पद	८३
दीर्घरोम-पद	८४
दंत-पद	८४
ओष्ठ-पद	८५
दीर्घरोम-पद	८६
अक्षिपत्र-पद	८६
अक्षि-पद	८६
दीर्घरोम-पद	८७
मल-निर्हरण-पद	८७
शीर्षद्वारिका-पद	८८
उच्चारप्रस्रवण-पद	८८
अपारिहारिक-पद	८९
टिप्पण	९०-९५
पांचवां उद्देशक	
आमुख	
सचित्तवृक्षमूल-पद	१०१
संघाटी-पद	१०२
पलाश-पद	१०२
प्रत्यर्पण-पद	१०३
दीर्घसूत्र-पद	१०४
दंड-पद	१०४
नवनिवेश-पद	१०५
वीणा-पद	१०६
शय्या-पद	१०८
संभोजप्रत्ययिक क्रिया-पद	१०८
धारणीय का परिष्ठापन-पद	१०८
रजोहरण-पद	१०९
टिप्पण	१११-११६
छठा उद्देशक	
आमुख	
विज्ञापन-पद	१२१
हस्तकर्म-पद	१२१
अप्रावृत-पद	१२२
कामकलह-पद	१२३
लेख-पद	१२३
पोषान्त-पृष्ठान्त-पद	१२३
वस्त्र-पद	१२४
पादपरिकर्म-पद	१२५
कायपरिकर्म-पद	१२६
व्रणपरिकर्म-पद	१२७
गंडादिपरिकर्म-पद	१२७
कृमि-पद	१३०
नखशिखा-पद	१३०
दीर्घरोम-पद	१३०
दंत-पद	१३१
ओष्ठ-पद	१३२
दीर्घरोम-पद	१३३
अक्षिपत्र-पद	१३३
अक्षि-पद	१३३
दीर्घरोम-पद	१३४
मलनिर्हरण-पद	१३५
शीर्षद्वारिका-पद	१३५
प्रणीत-आहार-पद	१३५

	पृ. सं.
टिप्पण	१३६,१३७
सातवां उद्देशक	
आमुख	
मालिका-पद	१४३
लोह-पद	१४४
आभरण-पद	१४४
वस्त्र-पद	१४५
संचालन-पद	१४७
पादपरिकर्म-पद	१४७
कायपरिकर्म-पद	१४८
व्रणपरिकर्म-पद	१४९
गंडादिपरिकर्म-पद	१५०
कृमि-पद	१५२
नखशिखा-पद	१५२
दीर्घरोम-पद	१५२
दंत-पद	१५३
ओष्ठ-पद	१५४
दीर्घरोम-पद	१५५
अक्षिपत्र-पद	१५५
अक्षि-पद	१५६
दीर्घरोम-पद	१५७
मलनिर्हरण-पद	१५७
शीर्षद्वारिका-पद	१५७
पृथिवी-पद	१५८
दारु-पद	१५९
अंकादि-पद	१५९
आगंतागार आदि-पद	१५९
चिकित्सा-पद	१५९
पुद्गलों का अपहरण-उपहरण-पद	१६०
पशु-पक्षी-पद	१६०
दान-प्रत्येषण (ग्रहण) पद	१६१
स्वाध्याय-पद	१६२
आकारकरण-पद	१६२
टिप्पण	१६३-१६८
आठवां उद्देशक	
आमुख	

	पृ. सं.
अकेला एकाकी स्त्री के साथ-पद	१७३
स्त्रीमध्यगत का अपरिमाणकथा-पद	१७४
निर्ग्रन्थी के साथ-पद	१७५
अन्तः उपाश्रय-पद	१७६
मूर्धाभिषिक्त-पद	१७६
टिप्पण	१७८-१८२
नौवां उद्देशक	
आमुख	
राजपिण्ड-पद	१८७
राजान्तःपुर-पद	१८७
मूर्धाभिषिक्त-पद	१८८
टिप्पण	१९४-१९९
दसवां उद्देशक	
आमुख	
परुषवचन-पद	२०५
अनन्तकायसंयुक्त-पद	२०५
आधाकर्म-पद	२०५
निमित्त-पद	२०५
शैक्ष-पद	२०६
दिशा-पद	२०६
आदेश-पद	२०६
साधिकरण-पद	२०६
उद्घातिक-अनुद्घातिक-पद	२०७
रात्रिभोजन-पद	२०८
उद्गार-पद	२१०
ग्लान-पद	२१०
विहार-पद	२१०
पर्युषणा-पद	२११
टिप्पण	२१२-२२०
ग्यारहवां उद्देशक	
आमुख	
पात्र-पद	२२५
पात्रबन्धन-पद	२२६
अर्धयोजनमर्यादा-पद	२२७
धर्म-अवर्ण-पद	२२७
अधर्म-वर्ण-पद	२२७

	पृ. सं.
पादपरिकर्म-पद	२२७
कायपरिकर्म-पद	२२८
व्रणपरिकर्म-पद	२२९
गंडादिपरिकर्म-पद	२३०
कृमि-पद	२३२
नखशिखा-पद	२३२
दीर्घरोम-पद	२३३
दंत-पद	२३३
ओष्ठ-पद	२३४
दीर्घरोम-पद	२३५
अक्षिपत्र-पद	२३५
अक्षि-पद	२३५
दीर्घरोम-पद	२३६
शीर्षद्वारिका-पद	२३७
भयोत्पादन-पद	२३७
विस्मापन (विस्मयकरण)-पद	२३७
विपर्यास-पद	२३८
मुखवर्ण-पद	२३७
वैराज्य-विरुद्धराज्य-पद	२३८
दिवाभोजन-अवर्ण-पद	२३८
रात्रिभोजन-वर्ण-पद	२३८
दिवारात्रि-भोजन-पद	२३८
परिवासित-पद	२३९
संखडी-पद	२३९
निवेदन (नैवेद्य)-पिण्ड	२४०
यथाच्छन्द-पद	२४०
अनल-पद	२४०
सचेल-अचेल-पद	२४०
परिवासित-पद	२४१
बालमरण-पद	२४१
टिप्पण	२४२-२४८
बारहवां उद्देशक	
आमुख	
कारुण्यप्रतिज्ञा-पद	२५३
प्रत्याख्यान-भंग-पद	२५३
परित्तकायसंयुक्त-पद	२५३

	पृ. सं.
सलोमचर्म-पद	२५३
परवस्त्राच्छादितपीठ-पद	२५४
निर्ग्रन्थी-संघाटी-पद	२५४
स्थावरकाय-समारंभ-पद	२५४
वृक्षारोहण-पद	२५४
गृही-पद	२५५
पुरःकर्म-पद	२५५
चक्षुदर्शनप्रतिज्ञा-पद	२५५
रूपासक्ति-पद	२५८
कालातिक्रान्त-पद	२५८
मार्गातिक्रान्त-पद	२५९
गोमय-पद	२५९
आलेपनजात-पद	२६०
उपधिवाहन-पद	२६०
महानदी-पद	२६०
टिप्पण	२६२-२६९
तेरहवां उद्देशक	
आमुख	
पृथिवी-पद	२७५
दारु-पद	२७६
अन्तरिक्षजात-पद	२७६
अन्यतीर्थिक-अगारस्थित-पद	२७७
आत्मदर्शन-पद	२७९
चिकित्सा-पद	२७९
पार्श्वस्थादि-वंदन-प्रशंसन-पद	२८०
पिण्ड-पद	२८२
टिप्पण	२८४-२९१
चौदहवां उद्देशक	
आमुख	
प्रतिग्रह-पद	२७७
टिप्पण	३०४-३०७
पन्द्रहवां उद्देशक	
आमुख	
परुष वचन-पद	३१३
आम्र-पद	३१४
पादपरिकर्म-पद	३१४

	पृ. सं.
कायपरिकर्म-पद	३१५
व्रणपरिकर्म-पद	३१६
गंडादिपरिकर्म-पद	३१७
कृमि-पद	३१९
नखशिखा-पद	३१९
दीर्घरोम-पद	३२०
दंत-पद	३२०
ओष्ठ-पद	३२०
दीर्घरोम-पद	३२२
अक्षिपत्र-पद	३२२
अक्षि-पद	३२३
दीर्घरोम-पद	३२४
मलनिर्हरण-पद	३२४
शीर्षद्वारिका-पद	३२४
उच्चार-प्रस्रवण-पद	३२४
अन्यतीर्थिक-अगारस्थित-पद	३२६
पार्श्वस्थ आदि का दान-ग्रहण-पद	३२६
याचना-निमंत्रणा-वस्त्र-पद	३२९
पादपरिकर्म-पद	३२९
कायपरिकर्म-पद	३३०
व्रणपरिकर्म-पद	३३१
गंडादिपरिकर्म-पद	३३२
कृमि-पद	३३३
नखशिखा-पद	३३४
दीर्घरोम-पद	३३४
दंत-पद	३३५
ओष्ठ-पद	३३५
दीर्घरोम-पद	३३६
अक्षिपत्र-पद	३३६
अक्षि-पद	३३७
दीर्घरोम-पद	३३८
मलनिर्हरण-पद	३३८
शीर्षद्वारिका-पद	३३८
उपकरणजात-धरण-पद	३३८
उपकरणजात-धावन-पद	३३९
टिप्पण	३४०-३४३

	पृ. सं.
सोलहवां उद्देशक	
आमुख	
शय्या-पद	३४९
इक्षु-पद	३४९
अटवीयात्रा-ग्रहणैषणा-पद	३५०
वसुरात्निक-पद	३५०
व्युद्ग्रहव्युत्क्रान्त-पद	३५१
विहारप्रतिज्ञा-पद	३५२
जुगुप्सित-पद	३५२
अशनादि-निक्षेपण-पद	३५३
अन्यतीर्थिक-अगारस्थित के साथ भोजन-पद	३५३
आशातना-पद	३५४
अतिरिक्त-उपधि-पद	३५४
उच्चार-प्रस्रवण-पद	३५४
टिप्पण	३५७-३६१
सत्रहवां उद्देशक	
आमुख	
कुतूहल-प्रतिज्ञा-पद	३६७
पादपरिकर्म-पद	३७१
कायपरिकर्म-पद	३७२
व्रणपरिकर्म-पद	३७३
गंडादिपरिकर्म-पद	३७४
कृमि-पद	३७६
नखशिखा-पद	३७६
दीर्घरोम-पद	३७६
दंत-पद	३७७
ओष्ठ-पद	३७८
दीर्घरोम-पद	३७९
अक्षिपत्र-पद	३७९
अक्षि-पद	३७९
दीर्घरोम-पद	३८०
मलनिर्हरण-पद	३८१
शीर्षद्वारिका-पद	३८१
पादपरिकर्म-पद	३८१
कायपरिकर्म-पद	३८२
व्रणपरिकर्म-पद	३८३

	पृ. सं.
गंडादिपरिकर्म-पद	३८४
कृमि-पद	३८६
नखशिखा-पद	३८६
दीर्घरोम-पद	३८६
दंत-पद	३८७
ओष्ठ-पद	३८८
दीर्घरोम-पद	३८९
अक्षिपत्र-पद	३८९
अक्षि-पद	३८९
दीर्घरोम-पद	३९१
मलनिर्हरण-पद	३९१
शीर्षद्वारिका-पद	३९१
अन्तःअवकाश-पद	३९१
मालापहृत-पद	३९२
मृत्तिकोपलिप्त-पद	३९२
पृथिव्यादि-प्रतिष्ठित-पद	३९२
अत्युष्ण-पद	३९३
अपरिणतपानक-पद	३९३
आत्माश्लाघा-पद	३९३
गानादि-पद	३९४
विततशब्द-कर्णश्रोतप्रतिज्ञा-पद	३९४
ततशब्द-कर्णश्रोतप्रतिज्ञा-पद	३९४
घनशब्द-कर्णश्रोतप्रतिज्ञा-पद	३९४
शुषिरशब्द-कर्णश्रोतप्रतिज्ञा-पद	३९५
विविधशब्द-कर्णश्रोतप्रतिज्ञा-पद	३९५
शब्दासक्ति-पद	३९८

	पृ. सं.
टिप्पण	३९९-४०२
अठारहवां उद्देशक	
आमुख	
नौकाविहार-पद	४०९
वस्त्र-पद	४१३
टिप्पण	४२०-४२२
उन्नीसवां उद्देशक	
आमुख	
वियड-पद	४२७
स्वाध्याय-पद	४२८
वाचना-पद	४२९
टिप्पण	४३२-४३७
बीसवां उद्देशक	
आमुख	
सकृत् प्रतिसेवना-पद	४४३
बहुशः प्रतिसेवना-पद	४४४
सकृत् प्रतिसेवना-संयोग सूत्र-पद	४४५
बहुशः प्रतिसेवना-संयोगसूत्र-पद	४४५
सकृत् सातिरेक प्रतिसेवना-प	४४६
बहुशः सातिरेक प्रतिसेवना-पदद	४४६
परिहारस्थापना प्रतिसेवना-पद	४४७
बीसरात्रिकी आरोपणा-पद	४५०
पाक्षिकी आरोपणा-पद	४५४
पाक्षिकी-विंशतिरात्रिकी-आरोपणा-पद	४५८
टिप्पण	४६०-४६५
परिशिष्ट	**४६९-५२९**

पढमो उद्देसो

पहला उद्देशक

आमुख

प्रस्तुत उद्देश के मुख्य प्रतिपाद्य विषय हैं—ब्रह्मचर्य की विराधना का प्रायश्चित्त, उपकरण-परिष्कार तथा प्रातिहारिक उपकरणों के विषय में प्राप्त विविध निषेधों का प्रायश्चित्त, वस्त्र एवं पात्र विषयक निषेधों का प्रायश्चित्त, गृहधूम उतरवाने एवं पूतिकर्म-सेवन का प्रायश्चित्त आदि।

चेतना के ऊर्ध्वारोहण में ब्रह्मचर्य का महत्त्वपूर्ण स्थान है। काम-राग का उदय होने पर ब्रह्मचर्य का पालन अत्यन्त दुष्कर हो जाता है। कामवृत्ति का उत्तेजन कर्मोदय, कामोद्दीपक आहार तथा शरीर में धातुओं के वैषम्य के कारण भी हो सकता है और मोहोद्दीपक शब्दों को सुनने, उस प्रकार के रूप को देखने एवं उस प्रकार के स्थान आदि में रहने पर भी हो सकता है। प्रस्तुत उद्देशक का प्रारम्भ हस्तकर्म एवं अंगादान-पद से हुआ है। इस संदर्भ में भाष्य एवं चूर्णि में एतद्विषयक अनेक महत्त्वपूर्ण तथ्यों का मनोवैज्ञानिक ढंग से विश्लेषण हुआ है। साधु विविध परिस्थितियों में किन-किन आलम्बनों का उपयोग कर विस्रोतसिका से स्वयं को बचा सकता है—इसका भी स्थान-स्थान पर सुन्दर निर्देश उपलब्ध होता है।

भिक्षु के पास दो प्रकार के उपकरण होते हैं—

१. औत्सर्गिक २. औपग्रहिक।

औत्सर्गिक उपकरणों का वह परिकर्म-परिष्कार, जो भिक्षु स्वयं कर सके, वह अपेक्षानुसार कर सकता है। औपग्रहिक उपकरणों—सूई, कैंची, नखच्छेदनक एवं कर्णशोधनक के विषय में जो निषिद्ध आचरण गुरुमासिक प्रायश्चित्त के योग्य माने गए हैं, वे क्रमशः ये हैं—

१. गृहस्थ अथवा अन्यतीर्थिक के द्वारा सूई आदि का परिष्कार करवाना।

२. निष्प्रयोजन गृहस्थ के घर से सूई, कैंची आदि का आनयन।

३. अविधि से सूई, कैंची आदि की याचना।

४. एक प्रयोजन से याचित सूई आदि का अन्य प्रयोजन में उपयोग।

५. एक के लिए याचित सूई, कैंची आदि का परस्पर अनुप्रदान।

६. सूई आदि का अविधि से प्रत्यर्पण।

प्रस्तुत उद्देशक में वस्त्र एवं पात्र के विषय में अनेक सूत्र हैं, जिनमें पात्र के थिग्गल, बन्धन तथा वस्त्र के थिग्गल, ग्रथन, सिलाई की अविधि आदि के विषय में प्रायश्चित्त का कथन है। निशीथभाष्य एवं निशीथचूर्णि में प्रस्तुत प्रसंग में लाक्षणिक-अलाक्षणिक उपधि तथा उनसे होने वाले लाभ-हानि, वस्त्र-पात्र के संधान के अनेक प्रकारों आदि का विस्तृत विवरण उपलब्ध होता है। उपधि-निर्माण और उपधि-परिष्कार में समय एवं शक्ति का व्यय न हो, भिक्षु का अधिकतम समय स्वाध्याय-ध्यान में लगे—इसलिए भिक्षु कुत्रिकापण, निह्नव अथवा प्रतिमा-प्रतिनिवृत्त श्रमणोपासक से यथाकृत पात्र का ग्रहण करते थे।[1]

प्रस्तुत उद्देशक के अन्तिम दो सूत्र हैं—

---

१. निभा. गा. ६८८

१. गृहस्थ अथवा अन्यतीर्थिक से गृहधूम का परिशाटन।

२. पूतिकर्म का भोग।

गृहधूम सूत्र से वैसी सब सूक्ष्मचिकित्साओं का संकेत मिलता है, जिनमें अल्पतम दोष की भी संभावना रहती है। पूतिकर्म दोष की संभावना आहार, पानी के समान उपधि एवं वसति के विषय में भी संभव है। भाष्य एवं चूर्णि में उनका भी विस्तृत विवरण उपलब्ध होता है। इस प्रकार छप्पन सूत्रों में संदृब्ध इस उद्देशक में अनेक विषयों का संग्रहण हुआ है। सम्पूर्ण आगम-साहित्य–अंग प्रविष्ट एवं अंगबाह्य श्रुत में संभवतः यही एकमात्र उद्देशक है, जिसमें केवल अनुद्घातिक मासिक प्रायश्चित्त सम्बन्धी इतने तथ्यों का एक साथ संग्रहण/संकलन हुआ है।

पढमो उद्देसो : पहला उद्देशक

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
हत्थकम्म-पदं	**हस्तकर्म-पदम्**	**हस्तकर्म-पद**
१. जे भिक्खू हत्थकम्मं करेति, करेंतं वा सातिज्जति ।।	यो भिक्षुः हस्तकर्म करोति, कुर्वन्तं वा स्वदते ।	१. जो भिक्षु[1] हस्तकर्म[2] करता है अथवा करने वाले का अनुमोदन करता है ।[3]
२. जे भिक्खू अंगादाणं कट्ठेण वा कलिंचेण वा अंगुलियाए वा सलागाए वा संचालेति, संचालेंतं वा सातिज्जति ।।	यो भिक्षुः अङ्गादानं काष्ठेन वा किलिञ्चेन वा अंगुलिकया वा शलाकया वा सञ्चालयति, सञ्चालयन्तं वा स्वदते ।	२. जो भिक्षु अंगादान को काष्ठ, किलिंच (खपाची), अंगुली अथवा शलाका से संचालित करता है अथवा संचालित करने वाले का अनुमोदन करता है।
३. जे भिक्खू अंगादाणं संवाहेज्ज वा पलिमद्देज्ज वा, संवाहेंतं वा पलिमद्देंतं वा सातिज्जति ।।	यो भिक्षुः अङ्गादानं संवाहयेद् वा परिमर्दयेद् वा, संवाहयन्तं वा परिमर्दयन्तं वा स्वदते ।	३. जो भिक्षु अंगादान का संबाधन—मर्दन करता है अथवा परिमर्दन—बार-बार मर्दन करता है और संबाधन अथवा परिमर्दन करने वाले का अनुमोदन करता है।
४. जे भिक्खू अंगादाणं तेल्लेण वा घएण वा वसाए वा णवणीएण वा अब्भंगेज्ज वा मक्खेज्ज वा, अब्भंगेंतं वा मक्खेंतं वा सातिज्जाति ।।	यो भिक्षुः अङ्गादानं तैलेन वा घृतेन वा वसया वा नवनीतेन वा अभ्यञ्ज्यात् वा म्रक्षेद् वा, अभ्यञ्जन्तं वा म्रक्षन्तं वा स्वदते ।	४. जो भिक्षु अंगादान का तैल, घृत, वसा अथवा मक्खन से अभ्यंगन—मालिश करता है अथवा म्रक्षण—बार-बार मालिश करता है और अभ्यंगन अथवा म्रक्षण करने वाले का अनुमोदन करता है।
५. जे भिक्खू अंगादाणं कक्केण वा लोद्धेण वा पउमचुण्णेण वा ण्हाणेण वा सिणाणेण वा वण्णेण वा चुण्णेण वा उव्वट्टेज्ज वा परिवट्टेज्ज वा, उव्वट्टेंतं वा परिवट्टेंतं वा सातिज्जति ।।	यो भिक्षुः अङ्गादानं कल्केन वा लोध्रेण वा पद्मचूर्णेन वा 'ण्हाणेण' वा स्नानेन वा चूर्णेन वा वर्णेन वा उद्वर्तेत वा परिवर्तेत वा, उद्वर्तमानं वा परिवर्तमानं वा स्वदते ।	५. जो भिक्षु अंगादान का कल्क, लोध्र, पद्मचूर्ण, ण्हाण, स्नानचूर्ण, चूर्ण अथवा वर्ण से उद्वर्तन (उबटन) करता है अथवा परिवर्तन (बार-बार उबटन) करता है और उद्वर्तन अथवा परिवर्तन करने वाले का अनुमोदन करता है।
६. जे भिक्खू अंगादाणं सीतोदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा	यो भिक्षुः अङ्गादानं शीतोदकविकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन वा उत्क्षालयेद् वा	६. जो भिक्षु अंगादान का प्रासुक शीतल जल से अथवा प्रासुक उष्णजल से उत्क्षालन करता

उच्छोलेज्ज वा पधोवेज्जा वा, उच्छोलेंतं वा पधोवेंतं वा सातिज्जति ।।

प्रधावेद् वा, उत्क्षालयन्तं वा प्रधावन्तं वा स्वदते।

है अथवा प्रधावन करता है और उत्क्षालन अथवा प्रधावन करने वाले का अनुमोदन करता है।

७. जे भिक्खू अंगादाणं णिच्छल्लेति, णिच्छल्लेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अङ्गादानं 'निच्छल्लेति', 'निच्छल्लेंतं' वा स्वदते।

७. जो भिक्षु अंगादान का निश्छलन करता है—अग्रभाग की त्वचा को हटाता है अथवा निश्छलन करने वाले का अनुमोदन करता है।

८. जे भिक्खू अंगादाणं जिंघति, जिंघंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अङ्गादानं जिघ्रति, जिघ्रन्तं वा स्वदते।

८. जो भिक्षु अंगादान को सूंघता है अथवा सूंघने वाले का अनुमोदन करता है।

९. जे भिक्खू अंगादाणं अण्णयरंसि अचित्तंसि सोयंसि अणुप्पवेसेत्ता सुक्कपोग्गले णिग्घाएति, णिग्घायंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अङ्गादानम् अन्यतरस्मिन् अचित्ते स्रोतसि अनुप्रविश्य शुक्रपुद्गलान् निर्घातयति, निर्घातयन्तं वा स्वदते।

९. जो भिक्षु अंगादान को किसी अचित्त स्रोत में प्रविष्ट कर शुक्र पुद्गलों को निकालता है अथवा निकालने वाले का अनुमोदन करता है।[४]

जिंघति-पदं

घ्राण-पदम्

घ्राण-पद

१०. जे भिक्खू सचित्तपइट्ठियं गंधं जिंघति, जिंघंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः सचित्तप्रतिष्ठितं गन्धं जिघ्रति, जिघ्रन्तं वा स्वदते।

१०. जो भिक्षु सचित्त द्रव्य (अतिमुक्तक पुष्प आदि) की गन्ध को सूंघता है अथवा सूंघने वाले का अनुमोदन करता है।[५]

अण्णउत्थिय-गारत्थिय-कारावण-पदं

अन्ययूथिक-अगारस्थित-कारण-पदम्

अन्यतीर्थिक-अगारस्थित-कारण-पद

११. जे भिक्खू पदमग्गं वा संकमं वा अवलंबणं वा अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा कारेति, कारेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः पदमार्गं वा संक्रमं वा अवलम्बनं वा अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा कारयति, कारयन्तं वा स्वदते।

११. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से पदमार्ग, संक्रम अथवा अवलम्बन का निर्माण करवाता है अथवा करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

१२. जे भिक्खू दगवीणियं अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा कारेति, कारेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः दकवीणिकाम् अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा कारयति, कारयन्तं वा स्वदते।

१२. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से दकवीणिका का निर्माण करवाता है अथवा निर्माण करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

१३. जे भिक्खू सिक्कगं वा सिक्कगणंतगं वा अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा कारेति, कारेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः शिक्यकं वा शिक्यकानन्तकं वा अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा कारयति, कारयन्तं वा स्वदते।

१३. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से छींका अथवा छींके के ढक्कन का निर्माण करवाता है अथवा निर्माण करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

१४. जे भिक्खू सोत्तियं वा रज्जुयं वा चिलिमिलिं अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा कारेति, कारेंतं वा सातिज्जाति।।

यो भिक्षुः सौत्रिकां वा रज्जुकां वा चिलिमिलिम् अन्ययूथिकेन वा अगार-स्थितेन वा कारयति, कारयन्तं वा स्वदते।

१४. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से सूत अथवा रज्जु की चिलिमिलि का निर्माण करवाता है अथवा निर्माण करवाने वाले का अनुमोदन करता है।[६]

१५. जे भिक्खू सूईए उत्तरकरणं अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा कारेति, कारेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः सूच्याः उत्तरकरणम् अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा कारयति, कारयन्तं वा स्वदते।

१५. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से सूई का उत्तरकरण—परिष्कार करवाता है अथवा करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

१६. जे भिक्खू पिप्पलगस्स उत्तरकरणं अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा कारेति, कारेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः 'पिप्पलगस्स' उत्तरकरणम् अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा कारयति, कारयन्तं वा स्वदते।

१६. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से कैंची का उत्तरकरण करवाता है अथवा करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

१७. जे भिक्खू णखच्छेयणगस्स उत्तरकरणं अण्णउत्थिएणं वा गारत्थिएण वा कारेति, कारेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः नखच्छेदनकस्य उत्तरकरणम् अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा कारयति, कारयन्तं वा स्वदते।

१७. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से नखच्छेदनक—नख काटने के साधन का उत्तरकरण करवाता है अथवा करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

१८. जे भिक्खू कण्णसोहणगस्स उत्तरकरणं अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा कारेति, कारेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः कर्णशोधनकस्य उत्तरकरणम् अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा कारयति, कारयन्तं वा स्वदते।

१८. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से कर्णशोधनक का उत्तरकरण करवाता है अथवा करवाने वाले का अनुमोदन करता है।[७]

अणट्ठ-पदं

अनर्थ-पदम्

अनर्थ-पद

१९. जे भिक्खू अणट्ठाए सूइं जायति, जायंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षु अनर्थाय सूचीं याचते, याचमानं वा स्वदते।

१९. जो भिक्षु बिना प्रयोजन सूई की याचना करता है अथवा याचना करने वाले का अनुमोदन करता है।

२०. जे भिक्खू अणट्ठाए पिप्पलगं जायति, जायंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः अनर्थाय 'पिप्पलगं' याचते, याचमानं वा स्वदते।

२०. जो भिक्षु बिना प्रयोजन कैंची की याचना करता है अथवा याचना करने वाले का अनुमोदन करता है।

२१. जे भिक्खू अणट्ठाए णखच्छेयणगं जायति, जायंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः अनर्थाय नखच्छेदनकं याचते, याचमानं वा स्वदते।

२१. जो भिक्षु बिना प्रयोजन नखच्छेदनक की याचना करता है अथवा याचना करने वाले का अनुमोदन करता है।

२२. जे भिक्खू अणट्ठाए कण्णसोहणगं जायति, जायंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः अनर्थाय कर्णशोधनकं याचते, याचमानं वा स्वदते।

२२. जो भिक्षु बिना प्रयोजन कर्णशोधनक की याचना करता है अथवा याचना करने वाले का अनुमोदन करता है।[८]

अविहि-पदं

२३. जे भिक्खू अविहीए सूइं जायति, जायंतं वा सातिज्जति।।

अविधि-पदम्

यो भिक्षुः अविधिना सूचीं याचते, याचमानं वा स्वदते।

अविधि-पद

२३. जो भिक्षु अविधि से सूई की याचना करता है अथवा याचना करने वाले का अनुमोदन करता है।

२४. जे भिक्खू अविहीए पिप्पलगं जायति, जायंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः अविधिना 'पिप्पलगं' याचते, याचमानं वा स्वदते।

२४. जो भिक्षु अविधि से कैंची की याचना करता है अथवा याचना करने वाले का अनुमोदन करता है।

२५. जे भिक्खू अविहीए णखच्छेयणगं जायति, जायंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः अविधिना नखच्छेदनकं याचते, याचमानं वा स्वदते।

२५. जो भिक्षु अविधि से नखच्छेदनक की याचना करता है अथवा याचना करने वाले का अनुमोदन करता है।

२६. जे भिक्खू अविहीए कण्णसोहणगं जायति, जायंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः अविधिना कर्णशोधनकं याचते, याचमानं वा स्वदते।

२६. जो भिक्षु अविधि से कर्णशोधनक की याचना करता है अथवा याचना करने वाले का अनुमोदन करता है।

पाडिहारिय-पदं

२७. जे भिक्खू पाडिहारियं सूइं जाइत्ता वत्थं सिव्विस्सामित्ति पायं सिव्वति, सिव्वंतं वा सातिज्जति।।

प्रातिहारिक-पदम्

यो भिक्षुः प्रातिहारिकीं सूचीं याचित्वा वस्त्रं सीविष्यामीति पात्रं सीव्यति, सीव्यन्तं वा स्वदते।

प्रातिहारिक-पद

२७. जो भिक्षु वस्त्र सीऊंगा--ऐसा कहकर प्रातिहारिक--लौटाने योग्य सूई की याचना करता है और उससे पात्र सीता है अथवा सीने वाले का अनुमोदन करता है।

२८. जे भिक्खू पाडिहारियं पिप्पलगं जाइत्ता वत्थं छिंदिस्सामित्ति पायं छिंदति, छिंदंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः प्रातिहारिकं 'पिप्पलगं' याचित्वा वस्त्रं छेत्स्यामीति पात्रं छिनत्ति, छिन्दन्तं वा स्वदते।

२८. जो भिक्षु वस्त्र काटूंगा--ऐसा कहकर प्रातिहारिक कैंची की याचना करता है और उससे पात्र काटता है अथवा काटने वाले का अनुमोदन करता है।

२९. जे भिक्खू पाडिहारियं णहच्छेयणगं जाइत्ता णहं छिंदिस्सामित्ति सल्लुद्धरणं करेति, करेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः प्रातिहारिकं नखच्छेदनकं याचित्वा नखं छेत्स्यामीति शल्योद्धरणं करोति, कुर्वन्तं वा स्वदते।

२९. जो भिक्षु नख काटूंगा--ऐसा कहकर प्रातिहारिक नखच्छेदनक की याचना करता है और उससे शल्योद्धार करता है (कांटा निकालता है) अथवा करने (निकालने) वाले का अनुमोदन करता है।

३०. जे भिक्खू पाडिहारियं कण्ण-सोहणगं जाइत्ता कण्णमलं णीहरिस्सामित्ति दंतमलं वा णखमलं वा णीहरेति, णीहरेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः प्रातिहारिकं कर्णशोधनकं याचित्वा कर्णमलं निस्सरिष्यामीति दन्तमलं वा नखमलं वा निस्सरति, निस्सरन्तं वा स्वदते।

३०. जो भिक्षु कान का मैल निकालूंगा--ऐसा कहकर प्रातिहारिक कर्णशोधनक की याचना करता है और उससे दांत अथवा नख का मैल निकालता है अथवा निकालने वाले का अनुमोदन करता है।[1]

अण्णमण्ण-पदं

३१. जे भिक्खू अप्पणो एक्कस्स अट्ठाए सूइं जाइत्ता अण्णमण्णस्स अणुप्पदेति, अणुप्पदेंतं वा सातिज्जति ।।

३२. जे भिक्खू अप्पण्णो एक्कस्स अट्ठाए पिप्पलगं जाइत्ता अण्णमण्णस्स अणुप्पदेति, अणुप्पदेंतं वा सातिज्जति ।।

३३. जे भिक्खू अप्पणो एक्कस्स अट्ठाए णहच्छेयणगं जाइत्ता अण्णमण्णस्स अणुप्पदेति, अणुप्पदेंतं वा सातिज्जति ।।

३४. जे भिक्खू अप्पणो एक्कस्स अट्ठाए कण्णसोहणगं जाइत्ता अण्णमण्णस्स अणुप्पदेति, अणुप्पदेंतं वा सातिज्जति ।।

अन्योन्य-पदम्

यो भिक्षुः आत्मनः एकस्य अर्थाय सूचीं याचित्वा अन्योन्यस्मै अनुप्रददाति, अनुप्रददतं वा स्वदते।

यो भिक्षुः आत्मनः एकस्य अर्थाय 'पिप्पलगं' याचित्वा अन्योऽन्यस्मै अनुप्रददाति, अनुप्रददतं वा स्वदते।

यो भिक्षुः आत्मनः एकस्य अर्थाय नखच्छेदनकं याचित्वा अन्योऽन्यस्मै अनुप्रददाति, अनुप्रददतं वा स्वदते।

यो भिक्षुः आत्मनः एकस्य अर्थाय कर्णशोधनकं याचित्वा अन्योऽन्यस्मै अनुप्रददाति, अनुप्रददतं वा स्वदते।

अन्योन्य-पद

३१. जो भिक्षु केवल स्वयं के लिए सूई की याचना कर एक दूसरे को देता है अथवा देने वाले का अनुमोदन करता है।

३२. जो भिक्षु केवल स्वयं के लिए कैंची की याचना कर एक दूसरे को देता है अथवा देने वाले का अनुमोदन करता है।

३३. जो भिक्षु केवल स्वयं के लिए नखच्छेदनक की याचना कर एक दूसरे को देता है अथवा देने वाले का अनुमोदन करता है।

३४. जो भिक्षु केवल स्वयं के लिए कर्णशोधनक की याचना कर एक दूसरे को देता है अथवा देने वाले का अनुमोदन करता है।

अविहि-पदं

३५. जे भिक्खू सूइं अविहीए पच्चप्पिणति, पच्चप्पिणंतं वा सातिज्जति ।।

३६. जे भिक्खू अविहीए पिप्पलगं पच्चप्पिणति, पच्चप्पिणंतं वा सातिज्जति ।।

३७. जे भिक्खू अविहीए णहच्छेयणगं पच्चप्पिणति, पच्चप्पिणंतं वा सातिज्जति ।।

३८. जे भिक्खू अविहीए कण्णसोहणगं पच्चप्पिणति, पच्चप्पिणंतं वा सातिज्जति ।।

अविधि-पदम्

यो भिक्षुः अविधिना सूचीं प्रत्यर्पयति, प्रत्यर्पयन्तं वा स्वदते।

यो भिक्षुः अविधिना 'पिप्पलगं' प्रत्यर्पयति, प्रत्यर्पयन्तं वा स्वदते।

यो भिक्षुः अविधिना नखच्छेदनकं प्रत्यर्पयति, प्रत्यर्पयन्तं वा स्वदते।

यो भिक्षुः अविधिना कर्णशोधनकं प्रत्यर्पयति, प्रत्यर्पयन्तं स्वदते।

अविधि-पद

३५. जो भिक्षु अविधि से सूई का प्रत्यर्पण करता है अथवा प्रत्यर्पण करने वाले का अनुमोदन करता है।

३६. जो भिक्षु अविधि से कैंची का प्रत्यर्पण करता है अथवा प्रत्यर्पण करने वाले का अनुमोदन करता है।

३७. जो भिक्षु अविधि से नखच्छेदनक का प्रत्यर्पण करता है अथवा प्रत्यर्पण करने वाले का अनुमोदन करता है।

३८. जो भिक्षु अविधि से कर्णशोधनक का प्रत्यर्पण करता है अथवा प्रत्यर्पण करने वाले का अनुमोदन करता है।[१०]

अण्णउत्थिय-गारत्थिय पदं

३९. जे भिक्खू लाउपायं वा दारुपायं वा मट्टियापायं वा अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा परिघट्टावेति वा संठवेति वा जमावेति वा, अलमप्पणो करणयाए सुहुममवि णो कप्पइ।
जाणमाणे सरमाणे अण्णमण्णस्स वियरति, वियरंतं वा सातिज्जति ।।

४०. जे भिक्खू दंडयं वा लट्ठियं वा अवलेहणियं वा वेणुसूइयं वा अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा परिघट्टावेति वा संठवेति वा जमावेति वा, अलमप्पणो करणयाए सुहुममवि णो कप्पइ।
जाणमाणे सरमाणे अण्णमण्णस्स वियरति, वियरंतं वा सातिज्जति ।।

अन्ययूथिक-अगारस्थित-पदम्

यो भिक्षुः अलाबुपात्रं वा दारुपात्रं वा मृत्तिकापात्रं वा अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा परिघट्टयति वा संस्थापयति वा 'जमावेति' वा, अलमात्मनः करणतया सूक्ष्ममपि नो कल्पते।
जानानः स्मरन् अन्योऽन्यस्मै वितरति, वितरन्तं वा स्वदते।

यो भिक्षुः दण्डकं वा यष्टिकां वा अवलेखनिकां वा वेणुसूचिकां वा अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा परिघट्टयति वा संस्थापयति वा 'जमावेति' वा, अलमात्मनः करणतया सूक्ष्ममपि नो कल्पते।
जानानः स्मरन् अन्योऽन्यस्मै वितरति, वितरन्तं वा स्वदते।

अन्यतीर्थिक-अगारस्थित-पद

३९. जो मुनि अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से तुम्बे के पात्र, लकड़ी के पात्र अथवा मिट्टी के पात्र का घर्षण करवाता है, संस्थापन करवाता है--मुंह आदि को व्यवस्थित करवाता है अथवा विषम को सम करवाता है।
निर्ग्रन्थ स्वयं विषम को सम कर सकता है, किन्तु परिघट्टन और संस्थापन का किंचित भी कार्य अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से कराना नहीं कल्पता।
अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से पात्र का घर्षण आदि नहीं कराना--इस नियम को जानता हुआ तथा इस नियम के विधायक सूत्र की स्मृति करता हुआ जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ को घर्षण आदि क्रिया के लिए पात्र आदि देता है अथवा देने वाले का अनुमोदन करता है।

४०. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से दण्ड, लाठी, अवलेखनिका अथवा बांस की सूई का घर्षण करवाता है, संस्थापन करवाता है--मुंह आदि को व्यवस्थित करवाता है अथवा विषम को सम करवाता है।
निर्ग्रन्थ स्वयं विषम को सम कर सकता है किन्तु परिघट्टन और संस्थापन का किंचित् भी कार्य अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से कराना नहीं कल्पता।
अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से दण्ड आदि का घर्षण आदि नहीं कराना--इस नियम को जानता हुआ तथा इस नियम के विधायक सूत्र की स्मृति करता हुआ जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ को घर्षण आदि क्रिया के लिए दण्ड आदि देता है अथवा देने वाले का अनुमोदन करता है।[११]

पाय-पदं

४१. जे भिक्खू पायस्स एकं तुडियं तड्डेति, तड्डेंतं वा सातिज्जति ।।

४२. जे भिक्खू पायस्स परं तिण्हं तुडियाणं तड्डेति, तड्डेंतं वा सातिज्जति ।।

४३. जे भिक्खू पायं अविहीए बंधति, बंधंतं वा सातिज्जति ।।

४४. जे भिक्खू पायं एगेण बंधेण बंधति, बंधंतं वा सातिज्जति ।।

४५. जे भिक्खू पायं परं तिण्हं बंधाणं बंधति, बंधंतं वा सातिज्जति ।।

४६. जे भिक्खू अतिरेगबंधणं पायं दिवड्डाओ मासाओ परं धरेति, धरेंतं वा सातिज्जति ।।

वत्थ-पदं

४७. जे भिक्खू वत्थस्स एगं पडियाणियं देति, देंतं वा सातिज्जति ।।

४८. जे भिक्खू वत्थस्स परं तिण्हं पडियाणियाणं देति, देंतं वा सातिज्जति ।।

४९. जे भिक्खू अविहीए वत्थं सिव्वति, सिव्वंतं वा सातिज्जति ।।

५०. जे भिक्खू वत्थस्स एगं फालिय-

पात्र-पदम्

यो भिक्षुः पात्रस्य एकं 'तुडियं' 'तड्डेति', 'तड्डेंतं' वा स्वदते।

यो भिक्षुः पात्रस्य परं त्रयाणां 'तुडियाणं' 'तड्डेति', 'तड्डेंतं' वा स्वदते।

यो भिक्षुः पात्रम् अविधिना बध्नाति, बध्नन्तं वा स्वदते।

यो भिक्षुः पात्रम् एकेन बन्धेन बध्नाति, बध्नन्तं वा स्वदते।

यो भिक्षुः पात्रं परं त्रयाणां बन्धानां बध्नाति, बध्नन्तं वा स्वदते।

यो भिक्षुः अतिरेकबन्धनं पात्रं द्व्यर्धात् (अर्द्धद्वितीयात्) मासात् परं धरति, धरन्तं वा स्वदते।

वस्त्र-पदम्

यो भिक्षुः वस्त्रस्य एकं 'पडियाणियं' ददाति, ददतं वा स्वदते।

यो भिक्षुः वस्त्रस्य परं त्रयाणां 'पडियाणियाणं' ददाति, ददतं वा स्वदते।

यो भिक्षुः अविधिना वस्त्रं सीव्यति, सीव्यन्तं वा स्वदते।

यो भिक्षुः वस्त्रस्य एकां स्फाटित-

पात्र-पद

४१. जो भिक्षु पात्र के एक थिग्गल लगाता है अथवा लगाने वाले का अनुमोदन करता है।

४२. जो भिक्षु पात्र को तीन से अधिक थिग्गल लगाता है अथवा लगाने वाले का अनुमोदन करता है।[१२]

४३. जो भिक्षु पात्र को अविधि से बांधता है अथवा बांधने वाले का अनुमोदन करता है।

४४. जो भिक्षु पात्र को एक बन्धन से बांधता है अथवा बांधने वाले का अनुमोदन करता है।

४५. जो भिक्षु पात्र को तीन से अधिक बंधन से बांधता है अथवा बांधने वाले का अनुमोदन करता है।

४६. जो भिक्षु अतिरेक बंधन वाले पात्र को डेढ़ मास से अधिक रखता है अथवा रखने वाले का अनुमोदन करता है।[१३]

वस्त्र पद

४७. जो भिक्षु वस्त्र के एक कारी (पैबन्द) लगाता है अथवा लगाने वाले का अनुमोदन करता है।

४८. जो भिक्षु वस्त्र के तीन से अधिक कारी लगाता है अथवा लगाने वाले का अनुमोदन करता है।[१४]

४९. जो भिक्षु अविधि से वस्त्र सीता है अथवा सीने वाले का अनुमोदन करता है।[१५]

५०. जो भिक्षु फटे वस्त्र के एक गांठ लगाता है

गंठियं करेति, करेंतं वा सातिज्जति ।।

ग्रन्थिकां करोति, कुर्वन्तं वा स्वदते।

अथवा लगाने वाले का अनुमोदन करता है।

५१. जे भिक्खू वत्थस्स परं तिण्हं फालिय-गंठियाणं करेति, करेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः वस्त्रस्य परं तिसृणां स्फाटित-ग्रन्थिकानां करोति, कुर्वन्तं वा स्वदते।

५१. जो भिक्षु फटे वस्त्र के तीन से अधिक गांठ लगाता है अथवा लगाने वाले का अनुमोदन करता है।

५२. जे भिक्खू वत्थस्स परं तिण्हं फालिय-गंठीणं संसिव्वेति, संसिव्वंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः वस्त्रस्य परं तिसृणां स्फाटित-ग्रन्थीनां संसीव्यति, संसीव्यन्तं वा स्वदते।

५२. जो भिक्षु तीन से अधिक गांठ वाले फटे वस्त्र को सीता है अथवा सीने वाले का अनुमोदन करता है।

५३. जे भिक्खू अतज्जाएणं गहेति, गहेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अतज्जातेन ग्रथ्नाति, ग्रथ्नन्तं वा स्वदते।

५३. जो भिक्षु अतज्जात वस्त्र से दूसरे वस्त्र को गूंथता है अथवा गूंथने वाले का अनुमोदन करता है।[१६]

५४. जे भिक्खू अइरेगगहियं वत्थं परं दिवड्ढाओ मासाओ धरेति, धरेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अतिरेकग्रथितं वस्त्रं परं द्व्यर्धात् (अर्द्धद्वितीयात्) मासात् धरति, धरन्तं वा स्वदते।

५४. जो भिक्षु अतिरेकग्रथित वस्त्र को डेढ़ मास से अधिक रखता है अथवा रखने वाले का अनुमोदन करता है।[१७]

अण्णउत्थिय-गारत्थिय-पदं

अन्ययूथिक-अगारस्थित-पद

अन्यतीर्थिक-अगारस्थित-पद

५५. जे भिक्खू गिहधूमं अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा परिसाडावेति, परिसाडावेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः गृहधूमम् अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा परिशाटयति, परिशाटयन्तं वा स्वदते।

५५. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से गृहधूम को उतरवाता है अथवा उतरवाने वाले का अनुमोदन करता है।[१८]

पूतिकम्म-पदं

पूतिकर्म-पदम्

पूतिकर्म-पद

५६. जे भिक्खू पूतिकम्मं भुंजति, भुजंतं वा सातिज्जति—

यो भिक्षुः पूर्तिकर्म भुङ्क्ते, भुञ्जानं वा स्वदते।

५६. जो भिक्षु पूतिकर्म[१९] का भोग करता है अथवा भोग करने वाले का अनुमोदन करता है।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घातियं ।।

तत्सेवमानः आपद्यते मासिकं परिहारस्थानम् अनुद्घातिकम्।

—इनका आसेवन करने वाले को अनुद्घातिक[२०] (गुरु) मासिक परिहारस्थान[२१] (प्रायश्चित्त) प्राप्त होता है।

टिप्पण

सूत्र १

१. भिक्षु (भिक्खू)

प्रस्तुत सूत्र के मूल पाठ में साध्वी का उल्लेख नहीं है। भाष्यकार के अनुसार साध्वी के लिए भी यह सूत्र विहित है।[१] भाष्यकार का यह उल्लेख प्रासंगिक है।

२. हस्तकर्म (हत्थकम्मं)

हस्तकर्म का अर्थ है–अप्राकृतिक मैथुन, हस्तमैथुन। स्वयं के हाथ, अंगुली, शलाका आदि के द्वारा अंगादान का संचालन आदि कर स्पर्श सुख की अनुभूति करना, वीर्यपात करना हस्तकर्म कहलाता है।

यह प्रबल वेदोदय का कुत्सित परिणाम है। यह ब्रह्मचर्य के लिए घातक प्रवृत्ति है। दसाओ में इसे शबल दोष माना गया है।[२] अतः भिक्षु के लिए इसका प्रतिषेध किया गया है।

३. अनुमोदन करता है (सातिज्जति)

भाष्य एवं चूर्णि में 'सातिज्जति' इस क्रियापद के दो अर्थ किए गए हैं[३]–१. कराना (किसी दूसरे को किसी क्रियाविशेष में प्रेरित करना) और २. अनुमोदन करना (स्वयं प्रेरित हुए व्यक्ति को न रोकना)।[४]

४. सूत्र २-९

अंगादान (जननेन्द्रिय) का संचालन, संबाधन, अभ्यंगन आदि क्रियाएं कामराग को उदीप्त करती हैं। वे सुप्तसिंह को जगाने, शान्त सर्प को उत्तेजित करने आदि के समान आत्मघाती प्रवृत्तियां हैं, चारित्र में अतिचार के धब्बे लगाने वाली हैं। अतः भिक्षु के लिए निषिद्ध हैं।

भाष्य एवं चूर्णि ने इनके स्पष्टीकरण के लिए सात दृष्टान्त दिए गए हैं–

१. **संचालन**–सुप्तसिंह को जगाना।[५]

२. **संबाधन**–सोए हुए आशीविष सर्प को जगाना।[६]

३. **अभ्यंगन**–अग्नि को घी से सींचना।[७]

४. **उद्वर्तन**–भाले की धार को तीखा करना।[८]

५. **उत्क्षालन**–बुभुक्षित सिंह की आंख की चिकित्सा।[९]

६. **निश्छलन**–सुप्त अजगर का मुंह खोलना।[१०]

७. **घ्राण**–अम्बष्ठी व्याधि (आमसेवन से प्रकुपित होने वाला रोग) से व्याधित व्यक्ति का आम सूंघना।[११]

शब्द विमर्श

१. **अंगादान**–जननेन्द्रिय।[१२]

२. **किलिंच**–बांस की खपाची।[१३]

३. **शलाका**–बेंत आदि का शलाका।[१४]

---

१. निभा. ५९०–एसेव कमो णियमा, णिग्गंथी पि होति कायव्वो।

२. दसाओ १/३–हत्थकम्मं करेमाणे सबले।

३. निभा. ५८८–अणुमोदण कारावण, दुविधा साइज्जणा समासेणं।

४. वही, गा. ५८९–
कारावणमभियोगो, परस्स इच्छस्स वा अणिच्छस्स।
काउं सयं परिणते, अणिवारण अणुमती होइ।।

५. वही, भा. २, चू. पृ. २८–सीहो सुत्तो संचालितो जहा जीवियंतकरो भवति। एवं अंगादाणं संचालियं मोहुब्भवं जणयति। ततो चरित्तविराहणा। इमा आयविराहणा–सुक्कक्खएण मरेज्ज।

६. वही–जो आसीविसं सुहसुत्तं संबोहेति सो विबुद्धो तस्स जीवियंतकरो भवति। एवं अंगादाणं पि परिमद्दमाणस्स मोहुब्भवो, ततो चारित्तजीवियविणासो भवति।

७. वही–इयरहा वि ताव अग्गी जलति किं पुण घतादिणा सिच्चमाणी। एवं अंगादाणे वि मक्खिज्जमाणे सुट्ठुत्तरं मोहुब्भवो भवति।

८. वही–'भल्ली' शस्त्रविशेषः, सा सभावेण तिण्हा, किमंग पुण णिसिया। एवं अंगादाणसमुत्थो सभावेण मोहो दिप्पति, किमंग पुण उव्वट्टिते।

९. वही–एगो वग्घो, सो अच्छिरोगेण गहिओ, संबद्धा य अच्छी, तस्स य एगेण वेज्जेण वडियाए अक्खीणि अंजेऊण पउणीकताणि, तेण सो चेव य खद्धो। एवं अंगादाणं पि सो (सुट्ठु) इतर चारित्रविनाशाय भवतीत्यर्थः।

१०. वही–जहा अयगरस्स सुहप्पसुत्तस्स मुहं वियडेति, सो तस्स अप्पवहाय भवति। एवं अंगादाणं पि णिच्छल्लियं चरित्रविनाशाय भवति।

११. वही–एगो राया तस्स वेज्जपडिसिद्धे अंबए जिंघमाणस्स अंबट्ठी वाही उद्धाइतो, गंधप्रियेण वा कुमारेणं गंधमग्घायमाणेण अप्पा जीवियाओ भंसिओ। एवं अंगादाणं जिंघमाणो संजमजीवियाओ चुओ, अणाइयं च संसारं भमिस्सति त्ति।

१२. वही, पृ. २६–अंगं सरीरं, सिरमादीणि वा अंगाणि, तेसिं आदाणं अंगादाणं प्रभवो प्रसूतिरित्यर्थः। तं पुणं अंगादाणं मेढ्रं भण्णाति।

१३. वही–कलिंचो वंसकप्परी।

१४. वही–वेत्रमादि सलागा।

४. संबाधन—मर्दन करना, दबाना।[१]

५. परिमर्दन—बार-बार मर्दन करना।[२]

६. अभ्यंगन—एक बार मालिश करना या थोड़े तैल, घी आदि से मालिश करना।

७. म्रक्षण—बार-बार मालिश करना या अधिक द्रव्य से मालिश करना।[३]

८. कल्क—अनेक द्रव्यों के संयोग से निर्मित लेप्य पदार्थ। स्नान द्रव्य, विलेपन द्रव्य या गन्धाट्टक।[४]

९. लोध—सुगन्धित द्रव्य, गन्ध द्रव्य।[५]

१०. ण्हाण—उड़द आदि का चूर्ण।[६]

११. स्नान—सुगन्धित चूर्ण, गन्ध चूर्ण।[७]

१२. वर्ण—चन्दन आदि का चूर्ण, अंगराग, लेपन, केसर, एक रंगीन द्रव्य।[८]

१३. चूर्ण विशेष—वर्धमान चूर्ण, पटवास आदि।[९]

१४. उद्वर्तन—पीठी, लेप या उबटन करना।[१०]

१५. परिवर्तन—बार-बार उबटन करना।[११]

अभ्यंगन एवं उद्वर्तन में अन्तर—

(१) अभ्यंगन स्निग्ध पदार्थों से होता है। उद्वर्तन की वस्तुएं रूक्ष एवं कोमल होती हैं।

(२) अभ्यंगन विशेष शक्ति एवं श्रम सापेक्ष होता है। जबकि उद्वर्तन में विशेष श्रम एवं शक्ति अपेक्षित नहीं।

(३) अभ्यंगन त्वचा से अस्थिपर्यन्त लाभप्रद होता है। उद्वर्तन मुख्यतः त्वचा के लिए लाभप्रद होता है।

१५. उत्क्षालन—एक बार धोना।

१६. प्रधावन—बार-बार धोना।

१७. निश्छलन—अंगादान के अग्रभाग की त्वचा का अपनयन करना।[१२]

५. सूत्र १०

सचित्त द्रव्य (अतिमुक्तक आदि सचित्त पुष्प आदि) की गंध सूंघने से संयम-विराधना एवं आत्म-विराधना की संभावना रहती है। नासिका से निर्गत गर्म वायु से पुष्प तथा उसके निश्रित जीवों की विराधना होती है। कदाचित् विषपुष्प हो तो सूंघने वाले की मृत्यु भी हो सकती है।[१३] अतः पुष्प आदि सचित्त द्रव्य की गंध लेना भिक्षु के लिए निषिद्ध है।

६. सूत्र ११-१४

भिक्षु गृहस्थ अथवा अन्यतीर्थिक से सोपान, संक्रम, पानी निकालने की नाली, छींका तथा चिलिमिली (पर्दा) नहीं बनवा सकता क्योंकि गृहस्थ और अन्यतीर्थिक तप्त अयोगोलक के समान समन्ततः जीवोपघाती होते हैं।[१४] सोपान आदि बनाते समय उनके द्वारा पृथ्वीकायिक, वनस्पतिकायिक तथा तदाश्रित अन्य जीवों की विराधना तथा हाथ, पैर आदि के चोट लगने से आत्मविराधना की संभावना रहती है।[१५]

शब्द विमर्श

१. पदमार्ग—ईंट, पत्थर आदि रखकर बनाया गया चलने का रास्ता या सोपान।[१६]

२. संक्रम—जल या गड्ढे आदि को पार करने के लिए काष्ठनिर्मित या पाषाणनिर्मित पुल।[१७] (विस्तार हेतु द्रष्टव्य—दसवे. ५/१/४ का टिप्पण)

३. अवलम्बन—चढ़ने, उतरने या सहारा लेने का साधन—रस्सी, खंभा आदि।[१८]

४. दकवीणिका—पानी निकालने की नाली।[१९]

५. सिक्कग—छींका।

---

१. निभा. भा. २ चू. पृ. २१२—संबाहण त्ति विस्सामणं।
२. वही, पृ. २७—परिमद्दति पुणो पुणो।
३. वही, पृ. २७—अब्भंगेति एक्कसि, मक्खति पुणो पुणो। अहवा—थेवेण अब्भंगणं, बहुणा मक्खणं।
४. द्रष्टव्य—दसवे. ६।६३ का टिप्पण।
५. द्रष्टव्य—वही।
६. निभा. भा. २ चू. पृ. २७—ण्हाणं ण्हाणमेव। अहवा उवण्हाणयं भण्णति, तं पुण माषचूर्णादि।
७. (क) वही—सिणाणं—गंधियावणे अंगाघंसणयं वुच्चति।
(ख) द्रष्टव्य दसवे० ६।६३ का टिप्पण।
८. (क) निभा.भा.२ चू.पृ. २७—वण्णओ जो सुगंधो चंदणादिचूर्णानि।
(ख) आप्टे. Saffarom, a coloured unguent or perfume.
९. निभा. भा. २ चू. पृ. २७—वड्डमाणचुण्णो, पडवासादि वा।
१०. वही—उव्वट्टे त्ति एक्कसि।
११. वही—परिवट्टे त्ति पुणो पुणो।
१२. वही, पृ. २८—णिच्छल्लेति त्वचं अवणेति, महामणिं प्रकाशयतीत्यर्थः।
१३. वही, गा. ६१६—
णासा मुहणिस्सासा, पुप्फजियवधो तदस्सिताणं च।
आयाए विसपुप्फे, तब्भावितमच्चदिट्ठंतो।।
१४. वही, गा. ६३३—गिहि-अण्णतित्थिएण व अयगोलसमेण आणादी।
१५. वही, गा. ६२४—
खणमाणे कायवधा, अच्चित्ते वि य वणस्सतितसाणं।
खणणेण तच्छणेण व, अहिदद्दुरमाइआ घाए।।
१६. वही, भा. २ चू. पृ. ३३—पदं पदाणि तेसिं मग्गो पदमग्गो सोपाणा।
१७. वही—संकमिज्जति जेण सो संकमो काष्ठचारेत्यर्थः।
१८. वही—अवलंबिज्जति त्ति जं तं अवलंबणं, सो पुण वेतिता मत्तालंबो वा।
१९. वही, पृ. ३६—दगं पाणी, तं वीणिया वाहो, दगस्स वीणिया दगवीणिया।

६. **सिक्कगणंतग**—छींके का ढक्कन।[1]

७. **चिलिमिलि**—यवनिका, पर्दा।

७. सूत्र १५-१८

मूल निर्माण (निष्पत्ति) के पश्चात् जो भी थोड़ा अथवा बहुत परिष्कार किया जाता है, वह उत्तरकरण कहलाता है, जैसे—सूई के छेद को बड़ा करना, उसे सीधा या श्लक्ष्ण करना, कैंची की धार पैनी करना आदि।[2] भिक्षु गृहस्थ या अन्यतीर्थिक से सूई, कैंची आदि का उत्तरकरण (परिकर्म) नहीं करवा सकता, क्योंकि गृहस्थ आदि से स्वयं का कार्य करवाने की भगवान की आज्ञा नहीं है अतः इससे आज्ञाभंग, अनवस्था, मिथ्यात्व आदि दोषों की प्राप्ति होती है।

भाष्यकार के अनुसार जिस कार्य को करना आज्ञाबाह्य है, उसे करने में प्रायः एक साथ चार दोषों की आपत्ति आती है—आज्ञाभंग अनवस्था, मिथ्यात्व और विराधना। जैसे—एक मुनि को सूई का उत्तरकरण कराते देख दूसरा, उसे देखकर तीसरा—इस क्रम से आगे से आगे दोष की आवृत्ति होने से अनवस्था होती है। उनके व्यक्तियों को एक ही दोष का सेवन करते देख अभिनवधर्मा श्रावक मिथ्या अवधारणा को प्राप्त होता है कि अमुक कार्य सदोष नहीं है। जहां आज्ञाभंग हो, वहां संयम-विराधना एवं सापेक्ष रूप से आत्मविराधना भी संभव है।

८. सूत्र १९-२२

बिना प्रयोजन सूई, कैंची आदि की याचना करना विधि सम्मत नहीं, क्योंकि सूई आदि के गिर जाने, खो जाने आदि से उन्हें खोजने आदि में निरर्थक श्रम होता है, जिस गृहस्थ की सूई लाई गई, उसे न लौटाने पर गृहस्थ के मन में अप्रीति और अप्रतीति के भाव पैदा होते हैं।[3]

९. सूत्र २३-३०

सूई, कैंची आदि प्रातिहारिक उपकरण प्रयोजन होने पर भी विधिपूर्वक ही ग्रहण किए जाने चाहिए। भाष्यकार के अनुसार अन्य प्रयोजन का कथन कर प्रातिहारिक वस्तु ग्रहण करे और उससे भिन्न कार्य करे—यह ग्रहण की अविधि है। इस दृष्टि से सूत्र २७-३० में सूत्र २३-२६ का स्पष्टीकरण है—ऐसा माना जा सकता है।

श्रीमज्जयाचार्य ने गृहस्थ के हाथ से सीधे अपने हाथ में सूई, कैंची आदि लेने को ग्रहण की अविधि माना है।[4]

१०. सूत्र ३१-३८

भिक्षु सूई, कैंची आदि प्रातिहारिक उपकरण जिसके नाम से लाए, वही उसे काम में ले। स्वयं के लिए लाकर अन्य को देना विधिसम्मत नहीं।[5] अन्य के नाम से गृहीत सूई, कैंची आदि को अन्य व्यक्ति को प्रयोग में लेते देखकर गृहस्थ अपभ्राजना कर सकता है, भविष्य में देने का निषेध कर सकता है। सूई, कैंची आदि शस्त्रमय उपकरणों की प्रत्यर्पण की विधि का निर्देश देते हुए आयारचूला में लिखा है—सूई, कैंची आदि उपकरणों को सीधे हाथ पर या भूमि पर रखकर गृहस्थ से कहें—यह वस्तु है। उसे अपने हाथ से गृहस्थ के हाथ में प्रत्यर्पित न करे।[6] इस प्रकार उन्हें भूमि पर रखकर लौटाना विधिसम्मत है।

भाष्य एवं चूर्णि में भी इसी विधि का निर्देश मिलता हैं।[7] श्रीमज्जयाचार्य ने भी गृहस्थ के हाथ में सूई आदि देने को प्रत्यर्पण की अविधि कहा है।[8]

११. सूत्र ३९,४०

भिक्षु के पास दो प्रकार के उपकरण होते हैं—१. औधिक—पात्र आदि तथा २. औपग्रहिक—दण्ड, लाठी, सूई, अवलेखनिका आदि। परिकर्म की अपेक्षा से उपकरण के तीन प्रकार हैं—

१. **बहुपरिकर्म**—जिसमें आधे अंगुल से ज्यादा छेदन-भेदन करना पड़े।

२. **अल्पपरिकर्म**—जिसमें आधे अंगुल तक छेदन-भेदन किया जाए।

३. **अपरिकर्म** (यथाकृत)—जिसमें परिघट्टन, संस्थापन आदि कोई परिकर्म नहीं करना होता, वह उपकरण यथाकृत उपकरण कहलाता है।[9]

भिक्षु को सामान्यतः यथाकृत उपधि का ग्रहण करना चाहिए, ताकि परिकर्म आदि के कारण स्वाध्याय, ध्यान आदि संयम-योगों

१. निभा. भा. २ चू. पृ. ३९—सिक्कयंतयं णाम तस्सेव पिहणं।

२. वही, गा. ६६४—
पासग-मट्ठिणिसीयण, पज्जण-रिउकरण उत्तरं करणं।
सुहुमं पि जं तु कीरति, तदुत्तरं मूलणिव्वत्ते॥

३. निभा. गा. ६६९—
णट्ठे हितविस्सरिते, तदण्णदव्वस्स होति वोच्छेदो।
पच्छाकम्म-पवहणं, धुवावणं वा तदट्ठस्स॥

४. नि. हुंडी—अविधै सूई याचै, तेहनां हाथ सूं साहमी हाथै लै।

५. आचू. ७।१—जे तत्थ गाहावईण वा......तं अप्पणो एगस्स अट्ठाए पाडिहारियं जाइत्ता णो अण्णमण्णस्स देज्जा वा, अणुपदेज्जा वा।

६. वही—पुव्वामेव उत्ताणए हत्थे कट्टु भूमीए वा ठवेत्ता 'इमं खलु' ति आलोएज्जा, णो चेव णं सयं पाणिणा परपाणिंसि....पच्चप्पिणेज्जा।

७. निभा. गा. ६७७—
गहणंमि गिण्हिऊणं, हत्थे उत्ताणगम्मि वा काउं।
भूमीए वा ठवेत्तुं, एस विही होती अप्पिणणे॥

८. नि. हुंडी—अविधै सूई आपै, हाथो हाथ दे।

९. निभा. गा. ६८७,६८८
अद्धंगुला परेणं, छिज्जंतं होति सपरिकम्मं तु।
अद्धंगुलमेगं तु, छिज्जंत अप्पपरिकम्मं॥
जं पुव्वकतमुहं वा, कतलेवं वा वि लब्भए पादं।
तं होति अहाकडयं, तेसि पमाणं इमं होति॥

में व्याघात पैदा न हो तथा आत्मविराधना एवं संयमविराधना न हो। यदि यथाकृत उपकरण न मिले तो अनिवार्यता में अल्पपरिकर्म पात्र आदि ग्रहण कर भिक्षु स्वयं उसका परिकर्म करे।

परिघट्टन बहुपरिकर्म वाला तथा संस्थापन अल्पपरिकर्म वाला कार्य है, इसलिए भिक्षु को गृहस्थ या अन्यतीर्थिक से कराना नहीं कल्पता। विषम को सम करना अपरिकर्म वाला कार्य है। इसलिए मुनि उसे स्वयं कर सकता है।

शब्द विमर्श

१. परिघट्टन—पात्र को भीतर, बाहर से निर्मोक करना, चारों तरफ से घर्षण करना।[1]

२. संस्थापन—मुंह आदि को व्यवस्थित करना।[2]

३. जमावन (समीकरण)—विषम को सम करना।[3]

दण्ड, लाठी आदि के संदर्भ में इनका अर्थ क्रमशः अवलेखन (घिसना), पार्श्वभाग को व्यवस्थित करना, मूलभाग, अग्रभाग एवं पर्व को ठीक करना एवं ऋजुकरण होता है।[4]

४. दण्ड—तीन हाथ का डंडा। दो हाथ के दंड के लिए विदंड शब्द का प्रयोग मिलता है।[5]

५. लाठी—शरीरप्रमाण डंडा। चार अंगुल न्यून लाठी को विलट्ठी कहा जाता है।[6]

६. अवलेखनिका—बड़, पीपल आदि की बारह अंगुल लम्बी, एक अंगुल चौड़ी लकड़ी, जो वर्षावास में पैर आदि से कीचड़ आदि का अपनयन करने में प्रयुक्त होती है। यह ठोस, मसृण एवं निर्व्रण होनी चाहिए।[7]

१२. सूत्र ४१,४२

प्रस्तुत सूत्रद्वयी के प्रथम सूत्र में पात्र के एक थिग्गल (पैबन्द) लगाने का निषेध किया गया है। यह निषेध औत्सर्गिक है। भिक्षु निरर्थक—केवल पात्र की सौन्दर्य वृद्धि के लिए एक भी थिग्गल न लगाए। यदि पात्र अच्छा हो—धारणीय हो तो थिग्गल लगाना निषिद्ध है[8]। यदि आवश्यक हो तो सजातीय एवं सुप्रतिलेख्य थिग्गल यतनापूर्वक लगाया जा सकता है।

पात्र दुर्लभ हो, इस स्थिति में अनेक स्थानों पर खण्डित पात्र को टिकाऊ और उपयोगी बनाने के लिए अपवादस्वरूप तीन थिग्गल भी लगाए जा सकते हैं पर इससे अधिक का निषेध है।

शब्द विमर्श

१. तुडियं—यह देशीशब्द है, इसका अर्थ है—पैबन्द अथवा थिग्गल।[9] इसे सामयिकसंज्ञा भी माना जा सकता है।

२. तड्डेति—यह देशी धातु है। इसका अर्थ है—पैबन्द लगाना।[10]

१३. सूत्र ४३-४६

बंधन का अर्थ है—पात्र की गोलाई को धागे आदि से बांधकर, पात्र को मजबूत बनाना। उसके दो प्रकार हैं—अविधिबंध और विधिबंध। प्रस्तुत प्रसंग में भाष्यकार ने तत्कालीन प्रसिद्ध अनेकविध बंधनों का निरूपण किया है। उनमें स्वस्तिक बंध (व्यतिकलित बंध, अव्यतिकलित बंध) तथा स्तेन बंध को अविधि बन्ध तथा मुद्रिका और नौका संस्थान वाले बंधन को विधिबन्धन माना गया हैं।[11] सामान्यतः जिस बन्धन की प्रतिलेखना सुकर हो तथा जिसे अल्प समय में आसानी से लगाया जा सके, उसे विधिबन्धन माना जा सकता हैं। यह निषेध औत्सर्गिक है।

सामान्यतः भिक्षु को बन्धन रहित पात्र ग्रहण करना चाहिए।[12] बिना कारण अथवा केवल पात्र की सौन्दर्य-वृद्धि के लिए एक भी बन्धन बांधना उचित नहीं। यदि प्राप्त पात्र दुर्बल हो और अन्य पात्र दुर्लभ हो तो अपेक्षा के अनुसार एक, दो या तीन बन्धन लगाए जा सकते हैं।[13] किन्तु अधिक बन्धनों वाला पात्र अपलक्षण हो जाता है अतः ऐसे पात्र को डेढ़ मास से अधिक न रखे।[14] प्रस्तुत संदर्भ में भाष्यकार ने पात्र की सुलक्षणता एवं अपलक्षणता तथा उससे होने वाले लाभ एवं अलाभ की भी विस्तृत चर्चा की है।[15]

१४. सूत्र ४७,४८

पात्र के समान वस्त्र भी यथाकृत हों, अपरिकर्म हों तो भिक्षु के स्वाध्याय, ध्यान आदि संयमयोगों में व्याघात नहीं आता। कदाचित् वस्त्र दुर्लभ हो अथवा प्राप्त वस्त्र दुर्बल, हीनप्रमाण अथवा फटा हुआ हो तो भिक्षु उसके एक, दो या तीन पैबन्द लगा सकता

---

१. निभा. गा. ६९४—परिघट्टण णिम्मोयणं, तं पुण अंतो व होज्ज बहिं वा।
२. वही—संठवणं मुहकरणं।
३. वही—जमाणं विसमाण समकरणं।
४. वही, गा. ७०६
५. वही, गा. ७००—तिण्णि उ हत्थे डंडो, दोण्णि उ हत्थे विदंडओ होति।
६. वही, गा. ७००—लट्ठी आतप्पमाणा, विलट्ठी चतुरंगुलेणूणा।।
७. वही, गा. ७०९,७१०
८. नि. हुंडी १/४२—चोखा पात्रा रे सरतो थीगड़ो देवै।
९. निभा. भा. २, चू. पृ. ५१—तुडियं थिग्गलं देसीभासाए, सामयिगी वा एस पडिभासा।
१०. वही—तड्डेति लाए त्ति वुत्तं भवति।
११. निभा. गा. ७३८—
सोत्थियबंधो दुविधो, अविकलितो तेण बंधो चउरंसो।
एसो तु अविधिबंधो, विधिबंधो मुद्दिणावा य।।
१२. निभा. भा. २, चू. पृ. ५४—उस्सग्गेण ताव अबंधणं पात्रं घेत्तव्वं।
१३. वही—दुब्बल दुल्लभपादे, बंधेणेगेण बंधे वा........।
१४. वही, पृ. ५५—ण केवलमतिरेगबंधणमलक्खणं दिवड्ढातो परं ण धरेयव्वं। एगबन्धेण वि अलक्खणं दिवड्ढातो परं न धरेयव्वं।
१५. वही. गा. ७५२-७५६

है, किन्तु केवल सौन्दर्यवृद्धि के लिए या निष्कारण पैबन्द न लगाए। ज्ञातव्य है कि मुनि पैबन्द उसी वस्त्र का लगाए अर्थात् विजातीय वस्त्र का पैबन्द न लगाए तथा तीन से अधिक एवं दुष्प्रतिलेख्य पैबन्द न लगाए।

शब्द विमर्श

१. पडियाणियं—यह देशी शब्द है, इसका अर्थ है—पैबन्द।[१]

१५. सूत्र ४९

यदि प्रमाणोपेत वस्त्र न मिले तो एकाधिक वस्त्र-खण्डों की सिलाई करना अथवा फटे हुए धारणीय वस्त्र की सिलाई करना विधिसम्मत है। प्रस्तुत सूत्र में वस्त्र की अविधि से सिलाई करने का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है। इस प्रसंग में भाष्यकार ने गग्गरग, दंडी, जालिका, एकसरा आदि तत्कालीन प्रसिद्ध अनेक प्रकार की सिलाई विधियों का उल्लेख किया है। इनमें घाघरे की तरह सलवट डालकर, जाली या भरती आदि से की गई सिलाई को दुष्प्रतिलेख्य होने के कारण अविधि सिलाई माना गया है। गोमूत्रिका संस्थान से की गई सिलाई सुप्रतिलेख्य एवं सुकर होती है, अतः उसे विधिसम्मत माना गया है।

१६. सूत्र ५३

भिक्षु के लिए पांच प्रकार के वस्त्र एषणीय माने गए हैं—जांगिक, भांगिक, शाणक, पोतक (सूती) और क्षौमिक।[२] इनमें से प्रत्येक वस्त्र के लिए एक स्वजातीय के अतिरिक्त शेष चार प्रकार के वस्त्र के साथ जोड़ना अतज्जातीय वस्त्र से ग्रथन (जोड़ने) के अंतर्गत है। अनावश्यक ग्रथन अनुपयोगी है। प्रस्तुत सूत्र में उसका प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है।

१७. सूत्र ५४

प्रस्तुत सूत्र में 'अतिरेगगहित' शब्द के दो संस्कृत रूप संभव हैं—१. अतिरेकग्रथित और २. अतिरेकगृहीत। अतिरेकग्रथित वस्त्र का अर्थ है—चार, पांच आदि स्थानों से ग्रथित वस्त्र। भाष्यकार के अनुसार अपलक्षण एवं अतिरेक ग्रथित वस्त्र ज्ञान, दर्शन और चारित्र का उपघातक है अतः ग्राह्य नहीं।[३]

भिक्षु के लिए वस्त्र का जो परिमाण एवं गणना निर्दिष्ट है, उससे अधिक ग्रहण करना अतिरेक ग्रहण के अन्तर्गत आता है। किन्तु प्रस्तुत प्रसंग में अतिरेकग्रथित अर्थ ही अधिक संगत है क्योंकि अतिरेकगृहीत उपधि का प्रायश्चित्त है चतुर्लघु।[४]

१८. सूत्र ५५

गृहधूम का अर्थ है—रसोई की दीवार या छत पर जमा हुआ चूल्हे का धूआं। प्राचीन काल में दाद, खुजली आदि रोगों से संबद्ध औषधियों में गृहधूम का प्रयोग होता था। चरक से भी इस मत की पुष्टि होती हैं।[५] भिक्षु को औषधि के लिए यदि पूर्वपरिशाटित गृहधूम मिल जाए तो वह उसका ग्रहण करे। पूर्वपरिशाटित धूम के अभाव में, वह गृहस्थ से अनुज्ञा लेकर स्वयं रसोईघर में जाकर धूआं उतार ले। गृहस्थ अथवा अन्यतीर्थिक के द्वारा धूआं उतरवाने से उनके गिरने की संभावना रहती हैं, धूएं के कणों के गिरने पर वे पश्चात्कर्म कर सकते है।[६]

भाष्य के अनुसार गृहधूम सूत्र से तज्जातीय अन्य रोगों एवं तत्संबंधी चिकित्सा की सूचना प्राप्त होती है अर्थात् अन्यान्य रोगों में भी यदि गृहस्थ आदि की सेवा ली जाए तो यही प्रायश्चित्त प्राप्त होता है।[७]

सूत्र ५६

१९. पूतिकर्म (पूइकम्मं)

यह उद्गम का तीसरा दोष है। जो आहार आदि श्रमण के लिए बनाया जाए, वह आधाकर्म कहलाता है। जैसे अशुचि गंध के परमाणु वातावरण को विषाक्त बना देते हैं, उसी प्रकार आधाकर्म दोष से युक्त पदार्थों से संस्कृत होने तथा आधाकर्म दोष से लिप्त चम्मच आदि उपकरणों को प्रयुक्त करने से आहार आदि पूतिकर्म दोषयुक्त हो जाता है। प्रस्तुत सूत्र के भाष्य एवं चूर्णि में पूतिदोष युक्त आहार, उपधि एवं वसति की विस्तार से चर्चा उपलब्ध होती है।[८]

२०. अनुद्घातिक (अणुग्घाइयं)

जिस प्रायश्चित्त का निरन्तर वहन किया जाए, वह अनुद्घातिक अथवा गुरु प्रायश्चित्त कहलाता है।[९] काल की दृष्टि से ग्रीष्म ऋतु एवं तप की दृष्टि से अष्टमभक्त (तेला) गुरु प्रायश्चित्त है। काल और तप से गुरु प्रायश्चित्त भी यदि सान्तर (अन्तराल सहित) दिया जाए (वहन करवाया जाए) तो लघु हो जाता है, इसी प्रकार काल

---

१. निभा. भा. २, चू.पृ. ५६—पडियाणिया थिग्गलयं छंदंतो य एगट्ठं।
२. (क) ठाणं ५।१९०
(ख) कप्पो २।२८
३. निभा. गा. ७९४—
अवलक्खणो उ उवधी, उवहणती णाणदंसणचरित्ते।
तम्हा ण थेयव्वो..............................॥
४. निसीह. १६/४०
५. द्रष्टव्य—दसवे. ३।९ का टिप्पण।
६. निभा. गा. ७९८
७. वही, गा. ८०१,८०२
८. (क) वही, गा. ८०४-८११
(ख) विस्तार हेतु द्रष्टव्य—दसवे. ५।१।५५ का टिप्पण तथा पि. नि., भू. पृ. ६७-७०।
९. निभा. भा. ३ चू. पृ. ६२—अणुग्घातियं णाम जे णिरंतरं वहति गुरुमित्यर्थः।

एवं तप से लघु प्रायश्चित्त भी यदि निरन्तर वहन करना हो तो वह दान की अपेक्षा से गुरु हो जाता है।[1] गुरुक, अनुद्घातिक और काल—ये गुरु प्रायश्चित्त के पर्यायवाची नाम हैं।

२१. परिहारस्थान (परिहारट्ठाणं)

परिहार का अर्थ है—वर्जन अथवा वहन। जिसे वहन किया जाता है, वह प्रायश्चित्त होता है, अतः परिहारस्थान का अर्थ है प्रायश्चित्त।[2]

---

१. बृभा. ३००,३०१—
जं तु निरंतरदाणं जस्स व तस्स व तवस्स तं गुरुगं।
जं पुण संतरदाणं, गुरु वि सो खलु भो लहुओ।
काल-तवे आसज्ज व, गुरु वि होइ लहुओ लहू गुरुगो।
कालो गिम्हो उ गुरू अट्ठाइ तवो लहू सेसो।।

२. निभा. ४ चू. पृ. २७१—परिहारट्ठाणं—परिहारो वज्जणं त्ति वुत्तं भवति। अहवा—परिहारो वहणं ति वुत्तं भवति तं प्रायश्चित्तं। .....इह प्रायश्चित्तमेव ठाणं।

बीओ उद्देसो

दूसरा उद्देशक

आमुख

प्रस्तुत उद्देशक में सोलह पदों का संग्रहण हुआ है। इसका मुख्य प्रतिपाद्य विषय है–अचित्त गंध सूंघने का निषेध, स्वयं उपकरण परिष्कार, काष्ठदण्डमय पादप्रोञ्छन, कृत्स्नचर्म एवं कृत्स्नवस्त्र धारण, नैत्यिकपिण्ड, शय्यातरपिण्ड आदि से सम्बन्धित निषेधों का प्रायश्चित्त। प्रथम उद्देशक में सचित्त वस्तु–पुष्प आदि की गन्ध को सूंघने का गुरुमासिक प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है, क्योंकि उसका अहिंसा एवं ब्रह्मचर्य दोनों से सम्बन्ध है। प्रस्तुत उद्देशक में अचित्त वस्तु की गन्ध को सूंघने का लघुमासिक प्रायश्चित्त बतलाया गया है। प्रथम उद्देशक में पदमार्ग, संक्रम, अवलम्बन, दकवीणिका, चिलिमिली आदि का अन्यतीर्थिक एवं गृहस्थ से निर्माण करवाने, सूई, कैंची आदि का उत्तरकरण तथा पात्र, लाठी, अवलेखनिका आदि के परिष्कार–परिघट्टन, समीकरण आदि कार्यों का गृहस्थ एवं अन्यतीर्थिक से करवाने का प्रायश्चित्त बतलाया गया है, इस उद्देशक में इन्हीं कार्यों को स्वयं करने का लघुमासिक प्रायश्चित्त बतलाया गया है।

निसीहज्झयणं में भिक्षु के लिए काष्ठदंडमय पादप्रोञ्छन के निर्माण, ग्रहण, धारण, वितरण, परिभाजन एवं परिभोग को प्रायश्चित्तार्ह कार्य माना गया है। जबकि कप्पो (बृहत्कल्पसूत्र) में निर्ग्रन्थ के लिए काष्ठदण्डमय पादप्रोञ्छन को अनुज्ञात एवं निर्ग्रन्थी के लिए उसे निषिद्ध माना गया है। दोनों ही आगमों के एतद्विषयक भाष्यों में इस विप्रतिपत्ति के विषय में कोई चालना-प्रत्यवस्थान उपलब्ध नहीं होता। कप्पो (बृहत्कल्पसूत्र) में प्रज्ञप्त कृत्स्नचर्म एवं कृत्स्नवस्त्र विषयक निषेध का प्रस्तुत उद्देशक में प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है। इस विषय में दोनों आगमों के भाष्यों का विवेचन प्रायः समान है।

प्रस्तुत उद्देशक का एक मुख्य विषय है–शय्यातरपिण्ड। शय्यातर कौन होता है, शय्यातर कब होता है, शय्यातरपिण्ड के कितने प्रकार हैं, शय्यातरपिण्ड को ग्रहण करने से क्या-क्या दोष संभव हैं, कौन से कारणों में यतनापूर्वक शय्यातरपिण्ड लिया जा सकता है–इत्यादि विविध विषयों पर भाष्य एवं चूर्णि में सुविस्तृत चर्चा उपलब्ध होती है।

प्राचीन काल में भिक्षु वर्षावास में अनिवार्यतः शय्या-संस्तारक का उपयोग करते। जहां सीलनयुक्त भूमि होती, जहां वस्त्र, कम्बल आदि के कुथित होने, काई लगने तथा आर्द्रवस्त्रों से अजीर्ण आदि रोग होने का भय होता, वहां शेषकाल में भी शय्या-संस्तारक का उपयोग किया जाता था।[1] शय्या-संस्तारक शय्यातर का हो या अन्य गृहस्थ के घर से लाया हुआ, उसका स्वरूप कैसा हो? उसकी गवेषणा एवं आनयन की विधि क्या हो? एक ही संस्तारक को अनेक साधुओं ने देखा, गृहस्थ से याचना की–इत्यादि परिस्थितियों में उसका स्वामित्व किस साधु का हो, उसके विकरण एवं प्रत्यर्पण की विधि क्या हो–इत्यादि विषयों का निशीथभाष्य एवं उसकी चूर्णि में विस्तृत एवं मनोवैज्ञानिक वर्णन उपलब्ध होता है। संस्तारक खोना नहीं चाहिए–इस प्रसंग में वसतिपाल कितने और कैसे हों और वे किस प्रकार वसति की सुरक्षा करें–इसका भी इस उद्देशक के भाष्य में सुन्दर वर्णन मिलता है।[2]

प्राचीन काल में अनेक कुलों में प्रतिदिन नियत रूप से भोजन देने का प्रचलन था और अनेक कुलों में प्रतिदिन के भोजन का कुछ अंश, चतुर्थांश अथवा अर्धांश ब्राह्मणों अथवा पुरोहितों के लिए अलग रखा जाता था। प्रस्तुत उद्देशक के 'णितिय पद' में समागत सूत्रपञ्चक की तुलना आयारचूला के पढम अज्झयण के 'कुल-पद'[3] तथा दसवेआलियं के 'नियाग' पद से की जा सकती है। निशीथभाष्यकार ने णितिय अग्गपिण्ड के कल्प्याकल्प्य के विषय में चार विकल्प उपस्थित किए हैं–

१. **निमंत्रण**–गृहस्थ साधु को निमंत्रण देता है–भगवन्! आप मेरे घर आएं और भोजन लें।

---

१. निभा. गा. १२२४

२. वही, गा. १३४१,१३५३

३. आचू. १/१९

२. प्रेरणा या उत्पीड़न—गृहस्थ के निमंत्रण पर साधु कहता है—अनुग्रह करूं तो तू मुझे क्या देगा? गृहस्थ कहता है—जो आपको चाहिए, वही दूंगा। साधु पुनः पूछता है—घर जाने पर देगा या नहीं? गृहस्थ कहता है—दूंगा।

३. परिमाण—साधु पुनः पूछता है—तू कितना देगा? कितने समय तक देगा।

ये तीनों विकल्प अकल्पनीय हैं।

४. स्वाभाविक—गृहस्थ के अपने लिए बने हुए सहज भोजन को साधु सहज भाव से लेने के लिए चला जाए।[1]

इस सम्पूर्ण प्रकरण को पढ़ने से पाठक को तत्कालीन समाज एवं सामाजिक परिस्थितियों का भी अच्छा ज्ञान उपलब्ध हो सकता है।

आयारचूला में अन्यतीर्थिक एवं गृहस्थ के साथ भिक्षाचर्या हेतु गमनागमन, स्वाध्यायभूमि एवं विचारभूमि में गमन तथा ग्रामानुग्राम परिव्रजन का निषेध किया गया है।[2] प्रस्तुत उद्देशक में उसका प्रायश्चित्त बतलाया गया है। मनोज्ञ-मनोज्ञ आहार एवं मनोज्ञ-मनोज्ञ पानक को खाने-पीने वाला, अमनोज्ञ-अमनोज्ञ आहार-पानक का परिष्ठापन करने वाला मायिस्थान का स्पर्श करता है अतः प्रस्तुत उद्देशक में उनके भी प्रायश्चित्त का प्रज्ञापन हुआ है।

---

१. निभा. गा. १०००-१००२

२. आचू. १/८-१०

बीओ उद्देसो : दूसरा उद्देशक

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
पायपुंछण-पदं	**पादप्रोञ्छन-पदम्**	**पादप्रोच्छन-पद**
१. जे भिक्खू दारुदंडयं पायपुंछणं करेति, करेंतं वा सातिज्जति ।।	यो भिक्षुः दारुदण्डकं पादप्रोञ्छनं करोति, कुर्वन्तं वा स्वदते।	१. जो भिक्षु काष्ठदंड वाला पादप्रोञ्छन बनाता है अथवा बनाने वाले का अनुमोदन करता है।
२. जे भिक्खू दारुदंडयं पायपुंछणं गेण्हति, गेण्हंतं वा सातिज्जति ।।	यो भिक्षुः दारुदण्डकं पादप्रोञ्छनं गृह्णाति, गृह्णन्तं वा स्वदते।	२. जो भिक्षु काष्ठदंड वाले पादप्रोञ्छन का ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।
३. जे भिक्खू दारुदंडयं पायपुंछणं धरेति, धरेंतं वा सातिज्जति ।।	यो भिक्षुः दारुदण्डकं पादप्रोञ्छनं धरति, धरन्तं वा स्वदते।	३. जो भिक्षु काष्ठदंड वाले पादप्रोञ्छन को धारण करता है अथवा धारण करने वाले का अनुमोदन करता है।
४. जे भिक्खू दारुदंडयं पायपुंछणं वितरति, वितरेंतं वा सातिज्जति ।।	यो भिक्षुः दारुदण्डकं पादप्रोञ्छनं वितरति, वितरन्तं वा स्वदते।	४. जो भिक्षु काष्ठदंड वाले पादप्रोञ्छन को वितरण करता है—ग्रहण करने की अनुज्ञा देता है अथवा अनुज्ञा देने वाले का अनुमोदन करता है।
५. जे भिक्खू दारुदंडयं पायपुंछणं परिभाएति, परिभाएंतं वा सातिज्जति ।।	यो भिक्षुः दारुदण्डकं पादप्रोञ्छनं परिभाजयति, परिभाजयन्तं वा स्वदते।	५. जो भिक्षु काष्ठदंड वाले पादप्रोञ्छन को देता है अथवा देने वाले का अनुमोदन करता है।
६. जे भिक्खू दारुदंडयं पायपुंछणं परिभुंजति, परिभुंजंतं वा सातिज्जति ।।	यो भिक्षुः दारुदण्डकं पादप्रोञ्छनं परिभुङ्क्ते, परिभुञ्जानं वा स्वदते।	६. जो भिक्षु काष्ठदंड वाले पादप्रोञ्छन का परिभोग करता है अथवा करने वाले का अनुमोदन करता है।
७. जे भिक्खू दारुदंडयं पायपुंछणं परं दिवड्ढाओ मासाओ धरेति, धरेंतं वा सातिज्जति ।।	यो भिक्षुः दारुदण्डकं पादप्रोञ्छनं परं द्व्यर्धात् (अर्द्धद्वितीयात्) मासात् धरति, धरन्तं वा स्वदते।	७. जो भिक्षु काष्ठदंड वाले पादप्रोञ्छन को डेढ़ मास से अधिक रखता है अथवा रखने वाले का अनुमोदन करता है।[1]

८. जे भिक्खू दारुदंडयं पायपुंछणं विसुयावेति, विसुयावेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः दारुदण्डकं पादप्रोञ्छनं 'विसुयावेति', 'विसुयावेंतं' वा स्वदते।

८. जो भिक्षु काष्ठदंड वाले पादप्रोञ्छन को सुखाता है अथवा सुखाने वाले का अनुमोदन करता है।[२]

जिंघति-पदं

घ्राण-पदम्

घ्राण-पद

९. जे भिक्खू अचित्तपतिट्ठियं गंधं जिंघति, जिंघंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः अचित्तप्रतिष्ठितं गंधं जिघ्रति, जिघ्रन्तं वा स्वदते।

९. जो भिक्षु अचित्त पदार्थ की गंध को सूंघता है अथवा सूंघने वाले का अनुमोदन करता है।[३]

सयमेवकरण-पदं

स्वयमेव करण-पदम्

स्वयमेवकरण-पद

१०. जे भिक्खू पदमग्गं वा संकमं वा आलंबणं वा सयमेव करेति, करेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः पदमार्गं वा संक्रमं वा अवलम्बनं वा स्वयमेव करोति, कुर्वन्तं वा स्वदते।

१०. जो भिक्षु पदमार्ग, संक्रम अथवा अवलम्बन का स्वयं ही निर्माण करता है अथवा करने वाले का अनुमोदन करता है।[४]

११. जे भिक्खू दगवीणियं सयमेव करेति, करेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः दकवीणिकां स्वयमेव करोति, कुर्वन्तं वा स्वदते।

११. जो भिक्षु दकवीणिका का स्वयं ही निर्माण करता है अथवा करने वाले का अनुमोदन करता है।[५]

१२. जे भिक्खू सिक्कगं वा सिक्कगणंतगं वा सयमेव करेति, करेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः शिक्यकं वा शिक्यकानन्तकं वा स्वयमेव करोति, कुर्वन्तं वा स्वदते।

१२. जो भिक्षु छींके अथवा छींके के ढक्कन का स्वयं ही निर्माण करता है अथवा करने वाले का अनुमोदन करता है।[६]

१३. जे भिक्खू सोत्तियं वा रज्जुयं वा चिलिमिलिं सयमेव करेति, करेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः सौत्रिकां वा रज्जुकां वा चिलिमिलिं स्वयमेव करोति, कुर्वन्तं वा स्वदते।

१३. जो भिक्षु सूत अथवा रज्जु की चिलिमिलि का स्वयं ही निर्माण करता है अथवा करने वाले का अनुमोदन करता है।[७]

१४. जे भिक्खू सूईए उत्तरकरणं सयमेव करेति, करेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः सूच्याः उत्तरकरणं स्वयमेव करोति, कुर्वन्तं वा स्वदते।

१४. जो भिक्षु सूई का उत्तरकरण स्वयं ही करता है अथवा करने वाले का अनुमोदन करता है।

१५. जे भिक्खू पिप्पलयस्स उत्तरकरणं सयमेव करेति, करेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः 'पिप्पलयस्य' उत्तरकरणं स्वयमेव करोति, कुर्वन्तं वा स्वदते।

१५. जो भिक्षु कैंची का उत्तरकरण स्वयं ही करता है अथवा करने वाले का अनुमोदन करता है।

१६. जे भिक्खू णहच्छेयणगस्स उत्तरकरणं सयमेव करेति, करेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः नखच्छेदनकस्य उत्तरकरणं स्वयमेव करोति, कुर्वन्तं वा स्वदते।

१६. जो भिक्षु नखच्छेदनक का उत्तरकरण स्वयं ही करता है अथवा करने वाले का अनुमोदन करता है।

१७. जे भिक्खू कण्णसोहणयस्स उत्तरकरणं सयमेव करेति, करेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः कर्णशोधनकस्य उत्तरकरणं स्वयमेव करोति, कुर्वन्तं वा स्वदते ।

१७. जो भिक्षु कर्णशोधनक का उत्तरकरण स्वयं ही करता है अथवा करने वाले का अनुमोदन करता है।[८]

लहुसग-पदं

लघुस्वक-पदम्

लघुस्वक-पद

१८. जे भिक्खू लहुसगं फरुसं वयति, वयंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः लघुस्वकं परुषं वदति, वदन्तं वा स्वदते ।

१८. जो भिक्षु स्वल्प मात्र परुष वचन बोलता है अथवा बोलने वाले का अनुमोदन करता है।[९]

१९. जे भिक्खू लहुसगं मुसं वयति, वयंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः लघुस्वकां मृषा वदति, वदन्तं वा स्वदते ।

१९. जो भिक्षु स्वल्प मात्र मृषा वचन बोलता है अथवा बोलने वाले का अनुमोदन करता है।[१०]

२०. जे भिक्खू लहुसगं अदत्तं आदियति, आदियंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः लघुस्वकम् अदत्तं आदत्ते, आददानं वा स्वदते ।

२०. जो भिक्षु स्वल्प मात्र अदत्त का ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।[११]

२१. जे भिक्खू लहुसएण सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा हत्थाणि वा पादाणि वा दंताणि वा मुहाणि वा उच्छोलेज्ज वा पधोवेज्ज वा, उच्छोलेंतं वा पधोवेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः लघुस्वकेन शीतोदकविकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन वा हस्तौ वा पादौ वा दन्तान् वा मुखानि वा उत्क्षालयेद् वा प्रधावेद् वा, उत्क्षालयन्तं वा प्रधावन्तं वा स्वदते ।

२१. जो भिक्षु स्वल्प मात्र (तीन चुल्लू प्रमाण) प्रासुक शीतल जल से अथवा स्वल्प मात्र प्रासुक उष्ण जल से हाथ, पैर, दांत अथवा मुंह का उत्क्षालन करता है अथवा प्रधावन करता है और उत्क्षालन अथवा प्रधावन करने वाले का अनुमोदन करता है।[१२]

कसिणं-पदं

कृत्स्न-पदम्

कृत्स्न-पद

२२. जे भिक्खू कसिणाइं चम्माइं धरेति, धरेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः कृत्स्नानि चर्माणि धरति, धरन्तं वा स्वदते ।

२२. जो भिक्षु कृत्स्न चर्म को धारण करता है अथवा धारण करने वाले का अनुमोदन करता है।[१३]

२३. जे भिक्खू कसिणाइं वत्थाइं धरेति, धरेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः कृत्स्नानि वस्त्राणि धरति, धरन्तं वा स्वदते ।

२३. जो भिक्षु कृत्स्न वस्त्र को धारण करता है अथवा करने वाले का अनुमोदन करता है।[१४]

सयमेव-पदं

स्वयमेव-पदम्

स्वयमेव-पद

२४. जे भिक्खू लाउयपायं वा दारुपायं वा मट्टियापायं वा सयमेव परिघट्टेति वा संठवेति वा जमावेति वा, परिघट्टेंतं वा संठवेंत वा जमावेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अलाबुपात्रं वा दारुपात्रं वा मृत्तिकापात्रं वा स्वयमेव परिघट्टति वा संस्थापयति वा 'जमावेति' वा, परिघट्टन्तं वा संस्थापयन्तं वा 'जमावेंतं' वा स्वदते ।

२४. जो भिक्षु तुम्बे के पात्र, लकड़ी के पात्र अथवा मिट्टी के पात्र का स्वयं ही घर्षण करता है, संस्थापन करता है अथवा विषम को सम करता है अथवा घर्षण करने वाले, संस्थापन करने वाले अथवा विषम को सम करने वाले का अनुमोदन करता है।

२५. जे भिक्खू दंडगं वा लट्ठियं वा अवलेहणियं वा वेणुसूइयं वा सयमेव परिघट्टेति वा संठवेति वा जमावेति वा, परिघट्टेंतं वा संठवेंतं वा जमावेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः दण्डकं वा यष्टिकां वा अवलेखनिकां वा वेणुसूचिकां वा स्वयमेव परिघट्टति वा संस्थापयति वा 'जमावेति' वा, परिघट्टन्तं वा संस्थापयन्तं वा 'जमावेंतं' वा स्वदते ।

२५. जो भिक्षु दण्ड, लाठी, अवलेखनिका अथवा बांस की सूई का स्वयं ही घर्षण करता है, संस्थापन करता है अथवा विषम को सम करता है अथवा घर्षण करने वाले, संस्थापन करने वाले अथवा विषम को सम करने वाले का अनुमोदन करता है।[15]

पडिग्गह-पदं

प्रतिग्रह-पदम्

प्रतिग्रह-पद

२६. जे भिक्खू णियग-गवेसियं पडिग्गहगं धरेति, धरेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः निजक-गवेषितं प्रतिग्रहं धरति, धरन्तं वा स्वदते ।

२६. जो भिक्षु निजक—स्वजन के द्वारा गवेषित पात्र को धारण करता है अथवा धारण करने वाले का अनुमोदन करता है।

२७. जे भिक्खू पर-गवेसियं पडिग्गहगं धरेति, धरेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः पर-गवेषितं प्रतिग्रहं धरति, धरन्तं वा स्वदते ।

२७. जो भिक्षु अस्वजन (जिसका संबंध गृहस्थ जीवन से नहीं है) के द्वारा गवेषित पात्र को धारण करता है अथवा करने वाले का अनुमोदन करता है।

२८. जे भिक्खू वर-गवेसियं पडिग्गहगं धरेति, धरेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः वर-गवेषितं प्रतिग्रहं धरति, धरन्तं वा स्वदते ।

२८. जो भिक्षु प्रवर अथवा सम्मान्य व्यक्ति के द्वारा गवेषित पात्र को धारण करता है अथवा धारण करने वाले का अनुमोदन करता है।

२९. जे भिक्खू बल-गवेसियं पडिग्गहगं धरेति, धरेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः बल-गवेषितं प्रतिग्रहं धरति, धरन्तं वा स्वदते ।

२९. जो भिक्षु बल—प्रभुत्व सम्पन्न व्यक्ति के द्वारा गवेषित पात्र को धारण करता है अथवा धारण करने वाले का अनुमोदन करता है।

३०. जे भिक्खू लव-गवेसियं पडिग्गहगं धरेति, धरेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः लव-गवेषितं प्रतिग्रहं धरति, धरन्तं वा स्वदते ।

३०. जो भिक्षु लव—दान फल के निरूपण द्वारा गवेषित पात्र को धारण करता है अथवा धारण करने वाले का अनुमोदन करता है।[16]

नितिय-पदं

नैत्यिक-पदम्

नैत्यिक-पद

३१. जे भिक्खू नितियं अग्गपिंडं भुंजति, भुंजंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः नैत्यिकम् अग्रपिण्डं भुङ्क्ते, भुञ्जानं वा स्वदते ।

३१. जो भिक्षु नैत्यिक[17] अग्रपिण्ड—श्रेष्ठ आहार[18] भोगता है अथवा भोगने वाले का अनुमोदन करता है।

३२. जे भिक्खू नितियं पिंडं भुंजति, भुंजंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः नैत्यिकं पिण्डं भुङ्क्ते, भुञ्जानं वा स्वदते ।

३२. जो भिक्षु नैत्यिक पिण्ड भोगता है अथवा भोगने वाले का अनुमोदन करता है।

३३. जे भिक्खू नितियं अवड्ढं भुंजति,

यो भिक्षुः नैत्यिकम् अपार्धं भुङ्क्ते,

३३. जो भिक्षु नैत्यिक पिण्ड के अपार्ध—अर्ध

भुंजंतं वा सातिज्जति ।।

भुञ्जानं वा स्वदते।

भाग को भोगता है अथवा भोगने वाले का अनुमोदन करता है।

३४. जे भिक्खू नितियं भागं भुंजति, भुंजंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः नैत्यिकं भागं भुङ्क्ते, भुञ्जानं वा स्वदते।

३४. जो भिक्षु नैत्यिक पिण्ड के भाग—तृतीय भाग को भोगता है अथवा भोगने वाले का अनुमोदन करता है।

३५. जे भिक्खू नितियं अवड्ढभागं भुंजति, भुंजंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः नैत्यिकम् अपार्धभागं भुङ्क्ते, भुञ्जानं वा स्वदते।

३५. जो भिक्षु नैत्यिक पिण्ड के अपार्धभाग—षष्ठ भाग को भोगता है अथवा भोगने वाले का अनुमोदन करता है।[19]

३६. जे भिक्खू नितियं वासं वसति, वसंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः नैत्यिकं वासं वसति, वसन्तं वा स्वदते।

३६. जो भिक्षु नैत्यिक वास करता है अथवा वास करने वाले का अनुमोदन करता है।[20]

संथव-पदं

संस्तव-पदम्

संस्तव-पद

३७. जे भिक्खू पुरेसंथवं वा पच्छासंथवं वा करेति, करेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षु पुरःसंस्तवं वा पश्चात्संस्तवं वा करोति, कुर्वन्तं वा स्वदते।

३७. जो भिक्षु दान से पूर्व अथवा पश्चात् दाता की स्तुति करता है अथवा करने वाले का अनुमोदन करता है।[21]

भिक्खायरिया-पदं

भिक्षाचर्या-पदम्

भिक्षाचरिका-पद

३८. जे भिक्खू समाणे वा वसमाणे वा गामाणुगामं वा दूइज्जमाणे पुरे संथुयाणि वा पच्छासंथुयाणि वा कुलाइं पुव्वामेव पच्छा वा भिक्खायरियाए अणुपविसति, अणुपविसंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः सन् वा वसन् वा ग्रामानुग्रामं वा दूयमानः पुरस्संस्तुतानि वा पश्चात्संस्तुतानि वा कुलानि पूर्वमेव पश्चाद् वा भिक्षाचर्यायै अनुप्रविशति, अनुप्रविशन्तं वा स्वदते।

३८. जो भिक्षु स्थिरवास में रहता हुआ, नवकल्पी विहार करता हुआ अथवा ग्रामानुग्राम परिव्रजन करता हुआ पूर्व परिचित (पितृकुल आदि) अथवा पश्चात् परिचित (श्वसुर कुल आदि) कुलों में भिक्षाचरिका से पूर्व अथवा पश्चात् प्रविष्ट होता है अथवा प्रविष्ट होने वाले का अनुमोदन करता है।[22]

अण्णउत्थिय-गारत्थिय-अपरिहारिय-पदं

अन्ययूथिक-अगारस्थित-अपारिहारिक-पदम्

अन्यतीर्थिक-अगारस्थित-अपारिहारिक-पद

३९. जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा परिहारिओ अपरिहारिएण सद्धिं गाहावइ-कुलं पिंडवाय-पडियाए अणुपविसति वा णिक्खमति वा, अणुपविसंतं वा णिक्खमंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा पारिहारिकः वा अपारिहारिकेण सार्द्धं 'गाहा'पतिकुलं पिण्डपात-प्रतिज्ञया अनुप्रविशति वा निष्क्रामति वा, अनुप्रविशन्तं वा निष्क्रामन्तं वा स्वदते।

३९. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के साथ अथवा पारिहारिक (उद्युक्तविहारी जैन साधु) अपारिहारिक (सावद्य की वर्जना न करने वाले साधु) के साथ पिण्डपात के संकल्प से गृहपतिकुल में प्रवेश अथवा निष्क्रमण करता है और प्रवेश अथवा निष्क्रमण करने वाले का अनुमोदन करता है।

४०. जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा परिहारिओ अपरिहारिएण सद्धिं बहिया वियारभूमिं वा विहारभूमिं वा णिक्खमति वा पविसति वा, णिक्खमंतं वा पविसंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा पारिहारिकः वा अपारिहारिकेण सार्द्धं बहिः विचारभूमिं वा विहारभूमिं वा निष्क्रामति वा प्रविशति वा, निष्क्रामन्तं वा प्रविशन्तं वा स्वदते।

४०. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के साथ अथवा पारिहारिक अपारिहारिक के साथ बाह्य विचारभूमि (उत्सर्गभूमि) अथवा विहारभूमि (स्वाध्यायभूमि) में प्रवेश अथवा निष्क्रमण करता है अथवा प्रवेश अथवा निष्क्रमण करने वाले का अनुमोदन करता है।

४१. जे भिक्खू अण्णउत्थएण वा गारत्थिएण वा परिहारिओ अपरिहारिएहि सद्धिं गामाणुगामं दूइज्जति, दूइज्जंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा पारिहारिकः अपारिहारिकेण सार्द्धं ग्रामानुग्रामं दूयते, दूयमानं वा स्वदते।

४१. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के साथ अथवा पारिहारिक अपारिहारिक के साथ ग्रामानुग्राम परिव्रजन करता है अथवा परिव्रजन करने वाले का अनुमोदन करता है।[२३]

भोयण-जाय-पदं

भोजनजात-पदम्

भोजनजात-पद

४२. जे भिक्खू अण्णयरं भोयण-जायं पडिगाहेत्ता सुब्भिं-सुब्भिं भुंजति, दुब्भिं-दुब्भिं परिट्ठवेति, परिट्ठवेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः अन्यतरद् भोजनजातं प्रतिगृह्य 'सुब्भिं' 'सुब्भिं' भुङ्क्ते, 'दुब्भिं' 'दुब्भिं' परिष्ठापयति, परिष्ठापयन्तं वा स्वदते।

४२. जो भिक्षु नाना प्रकार का भोजन प्रतिग्रहण कर मनोज्ञ-मनोज्ञ खा लेता है और अमनोज्ञ-अमनोज्ञ का परिष्ठापन करता है अथवा परिष्ठापन करने वाले का अनुमोदन करता है।

पाणग-जाय-पदं

पानकजात-पदम्

पानकजात-पद

४३. जे भिक्खू अण्णयरं पाणग-जायं पडिगाहेत्ता पुप्फयं-पुप्फयं आइयइ, कसायं-कसायं परिट्ठवेति, परिट्ठवेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः अन्यतरत् पानकजातं प्रतिगृह्य 'पुप्फयं-पुप्फयं' (पुष्पकं पुष्पकं) आपिबति, 'कसायं-कसायं' (कषायं-कषायं) परिष्ठापयति, परिष्ठापयन्तं वा स्वदते।

४३. जो भिक्षु नाना प्रकार का पानक प्रतिग्रहण कर मनोज्ञ-मनोज्ञ पी लेता है और अमनोज्ञ-अमनोज्ञ का परिष्ठापन करता है अथवा परिष्ठापन करने वाले का अनुमोदन करता है।[२४]

बहुपरियावण्ण-भोयण-पदं

बहुपर्यापन्न-भोजन-पदम्

बहुर्यापन्न-भोजन-पद

४४. जे भिक्खू मणुण्णं भोयण-जायं बहुपरियावण्णं, अदूरे तत्थ साहम्मिया संभोइया समणुण्णा अपरिहारिया संता परिवसंति, ते अणापुच्छित्ता अणिमंतिया परिट्ठवेति, परिट्ठवेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः मनोज्ञं भोजनजातं बहुपर्यापन्नम्, अदूरे तत्र साधर्मिकाः साम्भोगिकाः समनोज्ञाः अपारिहारिकाः सन्तः परिवसन्ति, तान् अनापृच्छ्य अनिमन्त्र्य परिष्ठापयति, परिष्ठापयन्तं वा स्वदते।

४४. भिक्षु नाना प्रकार का मनोज्ञ भोजन लाए और वह अधिक मात्रा में आ गया, उस समय उसका परिष्ठापन करना होता है किन्तु परिपार्श्व क्षेत्र में सांभोजिक, समनोज्ञ, अपारिहारिक साधर्मिक साधु निवास कर रहे हैं, उन्हें पूछे बिना, उनको निमंत्रित किए बिना, जो भिक्षु उसका परिष्ठापन करता है अथवा परिष्ठापन करने वाले का अनुमोदन करता है।[२५]

सागारिय-पदं

४५. जे भिक्खू सागारिय-पिंडं गिण्हति, गिण्हंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः सागारिकपिण्डं गृह्णाति, गृह्णन्तं वा स्वदते।

४५. जो भिक्षु सागारिक—शय्यातर के पिण्ड को ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

४६. जे भिक्खू सागारिय-पिंडं भुंजति, भुंजंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः सागारिकपिण्डं भुङ्क्ते, भुञ्जानं वा स्वदते।

४६. जो भिक्षु शय्यातरपिण्ड का उपभोग करता है अथवा उपभोग करने वाले का अनुमोदन करता है।

४७. जे भिक्खू सागारिय-कुलं अजाणिय अपुच्छिय अगवेसिय पुव्वामेव पिंडवाय-पडियाए अणुप्पविसति, अणुप्पविसंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः सागारिककुलं अज्ञात्वा अपृष्ट्वा अगवेषयित्वा पूर्वमेव पिण्डपातप्रतिज्ञया अनुप्रविशति, अनुप्रविशन्तं वा स्वदते।

४७. जो भिक्षु शय्यातरकुल को जाने बिना, पूछे बिना, गवेषणा किए बिना पहले ही पिण्डपात की प्रतिज्ञा से अनुप्रवेश करता है अथवा अनुप्रवेश करने वाले का अनुमोदन करता है।

४८. जे भिक्खू सागारिय-नीसाए असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा ओभासिय-ओभासिय जायति, जायंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः सागारिकनिश्रया अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा अवभाष्य अवभाष्य याचते, याचमानं वा स्वदते।

४८. जो भिक्षु शय्यातर की निश्रा से (जिस घर में शय्यातर गया हुआ हो, वहां उसके प्रभाव का उपयोग कर) अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य की मांग-मांग कर याचना करता है अथवा याचना करने वाले का अनुमोदन करता है।[२६]

सेज्जासंथारय-पदं

शय्यासंस्तारक-पदम्

शय्यासंस्तारक-पद

४९. जे भिक्खू उडुबद्धियं सेज्जा-संथारयं परं पज्जोसवणाओ उवातिणाति, उवातिणंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः ऋतुबद्धिकं शय्यासंस्तारकं परं पर्युषणायाः उपातिक्रामति, उपातिक्रामन्तं वा स्वदते।

४९. जो भिक्षु ऋतुबद्ध काल (चातुर्मास के अतिरिक्त शेष आठ मास का काल) में याचित शय्या और संस्तारक को पर्युषणा (वर्षावास का प्रथम दिन—श्रावण कृष्णा एकम) के बाद रखता है अथवा रखने वाले का अनुमोदन करता है।

५०. जे भिक्खू वासावासियं सेज्जा-संथारयं परं दसरायकप्पाओ उवातिणाति, उवातिणंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः वर्षावार्षिकं शय्यासंस्तारकं परं दशरात्रकल्पात् उपातिक्रामति, उपातिक्रामन्तं वा स्वदते।

५०. जो भिक्षु वर्षावास में याचित शय्या और संस्तारक को दसरात्र कल्प से अधिक (चातुर्मास-सम्पन्नता की दस रात्रि के बाद) रखता है अथवा रखने वाले का अनुमोदन करता है।[२७]

५१. जे भिक्खू उडुबद्धियं वा वासावासियं वा सेज्जा-संथारगं

यो भिक्षुः ऋतुबद्धिकं वा वर्षावार्षिकं वा शय्यासंस्तारकम् उपरि सिच्यमानं प्रेक्ष्य

५१. जो भिक्षु ऋतुबद्ध अथवा वर्षावास काल के लिए गृहीत शय्या-संस्तारक को वर्षा में

उवरि सिज्जमाणं पेहाए न ओसारेति, न ओसारेंतं वा सातिज्जति ।।

न अपसारयति, न अपसारयन्तं वा स्वदते।

भीगता देखकर हटाता नहीं है अथवा न हटाने वाले का अनुमोदन करता है।[२८]

५२. जे भिक्खू पाडिहारियं सेज्जा-संथारयं दोच्चं अणणुण्णवेत्ता बाहिं णीणेति, णीणेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः प्रातिहारिकं शय्यासंस्तारकं द्विः अननुज्ञाप्य बहिः नयति, नयन्तं वा स्वदते।

५२. जो भिक्षु प्रातिहारिक शय्या और संस्तारक को दुबारा अनुज्ञा लिए बिना बाहर ले जाता है अथवा ले जाने वाले का अनुमोदन करता है।[२९]

५३. जे भिक्खू पाडिहारियं सेज्जा-संथारयं आयाए अपडिहट्टु संपव्वयइ, संपव्वयंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः प्रातिहारिकं शय्यासंस्तारकम् आदाय अप्रतिहृत्य संप्रव्रजति, संप्रव्रजन्तं वा स्वदते।

५३. जो भिक्षु प्रातिहारिक शय्या और संस्तारक को ग्रहण कर प्रत्यर्पित किए बिना (सौंपे बिना) संप्रव्रजन (ग्रामान्तर-विहरण) करता है अथवा संप्रव्रजन करने वाले का अनुमोदन करता है।

५४. जे भिक्खू सागारिय-संतियं सेज्जा-संथारयं आयाए अविगरणं कट्टु अणप्पिणित्ता संपव्वयइ, संपव्वयंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः सागारिकसत्कं शय्यासंस्तारकम् आदाय अविकरणं कृत्वा अनर्प्य संप्रव्रजति, संप्रव्रजन्तं वा स्वदते।

५४. जो भिक्षु शय्यातर के शय्या-संस्तारक का ग्रहण कर उनका पुनः विकरण किए (स्वयंकृत बन्धन आदि को खोले) बिना तथा पुनः उन्हें सौंपे बिना संप्रव्रजन करता है अथवा संप्रव्रजन करने वाले का अनुमोदन करता है।

५५. जे भिक्खू पाडिहारियं वा सागारिय-संतियं वा सेज्जा-संथारयं विप्पणट्ठं ण गवेसति, ण गवेसंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः प्रातिहारिकं वा सागारिकसत्कं वा शय्यासंस्तारकं विप्रणष्टं न गवेषति, न गवेषन्तं वा स्वदते।

५५. जो भिक्षु प्रातिहारिक अथवा शय्यातर के खोए हुए शय्या और संस्तारक की गवेषणा नहीं करता है अथवा गवेषणा न करने वाले का अनुमोदन करता है।[३०]

पडिलेहण-पदं

प्रतिलेखन-पदम्

प्रतिलेखन-पद

५६. जे भिक्खू इत्तरियंपि उवहिं ण पडिलेहेति, ण पडिलेहेंतं वा सातिज्जति–

यो भिक्षुः इत्वरिकमपि उपधिं न प्रतिलिखति, न प्रतिलिखन्तं वा स्वदते।

५६. जो भिक्षु इत्वरिक (जघन्य और मध्यम) उपकरण का भी प्रतिलेखन नहीं करता अथवा प्रतिलेखन न करने वाले का अनुमोदन करता है।[३१]

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घातियं ।।

तत्सेवमानः आपद्यते मासिकं परिहारस्थानम् उद्घातिकम्।

–इनका आसेवन करने वाले को उद्घातिक मासिक (लघुमासिक) परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) प्राप्त होता है।

टिप्पण

१. सूत्र १-७

पादप्रोञ्छन भिक्षु की औपग्रहिक उपधि है। इसे पैर पौंछने के काम में लिया जाता था। पट्टक और दो निषद्याओं से रहित रजोहरण पादप्रोञ्छन कहलाता था।[1]

रजोहरण औधिक उपधि है। भिक्षु को किसी वस्तु को लेना, रखना हो, कायोत्सर्ग आदि के लिए खड़ा होना, बैठना अथवा सोना हो, ये सारे कार्य प्रमार्जनपूर्वक करने होते हैं। प्रमार्जन का साधन रजोहरण है तथा वह भिक्षु का लिंग (चिह्न) भी है। वर्तमान में जिसे ओघा (रजोहरण) कहा जाता है, वह पादप्रोञ्छन से भिन्न उपकरण है।

प्रस्तुत आलापक में दारुदण्डयुक्त पादप्रोञ्छन के निर्माण, ग्रहण, धारण, वितरण, दान एवं परिभोग करने वाले भिक्षु मात्र के लिए प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है, जबकि कप्पो (बृहत्कल्पसूत्र) में निर्ग्रन्थ के लिए दारुदण्डयुक्त पादप्रोञ्छन रखना विहित माना गया है। निशीथभाष्यकार के अनुसार दारुदण्डयुक्त पादप्रोञ्छन के निषेध का हेतु भार की अधिकता एवं उससे होने वाली आत्म-संयमविराधना आदि दोष हैं।[2] इससे प्रतीत होता है कि भिक्षु यदि अपेक्षाविशेष से काष्ठदण्डयुक्त पादप्रोञ्छन रखे या बनाए तो उसे भिक्षाचर्या आदि में साथ लेकर न जाए। कप्पो (बृहत्कल्पसूत्र) में निर्ग्रन्थी के लिए काष्ठदण्डयुक्त पादप्रोञ्छन का निषेध प्रज्ञप्त है। बृहत्कल्पभाष्य में अपवादरूप में निर्ग्रन्थी के लिए चपटे दारुदण्डयुक्त पादप्रोञ्छन का विधान किया गया है।[3] स्पष्टतः उनका यह विधान ब्रह्मचर्य-गुप्ति की दृष्टि से है।

प्रस्तुत आगम में निर्ग्रन्थ के लिए दारुदण्डयुक्त पादप्रोञ्छन को धारण आदि करना प्रायश्चित्तार्ह कार्य माना गया है जबकि कप्पो (बृहत्कल्पसूत्र) (५।३५) में निर्ग्रन्थ के लिए दारुदण्डयुक्त पादप्रोञ्छन को धारण करना विहित माना गया है। सामान्य तौर में उक्त दोनों सूत्रों में विसंगति प्रतीत हो रही है। इन दोनों में संगति का सूत्र अनुसंधान का विषय है।

शब्द विमर्श

- **धारण**—अपरिभुक्त रूप में रखना।[4]
- **वितरण**—ग्रहण की अनुमति देना।[5]
- **दान**—प्रदान करना।[6]
- **परिभोग**—काम में लेना।[7]

२. सूत्र ८

रजोहरण के समान पादप्रोञ्छन भी और्णिक, औष्ट्रिक आदि पांच प्रकार का होता है। गीले पादप्रोञ्छन से प्रमार्जन आदि कार्य करने पर वह कुथित हो सकता है, उसकी दशिका में गोलक बंध सकते हैं, वर्षा में अप्काय की विराधना संभव है। अतः सामान्यतः भिक्षु न उसे गीला करे और न सुखाए।

कदाचित् वर्षा आदि के कारण गीला हो जाए तो उसे यतनापूर्वक आधी धूप में सुखाए तथा बीच-बीच में मसल कर पुनः आतप में रखें ताकि उसकी दशिका सूख कर कड़ी न हो जाए।

शब्द विमर्श

- **विसुयाव**—यह देशी धातु है इसका अर्थ है सुखाना।[8]

३. सूत्र ९

प्रथम उद्देशक में सचित्त वस्तु—पुष्प आदि की गन्ध को सूंघने का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है। प्रस्तुत सूत्र में अचित्त वस्तु—चंदन, माला, विलेपन आदि की गन्ध सूंघने का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है। गन्ध सूंघने के निषेध के कारण सूत्र १।१० के टिप्पण से ज्ञातव्य हैं।

४. सूत्र १०

यदि वसति में वर्षा का पानी एकत्र हो जाने से आवागमन में संयमविराधना एवं आत्मविराधना की संभावना हो और अन्य वसति

---

१. **निभा. भा. २ चू. पृ. ६८—पादे पुंछति जेण तं पादपुंछणं, पट्टयदुनिसिज्जवज्जियं रओहरणमित्यर्थः।**

२. **वही. गा. ८२८—**
इहरवि ताव गरुयं, किं पुण भत्तोग्गहे अधव पाणे।
भारे हत्थुवघातो पडमाणे संजमायाए।।

३. **बृभा. गा. ५९७५—**
ते चेव दारुदंडे पाउंछणगम्मि जे सनालम्मि।
दुण्ह वि कारणग्रहणे, चप्पडए दंडए कुज्जा।।

४. **निभा. २ चू. पृ. ७०—गहियं संतं अपरिभोगेन धारयति।**

५. **वही—'वियरति'—ग्रहणानुज्ञां ददातीत्यर्थः।**

६. **वही, पृ. ७१—विभयणं दानमित्यर्थः।**

७. **वही—परिभोगो तेन कार्यकरणमित्यर्थः।**

८. **वही, गा. ८४५—विसुआवणसुक्कणं।**

उपलब्ध न हो तो सोपान, संक्रम अथवा आलम्बन बनाना अपेक्षित होता है।

प्रस्तुत सूत्र में उत्सर्गतः सोपान आदि बनाने का निषेध किया गया है। उपर्युक्त कारणों से यदि सोपान आदि बनाना अनिवार्य हो तो निर्माता भिक्षु जितेन्द्रिय, दयालु और दक्ष हो। वह गृहस्थ अवस्था में इन कार्यों को कर चुका हो, गीतार्थ हो तथा उपयुक्त होकर सोपान, संक्रम आदि का निर्माण करे। तथा कार्यसम्पन्न के बाद इनका विकरण–विनाश कर दें।[1]

५. सूत्र ११

जहां वसति में वर्षा का पानी रुक जाने के कारण मुख्य द्वार, आवागमन एवं उठने-बैठने के स्थान में कीचड़ हो जाए, निरन्तर गीले उपाश्रय में काई, हरियाली या द्वीन्द्रिय आदि जीवों की उत्पत्ति से संयमविराधना एवं अजीर्ण आदि रोगों से आत्मविराधना की संभावना हो, वहां अन्य उपाश्रय के अभाव में गीतार्थ एवं जितेन्द्रिय आदि गुणों से सम्पन्न भिक्षु यतनापूर्वक पानी निकालने की नाली का निर्माण कर सकता है।[2] इस प्रकार यह निषेध औत्सर्गिक है।

६. सूत्र १२

बाढ़, नदी उत्तरण, दीर्घ अटवी आदि आपवादिक परिस्थितियों में अन्य लिंग धारण करने हेतु, ग्लानार्थ औषध रखने हेतु, संपातिम जीवों से आहार आदि की सुरक्षा हेतु यदि छींका या छींके का ढक्कन रखना अपेक्षित हो तो भिक्षु पूर्वकृत छींके और उसके ढक्कन की गवेषणा करे। उसके अभाव में गीतार्थ भिक्षु यतनापूर्वक इनका निर्माण कर सकता है।[3]

७. सूत्र १३

भिक्षु निम्नांकित प्रयोजनों से पांच प्रकार की चिलिमिली रख सकता है–

● चोर, म्लेच्छ आदि का भय हो, वहां मूल्यवान उपधि की प्रतिलेखना हेतु।

● गृहस्थों से आकीर्ण स्थान में उड्डाह (अपवाद) का वर्जन करने के लिए आहार के समय।

● जहां निरन्तर स्त्रियां दिखती हों, उस उपाश्रय में ब्रह्मचर्य की सुरक्षा हेतु।

● जहां रक्त, मल, मूत्र आदि अशुचि पदार्थों के कारण स्वाध्याय में बाधा हो अथवा मल आदि की दुर्गन्ध के कारण अस्वाध्यायी हो, वहां स्वाध्याय के लिए।

● जहां सम्पातिम जीवों का प्राचुर्य हो, वहां जीव-दया के लिए।

● रोगी के आहार, नीहार, विश्राम, औषध आदि के लिए एकान्त अपेक्षित हो।

● द्वारस्थगन, मृत-परिष्ठापन आदि अन्य प्रयोजनों में।[4]

यदि पूर्वकृत चिलिमिली उपलब्ध न हो तो भिक्षु यतनापूर्वक चिलिमिली का निर्माण करे। प्रस्तुत सूत्र में उत्सर्गतः निष्प्रयोजन अथवा कारण में अयतना से चिलिमिली का निर्माण करने का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है।

विस्तार हेतु द्रष्टव्य–कप्पो १/१८ का टिप्पण, निभा. गा. ६५१-६६१ एवं बृभा. गा. २३७४-२३८१

८. सूत्र १४-१७

प्रस्तुत आगम के प्रथम उद्देशक में गृहस्थ या अन्यतीर्थिक से सूई, कैंची आदि का परिष्कार करवाने का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है। प्रस्तुत आलापक में उनका स्वयं परिष्कार करने का प्रायश्चित्त है। भिक्षु इन औपग्रहिक उपकरणों के परिष्कार में समय एवं श्रम लगाए तो उसके स्वाध्याय में व्याघात, संयमविराधना, आत्मविराधना आदि दोष संभावित हैं।

९. सूत्र १८

स्नेहरहित, निष्पिपास (स्पृहारहित) वचन परुष वचन कहलाता है।[5] भाष्यकार ने परुष वचन के द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव–ये चार भेद करते हुए उनका विस्तृत, व्यावहारिक एवं मनोवैज्ञानिक विवरण प्रस्तुत किया है।[6] परुष वचन सावद्य है, क्रोध, द्वेष आदि से उत्पन्न होता है, सूक्ष्म मानसिक हिंसा का हेतु है अतः भिक्षु के लिए उसका स्वल्प प्रयोग भी निषिद्ध है।

---

१. निभा. गा. ६२६,६२७–
जिइंदियो घिणी दक्खो, पुव्वं तक्कम्मभावितो।
उवउत्तो जती कुज्जा, गीयत्थो वा असागरे।।
कतकज्जे तु मा होज्जा, तओ जीवविराधणा।
मोत्तुं तज्जाय सोवाणे, सेसे विकरणं करे।।

२. वही, गा. ६३६–
पणगाति हरित मुच्छण, संजम आता अजीरगेलण्णे।
बहिता वि आयसंजम, उवधीणासो दुगंछा य।।

३. वही, गा. ६४२–
बितियपदवूढज्झामित हरियऽद्धाणे तहेव गेलण्णे।
असिवादि अण्णलिंगे, पुव्वकताऽसति सयं करणं।।

४. वही, गा. ६५५,५६–
सागारिय-सज्झाए पाणदय-गिलाण-सावयभए वा।
अद्धाणमरण वासासु चेव सा कप्पति गच्छे।।
पडिलेहोभयमंडलि इत्थीसागारिएत्थ सागरिए।
घाणालोगज्झाए, मच्छियडोलादिपाणट्ठा।।

५. **वही, भा. ३ चू. पृ. २–प्रणय-नेह-णित्तणहं फरुसं।**

६. **(क) वही, गा. ८५२–दव्वे खेत्ते काले भावम्मि य लहुसगं भवे फरुसं।**
(ख) विस्तार हेतु द्रष्टव्य वही, गा. ८५३-८६६।

१०. सूत्र १९

हास्य, प्रमाद, निद्रा आदि के कारण तथा बिना विचारे बोलना स्वल्प मृषावाद कहलाता है। भाष्यकार ने इसके भी द्रव्य, क्षेत्र आदि चार प्रकार कर, उनका विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया है।[१] भिक्षु को तीन करण, तीन योग से असत्य वचन का सर्वथा त्याग होता है अतः उसके लिए स्वल्पमात्र मृषावाद का प्रयोग भी प्रतिषिद्ध है।

११. सूत्र २०

दांत कुरेदने के लिए तिनका आदि आज्ञा के बिना लेना, अननुज्ञात भूमि पर उच्चारप्रस्रवण का विसर्जन, स्वल्पकालीन विश्राम हेतु आज्ञा के बिना वृक्ष आदि के नीचे बैठना आदि कार्य स्वल्प अदत्तादान के अन्तर्गत आते हैं।[२] प्रस्तुत सूत्र में इसके लिए लघुमासिक प्रायश्चित्त का विधान है।

१२. सूत्र २१

प्रस्तुत सूत्र में स्वल्प जल (तीन चुल्लू से अधिक) से भी शरीर के अवयवों को धोने का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है। शरीर के कुछ अवयवों का प्रक्षालन देशस्नान और सभी अवयवों का प्रक्षालन सर्वस्नान कहलाता है। आहार के बाद मणिबंध तक हाथ धोना, अशुचि पदार्थों से लिप्त पैर आदि अवयवों को स्वल्प जल से धोना आचीर्ण देशस्नान है। निष्कारण हाथ, मुंह आदि अवयवों को धोने में विभूषा, सौन्दर्य वृद्धि आदि का भाव रहता है, षट्कायिक जीवों की विराधना भी संभव है। अतः भिक्षु के लिए अस्नान व्रत ही श्रेयस्कर माना गया है।[३]

प्रस्तुत प्रसंग में निशीथभाष्य एवं उसकी चूर्णि में देश, सर्व, आचीर्ण-अनाचीर्ण, सकारण-निष्कारण आदि से उत्पन्न विविध विकल्पों, स्नान के दोषों तथा अपवादपदों का सुविस्तृत वर्णन किया गया है।[४]

१३. सूत्र २२

प्रस्तुत सूत्र का निर्देश है कि अखण्ड चर्ममय पदत्राण का प्रयोग नहीं किया जाए। विशेष कारण के बिना भिक्षु को चर्म ग्रहण करना नहीं कल्पता। विशेष कारण में स्थविर के चर्म धारण करने की मर्यादा है।[५] कप्पो (बृहत्कल्पसूत्र) में चार सूत्रों में सलोम चर्म एवं कृत्स्न चर्म के विषयक विधि और निषेध का निरूपण मिलता है।[६]

प्रस्तुत सन्दर्भ में भाष्यकार ने पादत्राण धारण करने के दोष, उसके अपवाद के कारण तथा अन्य अनेक तथ्यों सम्बन्धी चालना-प्रत्यवस्थान प्रस्तुत किया है।[७]

१४. सूत्र २३

कृत्स्न वस्त्र का अभिप्राय है बहुमूल्य एवं विशिष्ट वर्ण से युक्त वस्त्र। कप्पो (बृहत्कल्पसूत्र) में निर्ग्रन्थों एवं निर्ग्रन्थियों के लिए अभिन्न एवं कृत्स्न वस्त्र के धारण एवं परिभोग का निषेध एवं भिन्न एवं अकृत्स्न वस्त्र के धारण एवं परिभोग का विधान किया गया है।[८] भाष्यकारों ने द्रव्य, क्षेत्र आदि की दृष्टि से कृत्स्न के चार प्रकार कर उनका विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया है।[९]

१५. सूत्र २४,२५

प्रस्तुत आगम के प्रथम उद्देशक के ३९वें सूत्र के मूलपाठ 'अलमप्पणो करणयाए' के आधार पर अपरिकर्म वाला समीकरण मुनि स्वयं कर सकता है। प्रस्तुत सूत्र में समीकरण का भी निषेध है। यह निषेध औत्सर्गिक है। पूर्वसूत्र इसका अपवाद सूत्र है।

१६. सूत्र २६-३०

प्रस्तुत आलापक में अन्य व्यक्ति द्वारा गवेषित पात्र को ग्रहण करने तथा दानफल का कथन कर पात्र ग्रहण करने का प्रायश्चित्त बतलाया गया है। ज्ञातिजन, सम्मान्य या प्रभुत्वसम्पन्न व्यक्ति आदि के द्वारा पात्र की गवेषणा एवं याचना किए जाने पर पात्र का स्वामी लज्जा, गौरव अथवा मित्र आदि की प्रेरणा के कारण पात्र दे देता है, किन्तु उसके मन में संयतिदान का अहोभाव उत्पन्न नहीं होता फलतः उत्कृष्ट निर्जरा लाभ भी नहीं होता। प्रत्युत् उसमें अप्रीति, अप्रतीति एवं प्रद्वेष की संभावना रहती है।[१०] अतः भिक्षु स्वयं ही पात्र की गवेषणा एवं याचना करे। कदाचित् अत्यन्त अभाव में स्वजन आदि से पात्र की गवेषणा करवाए तो गृहस्थ को पात्र-स्वामी के घर भेजने के पश्चात् स्वयं उसके घर जाए। भिक्षु

१. (क) निभा. गा. ८७५–दव्वे खेत्ते काले, भावे य लहुसगं मुसं होति।
(ख) विस्तार हेतु द्रष्टव्य–वही, गा. ८७६-८८२
२. वही, गा. ८८७,८८८
दव्वे इक्कडकढिणादिएसु खेत्ते उच्चारभूमिमादीसु।
काले इत्तरियमवी, अजाइत्तु चिट्ठमाईसु।।
भावे पाउग्गस्सा अणणुण्णवणाइ तप्पढमताए।
ठायंते उडुबद्धे, वासाणं वुड्डवासे य।।
३. दसवे. ६।६२
४. विस्तार हेतु द्रष्टव्य (क) निभा. गा. ८९५-९१२
(ख) दसवे. ३।१ का टिप्पण १२
५. वव. ८।५
६. कप्पो ३/३-६
७ (क) निभा. गा. ९१३-९४७
(ख) तुलना हेतु द्रष्टव्य कप्पो ३।५ का टिप्पण।
८. कप्पो ३/७-१०
९. (क) नि.भा. गा. ९४८-९५४ तथा बृभा. गा. ३८८१-३८९८।
(ख) विस्तार हेतु द्रष्टव्य कप्पो ३।७ का टिप्पण।
१०. निभा. गा. ९८१,९८२।

स्वजन आदि के समक्ष पात्र की याचना करे और वे स्वजन आदि उसका उपबृंहण करे—साधु को पात्र देने से महान् पुण्य बंधता है आदि। इस प्रकार यतनापूर्वक, परोक्षविधि से गृहस्थ के द्वारा पात्र की गवेषणा-मार्गणा करवाने पर उपर्युक्त दोष नहीं आते—ऐसा भाष्यकार एवं चूर्णिकार का मत है।[1]

भाष्यकार के अनुसार औधिक एवं औपग्रहिक उपधि, शय्या एवं आहार के विषय में भी यही विधि ज्ञातव्य एवं प्रयोक्तव्य है।[2]

शब्द विमर्श

१. वर—प्रवर अथवा सम्मान्य। जो जिस ग्राम आदि में पूज्य, प्रमाणभूत अथवा प्रधान हो, जैसे—ग्राम में ग्रामामहत्तर आदि।[3]

२. बल—प्रभुत्व सम्पन्न। जिसका जिस पर प्रभुत्व हो।[4]

३. लव गवेषित—दान फल के निरूपण द्वारा गवेषित (पात्र)।[5]

सूत्र ३१

१७. नैत्यिक (णितिय)

चूर्णिकार ने नितिय शब्द के दो अर्थ किए हैं—१. ध्रुव अथवा शाश्वत और २. जो प्रथम दिया जाता है।[6]

निर्युक्तिकार ने नैत्यिक अग्रपिण्ड के चार विकल्प किए हैं—१. गृहस्थ द्वारा निमन्त्रण। २. प्रेरणा—साधु द्वारा संशयकरण—घर आने पर देगा या नहीं? ३. परिमाण—साधु द्वारा परिमाण की पृच्छा—तू कितना देगा और कितने समय तक देगा? ४. स्वाभाविक।

प्रथम तीन विकल्प वर्जनीय हैं और स्वाभाविक नैत्यिक अग्रपिण्ड को कल्पनीय माना गया है।[7]

१८. अग्रपिण्ड (अग्गपिंड)

अग्रपिण्ड का अर्थ है श्रेष्ठ आहार।[8] इसका एक अर्थ—निष्पन्न भोजन का कुछ अंश, जो देवता आदि के लिए निश्चित रूप से दिया जाए—यह भी मिलता है। इस प्रकार प्रस्तुत सूत्र में प्रयुक्त 'नित्य अग्रपिण्ड' तथा अग्रिम सूत्र में प्रयुक्त 'नित्य पिण्ड' शब्द से वस्तु के अन्तर की सूचना मिलती है। जो श्रेष्ठ आहार निमन्त्रणपूर्वक नित्य दिया जाए वह नित्याग्रपिण्ड तथा जो साधारण भोजन नित्य दिया जाए, वह नित्यपिण्ड कहलाता है।

१९. सूत्र ३२-३५

आयारचूला में कहा गया है कि जिन कुलों में नित्य पिण्ड, नित्य-अग्रपिण्ड, नित्यभाग, नित्य अपार्धभाग दिया जाए, वहां मुनि भिक्षा के लिए न जाए।[9] इससे जान पड़ता है कि उस समय अनेक कुलों में प्रतिदिन नियत रूप से भोजन देने का प्रचलन था, जो नित्यपिण्ड कहलाता था और कुछ कुलों में प्रतिदिन के भोजन का कुछ अंश ब्राह्मण या पुरोहित के लिए अलग रखा जाता था, वह अग्रपिण्ड, अग्रासन, अग्रकूर और अग्राहार कहलाता था।[10] नित्य दान वाले कुलों में प्रतिदिन बहुत याचक नियत भोजन पाने के लिए आते रहते थे। उन्हें पूर्णपोष, अर्धपोष या चतुर्थांश पोष दिया जाता था।[11] प्रस्तुत सूत्र कदम्बक में नित्यपिण्ड, नित्य अपार्ध, नित्य भाग और नित्य अपार्धभाग का भोग करने वाले के लिए प्रायश्चित्त का विधान है। इसका निषेध भी निमन्त्रण आदि पूर्वक नित्य भिक्षा ग्रहण के प्रसंग में किया गया है।

शब्द विमर्श

१. पिण्ड—भोजन।

२. अवड्ढ—अपार्द्ध अर्थात् आधा।

३. भाग—तीसरा भाग।

४. अवड्ढभाग—छठा भाग (तीसरे का आधा)। भाष्य में इसके लिए 'उवड्ढभाग शब्द का प्रयोग मिलता है।[12]

२०. सूत्र ३६

प्रस्तुत सूत्र में नैत्यिक वास का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है। ऋतुबद्ध

---

१. निभा. गा. ९८७—
पुव्वोवट्ठमलद्धे णीयमपरं वा वि पट्ठवेतूणं।
पच्छा गंतुं जायति, समणुव्वूहंति य गिही वि।।
(चूर्णि) पुव्वं संजएण गविट्ठं ण लद्धं ताहे संजतो नियं परं वा पुव्वं तत्थ पट्ठवेति, गच्छ तुमं तो पच्छा अम्हे गमिस्सामो, तुज्झ य पुरओ तं मग्गिस्सामो, तुमं उववूहेज्जासि—'जतीणं पत्तदाणेण महंतो पुण्णखंधो बज्झति', एवं उववूहिते जति ण लब्भति, पच्छा भणेज्जासु वि 'देहि' त्ति एवं पदोसादयो दोसा परिहरिया भवंति।

२. वही, गा. ९९८

३. वही, गा. ९८९—
जो जत्थ अच्चितो खलु, पमाणपुरिसो पधाणपुरिसो वा।
तम्मि वरसद्दो खलु, सो गामियरट्ठितादी तु।।

४. वही, गा. ९९१—
जो जस्सुवरिं तु पभू, बलियतरो वा वि जस्स जो उवरिं।
एसो बलवं भणितो, सो गहवति-सामि-तेणादि।।

५. वही, गा. ९९३—
दाणफलं लवितूणं लावावेतु गिहि-अण्णतित्थीहिं।
जो पादं उप्पाए, लवगविट्ठं तु तं होति।।

६. वही, भा. २, चू. पृ. १०३—णितियं ध्रुवं सासयमित्यर्थः।........जं पढमं दिज्जति सो पुण भत्तट्ठो वा भिक्खामेत्तं वा होज्जा।

७. (क) वही, गा. ९९९
(ख) विस्तार हेतु द्रष्टव्य दसवे. ३।२ का नियाग पद का टिप्पण।

८. निभा. भा. २, चू. पृ. १०३—अग्गं वरं प्रधानं।

९. आचू. १।१९

१०. आचू. १।१९ वृ.पृ. ३२६—शाल्योदनादेः प्रथममद्धृत्य भिक्षार्थं व्यवस्थाप्यते सोऽग्रपिण्डः।

११. (क) वही
(ख) विस्तार हेतु द्रष्टव्य—दसवे. ३।२ (टि. १०)

१२. निभा. गा. १००९—
पिण्डो खलु भत्तट्ठो, अवड्ढपिंडो उ तस्सं जं अद्धं।
भागो तिभागमादी, तस्सद्धमुवड्ढभागो य।।

काल और वर्षाकाल में मर्यादा के अतिरिक्त एक स्थान पर रहना नैत्यिक वास है।[1] भिक्षु की प्रशस्त विहारचर्या है—हेमन्त और ग्रीष्म में विहरण करना।[2] जो भिक्षु हेमन्त और ग्रीष्म अर्थात् ऋतुबद्धकाल में एक महीने तथा वर्षाकाल में चार महीने की मर्यादा का अतिक्रमण करता है, उसके अतिक्रान्त क्रिया लगती है तथा जहां मासकल्प और चतुर्मासकल्प व्यतीत किया, उसका दुगुना काल अन्यत्र बिताए बिना वहां पुनः मासकल्प एवं चतुर्मासकल्प करने से उपस्थान क्रिया लगती है।[3]

भाष्य एवं चूर्णि में द्रव्य, क्षेत्र, काल एवं भाव के आधार पर नैत्यिकवास का विस्तृत वर्णन उपलब्ध होता है।[4]

ज्ञातव्य है कि राग आदि के कारण नैत्यिकवास दोष है, किन्तु वृद्ध और ग्लान की सेवा हेतु, अशिव, दुर्भिक्ष आदि आपवादिक परिस्थितियों में तथा ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि विशुद्ध आलम्बनों से अतिरिक्त काल तक रहना, निरन्तर एक क्षेत्र में रहना भी दोषयुक्त नहीं।[5]

२१. सूत्र ३७

दान देने से पूर्व दाता की स्तुति/प्रशंसा करना पुरःसंस्तव तथा दान देने के पश्चात् स्तुति करना पश्चात्संस्तव है। ये दोनों उत्पादना के दोष हैं। श्रेष्ठ भिक्षा मिले, दाता मुझसे प्रभावित हो—इत्यादि भावों से स्तुति कर आहार, उपधि आदि ग्रहण करना भिक्षु के लिए अकल्पनीय है। भाष्यकार ने आत्मसंस्तव, परसंस्तव व उभय-संस्तव, द्रव्य-संस्तव, क्षेत्र-संस्तव, काल-संस्तव, भाव-संस्तव और वचन-संस्तव की तथा उनसे होने वाले दोषों की सविस्तर विवेचना की है।[6]

२२. सूत्र ३८

प्रस्तुत सूत्र में परिचित कुलों में भिक्षाचरिका के काल से पूर्व और उस काल के अतिक्रान्त होने के बाद प्रविष्ट होने वाले को प्रायश्चित्तार्ह माना गया है। समय प्रबन्धन का सूत्र है—काले कालं समायरे।

अकाल—अप्राप्तकाल अथवा अतिक्रान्तकाल में भिक्षार्थगमन करने वाला भिक्षु स्वयं को भी क्लान्त करता है और यथोचित भिक्षा न मिलने पर ग्राम की भी गर्हा करता है।[7]

परिचित कुलों में भिक्षाकाल से पूर्व जाने पर आधाकर्म, क्रीतकृत आदि एषणा दोषों की संभावना रहती है, अकालचारी के प्रति अन्य गृहस्थ के मन में स्तेन, मैथुनार्थी आदि की शंका भी संभव है।[8]

कदाचित् अज्ञानवश या अशिव, ग्लान्य आदि विशेष परिस्थितियों में अकाल में परिचित कुल में पहुंच जाए, तब भी उनको दिखाई न दे[9] अथवा उन्हें पूर्वोक्त दोषों के परिहारार्थ अवबोध दे।[10]

शब्द-विमर्श

१. **समाण**—स्थिरवास में रहता हुआ।[11]

२. **वसमाण**—नवकल्पी विहार करता हुआ।[12]

३. **दुइज्जमाण**—इसका अर्थ है—परिव्रजन करता हुआ।[13] ग्रामानुग्राम परिव्रजन सकारण—विशेष प्रयोजन से भी हो सकता है और निष्कारण भी। नए देशों का दर्शन, विशिष्ट आहार की प्राप्ति आदि के लिए जाना निष्प्रयोजन विहार के उदाहरण हैं।[14] स्वाध्याय योग्य स्थान की उपलब्धि एवं आवश्यक धर्मोपकरण की उपलब्धि के लिए जाना आदि सप्रयोजन विहार के उदाहरण हैं।[15]

४. **पुरेसंथुय पच्छासंथुय**—संस्तुत का अर्थ है परिचित।[16] गृहस्थकाल की दृष्टि से पितृकुल—माता-पिता आदि पुरःसंस्तुत तथा श्वसुरकुल—सास ससुर आदि पश्चात्संस्तुत होते हैं। इसी प्रकार श्रामण्य-प्रतिपत्ति एवं श्रामण्यकाल की अपेक्षा से भी अनेक कुल पुरःसंस्तुत एवं पश्चात्संस्तुत हो सकते हैं।[17]

५. **अणुपविस**—अनुप्रवेश का अर्थ है—भिक्षा-काल के अतिक्रान्त होने पर प्रवेश।[18]

---

१. निभा. २ चू.पृ. १०५—उडुबद्धवासासु अतिरिक्तं वसतः णितिय-वासो भवति।
२. कप्पो १।३६।
३. आचू. २।३४,३५ (विशेष जानकारी हेतु द्रष्टव्य—आगमसंपादन की समस्याएं, पृ. ९०)
४. निभा. गा. १०११-१०१९
५. वही, गा. १०१६,१०२१,१०२४
६. विस्तार हेतु द्रष्टव्य निभा. गा. १०२५-१०४९।
७. दसवे. ५।२।५
८. निभा. गा. १०७५,१०७६
९. वही, भा. २ चू. पृ. ११७—एए वि पत्तो तेसिं दरसावं ण देति, अन्नत्थ ठायति।
१०. वही—पुव्वुत्तदोसपरिहरणट्ठताए संजयट्ठा कीरंतं वारेति परिहरति वा।
११. वही, पृ. ११३—समाणो नाम समधीनः अप्रवसितः।
१२. वही—णवविहं विहारं विहरंतो वसमाणो भण्णति।
१३. वही—अनु-पश्चाद्भावे गामातो अण्णो गामो अणुगामो, दोसु पाएसु सिसिरगिम्हेसु वा रिइज्जति त्ति।
१४. वही, १०५५—
आयरिय साधुवंदण, चेतिय णीयल्लगा तहासण्णी।
गमणं च देसदंसण, णिक्कारणिए य खड्गादि।।
१५. वही, १०६३—
वाघाते असिवाती, उवधिस्स व कारणा व लेवस्स।
बहुगुणतरं च गच्छे, आयरियादी व आगाढे।।
१६. वही, भा. २, पृ. ११६—संथुयं णाम लोगजत्ता परिचियं।
१७. वही, गा. १०७०-१०७२।
१८. वही, भा. २, पृ. ११३—अनुप्रवेशो पच्छा, भिक्खाकाले अतिक्रान्ते इत्यर्थः।

२३. सूत्र ३९-४१

प्रस्तुत आलापक में अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के साथ भिक्षु का तथा अपारिहारिक के साथ पारिहारिक का क्या व्यवहार होना चाहिए—इसका निर्देश प्राप्त होता है। अन्यतीर्थिक—चरक, परिव्राजक, शाक्य, आजीवक आदि तथा ब्राह्मण आदि भिक्षाजीवी गृहस्थ भी अपना जीवनयापन भिक्षावृत्ति से करते हैं तथा पारिहारिक श्रमण भी अपना जीवनयापन भिक्षाचर्या से करते हैं किन्तु भिक्षु को उनके साथ-साथ भिक्षाचर्या हेतु गृहस्थ कुल में नहीं जाना चाहिए। उद्युक्त विहारी श्रमण यदि गृहस्थ, अन्यतीर्थिक अथवा शिथिलाचारी श्रमण के साथ भिक्षार्थ प्रवेश करे तो षड्जीवनिकाय के वध की अनुमोदना, अंतराय, अप्रियता, कलह, प्रद्वेष आदि दोषों की संभावना रहती है, शासन की अप्रभावना का प्रसंग आ सकता है।[१]

इसी प्रकार उनके साथ स्वाध्याय भूमि एवं संज्ञा भूमि में जाने से तथा विहार करने पर भी इन्हीं दोषों की संभावना रहती है। अतः भिक्षु को इनसे पृथक् भिक्षा आदि के लिए जाना चाहिए। संयोगवश कहीं उनसे आगे, पीछे किसी घर में प्रविष्ट हो भी जाए तो अन्यभाव प्रदर्शित करे ताकि उन्हें या दाता को यह ज्ञात न हो कि वह उनके साथ आया है।[२]

ज्ञातव्य है कि जहां गृहस्थ या अन्यतीर्थिक से पृथक् स्वाध्यायभूमि न हो, वहां अनागाढ़योगी मानसिक अनुप्रेक्षा करे। केवल आगाढ़योगी (जिसे यथासमय श्रुत का उद्देश, समुद्देश आदि अनिवार्यतः करना होता है उस) के लिए गृहस्थ आदि के साथ स्वाध्याय करना अपवादपद में विधि सम्मत है।[३] आयारचूला में भी गृहस्थ एवं अन्यतीर्थिक के साथ भिक्षार्थगमन, विचारभूमि एवं विहारभूमि में गमन आदि पदों का निषेध निर्दिष्ट है।[४]

शब्द विमर्श

१. **परिहारी**—उद्यतविहारी, जो आधाकर्म आदि एषणा दोषों तथा षड्जीवनिकाय-समारम्भ आदि सावद्य योगों का परिहार करता है।

२. **अपरिहारी**—सावद्य की वर्जना न करने वाला साधु।[५]

३. **पिण्डपातप्रतिज्ञा**—गृहस्थ के द्वारा दिए जाते हुए अशन आदि को ग्रहण करने के संकल्प अथवा प्रज्ञा से।[६] चूर्णिकार ने इसे सूत्रपातप्रतिज्ञा, धान्यपातप्रतिज्ञा आदि शब्दप्रयोग के दृष्टान्त से समझाया है।[७]

४. **विचारभूमि**—संज्ञा विसर्जन का स्थान।[८]

५. **विहारभूमि**—स्वाध्याय करने का स्थान।[९]

२४. सूत्र ४२,४३

भिक्षु के लिए निर्देश है कि वह गृहीत आहार अथवा पानक, चाहे वह मनोज्ञ हो या अमनोज्ञ, सब कुछ खा ले, छोड़े नहीं।[१०] जो भिक्षु मनोज्ञ आहार अथवा पानक को खाता या पीता है और अमनोज्ञ का परिष्ठापन करता है, वह मायिस्थान का स्पर्श करता है अतः भिक्षु ऐसा न करे।[११] इस गृद्धि के कारण वह अंगारदोष का सेवन करता है, लोभ एवं रसलोलुपता के कारण एषणा के अन्यान्य दोषों का सेवन करता हुआ वह दुर्गति को प्राप्त करता है। भाष्यकार ने इन दोषों से बचने के लिए एक सुन्दर विधि का निर्देश दिया है—गुरु, अतिथि, ग्लान आदि को प्रायोग्य आहार परोसने के बाद मंडली-रात्निक सारे अविरोधी द्रव्यों को मिला दे, ताकि सबको समान भोजन मिल सके।[१२]

शब्द विमर्श

१. **जात**—प्रस्तुत सूत्रद्वयी में भोजन और पानक दोनों के साथ 'जात' शब्द का प्रयोग हुआ है। जात शब्द के दो अर्थ हैं—१. प्रासुक[१३] और २. प्रकार।[१४]

२. **सुब्भि**—मनोज्ञ, जो भोजन शुभ वर्ण, रस, गन्ध एवं स्पर्श से युक्त हो अथवा सुगन्ध युक्त हो।

३. **दुब्भि**—अमनोज्ञ, जो भोजन शुभ वर्ण, गन्ध, रस एवं स्पर्श से रहित हो अथवा दुर्गन्ध युक्त हो।[१५]

---

१. निभा. गा. १०८५,१०८६।

२. वही, भा. २ पृ. १२०—गिहत्थ-अण्णतित्थिएसु पुव्वपविट्ठे सयं वा पुव्वपविट्ठो 'अण्णभावे' त्ति एरिसं भावं दरिसति जेण ण णज्जति, जहा एतेण समाणं हिंडति।

३. वही, पृ. १२१—आगाढजोगिस्स उद्देससमुद्देसादओ अवस्सं कायव्वा, उवस्सए य असज्झाइयं, बहि पडिणीयादि, अतो तेण समाणं गंतुं करेंतो सुद्धो।

४. आचू. १।८-१०

५. निभा १०८१—
आहाकम्मादीणिकाए सावज्जजोगकरणं च।
परिहारित्तपरिहरं, अपरिहरंतो अपरिहारी॥

६. वही, भा. २, चू.पृ. ११८—पिंडो असणादी, गिहिणा दीयमाणस्स पिंडस्य पात्रे पातः अनया प्रज्ञया।

७. वही

८. वही, पृ. १२०—सण्णावोसिरणभूमि वियारभूमी।

९. वही—असज्झाए सज्झायभूमी जा सा विहारभूमी।

१०. आचू. १।१२५

११. वही, १।१२५,१२६

१२. निभा. ११११—
तम्हा विधीए भुंजे दिण्णम्मि गुरूण सेस रातिणितो।
भुयति करंबेऊणं, एवं समता तु सव्वेसिं॥

१३. वही, भा. २ चू.पृ. १२३—जातग्रहणात् प्रासुकं।

१४. वही, पृ. १२६—जातमिति प्रकारवाचकः।

१५. वही, गा. १११२,१११३—
वण्णेण य गंधेण य, रसेण फासेण जं तु उववेतं।
तं भोयणं तु सुब्भिं, तव्विवरीयं भवे दुब्भिं॥
रसालमवि दुग्गंधिं, भोयणं तु न पूइतं।
सुगंधमरसालं पि, पूइतं तेण सुब्भिं तु॥

४. **पुप्फ**—मनोज्ञ, स्वच्छ और वर्ण, गंध और रस आदि गुणों से युक्त श्रेष्ठ जल।

५. **कसाय**—अमनोज्ञ, प्रतिकूल रस, गन्ध या स्पर्श वाला कलुषित जल।[1]

सुब्भिं, दुब्भिं, पुप्फं और कसायं—ये चारों सामयिकी संज्ञाएं हैं।

२५. सूत्र ४४

सामान्यतः भिक्षु भिक्षा में प्रमाणोपेत आहार लाए—यही विधि है। फिर भी कभी ग्लान, अतिथि आदि के लिए अनेक संघाटक आहार ले आएं या कोई दाता अचानक बड़ा पात्र भर दे—इत्यादि कारणों से बहुत मात्रा में आहार पर्याप्त हो सकता है—मात्रातिरिक्त हो सकता है। ऐसी स्थिति में जो भिक्षु अपने पार्श्ववर्ती उपाश्रय में सांभोजिक, उद्यतविहारी अपारिहारिक (निरतिचार चारित्र का पालन करने वाले) अन्य भिक्षुओं को उपनिमंत्रित किए बिना आहार का परिष्ठापन करता है, वह प्रायश्चित्तार्ह है। उस मनोज्ञ आहार को वे अन्य भिक्षु ग्रहण करें या न करें, जो आत्मविशुद्धि से उन्हें उपनिमंत्रित करता है, उसे विपुल निर्जरा का लाभ होता है।[2]

शब्द विमर्श

१. **बहुपरियावण्ण**—अनेक प्रकार से परिष्ठापन के योग्य।[3]

२. **संभोइय**—सांभोगिक, जिनका परस्पर आहार, पानी आदि के आदान-प्रदान का संभोज हो, संबंध हो।[4]

३. **समणुण्ण**—समनोज्ञ, उद्यतविहारी।[5]

४. **अपरिहारिय**—निरतिचारचारित्री।[6] ज्ञातव्य है कि यहां अपरिहारी शब्द का प्रयोग सूत्र २।३९-४१ में प्रयुक्त अपरिहारी शब्द से सर्वथा भिन्न अर्थ में है।

२६. सूत्र ४५-४८

प्रस्तुत आलापक में प्रथम दो सूत्रों में शय्यातर-पिण्ड के ग्रहण एवं भोग का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है। 'सागारिक' शय्यातर के लिए प्रयुक्त सामयिकी संज्ञा है। जो भिक्षु शय्यातर की भलीभांति जानकारी किए बिना पिण्डपात की प्रतिज्ञा से गृहस्थकुल में अनुप्रविष्ट होता है, उसके भी शय्यातर-पिण्ड के ग्रहण की संभावना रहती है। शय्यातर के प्रभाव से अन्य गृहस्थों से गृहीत आहार आदि भी प्रकारान्तर से शय्यातर-पिण्ड है अतः सूत्रकार ने इन्हें समानरूप से प्रायश्चित्तार्ह माना है। दसवेआलियं में शय्यातरपिण्ड को अनाचार माना गया है।[7] शय्यातरपिण्ड के ग्रहण से एषणा आदि अनेक दोषों की संभावना रहती है अतः सभी तीर्थंकरों ने इसका निषेध किया है।[8] भिक्षु को शय्यातर के घर से अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, वस्त्र, पात्र, सूई, कैंची, कर्णशोधनक एवं नखच्छेदनी आदि का ग्रहण नहीं करना चाहिए।

घास, डगलक (ढेला), क्षार, मल्लक (सिकोरा) आदि को शय्यातरपिण्ड नहीं माना गया है। शय्यातर का पुत्र यदि वस्त्र, पात्र सहित दीक्षा ले तो वह भी शय्यातरपिण्ड नहीं।[9] शय्यातर कौन होता है, कब होता है आदि विषयों की विस्तृत जानकारी हेतु द्रष्टव्य—कप्पो २।१३ का टिप्पण तथा निशीथभाष्य गा. ११३८-१२०४।

शब्द विमर्श

१. **सागारियणीसा**—शय्यातर की निश्रा। शय्यातर के प्रभाव का उपयोग कर अशन, पान आदि का अवभाषण करना शय्यातर की निश्रा से अशन, पान का आदि ग्रहण करना कहलाता है।[10]

२७. सूत्र ४९,५०

प्रस्तुत सूत्रद्वयी में काल का अतिक्रमण कर शय्या-संस्तारक रखने का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है। प्राचीन काल में भिक्षु ऋतुबद्ध काल में सामान्यतः घास के शय्या, संस्तारक एवं फलक नहीं रखते थे, किन्तु जहां भूमि आर्द्र हो, उपधि आदि के संसक्त होने की आशंका हो, वहां अशुषिर, संधि एवं बीज रहित घास वाले या हल्के फलक शय्या-संस्तारक के रूप में रखते थे।[11] वर्षाकाल में पक्के फर्श पर भी शय्या-संस्तारक का उपयोग करने की परम्परा थी। ऐसी स्थिति में जो शय्या-संस्तारक जिस कालावधि के लिए याचित एवं गृहीत हो, उस अवधि का अतिक्रमण करने पर माया, मृषा, अप्रत्यय, गृहस्थों का उपालम्भ आदि दोष संभावित हैं, अतः भिक्षु के लिए यह विहित नहीं।[12]

---

१. निभा, गा. ११०४—
जं गंधरसोवेतं अच्छं व दवं तु तं भवे पुप्फं।
जं दुब्भिगंधमरसं, कलुसं वा तं भवे कसायं।।

२. वही, गा. ११३१-११३३

३. वही, भा. २ चू.पृ. १२७—बहुणा प्रकारेण परित्यागमावन्नं बहुपरियावन्नं भण्णति।

४. वही—संभुंजंते संभोइया।

५. वही—समणुण्णा उज्जयविहारी।

६. वही—संभोइयगहणात्तो चेव अपरिहारिगहणं सिद्धं, किं पुणो अपरिहारिगहणं? आचार्याह—चउभंगे द्वितीयभंगे सातिचारपरिहरणार्थं।

७. दसवे. ३।५

८. निभा. गा. ११५९,११६०

९. वही, गा. ११५१-११५४

१०. वही, २ पृ. १४७—सेज्जायरं परघरे दट्ठुं दाविस्सति त्ति असणाति ओभासति, एसा णिस्सा।

११. वही, गा. १२२४,१२२५।

१२. वही, गा. १२३९—
मायामोसमदत्तं, अप्पच्चय-खिंसणा उवालंभो।
वोच्छेदपदोसादी, दोसाति उवातिणंतस्स।।

शब्द विमर्श

१. शय्या–शरीरप्रमाण बिछौना, जो यथासंस्तृत (निश्चल) हो।[1]

२. संस्तारक–अढ़ाई हाथ प्रमाण बिछौना, यह परिशाटी, अपरिशाटी आदि अनेक प्रकार का होता है।[2]

३. पर्युषणा–वर्षावास का प्रथम दिन (श्रावण कृष्णा एकम)।[3]

४. दसरात्रकल्प–चातुर्मास सम्पन्नता की दस रात्रि के बाद (मृगशिर कृष्णा दसमी) तक।

५. उवातिणाव–अतिक्रमण करना (विवक्षित काल के बाद रखना)।[4]

२८. सूत्र ५१

भिक्षु शय्या-संस्तारक को प्रतिलेखना, प्रत्यर्पण आदि के लिए उपाश्रय से बाहर लाए और वे वर्षा में भीगते रहें तो अनेक प्रकार के दोषों की संभावना रहती है–१. संयमविराधना–अप्कायिक तथा काई आदि आ जाए तो वनस्पतिकायिक जीवों की विराधना। २. आत्मविराधना–गीले शय्या-संस्तारक का उपयोग करने से अजीर्ण आदि रोग। ३. शय्या-संस्तारक के स्वामी को स्थिति ज्ञात हो जाए तो अपभ्राजना और व्यवच्छेद (भविष्य में शय्या-संस्तारक अथवा अन्य प्रातिहारिक वस्तु की अप्राप्ति)। अतः जो वस्तु जब तक भिक्षु की निश्रा में है, तब तक उसके प्रति वह सावधान रहे।

शब्द विमर्श

१. उवरिं सिज्जमाण–वर्षा से भीगते हुए।[5]

२९. सूत्र ५२

ववहारो में प्रातिहारिक और शय्यातर सम्बन्धी शय्या-संस्तारक के दो सूत्र हैं।[6] उनका निर्देश है कि शय्या-संस्तारक चाहे शय्यातर के हों या अन्य गृहस्थकुल से प्रातिहारिक रूप में लाए गए हों, भिक्षु उनके स्वामी की पुनः अनुज्ञा लिए बिना उन्हें उपाश्रय से बाहर न ले जाए। प्रस्तुत सूत्र में 'पाडिहारिय' शब्द से दोनों प्रकार के शय्या-संस्तारक को पुनः अनुज्ञा लिए बिना बाहर ले जाने का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है।[7] स्वामी की अनुज्ञा के बिना शय्या आदि को अन्यत्र ले जाने से अप्रत्यय, अप्रीति आदि अनेक दोष संभव हैं। अतः भिक्षु के लिए निर्देश है कि वह अन्य उपाश्रय में जाते समय बिना पूछे कुछ भी अपने साथ न ले जाए।[8]

३०. सूत्र ५३

प्रस्तुत सूत्र में शय्या-संस्तारक प्रत्यर्पित किए बिना विहार करने वाले को प्रायश्चित्तार्ह माना गया है। कप्पो (बृहत्कल्प सूत्र) में प्रातिहारिक शय्या-संस्तारक को विहार से पूर्व पुनः गृहस्वामी को सौंपने का निर्देश है।[9]

जो मुनि प्रातिहारिक रूप में गृहीत शय्या-संस्तारक आदि का प्रत्यर्पण नहीं करता, वह अप्रीति और अवहेलना का पात्र बनता है। शय्या-संस्तारक के स्वामी को जब ज्ञात होता है कि मुनि शय्या-संस्तारक लौटाए बिना ही यहां से विहार कर गए हैं तो उसके मन में साधुओं के प्रति अविश्वास पैदा होता है। वह भविष्य में साधुओं को शय्या-संस्तारक अथवा अन्य वस्तुएं भी न देने का निर्णय कर लेता है।[10] इसलिए आवश्यक है कि मुनि जिस घर से शय्या-संस्तारक आदि जो प्रातिहारिक वस्तु लाए, उसे विधिपूर्वक प्रत्यर्पित करे। यदि किसी कारण से वह स्वयं प्रत्यर्पित न कर सके तो अन्य मुनि के द्वारा उसे यथासंभव संस्तारक आदि लौटा दे।[11]

शब्द विमर्श

● **पाडिहारिय**–लौटाने योग्य (प्रत्यर्पणीय) वस्तु पाडिहारिय (प्रातिहारिक) कहलाती है।[12]

● **आदाय**–ग्रहण करके।[13]

● **अपडिहट्टु**–प्रत्यर्पण किए बिना।[14]

३१. विकरण किए बिना (अविगरणं कट्टु)

कप्पो (बृहत्कल्पसूत्र) में निर्देश है कि मुनि विहार से पूर्व शय्या-संस्तारक का विकरण कर–स्वयंकृत बंधन को खोलकर उसे उसके स्वामी को विधिपूर्वक प्रत्यर्पित करे। शय्या-संस्तारक के विकरण का अर्थ है–उसके अवयवों को व्यवस्थित करना। संस्तारक के दो प्रकार हैं[15]–

परिशाटी–यह प्रायः तृणमय होता है।

---

१. निभा. गा. १२१७–**सव्वंगिया सेज्जा....अहासंथडा व सेज्जा.....।**
२. (क) वही–**बेहत्थद्धं च होति संथारो।**
(ख) विस्तार हेतु द्रष्टव्य–वही, गा. १२१८-१२२०
३. वही, भा. ३ चू. पृ. १३०–**आसाढ-पुण्णिमाए पज्जोसवेंति।**
४. पाइय.–उवाइणाव (अति + क्रम)–उल्लंघन करना, बिताना।
५. निभा. २ चू.पृ. १६३–**वासेणोवरि सेज्जमाणं।**
६. वव. ८।६,७
७. निभा २ चू. पृ. १६४–**असेज्जातरस्स सेज्जातरस्स वा संतितो जति पुण्णे मासकप्पे दोच्चं अणणुण्णवेत्ता अंतोहिंतो बाहिं णीणेति, बाहिंतो वा अंतो अतिणेति, तहा वि मासलहुं।**
८. निभा. गा. १२८९–
अण्णउवस्सयगमणे, अणपुच्छा णत्थि किंचि णेतव्वं।।
९. कप्पो ३।२५
१०. निभा. १३०२-१३०४ (चू.पृ. १६८, १६९)
११. वही, गा. १३०६ (चू.पृ. १६९)
१२. वही, भा. २ चू.पृ. १६४–**पाडिहारिको प्रत्यर्पणीय।**
१३. वही, पृ. १६७–**आदाय गृहीत्वा।**
१४. वही–**अप्पडिहट्टु नाम अणप्पिणित्ता।**
१५. कप्पो ३/२६

अपरिशाटी—यह प्रायः फलकमय होता है।[1]

जो तृण जिस पुंज से ले, उनको वहीं स्थापित करे। जिन्हें पार्श्वभाग से ले उन्हें पार्श्वभाग में रखे—यह तृणों का विकरण है।[2] फलक को यथास्थान रखना, कंबिकाओं को खोलना—यह अपरिशाटी शय्या-संस्तारक का विकरण है।[3] विकरण किए बिना शय्या-संस्तारक लौटाने वाला भिक्षु आज्ञाभंग, अनवस्था आदि दोषों को प्राप्त होता है।[4]

यदि कोई व्याघात हो और शय्या-संस्तारक को यथास्थान ले जाकर रखना संभव न हो तो उन्हें वहीं स्थान पर रख दे लेकिन उनका विकरण अवश्य करे—उनको व्यवस्थित करके ही छोड़े।[5]

३२. सूत्र ५५

भिक्षु शय्या-संस्तारक चाहे शय्यातर के घर से प्राप्त करे अथवा अन्य गृहस्थ से प्रातिहारिक रूप में लाए, उसे उसकी सुरक्षा के प्रति भी जागरूक रहना होता है। कदाचित् सुरक्षा के प्रति जागरूक रहने पर भी शय्या-संस्तारक का अपहरण हो जाए, तो उसकी अन्वेषणा करनी चाहिए। जो भिक्षु विप्रणष्ट—खोए हुए शय्या-संस्तारक की खोज नहीं करता, वह आज्ञाभंग, अनवस्था, अप्रत्यय, अपयश आदि दोषों को प्राप्त होता है।[6]

भाष्यकार ने शय्या-संस्तारक खोने के कुछ कारणों का निर्देश किया है यथा—

● गृहस्थ के घर से लाते समय अथवा प्रत्यर्पण हेतु ले जाते समय वसति से बाहर छोड़ दिया हो।

● प्रतिलेखन हेतु अथवा संसक्त हो जाने पर धूप में देने के लिए वसति से बाहर रखा गया हो।

● म्लेच्छभय, अग्नि, बाढ़ आदि के संभ्रम (हड़बड़ी) अथवा गांव उजड़ने आदि कारणों से वसति सूनी छोड़ दी गई हो।[7]

प्रस्तुत सन्दर्भ में भाष्यकार ने शून्य वसति तथा बाल अथवा ग्लान भिक्षु को वसतिपाल रूप में स्थापित करने के दोष तथा खोए हुए संस्तारक को पुनः प्राप्त करने की विविध विधियों की विस्तार से चर्चा की है।[8]

तुलना हेतु द्रष्टव्य—कप्पो ३/२७ का टिप्पण।

३३. सूत्र ५६

जो भिक्षु प्रतिलेखना में जागरूक नहीं होता, वह षड्जीवनिकाय का विराधक होता है।[9] अतः अहिंसा महाव्रत की सम्यक् आराधना के लिए अपेक्षित है कि भिक्षु यथासमय अपने समस्त प्रतिलेखनीय उपकरणों की प्रतिलेखना एवं प्रमार्जना करे। प्रतिलेखना का अर्थ है—दृष्टि (चक्षुदर्शन) से देखना एवं प्रमार्जना का अर्थ है—झाड़कर साफ करना, रजोहरण, गोच्छग आदि से साफ करना।[10] उत्तरज्झयणाणि के छब्बीसवें अध्ययन में प्रतिलेखना, प्रतिलेखन-काल तथा प्रतिलेखना के गुण और दोषों का विस्तृत विवरण मिलता है।

प्रस्तुत सूत्र में इत्वरिक उपधि की प्रतिलेखना न करने पर भी मासलघु प्रायश्चित्त का विधान किया गया है। भाष्यकार के अनुसार इत्वरिक पद से जघन्य एवं मध्यम उपधि का ग्रहण होता है।[11] चूर्णिकार के अनुसार इत्वरिक के ग्रहण से सारे उपकरणों का ग्रहण होता है।[12]

---

१. बृभा. वृ. पृ. १२४२—परिशाटी तृणादिमयः, अपरिशाटी फलकादिमयः।
२. निभा. गा. १३१२
३. वही, गा. १३११, १३१२ सचूर्णि
४. वही, गा. १३१०
५. वही, गा. १३१३ सचूर्णि
६. वही, गा. १३५६,१३५७ (सचूर्णि)
७. वही, गा. १३५५
८. वही, गा. १३१४-१३८४
९. उत्तर. २६/३०
१०. निभा. २ चू. पृ. १९३—चक्खुणा पडिलेहणा।.....मुहपोत्तिय-रयहरण-गोच्छगेहिं पमज्जणा।
११. वही, गा. १४३५—इत्तरिओ पुण उवधी, जहण्णओ मज्झिमो य णातव्वो।
१२. वही, भा. २, पृ. १८७—इत्तरियगहणेण सव्वोवकरणगहणं कयं।

तइओ उद्देसो

तीसरा उद्देशक

आमुख

प्रस्तुत उद्देशक के मुख्य प्रतिपाद्य हैं—यात्रिगृह आदि में अशन आदि का अवभाषण का प्रायश्चित्त, अभिहृत आहार का प्रायश्चित्त, भोज-विषयक विधान के अतिक्रमण का प्रायश्चित्त, शरीर का परिकर्म का प्रायश्चित्त एवं परिष्ठापनिका समिति के कुछ अतिक्रमणों का प्रायश्चित्त आदि।

भगवान महावीर का अहिंसा दर्शन सूक्ष्म एवं गंभीर विवेक से युक्त है। जहां पर भी उन्हें सूक्ष्म हिंसा को संभावना लगी, वहां उससे बचने का मार्ग उन्होंने ढूंढ निकाला। यही कारण है कि उन्होंने औद्देशिक, क्रीतकृत, नित्याग्र एवं अभिहृत अशन, पान आदि को वर्जनीय माना।

अभिहृत का शाब्दिक अर्थ है—सम्मुख लाया हुआ। अनाचीर्ण के रूप में इसका अर्थ है—साधु के निमित्त उसको देने के लिए गृहस्थ द्वारा अपने ग्राम, घर आदि से उसके सम्मुख लाया हुआ पदार्थ।

स्वग्रामादेः साधुनिमित्तमभिमुखमानीतमभ्याहृतम्।[1]

प्रस्तुत उद्देशक में इसका प्रवृत्तिलभ्य अर्थ उपलब्ध होता है—कोई गृहस्थ भिक्षु के निमित्त तीन घरों के आगे से आहार लाए तो उसे लेने वाला अथवा लेने वाले की अनुमोदना करने वाला प्रायश्चित्त का भागी होता है। भाष्यकार के अनुसार सौ हाथ अथवा उससे कम हाथ की दूरी से लाया हुआ आहार ग्रहण करना अनाचार नहीं।[2] पिण्डनिर्युक्ति के समान निशीथभाष्य में भी इसे देशाभिहृत और देशदेशाभिहृत माना गया है। जहां से दाता को देने की प्रवृत्ति देखी जा सके,[3] वहां से लाये हुए आहार को उपयोगपूर्वक लेना अनाचार नहीं।

इसी प्रकार कहीं भोज आदि का आयोजन हो और भिक्षु वहां पहुंच कर यह दो, यह दो—इस प्रकार अवभाषण करता है—यह संखड़ी-प्रलोकना कहलाती है। इस प्रकार संखडी प्रलोकना करना, किसी के निषेध किए जाने पर भी उस घर में भिक्षार्थ जाना, यात्रीगृह, बगीचे, आश्रम आदि में आए हुए स्त्री-पुरुषों से अशन-पान आदि का अवभाषण करना आदि प्रतिषिद्ध पदों का भी प्रस्तुत उद्देशक में प्रायश्चित्त-कथन हुआ है। भाष्यकार ने संखड़ी के प्रसंग में यावन्तिका, प्रगणिता आदि अनाचीर्ण-आचीर्ण संखड़ियों का वर्णन करते हुए उनमें होने वाले दोष, उनमें प्रवेश करने की विधि आदि का भी निर्देश दिया है।

प्रस्तुत उद्देशक का एक महत्त्वपूर्ण विषय है—शरीर का प्रतिकर्म। **'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्'**—इस तथ्य से अभिज्ञ भिक्षु शरीर की सर्वथा उपेक्षा नहीं कर सकता और न वह व्रण, गण्ड, अर्श आदि के प्रति लापरवाही कर सकता है। निष्प्रतिकर्मता उसका आदर्श हो सकता है, किन्तु समाधि एवं सूत्रार्थ की अव्यवच्छित्ति के लिए उसे यथापेक्षा, यथावसर कुछ परिकर्म करना पड़ता है। जो भिक्षु निष्कारण पैरों, शरीर, ओष्ठ, आंख आदि का आमार्जन-प्रमार्जन, संबाधन-परिमर्दन, अभ्यंगन-म्रक्षण, उत्क्षालन-प्रधावन आदि परिकर्म करता है, विविध अवयवों की रोमराजि को काटता अथवा व्यवस्थित करता है, आंख, नाक, कान आदि के मैल का निष्कासन एवं विशोधन करता है, वह बाकुशिकत्व का आचरण करता है अतः उसको लघुमासिक प्रायश्चित्त योग्य कार्य माना गया है। प्रस्तुत संदर्भ में भाष्यकार ने एतद्विषयक

१. दसवे. हा. वृ. प. ११६

२. निभा. गा. १४८८

३. पि.नि. १५९—आइण्णे तिन्नि गिहा ते चिय उवओगपुव्वागा।

अपवादों और आमार्जन-प्रमार्जन आदि में ध्यातव्य यतना का निर्देश दिया है। इस सम्पूर्ण प्रकरण को पढ़ने से अनेक आध्यात्मिक, राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं चैकित्सिक (चिकित्सा-सम्बन्धी) विषयों की जानकारी उपलब्ध होती है।

प्रस्तुत उद्देशक के अन्तिम आलापक का सम्बन्ध परिष्ठापनिका समिति से है। भिक्षु किस स्थान पर एवं कब परिष्ठापन न करे, अस्थान में परिष्ठापन करने से किन दोषों की संभावना रहती है, एतद्विषयक अपवाद क्या-क्या हैं?—इत्यादि विषयों की सम्यक् जानकारी के लिए भाष्य एवं चूर्णि सहित प्रस्तुत आलापक मननीय है।

तइओ उद्देसो : तीसरा उद्देशक

मूल

ओभासण-पदं

१. **जे भिक्खू आगंतारेसु वा आरामागारेसु वा गाहावतिकुलेसु वा परियावसहेसु वा अण्णउत्थियं वा गारत्थियं वा असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा ओभासति, ओभासंतं वा सातिज्जति ।।**

२. **जे भिक्खू आगंतारेसु वा आरामागारेसु वा गाहावतिकुलेसु वा परियावसहेसु वा अण्णउत्थिया वा गारत्थिया वा असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा ओभासति, ओभासंतं वा सातिज्जति ।।**

३. **जे भिक्खू आगंतारेसु वा आरामागारेसु वा गाहावतिकुलेसु वा परियावसहेसु वा अण्णउत्थिणीं वा गारत्थिणीं वा असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा ओभासति, ओभासंतं वा सातिज्जति ।।**

४. **जे भिक्खू आगंतारेसु वा आरामागारेसु वा गाहावतिकुलेसु वा परियावसहेसु वा अण्णउत्थिणीओ वा गारत्थिणीओ वा असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा ओभासति, ओभासंतं वा सातिज्जति ।।**

५. **जे भिक्खू आगंतारेसु वा आरामागारेसु वा गाहावतिकुलेसु वा**

संस्कृत छाया

अवभाषण-पदम्

यो भिक्षुः आगंत्रागारेषु वा आरामागारेषु वा 'गाहा'पतिकुलेषु वा पर्यावसथेषु वा अन्ययूथिकं वा अगारस्थितं वा अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा अवभाषते, अवभाषमाणं वा स्वदते ।

यो भिक्षुः आगंत्रागारेषु वा आरामागारेषु वा 'गाहा'पतिकुलेषु वा पर्यावसथेषु वा अन्ययूथिकान् वा अगारस्थितान् वा अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा अवभाषते, अवभाषमाणं वा स्वदते ।

यो भिक्षुः आगंत्रागारेषु वा आरामागारेषु वा 'गाहा'पतिकुलेषु वा पर्यावसथेषु वा अन्ययूथिकीं वा अगारस्थीं वा अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा अवभाषते, अवभाषमाणं वा स्वदते ।

यो भिक्षुः आगंत्रागारेषु वा आरामागारेषु वा 'गाहा'पतिकुलेषु वा पर्यावसथेषु वा अन्ययूथिकीः वा अगारस्थीः वा अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा अवभाषते, अवभाषमाणं वा स्वदते ।

यो भिक्षुः आगंत्रागारेषु वा आरामागारेषु वा 'गाहा'पतिकुलेषु वा पर्यावसथेषु वा

हिन्दी अनुवाद

अवभाषण-पद

१. जो भिक्षु यात्रीगृहों, आरामगृहों, गृहपतिकुलों अथवा आश्रमों में अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य का अवभाषण करता है—मांग-मांग कर लेता है अथवा अवभाषण करने वाले का अनुमोदन करता है।

२. जो भिक्षु यात्रीगृहों, आरामगृहों, गृहपतिकुलों अथवा आश्रमों में अन्यतीर्थिकों अथवा गृहस्थों से अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य का अवभाषण करता है अथवा अवभाषण करने वाले का अनुमोदन करता है।

३. जो भिक्षु यात्रीगृहों, आरामगृहों, गृहपतिकुलों अथवा आश्रमों में अन्यतीर्थिकस्त्री अथवा गृहस्थस्त्री से अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य का अवभाषण करता है अथवा अवभाषण करने वाले का अनुमोदन करता है।

४. जो भिक्षु यात्रीगृहों, आरामगृहों, गृहपतिकुलों अथवा आश्रमों में अन्यतीर्थिकस्त्रियों अथवा गृहस्थस्त्रियों से अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य का अवभाषण करता है अथवा अवभाषण करने वाले का अनुमोदन करता है।

५. जो भिक्षु यात्रीगृहों, आरामगृहों, गृहपतिकुलों अथवा आश्रमों में कुतूहलवश —गोठ या

परियावसहेसु वा कोउहल्ल-पडियाए पडियागतं समाणं अण्णउत्थियं वा गारत्थियं वा असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा ओभासति, ओभासंतं वा सातिज्जति।।

कुतूहलप्रतिज्ञया प्रत्यागतं सन्तं अन्ययूथिकं वा अगारस्थितं वा अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा अवभाषते, अवभाषमाणं वा स्वदते।

पर्यटन के लिए आए हुए अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य का अवभाषण करता है अथवा अवभाषण करने वाले का अनुमोदन करता है।

६. जे भिक्खू आगंतारेसु वा आरामागारेसु वा गाहावतिकुलेसु वा परियावसहेसु वा कोउहल्ल-पडियाए पडियागता समाणा अण्णउत्थिया वा गारत्थिया वा असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा ओभासति, ओभासंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः आगंत्रागारेषु वा आरामागारेषु वा 'गाहा'पतिकुलेषु वा पर्यावसथेषु वा कुतूहलप्रतिज्ञया प्रत्यागतान् सतः अन्ययूथिकान् वा अगारस्थितान् वा अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा अवभाषते, अवभाषमाणं वा स्वदते।

६. जो भिक्षु यात्रीगृहों, आरामगृहों, गृहपतिकुलों अथवा आश्रमों में कुतूहलवश आए हुए अन्यतीर्थिकों अथवा गृहस्थों से अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य का अवभाषण करता है अथवा अवभाषण करने वाले का अनुमोदन करता है।

७. जे भिक्खू आगंतारेसु वा आरामागारेसु वा गाहावतिकुलेसु वा परियावसहेसु वा कोउहल्ल-पडियाए पडियागतं समाणं अण्णउत्थिणीं वा गारत्थिणीं वा असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा ओभासति, ओभासंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः आगंत्रागारेषु वा आरामागारेषु वा 'गाहा'पतिकुलेषु वा पर्यावसथेषु वा कुतूहलप्रतिज्ञया प्रत्यागतां सतीं अन्य-यूथिकीं वा अगारस्थीं वा अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा अवभाषते, अवभाषमाणं वा स्वदते।

७. जो भिक्षु यात्रीगृहों, आरामगृहों, गृहपतिकुलों अथवा आश्रमों में कुतूहलवश आई हुई अन्यतीर्थिकस्त्री अथवा गृहस्थस्त्री से अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य का अवभाषण करता है अथवा अवभाषण करने वाले का अनुमोदन करता है।

८. जे भिक्खू आगंतारेसु वा आरामागारेसु वा गाहावतिकुलेसु वा परियावसहेसु वा कोउहल्ल-पडियाए पडियागता समाणा अण्णउत्थिणीओ वा गारत्थिणीओ वा असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा ओभासति, ओभासंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः आगंत्रागारेषु वा आरामागारेषु वा 'गाहा'पतिकुलेषु वा पर्यावसथेषु वा कुतूहलप्रतिज्ञया प्रत्यागताः सतीः अन्ययूथिकीः वा अगारस्थीः वा अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा अवभाषते, अवभाषमाणं वा स्वदते।

८. जो भिक्षु यात्रीगृहों, आरामगृहों, गृहपतिकुलों अथवा आश्रमों में कुतूहलवश आई हुई अन्यतीर्थिकस्त्रियों अथवा गृहस्थस्त्रियों से अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य का अवभाषण करता है अथवा अवभाषण करने वाले का अनुमोदन करता है।[१]

९. जे भिक्खू आगंतारेसु वा आरामागारेसु वा गाहावतिकुलेसु वा परियावसहेसु वा अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा अभिहडं आहट्टु

यो भिक्षुः आगंत्रागारेषु वा आरामागारेषु वा 'गाहा'पतिकुलेषु वा पर्यावसथेषु वा अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा अभिहृतम् आहृत्य दीयमानं प्रतिषेध्य तमेव

९. जो भिक्षु यात्रीगृहों, आरामगृहों, गृहपतिकुलों अथवा आश्रमों में अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के द्वारा सामने लाकर दिए जाने वाले अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य का प्रतिषेध कर देता है, उसके बाद कुछ दूर

दिज्जमाणं पडिसेहेत्ता तमेव अणुवत्तिय-अणुवत्तिय परिवेढिय-परिवेढिय परिजविय-परिजविय ओभासति, ओभासंतं वा सातिज्जति ।।

अनुवर्त्य-अनुवर्त्य परिवेष्ट्य-परिवेष्ट्य परिजल्प्य-परिजल्प्य अवभाषते, अवभाषमाणं वा स्वदते ।

उस (दाता) के पीछे-पीछे जाता है। फिर उसके आगे, पीछे अथवा पार्श्व में ठहर कर कहता है—तुम्हारा श्रम असफल न हो—इस प्रकार कह कह कर अवभाषण करता है अथवा अवभाषण करने वाले का अनुमोदन करता है।

१०. जे भिक्खू आगंतारेसु वा आरामागारेसु वा गाहावतिकुलेसु वा परियावसहेसु वा अण्णउत्थिएहिं वा गारत्थिएहिं वा असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा अभिहडं आहट्टु दिज्जमाणं पडिसेहेत्ता तमेव अणुवत्तिय-अणुवत्तिय परिवेढिय-परिवेढिय परिजविय-परिजविय ओभासति, ओभासंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः आगंत्रागारेषु वा आरामागारेषु वा 'गाहा'पतिकुलेषु वा पर्यावसथेषु वा अन्ययूथिकैः वा अगारस्थितैः वा अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा अभिहृतम् आहृत्य दीयमानं प्रतिषेध्य तानेव अनुवर्त्य-अनुवर्त्य परिवेष्ट्य-परिवेष्ट्य परिजल्प्य-परिजल्प्य अवभाषते, अवभाषमाणं वा स्वदते ।

१०. जो भिक्षु यात्रीगृहों, आरामगृहों, गृहपति-कुलों अथवा आश्रमों में अन्यतीर्थिकों अथवा गृहस्थों के द्वारा सामने लाकर दिए जाने वाले अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य का प्रतिषेध कर देता है। उसके बाद कुछ दूर उन (दाताओं) के पीछे-पीछे जाता है। फिर उनके आगे, पीछे अथवा पार्श्व में ठहरकर कहता है—तुम्हारा श्रम असफल न हो—इस प्रकार कह कह कर अवभाषण करता है अथवा अवभाषण करने वाले का अनुमोदन करता है।

११. जे भिक्खू आगंतारेसु वा आरामागारेसु वा गाहावतिकुलेसु वा परियावसहेसु वा अण्णउत्थिणीए वा गारत्थिणीए वा असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा अभिहडं आहट्टु दिज्जमाणं पडिसेहेत्ता तमेव अणुवत्तिय-अणुवत्तिय परिवेढिय-परिवेढिय परिजविय-परिजविय ओभासति, ओभासंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः आगंत्रागारेषु वा आरामागारेषु वा 'गाहा'पतिकुलेषु वा पर्यावसथेषु वा अन्ययूथिक्या वा अगारस्थ्या वा अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा अभिहृतम् आहृत्य दीयमानं प्रतिषेध्य तामेव अनुवर्त्य-अनुवर्त्य परिवेष्ट्य-परिवेष्ट्य परिजल्प्य-परिजल्प्य अवभाषते, अवभाषमाणं वा स्वदते ।

११. जो भिक्षु यात्रीगृहों, आरामगृहों, गृहपति-कुलों अथवा आश्रमों में अन्यतीर्थिकस्त्री अथवा गृहस्थस्त्री के द्वारा सामने लाकर दिए जाने वाले अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य का प्रतिषेध कर देता है। उसके बाद कुछ दूर उस (दाता स्त्री) के पीछे-पीछे जाता है। फिर उसके आगे, पीछे अथवा पार्श्व में ठहर कर कहता है—तुम्हारा श्रम असफल न हो—इस प्रकार कह कह कर अवभाषण करता है अथवा अवभाषण करने वाले का अनुमोदन करता है।

१२. जे भिक्खू आगंतारेसु वा आरामागारेसु वा गाहावतिकुलेसु वा परियावसहेसु वा अण्णउत्थिणीहिं वा गारत्थिणीहिं वा असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा अभिहडं आहट्टु दिज्जमाणं पडिसेहेत्ता तमेव अणुवत्तिय-अणुवत्तिय परिवेढिय-परिवेढिय परिजविय-परिजविय

यो भिक्षुः आगंत्रागारेषु वा आरामागारेषु वा 'गाहा'पतिकुलेषु वा' पर्यावसथेषु वा अन्ययूथिकीभिः वा अगारस्थीभिः वा अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा अभिहृतम् आहृत्य दीयमानं प्रतिषेध्य ताः एव अनुवर्त्य अनुवर्त्य परिवेष्ट्य-परिवेष्ट्य परिजल्प्य-परिजल्प्य अवभाषते, अवभाषमाणं वा स्वदते ।

१२. जो भिक्षु यात्रीगृहों, आरामगृहों, गृहपति-कुलों अथवा आश्रमों में अन्यतीर्थिकस्त्रियों अथवा गृहस्थस्त्रियों के द्वारा सामने लाकर दिए जाने वाले अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य का प्रतिषेध कर देता है। उसके बाद कुछ दूर उन (दाता स्त्रियों) के पीछे-पीछे जाता है। फिर उनके आगे, पीछे अथवा पार्श्व में ठहर कर कहता है—तुम्हारा श्रम

ओभासति, ओभासंतं वा सातिज्जति।।

असफल न हो—इस प्रकार कह कह कर अवभाषण करता है अथवा अवभाषण करने वाले का अनुमोदन करता है।[2]

भिक्खायरिया-पदं

१३. जे भिक्खू गाहावइकुलं पिंडवाय-पडियाए पविट्ठे पडियाइक्खिए समाणे दोच्चं तमेवं कुलं अणुप्पविसति, अणुप्पविसंतं वा सातिज्जति।।

भिक्षाचर्या-पदम्

योभिक्षुः 'गाहा'पतिकुलं पिण्डपात-प्रतिज्ञया प्रविष्टे प्रत्याख्याते सति द्विः तदेव कुलम् अनुप्रविशति, अनुप्रविशन्तं वा स्वदते।

भिक्षाचर्या-पद

१३. जो भिक्षु पिण्डपात (गोचरी) की प्रतिज्ञा से गृहपतिकुल में प्रविष्ट होता है। गृहस्थ के द्वारा मना कर दिए जाने पर भी दूसरी बार उसी कुल में अनुप्रवेश करता है अथवा अनुप्रवेश करने वाले का अनुमोदन करता है।[3]

१४. जे भिक्खू संखडि-पलोयणाए असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः संस्कृतिप्रलोकनया अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते।

१४. जो भिक्षु रसवती में जाकर भोज्य पदार्थों को देखकर 'यह दो' 'यह दो' कहकर अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य का ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।[4]

१५. जे भिक्खू गाहावइकुलं पिंडवाय-पडियाए अणुपविट्ठे समाणे परं ति-घरंतराओ असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा अभिहडं आहट्टु दिज्जमाणं पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः 'गाहा'पतिकुलं पिण्डपात-प्रतिज्ञया अनुप्रविष्टे सति परं त्रिगृहान्तराद् अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा अभिहृतम् आहृत्य दीयमानं प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते।

१५. पिण्डपात की प्रतिज्ञा से गृहपतिकुल में अनुप्रविष्ट जो भिक्षु तीन घरों के आगे से लाकर दिए जाते हुए अभिहृत दोषयुक्त अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य को ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।[5]

पाय-परिकम्म-पदं

१६. जे भिक्खू अप्पणो पाए आमज्जेज्ज वा पमज्जेज्ज वा, आमज्जंतं वा पमज्जंतं वा सातिज्जति।।

पादपरिकर्म-पदम्

यो भिक्षुः आत्मनः पादौ आमृज्याद् वा प्रमृज्याद् वा, आमार्जन्तं वा प्रमार्जन्तं वा स्वदते।

पादपरिकर्म-पद

१६. जो भिक्षु अपने पैरों का आमार्जन करता है अथवा प्रमार्जन करता है और आमार्जन अथवा प्रमार्जन करने वाले का अनुमोदन करता है।

१७. जे भिक्खू अप्पणो पाए संवाहेज्ज वा पलिमद्देज्ज वा, संवाहेंतं वा पलिमद्देंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः आत्मनः पादौ संवाहयेद् वा परिमर्दयेद् वा, संवाहयन्तं वा परिमर्दयन्तं वा स्वदते।

१७. जो भिक्षु अपने पैरों का संबाधन करता है अथवा परिमर्दन करता है और संबाधन अथवा परिमर्दन करने वाले का अनुमोदन करता है।

१८. जे भिक्खू अप्पणो पाए तेल्लेण वा घएण वा वसाए वा णवणीएण वा

यो भिक्षुः आत्मनः पादौ तैलेन वा घृतेन वा वसया वा नवनीतेन वा अभ्यञ्ज्याद्

१८. जो भिक्षु अपने पैरों का तैल, घृत, वसा अथवा मक्खन से अभ्यंगन करता है अथवा

अब्भंगेज्ज वा मक्खेज्ज वा, अब्भंगेंतं वा मक्खेंतं वा सातिज्जति ।।

वा म्रक्षेद् वा, अभ्यञ्जन्तं वा म्रक्षन्तं वा स्वदते।

म्रक्षण करता है और अभ्यंगन अथवा म्रक्षण करने वाले का अनुमोदन करता है।

१९. जे भिक्खू अप्पणो पाए लोद्धेण वा कक्केण वा चुण्णेण वा वण्णेण वा उल्लोलेज्ज वा उव्वट्टेज्ज वा, उल्लोलेंतं वा उव्वट्टेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः आत्मनः पादौ लोध्रेण वा कल्केन वा चूर्णेन वा वर्णेन वा उल्लोलयेद् वा उद्वर्तेत वा, उल्लोलयन्तं वा उद्वर्तमानं वा स्वदते।

१९. जो भिक्षु अपने पैरों पर लोध, कल्क, चूर्ण अथवा वर्ण का लेप करता है अथवा उद्वर्तन करता है और लेप अथवा उद्वर्तन करने वाले का अनुमोदन करता है।

२०. जे भिक्खू अप्पणो पाए सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलेज्ज वा पधोवेज्ज वा, उच्छोलेंतं वा पधोवेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः आत्मनः पादौ शीतोदकविकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन वा उत्क्षालयेद् वा प्रधावेद् वा, उत्क्षालयन्तं वा प्रधावन्तं वा स्वदते।

२०. जो भिक्षु अपने पैरों का प्रासुक शीतल जल अथवा प्रासुक उष्ण जल से उत्क्षालन करता है अथवा प्रधावन करता है और उत्क्षालन अथवा प्रधावन करने वाले का अनुमोदन करता है।

२१. जे भिक्खू अप्पणो पाए फुमेज्ज वा रएज्ज वा, फुमेंतं वा रएंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः आत्मनः पादौ 'फुमेज्ज' (फूत्कुर्याद्) वा रजेद् वा, 'फुमेंतं' (फूत्कुर्वन्तं) वा रजन्तं वा स्वदते।

२१. जो भिक्षु अपने पैरों पर फूंक देता है अथवा रंग लगाता है और फूंक देने अथवा रंग लगाने वाले का अनुमोदन करता है।[१]

काय-परिकम्म-पदं

कायपरिकर्म-पदम्

कायपरिकर्म-पद

२२. जे भिक्खू अप्पणो कायं आमज्जेज्ज वा पमज्जेज्ज वा, आमज्जंतं वा पमज्जंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः आत्मनः कायम् आमृज्याद् वा प्रमृज्याद् वा, आमार्जन्तं वा प्रमार्जन्तं वा स्वदते।

२२. जो भिक्षु अपने शरीर का आमार्जन करता है अथवा प्रमार्जन करता है और आमार्जन अथवा प्रमार्जन करने वाले का अनुमोदन करता है।

२३. जे भिक्खू अप्पणो कायं संवाहेज्ज वा पलिमद्देज्ज वा, संवाहेंतं वा पलिमद्देंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः आत्मनः कायं संवाहयेद् वा परिमर्दयेद् वा, संवाहयन्तं वा परिमर्दयन्तं वा स्वदते।

२३. जो भिक्षु अपने शरीर का संबाधन करता है अथवा परिमर्दन करता है और संबाधन अथवा परिमर्दन करने वाले का अनुमोदन करता है।

२४. जे भिक्खू अप्पणो कायं तेल्लेण वा घएण वा वसाए वा णवणीएण वा अब्भंगेज्ज वा मक्खेज्ज वा, अब्भंगेंतं वा मक्खेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः आत्मनः कायं तैलेन वा घृतेन वा वसया वा नवनीतेन वा अभ्यञ्ज्याद् वा म्रक्षेद् वा, अभ्यञ्जन्तं वा म्रक्षन्तं वा स्वदते।

२४. जो भिक्षु अपने शरीर का तैल, घृत, वसा अथवा मक्खन से अभ्यंगन करता है अथवा म्रक्षण करता है और अभ्यंगन अथवा म्रक्षण करने वाले का अनुमोदन करता है।

२५. जे भिक्खू अप्पणो कायं लोद्धेण वा कक्केण वा चुण्णेण वा वण्णेण

यो भिक्षुः आत्मनः कायं लोध्रेण वा कल्केन वा चूर्णेन वा वर्णेन वा उल्लोलयेद्

२५. जो भिक्षु अपने शरीर पर लोध, कल्क, चूर्ण अथवा वर्ण का लेप करता है अथवा

वा उल्लोलेज्ज वा उव्वट्टेज्ज वा, उल्लोलेंतं वा उव्वट्टेंतं वा सातिज्जति।।

वा उद्वर्तेत वा, उल्लोलयन्तं वा उद्वर्तमानं वा स्वदते।

उद्वर्तन करता है और लेप अथवा उद्वर्तन करने वाले का अनुमोदन करता है।

२६. जे भिक्खू अप्पणो कायं सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलेज्ज वा पधोवेज्ज वा, उच्छोलेंतं वा पधोवेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः आत्मनः कायं शीतोदकविकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन वा उत्क्षालयेद् वा प्रधावेद्, उत्क्षालयन्तं वा प्रधावन्तं वा स्वदते।

२६. जो भिक्षु अपने शरीर का प्रासुक शीतल जल से अथवा प्रासुक उष्ण जल से उत्क्षालन करता है अथवा प्रधावन करता है और उत्क्षालन अथवा प्रधावन करने वाले का अनुमोदन करता है।

२७. जे भिक्खू अप्पणो कायं फुमेज्ज वा रएज्ज वा, फुमेंतं वा रएंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः आत्मनः कायं 'फुमेज्ज' (फूत्कुर्याद्) वा रजेद् वा, 'फुमेंतं' (फूत्कुर्वन्तं) वा रजन्तं वा स्वदते।

२७. जो भिक्षु अपने शरीर पर फूंक देता है अथवा रंग लगाता है और फूंक देने अथवा रंग लगाने वाले का अनुमोदन करता है।[७]

वण-परिकम्म-पदं

व्रणपरिकर्म-पदम्

व्रणपरिकर्म-पद

२८. जे भिक्खू अप्पणो कायंसि वणं आमज्जेज्ज वा पमज्जेज्ज वा, आमज्जंतं वा पमज्जंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः आत्मनः काये व्रणम् आमृज्याद् वा प्रमृज्याद् वा, आमार्जन्तं वा प्रमार्जन्तं वा स्वदते।

२८. जो भिक्षु अपने शरीर पर हुए व्रण का आमार्जन करता है अथवा प्रमार्जन करता है और आमार्जन अथवा प्रमार्जन करने वाले का अनुमोदन करता है।

२९. जे भिक्खू अप्पणो कायंसि वणं संवाहेज्ज वा पलिमद्देज्ज वा, संवाहेंतं वा पलिमद्देंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः आत्मनः काये व्रणं संवाहयेद् वा परिमर्दयेद् वा, संवाहयन्तं वा परिमर्दयन्तं वा स्वदते।

२९. जो भिक्षु अपने शरीर पर हुए व्रण का संबाधन करता है अथवा परिमर्दन करता है और संबाधन अथवा परिमर्दन करने वाले का अनुमोदन करता है।

३०. जे भिक्खू अप्पणो कायंसि वणं तेल्लेण वा घएण वा वसाए वा णवणीएण वा अब्भंगेज्ज वा मक्खेज्ज वा, अब्भंगेंतं वा मक्खेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः आत्मनः काये व्रणं तैलेन वा घृतेन वा वसया वा नवनीतेन वा अभ्यञ्ज्याद् वा म्रक्षेद् वा, अभ्यञ्जन्तं वा म्रक्षन्तं वा स्वदते।

३०. जो भिक्षु अपने शरीर पर हुए व्रण का तैल, घृत, वसा अथवा मक्खन से अभ्यंगन करता है अथवा म्रक्षण करता है और अभ्यंगन अथवा म्रक्षण करने वाले का अनुमोदन करता है।

३१. जे भिक्खू अप्पणो कायंसि वणं लोद्धेण वा कक्केण वा चुण्णेण वा वण्णेण वा उल्लोलेज्ज वा उव्वट्टेज्ज वा, उल्लोलेंतं वा उव्वट्टेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः आत्मनः काये व्रणं लोध्रेण वा कल्केन वा चूर्णेन वा वर्णेन वा उल्लोलयेद् वा उद्वर्तेत वा, उल्लोलयन्तं वा उद्वर्तमानं वा स्वदते।

३१. जो भिक्षु अपने शरीर पर हुए व्रण पर लोध, कल्क, चूर्ण अथवा वर्ण का लेप करता है अथवा उद्वर्तन करता है और लेप अथवा उद्वर्तन करने वाले का अनुमोदन करता है।

३२. जे भिक्खू अप्पणो कायंसि वणं सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-

यो भिक्षुः आत्मनः काये व्रणं शीतोदकविकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन वा

३२. जो भिक्षु अपने शरीर पर हुए व्रण का प्रासुक शीतल जल अथवा प्रासुक उष्ण जल

वियडेण वा उच्छोलेज्ज वा पधोवेज्ज वा, उच्छोलेंतं वा पधोवेंतं वा सातिज्जति ।।

उत्क्षालयेद् वा प्रधावेद् वा, उत्क्षालयन्तं वा प्रधावन्तं वा स्वदते ।

से उत्क्षालन करता है अथवा प्रधावन करता है और उत्क्षालन अथवा प्रधावन करने वाले का अनुमोदन करता है ।

३३. जे भिक्खू अप्पणो कायंसि वणं फुमेज्ज वा रएज्ज वा, फुमेंतं वा रएंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः आत्मनः काये व्रणं 'फुमेज्ज' (फूत्कुर्याद्) वा रजेद् वा, 'फुमेंतं' (फूत्कुर्वन्तं) वा रजन्तं वा स्वदते ।

३३. जो भिक्षु अपने शरीर पर हुए व्रण पर फूंक देता है अथवा रंग लगाता है और फूंक देने वाले अथवा रंग लगाने वाले का अनुमोदन करता है ।

गंडादि-परिकम्म-पदं

गंडादिपरिकर्म-पदम्

गंडादिपरिकर्म-पद

३४. जे भिक्खू अप्पणो कायंसि गंडं वा पिडयं वा अरइयं वा असियं वा भगंदलं वा अण्णयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं अच्छिंदेज्ज वा विच्छिंदेज्ज वा, अच्छिंदंतं वा विच्छिंदंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः आत्मनः काये गंडं वा पिटकं वा अरतिकां वा अर्शो वा भगन्दरं वा अन्यतरेण तीक्ष्णेन शस्त्रजातेन आच्छिन्द्याद् वा विच्छिन्द्याद् वा, आच्छिन्दन्तं वा विच्छिन्दन्तं वा स्वदते ।

३४. जो भिक्षु अपने शरीर में हुए गंडमाल, फोड़ा, फुंसी, अर्श (मसा) अथवा भगन्दर का किसी तीक्ष्ण शस्त्रजात से आच्छेदन (एक बार छेदन) करता है अथवा विच्छेदन करता है और आच्छेदन अथवा विच्छेदन करने वाले का अनुमोदन करता है ।

३५. जे भिक्खू अप्पणो कायंसि गंडं वा पिडयं वा अरइयं वा असियं वा भगंदलं वा अण्णयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं अच्छिंदित्ता वा विच्छिंदित्ता वा पूयं वा सोणियं वा णीहरेज्ज वा विसोहेज्ज वा, णीहरेंतं वा विसोहेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः आत्मनः काये गंडं वा पिटकं वा अरतिकां वा अर्शो वा भगन्दरं वा अन्यतरेण तीक्ष्णेन शस्त्रजातेन आच्छिद्य वा विच्छिद्य वा पूयं वा शोणितं वा निस्सरेद् वा विशोधयेद् वा, निस्सरन्तं वा विशोधयन्तं वा स्वदते ।

३५. जो भिक्षु अपने शरीर में हुए गंडमाल, फोड़ा, फुंसी, अर्श अथवा भगन्दर का किसी तीक्ष्ण शस्त्रजात से आच्छेदन अथवा विच्छेदन कर पीव अथवा रक्त को निकालता है अथवा साफ करता है और निकालने वाले अथवा साफ करने वाले का अनुमोदन करता है ।

३६. जे भिक्खू अप्पणो कायंसि गंडं वा पिडयं वा अरइयं वा असियं वा भगंदलं वा अण्णयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं अच्छिंदित्ता वा विच्छिंदित्ता वा पूयं वा सोणियं वा णीहरित्ता वा विसोहेत्ता वा सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलेज्ज वा पधोवेज्ज वा, उच्छोलेंतं वा पधोवेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः आत्मनः काये गंडं वा पिटकं वा अरतिकां वा अर्शो वा भगन्दरं वा अन्यतरेण तीक्ष्णेन शस्त्रजातेन आच्छिद्य वा विच्छिद्य वा पूयं वा शोणितं वा निस्सृत्य वा विशोध्य वा शीतोदक-विकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन वा उत्क्षालयेद् वा प्रधावेद् वा, उत्क्षालयन्तं वा प्रधावन्तं वा स्वदते ।

३६. जो भिक्षु अपने शरीर में हुए गंडमाल, फोड़ा, फुंसी, अर्श अथवा भगन्दर का किसी तीक्ष्ण शस्त्रजात से आच्छेदन अथवा विच्छेदन कर, उसके पीव अथवा रक्त को निकाल कर अथवा साफ कर, उसका प्रासुक शीतल जल अथवा प्रासुक उष्ण जल से उत्क्षालन करता है अथवा प्रधावन करता है और उत्क्षालन अथवा प्रधावन करने वाले का अनुमोदन करता है ।

३७. जे भिक्खू अप्पणो कायंसि गंडं वा पिडयं वा अरइयं वा असियं वा भगंदलं वा अण्णयरेणं तिक्खेणं

यो भिक्षुः आत्मनः काये गंडं वा पिटकं वा अरतिकां वा अर्शो वा भगन्दरं वा अन्यतरेण तीक्ष्णेन शस्त्रजातेन आच्छिद्य

३७. जो भिक्षु अपने शरीर में हुए गंडमाल, फोडा, फुंसी, अर्श अथवा भगन्दर का किसी तीक्ष्ण शस्त्रजात से आच्छेदन अथवा

सत्थजाएणं अच्छिंदित्ता वा विच्छिंदित्ता वा पूयं वा सोणियं वा णीहरित्ता वा विसोहेत्ता वा सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलेत्ता वा पधोएत्ता वा अण्णयरेणं आलेवणजाएणं आलिंपेज्ज वा विलिंपेज्ज वा, आलिंपंतं वा विलिंपंतं वा सातिज्जति ।।

वा विच्छिद्य वा पूयं वा शोणितं वा निस्सृत्य वा विशोध्य वा शीतोदकविकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन वा उत्क्षाल्य वा प्रधाव्य वा अन्यतरेण आलेपनजातेन आलिम्पेद् वा विलिम्पेद् वा, आलिम्पन्तं वा विलिम्पन्तं वा स्वदते।

विच्छेदन कर, उसके पीव अथवा रक्त को निकाल कर अथवा साफ कर, उसका प्रासुक शीतल जल अथवा प्रासुक उष्ण जल से उत्क्षालन अथवा प्रधावन कर किसी आलेपनजात से आलेपन करता है अथवा विलेपन करता है और आलेपन अथवा विलेपन करने वाले का अनुमोदन करता है।

३८. जे भिक्खू अप्पणो कायंसि गंडं वा पिडयं वा अरइयं वा असियं वा भगंदलं वा अण्णयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं अच्छिंदित्ता वा विच्छिंदित्ता वा पूयं वा सोणियं वा णीहरित्ता वा विसोहेत्ता वा सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलेत्ता वा पधोएत्ता वा अण्णयरेणं आलेवणजाएणं आलिंपित्ता वा विलिंपित्ता वा तेल्लेण वा घएण वा वसाए वा णवणीएण वा अब्भंगेज्ज वा मक्खेज्ज वा, अब्भंगेंतं वा मक्खेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः आत्मनः काये गंडं वा पिटकं वा अरतिकां वा अर्शो वा भगन्दरं वा अन्यतरेण तीक्ष्णेन शस्त्रजातेन आच्छिद्य वा विच्छिद्य वा पूयं वा शोणितं वा निस्सृत्य वा विशोध्य वा शीतोदक-विकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन वा उत्क्षाल्य वा प्रधाव्य वा अन्यतरेण आलेपनजातेन आलिप्य वा विलिप्य वा तैलेन वा घृतेन वा वसया वा नवनीतेन वा अभ्यञ्ज्याद् वा म्रक्षेद् वा, अभ्यञ्जन्तं वा म्रक्षन्तं वा स्वदते।

३८. जो भिक्षु अपने शरीर में हुए गंडमाल, फोड़ा, फुंसी, अर्श अथवा भगन्दर का किसी तीक्ष्ण शस्त्रजात से आच्छेदन अथवा विच्छेदन कर, उसके पीव अथवा रक्त को निकाल कर अथवा साफ कर, उसका प्रासुक शीतल जल अथवा प्रासुक उष्ण जल से उत्क्षालन अथवा प्रधावन कर, उस पर किसी आलेपनजात से आलेपन अथवा विलेपन कर, उसका तैल, घृत, वसा अथवा मक्खन से अभ्यंगन करता है अथवा म्रक्षण करता है और अभ्यंगन अथवा म्रक्षण करने वाले का अनुमोदन करता है।

३९. जे भिक्खू अप्पणो कायंसि गंडं वा पिडयं वा अरइयं वा असियं वा भगंदलं वा अण्णयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं अच्छिंदित्ता वा विच्छिंदित्ता वा पूयं वा सोणियं वा णीहरित्ता वा विसोहेत्ता वा सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलेत्ता वा पधोएत्ता वा अण्णयरेणं आलेवणजाएणं आलिंपित्ता वा विलिंपित्ता वा तेल्लेण वा घएण वा वसाए वा णवणीएण वा अब्भंगेत्ता वा मक्खेत्ता वा अण्णयरेणं धूवण-जाएणं धूवेज्ज वा पधूवेज्ज वा, धूवेंतं वा पधूवेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः आत्मनः काये गण्डं वा पिटकं वा अरतिकां वा अर्शो वा भगन्दरं वा अन्यतरेण तीक्ष्णेन शस्त्रजातेन आच्छिद्य वा विच्छिद्य वा पूयं वा शोणितं वा निस्सृत्य वा विशोध्य वा शीतोदक-विकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन वा उत्क्षाल्य वा प्रधाव्य वा अन्यतरेण आलेपनजातेन आलिप्य वा विलिप्य वा तैलेन वा घृतेन वा वसया वा नवनीतेन वा अभ्यज्य वा म्रक्षित्वा वा अन्यतरेण धूपनजातेन धूपायेद् वा प्रधूपायेद् वा, धूपायन्तं वा प्रधूपायन्तं वा स्वदते।

३९. जो भिक्षु अपने शरीर में हुए गंडमाल, फोड़ा, फुंसी, अर्श अथवा भगन्दर का किसी तीक्ष्ण शस्त्रजात से आच्छेदन अथवा विच्छेदन कर, उसके पीव अथवा रक्त को निकाल कर अथवा साफ कर, उसका प्रासुक शीतल जल अथवा प्रासुक उष्ण जल से उत्क्षालन अथवा प्रधावन कर, उस पर किसी आलेपनजात से आलेपन अथवा विलेपन कर, उसका तैल, घृत, वसा अथवा मक्खन से अभ्यंगन अथवा म्रक्षण कर उसे किसी धूपजात से धूपित करता है अथवा प्रधूपित करता है और धूपित अथवा प्रधूपित करने वाले का अनुमोदन करता है।[८]

किमि-पदं

४०. जे भिक्खू अप्पणो पालुकिमियं वा कुच्छिकिमियं वा अंगुलीए णिवेसिय-णिवेसिय णीहरति, णीहरंतं वा सातिज्जति ।।

कृमि-पदम्

यो भिक्षुः आत्मनः पायुकृमिकं वा कुक्षिकृमिकं वा अंगुल्या निवेश्य-निवेश्य निस्सरति, निस्सरन्तं वा स्वदते।

कृमि-पद

४०. जो भिक्षु अपने अपान की कृमि अथवा कुक्षि की कृमि को अंगुली डाल-डाल कर निकालता है अथवा निकालने वाले का अनुमोदन करता है।[९]

णह-सिहा-पदं

४१. जे भिक्खू अप्पणो दीहाओ णह-सिहाओ कप्पेज्ज वा संठवेज्ज वा, कप्पेंतं वा संठवेंतं वा सातिज्जति।

नखशिखा-पदम्

यो भिक्षुः आत्मनः दीर्घाः नखशिखाः कल्पेत वा संस्थापयेद् वा, कल्पमानं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते।

नखशिखा-पद

४१. जो भिक्षु अपनी दीर्घ नखशिखा (नख के अग्रभाग) को काटता है अथवा व्यवस्थित करता (संवारता) है और काटने अथवा व्यवस्थित करने वाले का अनुमोदन करता है।[१०]

दीह-रोम-पदं

४२. जे भिक्खू अप्पणो दीहाइं जंघ-रोमाइं कप्पेज्ज वा संठवेज्ज वा, कप्पेंतं वा संठवेंतं वा सातिज्जति।

दीर्घरोम-पदम्

यो भिक्षुः आत्मनः दीर्घाणि जंघारोमाणि कल्पेत वा संस्थापयेद् वा, कल्पमानं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते।

दीर्घरोम-पद

४२. जो भिक्षु अपनी जंघाप्रदेश (पिंडली) की दीर्घ रोमराजि को काटता है अथवा व्यवस्थित करता है और काटने अथवा व्यवस्थित करने वाले का अनुमोदन करता है।

४३. जे भिक्खू अप्पणो दीहाइं वत्थि-रोमाइं कप्पेज्ज वा संठवेज्ज वा, कप्पेंतं वा संठवेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः आत्मनः दीर्घाणि वस्तिरोमाणि कल्पेत वा संस्थापयेद् वा, कल्पमानं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते।

४३. जो भिक्षु अपनी वस्तिप्रदेश की दीर्घ रोमराजि को काटता है अथवा व्यवस्थित करता है और काटने अथवा व्यवस्थित करने वाले का अनुमोदन करता है।

४४. जे भिक्खू अप्पणो दीह-रोमाइं कप्पेज्ज वा संठवेज्ज वा, कप्पेंतं वा संठवेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः आत्मनः दीर्घरोमाणि कल्पेत वा संस्थापयेद् वा, कल्पमानं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते।

४४. जो भिक्षु अपनी दीर्घ रोमराजि को काटता है अथवा व्यवस्थित करता है और काटने अथवा व्यवस्थित करने वाले का अनुमोदन करता है।

४५. जे भिक्खू अप्पणो दीहाइं कक्खाण-रोमाइं कप्पेज्ज वा संठवेज्ज वा, कप्पेंतं वा संठवेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः आत्मनः दीर्घाणि कक्षारोमाणि कल्पेत वा संस्थापयेद् वा, कल्पमानं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते।

४५. जो भिक्षु अपनी कक्षाप्रदेश (कांख) की दीर्घ रोमराजि को काटता है अथवा व्यवस्थित करता है और काटने अथवा व्यवस्थित करने वाले का अनुमोदन करता है।

४६. जे भिक्खू अप्पणो दीहाइं मंसु-रोमाइं कप्पेज्ज वा संठवेज्ज वा,

यो भिक्षुः आत्मनः दीर्घाणि श्मश्रुरोमाणि कल्पेत वा संस्थापयेद् वा, कल्पमानं वा

४६. जो भिक्षु अपनी श्मश्रु (मूंछ) की दीर्घ रोमराजि को काटता है अथवा व्यवस्थित

कप्पेंतं वा संठवेंतं वा सातिज्जति ।।

संस्थापयन्तं वा स्वदते।

करता है और काटने अथवा व्यवस्थित करने वाले का अनुमोदन करता है।[११]

दंत-पदं

दंत-पदम्

दंत-पद

४७. जे भिक्खू अप्पणो दंते आघंसेज्ज वा पघंसेज्ज वा, आघंसंतं वा पघंसंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः आत्मनः दन्तान् आघर्षेद् वा प्रघर्षेद् वा, आघर्षन्तं वा प्रघर्षन्तं वा स्वदते।

४७. जो भिक्षु अपने दांतों का आघर्षण करता है अथवा प्रघर्षण करता है[१२] और आघर्षण अथवा प्रघर्षण करने वाले का अनुमोदन करता है।

४८. जे भिक्खू अप्पणो दंते उच्छोलेज्ज वा पधोवेज्ज वा, उच्छोलेंतं वा पधोवेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः आत्मनः दन्तान् उत्क्षालयेद् वा प्रधावेद् वा, उत्क्षालयन्तं वा प्रधावन्तं वा स्वदते।

४८. जो भिक्षु अपने दांतों का उत्क्षालन करता है अथवा प्रधावन करता है और उत्क्षालन अथवा प्रधावन करने वाले का अनुमोदन करता है।

४९. जे भिक्खू अप्पणो दंते फुमेज्ज वा रएज्ज वा, फुमेंतं वा रएंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः आत्मनः दन्तान् 'फुमेज्ज' (फूत्कुर्याद्) वा रजेत् वा, 'फुमेंतं' (फूत्कुर्वन्तं) वा रजन्तं वा स्वदते।

४९. जो भिक्षु अपने दांतों पर फूंक देता है अथवा रंग लगाता है और फूंक देने अथवा रंग लगाने वाले का अनुमोदन करता है।[१३]

उट्ठ-पदं

ओष्ठ-पदम्

ओष्ठ-पद

५०. जे भिक्खू अप्पणो उट्ठे आमज्जेज्ज वा पमज्जेज्ज वा, आमज्जंतं वा पमज्जंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः आत्मनः ओष्ठौ आमृज्याद् वा प्रमृज्याद् वा, आमार्जन्तं वा प्रमार्जन्तं वा स्वदते।

५०. जो भिक्षु अपने ओष्ठ का आमार्जन करता है अथवा प्रमार्जन करता है और आमार्जन अथवा प्रमार्जन करने वाले का अनुमोदन करता है।

५१. जे भिक्खू अप्पणो उट्ठे संवाहेज्ज वा पलिमद्देज्ज वा, संवाहेंतं वा पलिमद्देंतं वा सतिज्जति ।।

यो भिक्षुः आत्मनः ओष्ठौ संवाहयेद् वा परिमर्दयेद् वा, संवाहयन्तं वा परिमर्दयन्तं वा स्वदते।

५१. जो भिक्षु अपने ओष्ठ का संबाधन करता है अथवा परिमर्दन करता है और संबाधन अथवा परिमर्दन करने वाले का अनुमोदन करता है।

५२. जे भिक्खू अप्पणो उट्ठे तेल्लेण वा घएण वा वसाए वा णवणीएण वा अब्भंगेज्ज वा मक्खेज्ज वा, अब्भंगेंतं वा मक्खेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः आत्मनः ओष्ठौ तैलेन वा घृतेन वा वसया वा नवनीतेन वा अभ्यञ्ज्याद् वा म्रक्षेद् वा, अभ्यञ्जन्तं वा म्रक्षन्तं वा स्वदते।

५२. जो भिक्षु अपने ओष्ठ का तैल, घृत, वसा अथवा मक्खन से अभ्यंगन करता है अथवा म्रक्षण करता है और अभ्यंगन अथवा म्रक्षण करने वाले का अनुमोदन करता है।

५३. जे भिक्खू अप्पणो उट्ठे लोद्धेण वा कक्केण वा चुण्णेण वा वण्णेण वा उल्लोलेज्ज वा उव्वट्टेज्ज वा,

यो भिक्षुः आत्मनः ओष्ठौ लोध्रेण वा कल्केन वा चूर्णेन वा वर्णेन वा उल्लोलयेद् वा उद्वर्तेत वा, उल्लोलयन्तं वा

५३. जो भिक्षु अपने ओष्ठ पर लोध, कल्क, चूर्ण अथवा वर्ण का लेप करता है अथवा उद्वर्तन करता है और लेप अथवा उद्वर्तन

उल्लोलेंतं वा उव्वट्टेंतं वा सातिज्जति।।

उद्वर्तमानं वा स्वदते।

करने वाले का अनुमोदन करता है।

५४. जे भिक्खू अप्पणो उट्ठे सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलेज्ज वा पधोवेज्ज वा, उच्छोलेंतं वा पधोवेंतं सातिज्जति।।

यो भिक्षुः आत्मनः ओष्ठौ शीतोदक-विकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन वा उत्क्षालयेद् वा प्रधावेद् वा, उत्क्षालयन्तं वा प्रधावन्तं वा स्वदते।

५४. जो भिक्षु अपने ओष्ठ का प्रासुक शीतल जल अथवा प्रासुक उष्ण जल से उत्क्षालन करता है अथवा प्रधावन करता है और उत्क्षालन अथवा प्रधावन करने वाले का अनुमोदन करता है।

५५. जे भिक्खू अप्पणो उट्ठे फुमेज्ज वा रएज्ज वा, फुमेंतं वा रएंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः आत्मनः ओष्ठौ 'फुमेज्ज' (फूत्कुर्याद्) वा रजेद् वा, 'फुमेंतं' (फूत्कुर्वन्तं) वा रजन्तं वा स्वदते।

५५. जो भिक्षु अपने ओष्ठ पर फूंक देता है अथवा रंग लगाता है और फूंक देने अथवा रंग लगाने वाले का अनुमोदन करता है।[१४]

दीह-रोम-पदं

दीघरोम-पदम्

दीर्घरोम-पद

५६. जे भिक्खू अप्पणो दीहाइं उत्तरोट्ठ-रोमाइं कप्पेज्ज वा संठवेज्ज वा, कप्पेंतं वा संठवेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः आत्मनः दीर्घाणि उत्तरौष्ठरोमाणि कल्पेत वा संस्थापयेद् वा, कल्पमानं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते।

५६. जो भिक्षु अपनी उत्तरोष्ठ (दाढ़ी) की दीर्घ रोमराजि को काटता है अथवा व्यवस्थित करता है और काटने अथवा व्यवस्थित करने वाले का अनुमोदन करता है।

५७. जे भिक्खू अप्पणो दीहाइं णासा-रोमाइं कप्पेज्ज वा संठवेज्ज वा, कप्पेंतं वा संठवेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः आत्मनः दीर्घाणि नासारोमाणि कल्पेत वा संस्थापयेद् वा, कल्पमानं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते।

५७. जो भिक्षु अपनी नाक की दीर्घ रोमराजि को काटता है अथवा व्यवस्थित करता है और काटने अथवा व्यवस्थित करने वाले का अनुमोदन करता है।

अच्छि-पत्त-पदं

अक्षिपत्र-पदम्

अक्षिपत्र-पद

५८. जे भिक्खू अप्पणो दीहाइं अच्छि-पत्ताइं कप्पेज्ज वा संठवेज्ज वा, कप्पेंतं वा संठवेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः आत्मनः दीर्घाणि अक्षिपत्राणि कल्पेत वा संस्थापयेद् वा, कल्पमानं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते।

५८. जो भिक्षु अपनी दीर्घ अक्षिपत्रों (पलक की रोमराजि) को काटता है अथवा व्यवस्थित करता है और काटने अथवा व्यवस्थित करने वाले का अनुमोदन करता है।

अच्छि-पदं

अक्षि-पदम्

अक्षि-पद

५९. जे भिक्खू अप्पणो अच्छीणि आमज्जेज्ज वा पमज्जेज्ज वा, आमज्जंतं वा पमज्जंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः आत्मनः अक्षिणी आमृज्याद् वा प्रमृज्याद् वा, आमार्जन्तं वा प्रमार्जन्तं वा स्वदते।

५९. जो भिक्षु अपनी आंखों का आमार्जन करता है अथवा प्रमार्जन करता है और आमार्जन अथवा प्रमार्जन करने वाले का अनुमोदन करता है।

६०. जे भिक्खू अप्पणो अच्छीणि संवाहेज्ज वा पलिमद्देज्ज वा, संवाहेंतं वा पलिमद्देंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः आत्मनः अक्षिणी संवाहयेद् वा परिमर्दयेद् वा, संवाहयन्तं वा परिमर्दयन्तं वा स्वदते।

६०. जो भिक्षु अपनी आंखों का संबाधन करता है अथवा परिमर्दन करता है और संबाधन अथवा परिमर्दन करने वाले का अनुमोदन करता है।

६१. जे भिक्खू अप्पणो अच्छीणि तेल्लेण वा घएण वा वसाए वा णवणीएण वा अब्भंगेज्ज वा मक्खेज्ज वा, अब्भंगेंतं वा मक्खेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः आत्मनः अक्षिणी तैलेन वा घृतेन वा वसया वा नवनीतेन वा अभ्यञ्ज्याद् वा म्रक्षेद् वा, अभ्यञ्जन्तं वा म्रक्षन्तं वा स्वदते।

६१. जो भिक्षु अपनी आंखों का तैल, घृत, वसा अथवा मक्खन से अभ्यंगन करता है अथवा म्रक्षण करता है और अभ्यंगन अथवा म्रक्षण करने वाले का अनुमोदन करता है।

६२. जे भिक्खू अप्पणो अच्छीणि लोद्धेण वा कक्केण वा चुण्णेण वा वण्णेण वा उल्लोलेज्ज वा उव्वट्टेज्ज वा, उल्लोलेंतं वा उव्वट्टेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः आत्मनः अक्षिणी लोध्रेण वा कल्केन वा चूर्णेन वा वर्णेन वा उल्लोलयेद् वा उद्वर्तेत वा, उल्लोलयन्तं वा उद्वर्तमानं वा स्वदते।

६२. जो भिक्षु अपनी आंखों पर लोध, कल्क, चूर्ण अथवा वर्ण का लेप करता है अथवा उद्वर्तन करता है और लेप अथवा उद्वर्तन करने वाले का अनुमोदन करता है।

६३. जे भिक्खू अप्पणो अच्छीणि सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलेज्ज वा पधोवेज्ज वा, उच्छोलेंतं वा पधोवेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः आत्मनः अक्षिणी शीतोदक-विकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन वा उत्क्षालयेद् वा प्रधावेद् वा, उत्क्षालयन्तं वा प्रधावन्तं वा स्वदते।

६३. जो भिक्षु अपनी आंखों का प्रासुक शीतल जल से अथवा प्रासुक उष्ण जल से उत्क्षालन करता है अथवा प्रधावन करता है और उत्क्षालन अथवा प्रधावन करने वाले का अनुमोदन करता है।

६४. जे भिक्खू अप्पणो अच्छीणि फुमेज्ज वा रएज्ज वा, फुमेंतं वा रएंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः आत्मनः अक्षिणी 'फुमेज्ज' (फूत्कुर्याद्) वा रजेद् वा, 'फुमेंतं' (फूत्कुर्वन्तं) वा रजन्तं वा स्वदते।

६४. जो भिक्षु अपनी आंखों पर फूंक देता है अथवा रंग लगाता है और फूंक देने अथवा रंग लगाने वाले का अनुमोदन करता है।

दीह-रोम-पदं

दीर्घरोम-पदम्

दीर्घरोम-पद

६५. जे भिक्खू अप्पणो दीहाइं भमुग-रोमाइं कप्पेज्ज वा संठवेज्ज वा, कप्पेंतं वा संठवेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः आत्मनः दीर्घाणि भ्रूरोमाणि कल्पेत वा संस्थापयेद् वा, कल्पमानं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते।

६५. जो भिक्षु अपनी भौहों की दीर्घ रोमराजि को काटता है अथवा व्यवस्थित करता है और काटने अथवा व्यवस्थित करने वाले का अनुमोदन करता है।

६६. जे भिक्खू अप्पणो दीहाइं पास-रोमाइं कप्पेज्ज वा संठवेज्ज वा, कप्पेंतं वा संठवेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः आत्मनः दीर्घाणि 'पास'रोमाणि कल्पेत वा संस्थापयेद् वा, कल्पमानं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते।

६६. जो भिक्षु अपने पार्श्वभाग की दीर्घ रोमराजि को काटता है अथवा व्यवस्थित करता है और काटने अथवा व्यवस्थित करने वाले का अनुमोदन करता है।[१५]

मल-णीहरण-पदं

६७. जे भिक्खू अप्पणो कायाओ सेयं वा जल्लं वा पंकं वा मलं वा णीहरेज्ज वा विसोहेज्ज वा, णीहरेंतं वा विसोहेंतं वा सातिज्जति ।।

मलनिस्सरण-पदम्

यो भिक्षुः आत्मनः कायात् स्वेदं वा जल्लं वा पंक वा मलं वा निस्सरेद् वा विशोधयेद् वा, निस्सरन्तं वा विशोधयन्तं वा स्वदते।

मलनिर्हरण-पद

६७. जो भिक्षु अपने शरीर के स्वेद, जल्ल, पंक अथवा मल का निर्हरण (अपनयन) करता है अथवा विशोधन करता है और निर्हरण अथवा विशोधन करने वाले का अनुमोदन करता है।

६८. जे भिक्खू अप्पणो अच्छिमलं वा कण्णमलं वा दंतमलं वा णहमलं वा णीहरेज्ज वा विसोहेज्ज वा, णीहरेंतं वा विसोहेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः आत्मनः अक्षिमलं वा कर्णमलं वा दन्तमलं वा नखमलं वा निस्सरेद् वा विशोधयेद् वा, निस्सरन्तं वा विशोधयन्तं वा स्वदते।

६८. जो भिक्षु अपनी आंख के मैल, कान के मैल, दांत के मैल अथवा नख के मैल का निर्हरण करता है अथवा विशोधन करता है और निर्हरण अथवा विशोधन करने वाले का अनुमोदन करता है।[१६]

सीसदुवारिय-पदं

६९. जे भिक्खू गामाणुगामं दूइज्जमाणे अप्पणो सीसदुवारियं करेति, करेंतं वा सातिज्जति ।।

शीर्षद्वारिका-पदम्

यो भिक्षुः ग्रामानुग्रामं दूयमानः आत्मनः शीर्षद्वारिकां करोति, कुर्वन्तं वा स्वदते।

शीर्षद्वारिका-पद

६९. जो भिक्षु ग्रामानुग्राम परिव्रजन करता हुआ अपना सीसदुवारिया करता है (सिर ढंकता है) अथवा करने वाले का अनुमोदन करता है।[१७]

वसीकरणसुत्त-पदं

७०. जे भिक्खू सणकप्पासाओ वा उण्णकप्पासाओ वा पोंडकप्पासाओ वा अमिलकप्पासाओ वा वसीकरणसुत्तयं करेति, करेंतं वा सातिज्जति ।।

वशीकरणसूत्र-पदम्

यो भिक्षुः शणकार्पासाद् वा ऊर्णाकार्पासाद् वा पोंड्रकार्पासाद् वा अमिलकार्पासाद् वा वशीकरणसूत्रकं करोति, कुर्वन्तं वा स्वदते।

वशीकरणसूत्र-पद

७०. जो भिक्षु शण (पाट) के कपास (छाल), ऊन के कपास, पोंड्र (सूती) कपास अथवा अमिल कपास से वशीकरण सूत्र का निर्माण करता है अथवा करने वाले का अनुमोदन करता है।[१८]

उच्चार-पासवण-पदं

७१. जे भिक्खू गिहंसि वा गिहमुहंसि वा गिहदुवारंसि वा गिहपडिदुवारंसि वा गिहेलुयंसि वा गिहंगणंसि वा गिहवच्चंसि वा उच्चारं वा पासवणं वा परिट्ठवेति, परिट्ठवेंतं वा सातिज्जति ।।

उच्चारप्रस्रवण-पदम्

यो भिक्षुः गृहे वा गृहमुखे वा गृहद्वारे वा गृहप्रतिद्वारे वा गृहैलुके वा गृहाङ्गणे वा गृहवर्चसि वा उच्चारं वा प्रस्रवणं वा परिष्ठापयति, परिष्ठापयन्तं वा स्वदते।

उच्चारप्रस्रवण-पद

७१. घर, घर का मुख, घर का द्वार, घर का प्रतिद्वार, घर की एलुका—देहली, घर का आंगन अथवा घर का वर्च—जो भिक्षु इन स्थानों में उच्चार अथवा प्रस्रवण का परिष्ठापन करता है अथवा परिष्ठापन करने वाले का अनुमोदन करता है।

७२. जे भिक्खू मडगगिहंसि वा मडगछारियंसि वा मडगथूभियंसि वा मडगासयंसि वा मडगलेणंसि वा

यो भिक्षुः मृतकगृहे वा मृतकक्षारे वा मृतकस्तूपे वा मृतकाश्रये वा मृतकलयने वा मृतकस्थण्डिले वा मृतकवर्चसि वा

७२. मृतक-गृह, मृतक की राख, मृतक-स्तूपिका, मृतक-आश्रय , मृतक-लयन, मृतक-स्थंडिल अथवा मृतक-वर्च—जो भिक्षु

मडगथंडिलंसि वा मडगवच्चंसि वा उच्चारं वा पासवणं वा परिट्ठवेति, परिट्ठवेंतं वा सातिज्जाति ।।

उच्चारं वा प्रस्रवणं वा परिष्ठापयति, परिष्ठापयन्तं वा स्वदते ।

इन स्थानों पर उच्चार अथवा प्रस्रवण का परिष्ठापन करता है अथवा परिष्ठापन करने वाले का अनुमोदन करता है।

७३. जे भिक्खू इंगालदाहंसि वा खारदाहंसि वा गातदाहंसि वा तुसदाहठाणंसि वा भुसदाहठाणंसि वा उच्चारं वा पासवणं वा परिट्ठवेति, परिट्ठवेंतं वा सातिज्जाति ।।

यो भिक्षुः अंगारदाहे वा क्षारदाहे वा गात्रदाहे वा तुषदाहस्थाने वा बुसदाहस्थाने वा उच्चारं वा प्रस्रवणं वा परिष्ठापयति, परिष्ठापयन्तं वा स्वदते ।

७३. अंगारदाह-स्थान, खारदाह-स्थान, गात्रदाह-स्थान, तुसदाह-स्थान अथवा बुसदाह-स्थान—जो भिक्षु इन स्थानों पर उच्चार अथवा प्रस्रवण का परिष्ठापन करता है, अथवा परिष्ठापन करने वाले का अनुमोदन करता है।

७४. जे भिक्खू णवियासु वा गोलेहणियासु णवियासु वा मट्टियाखाणीसु—परिभुज्जमाणियासु वा अपरिभुज्जमाणियासु वा—उच्चारं वा पासवणं वा परिट्ठवेति, परिट्ठवेंतं वा सातिज्जाति ।।

यो भिक्षुः नविकासु वा गोलेहनिकासु नविकासु वा मृत्तिकाखानिषु—परिभुज्यमानासु वा अपरिभुज्यमानासु वा उच्चारं वा प्रस्रवणं वा परिष्ठापयति, परिष्ठापयन्तं वा स्वदते ।

७४. नई गोलेहनिका अथवा नई मिट्टी की खान, जो परिभोग में आ रही हो अथवा परिभोग में नहीं आ रही हो—जो भिक्षु इन स्थानों पर उच्चार अथवा प्रस्रवण का परिष्ठापन करता है अथवा परिष्ठापन करने वाले का अनुमोदन करता है।

७५. जे भिक्खू सेयायणंसि वा पंकायतणंसि वा पणगायतणंसि वा उच्चारं वा पासवणं वा परिट्ठवेंति, परिट्ठवेंतं वा सातिज्जाति ।।

यो भिक्षुः 'सेया'यतने वा पंकायतने वा पनकायतने वा उच्चारं वा प्रस्रवणं वा परिष्ठापयति, परिष्ठापयन्तं वा स्वदते ।

७५. सेयायतन, पंकायतन अथवा पनकायतन—जो भिक्षु इन स्थानों पर उच्चार अथवा प्रस्रवण का परिष्ठापन करता है अथवा परिष्ठापन करने वाले का अनुमोदन करता है।

७६. जे भिक्खू उंबरवच्चंसि वा णग्गोहवच्चंसि वा असोत्थवच्चंसि वा पिलक्खुवच्चंसि वा उच्चारं वा पासवणं वा परिट्ठवेति, परिट्ठवेंतं वा सातिज्जाति ।।

यो भिक्षुः उदुम्बरवर्चसि वा न्यग्रोधवर्चसि वा अश्वत्थवर्चसि वा प्लक्षवर्चसि वा उच्चारं वा प्रस्रवणं वा परिष्ठापयति, परिष्ठापयन्तं वा स्वदते ।

७६. उदुंबर (गूलर) वर्च, वट-वर्च, अश्वत्थ (पीपल)-वर्च अथवा प्लक्ष (पाकड़)-वर्च—जो भिक्षु इन स्थानों पर उच्चार अथवा प्रस्रवण का परिष्ठापन करता है अथवा परिष्ठापन करने वाले का अनुमोदन करता है।

७७. जे भिक्खू डागवच्चंसि वा सागवच्चंसि वा मूलयवच्चंसि वा कोत्थुंभरिवच्चंसि वा खारवच्चंसि वा जीरयवच्चंसि वा दमणवच्चंसि वा मरुगवच्चंसि वा उच्चारं वा पासवणं वा परिट्ठवेति, परिट्ठवेंतं वा सातिज्जाति ।।

यो भिक्षुः 'डाग'वर्चसि वा शाकवर्चसि वा मूलकवर्चसि वा कोस्तुंभरिवर्चसि वा क्षारवर्चसि वा जीरकवर्चसि वा दमनकवर्चसि वा मरुकवर्चसि वा उच्चारं वा प्रस्रवणं वा परिष्ठापयति, परिष्ठापयन्तं वा स्वदते ।

७७. डाग-वर्च, शाक-वर्च, मूली-वर्च, कुत्थुंभरी (धनिया) का वर्च, खार (बथुआ) का वर्च, जीरे का वर्च, दमनक-वर्च अथवा मरुक-वर्च—जो भिक्षु इन स्थानों पर उच्चार अथवा प्रस्रवण का परिष्ठापन करता है अथवा परिष्ठापन करने वाले का अनुमोदन करता है।

७८. जे भिक्खू इक्खुवणंसि वा सालवणंसि वा कुसुंभवणंसि वा कप्पासवणंसि वा उच्चारं वा पासवणं वा परिट्ठवेति, परिट्ठवेंतं वा सातिज्जाति।।

यो भिक्षु इक्षुवने वा शालवने वा कुसुंभवने वा कार्पासवने वा उच्चारं वा प्रस्रवणं वा परिष्ठापयति, परिष्ठापयन्तं वा स्वदते।

७८. इक्षु-वन, शाल-वन, कुसुंभवन अथवा कपास का वन—जो भिक्षु इन स्थानों पर उच्चार अथवा प्रस्रवण का परिष्ठापन करता है अथवा परिष्ठापन करने वाले का अनुमोदन करता है।

७९. जे भिक्खू असोगवणंसि वा सत्तिवण्णवणंसि वा चंपगवणंसि वा चूयवणंसि वा अण्णतरेसु तहप्पगारेसु वा पत्तोवएसु पुप्फोवएसु फलोवएसु छाओवएसु उच्चारं वा पासवणं वा परिट्ठवेति, परिट्ठवेंतं वा सातिज्जाति।।

यो भिक्षुः अशोकवने वा सप्तपर्णवने वा चम्पकवने वा चूतवने वा अन्यतरेषु वा तथाप्रकारेषु वा पत्रोपगेषु पुष्पोपगेषु फलोपगेषु छायोपगेषु उच्चारं वा प्रस्रवणं वा परिष्ठापयति, परिष्ठापयन्तं वा स्वदते।

७९. अशोक-वन, सप्तपर्ण-वन, चंपक-वन, आम्र-वन और अन्य उसी प्रकार के पत्रयुक्त, पुष्पयुक्त, फलयुक्त और छायायुक्त वृक्षों के वनों के पास जो भिक्षु उच्चार अथवा प्रस्रवण का परिष्ठापन करता है अथवा परिष्ठापन करने वाले का अनुमोदन करता है।[१९]

८०. जे भिक्खू राओ वा वियाले वा उच्चार-पासवणेण उब्बाहिज्जमाणे सपायंसि वा परपायंसि वा उच्चार-पासवणं परिट्ठवेत्ता अणुग्गए सूरिए एडेति, एडेंतं वा सातिज्जाति—

यो भिक्षुः रात्रौ वा विकाले वा उच्चारप्रस्रवणेन उद्बाध्यमानः स्वपात्रे वा परपात्रे वा उच्चार-प्रस्रवणं परिष्ठाप्य अनुद्गते सूर्ये एडति, एडन्तं वा स्वदते।

८०. जो भिक्षु रात्रि अथवा विकाल वेला में उच्चार-प्रस्रवण के वेग से बाधित होने पर स्वयं के पात्र अथवा दूसरे के पात्र में उच्चार-प्रस्रवण का परिष्ठापन कर सूर्योदय से पूर्व त्याग करता (परिष्ठापित करता) है अथवा त्याग करने वाले का अनुमोदन करता है।[२०]

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घातियं।।

तत्सेवमानः आपद्यते मासिकं परिहारस्थानम् उद्घातिकम्।

—इनका आसेवन करने वाले को लघुमासिक परिहारस्थान प्राप्त होता है।

टिप्पण

१. सूत्र १-८

प्रस्तुत आलापक में आगंतागार, आरामागार आदि भिक्षा के लिए अनुपयुक्त स्थानों में गृहस्थ आदि से किसी वस्तु को मांगने का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है क्योंकि ऐसा करने से गृहस्थ को अप्रीति हो सकती है। भद्र प्रकृति वाला गृहस्थ उद्गम आदि दोषों में प्रवृत्त हो सकता है।

शब्द विमर्श

१. **आगंतागार**—यात्रीगृह, जहां आगन्तुक आकर रहें या जो आगन्तुकों के लिए बनाया जाए।[1]

२. **आरामागार**—आराम (विविध लताओं से सुशोभित, दम्पति के क्रीड़ा स्थल) में बने घर (कदली आदि के प्रच्छन्न गृह)।[2]

३. **गाहावतिकुल**—गृहपतिकुल[3]

४. **परियावसह**—आश्रम[4]

५. **ओभास**—अवभाषण करना। निशीथभाष्य एवं चूर्णि में अवभाषण का अर्थ उपलब्ध नहीं होता। आवश्यक वृत्ति में अवभाषण का अर्थ विशिष्ट द्रव्य की याचना किया गया है।

६. **कोउहल्लपडिया**—कुतूहलवश।[5]

२. सूत्र ९-१२

आगन्तागार आदि स्थानों में सामने लाकर दी जाने वाली भिक्षा का एक बार मुनि निषेध कर देता है और किस प्रकार चाटुकारीपूर्वक पुनः उसी को लेने के लिए तत्पर हो जाता है इस सूत्र चतुष्टयी में इसका सुन्दर निरूपण हुआ है। प्रस्तुत आलापक में इसका प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है, क्योंकि ऐसा करने से गृहस्थ का मुनि के वचनों के प्रति विश्वास समाप्त हो जाता है।[6]

शब्द विमर्श

१. **अभिहडं आहट्टु**—सामने लाकर।[7]

२. **अणुवत्तिय**—पीछे-पीछे जाकर।[8]

३. **परिवेढिय**—आगे, पीछे या पार्श्व में ठहरकर।[9]

४. **परिजविय**—तुम्हारा श्रम असफल न हो—ऐसा कहकर।[10]

३. सूत्र १३

जिस घर का स्वामी भिक्षु को कहे—'मेरे यहां कोई न आए' वह घर मामक कुल कहलाता है। दसवेआलियं में मामक कुल के वर्जन का स्पष्ट निर्देश मिलता है।[11] भिक्षा हेतु वहां प्रवेश करने पर अनेक प्रकार के दोषों की संभावना को देखते हुए ही प्रस्तुत सूत्र में उसे प्रायश्चित्तार्ह माना गया है।

विस्तार हेतु द्रष्टव्य—निभा. गा. १४६६-१४७०

शब्द विमर्श

१. **पडियाइक्खिए**—प्रतिषिद्ध।[12]

४. सूत्र १४

प्रस्तुत सूत्र में संखड़ी प्रलोकना—रसवती में जाकर खाद्य पदार्थों को देखकर निर्देश पूर्वक ग्रहण करने का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है। संखड़ी का अर्थ है—भोज या जीमनवार।[13] संखड़ी में जाने से जनाकीर्ण स्थान में जाने पर आने वाले आत्मविराधना एवं संयमविराधना आदि दोष तो आते ही हैं। साथ ही साथ उस भोज में निमंत्रित अन्य

---

१. निभा. भा. २, चू. पृ. १९९—आगंतारो जत्थ आगारी आगंतु चिट्ठंति तं आगंतागारं। गामपरिसट्ठाणं ति वुत्तं भवति। आगंतुगाण वा कयं आगारं आगंतागारं बहियावासे त्ति।

२. (क) वही—आरामे आगारं आरामागारं।
(ख) आराम शब्द के लिए द्रष्टव्य—ठाणं, पृ. १४५।

३. निभा. भा. २ चू. पृ. १९९—गिहस्स पती गिहपती, तस्स कुलं गिहपति-कुलं, अन्यगृहमित्यर्थ।

४. वही—गिहपज्जायं मोत्तुं पव्वज्जापरियाए ठिता तेसिं आवसहो परियावसहो।

५. वही, पृ. २०२—कोऊहल्ल-पडियाए कोऊहलप्रतिज्ञया, कोतुकेणेत्यर्थः।

६. वही, गा. १४६०,१४६१

७. वही, भा. २ पृ. २०३—अभिहडं आमुखेन हृतं अभिहृतं।

८. वही—अणुवत्तिय त्ति सत्तपदाइं गंता।

९. वही—परिवेढिय त्ति पुरतो पिट्ठतो पासतो ठिच्चा।

१०. वही—परिजविय त्ति परिजल्प्य, तुब्भेहिं एयं अम्हट्ठा आणियं, मा तुब्भ अफलो परिस्समो भवतु, मा वा अधितिं करेस्सह।

११. दसवे. ५।१।१७—मामगं परिवज्जए।

१२. निभा. भा. २, चू.पृ. २०५—पडियाइक्खिए त्ति प्रत्याख्यातः...... प्रत्याख्यातो प्रतिषिद्धः।

१३. (क) वही, पृ. २०६—आउआणि जम्मि जीवाण संखडिज्जंति सा संखडी।
(ख) दसवे. ७।३६ का टिप्पण।

ब्राह्मणों आदि के प्रद्वेष, अन्तराय तथा उनके साथ अधिकरण आदि दोष भी संभव हैं।[1]

शब्द विमर्श

१. संखड़ी-पलोयणा—रसवती में जाकर, ओदन आदि को देखकर 'यह दो' 'यह दो' इस प्रकार कहना।[2]

५. सूत्र १५

भिक्षु के लिए विधान है प्रायः दृष्ट स्थान से भक्तपान लेना।[3] इसकी मर्यादा यह है कि तीन घरों के अन्तर से लाया हुआ भक्तपान हो, वह ले, उससे आगे का न ले। चौवन अनाचारों की सूचि में 'अभिहृत' को चौथा अनाचार माना गया है। निशीथभाष्य एवं पिण्डनिर्युक्ति में अभिहृत के अनेक प्रकारों का विस्तृत विवरण मिलता है।[4]

६. सूत्र १६-२१

प्रस्तुत आलापक में स्वयं के पैरों के आमार्जन, प्रमार्जन, संबाधन, परिमर्दन, अभ्यंगन, म्रक्षण, उद्वर्तन, परिवर्तन, उत्क्षालन, प्रधावन, फूमन (फूंक देना) एवं रंजन (अलक्तक आदि लगाना) का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है। भिक्षा आदि से लौटने पर, अस्थंडिल से स्थंडिल में आते समय पैरों का आमार्जन एवं प्रमार्जन आचीर्ण है।[5] इसी प्रकार वातरोग आदि में अथवा मोहचिकित्सा के लिए पैरों का संबाधन, परिमर्दन आदि अन्य क्रियाएं भी अनाचार नहीं है। अकारण या मात्र शारीरिक साता के निमित्त ये क्रियाएं करना बाकुशिक प्रवृत्ति है, स्वयं एवं दूसरे के मोहोद्दीपन की हेतुभूत होने के कारण ब्रह्मचर्य के लिए अहितकर हैं।[6] प्रमार्जन आदि में वायुकाय तथा प्रक्षालन आदि में अप्काय आदि जीवों की विराधना भी संभव है अतः ये सदोष हैं।

शब्द विमर्श

१. आमार्जन-प्रमार्जन—पैरों को एक बार या हाथ से साफ करना आमार्जन तथा बार-बार या रजोहरण से साफ करना प्रमार्जन कहलाता है।[7]

२. संबाधन-परिमर्दन—संबाधन का अर्थ है—मर्दन करना, दबाना।[8] विकालवेला में पैर दबाना संबाधन तथा अर्धरात्रि, पश्चिम रात्रि या दिन में अनेक बार पैर दबाना परिमर्दन कहलाता है।[9]

३. उल्लोलण-उद्वर्तन—एक बार लेप करना उल्लोलण और बार-बार लेप करना उद्वर्तन है। भाष्यकार ने उल्लोलण के स्थान पर 'उव्वलण' शब्द का प्रयोग किया है।[10]

४. फूमन-रंजन—अलक्तक आदि से पैरों आदि को रंगना और उसके पश्चात् फूंक देकर उस रंग को लगाना (टिकाऊ बनाना)।[11]

७. सूत्र २२-२७

प्रस्तुत आलापक में स्वयं के शरीर के आमार्जन, प्रमार्जन, संबाधन, परिमर्दन आदि क्रियाओं का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है। इन क्रियाओं में प्रकारान्तर से स्नान, संबाधन, गात्र-उद्वर्तन तथा गात्र-अभ्यंग आदि अनाचारों का समावेश हो जाता है। दसवेआलियं की चूर्णि एवं टीका में संपुच्छणा अनाचार में शरीर की रज आदि को पौंछना, मैल उतारना आदि की चर्चा भी उपलब्ध होती है।[12] अनाचारों की शृंखला में संबाधन, दंतप्रधावन और देह-प्रलोकन—ये सारे शरीर से सम्बन्धित हैं और 'संपुच्छण' का उल्लेख इनके साथ में है अतः यह भी शरीर से सम्बन्धित होना चाहिए। निसीहज्झयणं के प्रस्तुत आलापक से भी इसी विचार की पुष्टि होती है। इनमें क्रमशः शरीर के प्रमार्जन, संबाधन, अभ्यंग, उद्वर्तन, प्रक्षालन और रंगने का प्रायश्चित्त कहा है।[13]

संक्षेप में कहा जा सकता है कि सौन्दर्यवृद्धि, विभूषा आदि के लिए शरीर का प्रमार्जन आदि करना अथवा प्रयोजनवश अयतना से प्रमार्जन आदि करना सदोष है, अनाचरणीय है अतः इनसे प्रायश्चित्त प्राप्त होता है।

८. सूत्र २८-३९

प्रस्तुत आलापक में व्रण, फोड़ा, फुंसी, अर्श, भगन्दर आदि के परिकर्म, उनके आच्छेदन, विच्छेदन, उत्क्षालन, प्रधावन तथा

---

१. निभा. गा. १४८०—
पडिणीय-विसक्खेवो, तत्थ व अण्णत्थ वा वि तण्णिस्सा।
मरुगादीणं पओसो, अधिकरणुप्फोस वित्तवयो।।

२. वही, भा. २ चू.पृ. २०६—संखडिसामिणा अणुण्णातो तो तम्मि रसवतीए पविसित्ता ओअणाति पलोइउं भणाति—'इतो य इतो पयच्छाहि' त्ति एस पलोयणा।

३. दसवे. चूलिका २।६—ओसन्नदिट्ठाहडभत्तपाणे।

४. (क) निभा. गा. १४८३-१४८८ तथा पि.नि. ३२९-३४६।
(ख) द्रष्टव्य दसवे. ३।२ का टिप्पण।

५. निभा. गा. १४९१—
आइण्णमणाइण्णा, दुविहा पादे पमज्जणा होति।
संसत्ते पंथे वा, भिक्खवियारे विहारे य।।

६. वही गा. १४९८—
आतपर-मोहुदीरण बाउसदोसो य सुत्तपरिहाणी।
संपातिमाति घातो, विवज्जयो लोगपरिवायो।।

७. वही, भा. २, चू.पृ. २१०—अप्पणो पाए आमज्जति एक्कसि, पमज्जति पुणो-पुणो। अहवा हत्थेण आमज्जणं, रयहरणेण पमज्जणं।

८. वही, पृ. २१२—संबाहण त्ति विस्सामणं।

९. वही, पृ. २११—वियाले संबाहा भवति। जो पुण अड्ढरत्ते पच्छिमरत्ते वि दिवसतो वा अणेगसो संबाधेति, सा परिमद्दा भण्णति।

१०. वही, पृ. २१२—कक्काइणा उव्वलणं।

११. वही—अलत्तगाइणा रंगणं....... अलक्तकरंगो फुमिज्जंतो लग्गति।

१२. दसवे. ३।३ का टिप्पण (२१)

१३. निसीह. ३।२२-२७

मलहम आदि के लेप का भी प्रायश्चित्त बतलाया गया है। प्रश्न होता है कि भयंकर वेदना से पीड़ित होने पर मुनि क्या करे? सूत्रकार कहते हैं—वेदना को उत्पन्न हुआ जानकर भी मुनि समतापूर्वक अदीनभाव से प्रसन्नमना सहन करे। जिनकल्प, यथालन्दक आदि के लिए सर्वथा रोग का प्रतिकार न करने का विधान है।[1] वैसे ही समाधि, सूत्रार्थ की अव्यवच्छित्ति आदि कारणों से स्थविरकल्पी के लिए यतनापूर्वक चिकित्सा भी विहित मानी गई है।[2] अतः प्रस्तुत सन्दर्भ में प्रायश्चित्त का विधान अयतना के लिए है—ऐसा माना जा सकता है।[3]

शब्द विमर्श

१. व्रण—खुजली, दाद आदि से हुआ घाव या शस्त्र आदि के कारण हुआ घाव।[4]

२. गंड—गंडमाला।[5]

३. पिलग—फोड़ा।[6]

४. अरइय—फुंसी।[7]

५. असिय—अर्श या मस्सा।[8]

६. भगंदल—भगन्दर।[9]

७. जात—प्रकार, यथा शस्त्रजात अर्थात् विभिन्न प्रकार के शस्त्र, आलेपनजात विभिन्न प्रकार के आलेपन।[10]

८. आच्छेदन-विच्छेदन—एक बार या अल्प सा छेदन आच्छेदन, अनेकशः या अच्छी तरह छेदन विच्छेदन कहलाता है।[11]

९. निर्हरण-विशोधन—रक्त, पीव को कुछ मात्रा में निकालना निर्हरण एवं सम्पूर्णतया निकालना विशोधन कहलाता है।[12]

९. सूत्र ४०

प्रस्तुत सूत्र में अपान तथा कुक्षि की कृमि को अंगुली से निकालने का प्रायश्चित्त है क्योंकि इससे उनकी विराधना संभव है। भाष्यकार के अनुसार कृमि निकालने के निष्कारण, सकारण, विधि और अविधि से चार भंग हो जाते हैं। प्रस्तुत सूत्रगत प्रायश्चित्त कारण में अविधि से कृमि निकालने के विषय में है।[13]

श्रीमज्जयाचार्य ने इस विषय पर टिप्पणी करते हुए लिखा है—आपरी साता बांछै, जीवां रो मरणो वांछै नहीं। उन्होंने लिखा—कृमि निकालने के लिए जुलाब लेने वाला यह जानता है कि इससे कृमि की विराधना होगी पर वह विराधना का कामी नहीं। अतः प्रायश्चित्तभाक् नहीं।[14] इस आधार पर कहा जा सकता है कि भिक्षु समाधि के लिए यतनापूर्वक कृमि का निष्कासन करे तो दोष नहीं। भाष्यकार ने भी सूत्रार्थ की अव्यवच्छित्ति, समाधिमय जीवन आदि के लिए इसे अनुज्ञात माना है। भाष्य साहित्य में इस विषय में यतनाविषयक निर्देश मिलता है।[15]

शब्द विमर्श

पालु—अपान।

१०. सूत्र ४१

प्रस्तुत सूत्र में बढ़ी हुई नखशिखा को काटने एवं संवारने का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है। प्रस्तुत आगम के प्रथम उद्देशक तथा आयारचूला के सातवें अध्ययन से यह स्पष्ट है कि भिक्षु के लिए नखच्छेदनक लेना, नख काटना और गृहस्थ को नखच्छेदन को प्रत्यर्पित करना विहित है। इन दोनों प्रसंगों पर विचार करते हैं तब ऐसा प्रतीत होता है कि विभूषा के लिए नखशिखा को काटना एवं संवारना निषिद्ध है।[16] हरिभद्रसूरि के अनुसार स्थविरकल्पिक मुनि प्रमाणयुक्त नख रखते थे, ताकि अंधकार में दूसरे साधुओं के शरीर में न लग जाएं। जिनकल्पिक मुनि के नख दीर्घ होते थे।[17] यहां नख काटने का प्रयोजन है अहिंसा।

निशीथभाष्यकार के अनुसार हाथों के सुदीर्घ नख से पात्र के लेप का विनाश होने की संभावना हो, खुजलाने से शरीर पर घाव होने की संभावना हो, दीर्घ नखों में अशुचि रह जाने से आत्मविराधना एवं प्रवचन-विराधना हो, नखों में फंसी हुई रजों से चक्षूपघात

१. उत्तर. २।३३ तेगिच्छं नाभिनन्देज्जा।
२. निभा. गा. १५०४—
अव्वोच्छित्तिणिमित्तं, जीयट्ठी वा समाहिहेतुं वा।
पमज्जणादी तु पदे, जयणाए समायरे भिक्खू।।
३. (क) वही, १५०७—
णिक्कारणे ण कप्पति, गंडादीएसु छेअधुवणादी।
आसज्ज पुण कारणं, सो चेव गमो हवति तत्थ।।
(ख) वही, भा. २ चू. पृ. २१६—कारणे पुण आसज्ज एसेव कमो—सत्थादिणा उत्तरोत्तरपयकरणं।।
४. वही, पृ. २१४—कायव्वणो दुविधो—तत्थेव काये उब्भवो जस्स दोसो य तब्भवो, आगंतुएण सत्थातिणा कओ जो सो आगंतुगो।
५. वही, पृ. २१५—गच्छतीति गंडं, तं च गंडमाला।
६. वही—पिलगं तु पादगतं गंडं।
७. वही—अरतितं वा अरतितो वा जं ण पच्चति।
८. वही—असी अरिसा ता य अहिट्ठाणे णासाते व्रणेसु वा भवंति।
९. वही—भगंदरं अप्पण्णतो अहिट्ठाणे क्षतं किमियजालसंपण्णं भवति।
१०. वही—जातमिति प्रकारप्रदर्शनार्थम्।
११. वही—एक्कसि ईषद् वा आच्छिंदणं, बहुवारं सुट्ठु वा छिंदणं विच्छिंदणं।
१२. वही—णीहरति णाम णिग्गलति। अवसेसावयवा फेडणं विसोहणं भण्णति।
१३. वही, गा. १५११।
१४. सन्देह विषौषधि प. ८४-८६
१५. निभा. गा. २८८।
१६. दसवे. ६।६४
१७. दसवे. हा. टी. प. २०६—दीर्घनखवतो हस्तादौ जिनकल्पिकस्य, इतरस्य तु प्रमाणयुक्ता एव नखा भवन्ति यथाऽन्यसाधूनां शरीरेषु तमस्यपि न लगन्ति।

हो—इत्यादि कारणों से नखों को काटना विधिसम्मत है।[1] इस आधार पर कहा जा सकता है कि उपर्युक्त प्रयोजनों में अयतना से अथवा अकारण नख काटना प्रस्तुत प्रायश्चित्त का हेतु है।

शब्द विमर्श

कल्पन-संस्थापन—काटना कल्पन तथा अर्धचन्द्र, शुकमुख आदि के रूप में व्यवस्थित करना नखों का संस्थापन कहलाता है।[2]

११. सूत्र ४२-४६

जंघा, वस्ति, कांख आदि विभिन्न अवयवों की रोमराजि को काटने के अनेक प्रयोजन हो सकते हैं, जैसे—उस स्थान पर कोई व्रण हो जाए, उस पर लेप, मलहम आदि लगाना, चिकित्सा आदि की दृष्टि से उसकी सफाई करना अथवा अपने शरीर को अलंकृत, विभूषित करना आदि। स्थविरकल्प में चिकित्सा का सर्वथा निषेध नहीं है अतः व्रण, भगन्दर, अर्श आदि में उपघात पहुंचाने वाली रोमराजि को यतनापूर्वक काटना निषिद्ध नहीं है।[3] स्वयं के या दूसरे के मोहोद्दीपन में निमित्त बने, अयतना हो एवं निरर्थक प्रमादवृद्धि में हेतुभूत हो अथवा केवल सुन्दरता बढ़ाने का प्रयोजन हो—इस प्रकार विभिन्न अवयवों की रोमराजि को काटना या उसका विविध आकृतियों में व्यवस्थापन करना अनाचार है, प्रायश्चित्त का हेतु है।

शब्द विमर्श

रोम—सिर के बालों के लिए केश और शरीर के अन्य अवयवों पर होने वाले बालों के लिए रोम शब्द का व्यवहार होता है।[4]

१२. आघर्षण करता है अथवा प्रघर्षण करता है (आघंसेज्ज वा पघंसेज्ज वा)

प्रस्तुत आगम में अनेक स्थलों पर आमार्जन-प्रमार्जन, संबाधन-परिमर्दन, अभ्यंगन-म्रक्षण, उत्क्षालन-प्रधावन आदि धातुयुग्म दृष्टिगोचर होते हैं। भाष्यकार के अनुसार इनमें प्रथम पद एक बार और द्वितीय पद बार-बार (अनेक बार) अथवा प्रथम पद अल्प द्रव्य (लोध, जल आदि) से तथा द्वितीय पद बहुत द्रव्य (लोध, जल आदि) से करने के अर्थ में प्रयुक्त है।[5] दांतों के संदर्भ में चूर्णिकार ने आधर्षण का अर्थ एक दिन घिसना और प्रघर्षण का अर्थ प्रतिदिन घिसना किया है।[6]

१३. सूत्र ४७-४९

दसवेआलियं में दन्तप्रक्षालन एवं दतौन करना दोनों को भिन्न-भिन्न अतिचार माना गया है।[7] सूयगडो में दन्तप्रक्षालन (कदम्ब आदि की दतौन) से दन्तप्रक्षालन का निषेध किया गया है।[8] प्रतिदिन दंतमंजन करना, दांतों को धोना, फूंक देना, रंग लगाना आदि भिक्षु के लिए निषिद्ध कार्य हैं। अकारण अथवा अयतना से इन कार्यों को करने वाला प्रायश्चित्त का भागी होता है। यह इस आलापक का अभिप्राय है।

विस्तार हेतु द्रष्टव्य—दसवेआलियं ३।३ एवं ९ का टिप्पण।

१४. सूत्र ५०-५५

प्रस्तुत आलापक में होठ के आमार्जन, संबाधन, अभ्यंगन, उद्वर्तन आदि के लिए मासलघु प्रायश्चित्त का विधान किया गया है। भाष्य तथा परम्परा के अनुसार रोगप्रतिकार के लिए ये विहित भी हैं। संभवतः इसमें सभी श्वेताम्बर एकमत हैं। विभूषा के लिए अभ्यंगन, उद्वर्तन आदि करने वाले भिक्षु के लिए चातुर्मासिक प्रायश्चित्त का विधान है।[9]

इस प्रायश्चित्त भेद एवं पारम्परिक अपवाद से जान पड़ता है कि सामान्यतः आमार्जन, संबाधन, अभ्यंगन आदि निषिद्ध हैं और रोगप्रतिकार के लिए निषिद्ध नहीं भी हैं।

विस्तार हेतु द्रष्टव्य—दसवे. ३/९ का टिप्पण (पृ. ७३)

१५. सूत्र ५६-६६

प्रस्तुत आलापक में प्रज्ञप्त उत्तरोष्ठ (दाढ़ी), नासिका, भौंह तथा पार्श्वभाग की रोमराजि तथा पलकों के रोम को काटने अथवा संवारने तथा आंखों के आमार्जन-प्रमार्जन यावत् रंग लगाना पर्यन्त सभी सूत्रों के विषय में सामान्यतः वही उत्सर्ग एवं अपवाद पद ज्ञातव्य हैं जो पूर्व सूत्रों के विषय में प्रज्ञप्त हैं। भाष्यकार एवं चूर्णिकार के अनुसार बीज, रजकण आदि गिरने पर आंखों का आमार्जन-प्रमार्जन एवं त्रिफला आदि के पानी से यतनापूर्वक प्रक्षालन, अत्यधिक लम्बी भौंहें जो चक्षु की उपघातक हों, उनका कल्पन एवं व्यवस्थितीकरण, आंखों के रोग आदि में अंजन तथा व्रण, गंड आदि पर लेप, मलहम आदि ठहर सकें अतः पलकों के रोम तथा

---

१. (क) निभा. गा. १५१९—चंकमणामावडणे, लेवो देह-खत असुइ-णक्खेसु।
(ख) वही भा. २, चू. पृ. २२१—चंकमतो पायणहा उपल-खाणुगादिसु अप्फिडंति। पडिलोमो वा भज्जति। हत्थणहा वा भायणे लेवं विणासेंति। .....पायणहेसु दीहेसु अंतरंतरे रेणु चिट्ठंति, तीए चक्खु उवहम्मति।

२. वही, पृ. २२०—कप्पयति छिनत्ति, संठवेति तीक्ष्णे करोति, चंद्रार्धे सुकतुंडे वा करोति।

३. (क) वही, गा. १५१९—वणगंड रति—अंसिय-भगंदलादीसु रोमाइं।।
(ख) वही, भा. २ चू.पृ.२२१ —व्रण-गंड अरइयंसि-भगंदरादिसु रोमा उवघायं करेंति, लेवं वा अंतरेति, अतो छिंदति संठवेति वा।

४. वही, पृ. २२०—रोमराती पोट्टे भवति......केसे त्ति सिरजे।।

५. वही, गा. १४९६—एतेसिं पढमपदा सइं तु बितिया तु बहुसो बहुणा वा।

६. वही, भा. २, चू.पृ. २२०—एक्कदिणं आघंसणं, दिणे-दिणे पघंसणं।

७. दसवे. ३।३,९।

८. सूय. २।१।१४, वृ. प. २९९—नो दन्तप्रक्षालनेन कदम्बादिकाष्ठेन दन्तान् प्रक्षालयेत्।

९. निसीह. १५।१३३-१३८।

पार्श्व भाग आदि की रोमराजि का कर्तन आदि क्रियाएं अपवादरूप में अनुज्ञात हैं।[1]

ज्ञातव्य है कि प्रस्तुत आलापक में भाष्य एवं चूर्णि में स्वीकृत पाठ में चक्षु रोम एवं केश सम्बन्धी दो सूत्र अतिरिक्त हैं तथा जै. वि. भा. द्वारा सम्पादित प्रस्तुत पाठ में दीर्घरोम एवं दीर्घ नासारोम सम्बन्धी दो सूत्र अतिरिक्त हैं।

१६. सूत्र ६७,६८

अकारण शरीर अथवा शरीर के अवयव—कान, दांत आदि के मैल का अपनयन करना विभूषा है। इससे सूत्रपौरुषी एवं अर्थ-पौरुषी में विघ्न पैदा होता है अतः इसका निषेध किया गया है।[2] रोग आदि के कारण यतनापूर्वक पंक, जल्ल या मैल का अपनयन करना, आंख, कान आदि के मैल का विशोधन करना स्थविरकल्प में अनुज्ञात माना गया है।[3]

शब्द विमर्श

१. सेय—स्वेद, पसीना।[4]

२. जल्ल—जमा हुआ मैल।[5]

३. पंक—गीला मैल।[6]

४. मल—रज आदि।[7]

५. निर्हरण-विशोधन—निर्हरण अर्थात् निष्कासन या अपनयन करना, विशोधन अर्थात् सम्पूर्ण मैल का अपनयन करना।[8]

१७. सूत्र ६९

सिर ढकना स्त्रीवेश है। अकारण लिंग-विपर्यास करने से बहुत से दोष पैदा होते हैं। अतः उसका वर्जन किया गया है।[9] भाष्यकार ने ग्लान्य, अटवी, स्तेन आदि अपवादों में यतनापूर्वक सिर ढकना, अवगुंठन करना आदि को अनुज्ञात माना है।[10]

सीसदुवारिया का अर्थ है—शीर्षद्वारिका, सिर ढकना, मस्तक का अवगुंठन, घूंघट आदि।[11]

१८. सूत्र ७०

प्रस्तुत सूत्र में पाट, ऊन एवं सूत से वशीकरण सूत्र बनाने का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है। चूर्णिकार ने वशीकरण सूत्र के दो अर्थ बतलाए हैं—

१. वह धागा, जिससे अवश को वश में किया जाए, वशीकरण सूत्र कहलाता है।

२. जिससे वस्त्र बनाए जाएं या उपकरण बांधे जाएं, उसे भी वशीकरण सूत्र कहते हैं।[12]

भाष्यकार ने वशीकरण सूत्र के तीन प्रयोजन बतलाए हैं—१. पशु को बांधना २. उपकरणों को बांधना ३. फटे वस्त्र की सिलाई करना।[13]

निशीथ सूत्र की हुंडी में कहा गया है—सूत नां डोरा मंत्री नै वसीकरण डोरा करै।[14] अर्थात् सूत्र का धागा जिसे मंत्रित कर किसी को वश में किया जाता है।

वशीकरण सूत्र के निर्माण में संयमविराधना एवं आत्मविराधना आदि दोष संभव हैं अतः इसे प्रायश्चित्त-योग्य कार्य माना गया है।[15]

शब्द विमर्श

१. सणकप्पास—शण की छाल (कातने योग्य छाल को कपास कहते है।[16])

२. उण्णकप्पास—भेड के रोम।[17]

३. पोंडकप्पास—सूती कपास।[18]

---

१. निभा. गा. १५१९,१५२० तथा उनकी चूर्णि।
२. वही, भा. २, चू. पृ. २२१—अप्परुतीए वा बाउसदोसा भवंति। सुत्तत्थेसु य पलिमंथो।
३. वही, पृ. २२२—णयणे वा दूसिओ......आणं वा णातिकम्मति।
४. वही, पृ. २२१—सेयो प्रस्वेदः।
५. वही, गा. १५२२—जल्लो तु होति कमढं।
६. वही, १५२२—पंको पुण सेउल्लो, चिक्खलो वा वि जो लग्गो।
७. वही, भा. २, चू. पृ. २२१—मलो पुण उत्तरमाणो अच्छो रेणु वा।
८. वही—णीहरति अवणेति, असेसं विसोहणं।
९. वही, गा. १५२६—
परिभोग विवच्चासो लिंगविवेगे य छत्तए तिविधे।
गिहिपंत-तक्करेसु य, पच्चावाता भवे दुविहा॥
१०. वही, गा. १५२८—
बितियपदं गेलण्णे, असहू सागारसेधमादीसु।
अद्धाणे तेणेसु य, संजतपंतेसु जतणाए॥
११. वही, भा. २, चू. पृ. २२२—सीसस्स आवरणं सीसदुवारं। अहवा सीसस्स एगं दुवारं दुवारिया।
१२. वही, पृ. २२३—अवसा वसे कीरंति जेण तं वसीकरण सुत्तयं, सो पुण दोरो जेण वासे कीरइ उवकरणं बज्झति त्ति वुत्तं भवति।
१३. (क) वही, गा. १५२९—
वसीकरण-सुत्तगस्सा, अंछणयं वट्टणं व जो कुज्जा।
बंधण सिव्वणहेउं................................॥
(ख) वही, गा. १५३०—
अवसा वसम्मि कीरंति, जेण पसवो वसंति व जता ऊ।
अंछणता तु पसिरणा, वट्टण सुत्ते व रज्जू वा॥
१४. नि. हुंडी ३/७२
१५. वही, गा. १५३१—
अंछणतवट्टणं वा करेंति जीवाण होति अतिवातो।
ऊरु य हत्थछोडण गिलाण आरोवणायाए॥
१६. वही, भा. २ चू.पृ. २२३—सणो वणस्सतिजाती, तस्स वागो कच्चणिज्जो कप्पासो भण्णति।
१७. वही—उण्ण त्ति लाडाणं गड्डुरा भण्णंति।
१८. वही, पृ. २२३—पोंडा वमणी तस्स फलं, तस्स पम्हा कच्चणिज्जा कप्पासो भण्णति।

४. आमिलकप्पास–अमिल शब्द के दो अर्थ उपलब्ध होते हैं–

१. ऊन से बना वस्त्र।

२. मेष, भेड़।[१]

अमिला शब्द के भी तीन अर्थ उपलब्ध होते हैं–

१. भेड़ की ऊन से बना वस्त्र।[२]

२. देश विशेष में सूक्ष्म रोओं से बना वस्त्र।[३]

३. पाडी (छोटी भेंस)।[४] इस प्रकार ये सारे उल्लेख वस्त्र के प्रकरण में हैं। चूंकि यहां कपास का प्रकरण है और उर्णा कपास से भेड़ के रोम का ग्रहण हो ही जाता है, अतः यहां इसका अर्थ 'देश विशेष की भेड़ के कातने योग्य रोम' होना चाहिए।

१९. सूत्र ७१-७९

प्रस्तुत आलापक में चवालीस स्थानों का उल्लेख हुआ है। आयारचूला में भी उच्चार-प्रस्रवण के परिष्ठापन के सन्दर्भ में इनमें से अनेक स्थानों का उल्लेख किया गया है।[५] ये और इनके सदृश अन्य स्थान परिष्ठापन के योग्य नहीं होते। इन स्थानों में परिष्ठापन करने से मुख्यतः तीन दोष संभव हैं–

१. आत्मोपघात–उस स्थान के स्वामी या वहां अधिष्ठित देव को वहां परिष्ठापन करने से अप्रीति हो सकती है, वह प्रद्विष्ट होकर मुनि को मार सकता है, पीट या परितापित कर सकता है, उस गन्दगी पर उसे गिरा सकता है आदि।

२. संयमोपघात–अंगारदाह, क्षारदाह तथा फल आदि सुखाने के स्थानों पर परिष्ठापन करने पर वे गृहस्थ इन कार्यों के लिए अन्य पृथ्वी आदि का प्रयोग करते हैं या मल को वनस्पतिकाय पर गिराते हैं तो कायवध होता है।

३. प्रवचनोपघात–किसी के घर, गृह-द्वार आदि पर अथवा इक्षुवन, शालिवन आदि स्थानों पर परिष्ठापन करने से अपयश एवं प्रवचन-हानि की संभावना रहती है।[६]

अतः इनमें से किसी भी स्थान पर उच्चार-प्रस्रवण का परित्याग करने पर भिक्षु को मासलघु प्रायश्चित्त प्राप्त होता है। महाभारत[७] में बताया गया है कि हरे भरे लहलहाते खेतों, घर के निकट, भस्म या गोबर के ढेर, पथिकों के विश्राम योग्य छायादार मार्ग तथा मनोरम स्थान पर मलमूत्र का त्याग करना वर्जित है। सूयगडो में भी वनस्पति पर मलमूत्र के विसर्जन का निषेध प्राप्त होता है।[८]

शब्द विमर्श

१. **गिह**–गृह और उसका आभ्यंतरवर्ती भाग।[९]

२. **गिहमुह**–घर का मुख–घर के बाहर का कोठा या चबूतरा।[१०]

३. **गिहदुवार**–घर का द्वार (मुख्य द्वार)।[११]

४. **गिहपडिदुवार**–घर का प्रतिद्वार (पिछला दरवाजा, खिड़की आदि)।[१२]

५. **गिहेलुय**–घर की एलुका (देहली)।[१३]

६. **गिहंगण**–घर का आंगन।[१४]

७. **गिहवच्च**–घर का शौचालय।[१५]

८. **मडगगिह**–कब्रिस्तान।[१६]

९. **मडगछारिय**–मृतक की राख।[१७]

१०. **मडगथूभिय**–मृतक की स्तूपिका (चबूतरी)।[१८]

११. **मडगासय**–मृतक का आश्रय।[१९]

---

१. पाइय.
२. आचू. ५/१४ की वृत्ति
३. निभा. २, चू. पृ. ३९९–रोमेसु कया अमिला।
४. वही, पृ. ४१०–अमिलाइया पसुजाती।
(अमिल–भेड़, अमिला–पाडी)
५. आचू. १०।२३-२७
६. निभा. गा. १५४१–
आया-संजम-पवयण, तिविधं उवघाइयं तु णातव्वं।
गिहमादिंगालादी, सुसाणमादी जहा कमसो।।
७. महा. (अनु. प.) २४३।१४
८. सूय. ९।१९
९. (क) निभा. १५३४–अंतो गिहं खलु गिहं।
(ख) वही, भा. २ चू. पृ. २२४–घरस्स अंतो गिहब्भंतरं गिहं भण्णति। गिहगहणेण वा सव्वं चेव घरं घेप्पति।
१०. (क) वही–कोट्ठगसुविधी व गिहमुहं होति।
(ख) वही–कोट्ठओ-अग्गिमालिंदओ, सुविही-छद्दारु आलिंदो, एते दो वि गिहमुहं।
११. वही–अग्गदारं पवेसितं तं गिहदुवारं भण्णति।
१२. पाइय.–पडिदुवार-छोटा द्वार।
१३. वही–देहली, द्वार के नीचे की लकड़ी।
१४. निभा. गा. १५३४–अंगणं मंडवथाणं। (चू.पृ. २२४)–गिहस्स अग्गतो अब्भावगासं मंडवथाणं अंगण भण्णति।
१५. वही, गा. १५३५–गिहवच्चं पेरंता, पुरोहडं वा वि जत्थ वा वच्चं। (चूर्णि) गिहस्स समंततो वच्चं भण्णति। पुरोहडं वा वच्चं पत्थं ति वुत्तं भवति। जत्थ वा वच्चं करेंति, तं वच्चं सण्णाभूमि भण्णति।
१६. वही, गा. १५३६–मडगगिहा मेच्छाणं। (चू.पृ. २२५) मडगगिहं णाम मेच्छाणं घरब्भंतरे मतयं छोढुं विज्जति, न डज्झति तं मडगगिहं।
१७. वही, गा. १५३६–छारो तु अपुंजकडो। (चू.पृ. २२५) अभिणवदड्ढ अपुंजकयं छारो भण्णति।
१८. वही, १५३५–थूभा पुण विच्चगा होंति।
१९. निभा. २, चू. २२५–मडाणं आश्रयो मडाश्रय स्थानमित्यर्थः। मसाणासण्णे आणेतुं मडयं जत्थ मुच्चति, तं मडासयं।

१२. मडगलेण—मृतक के ऊपर बना लयन (देवकुल)।[1]

१३. मडगथंडिल—मृतक का स्थंडिल।[2]

१४. मडगवच्च—मृतक का वर्च।[3]

१५. इंगालदाह—अंगारा बनाने का स्थान।[4]

१६. खारदाह—खार (सज्जी खार)[5] जलाने का स्थान। भाष्य एवं चूर्णि में इसका अर्थ बथुआ आदि किया है।[6] वह यहां प्रासंगिक नहीं, सूत्र ७७ में जहां पत्ती के शाक का प्रसंग है, वहां प्रासंगिक है।

१७. गातदाह—गात्रदाह[7] (चिकित्सा के लिए पशुओं को दागने) का स्थान।

१८. तुसदाहठाण—तुस जलाने का स्थान।[8]

१९. भुसदाहठाण—बुस (भूसी) जलाने का स्थान।[9]

२०. गोलेहणिया—गोलेहनिका (नौनी भूमि)।[10]

२१. सेयायण—सेयायतन (कीचड़ युक्त पानी का स्थान, नाली।)[11]

२२. पणगायतण—पनक या फफूंदी युक्त स्थान।[12]

२३. उंबरवच्च—उदुंबर (गूलर) का वर्च (फल सुखाने का स्थान)।[13]

२४. णग्गोहवच्च—न्यग्रोध (वट) के फल सुखाने का स्थान।[14]

२५. असोत्थवच्च—अश्वत्थ (पीपल) के फल सुखाने का स्थान।[15]

२६. पिलक्खुवच्च—पाकड़ के फल सुखाने का स्थान।[16]

२७. डागवच्च—डाल (शाखा) प्रधान शाक का वर्च।[17]

२८. सागवच्च—पत्रप्रधान शाक का वर्च।[18]

२९. मूलयवच्च—मूली का वर्च (सुखाने का स्थान)।[19]

३०. कोत्थुंभरिवच्च—धनिया[20] का वर्च।

३१. खारवच्च—बथुआ[21] सुखाने का स्थान।

३२. जीरयवच्च—जीरा[22] सुखाने का स्थान।

३३. दमणगवच्च—दौना (दवना)[23] सुखाने का स्थान।

३४. मरुगवच्च—मरुक (सफेद मरुआ)[24] सुखाने का स्थान।

२०. सूत्र ८०

सामान्यतया भिक्षु स्थंडिलभूमि में जाकर उच्चार-प्रस्रवण का विसर्जन करता है। परन्तु रात्रि या विकालवेला में अथवा दिन में भी रोग, स्थानाभाव, श्वापदभय आदि कारणों से स्थंडिलभूमि में जाना संभव न हो तो मात्रक में भी उच्चार-प्रस्रवण का विसर्जन किया जाता है।

प्रस्तुत सूत्र में उस विसर्जित उच्चारप्रस्रवण का सूर्योदय से पूर्व परिष्ठापन करने का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है। प्रस्तुत सन्दर्भ में 'अणुग्गए सूरिए' पाठ विमर्शनीय है। भाष्य एवं चूर्णि में 'अणुग्गए सूरिए' इस वाक्यांश का 'सूर्योदय से पूर्व' अर्थ ग्रहण करते हुए कहा गया है—इस सूत्र का अधिकार 'रात्रि में विसर्जन' से है।[25] प्रस्तुत सन्दर्भ में उन्होंने रात्रि में परिष्ठापन से आने वाले दोषों की भी चर्चा की है।[26]

यदि 'अणुग्गए सूरिए' वाक्यांश का अर्थ 'सूर्योदय से पूर्व' किया जाए तो सूत्र में प्रयुक्त 'दिया वा' पाठ की सार्थकता पर

१. (क) निभा. गा. १५३६—छारचिता विरहितं तु थंडिल्लं।
(ख) वही, भा. २, चू.पृ. २२२—छारचिति वज्जितं केवलं मडय-दड्ढट्ठाणं थंडिलं भण्णति।
२. वही—मडयस्स उवरि जं देवकुलं तं लेणं भण्णति।
३. वही, गा. १५३६—वच्चं पुण पेरंता, सीताणं वा वि सव्वं तु।।
४. निभा. २, चू.पृ. २२५—खइराति इंगाला।
५. पाइय.—खार—सर्जिका, सज्जी।
६. निभा. भा. २, चू.पृ. २२५—वत्थुलमाती खारो।
७. निभा. गा. १५३७—गोमादिरोगसमणो दहंति गत्ते तहिं जासि। (चू.पृ. २२५)—जरातिरोगमरंताणं गोरूआणं रोगपसवणत्थं जत्थ गाता डज्झंति ते गातदाहं भण्णति।
८. वही—कुंभकारा जत्थ बाहिरओ तुसे डहंति, तं तुसदाहठाणं।
९. वही—प्रतिवर्ष खलगट्ठाणे ऊसण्णं जत्थ भुसं डहंति, तं भुसदाहठाणं भण्णति।
१०. वही—जत्थ गावो ऊसत्थाणा लिहंति, साऽभुज्जमाणी णिरुद्धा णवा भण्णति।
११. वही, पृ. २२६—कद्दमबहुलं पाणीयं सेओ भण्णति, तस्स आययणं णिक्का।
१२. वही— पणओ उल्ली। सो जत्थ ठाणे समुच्छति तं पणगट्ठाणं।
१३. वही—उंबरस्स फला जत्थ गिरिउडे उच्चविज्जंति, तं उंबरवच्चं भण्णति।
१४. वही—णग्गोहो वडो।
१५. वही—असत्थो-पिप्पलो।
१६. वही—पिलक्खू पिप्पलभेदो सो पुण इत्थयाभिहाणा पिप्पली भण्णति।
१७. आचू. वृ. प. ४११—डागत्ति डालप्रधानं शाकं।
१८. वही—पत्रप्रधानं तु शाकमेव।
१९. पाइय—मूलग-मूली।
२०. वही—कुत्थुंबरि—धनिया।
२१. निभा. २, चू.पृ. २२५—वत्थुलमादी खारो।
२२. पाइय—जीरय-जीरा।
२३. वही—दमणय—दौना, सुगन्धित पत्र वाली वनस्पति-विशेष।
२४. वही—मरुग—मरुवा।
२५. निभा. गा. १५५० सचूर्णि।
२६. वही, गा. १५५३ सचूर्णि

प्रश्नचिह्न लग जाता है। यदि सूर्योदय से पूर्व परिष्ठापन को निषिद्ध माना जाए तो सूर्यास्त से पूर्व उच्चार-प्रस्रवण के परिष्ठापन हेतु स्थंडिल का प्रतिलेखन करना भी निरर्थक हो जाता है। पात्र में विसर्जित उच्चार आदि में जीवोत्पत्ति होने से संयम-विराधना तथा सूत्र की अस्वाध्यायी का भी प्रसंग आता है।

अतः प्रस्तुत वाक्यांश का अर्थ कालसूचक न कर स्थानसूचक करना युक्तिसंगत प्रतीत होता है। अर्थात् ऐसा स्थान जहां सूर्य न उगता हो, जहां सूर्य का प्रकाश एवं धूप नहीं पहुंचती हो, वहां परिष्ठापन करना सदोष है। श्रीमज्जयाचार्य कृत हुंडी से भी इसी तथ्य की पुष्टि होती है—

'रात्रि विकाले उच्चार पासवण री बाधा इ पीड्यौ थको साध आपणा पात्र विषै उच्चार-पासवण परठी करी नै तावड़ो न आवै त्यां नाखै।'[1]

शब्द विमर्श

१. **उब्बाहिज्जमाण**—वेग से अत्यधिक बाधित होना।

२. **एड्**—छोड़ना, त्याग करना, दूर करना।[2]

१. नि. हुंडी ३।८०

२. दे. श. को.।

चउत्थो उद्देसो

चौथा उद्देशक

आमुख

प्रस्तुत उद्देशक के मुख्य प्रतिपाद्य हैं—राजा एवं राज्याधिकारियों के साथ सम्बन्ध बनाने, उनका अर्चीकरण एवं अर्थीकरण का प्रायश्चित्त, कृत्स्न औषधि खाने, अनुज्ञा के बिना विगय खाने, पुरःकर्म आदि एषणादोष एवं परस्पर शरीर-परिकर्म का प्रायश्चित्त, परिष्ठापनिका समिति एवं स्थापना कुलों में प्रवेश आदि से सम्बद्ध अनाचरणीय कार्यों का प्रायश्चित्त।

प्राचीनकाल में अधिकांशतः राजतन्त्र शासन प्रणाली का प्रचलन था। साधु-संस्था को भी अनेक परिस्थितियों में, विभिन्न कारणों से राज्याश्रय एवं राजसम्बन्धों की आवश्यकता होती थी। दूसरी ओर अनेक वर्चस्वी आचार्यों का राजाओं एवं राज्य के अन्य बड़े अधिकारियों पर काफी प्रभाव था एवं समय-समय पर राजपरिवारों से मुमुक्षुगण साधुत्व को स्वीकार करते थे। इन सब तथ्यों को ध्यान में रखते हुए राजा, राजरक्षक आदि से संबंध बनाने, उनकी प्रशंसा कर उन्हें अपने अनुकूल बनाने अथवा अनेक प्रकार से उनको अपना प्रार्थी बनाने से संबद्ध विधि-निषेधों एवं उत्सर्ग-अपवादों का अध्ययन किया जाए तो अनेक महत्त्वपूर्ण जानकारियां उपलब्ध हो सकती हैं। प्रस्तुत उद्देशक में राजा, राजरक्षक, कोतवाल, श्रेष्ठी, चोरोद्धरणिक, महाबलाधिकृत, अरण्यारक्षक, ग्रामारक्षक और सीमारक्षक को अपना बनाने, उनकी अर्चा करने एवं उनको प्रार्थी बनाने का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है।

प्रस्तुत उद्देशक में भिक्षु के लिए आहारविषयक प्रायश्चित्त सम्बन्धी दो विधान उपलब्ध होते हैं—

१. कृत्स्न औषधि—मूंग, चवला आदि का आहार करना।

२. आचार्य-उपाध्याय के द्वारा अननुज्ञात स्थिति में विगय का आहार करना।

स्निग्ध, मधुर एवं प्रणीतरस वाला आहार धातुक्षोभ का हेतु होने से कामोद्दीपक होता है अतः आत्मगवेषी मुनि के लिए तालपुट विष के समान माना गया है। मुनि के लिए निर्विकृतिक आहार को श्रेयस्कर मानते हुए भी विगय के सर्वथा वर्जन का आदेश प्राप्त नहीं होता। प्रस्तुत सन्दर्भ में निशीथभाष्य को पढ़ने पर प्राचीनकाल में प्रचलित कुछ व्यवस्थाओं के प्रति ध्यान आकृष्ट होता है—

१. निष्कारण विगय नहीं खाना।

२. विगय खाने से पूर्व आचार्य-उपाध्याय से अनुज्ञा प्राप्त करना।

३. विगय की अनुज्ञा मिलने पर कायोत्सर्ग कर विगय खाना[१]।

भिक्षु की भिक्षा सर्वसंपत्करी होती है। वह उद्‌गम, उत्पादन आदि के दोषों से रहित भिक्षा ग्रहण करता है। वह ऐसी भिक्षा ग्रहण नहीं कर सकता, जिसमें पुरःकर्म एवं पश्चात्कर्म दोष की संभावना है। सचित्त पृथ्वी, पानी एवं वनस्पति से लिप्त हाथ अथवा पात्र को संसृष्ट हाथ अथवा पात्र कहा जाता है। प्रस्तुत उद्देशक में संसृष्ट हाथ, संसृष्ट पात्र, संसृष्ट दर्वी अथवा संसृष्ट भाजन से भिक्षा ग्रहण करने वाले के लिए प्रायश्चित्त का कथन किया गया है। सूत्रकार ने यहां 'इक्कीस हाथों की वक्तव्यता' का कथन किया है। दसवेआलियं के पिंडैषणा अध्ययन में संसृष्ट हाथ आदि के सत्रह प्रकार बतलाए गए हैं। उनमें लोध्र, कंद, मूल एवं शृंगबेर से संसृष्ट हाथ, पात्र आदि का साक्षात् कथन नहीं किया गया है।

तृतीय उद्देशक के समान चतुर्थ उद्देशक में भी पाद-परिकर्म, काय-परिकर्म, व्रण-परिकर्म, गंडादि-परिकर्म, दीर्घरोमपद

१. निभा. गा. १५९७

आदि से संबद्ध शीर्षद्वारिका पर्यन्त चौवन सूत्रों वाला सम्पूर्ण आलापक 'अण्णमण्णस्स' पद के साथ पुनरुक्त हुआ है क्योंकि स्वयं के पादपरिकर्म आदि के समान परस्पर पाद-परिकर्म आदि क्रियाएं भी निरर्थक की जाएं तो बाकुशिकत्व, स्वयं एवं दूसरे की मोहोदीरणा, सूत्रार्थ-पलिमंथु आदि दोषों की हेतु बनती हैं। उपर्युक्त दोनों उद्देशकों में दूसरी समानता है—दोनों में ही 'उच्चार-प्रस्रवण पद' में दस-दस सूत्र आए हैं। तीसरे उद्देशक में अस्थान—गृह, गृहमुख आदि में परिष्ठापन का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है जबकि प्रस्तुत उद्देशक में परिष्ठापनिका समिति की अविधि का प्रायश्चित्त निरूपित है। इनमें मुख्यतः उच्चार-प्रस्रवण सम्बन्धी स्थंडिल की संख्या, स्थंडिल का परिमाण, परिष्ठापन-विधि तथा परिष्ठापन के पश्चात् समाचरणीय विधि आदि सभी से सम्बन्धित मुख्य-मुख्य सभी अतिक्रमणों का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है। संभवतः सम्पूर्ण आगम-वाङ्मय में उच्चार-प्रस्रवण के परिष्ठापन से सम्बन्धित ये समस्त निर्देश एक संलग्न आलापक में इसी आगम में प्राप्त होते हैं।

प्रस्तुत उद्देशक के भाष्य एवं उसकी चूर्णि में स्थापना-कुल, वैयावृत्य, अधिकरण (कलह), निर्ग्रन्थी-उपाश्रय में आचार्य आदि के समागमन के कारण तथा साधु-साध्वी की परस्पर परिचर्या आदि अनेक विषयों का विस्तृत एवं हृदयस्पर्शी वर्णन उपलब्ध होता है।

चउत्थो उद्देसो : चौथा उद्देशक

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
अत्तीकरण-पदं	**आत्मीकरण-पदम्**	**आत्मीकरण-पद**
१. जे भिक्खू रायं अत्तीकरेति, अत्तीकरेंतं वा सातिज्जति ।।	यो भिक्षुः राजानम् आत्मीकरोति, आत्मीकुर्वन्तं वा स्वदते।	१. जो भिक्षु राजा के साथ सम्बन्ध स्थापित करता है अथवा सम्बन्ध स्थापित करने वाले का अनुमोदन करता है।
२. जे भिक्खू रायारक्खियं अत्तीकरेति, अत्तीकरेंतं वा सातिज्जति ।।	यो भिक्षुः राजारक्षितम् आत्मीकरोति, आत्मीकुर्वन्तं वा स्वदते।	२. जो भिक्षु राजा के आरक्षक के साथ सम्बन्ध स्थापित करता है अथवा सम्बन्ध स्थापित करने वाले का अनुमोदन करता है।
३. जे भिक्खू णगरारक्खियं अत्तीकरेति, अत्तीकरेंतं वा सातिज्जति ।।	यो भिक्षुः नगरारक्षितम् आत्मीकरोति, आत्मीकुर्वन्तं वा स्वदते।	३. जो भिक्षु नगर के आरक्षक के साथ सम्बन्ध स्थापित करता है अथवा सम्बन्ध स्थापित करने वाले का अनुमोदन करता है।
४. जे भिक्खू णिगमारक्खियं अत्तीकरेति, अत्तीकरेंतं वा सातिज्जति ।।	यो भिक्षुः निगमारक्षितम् आत्मीकरोति, आत्मीकुर्वन्तं वा स्वदते।	४. जो भिक्षु निगम के आरक्षक के साथ सम्बन्ध स्थापित करता है अथवा सम्बन्ध स्थापित करने वाले का अनुमोदन करता है।
५. जे भिक्खू देसारक्खियं अत्तीकरेति, अत्तीकरेंतं वा सातिज्जति ।।	यो भिक्षुः देशारक्षितम् आत्मीकरोति, आत्मीकुर्वन्तं वा स्वदते।	५. जो भिक्षु देश के आरक्षक के साथ सम्बन्ध स्थापित करता है अथवा सम्बन्ध स्थापित करने वाले का अनुमोदन करता है।
६. जे भिक्खू सव्वारक्खियं अत्तीकरेति, अत्तीकरेंतं वा सातिज्जति ।।	यो भिक्षुः सर्वारक्षितम् आत्मीकरोति, आत्मीकुर्वन्तं वा स्वदते।	६. जो भिक्षु सर्वआरक्षक के साथ सम्बन्ध स्थापित करता है अथवा सम्बन्ध स्थापित करने वाले का अनुमोदन करता है।
अच्चीकरण-पदं	**अर्चीकरण-पदम्**	**अर्चीकरण-पद**
७. जे भिक्खू रायं अच्चीकरेति, अच्चीकरेंतं वा सातिज्जति ।।	यो भिक्षुः राजानम् अर्चीकरोति, अर्चीकुर्वन्तं वा स्वदते।	७. जो भिक्षु राजा की अर्चा करता है अथवा अर्चा करने वाले का अनुमोदन करता है।
८. जे भिक्खू रायारक्खियं अच्चीकरेति,	यो भिक्षुः राजारक्षितम् अर्चीकरोति,	८. जो भिक्षु राजा के आरक्षक की अर्चा करता

अच्चीकरेंतं वा सातिज्जति।।

अर्चीकुर्वन्तं वा स्वदते।

है अथवा अर्चा करने वाले का अनुमोदन करता है।

९. जे भिक्खू णगरारक्खियं अच्चीकरेति, अच्चीकरेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः नगरारक्षितम् अर्चीकरोति, अर्चीकुर्वन्तं वा स्वदते।

९. जो भिक्षु नगर के आरक्षक की अर्चा करता है अथवा अर्चा करने वाले का अनुमोदन करता है।

१०. जे भिक्खू णिगमारक्खियं अच्चीकरेति, अच्चीकरेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः निगमारक्षितम् अर्चीकरोति, अर्चीकुर्वन्तं वा स्वदते।

१०. जो भिक्षु निगम के आरक्षक की अर्चा करता है अथवा अर्चा करने वाले का अनुमोदन करता है।

११. जे भिक्खू देसारक्खियं अच्चीकरेति, अच्चीकरेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः देशारक्षितम् अर्चीकरोति, अर्चीकुर्वन्तं वा स्वदते।

११. जो भिक्षु देश के आरक्षक की अर्चा करता है अथवा अर्चा करने वाले का अनुमोदन करता है।

१२. जे भिक्खू सव्वारक्खियं अच्चीकरेति, अच्चीकरेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः सर्वारक्षितम् अर्चीकरोति, अर्चीकुर्वन्तं वा स्वदते।

१२. जो भिक्षु सर्वआरक्षक की अर्चा करता है अथवा अर्चा करने वाले का अनुमोदन करता है।[1]

अत्थीकरण-पदं

अर्थीकरण-पदम्

अर्थीकरण-पद

१३. जे भिक्खू रायं अत्थीकरेति, अत्थीकरेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः राजानम् अर्थीकरोति, अर्थीकुर्वन्तं वा स्वदते।

१३. जो भिक्षु (अपना विद्यातिशय प्रदर्शित कर) राजा को अपना प्रार्थी बनाता है अथवा प्रार्थी बनाने वाले का अनुमोदन करता है।[2]

१४. जे भिक्खू रायारक्खियं अत्थीकरेति, अत्थीकरेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः राजारक्षितम् अर्थीकरोति, अर्थीकुर्वन्तं वा स्वदते।

१४. जो भिक्षु (अपना विद्यातिशय प्रदर्शित कर) राजा के आरक्षक को अपना प्रार्थी बनाता है अथवा प्रार्थी बनाने वाले का अनुमोदन करता है।

१५. जे भिक्खू णगरारक्खियं अत्थीकरेति, अत्थीकरेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः नगरारक्षितम् अर्थीकरोति, अर्थीकुर्वन्तं वा स्वदते।

१५. जो भिक्षु (अपना विद्यातिशय प्रदर्शित कर) नगर के आरक्षक को अपना प्रार्थी बनाता है अथवा प्रार्थी बनाने वाले का अनुमोदन करता है।

१६. जे भिक्खू णिगमारक्खियं अत्थीकरेति, अत्थीकरेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः निगमारक्षितम् अर्थीकरोति, अर्थीकुर्वन्तं वा स्वदते।

१६. जो भिक्षु (अपना विद्यातिशय प्रदर्शित कर) निगम के आरक्षक को अपना प्रार्थी बनाता है अथवा प्रार्थी बनाने वाले का अनुमोदन करता है।

१७. जे भिक्खू देसारक्खियं अत्थीकरेति, अत्थीकरेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः देशारक्षितम् अर्थीकरोति, अर्थीकुर्वन्तं वा स्वदते।

१७. जो भिक्षु (अपना विद्यातिशय प्रदर्शित कर) देश के आरक्षक को अपना प्रार्थी बनाता है अथवा प्रार्थी बनाने वाले का अनुमोदन करता है।

१८. जे भिक्खू सव्वारक्खियं अत्थीकरेति, अत्थीकरेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः सर्वारक्षितम् अर्थीकरोति, अर्थीकुर्वन्तं वा स्वदते।

१८. जो भिक्षु (अपना विद्यातिशय प्रदर्शित कर) सर्वआरक्षक को अपना प्रार्थी बनाता है अथवा प्रार्थी बनाने वाले का अनुमोदन करता है।

कसिण-ओसहि-पदं

कृत्स्न-ओषधि-पदम्

कृत्स्न-ओषधि-पद

१९. जे भिक्खू कसिणाओ ओसहीओ आहारेति, आहारेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षु कृत्स्नाः ओषधीः आहरति, आहरन्तं वा स्वदते।

१९. जो भिक्षु कृत्स्न औषधि का आहार करता है अथवा आहार करने वाले का अनुमोदन करता है।[३]

विगति-पदं

विकृति-पदम्

विकृति-पद

२०. जे भिक्खू आयरिय-उवज्झाएहिं अविदिण्णं विगतिं आहारेति, आहारेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः आचार्योपाध्यायैः अविदत्तां विकृतिम् आहरति, आहरन्तं वा स्वदते।

२०. जो भिक्षु आचार्य एवं उपाध्याय को अनुज्ञा के बिना विकृति का आहार करता है अथवा आहार करने वाले का अनुमोदन करता है।[४]

ठवणकुल-पदं

स्थापनाकुल-पदम्

स्थापनाकुल-पद

२१. जे भिक्खू ठवण-कुलाइं अजाणिय अपुच्छिय अगवेसिय पुव्वामेव पिंडवाय-पडियाए अणुप्पविसति, अणुप्पविसंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः स्थापनाकुलानि अज्ञात्वा अपृष्ट्वा अगवेषयित्वा पूर्वमेव पिण्डपातप्रतिज्ञया अनुप्रविशति, अनुप्रविशन्तं वा स्वदते।

२१. जो भिक्षु स्थापना कुलों को जाने बिना, पूछे बिना, गवेषणा किए बिना, पहले ही पिण्डपात की प्रतिज्ञा से अनुप्रविष्ट होता है अथवा अनुप्रविष्ट होने वाले का अनुमोदन करता है।[५]

निग्गंथीए सद्धिं ववहार-पदं

निर्ग्रन्थ्या सार्द्धं व्यवहार-पदम्

निर्ग्रन्थी के साथ व्यवहार-पद

२२. जे भिक्खू णिग्गंथीणं उवस्सयंसि अविहीए अणुप्पविसति, अणुप्पविसंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः निर्ग्रन्थीनाम् उपाश्रये अविधिना अनुप्रविशति, अनुप्रविशन्तं वा स्वदते।

२२. जो भिक्षु निर्ग्रन्थियों के उपाश्रय में अविधि से अनुप्रवेश करता है अथवा अनुप्रवेश करने वाले का अनुमोदन करता है।[६]

२३. जे भिक्खू णिग्गंथीणं आगमणपहंसि दंडगं वा लट्ठियं वा रयहरणं वा मुहपोत्तियं वा अण्णयरं वा उवगरणजायं ठवेति, ठवेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः निर्ग्रन्थीनाम् आगमनपथे दण्डकं वा यष्टिकां वा रजोहरणं वा मुखपोतिकां वा अन्यतरं वा उपकरणजातं स्थापयति, स्थापयन्तं वा स्वदते।

२३. जो भिक्षु निर्ग्रन्थियों के आने के मार्ग में दंड, लाठी, रजोहरण, मुखवस्त्रिका अथवा अन्य किसी उपकरणजात को रखता है अथवा रखने वाले का अनुमोदन करता है।[७]

अहिगरण-पदं

२४. जे भिक्खू णवाइं अणुप्पण्णाइं अहिगरणाइं उप्पाएति, उप्पाएंतं वा सातिज्जति ।।

२५. जे भिक्खू पोराणाइं अहिगरणाइं खामिय-विओसवियाइं पुणो उदीरेति, उदीरेंतं वा सातिज्जति ।।

हसण-पदं

२६. जे भिक्खू मुहं विप्फालिय-विप्फालिय हसति, हसंतं वा सातिज्जति ।।

पासत्थादीणं संघाडयं-पदं

२७. जे भिक्खू पासत्थस्स संघाडयं देति, देंतं वा सातिज्जति ।।

२८. जे भिक्खू पासत्थस्स संघाडयं पडिच्छति, पडिच्छंतं वा सातिज्जति ।।

२९. जे भिक्खू ओसण्णस्स संघाडयं देति, देंतं वा सातिज्जति ।।

३०. जे भिक्खू ओसण्णस्स संघाडयं पडिच्छति, पडिच्छंतं वा सातिज्जति ।।

३१. जे भिक्खू कुसीलस्स संघाडयं देति, देंतं वा सातिज्जति ।।

३२. जे भिक्खू कुसीलस्स संघाडयं पडिच्छति, पडिच्छंतं वा सातिज्जति ।।

३३. जे भिक्खू नितियस्स संघाडयं देति, देंतं वा सातिज्जति ।।

अधिकरण-पदम्

यो भिक्षुः नवानि अनुत्पन्नानि अधिकरणानि उत्पादयति, उत्पादयन्तं वा स्वदते।

यो भिक्षुः पौराणानि अधिकरणानि क्षामितव्युपशमितानि पुनः उदीरयति, उदीरयन्तं वा स्वदते।

हसन-पदम्

यो भिक्षुः मुखं विस्फार्य विस्फार्य हसति, हसन्तं वा स्वदते।

पार्श्वस्थादीनां संघाटक-पदम्

यो भिक्षुः पार्श्वस्थाय संघाटकं ददाति, ददन्तं वा स्वदते।

यो भिक्षुः पार्श्वस्थस्य संघाटकं प्रतीच्छति, प्रतीच्छन्तं वा स्वदते।

यो भिक्षुः अवसन्नाय संघाटकं ददाति, ददन्तं वा स्वदते।

यो भिक्षुः अवसन्नस्य संघाटकं प्रतीच्छति, प्रतीच्छन्तं वा स्वदते।

यो भिक्षुः कुशीलाय संघाटकं ददाति, ददन्तं वा स्वदते।

यो भिक्षुः कुशीलस्य संघाटकं प्रतीच्छति, प्रतीच्छन्तं वा स्वदते।

यो भिक्षुः नैत्यिकाय संघाटकं ददाति, ददन्तं वा स्वदते।

अधिकरण-पद

२४. जो भिक्षु नए सिरे से अनुत्पन्न अधिकरण (कलह) को उत्पन्न करता है अथवा उत्पन्न करने वाले का अनुमोदन करता है।

२५. जो भिक्षु क्षमित (शान्त) और उपशमित पुराने अधिकरणों को पुनः उदीरित करता है और उदीरित करने वाले का अनुमोदन करता है।[८]

हास्य-पद

२६. जो भिक्षु मुंह को विस्फारित कर-विस्फारित कर हंसता है (अट्टहास करता है) अथवा हंसने वाले का अनुमोदन करता है।[९]

पार्श्वस्थ आदि का संघाटक-पद

२७. जो भिक्षु पार्श्वस्थ को संघाटक देता है अथवा देने वाले का अनुमोदन करता है।

२८. जो भिक्षु पार्श्वस्थ से संघाटक को ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

२९. जो भिक्षु अवसन्न को संघाटक देता है अथवा देने वाले का अनुमोदन करता है।

३०. जो भिक्षु अवसन्न से संघाटक को ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

३१. जो भिक्षु कुशील को संघाटक देता है अथवा देने वाले का अनुमोदन करता है।

३२. जो भिक्षु कुशील से संघाटक को ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

३३. जो भिक्षु नित्यक को संघाटक देता है अथवा देने वाले का अनुमोदन करता है।

३४. जे भिक्खू नितियस्स संघाडयं पडिच्छति, पडिच्छंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः नैत्यिकस्य संघाटकं प्रतीच्छति, प्रतीच्छन्तं वा स्वदते ।

३४. जो भिक्षु नित्यक से संघाटक को ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

३५. जे भिक्खू संसत्तस्स संघाडयं देति, देंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः संसक्ताय संघाटकं ददाति, ददन्तं वा स्वदते ।

३५. जो भिक्षु संसक्त को संघाटक देता है अथवा देने वाले का अनुमोदन करता है।

३६. जे भिक्खू संसत्तस्स संघाडयं पडिच्छति, पडिच्छंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः संसक्तस्य संघाटकं प्रतीच्छति, प्रतीच्छन्तं वा स्वदते ।

३६. जो भिक्षु संसक्त से संघाटक को ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।[१०]

एक्कवीस-हत्थ-पदं

एकविंशति-हस्त-पदम्

इक्कीस हस्त-पद

३७. जे भिक्खू उदओल्लेण हत्थेण वा मत्तेण वा दव्वीए वा भायणेण वा असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः उदार्द्रेण हस्तेन वा अमत्रेण वा दर्व्या वा भाजनेन वा अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते ।

३७. जो भिक्षु उदकार्द्र (सचित्त जल से गीले) हाथ, मिट्टी के पात्र, दर्वी अथवा कांस्य पात्र से अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य को ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

३८. एवं एक्कवीसं हत्था भाणियव्वा ।।

एवम् एकविंशतिः हस्ताः भणितव्याः ।

३८. इसी प्रकार इक्कीस हाथों की वक्तव्यता।[११]

अत्तीकरण-पदं

आत्मीकरण-पदम्

आत्मीकरण-पद

३९. जे भिक्खू गामारक्खियं अत्तीकरेति, अत्तीकरेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः ग्रामारक्षितम् आत्मीकरोति, आत्मीकुर्वन्तं वा स्वदते ।

३९. जो भिक्षु ग्राम के आरक्षक के साथ सम्बन्ध स्थापित करता है अथवा सम्बन्ध स्थापित करने वाले का अनुमोदन करता है।

४०. जे भिक्खू देसारक्खियं अत्तीकरेति, अत्तीकरेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः देशारक्षितम् आत्मीकरोति, आत्मीकुर्वन्तं वा स्वदते ।

४०. जो भिक्षु देश के आरक्षक के साथ सम्बन्ध स्थापित करता है अथवा सम्बन्ध स्थापित करने वाले का अनुमोदन करता है।

४१. जे भिक्खू सीमारक्खियं अत्तीकरेति, अत्तीकरेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः सीमारक्षितम् आत्मीकरोति, आत्मीकुर्वन्तं वा स्वदते ।

४१. जो भिक्षु सीमा के आरक्षक के साथ सम्बन्ध स्थापित करता है अथवा सम्बन्ध स्थापित करने वाले का अनुमोदन करता है।

४२. जे भिक्खू रण्णारक्खियं अत्तीकरेति, अत्तीकरेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अरण्यारक्षितम् आत्मीकरोति, आत्मीकुर्वन्तं वा स्वदते ।

४२. जो भिक्षु अरण्य के आरक्षक के साथ सम्बन्ध स्थापित करता है अथवा सम्बन्ध स्थापित करने वाले का अनुमोदन करता है।

४३. जे भिक्खू सव्वारक्खियं अत्तीकरेति, अत्तीकरेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः सर्वारक्षितम् आत्मीकरोति, आत्मीकुर्वन्तं वा स्वदते।

४३. जो भिक्षु सर्वआरक्षक के साथ सम्बन्ध स्थापित करता है अथवा सम्बन्ध स्थापित करने वाले का अनुमोदन करता है।

अच्चीकरण-पदं

अर्चीकरण-पदम्

अर्चीकरण-पद

४४. जे भिक्खू गामारक्खियं अच्चीकरेति, अच्चीकरेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः ग्रामारक्षितम् अर्चीकरोति, अर्चीकुर्वन्तं वा स्वदते।

४४. जो भिक्षु ग्राम के आरक्षक की अर्चा करता है अथवा अर्चा करने वाले का अनुमोदन करता है।

४५. जे भिक्खू देसारक्खियं अच्चीकरेति, अच्चीकरेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः देशारक्षितम् अर्चीकरोति, अर्चीकुर्वन्तं वा स्वदते।

४५. जो भिक्षु देश के आरक्षक की अर्चा करता है अथवा अर्चा करने वाले का अनुमोदन करता है।

४६. जे भिक्खू सीमारक्खियं अच्चीकरेति, अच्चीकरेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः सीमारक्षितम् अर्चीकरोति, अर्चीकुर्वन्तं वा स्वदते।

४६. जो भिक्षु सीमा के आरक्षक की अर्चा करता है अथवा अर्चा करने वाले का अनुमोदन करता है।

४७. जे भिक्खू रण्णारक्खियं अच्चीकरेति, अच्चीकरेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः अरण्यारक्षितम् अर्चीकरोति, अर्चीकुर्वन्तं वा स्वदते।

४७. जो भिक्षु अरण्य के आरक्षक की अर्चा करता है अथवा अर्चा करने वाले का अनुमोदन करता है।

४८. जे भिक्खू सव्वारक्खियं अच्चीकरेति, अच्चीकरेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः सर्वारक्षितम् अर्चीकरोति, अर्चीकुर्वन्तं वा स्वदते।

४८. जो भिक्षु सर्वआरक्षक की अर्चा करता है अथवा अर्चा करने वाले का अनुमोदन करता है।

अत्थीकरण-पदं

अर्थीकरण-पदम्

अर्थीकरण-पद

४९. जे भिक्खू गामारक्खियं अत्थीकरेति, अत्थीकरेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः ग्रामारक्षितम् अर्थीकरोति, अर्थीकुर्वन्तं वा स्वदते।

४९. जो भिक्षु (अपना विद्यातिशय प्रदर्शित कर) ग्राम के आरक्षक को अपना प्रार्थी बनाता है अथवा प्रार्थी बनाने वाले का अनुमोदन करता है।

५०. जे भिक्खू देसारक्खियं अत्थीकरेति, अत्थीकरेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः देशारक्षितम् अर्थीकरोति, अर्थीकुर्वन्तं वा स्वदते।

५०. जो भिक्षु (अपना विद्यातिशय प्रदर्शित कर) देश के आरक्षक को अपना प्रार्थी बनाता है अथवा प्रार्थी बनाने वाले का अनुमोदन करता है।

५१. जे भिक्खू सीमारक्खियं अत्थीकरेति, अत्थीकरेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः सीमारक्षितम् अर्थीकरोति, अर्थीकुर्वन्तं वा स्वदते।

५१. जो भिक्षु (अपना विद्यातिशय प्रदर्शित कर) सीमा के आरक्षक को अपना प्रार्थी बनाता है अथवा प्रार्थी बनाने वाले का अनुमोदन करता है।

५२. जे भिक्खू रण्णारक्खियं अत्थीकरेति, अत्थीकरेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः अरण्यारक्षितम् अर्थीकरोति, अर्थीकुर्वन्तं वा स्वदते।

५२. जो भिक्षु (अपना विद्यातिशय प्रदर्शित कर) अरण्य के आरक्षक को अपना प्रार्थी बनाता है अथवा प्रार्थी बनाने वाले का अनुमोदन करता है।

५३. जे भिक्खू सव्वारक्खियं अत्थीकरेति, अत्थीकरेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः सर्वारक्षितम् अर्थीकरोति, अर्थीकुर्वन्तं वा स्वदते।

५३. जो भिक्षु (अपना विद्यातिशय प्रदर्शित कर) सर्वआरक्षक को अपना प्रार्थी बनाता है अथवा प्रार्थी बनाने वाले का अनुमोदन करता है।[१२]

पाय-परिक्कम-पदं

पादपरिकर्म-पदम्

पादपरिकर्म-पद

५४. जे भिक्खू अण्णमण्णस्स पाए आमज्जेज्ज वा पमज्जेज्ज वा, आमज्जंतं वा पमज्जंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः अन्योन्यस्य पादौ आमृज्याद् वा प्रमृज्याद् वा, आमार्जन्तं वा प्रमार्जन्तं वा स्वदते।

५४. जो भिक्षु परस्पर एक दूसरे भिक्षु के पैरों का आमार्जन करता है अथवा प्रमार्जन करता है और आमार्जन अथवा प्रमार्जन करने वाले का अनुमोदन करता है।

५५. जे भिक्खू अण्णमण्णस्स पाए संवाहेज्ज वा पलिमद्देज्ज वा, संवाहेंतं वा पलिमद्देंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः अन्योन्यस्य पादौ संवाहयेद् वा परिमर्दयेद् वा, संवाहयन्तं वा परिमर्दयन्तं वा स्वदते।

५५. जो भिक्षु परस्पर एक दूसरे भिक्षु के पैरों का संबाधन करता है अथवा परिमर्दन करता है और संबाधन अथवा परिमर्दन करने वाले का अनुमोदन करता है।

५६. जे भिक्खू अण्णमण्णस्स पाए तेल्लेण वा घएण वा वसाए वा णवणीएण वा अब्भंगेज्ज वा मक्खेज्ज वा, अब्भंगेंतं वा मक्खेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः अन्योन्यस्य पादौ तैलेन वा घृतेन वा वसया वा नवनीतेन वा अभ्यञ्ज्याद् वा म्रक्षेद् वा, अभ्यञ्जन्तं वा म्रक्षन्तं वा स्वदते।

५६. जो भिक्षु परस्पर एक दूसरे भिक्षु के पैरों का तैल, घृत, वसा अथवा मक्खन से अभ्यंगन करता है अथवा म्रक्षण करता है और अभ्यंगन अथवा म्रक्षण करने वाले का अनुमोदन करता है।

५७. जे भिक्खू अण्णमण्णस्स पाए लोद्धेण वा कक्केण वा चुण्णेण वा वण्णेण वा उल्लोलेज्ज वा उव्वट्टेज्ज वा उल्लोलेंतं वा उव्वट्टेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः अन्योन्यस्य पादौ लोध्रेण वा कल्केन वा चूर्णेन वा वर्णेन वा उल्लोलयेद् वा उद्वर्तेत वा, उल्लोलयन्तं वा उद्वर्तमानं वा स्वदते।

५७. जो भिक्षु परस्पर एक दूसरे भिक्षु के पैरों पर लोध, कल्क, चूर्ण अथवा वर्ण का लेप करता है अथवा उद्वर्तन करता है और लेप अथवा उद्वर्तन करने वाले का अनुमोदन करता है।

५८. जे भिक्खू अण्णमण्णस्स पाए सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलेज्ज वा पधोएज्ज वा, उच्छोलेंतं वा पधोएंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः अन्योन्यस्य पादौ शीतोदकविकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन वा उत्क्षालयेद् वा प्रधावेद् वा, उत्क्षालयन्तं वा प्रधावन्तं वा स्वदते।

५८. जो भिक्षु परस्पर एक दूसरे भिक्षु के पैरों का प्रासुक शीतल जल से अथवा प्रासुक उष्ण जल से उत्क्षालन करता है अथवा प्रधावन करता है और उत्क्षालन अथवा प्रधावन करने वाले का अनुमोदन करता है।

५९. जे भिक्खू अण्णमण्णस्स पाए फुमेज्ज वा रएज्ज वा, फुमेंतं वा रएंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्योन्यस्य पादौ 'फुमेज्ज' (फूत्कुर्याद्) वा रजेद् वा, 'फुमेंतं' (फूत्कुर्वन्तं) वा रजन्तं वा स्वदते ।

५९. जो भिक्षु परस्पर एक दूसरे भिक्षु के पैरों पर फूंक देता है अथवा रंग लगाता है और फूंक देने अथवा रंग लगाने वाले का अनुमोदन करता है।

काय-परिकम्म-पदं

कायपरिकर्म-पदम्

कायपरिकर्म-पद

६०. जे भिक्खू अण्णमण्णस्स कायं आमज्जेज्ज वा पमज्जेज्ज वा, आमंज्जंतं वा पमज्जंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्योन्यस्य कायम् आमृज्याद् वा प्रमृज्याद् वा, आमार्जन्तं वा प्रमार्जन्तं वा स्वदते ।

६०. जो भिक्षु परस्पर एक दूसरे भिक्षु के शरीर का आमार्जन करता है अथवा प्रमार्जन करता है और आमार्जन अथवा प्रमार्जन करने वाले का अनुमोदन करता है।

६१. जे भिक्खू अण्णमण्णस्स कायं संवाहेज्ज वा पलिमद्देज्ज वा, संवाहेंतं वा पलिमद्देंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्योन्यस्य कायं संवाहयेद् वा परिमर्दयेद् वा, संवाहयन्तं वा परिमर्दयन्तं वा स्वदते ।

६१. जो भिक्षु परस्पर एक दूसरे भिक्षु के शरीर का संबाधन करता है अथवा परिमर्दन करता है और संबाधन अथवा परिमर्दन करने वाले का अनुमोदन करता है।

६२. जे भिक्खू अण्णमण्णस्स कायं तेल्लेण वा घएण वा वसाए वा णवणीएण वा अब्भंगेज्ज वा मक्खेज्ज वा, अब्भंगेंतं वा मक्खेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्योन्यस्य कायं तैलेन वा घृतेन वा वसया वा नवनीतेन वा अभ्यञ्ज्याद् वा म्रक्षेद् वा, अभ्यञ्जन्तं वा म्रक्षन्तं वा स्वदते ।

६२. जो भिक्षु परस्पर एक दूसरे भिक्षु के शरीर का तैल, घृत, वसा अथवा मक्खन से अभ्यंगन करता है अथवा म्रक्षण करता है और अभ्यंगन अथवा म्रक्षण करने वाले का अनुमोदन करता है।

६३. जे भिक्खू अण्णमण्णस्स कायं लोद्धेण वा कक्केण वा चुण्णेण वा वण्णेण वा उल्लोलेज्ज वा उव्वट्टेज्ज वा, उल्लोलेंतं वा उव्वट्टेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्योन्यस्य कायं लोध्रेण वा कल्केन वा चूर्णेन वा वर्णेन वा उल्लोलयेद् वा उद्वर्तेत वा, उल्लोलयन्तं वा उद्वर्तमानं वा स्वदते ।

६३. जो भिक्षु परस्पर एक दूसरे भिक्षु के शरीर पर लोध, कल्क, चूर्ण अथवा वर्ण का लेप करता है अथवा उद्वर्तन करता है और लेप अथवा उद्वर्तन करने वाले का अनुमोदन करता है।

६४. जे भिक्खू अण्णमण्णस्स कायं सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलेज्ज वा पधोएज्ज वा, उच्छोलेंतं वा पधोएंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्योन्यस्य कायं शीतोदकविकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन वा उत्क्षालयेद् वा प्रधावेद् वा, उत्क्षालयन्तं वा प्रधावन्तं वा स्वदते ।

६४. जो भिक्षु परस्पर एक दूसरे भिक्षु के शरीर का प्रासुक शीतल जल से अथवा प्रासुक उष्ण जल से उत्क्षालन करता है अथवा प्रधावन करता है और उत्क्षालन अथवा प्रधावन करने वाले का अनुमोदन करता है।

६५. जे भिक्खू अण्णमण्णस्स कायं फुमेज्ज वा रएज्ज वा, फुमेंतं वा रएंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्योन्यस्य कायं 'फुमेज्ज' (फूत्कुर्याद्) वा रजेद् वा, 'फुमेंतं' (फूत्कुर्वन्तं) वा रजन्तं वा स्वदते ।

६५. जो भिक्षु परस्पर एक दूसरे भिक्षु के शरीर पर फूंक देता है अथवा रंग लगाता है और फूंक देने अथवा रंग लगाने वाले का अनुमोदन करता है।

वण-परिकम्म-पदं

६६. जे भिक्खू अण्णमण्णस्स कायंसि वणं आमज्जेज्ज वा पमज्जेज्ज वा, आमज्जंतं वा पमज्जंतं वा सातिज्जति ।।

६७. जे भिक्खू अण्णमण्णस्स कायंसि वणं संवाहेज्ज वा पलिमद्देज्ज वा, संवाहेंतं वा पलिमद्देंतं वा सातिज्जति ।।

६८. जे भिक्खू अण्णमण्णस्स कायंसि वणं तेल्लेण वा घएण वा वसाए वा णवणीएण वा अब्भंगेज्ज वा मक्खेज्ज वा, अब्भंगेंतं वा मक्खेंतं वा सातिज्जति ।।

६९. जे भिक्खू अण्णमण्णस्स कायंसि वणं लोद्धेण वा कक्केण वा चुण्णेण वा वण्णेण वा उल्लोलेज्ज वा उव्वट्टेज्ज वा, उल्लोलेंतं वा उव्वट्टेंतं वा सातिज्जति ।।

७०. जे भिक्खू अण्णमण्णस्स कायंसि वणं सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलेज्ज वा पधोएज्ज वा, उच्छोलेंतं वा पधोएंतं वा सातिज्जति ।।

७१. जे भिक्खू अण्णमण्णस्स कायंसि वणं फुमेज्ज वा रएज्ज वा, फुमेंतं वा रएंतं वा सातिज्जति ।।

गंडादि-परिकम्म-पदं

७२. जे भिक्खू अण्णमण्णस्स कायंसि

व्रणपरिकर्म-पदम्

यो भिक्षुः अन्योन्यस्य काये व्रणम् आमृज्याद् वा प्रमृज्याद् वा, आमार्जन्तं वा प्रमार्जन्तं वा स्वदते ।

यो भिक्षुः अन्योन्यस्य काये व्रणं संवाहयेद् वा परिमर्दयेद् वा, संवाहयन्तं वा परिमर्दयन्तं वा स्वदते ।

यो भिक्षुः अन्योन्यस्य काये व्रणं तैलेन वा घृतेन वा वसया वा नवनीतेन वा अभ्यञ्ज्याद् वा म्रक्षेद् वा, अभ्यञ्जन्तं वा म्रक्षन्तं वा स्वदते ।

यो भिक्षुः अन्योन्यस्य काये व्रणं लोध्रेण वा कल्केन वा चूर्णेन वा वर्णेन वा उल्लोलयेद् वा उद्वर्तेत वा, उल्लोलयन्तं वा उद्वर्तमानं वा स्वदते ।

यो भिक्षुः अन्योन्यस्य काये व्रणं शीतोदकविकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन वा उत्क्षालयेद् वा प्रधावेद् वा, उत्क्षालयन्तं वा प्रधावन्तं वा स्वदते ।

यो भिक्षुः अन्योन्यस्य काये व्रणं 'फुमेज्ज' (फूत्कुर्याद) वा रजेद् वा, 'फुमेंतं' (फूत्कुर्वन्तं) वा रजन्तं वा स्वदते ।

गंडादिपरिकर्म-पदम्

यो भिक्षुः अन्योन्यस्य काये गंडं वा पिटकं

व्रणपरिकर्म-पद

६६. जो भिक्षु परस्पर एक दूसरे भिक्षु के शरीर पर हुए व्रण का आमार्जन करता है अथवा प्रमार्जन करता है और आमार्जन अथवा प्रमार्जन करने वाले का अनुमोदन करता है।

६७. जो भिक्षु परस्पर एक दूसरे भिक्षु के शरीर पर हुए व्रण का संबाधन करता है अथवा परिमर्दन करता है और संबाधन अथवा परिमर्दन करने वाले का अनुमोदन करता है।

६८. जो भिक्षु परस्पर एक दूसरे भिक्षु के शरीर पर हुए व्रण का तैल, घृत, वसा अथवा मक्खन से अभ्यंगन करता है अथवा म्रक्षण करता है और अभ्यंगन अथवा म्रक्षण करने वाले का अनुमोदन करता है।

६९. जो भिक्षु परस्पर एक दूसरे भिक्षु के शरीर पर हुए व्रण पर लोध, कल्क, चूर्ण अथवा वर्ण का लेप करता है अथवा उद्वर्तन करता है और लेप अथवा उद्वर्तन करने वाले का अनुमोदन करता है।

७०. जो भिक्षु परस्पर एक दूसरे भिक्षु के शरीर पर हुए व्रण का प्रासुक शीतल जल से अथवा प्रासुक उष्ण जल से उत्क्षालन करता है अथवा प्रधावन करता है और उत्क्षालन अथवा प्रधावन करने वाले का अनुमोदन करता है।

७१. जो भिक्षु परस्पर एक दूसरे भिक्षु के शरीर पर हुए व्रण पर फूंक देता है अथवा रंग लगाता है और फूंक देने अथवा रंग लगाने वाले का अनुमोदन करता है।

गंडादिपरिकर्म-पद

७२. जो भिक्षु परस्पर एक दूसरे के शरीर में हुए

गंडं वा पिडयं वा अरइयं वा असियं वा भगंदलं वा अण्णयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं अच्छिंदेज्ज वा विच्छिंदेज्ज वा, अच्छिंदेंतं वा विच्छिंदेंतं वा सातिज्जति ।।

वा अरतिकां वा अर्शो वा भगन्दरं वा अन्यतरेण तीक्ष्णेन शस्त्रजातेन आच्छिन्द्याद् वा विच्छिन्द्याद् वा, आच्छिन्दन्तं वा विच्छिन्दन्तं वा स्वदते।

गंडमाल, फोड़ा, फुंसी, अर्श अथवा भगन्दर का किसी तीक्ष्ण शस्त्रजात से आच्छेदन करता है अथवा विच्छेदन करता है और आच्छेदन अथवा विच्छेदन करने वाले का अनुमोदन करता है।

७३. जे भिक्खू अण्णमण्णस्स कायंसि गंडं वा पिडयं वा अरइयं वा असियं वा भगंदलं वा अण्णयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं अच्छिंदित्ता वा विच्छिंदित्ता वा पूयं वा सोणियं वा णीहरेज्ज वा विसोहेज्ज वा, णीहरेंतं वा विसोहेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्योन्यस्य काये गण्डं वा पिटकं वा अरतिकां वा अर्शो वा भगन्दरं वा अन्यतरेण तीक्ष्णेन शस्त्रजातेन आच्छिद्य वा विच्छिद्य वा पूयं वा शोणितं वा निस्सरेद् वा विशोधयेद् वा, निस्सरन्तं वा विशोधयन्तं वा स्वदते।

७३. जो भिक्षु परस्पर एक दूसरे भिक्षु के शरीर में हुए गंडमाल, फोड़ा, फुंसी, अर्श अथवा भगन्दर का किसी तीक्ष्ण शस्त्रजात से आच्छेदन अथवा विच्छेदन कर पीव अथवा रक्त निकालता है अथवा साफ करता है और निकालने अथवा साफ करने वाले का अनुमोदन करता है।

७४. जे भिक्खू अण्णमण्णस्स कायंसि गंडं वा पिडयं वा अरइयं वा असियं वा भगंदलं वा अण्णयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं अच्छिंदित्ता वा विच्छिंदित्ता वा पूयं वा सोणियं वा णीहरित्ता वा विसोहेत्ता वा सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलेज्ज वा पधोएज्ज वा, उच्छोलेंतं वा पधोएंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्योन्यस्य काये गण्डं वा पिटकं वा अरतिकां वा अर्शो वा भगन्दरं वा अन्यतरेण शस्त्रजातेन आच्छिद्य वा विच्छिद्य वा पूयं वा शोणितं वा निस्सृत्य वा विशोध्य वा शीतोदकविकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन वा उत्क्षालयेद् वा प्रधावेद् वा, उत्क्षालयन्तं वा प्रधावन्तं वा स्वदते।

७४. जो भिक्षु परस्पर एक दूसरे भिक्षु के शरीर में हुए गंडमाल, फोड़ा, फुंसी, अर्श अथवा भगन्दर का किसी तीक्ष्ण शस्त्रजात से आच्छेदन अथवा विच्छेदन कर, उसके पीव अथवा रक्त को निकाल कर अथवा साफ कर उसका प्रासुक शीतल जल अथवा प्रासुक उष्ण जल से उत्क्षालन करता है अथवा प्रधावन करता है और उत्क्षालन अथवा प्रधावन करने वाले का अनुमोदन करता है।

७५. जे भिक्खू अण्णमण्णस्स कायंसि गंडं वा पिडयं वा अरइयं वा असियं वा भगंदलं वा अण्णयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं अच्छिंदित्ता वा विच्छिंदित्ता वा पूयं वा सोणियं वा णीहरित्ता वा विसोहेत्ता वा सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलेत्ता वा पधोएत्ता वा अण्णयरेणं आलेवणजाएणं आलिंपेज्ज वा विलिंपेज्ज वा, आलिंपेंतं वा विलिंपेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्योन्यस्य काये गण्डं वा पिटकं वा अरतिकां वा अर्शो वा भगन्दरं वा अन्यतरेण तीक्ष्णेन शस्त्रजातेन आच्छिद्य वा विच्छिद्य वा पूयं वा शोणितं वा निस्सृत्य वा विशोध्य वा शीतोदकविकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन वा उत्क्षाल्य वा प्रधाव्य वा अन्यतरेण आलेपनजातेन आलिम्पेद् वा विलिम्पेद् वा, आलिम्पन्तं वा विलिम्पन्तं वा स्वदते।

७५. जो भिक्षु परस्पर एक दूसरे भिक्षु के शरीर में हुए गंडमाल, फोड़ा, फुंसी, अर्श अथवा भगन्दर का किसी तीक्ष्ण शस्त्रजात से आच्छेदन अथवा विच्छेदन कर, उसके पीव अथवा रक्त को निकाल कर अथवा साफ कर, उसका प्रासुक शीतल जल अथवा प्रासुक उष्ण जल से उत्क्षालन अथवा प्रधावन कर किसी आलेपनजात से आलेपन करता है अथवा विलेपन करता है और आलेपन अथवा विलेपन करने वाले का अनुमोदन करता है।

७६. जे भिक्खू अण्णमण्णस्स कायंसि

यो भिक्षुः अन्योन्यस्य काये गण्डं वा

७६. जो भिक्षु परस्पर एक दूसरे भिक्षु के शरीर

गंडं वा पिडयं वा अरइयं वा असियं वा भगंदलं वा अण्णयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं अच्छिंदित्ता वा विच्छिंदित्ता वा पूयं वा सोणियं वा णीहरित्ता वा विसोहेत्ता वा सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलेत्ता वा पधोएत्ता वा अण्णयरेणं आलेवणजाएणं आलिंपित्ता वा विलिंपित्ता वा तेल्लेण वा घएण वा वसाए वा णवणीएण वा अब्भंगेज्ज वा मक्खेज्ज वा, अब्भंगेंतं वा मक्खेंतं वा सातिज्जति ।।

पिटकं वा अरतिकां वा अर्शो वा भगन्दरं वा अन्यतरेण तीक्ष्णेन शस्त्रजातेन आच्छिद्य वा विच्छिद्य वा पूयं वा शोणितं वा निस्सृत्य वा विशोध्य वा शीतोदकविकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन उत्क्षाल्य वा प्रधाव्य वा अन्यतरेण आलेपनजातेन आलिप्य वा विलिप्य वा तैलेन वा घृतेन वा वसया वा नवनीतेन वा अभ्यञ्ज्याद् वा म्रक्षेद् वा, अभ्यञ्जन्तं वा म्रक्षन्तं वा स्वदते।

में हुए गंडमाल, फोड़ा, फुंसी, अर्श अथवा भगन्दर का किसी तीक्ष्ण शस्त्रजात से आच्छेदन अथवा विच्छेदन कर, उसके पीव अथवा रक्त को निकाल कर अथवा साफ कर, उसका प्रासुक शीतल जल अथवा प्रासुक उष्ण जल से उत्क्षालन अथवा प्रधावन कर किसी आलेपनजात से आलेपन अथवा विलेपन कर, उसका तैल, घृत, वसा अथवा मक्खन से अभ्यंगन करता है अथवा म्रक्षण करता है और अभ्यंगन अथवा म्रक्षण करने वाले का अनुमोदन करता है।

७७. जे भिक्खू अप्पणो कायंसि गंडं वा पिडयं वा अरइयं वा असियं वा भगंदलं वा अण्णयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं अच्छिंदित्ता वा विच्छिंदित्ता वा पूयं वा सोणियं वा णीहरित्ता वा विसोहेत्ता वा सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलेत्ता वा पधोएत्ता वा अण्णयरेणं आलेवणजाएणं आलिंपित्ता वा विलिंपित्ता वा तेल्लेण वा घएण वा वसाए वा णवणीएण वा अब्भंगेत्ता वा मक्खेत्ता वा अण्णयरेणं धूवण-जाएणं धूवेज्ज वा पधूवेज्ज वा, धूवेंतं वा पधूवेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्योन्यस्य काये गण्डं वा पिटकं वा अरतिकां वा अर्शो वा भगन्दरं वा अन्यतरेण तीक्ष्णेन शस्त्रजातेन आच्छिद्य वा विच्छिद्य वा पूयं वा शोणितं वा निस्सृत्य वा विशोध्य वा शीतोदकविकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन वा उत्क्षाल्य वा प्रधाव्य वा अन्यतरेण आलेपनजातेन आलिप्य वा विलिप्य वा तैलेन वा घृतेन वा वसया वा नवनीतेन वा अभ्यञ्ज्य वा म्रक्षित्वा वा अन्यतरेण धूपनजातेन धूपायेद् वा प्रधूपायेद् वा, धूपायन्तं वा प्रधूपायन्तं वा स्वदते।

७७. जो भिक्षु परस्पर एक दूसरे भिक्षु के शरीर में हुए गंडमाल, फोड़ा, फुंसी, अर्श अथवा भगन्दर का किसी तीक्ष्ण शस्त्रजात से आच्छेदन अथवा विच्छेदन कर, उसके पीव अथवा रक्त को निकालकर अथवा साफ कर, उसका प्रासुक शीतल जल अथवा प्रासुक उष्ण जल से उत्क्षालन अथवा प्रधावन कर, किसी आलेपनजात से आलेपन अथवा विलेपन कर, उसका तैल, घृत, वसा अथवा मक्खन से अभ्यंगन अथवा म्रक्षण कर उसे किसी धूपजात से धूपित करता है अथवा प्रधूपित करता है और धूपित अथवा प्रधूपित करने वाले का अनुमोदन करता है।

किमि-पदं

७८. जे भिक्खू अण्णमण्णस्स पालुकिमियं वा कुच्छिकिमियं वा अंगुलीए णिवेसिय-णिवेसिय णीहरति, णीहरंतं वा सातिज्जति ।।

कृमि-पदम्

यो भिक्षुः अन्योन्यस्य पायुकृमिकं वा कुक्षिकृमिकं वा अंगुल्या निवेश्य-निवेश्य निस्सरति, निस्सरन्तं वा स्वदते।

कृमि-पद

७८. जो भिक्षु परस्पर एक दूसरे भिक्षु के अपान की कृमि अथवा कुक्षि की कृमि को अंगुली डाल-डाल कर निकालता है अथवा निकालने वाले का अनुमोदन करता है।

णह-सिहा-पदं

७९. जे भिक्खू अण्णमण्णस्स दीहाओ

नखशिखा-पदम्

यो भिक्षु अन्योन्यस्य दीर्घाः नखशिखाः

नखशिखा-पद

७९. जो भिक्षु परस्पर एक दूसरे भिक्षु की दीर्घ

णह-सिहाओ कप्पेज्ज वा संठवेज्ज वा, कप्पेंतं वा संठवेंतं वा सातिज्जति।।

कल्पेत वा संस्थापयेद् वा, कल्पमानं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते।

नखशिखा को काटता है अथवा व्यवस्थित करता है और काटने अथवा व्यवस्थित करने वाले का अनुमोदन करता है।

दीह-रोम-पदं

दीर्घरोम-पदम्

दीर्घरोम-पद

८०. जे भिक्खू अण्णमण्णस्स दीहाइं जंघ-रोमाइं कप्पेज्ज वा संठवेज्ज वा, कप्पेंतं वा संठवेंतं वा सातिज्जति।

यो भिक्षुः अन्योन्यस्य दीर्घाणि जंघारोमाणि कल्पेत वा संस्थापयेद् वा, कल्पमानं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते।

८०. जो भिक्षु परस्पर एक दूसरे भिक्षु की जंघाप्रदेश की दीर्घ रोमराजि को काटता है अथवा व्यवस्थित करता है और काटने अथवा व्यवस्थित करने वाले का अनुमोदन करता है।

८१. जे भिक्खू अण्णमण्णस्स दीहाइं वत्थि-रोमाइं कप्पेज्ज वा संठवेज्ज वा, कप्पेंतं वा संठवेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः अन्योन्यस्य दीर्घाणि वस्तिरोमाणि कल्पेत वा संस्थापयेद् वा, कल्पमानं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते।

८१. जो भिक्षु परस्पर एक दूसरे भिक्षु की वस्तिप्रदेश की दीर्घ रोमराजि को काटता है अथवा व्यवस्थित करता है और काटने अथवा व्यवस्थित करने वाले का अनुमोदन करता है।

८२. जे भिक्खू अण्णमण्णस्स दीह-रोमाइं कप्पेज्ज वा संठवेज्ज वा, कप्पेंतं वा संठवेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः अन्योन्यस्य दीर्घरोमाणि कल्पेत वा संस्थापयेद् वा, कल्पमानं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते।

८२. जो भिक्षु परस्पर एक दूसरे भिक्षु की दीर्घ रोमराजि को काटता है अथवा व्यवस्थित करता है और काटने अथवा व्यवस्थित करने वाले का अनुमोदन करता है।

८३. जे भिक्खू अण्णमण्णस्स दीहाइं कक्खाण-रोमाइं कप्पेज्ज वा संठवेज्ज वा, कप्पेंतं वा संठवेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः अन्योन्यस्य कक्षारोमाणि कल्पेत वा संस्थापयेद् वा, कल्पमानं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते।

८३. जो भिक्षु परस्पर एक दूसरे की कक्षाप्रदेश की दीर्घ रोमराजि को काटता है अथवा व्यवस्थित करता है और काटने अथवा व्यवस्थित करने वाले का अनुमोदन करता है।

८४. जे भिक्खू अण्णमण्णस्स दीहाइं मंसु-रोमाइं कप्पेज्ज वा संठवेज्ज वा, कप्पेंतं वा संठवेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः अन्योन्यस्य दीर्घाणि श्मश्रुरोमाणि कल्पेत वा संस्थापयेद् वा, कल्पमानं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते।

८४. जो भिक्षु परस्पर एक दूसरे भिक्षु की श्मश्रु की दीर्घ रोमराजि को काटता है अथवा व्यवस्थित करता है और काटने अथवा व्यवस्थित करने वाले का अनुमोदन करता है।

दंत-पदं

दंत-पदम्

दंत-पद

८५. जे भिक्खू अण्णमण्णस्स दंते आघंसेज्ज वा पघंसेज्ज वा, आघंसंतं वा पघंसंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः अन्योन्यस्य दन्तान् आघर्षेद् वा प्रघर्षेद् वा, आघर्षन्तं वा प्रघर्षन्तं वा स्वदते।

८५. जो भिक्षु परस्पर एक दूसरे भिक्षु के दांतों का आघर्षण करता है अथवा प्रघर्षण करता है और आघर्षण अथवा प्रघर्षण करने वाले का अनुमोदन करता है।

८६. जे भिक्खू अण्णमण्णस्स दंते उच्छोलेज्ज वा पधोवेज्ज वा, उच्छोलेंतं वा पधोवेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्योन्यस्य दन्तान् उत्क्षालयेद् वा प्रधावेद् वा, उत्क्षालयन्तं वा प्रधावन्तं वा स्वदते।

८६. जो भिक्षु परस्पर एक दूसरे भिक्षु के दांतों का उत्क्षालन करता है अथवा प्रधावन करता है और उत्क्षालन अथवा प्रधावन करने वाले का अनुमोदन करता है।

८७. जे भिक्खू अण्णमण्णस्स दंते फुमेज्ज वा रएज्ज वा, फुमेंतं वा रएंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्योन्यस्य दन्तान् 'फुमेज्ज' (फूत्कुर्याद्) वा रजेद् वा, 'फुमेंतं' (फूत्कुर्वन्तं) वा रजन्तं वा स्वदते।

८७. जो भिक्षु परस्पर एक दूसरे भिक्षु के दांतों पर फूंक देता है अथवा रंग लगाता है और फूंक देने अथवा रंग लगाने वाले का अनुमोदन करता है।

उट्ठ-पदं

ओष्ठ-पदम्

ओष्ठ-पद

८८. जे भिक्खू अण्णमण्णस्स उट्ठे आमज्जेज्ज वा पमज्जेज्ज वा, आमज्जंतं वा पमज्जंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्योन्यस्य ओष्ठौ आमृज्याद् वा प्रमृज्याद् वा, आमार्जन्तं वा प्रमार्जन्तं वा स्वदते।

८८. जो भिक्षु परस्पर एक दूसरे भिक्षु के ओष्ठ का आमार्जन करता है अथवा प्रमार्जन करता है और आमार्जन अथवा प्रमार्जन करने वाले का अनुमोदन करता है।

८९. जे भिक्खू अण्णमण्णस्स उट्ठे संवाहेज्ज वा पलिमद्देज्ज वा, संवाहेंतं वा पलिमद्देंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्योन्यस्य ओष्ठौ संवाहयेद् वा परिमर्दयेद् वा, संवाहयन्तं वा परिमर्दयन्तं वा स्वदते।

८९. जो भिक्षु परस्पर एक दूसरे भिक्षु के ओष्ठ का संबाधन करता है अथवा परिमर्दन करता है और संबाधन अथवा परिमर्दन करने वाले का अनुमोदन करता है।

९०. जे भिक्खू अण्णमण्णस्स उट्ठे तेल्लेण वा घएण वा वसाए वा णवणीएण वा अब्भंगेज्ज वा मक्खेज्ज वा, अब्भंगेंतं वा मक्खेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्योन्यस्य ओष्ठौ तैलेन वा घृतेन वा वसया वा नवनीतेन वा अभ्यञ्ज्याद् वा म्रक्षेद् वा, अभ्यञ्जन्तं वा म्रक्षन्तं वा स्वदते।

९०. जो भिक्षु परस्पर एक दूसरे भिक्षु के ओष्ठ का तैल, घृत, वसा अथवा मक्खन से अभ्यंगन करता है अथवा म्रक्षण करता है और अभ्यंगन अथवा म्रक्षण करने वाले का अनुमोदन करता है।

९१. जे भिक्खू अण्णमण्णस्स उट्ठे लोद्धेण वा कक्केण वा चुण्णेण वा वण्णेण वा उल्लोलेज्ज वा उव्वट्टेज्ज वा, उल्लोलेंतं वा उव्वट्टेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्योन्यस्य ओष्ठौ लोध्रेण वा कल्केन वा चूर्णेन वा वर्णेन वा उल्लोलयेद् वा उद्वर्तेत वा, उल्लोलयन्तं वा उद्वर्तमानं वा स्वदते।

९१. जो भिक्षु परस्पर एक दूसरे भिक्षु के ओष्ठ पर लोध, कल्क, चूर्ण अथवा वर्ण का लेप करता है अथवा उद्वर्तन करता है और लेप करने वाले अथवा उद्वर्तन करने वाले का अनुमोदन करता है।

९२. जे भिक्खू अण्णमण्णस्स उट्ठे सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलेज्ज वा पधोवेज्ज वा, उच्छोलेंतं वा पधोवेंतं सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्योन्यस्य ओष्ठौ शीतोदकविकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन वा उत्क्षालयेद् वा प्रधावेद् वा, उत्क्षालयन्तं वा प्रधावन्तं वा स्वदते।

९२. जो भिक्षु परस्पर एक दूसरे भिक्षु के ओष्ठ का प्रासुक शीतल जल से अथवा प्रासुक उष्ण जल से उत्क्षालन करता है अथवा प्रधावन करता है और उत्क्षालन अथवा प्रधावन करने वाले का अनुमोदन करता है।

९३. जे भिक्खू अण्णमण्णस्स उट्ठे फुमेज्ज वा रएज्ज वा, फुमेंतं वा रएंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्योन्यस्य ओष्ठौ 'फुमेज्ज' (फूत्कुर्याद्) वा रजेद् वा, 'फुमेंतं' (फूत्कुर्वन्तं) वा रजन्तं वा स्वदते ।

९३. जो भिक्षु परस्पर एक दूसरे भिक्षु के ओष्ठ पर फूंक देता है अथवा रंग लगाता है और फूंक देने अथवा रंग लगाने वाले का अनुमोदन करता है।

दीह-रोम-पदं

दीर्घरोम-पदम्

दीर्घरोम-पद

९४. जे भिक्खू अण्णमण्णस्स दीहाइं उत्तरोट्ठ-रोमाइं कप्पेज्ज वा संठवेज्ज वा, कप्पेंतं वा संठवेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्योन्यस्य दीर्घाणि उत्तरौष्ठरोमाणि कल्पेत वा संस्थापयेद् वा, कल्पमानं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते ।

९४. जो भिक्षु परस्पर एक दूसरे भिक्षु की उत्तरोष्ठ की दीर्घ रोमराजि को काटता है अथवा व्यवस्थित करता है और काटने अथवा व्यवस्थित करने वाले का अनुमोदन करता है।

९५. जे भिक्खू अण्णमण्णस्स दीहाइं णासा-रोमाइं कप्पेज्ज वा संठवेज्ज वा, कप्पेंतं वा संठवेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्योन्यस्य दीर्घाणि नासारोमाणि कल्पेत वा संस्थापयेद् वा, कल्पमानं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते ।

९५. जो भिक्षु परस्पर एक दूसरे भिक्षु के नाक की दीर्घ रोमराजि को काटता है अथवा व्यवस्थित करता है और काटने अथवा व्यवस्थित करने वाले का अनुमोदन करता है।

अच्छि-पत्त-पदं

अक्षिपत्र-पदम्

अक्षिपत्र-पद

९६. जे भिक्खू अण्णमण्णस्स दीहाइं अच्छि-पत्ताइं कप्पेज्ज वा संठवेज्ज वा, कप्पेंतं वा संठवेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्योन्यस्य दीर्घाणि अक्षिपत्राणि कल्पेत वा संस्थापयेद् वा, कल्पमानं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते ।

९६. जो भिक्षु परस्पर एक दूसरे की भिक्षु की दीर्घ अक्षिपत्रों को काटता है अथवा व्यवस्थित करता है और काटने अथवा व्यवस्थित करने वाले का अनुमोदन करता है।

अच्छि-पदं

अक्षि-पदम्

अक्षि-पद

९७. जे भिक्खू अण्णमण्णस्स अच्छीणि आमज्जेज्ज वा पमज्जेज्ज वा, आमज्जंतं वा पमज्जंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्योन्यस्य अक्षिणी आमृज्याद् वा प्रमृज्याद् वा, आमार्जन्तं वा प्रमार्जन्तं वा स्वदते ।

९७. जो भिक्षु परस्पर एक दूसरे भिक्षु की आंखों का आमार्जन करता है अथवा प्रमार्जन करता है और आमार्जन अथवा प्रमार्जन करने वाले का अनुमोदन करता है।

९८. जे भिक्खू अण्णमण्णस्स अच्छीणि संवाहेज्ज वा पलिमद्देज्ज वा, संवाहेंतं वा पलिमद्देंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्योन्यस्य अक्षिणी संवाहयेद् वा परिमर्दयेद् वा, संवाहयन्तं वा परिमर्दयन्तं वा स्वदते ।

९८. जो भिक्षु परस्पर एक दूसरे भिक्षु की आंखों का संबाधन करता है अथवा परिमर्दन करता है और संबाधन अथवा परिमर्दन करने वाले का अनुमोदन करता है।

९९. जे भिक्खू अण्णमण्णस्स अच्छीणि तेल्लेण वा घएण वा

यो भिक्षुः अन्योन्यस्य अक्षिणी तैलेन वा घृतेन वा वसया वा नवनीतेन वा

९९. जो भिक्षु परस्पर एक दूसरे भिक्षु की आंखों का तेल, घृत, वसा अथवा मक्खन से

वसाए वा णवणीएण वा अब्भंगेज्ज वा मक्खेज्ज वा, अब्भंगेंतं वा मक्खेंतं वा सातिज्जति ।।

अभ्यञ्ज्याद् वा म्रक्षेद् वा, अभ्यञ्जन्तं वा म्रक्षन्तं वा स्वदते।

अभ्यंगन करता है अथवा म्रक्षण करता है और अभ्यंगन अथवा म्रक्षण करने वाले का अनुमोदन करता है।

१००. जे भिक्खू अण्णमण्णस्स अच्छीणि लोद्धेण वा कक्केण वा चुण्णेण वा वण्णेण वा उल्लोलेज्ज वा उव्वट्टेज्ज वा, उल्लोलेंतं वा उव्वट्टेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्योन्यस्य अक्षिणी लोध्रेण वा कल्केन वा चूर्णेन वा वर्णेन वा उल्लोलयेद् वा उद्वर्तेत वा, उल्लोलयन्तं वा उद्वर्तमानं वा स्वदते।

१००. जो भिक्षु परस्पर एक दूसरे भिक्षु की आंखों पर लोध, कल्क, चूर्ण अथवा वर्ण का लेप करता है अथवा उद्वर्तन करता है और लेप करने वाले अथवा उद्वर्तन करने वाले का अनुमोदन करता है।

१०१. जे भिक्खू अण्णमण्णस्स अच्छीणि सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलेज्ज वा पधोवेज्ज वा, उच्छोलेंतं वा पधोवेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्योन्यस्य अक्षिणी शीतोदकविकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन वा उत्क्षालयेद् वा प्रधावेद् वा, उत्क्षालयन्तं वा प्रधावन्तं वा स्वदते।

१०१. जो भिक्षु परस्पर एक दूसरे भिक्षु की आंखों का प्रासुक शीतल जल से अथवा प्रासुक उष्ण जल से उत्क्षालन करता है अथवा प्रधावन करता है और उत्क्षालन अथवा प्रधावन करने वाले का अनुमोदन करता है।

१०२. जे भिक्खू अण्णमण्णस्स अच्छीणि फुमेज्ज वा रएज्ज वा, फुमेंतं वा रएंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्योन्यस्य अक्षिणी 'फुमेज्ज' (फूत्कुर्याद्) वा रजेद् वा 'फुमेंतं' (फूत्कुर्वन्तं) वा रजन्तं वा स्वदते।

१०२. जो भिक्षु परस्पर एक दूसरे भिक्षु की आंखों पर फूंक देता है अथवा रंग लगाता है और फूंक देने अथवा रंग लगाने वाले का अनुमोदन करता है।

दीह-रोम-पदं

दीर्घरोम-पदम्

दीर्घरोम-पद

१०३. जे भिक्खू अण्णमण्णस्स दीहाइं भमुग-रोमाइं कप्पेज्ज वा संठवेज्ज वा, कप्पेंतं वा संठवेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्योन्यस्य दीर्घाणि भ्रूरोमाणि कल्पेत वा संस्थापयेद् वा, कल्पमानं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते।

१०३. जो भिक्षु परस्पर एक दूसरे भिक्षु की भौहों की दीर्घ रोमराजि को काटता है अथवा व्यवस्थित करता है और काटने अथवा व्यवस्थित करने वाले का अनुमोदन करता है।

१०४. जे भिक्खू अण्णमण्णस्स दीहाइं पास-रोमाइं कप्पेज्ज वा संठवेज्ज वा, कप्पेंतं वा संठवेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्योन्यस्य दीर्घाणि 'पास'-रोमाणि कल्पेत वा संस्थापयेद् वा, कल्पमानं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते।

१०४. जो भिक्षु परस्पर एक दूसरे भिक्षु की पार्श्वभाग की दीर्घ रोमराजि को काटता है अथवा व्यवस्थित करता है और काटने अथवा व्यवस्थित करने वाले का अनुमोदन करता है।

मल-णीहरण-पदं

मलनिस्सरण-पदम्

मल-निर्हरण-पद

१०५. जे भिक्खू अण्णमण्णस्स कायाओ सेयं वा जल्लं वा पंकं वा

यो भिक्षु अन्योन्यस्य कायात् स्वेदं वा जल्लं वा पंकं वा मलं वा निस्सरेद् वा

१०५. जो भिक्षु परस्पर एक दूसरे भिक्षु के शरीर के स्वेद, जल्ल, पंक अथवा मल का

मलं वा णीहरेज्ज वा विसोहेज्ज वा, णीहरेंतं वा विसोहेंतं वा सातिज्जति।।

विशोधयेद् वा, निस्सरन्तं वा विशोधयन्तं वा स्वदते।

निर्हरण करता है अथवा विशोधन करता है और निर्हरण अथवा विशोधन करने वाले का अनुमोदन करता है।

१०६. जे भिक्खू अण्णमण्णस्स अच्छिमलं वा कण्णमलं वा दंतमलं वा णहमलं वा णीहरेज्ज वा विसोहेज्ज वा, णीहरेंतं वा विसोहेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः अन्योन्यस्य अक्षिमलं वा कर्णमलं वा दन्तमलं वा नखमलं वा निस्सरेद् वा विशोधयेद् वा, निस्सरन्तं वा विशोधयन्तं वा स्वदते।

१०६. जो भिक्षु परस्पर एक दूसरे भिक्षु की आंख के मैल, कान के मैल, दांत के मैल अथवा नख के मैल का निर्हरण करता है अथवा विशोधन करता है और निर्हरण अथवा विशोधन करने वाले का अनुमोदन करता है।

सीसदुवारिय-पदं

शीर्षद्वारिका-पदम्

शीर्षद्वारिका-पद

१०७. जे भिक्खू गामाणुगामं दूइज्जमाणे अण्णमण्णस्स सीसदुवारियं करेति, करेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः ग्रामानुग्रामं दूयमानः अन्योन्यस्य शीर्षद्वारिकां करोति, कुर्वन्तं वा स्वदते।

१०७. जो भिक्षु ग्रामानुग्राम परिव्रजन करता हुआ परस्पर एक दूसरे भिक्षु का सिर ढंकता है अथवा सिर ढंकने वाले का अनुमोदन करता है।[१३]

उच्चार-पासवण-पदं

उच्चार-प्रस्रवण-पदम्

उच्चारप्रस्रवण-पद

१०८. जे भिक्खू साणुप्पए उच्चार-पासवणभूमिं ण पडिलेहेति, ण पडिलेहेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः 'साणुप्पए' उच्चार-प्रस्रवणभूमिं न प्रतिलिखति, न प्रतिलिखन्तं वा स्वदते।

१०८. जो भिक्षु दिन की चौथी प्रहर के चतुर्थ भाग में उच्चार-प्रस्रवण भूमि का प्रतिलेखन नहीं करता अथवा प्रतिलेखन न करने वाले का अनुमोदन करता है।[१४]

१०९. जे भिक्खू तओ उच्चार-पासवणभूमीओ ण पडिलेहेति, ण पडिलेहेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः तिस्रः उच्चारप्रस्रवणभूमीः न प्रतिलिखति, न प्रतिलिखन्तं वा स्वदते।

१०९. जो भिक्षु तीन उच्चार-प्रस्रवण भूमियों का प्रतिलेखन नहीं करता अथवा प्रतिलेखन न करने वाले का अनुमोदन करता है।[१५]

११०. जे भिक्खू खुड्डागंसि थंडिलंसि उच्चार-पासवणं परिट्ठवेति, परिट्ठवेंतं वा सातिज्जाति।।

यो भिक्षुः क्षुल्लके स्थण्डिले उच्चारप्रस्रवणं परिष्ठापयति, परिष्ठापयन्तं वा स्वदते।

११०. जो भिक्षु क्षुद्र (छोटे) स्थंडिल पर उच्चार-प्रस्रवण का परिष्ठापन करता है अथवा परिष्ठापन करने वाले का अनुमोदन करता है।[१६]

१११. जे भिक्खू उच्चार-पासवणं अविहीए परिट्ठवेति, परिट्ठवेंतं वा सातिज्जाति।।

यो भिक्षुः उच्चारप्रस्रवणम् अविधिना परिष्ठापयति, परिष्ठापयन्तं वा स्वदते।

१११. जो भिक्षु उच्चार-प्रस्रवण का अविधि से परिष्ठापन करता है अथवा परिष्ठापन करने वाले का अनुमोदन करता है।[१७]

११२. जे भिक्खू उच्चार-पासवणं परिट्ठवेत्ता ण पुंछति, ण पुंछंतं वा

यो भिक्षुः उच्चारप्रस्रवणं परिष्ठाप्य न प्रोञ्छति, न प्रोञ्छन्तं वा स्वदते।

११२. जो भिक्षु उच्चार-प्रस्रवण का विसर्जन कर विसर्जन-प्रदेश को नहीं पौंछता (शौच

सातिज्जाति ।।

नहीं करता) अथवा नहीं पौंछने वाले का अनुमोदन करता है।

११३. जे भिक्खू उच्चार-पासवणं परिट्ठवेत्ता कट्ठेण वा कलिंचेण वा अंगुलियाए वा सलागाए वा पुंछति, पुंछंतं वा सातिज्जाति ।।

यो भिक्षुः उच्चारप्रस्रवणं परिष्ठाप्य काष्ठेन वा किलिञ्चेन वा अंगुलिकया वा शलाकया वा प्रोञ्छति, प्रोञ्छन्तं वा स्वदते।

११३. जो भिक्षु उच्चार-प्रस्रवण का विसर्जन कर काष्ठ, किलिंच, अंगुली अथवा शलाका से पौंछता है अथवा पौंछने वाले का अनुमोदन करता है।

११४. जे भिक्खू उच्चार-पासवणं परिट्ठवेत्ता णायमति, णायमंतं वा सातिज्जाति ।।

यो भिक्षुः उच्चारप्रस्रवणं परिष्ठाप्य नाचामति, नाचामन्तं वा स्वदते।

११४. जो भिक्षु उच्चार-प्रस्रवण का विसर्जन कर आचमन (निर्लेपन) नहीं करता अथवा आचमन न करने वाले का अनुमोदन करता है।

११५. जे भिक्खू उच्चार-पासवणं परिट्ठवेत्ता तत्थेव आयमति, आयमंतं वा सातिज्जाति ।।

यो भिक्षुः उच्चारप्रस्रवणं परिष्ठाप्य तत्रैव आचामति, आचामन्तं वा स्वदते।

११५. जो भिक्षु उच्चार-प्रस्रवण का विसर्जन कर वहीं पर आचमन करता है अथवा आचमन करने वाले का अनुमोदन करता है।

११६. जे भिक्खू उच्चार-पासवणं परिट्ठवेत्ता अतिदूरे आयमति, आयमंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः उच्चारप्रस्रवणं परिष्ठाप्य अतिदूरे आचामति, आचामन्तं वा स्वदते।

११६. जो भिक्षु उच्चार-प्रस्रवण का विसर्जन कर अतिदूर जाकर आचमन करता है अथवा आचमन करने वाले का अनुमोदन करता है।

११७. जे भिक्खू उच्चार-पासवणं परिट्ठवेत्ता परं तिण्हं णावापूराणं आयमति, आयमंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः उच्चारप्रस्रवणं परिष्ठाप्य परं त्रयाणां 'णावापूराणं' आचामति, आचामन्तं वा स्वदते।

११७. जो भिक्षु उच्चार-प्रस्रवण का विसर्जन कर तीन अंजली (चुल्लू) से अधिक जल से आचमन करता है अथवा आचमन करने वाले का अनुमोदन करता है।[१८]

अपरिहारिय-पदं

११८. जे भिक्खू अपरिहारिए परिहारियं बूया—एहि अज्जो! तुमं च अहं च एगओ असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पडिग्गाहेत्ता तओ पच्छा पत्तेयं-पत्तेयं भोक्खामो वा पाहामो वा—जे तं एवं वदति, वदंतं वा सातिज्जति—

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घातियं ।।

अपारिहारिक-पदम्

यो भिक्षुः अपारिहारिकः पारिहारिकं ब्रूयाद्—'एहि आर्य! त्वं च अहं च एकतः अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा प्रतिगृह्य ततः पश्चात् प्रत्येकं प्रत्येकं भोक्ष्यावहे वा पास्यावः वा'—यस्तम् एवं वदति, वदन्तं वा स्वदते।

तत् सेवमानः आपद्यते मासिकं परिहारस्थानम् उद्घातिकम्।

अपारिहारिक-पद

११८. जो अपारिहारिक (विशुद्ध आचार वाला) भिक्षु पारिहारिक (प्रायश्चित्त प्राप्त) भिक्षु से कहे—आर्य! आओ, तुम और मैं एक साथ अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य को ग्रहण कर बाद में अलग-अलग खाएंगे अथवा पीएंगे—जो उसे ऐसा कहता है अथवा कहने वाले का अनुमोदन करता है।[१९]

—इनका आसेवन करने वाले को लघुमासिक परिहारस्थान प्राप्त होता है।

टिप्पण

१. सूत्र १-१२

भिक्षु सब प्रकार के संयोगों से मुक्त होकर संबंधातीत जीवन व्यतीत करता है। उसकी प्रशस्त जीवन शैली है—भौतिक आकांक्षा से किसी प्रकार का संस्तव न करना, पूर्व या पश्चात् संबंध से मुक्त रहना। ऐसी स्थिति में जो भिक्षु राजा या राजारक्षक, नगर के आरक्षक आदि पदाधिकारियों के साथ संबंध स्थापित करता है, गुणानुवाद के द्वारा उनकी अर्चा करता है अथवा अपना विद्यातिशय प्रदर्शित कर उन्हें अपना प्रार्थी बनाता है, वह अपने लिए विविध प्रकार के परीषहों को आमंत्रण देता है। राजा, राजारक्षक आदि भिक्षु में अनुरक्त होकर उसे उत्प्रव्रजित करने का प्रयत्न कर सकते हैं तथा उसके संयम में विघ्न पैदा कर सकते हैं। यदि वे प्रद्विष्ट हो जाएं तो भिक्षु का तिरस्कार कर सकते हैं, बंदी बना सकते हैं अथवा अन्य कोई प्रतिकूल परीषह उत्पन्न कर सकते हैं।[1] भाष्य एवं चूर्णि में स्वाभाविक एवं काल्पनिक, प्रत्यक्ष एवं परोक्ष आदि अनेकविध आत्मीकरण का विशद विवेचन मिलता है।[2]

शब्द विमर्श

१. **आत्मीकरण**—अपना संबंध स्थापित करना, आत्मीय बनाना।[3]

२. **राजा का आरक्षक**—राजा का अंगरक्षक।[4]

३. **नगर का आरक्षक**—नगर का रक्षक, कोतवाल।[5]

४. **निगम का आरक्षक**—श्रेष्ठी।[6]

५. **देश का आरक्षक**—चोरोद्धरणिक।[7]

६. **सर्व आरक्षक**—महाबलाधिकृत।[8]

७. **अर्चीकरण**—उसके गुणों का कथन करना।[9]

२. सूत्र १३

अर्थीकरण का अर्थ है—विद्यातिशय प्रदर्शित कर राजा, राजारक्षक आदि को अपना प्रार्थी बनाना। भाष्यकार ने इसके अनेक अर्थ किए हैं—१. साधु राजा का प्रार्थी बनता है। २. साधु ऐसा कार्य करे, जिससे राजा उसका प्रार्थी बने। ३. धातुवाद (रासायनिक क्रिया द्वारा सोना-चांदी आदि बनाने की विद्या, कीमियागरी) आदि के द्वारा राजा के लिए अर्थोत्पत्ति करता है।[10] महाकालमंत्र के द्वारा उसे निधि दिखाता है।[11] साधु राजा के समक्ष अपने विद्या, मंत्र, निमित्तज्ञान आदि का प्रदर्शन करता है। जिससे राजा उसका अर्थी बन जाता है।[12]

३. सूत्र १९

औषधि का अर्थ है—एक फसली पौधा।[13] निशीथ चूर्णिकार ने औषधि शब्द से तिल, मूंग, उड़द, चवला, गेहूं, चावल आदि का ग्रहण किया है। तुषयुक्त, अखंड और अस्फुटित चावल आदि द्रव्यतः कृत्स्न होते हैं और सचित्त चावल, तिल, मूंग आदि भावतः कृत्स्न। भाष्य एवं चूर्णि में कृत्स्न के द्रव्य एवं भाव के संयोग से चार भंग किए गए हैं—

१. द्रव्यतः कृत्स्न, भावतः कृत्स्न।

२. द्रव्यतः अकृत्स्न, भावतः कृत्स्न।

३. द्रव्यतः कृत्स्न, भावतः अकृत्स्न।

४. द्रव्यतः अकृत्स्न, भावतः अकृत्स्न।[14]

भाष्यकार ने प्रथम दो भंगों में चतुर्लघु तथा अग्रिम दो भंगों में मासलघु प्रायश्चित्त का कथन किया है।[15] चवला आदि की फलियों को खाने में समय अधिक लगता है और तृप्ति कम होती है।

---

१. निभा. गा. १५६१-१५६५

२. वही, गा. १५५६-१५५८

३. वही, गा. १५५७

४. वही, २ चू. पृ. २३४—रायाणं जो रक्खति, सो रायारक्खिओ सिरोरक्षः।

५. वही—नगरं रक्खति जो सो णगररक्खिओ कोट्टपाल।

६. वही—सव्वपगइओ जो रक्खति णिगमारक्खिओ, सो सेट्ठी।

७. वही—देसो विसतो, तं जो रक्खति सो देसारक्खिओ चोरोद्धरणिकः।

८. वही—एताणि सव्वाणि जो रक्खति सो सव्वारक्खिओ, एतेषु सर्वकार्येषु आपृच्छनीयः स च महाबलाधिकतेत्यर्थः।

९. वही—रण्णो अच्चीकरणं किं ? गुणवयणं सौर्यादि।

१०. वही, गा. १५७६,७७—
अत्थयते अत्थी वा करेति, अत्थं व जणयते जम्हा।
अत्थीकरणं तम्हा, तं विज्जणिमित्तमादीहिं।।
धातुनिधीण दरिसणे, जणयंते तत्थ होति सट्ठाणं।।

११. वही भा. २, चू. पृ. २३५—महाकालमंतेण वा से णिहिं दरिसेति।

१२. वही—साधु रायाणं भणाति—मम अत्थि विज्जाणिमित्तं वा तीताणागतं नाणं, ताहे सो राया अत्थी भवति।

१३. अचि. ४।१८३—ओषधिः स्यादौषधिश्च फलपाकावसानिका।

१४. निभा. गा. १५८३

१५. वही, गा. १५८६

इसलिए इन्हें खाना संयम के लिए पलिमंथु, संयमविराधना एवं आत्मविराधना का हेतु माना गया है।[१]

४. सूत्र २०

जिस आहार से इन्द्रिय एवं मन विकृत होते हैं, स्वादलोलुप होकर धातुओं को उद्दीप्त करते हैं, वह सरस आहार विकृति कहलाता है। विकृतियां दस हैं—१. दूध, २. दही, ३. नवनीत, ४. घृत, ५. तैल, ६. गुड़, ७. मधु, ८. मद्य, ९. मांस और १०. चलचल अवगाहिम (मिठाई आदि)। रस-परित्याग तप से साधक इन्द्रिय-विजय एवं निद्राविजय की साधना में आगे बढ़ सकता है। रात्रि में देर तक स्वाध्याय, ध्यान आदि करने पर भी उसके अजीर्ण आदि रोग पैदा नहीं होते।[२] अतः आगमों में भिक्षु के लिए बारम्बार विकृति-वर्जन का निर्देश उपलब्ध होता है।

प्रस्तुत सूत्र में आचार्य एवं उपाध्याय की अनुज्ञा के बिना विगय खाने का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है। इसका तात्पर्य है कि कारण में आचार्य आदि की अनुज्ञापूर्वक यथाविधि परिमित विगय खाने में दोष नहीं।[३] जिस श्रुत का अध्ययन आदि योग प्रारम्भ किया हुआ हो, उसके उपधान में जिस विगय का वर्जन करना अनिवार्य हो, उसे खाना अथवा प्रत्याख्यान की कालमर्यादा पूरी होने से पूर्व विकृति खाना सदोष है।[४]

विगय विषयक विस्तार हेतु द्रष्टव्य—ठाणं ९।२३ का टिप्पण तथा उत्तरज्झयणाणि ३०/८ का टिप्पण।

५. सूत्र २१

स्थापना-कुल की दो परिभाषाएं उपलब्ध होती हैं—

१. वे कुल, जिनका आहार मुनि के लिए भोज्य नहीं होता, स्थापना-कुल कहलाते हैं।[५]

२. गीतार्थ द्वारा स्थापित वे विशिष्ट कुल, जहां निर्दिष्ट गीतार्थ संघाटक के अतिरिक्त अन्य संघाटकों का प्रवेश निषिद्ध हो, स्थापना-कुल कहलाते हैं।[६] इस प्रकार जो किसी देश, काल या परिस्थिति विशेष में भिक्षार्थ अप्रवेश्य के रूप में स्थापित किए जाएं, वे कुल स्थापना-कुल कहलाते हैं।

निशीथभाष्य म स्थापना-कुल के दो प्रकार बतलाए गए हैं—लौकिक और लोकोत्तर। लौकिक स्थापना कुल के पुनः दो प्रकार हो जाते हैं[७]—१. इत्वरिक—मृतक और सूतक वाले कुल (मृत्यु एवं जन्म की अशुचि आदि के कारण लौकिक दृष्टि से वर्जित कुल) तथा २. यावत्कथिक—जाति, शिल्प आदि से जुगुप्सित कुल।[८]

लोकोत्तर स्थापना-कुल के अनेक प्रकार हैं, जैसे—दानश्राद्ध आदि विशिष्ट कुल, साधु-सामाचारी एवं एषणा दोषों को न जानने वाले अभिगम श्राद्धकुल, मिथ्यादृष्टिभावित कुल, मामक एवं अप्रीतिकर कुल।[९]

इसी प्रकार प्राचीन काल में उपाश्रय से संबद्ध सात घरों को भी भिक्षार्थ स्थापित रखा जाता था, उसमें सामान्यतः हर साधु गोचरी के लिए नहीं जा सकता था।

लौकिक स्थापना कुलों में जाने से प्रवचन की अप्रभावना, यशोहानि एवं श्रावकों के विपरिणमन आदि दोषों की संभावना रहती है। अतः उसका वर्जन किया जाता है।[१०]

लोकोत्तर स्थापना कुलों में मिथ्यात्वी, मामक एवं अप्रीतिकर कुलों में जाने पर संयम-विराधना एवं आत्म-विराधना आदि दोष संभव हैं। ईर्ष्या, द्वेष आदि के कारण वे गृहस्थ भिक्षु को विष आदि दे सकते हैं। अथवा अन्य कष्ट दे सकते हैं, अतः उनका वर्जन किया जाता है।[११]

लोकोत्तर स्थापनाकुलों में जो दानश्राद्ध कुल होते हैं तथा जिनमें गुरु, ग्लान, शैक्ष आदि के प्रायोग्य द्रव्य उपलब्ध होते हैं, उन घरों में भी निर्दिष्ट संघाटक के अतिरिक्त अन्य भिक्षुओं का भिक्षार्थ प्रवेश निषिद्ध होता है, अतः वे भी स्थाप्य होते हैं। प्रस्तुत सूत्र में इन स्थापना कुलों की जानकारी, पृच्छा एवं गवेषणा किए बिना गोचरी हेतु प्रविष्ट होने वाले के लिए प्रायश्चित्त का कथन किया गया है क्योंकि इससे संघीय सामाचारी का उल्लंघन होता है तथा बार-बार उन घरों में प्रवेश करने से उद्‌गम, एषणा आदि दोषों की संभावना रहती है।[१२] भाष्यकार कहते हैं—गच्छ महानुभाग है—बाल,

---

१. निभा. गा. १५९०
२. वही, गा. १५९८
३. वही. गा. १६१३—
इच्छामि कारणेणं, इमेण विगइं इमं तु भोत्तुं जे।
एवतियं वा वि पुणो, एवतिकाल विदिण्णंमि।।
४. वही, गा. १५९३, १५९६, १६१०,१६१५
५. वही, भा. २ चू. पृ. २४३—ठप्पाकुला ठवणाकुला अभोज्जा इत्यर्थः।
६. (क) वही—साधुठवणाए वा ठविज्जंति त्ति ठवणाकुला सेज्जातरादित्यर्थः।
(ख) वही, पृ. २४५—अतिसयदव्वा उक्कोसा ते जेसु कुलेसु लब्भंति, ते ठावियव्वा, ण सव्वसंघाडगा तेसु पविसंति।
७. वही, गा. १६१७
ठवणाकुल तु दुविहा, लोइयलोउत्तरा समासेणं हुंति।
इत्तरिय-आवकहिया, दुविधा पुण लोइया।।
८. वही, गा. १६१८
सूयग-मतग-कुलाइं, इत्तरिया जे य होंति णिज्जूढा।
जे जत्थ जुंगिता खलु, ते होंति आवकहिया तु।।
९. (क) वही, गा. १६२०
(ख) दसवे. ५/१/१७ के टिप्पण ७५-७७
१०. निभा. गा. १६२३
११. वही, भा. २ चू. पृ. २४४ (गा. १६२० की चूर्णि)
१२. वही, गा. १६३२—
किं कारणं चमढणा, दव्वक्खओ उग्गमो वि य ण सुज्झे।
गच्छम्मि णिययकज्जं, आयरिय-गिलाण पाहुणए।।

वृद्ध, ग्लान सबका उपकारक है। अतः जो स्थापनाकुलों का परिहार करता है, वह बाल, वृद्ध आदि सब पर अनुकम्पा करता है तथा उद्गम आदि दोषों से बच जाता है।[१] विस्तार हेतु द्रष्टव्य निशीथभाष्य गा. १६१७-१६६५ तथा बृहत्कल्पभाष्य गा. १५७९-१६१६।

६. सूत्र २२

भिक्षु निर्ग्रन्थियों के उपाश्रय में जाए—इस विषय में चार भंग हैं—

१. निष्कारण, अविधि से

२. निष्कारण, विधि से

३. कारण में, अविधि से

४. कारण में, विधि से।

प्रस्तुत सूत्र का संबंध तृतीय भंग से है। अविधि से निर्ग्रन्थियों के उपाश्रय में प्रवेश करने से आत्मविराधना एवं संयमविराधना संबंधी अनेक दोष उत्पन्न होते हैं। भाष्य एवं चूर्णि में इनका विस्तृत एवं मनोवैज्ञानिक चित्रण हुआ है।[२] निर्ग्रन्थियों की उपधि आदि की व्यवस्था, उनकी समाधि, बाह्य-आभ्यन्तर उपसर्गों के निवारण, अनशन आदि कारणों से[३] यदि आचार्य या कुल-स्थविर आदि को निर्ग्रन्थियों के उपाश्रय में जाना हो तो विधिपूर्वक अपने आगमन को सूचित करके प्रविष्ट होना चाहिए। उपाश्रय के अग्रद्वार, मध्यभाग एवं आसन्न भाग में नैषेधिकी का उच्चारण करना विधिपूर्वक प्रवेश है—ऐसा चूर्णिकार का प्रतिपाद्य है।[४]

७. सूत्र २३

निर्ग्रन्थियों के आगमन-पथ में भिक्षु के उपकरण-निक्षेप के मुख्यतः दो कारण हो सकते हैं—

१. अनाभोग—किसी कार्यवश भिक्षु उस मार्ग से निकले और उसका कोई उपकरण भूल से वहां छूट जाए या गिर जाए।

२. कैतव—किसी दूषित भाव के कारण वह अपना उपकरण वहां छोड़ दे।

प्रस्तुत सूत्र में विस्मृति के कारण रहे हुए उपकरण का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है क्योंकि इस प्रमाद के कारण साधु-साध्वियों के परस्पर मिलन, संलाप आदि के कारण भाव-संबंध होने की तथा चारित्र-विराधना की संभावना रहती है।[५] निशीथभाष्य एवं चूर्णि में कैतवपूर्वक दूषित भाव से उपकरण छोड़ने पर चतुर्गुरु प्रायश्चित्त का विधान किया गया है।[६] भाष्यकार का मत है—यदि भूल से किसी भिक्षु का उपकरण उपाश्रय से अधिक दूर पड़ा हुआ मिले तो स्थविरा साध्वियां लाकर यतनापूर्वक उसे गुरु के समक्ष जमीन पर रख दे।[७]

८. सूत्र २४,२५

जो कार्य भिक्षु के संयमपर्यवों के अधःकरण में निमित्त बनता है अथवा उसकी आत्मा को नरक, तिर्यञ्च आदि अधोगति में ले जाता है, वह अधिकरण कहलाता है।[८]

निर्युक्ति, भाष्य एवं चूर्णि में अधिकरण का अर्थ वस्तु परिवर्तन (निर्वर्तन, संयोजना आदि) और कषायवश आरम्भ (हिंसा का संकल्प), संरंभ (किसी को परितप्त करना) एवं समारम्भ (वध) करना किया गया है।[९] किन्तु अग्रिम सूत्र के संदर्भ में अधिकरण का अर्थ 'कलह' करना अधिक संगत है। नए सिरे से कलह उत्पन्न करना अथवा उपशान्त कलह की उदीरणा करना—ये दोनों ही असमाधि-स्थान हैं।[१०] कलह से भिक्षु मनःसंताप, अपयश एवं ज्ञान, दर्शन तथा चारित्र की हानि करता है तथा संसार वृद्धि करता है।

श्रामण्य का सार है उपशम।[११] कषायाविष्ट साधु मुहूर्त्तमात्र में देशोनकरोड़पूर्व में अर्जित अपने श्रामण्य-फल को व्यर्थ गंवा देता है।

जं अज्जियं चरित्तं, देसूणाए वि पुव्वकोडीए।
तं पि कसाइयमेत्तो, नासेइ नरो मुहुत्तेणं।।[१२]

९. सूत्र २६

हास्य-मोहनीय कर्म के उदय से हास्य की उत्पत्ति होती है। तथाविध दृश्य देखने, वैसी बात कहने, सुनने या स्मरण करने पर भी हंसी आना स्वाभाविक है। पर भिक्षु ठहाका मारकर न हंसे। भाष्यकार ने अत्यधिक हास्य के अनेक दोष बताए हैं, जैसे—उपशान्त रोग का उभरना, अभिनव शूल की उत्पत्ति, मुंह का असंपुटित रह जाना आदि।[१३]

प्रस्तुत सन्दर्भ में भाष्यकार ने हास्य का एक दोष मुंह में संपातिम जीवों का गिरना बताया है जिससे यह प्रतीत होता है कि उस समय तक साधु-साध्वी मुखवस्त्रिका नहीं बांधते थे।

---

१. निभा. गा. १६२६ व उसकी चूर्णि
२. वही, गा. १६७०-१६९५।
३. वही, गा. १६९९-१७०१
४. वही, भा. २, पृ. २५४—अग्गद्दारे, मज्झे, आसन्ने। एतेसु तीसु वि णिसीहिअं.....।
५. वही, गा. १७८७
६. वही, गा. १७८६
७. वही, गा. १७९६
८. वही, भा. २, चू. पृ.२७९—अधोधः संयमकंडकेषु करोतीत्यर्थः। नरकतिर्यग्गतिषु वा आत्मानमधितिकरणं वा अधिकरणं अल्पसत्त्वमित्यर्थः।.....अधीकरणं अबुद्धिकरणमित्यर्थः।
९. वही, गा. १७९८,१८१०
१०. दसाओ १।९
११. कप्पो १।३४
१२. निभा. गा. २७९३
१३. वही, गा. १८२५,२६

शब्द विमर्श

● **विप्फालिय**—मुंह को विस्फारित कर (फाड़कर)। जोर से ठहाका लगाते हुए हंसते समय व्यक्ति का मुंह जम्हाई लेने वाले के समान विस्फारित हो जाता है।[1]

१०. सूत्र २७-३६

प्राचीन व्याख्यासाहित्य के अनुसार सामान्यतः अकेला साधु गोचरी के लिए नहीं जाता था।[2] प्रायः दो साधु मिलकर (संघाटक-बद्ध होकर) भिक्षाचर्या के लिए जाते थे। प्रस्तुत प्रकरण में संघाटक पद का तात्पर्य है—भिक्षा आदि के लिए साथ जाना। प्रस्तुत उद्देशक के अन्तिम सूत्र की चूर्णि में संघाटक का इस अर्थ में स्पष्ट उल्लेख मिलता है।

प्रस्तुत आलापक में पार्श्वस्थ, अवसन्न, कुशील, नित्यक और संसक्त को अपने साथ भिक्षार्थ ले जाने तथा उनके साथ भिक्षार्थ जाने का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है। ये श्रमण एषणा आदि से अशुद्ध भिक्षा, उपधि आदि को ग्रहण करते हैं। यदि भिक्षु उन्हें रोकता है तो कलह, अप्रियता, अंतराय एवं गृहस्थों में विप्रतिपत्ति के भाव आदि दोष आते हैं और यदि भिक्षु मौन रहे तो दोष के अनुमोदन का दोष लगता है।[3]

शब्द विमर्श

१. पार्श्वस्थ—शिथिलाचारी श्रमण का एक प्रकार, वह मुनि जो कारण के बिना शय्यातरपिण्ड, राजपिण्ड आदि दोषपूर्ण आहार का सेवन करता है।[4]

२. अवसन्न—शिथिलाचारी श्रमण का एक प्रकार, वह मुनि जो सामाचारी के पालन में प्रमाद करता है।[5]

३. कुशील—वह शिथिलाचारी मुनि, जो ज्ञानाचार, दर्शनाचार और चारित्राचार का सम्यक् अनुशीलन नहीं करता[6] तथा जाति, कुल आदि के आधार पर आजीविका प्राप्त करता है।[7]

४. नित्यक—वह शिथिलाचारी मुनि, जो वर्षावास एवं ऋतुबद्ध काल में विवक्षित काल से अधिक रहता है अथवा विवक्षित मर्यादा से अधिक काल तक उपधि, शय्या आदि का भोग करता है, वह नैत्यिक या नित्यक कहलाता है।' (विस्तार हेतु द्रष्टव्य निसीह. सू. २।३६)

५. संसक्त—शिथिलाचारी श्रमण का एक प्रकार। वह श्रमण, जिसमें आचार के गुणों एवं दोषों का मिश्रण होता है।[8] वह जिसके साथ मिलता है उसके सदृश हो जाता है—पार्श्वस्थ के साथ मिलकर पार्श्वस्थ और यथाच्छन्द के साथ मिलकर यथाच्छन्द हो जाता है।[9]

पार्श्वस्थ आदि के विषय में विस्तार हेतु द्रष्टव्य—निभा. गा. ४३४०-४३५१।

११. सूत्र ३७,३८

दाता का हाथ, पात्र, दर्वी (कड़छी) और भाजन जल से आर्द्र, सस्निग्ध, सचित्त रजकण, मृत्तिका, क्षार, हरिताल, हिंगुल, मैनशिल, अनाज के भूसे, छिलके या फलों के सूक्ष्म खण्ड आदि से सने हुए हों तो भिक्षु उसे प्रतिषेध कर दे कि मैं ऐसा आहार नहीं ले सकता।[10] यहां विमर्शनीय विषय यह है कि दशवैकालिक में प्राप्त होने वाली इन दो गाथाओं में सत्रह प्रकार के हाथों का उल्लेख मिलता है तथा अगस्त्यचूर्णि में भी इनके स्थान पर सत्रह श्लोक मिलते है।[11] सूत्रकार ने इक्कीस हाथों का उल्लेख किया है तथा किसी-किसी प्रति में इस संदर्भ में दो गाथाएं उपलब्ध होती हैं—

उदउल्ले ससणिद्धे, ससरक्खे मट्टिया उसे लोणे य।
हरियाले मणोसिलाए, वन्नि गेरुय सेढिए॥१॥
हिंगुलु अंजणे लोद्धे, कुक्कुस पिट्ठ कंद-मूल-सिंगबेरे य।
पुप्फक-कुट्ठं एए, एक्कवीसं भवे हत्था॥२॥[12]

इनके आधार पर सूत्ररचना भी की जा सकती है किन्तु इन गाथाओं में आए हुए कई शब्द कंद, मूल, सिंगबेर आदि की पुष्टि न निशीथभाष्य एवं चूर्णि से होती है और न आयारचूला (१।६४-८०) से। अतः यह अनुसंधान का विषय है कि इन इक्कीस हाथों की वक्तव्यता वाला पाठ कब से जुड़ा अथवा यदि यह पाठ सूत्रकार द्वारा प्रारम्भ से गृहीत है तो व्याख्या ग्रन्थों तथा अन्य आगमों में क्यों नहीं?

प्रस्तुत सूत्रद्वयी का प्रयोजन है—पुरःकर्म एवं पश्चात्कर्म दोष से

---

१. निभा. २ चू.पृ. २२५—विप्फालेति विहाडेति, अतीव फालेति वियंभमाणो व्व विविधैः प्रकारैः फालेति विप्फालेति विडालिकाकारवत्।
२. बृभा. ७०१ की वृत्ति—......सद्वितीयेन गमनं कर्त्तव्यम्, संघाटकेनेत्यर्थः।
३. निभा. गा. १८३०-१८३२, १८४१,१८४२
४. प्रसा. १०३ वृ. पृ. २५—पार्श्वस्थः स यः कारणं तथाविधमन्तरेण शय्यातराभ्याहृतं नृपतिपिण्डं नैत्यिकमग्रपिण्डं वा भुङ्क्ते।
५. वही—समाचारीविषयोऽवसीदति प्रमाद्यति यः सोऽवसन्नः।
६. वही, पृ. २६—कुत्सितं शीलमस्येति कुशीलः, स त्रिविधो भवति—ज्ञानविषये, दर्शनविषये चारित्रविषये च।
७. व्यभा. ८८०—
जाती कुले गणे या, कम्मे सिप्पे तवे सुते चेव।
सत्तविधं आजीवं, उवजीवति जो कुसीलो सो॥
८. प्र.सा. १०३, पृ. २७—गुणैर्दोषैश्च संसज्यते मिश्रीभवतीति संसक्तः।
९. व्यभा. ८८८-८९०
१०. दसवे. ५।१।३३,३४
११. वही, टि.पृ. १६८
१२. नव. पृ. ६८६

बचाव। सचित्त वनस्पति, सचित्त पृथिवी तथा सचित्त पानी से संसृष्ट हाथ या पात्र से भिक्षा ग्रहण करने पर पुरःकर्म एवं असंसृष्ट हाथ या पात्र से लेपकृत आहार लेने पर पश्चात्कर्म दोष संभव हैं।

विस्तार हेतु द्रष्टव्य दसवे. ५।१।३३-३४ के टिप्पण १२५-१३७)।

शब्द विमर्श

१. उदओल्ल—सचित्त जल से गीले।[1]

२. अमत्र—मिट्टी का पात्र।[2]

३. भाजन—कांस्यमय पात्र।[3]

१२. सूत्र ३९-५३

प्रस्तुत उद्देशक में प्रथम आलापक में अठारह तथा इस आलापक में पन्द्रह—इस प्रकार ये आत्मीकरण, अर्चीकरण एवं अर्थीकरण से सम्बन्धित ३३ सूत्र हो जाते हैं। इन सूत्रों की संख्या एवं क्रम में अनेक प्रतियों में भिन्नता है। पूर्ववर्ती आलापक में देशारक्षक एवं सर्वारक्षक सम्बन्धी छहों सूत्र आए हुए हैं, फिर यहां पुनरावृत्ति क्यों? तथा समान विषय एवं प्रायश्चित्त वाले होने पर भी इनका पृथक्करण क्यों? इन दोनों प्रश्नों का उत्तर भाष्य एवं चूर्णि में उपलब्ध नहीं है।[4] ज्ञातव्य है कि पूर्ववर्ती आलापक में क्रम एवं संख्या भाष्य एवं चूर्णि के अनुसार दी गई है तथा इस आलापक में चूर्णिकार के उल्लेख के अनुसार पन्द्रह सूत्रों का पूर्वोक्त क्रम से संपादन किया गया है।

१३. सूत्र ५४-१०७

प्रस्तुत आलापक में पाद-प्रमार्जन से 'सीसदुवारिया' पर्यन्त चौवन सूत्र होते हैं। आयारचूला में अन्योन्य क्रिया के प्रसंग में इस प्रकार के छत्तीस सूत्र उपलब्ध होते है।[5] निशीथ चूर्णि में तृतीय उद्देशक के समान ५३ सूत्रों (४।४९-१०१) का पाठ लेते हुए भी यह उल्लेख किया है—इत्यादि एक्कतालीसं.....करेति।[6] निशीथ की हुण्डी में ५६ सूत्रों का उल्लेख मिलता है—८० बोल सूं १३६ अविधि सूं अदले बदलै करै। किसी भी प्रति में कौन से बोल को क्यों छोड़ा गया अथवा क्यों ग्रहण किया गया—इस विषय में कोई उल्लेख नहीं मिलता।

भाष्यकार के अनुसार प्रस्तुत संपूर्ण आलापक की व्याख्या तृतीय उद्देशक के समान ज्ञातव्य है।[7] निशीथ की हुण्डी के अनुसार स्वयं के पाद-प्रमार्जन आदि के समान यहां भी प्रायश्चित्त का हेतु 'अविधि' (अयतना) अथवा प्रयोजनरहितता है।

१४. सूत्र १०८

अप्रतिलेखित उच्चारप्रस्रवण भूमि पर रात्रि या विकाल बेला में उच्चार-प्रस्रवण का परिष्ठापन करने पर आत्मविराधना एवं संयमविराधना संभव है अतः पहले ही उच्चारप्रस्रवण भूमि का प्रतिलेखन कर लेना चाहिए।[8]

रात्रि या विकाल बेला में उच्चारप्रस्रवण की बाधा संभव है। उस समय कहां उनका विसर्जन या परिष्ठापन किया जाए—इसलिए आवश्यक है कि चतुर्थ प्रहर का चौथा भाग अवशेष हो अर्थात् पौन पौरुषी बीत जाने पर यतनावान भिक्षु उच्चार-प्रस्रवण भूमि की प्रतिलेखना करे। इसे व्यवहार की भाषा में दिन की अन्तिम 'दो घड़ी पहले' भी कहा जा सकता है। पाछली बे घड़ी दिन थकां उचारपासवण नी जागां न पडिलेहे।[9]

शब्द विमर्श

साणुप्पए—'साणुप्पअ' सामयिकसंज्ञा है। इसका अर्थ है—दिन की चतुर्थ प्रहर का चौथा भाग अवशेष रहे वह समय।[10]

१५. सूत्र १०९

यदि भिक्षु का किसी स्थान के भीतरी भाग में निवास हो तो उसके बहिर्भाग में आसन्न, मध्य और दूर—तीन, और बाहरी भाग में निवास हो तो निवासभूमि से आगे आसन्न, मध्य और दूर—तीन उच्चार-भूमियों एवं तीन प्रस्रवण-भूमियों का प्रतिलेखन करणीय है। चूर्णिकार के अनुसार तीन के कथन से बारह उच्चार भूमियों एवं बारह प्रस्रवणभूमियों अर्थात् कुल चौबीस भूमियों के प्रतिलेखन की सूचना दी गई है।[11] यदि एक ही भूमि प्रतिलेखित हो और वहां कोई अन्य मल त्याग कर दे अथवा कोई पशु आकर बैठ जाए तो व्याघात आदि अनेक दोष संभव हैं।[12]

१६. सूत्र ११०

भिक्षु जहां उच्चारप्रस्रवण का विसर्जन करे, वह स्थान अत्यन्त

---

१. **निभा. २ चू.पृ. २९०—गिहिणा सचित्तोदगेण अप्पणट्ठा धोयं हत्थादि अपरिणयं उदउल्लं भण्णति।**
२. **वही—पुढविमओ मत्तओ।**
३. **वही—कंसमयं भायणं।**
४. **नव., पृ. ६८७—'देसारक्खिय-सव्वारक्खिय' सम्बन्धीनि षट्सूत्राणि ४०,४३,४५,४८,५०,५३ अस्मिन्नेवोद्देशके (५,६,११,१२,१७,१८) विद्यन्ते। चूर्णिकारस्य 'एवं पण्णरस सुत्ता उच्चारेयव्वा इत्युल्लेखेन पुनरावर्तनं समर्थितं भवति। किमर्थमत्र पुनरावृत्तानि नैतत् कारणं परिज्ञायते। तथा एतानि सूत्राणि उद्देशकादिसूत्रेभ्यः किमर्थं पृथक्ककृतानीति न चर्चितमस्ति भाष्ये चूर्णौ च।**
५. **आचू. १४/२-३७**
६. **निभा. भा. २ चू.पृ. २९७**
७. **वही, गा. १८५५**
८. **आचू. २।७१**
९. **नि. हुंडी ४/१०८**
१०. **निभा. भा. २, पृ. चू.पृ. २९७—साणुप्पओ णाम चउभागावसेस-चरिमाए।**
११. **वही, गा. १८६०, चू.पृ. २९८**
१२. **वही, गा. १८६२**

छोटा नहीं होना चाहिए, अन्यथा निकटवर्ती पृथिवीकाय, वनस्पतिकाय एवं त्रस जीवों आदि का प्लावन एवं विराधना संभव है। जो स्थान एक रत्नि (हाथ) लम्बा, एक रत्नि चौड़ा एवं चार अंगुल अवगाढ़ (चार अंगुल नीचे तक अचित्त) हो, वह जघन्य विस्तीर्ण स्थान है। इससे कम परिमाण वाला स्थंडिल क्षुद्र स्थंडिल है।[१]

१७. सूत्र १११

स्थंडिल सामाचारी का पालन न करना परिष्ठापन की अविधि है।[२] निशीथभाष्यकार ने विधि की पांच द्वारों से व्याख्या की है।[३]

१. उच्चारादि के परित्याग से पूर्व भिक्षु ऊर्ध्व, अधो आदि दिशाओं का अवलोकन करे, ताकि गृहस्थ आदि उसको विसर्जन करते देख उड्डाह न करे।

२. विसर्जन से पूर्व पैर, स्थंडिल आदि का प्रतिलेखन, प्रमार्जन करे, ताकि त्रस एवं स्थावर जीवों की विराधना न हो।

३. जहां धूप आए, वैसे स्थान में विसर्जन करे। मल में कृमि आते हों तो छाया में विसर्जन करे।

४. दिशा, पवन, ग्राम, सूर्य आदि से अविपरीत दिशा में, दिन में उत्तराभिमुख एवं रात में दक्षिणाभिमुख बैठे।

५. 'अणुजाणह जस्स उग्गहं' आदि विधि का पालन करे।[४]

१८. सूत्र ११२-११७

इन छह सूत्रों में उच्चार-विसर्जन के बाद की विधि के अतिक्रमण का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है। विसर्जन-स्थान (गुदाप्रदेश) की वस्त्रखंड आदि से सफाई तथा आचमन मुख्यतः उच्चार के बाद किया जाता है। उच्चार के साथ प्रस्रवण भी होता है। इस दृष्टि से उच्चारप्रस्रवण पाठ की रचना हुई है।[५]

सूत्र ११५ में प्रयुक्त 'तत्थेव' पद का आशय है—जिस स्थान पर उच्चार किया, उसी स्थान पर आचमन न किया जाए।[६]

सूत्र ११६ में प्रयुक्त 'अतिदूरे' पद का आशय है कि जहां उच्चार किया, उससे बहुत दूर (सौ हाथ या उससे दूर) जाकर आचमन न करे।[७]

संक्षेप में इन सूत्रों का प्रयोजन है—सूत्रार्थ—हानि, आत्मविराधना, संयमविराधना एवं प्रवचन की अप्रभावना आदि दोषों का निवारण।[८]

शब्द विमर्श

१. **आचमन**—निर्लेपन, पानी से शौच-क्रिया करना।[९]

२. **णावापूर**—नाव का अर्थ है चुल्लू[१०] अतः नावापूर का तात्पर्य है चुल्लू भर पानी।

१९. सूत्र ११८

तपःप्रायश्चित्त के मुख्यतः दो प्रकार हैं—शुद्ध तप और परिहार तप। जो भिक्षु जघन्यतः बीस वर्ष की पर्यायवाला, नवें पूर्व की तृतीय आचार वस्तु का ज्ञाता तथा धृति एवं संहनन से बलवान हो, उसे ही परिहार तप दिया जा सकता है। प्रस्तुत सूत्र में प्रयुक्त परिहारी शब्द से उस परिहारतपः प्रायश्चित्त का वहन करने वाले भिक्षु का ग्रहण किया गया है। परिहारतप के काल में उसके साथ दस पदों का परिहार किया जाता है—आलाप, प्रतिपृच्छा, परिवर्तना, उत्थान, वंदन, मात्रक, प्रतिलेखन, संघाटक, भक्तदान और संभोजन। गच्छवासी भिक्षुओं को परिहारतपस्वी के साथ आलाप, सूत्रार्थ, प्रतिपृच्छा, साथ में भिक्षार्थ जाना, आना आदि कुछ भी नहीं करना होता।[११] प्रस्तुत सूत्र में संघाटक विधि के अतिक्रमण का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है। अग्रिम दो पदों—भक्तदान एवं संभोजन के अतिक्रमण से गच्छवासी भिक्षुओं को क्रमशः लघु चातुर्मासिक एवं गुरु चातुर्मासिक प्रायश्चित्त प्राप्त होता है।[१२]

---

१. निभा. गा. १८६४,१८६५
२. वही, भा. २, चू.पृ. २९९—थंडिल सामायारीं ण करेति एसा अविधि।
३. वही, गा. १८७०
४. वही, गा. १८७१, १८७२
५. वही, भा. २, चू.पृ. ३०१—उच्चारे वोसिरिज्जमाणे अवस्सं पासवणं भवति त्ति तेण गहितं।
६. वही—तत्थेव त्ति थंडिले जत्थ सण्णा वोसिरिया।
७. वही—अतिदूरे हत्थसयपमाणमेत्ते।
८. वही, गा. १८७८
९. वही, पृ. ३०२—आयमणं णिल्लेवणं।
१०. वही—नावत्ति पसती।
११. वही, गा. २८८१
१२. वही, गा. २८८२

पंचमो उद्देसो

पांचवां उद्देशक

आमुख

प्रस्तुत उद्देशक के मुख्य प्रतिपाद्य हैं–प्रातिहारिक पादप्रोञ्छन का यथाकाल प्रत्यर्पण न करने का प्रायश्चित्त, रजोहरण संबंधी विविध निषेधों एवं सचित्त वृक्षमूल में स्थान, शयन आदि विविध क्रियाओं को करने का प्रायश्चित्त, सदोष शय्या, संभोज-विधि का अतिक्रमण एवं धारणीय उपधि को धारण न करने–परिष्ठापन करने, शरीर के अवयवों आदि के द्वारा वीणा आदि वादित्र शब्दों को उत्पन्न करने का प्रायश्चित्त आदि।

उपधि के दो प्रकार होते हैं–औघिक और औपग्रहिक। रजोहरण एवं मुखवस्त्रिका–ये सर्वसामान्य औघिक उपधि हैं क्योंकि पाणिपात्र जिनकल्पिक भी उन्हें धारण करते हैं। पादप्रोञ्छन औपग्रहिक उपधि है। प्रायः प्रत्येक साधु अपना अपना पादप्रोञ्छन रखते थे, पर कदाचित् किसी के पास पादप्रोञ्छन न हो–ऐसा भी संभव था। इसीलिए आचारचूला में कहा गया–'भिक्षु अथवा भिक्षुणी उच्चारप्रस्रवण की क्रिया से उद्बाधित हो और स्वयं का पादप्रोञ्छन न हो तो साधर्मिक से पादप्रोञ्छन की याचना करे।'[1] वह प्रातिहारिक रूप में शय्यातर अथवा अन्य गृहस्थ से भी लाया जा सकता है। निशीथचूर्णि के अध्ययन से ऐसा ज्ञात होता है कि गृहस्थ भी प्राचीन काल में पादप्रोञ्छन रखते थे।[2]

प्रस्तुत आगम के द्वितीय उद्देशक में दारुदण्डयुक्त पादप्रोञ्छन के विषय में आठ सूत्र आए हैं। उसमें दारुडयुक्त पादप्रोञ्छन के निर्माण, ग्रहण, धारण, वितरण, दान एवं परिभोग का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है। प्रस्तुत उद्देशक में प्रातिहारिक एवं शय्यातरसत्क पादप्रोञ्छन को छिन्नकाल (निश्चित काल) के लिए ग्रहण कर उसके पूर्व एवं पश्चात् प्रत्यर्पण का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है। इसी उद्देशक में रजोहरण के विषय में एकादशसूत्रीय आलापक है। संभवतः रजोहरण के विषय में एक स्थान पर युगपत् इतने निर्देश सम्पूर्ण आगम साहित्य में अन्यत्र उपलब्ध नहीं होते। रजोहरण प्रमार्जन का साधन है। उस पर बैठना, लेटना अथवा उसे सिरहाने रखना प्रायश्चित्तार्ह कार्य है। भाष्यकार ने रजोहरण सम्बन्धी प्रायः सभी निषिद्ध कार्यों के लिए आज्ञाभंग, अनवस्था, मिथ्यात्व एवं विराधना–इस दोष चतुष्टयी का कथन किया है।

प्रस्तुत उद्देशक का प्रथम प्रतिपाद्य है- सचित्त रुक्षमूल-पद। निशीथभाष्य के अनुसार जिस सचित्त वृक्ष का स्कन्ध हाथी के पैर जितना मोटा हो, उसके सब ओर (सर्वतः) रतनी प्रमाण भूमि सचित्त होती है।[3] भिक्षु को सचित्त वृक्ष के पास स्थित होकर आलोकन-प्रलोकन, स्थान, शय्या एवं निषद्या, आहार-नीहार एवं स्वाध्याय संबंधी उद्देश, समुद्देश आदि कोई भी क्रिया करना नहीं कल्पता। प्रस्तुत संदर्भ में भाष्यकार ने उन सभी संभावित दोषों एवं कष्टों की चर्चा की है जो देवतापरिगृहीत, मनुष्यपरिगृहीत एवं तिर्यंचपरिगृहीत तथा अपरिगृहीत वृक्ष के नीचे खड़े होने, बैठने तथा स्वाध्याय आदि करने से संभव हैं।

जीवन-निर्वाह के लिए तीन मुख्य आवश्यकताएं हैं–आहार, उपधि एवं उपाश्रय (स्थान)। निर्दोष आहार, उपधि एवं उपाश्रय संयम में उपकारी होते हैं। आहार एवं उपधि के संदर्भ में प्रायः तीन प्रकार के दोषों का अभाव ज्ञातव्य है–उद्गम, उत्पादना एवं एषणा। प्रस्तुत उद्देशक में औद्देशिक, प्राभृतिकायुक्त एवं परिकर्मयुक्त शय्या में अनुप्रविष्ट होने वाले भिक्षु के लिए उद्घातिक मासिक प्रायश्चित्त का विधान किया गया है।

भाष्यकार ने प्रस्तुत प्रसंग में विविध प्रकार की शय्या का भेदोपभेद सहित वर्णन किया है। कौन सा उत्तरगुण परिकर्म अल्पकाल के लिए परिहार्य है और कौनसा सर्वकाल के लिए? इसकी मीमांसा करते हुए औद्देशिक एवं स्त्रीप्रतिबद्ध शय्या में

१. आचू. १०/१

२. निभा. २ चू.पृ. ३१७

३. निभा. गा. १८९६

कौनसी, कब, कितनी दोषपूर्ण है—इसका सविस्तर चालना-प्रत्यवस्थान करते हुए भाष्यकार ने एक निष्कर्ष प्रस्तुत किया है, वह अन्यत्र भी चिन्तनीय है—

तम्हा सव्वाणुण्णा, सव्वनिसेहो य णत्थि समयम्मि।
आयव्वयं तुलेज्जा, लाभाकंखि व्व वाणियओ॥[१]

प्राचीन काल में सभी संविग्न भिक्षुओं का एक संभोज था। राज्याश्रय के कारण आर्यसुहस्ती एवं उनके शिष्यों में पनप रहे आचारशैथिल्य के कारण आर्यमहागिरि ने उनका संभोजविच्छेद कर दिया। आर्यसुहस्ती के द्वारा मिच्छामि दुक्कडं पूर्वक स्वयं की भूल स्वीकार किए जाने के बाद उनका पुनः संभोज स्थापित हुआ। संभोज-प्रत्ययिक कर्म बन्धन नहीं होता—ऐसा कहने वाला भिक्षु प्रायश्चित्तभाक् है—सूत्र में समागत संभोज शब्द की व्याख्या में संभोज का भेदोभेद सहित जितना सुविस्तृत ऐतिहासिक एवं ज्ञानवर्धक वर्णन भाष्य एवं चूर्णि में समुपलब्ध होता है, अन्यत्र दुर्लभ है।

इसी प्रकार नवनिवेशित गांव, नगर आदि भिक्षार्थ जाना, मुख आदि शरीर के अवयवों तथा पत्र, पुष्प आदि वृक्षावयवों से वीणा आदि वाद्य-यन्त्रों तथा अन्य इसी प्रकार के विकारोत्पादक शब्दों को उत्पन्न करना आदि निषिद्ध पदों का भी प्रस्तुत उद्देशक में प्रायश्चित्त-कथन किया गया है।

---

१. निभा. गा. २०६७

पंचमो उद्देसो : पांचवां उद्देशक

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
सचित्तरुक्खमूल-पदं	**सचित्तरुक्षमूल-पदम्**	**सचित्त-वृक्षमूल-पद**
१. जे भिक्खू सचित्तरुक्खमूलंसि ठिच्चा आलोएज्ज वा पलोएज्ज वा, आलोएंतं वा पलोएंतं वा सातिज्जति।।	यो भिक्षुः सचित्तरुक्षमूले स्थित्वा आलोकयेद् वा प्रलोकयेद् वा, आलोकयन्तं वा प्रलोकयन्तं वा स्वदते।	१. जो भिक्षु सचित्त वृक्ष के पास स्थित होकर आलोकन करता है अथवा प्रलोकन करता है और आलोकन अथवा प्रलोकन करने वाले का अनुमोदन करता है।
२. जे भिक्खू सचित्तरुक्खमूलंसि ठाणं वा सेज्जं वा निसीहियं वा चेएति, चेएंतं वा सातिज्जति।।	यो भिक्षुः सचित्तरुक्षमूले स्थानं वा शय्यां वा नैषेधिकीं वा चेतयति, चेतयन्तं वा स्वदते।	२. जो भिक्षु सचित्त वृक्ष के पास स्थान (कायोत्सर्ग), शय्या अथवा निषीधिका करता है अथवा करने वाले का अनुमोदन करता है।
३. जे भिक्खू सचित्तरुक्खमूलंसि ठिच्चा असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा आहारेति, आहारेंतं वा सातिज्जति।।	यो भिक्षुः सचित्तरुक्षमूले स्थित्वा अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा आहरति, आहरन्तं वा स्वदते।	३. जो भिक्षु सचित्त वृक्ष के पास स्थित होकर अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य का आहार करता है अथवा आहार करने वाले का अनुमोदन करता है।
४. जे भिक्खू सचित्तरुक्खमूलंसि ठिच्चा उच्चारं वा पासवणं वा परिट्ठवेति, परिट्ठवेंतं वा सातिज्जति।।	यो भिक्षुः सचित्तरुक्षमूले स्थित्वा उच्चारं वा प्रस्रवणं वा परिष्ठापयति, परिष्ठापयन्तं वा स्वदते।	४. जो भिक्षु सचित्त वृक्ष के पास स्थित होकर उच्चार अथवा प्रस्रवण का परिष्ठापन करता है अथवा परिष्ठापन करने वाले का अनुमोदन करता है।
५. जे भिक्खू सचित्तरुक्खमूलंसि ठिच्चा सज्झायं करेति, करेंतं वा सातिज्जति।।	यो भिक्षुः सचित्तरुक्षमूले स्थित्वा स्वाध्यायं करोति, कुर्वन्तं वा स्वदते।	५. जो भिक्षु सचित्त वृक्ष के पास स्थित होकर स्वाध्याय करता है अथवा करने वाले का अनुमोदन करता है।
६. जे भिक्खू सचित्तरुक्खमूलंसि ठिच्चा सज्झायं उद्दिसति, उद्दिसंतं वा सातिज्जति।।	यो भिक्षुः सचित्तरुक्षमूले स्थित्वा स्वाध्यायम् उद्दिशति, उद्दिशन्तं वा स्वदते।	६. जो भिक्षु सचित्त वृक्ष के पास स्थित होकर स्वाध्याय का उद्देश करता है अथवा उद्देश करने वाले का अनुमोदन करता है।
७. जे भिक्खू सचित्तरुक्खमूलंसि	यो भिक्षुः सचित्तरुक्षमूले स्थित्वा	७. जो भिक्षु सचित्त वृक्ष के पास स्थित होकर

ठिच्चा सज्झायं समुद्दिसति, समुद्दिसंतं वा सातिज्जति ।।

स्वाध्यायं समुद्दिशति, समुद्दिशन्तं वा स्वदते।

स्वाध्याय का समुद्देश करता है अथवा समुद्देश करने वाले का अनुमोदन करता है।

८. जे भिक्खू सचित्तरुक्खमूलंसि ठिच्चा सज्झायं अणुजाणति, अणुजाणंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः सचित्तरुक्षमूले स्थित्वा स्वाध्यायम् अनुजानाति, अनुजानन्तं वा स्वदते।

८. जो भिक्षु सचित्त वृक्ष के पास स्थित होकर स्वाध्याय की अनुज्ञा देता है अथवा अनुज्ञा देने वाले का अनुमोदन करता है।

९. जे भिक्खू सचित्तरुक्खमूलंसि ठिच्चा सज्झायं वाएति, वाएंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः सचित्तरुक्षमूले स्थित्वा स्वाध्यायं वाचयति, वाचयन्तं वा स्वदते।

९. जो भिक्षु सचित्त वृक्ष के पास स्थित होकर स्वाध्याय की वाचना देता है अथवा वाचना देने वाले का अनुमोदन करता है।

१०. जे भिक्खू सचित्तरुक्खमूलंसि ठिच्चा सज्झायं पडिच्छति, पडिच्छंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः सचित्तरुक्षमूले स्थित्वा स्वाध्यायं प्रतीच्छति, प्रतीच्छन्तं वा स्वदते।

१०. जो भिक्षु सचित्त वृक्ष के पास स्थित होकर स्वाध्याय को ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

११. जे भिक्खू सचित्तरुक्खमूलंसि ठिच्चा सज्झायं परियट्टेति, परियट्टेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः सचित्तरुक्षमूले स्थित्वा स्वाध्यायं परिवर्तयति, परिवर्तयन्तं वा स्वदते।

११. जो भिक्षु सचित्त वृक्ष के पास स्थित होकर स्वाध्याय का परिवर्तन करता है अथवा परिवर्तन करने वाले का अनुमोदन करता है।[1]

संघाडि-पदं

संघाटी-पदम्

संघाटी-पद

१२. जे भिक्खू अप्पणो संघाडिं अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा सिव्वावेति, सिव्वावेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः आत्मनः संघाटीम् अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा सेवयति, सेवयन्तं वा स्वदते।

१२. जो भिक्षु अपनी संघाटी (पछेवड़ी/उत्तरीय वस्त्र) अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से सिलवाता है अथवा सिलवाने वाले का अनुमोदन करता है।[2]

१३. जे भिक्खू अप्पणो संघाडीए दीह-सुत्ताइं करेति, करेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः आत्मनः संघाट्याः दीर्घसूत्राणि करोति, कुर्वन्तं वा स्वदते।

१३. जो भिक्षु अपनी संघाटी के दीर्घसूत्र बनाता है—लम्बी डोरियां (चार अंगुल प्रमाण से अधिक) बनाता है अथवा बनाने वाले का अनुमोदन करता है।[3]

पलास-पदं

पलाश-पदम्

पलाश-पद

१४. जे भिक्खू पिउमंद-पलासयं वा पडोल-पलासयं वा बिल्ल-पलासयं वा सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग- वियडेण वा संफाणिय-संफाणिय आहारेति, आहारेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः पिचुमन्दपलाशकं वा पटोलपलाशकं वा बिल्वपलाशकं वा शीतोदकविकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन वा 'संफाणिय संफाणिय' आहरति, आहरन्तं वा स्वदते।

१४. जो भिक्षु नीम के पत्ते, परवल के पत्ते अथवा बेल के पत्ते को प्रासुक शीतल जल से अथवा प्रासुक उष्ण जल से धो-धोकर खाता है अथवा खाने वाले का अनुमोदन करता है।[4]

पच्चप्पण-पदं

१५. जे भिक्खू पाडिहारियं पायपुंछणयं जाइत्ता 'तमेव रयणिं पच्चप्पिणिस्सामित्ति' सुए पच्चप्पिणति, पच्चप्पिणंतं वा सातिज्जति।।

१६. जे भिक्खू पाडिहारियं पायपुंछणयं जाइत्ता 'सुए पच्चप्पिणिस्सामित्ति' तमेव रयणिं पच्चप्पिणति, पच्चप्पिणंतं वा सातिज्जति।।

१७. जे भिक्खू सागारिय-संतियं पायपुंछणयं जाइत्ता 'तमेव रयणिं पच्चप्पिणिस्सामित्ति' सुए पच्चप्पिणति, पच्चप्पिणंतं वा सातिज्जति।।

१८. जे भिक्खू सागारिय-संतियं पायपुंछणयं जाइत्ता 'सुए पच्चप्पिणिस्सामित्ति' तमेव रयणिं पच्चप्पिणति, पच्चप्पिणंतं वा सातिज्जति।।

१९. जे भिक्खू पाडिहारियं दंडयं वा लट्ठियं वा अवलेहणियं वा वेणुसूइं वा जाइत्ता 'तमेव रयणिं पच्चप्पिणिस्सामित्ति' सुए पच्चप्पिणति, पच्चप्पिणंतं वा सातिज्जति।।

२०. जे भिक्खू पाडिहारियं दंडयं वा लट्ठियं वा अवलेहणियं वा वेणूसूइं वा जाइत्ता 'सुए पच्चप्पिणिस्सामित्ति' तमेव रयणिं पच्चप्पिणति, पच्चप्पिणंतं वा सातिज्जति।।

२१. जे भिक्खू सागारिय-संतियं दंडयं

प्रत्यर्पण-पदम्

यो भिक्षुः प्रातिहारिकं पादप्रोञ्छनकं याचित्वा 'तस्यामेव रजन्यां प्रत्यर्पयिष्यामीति' श्वः प्रत्यर्पयति, प्रत्यर्पयन्तं वा स्वदते।

यो भिक्षुः प्रातिहारिकं पादप्रोञ्छनकं याचित्वा 'श्वः प्रत्यर्पयिष्यामीति' तस्यामेव रजन्यां प्रत्यर्पयति, प्रत्यर्पयन्तं वा स्वदते।

यो भिक्षुः सागारिकसत्कं पादप्रोञ्छनकं याचित्वा 'तस्यामेव रजन्यां प्रत्यर्पयिष्यामीति' श्वः प्रत्यर्पयति, प्रत्यर्पयन्तं वा स्वदते।

यो भिक्षुः सागारिकसत्कं पादप्रोञ्छनकं याचित्वा 'श्वः प्रत्यर्पयिष्यामीति' तस्यामेव रजन्यां प्रत्यर्पयति, प्रत्यर्पयन्तं वा स्वदते।

यो भिक्षुः प्रातिहारिकं दण्डकं वा यष्टिकां वा अवलेखनिकां वा वेणुसूचीं वा याचित्वा 'तस्यामेव रजन्यां प्रत्यर्पयिष्यामीति' श्वः प्रत्यर्पयति, प्रत्यर्पयन्तं वा स्वदते।

यो भिक्षुः प्रातिहारिकं दण्डकं वा यष्टिकां वा अवलेखनिकां वा वेणुसूचीं वा याचित्वा 'श्वः प्रत्यर्पयिष्यामीति' तस्यामेव रजन्यां प्रत्यर्पयति, प्रत्यर्पयन्तं वा स्वदते।

यो भिक्षु सागारिकसत्कं दण्डकं वा यष्टिकां

प्रत्यर्पण-पद

१५. जो भिक्षु प्रातिहारिक पादप्रोञ्छन की 'उसी रात्रि को (आज रात को) लौटाऊंगा'—इस संकल्प के साथ याचना करता है, उसे कल (दूसरे दिन) लौटाता है अथवा लौटाने वाले का अनुमोदन करता है।

१६. जो भिक्षु प्रातिहारिक पादप्रोञ्छन की 'कल लौटाऊंगा'—इस संकल्प के साथ याचना करके उसी रात को लौटा देता है अथवा लौटाने वाले का अनुमोदन करता है।

१७. जो भिक्षु शय्यातर-निश्रित पादप्रोञ्छन की 'उसी रात्रि को लौटाऊंगा'—इस संकल्प के साथ याचना करके कल लौटाता है अथवा लौटाने वाले का अनुमोदन करता है।

१८. जो भिक्षु शय्यातर-निश्रित पादप्रोञ्छन की 'कल लौटाऊंगा'—इस संकल्प के साथ याचना करके उसी रात को लौटा देता है अथवा लौटाने वाले का अनुमोदन करता है।

१९. जो भिक्षु प्रातिहारिक दंड, लाठी, अवलेखनिका अथवा वेणुसूई की 'उसी रात्रि को लौटाऊंगा'—इस संकल्प के साथ याचना करके कल लौटाता है अथवा लौटाने वाले का अनुमोदन करता है।

२०. जो भिक्षु प्रातिहारिक दंड, लाठी, अवलेखनिका अथवा वेणुसूई की 'कल लौटाऊंगा'—इस संकल्प के साथ याचना करके उसी रात्रि को लौटा देता है अथवा लौटाने वाले का अनुमोदन करता है।

२१. जो भिक्षु शय्यातरनिश्रित दंड, लाठी,

वा लट्ठियं वा अवलेहणियं वा वेणूसूइं वा जाइत्ता 'तमेव रयणिं पच्चप्पिणिस्सामित्ति' सुए पच्चप्पिणति, पच्चप्पिणंतं वा सातिज्जति ।।

वा अवलेखनिकां वा वेणुसूचीं वा याचित्वा 'तस्यामेव रजन्यां प्रत्यर्पयिष्यामीति' श्वः प्रत्यर्पयति, प्रत्यर्पयन्तं वा स्वदते।

अवलेखनिका अथवा वेणुसूई की 'उसी रात्रि लौटाऊंगा—इस संकल्प के साथ याचना करके कल लौटाता है अथवा लौटाने वाले का अनुमोदन करता है।

२२. जे भिक्खू सागारिय-संतियं दंडयं वा लट्ठियं वा अवलेहणियं वा वेणूसूइं वा जाइत्ता 'सुए पच्चप्पिणिस्सामित्ति' तमेव रयणिं पच्चप्पिणति, पच्चप्पिणंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः सागारिकसत्कं दण्डकं वा यष्टिकां वा अवलेखनिकां वा वेणुसूचीं वा याचित्वा 'श्वः प्रत्यर्पयिष्यामीति' तस्यामेव रजन्यां प्रत्यर्पयति, प्रत्यर्पयन्तं वा स्वदते।

२२. जो भिक्षु शय्यातरनिश्रित दंड, लाठी, अवलेखनिका अथवा वेणुसूई को 'कल लौटाऊंगा—इस संकल्प के साथ याचना करके उसी रात्रि को लौटा देता है अथवा लौटाने वाले का अनुमोदन करता है।[५]

२३. जे भिक्खू पाडिहारियं वा सागारिय-संतियं वा सेज्जासंथारयं पच्चप्पिणित्ता दोच्चं पि अणणुण्णविय अहिट्ठेति, अहिट्ठेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः प्रातिहारिकं वा सागारिकसत्कं वा शय्यासंस्तारकं प्रत्यर्प्य द्विः अपि अननुज्ञाप्य अधितिष्ठति, अधितिष्ठन्तं वा स्वदते।

२३. जो भिक्षु प्रातिहारिक अथवा शय्यातर-निश्रित शय्या-संस्तारक को लौटाने के बाद दूसरी बार अनुज्ञा लिए बिना उनका उपयोग करता है अथवा उपयोग करने वाले का अनुमोदन करता है।[६]

दीहसुत्त-पदं

२४. जे भिक्खू सणकप्पासाओ वा उण्णकप्पासाओ वा पोंडकप्पासाओ वा अमिलकप्पासाओ वा दीह-सुत्तं करेति, करेंतं वा सातिज्जति ।।

दीर्घसूत्र-पदम्

यो भिक्षुः शणकार्पासाद् वा ऊर्णाकार्पासाद् वा पोण्ड्रकार्पासाद् वा अमिलकार्पासाद् वा दीर्घसूत्रं करोति, कुर्वन्तं वा स्वदते।

दीर्घसूत्र-पद

२४. जो भिक्षु शण के कपास, ऊन के कपास, पोंड्र कपास अथवा अमिल कपास से लम्बे सूत्र का निर्माण करता है—सूत कातता है अथवा निर्माण करने वाले का अनुमोदन करता है।[७]

दंड-पदं

२५. जे भिक्खू सचित्ताइं दारुदंडाणि वा वेणुदंडाणि वा वेत्तदंडाणि वा करेति, करेंतं वा सातिज्जति ।।

दण्ड-पदम्

यो भिक्षुः सचित्तान् दारुदण्डान् वा वेणुदण्डान् वा वेत्रदण्डान् वा करोति, कुर्वन्तं वा स्वदते।

दंड-पद

२५. जो भिक्षु सचित्त काष्ठदंड, वेणुदण्ड अथवा वेत्रदण्ड[८] ग्रहण करता है अथवा करने वाले का अनुमोदन करता है।

२६. जे भिक्खू सचित्ताइं दारुदंडाणि वा वेणुदंडाणि वा वेत्तदंडाणि वा धरेति, धरेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः सचित्तान् दारुदण्डान् वा वेणुदण्डान् वा वेत्रदण्डान् वा धरति, धरन्तं वा स्वदते।

२६. जो भिक्षु सचित्त काष्ठदंड, वेणुदंड अथवा वेत्रदण्ड धारण करता है अथवा धारण करने वाले का अनुमोदन करता है।

२७. जे भिक्खू सचित्ताइं दारुदंडाणि वा वेणुदंडाणि वा वेत्तदंडाणि वा परिभुंजति, परिभुंजंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः सचित्तान् दारुदण्डान् वा वेणुदण्डान् वा वेत्रदण्डान् वा परिभुङ्क्ते, परिभुञ्जानं वा स्वदते।

२७. जो भिक्षु सचित्त काष्ठदण्ड, वेणुदण्ड अथवा वेत्रदण्ड का परिभोग करता है अथवा परिभोग करने वाले का अनुमोदन करता है।

२८. जे भिक्खू चित्ताइं दारुदंडाणि वा वेणुदंडाणि वा वेत्तदंडाणि वा करेति, करेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः चित्रान् दारुदण्डान् वा वेणुदण्डान् वा वेत्रदण्डान् वा करोति, कुर्वन्तं वा स्वदते।

२८. जो भिक्षु चित्र (रंगीन/एक वर्ण वाला) काष्ठदण्ड, वेणुदण्ड अथवा वेत्रदण्ड ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

२९. जे भिक्खू चित्ताइं दारुदंडाणि वा वेणुदंडाणि वा वेत्तदंडाणि वा धरेति, धरेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः चित्रान् दारुडण्डान् वा वेणुदण्डान् वा वेत्रदण्डान् वा धरति, धरन्तं वा स्वदते।

२९. जो भिक्षु चित्र काष्ठदण्ड, वेणुदण्ड अथवा वेत्रदण्ड धारण करता है अथवा धारण करने वाले का अनुमोदन करता है।

३०. जे भिक्खू चित्ताइं दारुदंडाणि वा वेणुदंडाणि वा वेत्तदंडाणि वा परिभुंजति, परिभुंजंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः चित्रान् दारुदण्डान् वा वेणुदण्डान् व वेत्रदण्डान् वा परिभुङ्क्ते, परिभुञ्जानं वा स्वदते।

३०. जो भिक्षु चित्र काष्ठदण्ड, वेणुदण्ड अथवा वेत्रदण्ड का परिभोग करता है अथवा परिभोग करने वाले का अनुमोदन करता है।

३१. जे भिक्खू विचित्ताइं दारुदंडाणि वा वेणुदंडाणि वा वेत्तदंडाणि वा करेति, करेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः विचित्रान् दारुदण्डान् वा वेणुदण्डान् वा वेत्रदण्डान् वा करोति, कुर्वन्तं वा स्वदते।

३१. जो भिक्षु विचित्र (नाना वर्ण युक्त) काष्ठदण्ड, वेणुदण्ड अथवा वेत्रदण्ड ग्रहण करता है अथवा करने वाले का अनुमोदन करता है।

३२. जे भिक्खू विचित्ताइं दारुदंडाणि वा वेणुदंडाणि वा वेत्तदंडाणि वा धरेति, धरेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः विचित्रान् दारुदण्डान् वा वेणुदण्डान् वा वेत्रदण्डान् वा धरति, धरन्तं वा स्वदते।

३२. जो भिक्षु विचित्र काष्ठदण्ड, वेणुदण्ड अथवा वेत्रदण्ड धारण करता है अथवा धारण करने वाले का अनुमोदन करता है।

३३. जे भिक्खू विचित्ताइं दारुदंडाणि वा वेणुदंडाणि वा वेत्तदंडाणि वा परिभुंजति, परिभुंजंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः विचित्रान् दारुदण्डान् वा वेणुदण्डान् वा वेत्रदण्डान् वा परिभुङ्क्ते, परिभुञ्जानं वा स्वदते।

३३. जो भिक्षु विचित्र काष्ठदण्ड, वेणुदण्ड अथवा वेत्रदण्ड का परिभोग करता है अथवा परिभोग करने वाले का अनुमोदन करता है।[१]

णवग-णिवेस-पदं

३४. जे भिक्खू णवग-णिवेसंसि गामंसि वा नगरंसि वा खेडंसि वा कब्बडंसि वा मडंबंसि वा दोणमुहंसि वा पट्टणंसि वा आसमंसि वा णिवेसणंसि वा णिगमंसि वा संबाहंसि वा रायहाणिंसि वा सण्णिवेसंसि वा अणुप्पविसित्ता असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति ।।

नवकनिवेश-पदम्

यो भिक्षुः नवकनिवेशे ग्रामे वा नगरे वा खेटे वा कर्बटे वा मडंबे वा द्रोणमुखे वा पत्तने वा आश्रमे वा निवेशने वा निगमे वा संबाधे वा राजधान्यां वा सन्निवेशे वा अनुप्रविश्य अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते।

नवनिवेश-पद

३४. जो भिक्षु नवनिवेशित गांव, नगर, खेट, कर्बट, मडंब, द्रोणमुख, पत्तन, आश्रम, निवेशन, निगम, संबाध, राजधानी अथवा सन्निवेश में अनुप्रविष्ट होकर अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य को ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

३५. जे भिक्खू णवग-णिवेसंसि अयागरंसि वा तंबागरंसि वा तउआगरंसि वा सीसागरंसि वा हिरण्णागरंसि वा सुवण्णागरंसि वा वइरागरंसि वा अणुप्पविसित्ता असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः नवकनिवेशे अय-आकरे वा ताम्राकरे वा त्रप्वाकरे वा सीसाकरे वा हिरण्याकरे वा सुवर्णाकरे वा वज्राकरे वा अनुप्रविश्य अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते।

३५. जो भिक्षु नवनिवेशित लोहे की खान, तांबे की खान, त्रपु की खान, शीशे की खान, चांदी की खान, सोने की खान अथवा वज्ररत्न की खान में अनुप्रविष्ट होकर अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य को ग्रहण करता है अथवा करने वाले का अनुमोदन करता है।[१०]

वीणा-पदं

वीणा-पदम्

वीणा-पद

३६. जे भिक्खू मुह-वीणियं करेति, करेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः मुखवीणिकां करोति, कुर्वन्तं वा स्वदते।

३६. जो भिक्षु मुखवीनिका—मुख से शब्द करता है अथवा करने वाले का अनुमोदन करता है।

३७. जे भिक्खू दंत-वीणियं करेति, करेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः दन्तवीणिकां करोति, कुर्वन्तं वा स्वदते।

३७. जो भिक्षु दांत से शब्द करता है अथवा करने वाले का अनुमोदन करता है।

३८. जे भिक्खू उट्ठ-वीणियं करेति, करेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः ओष्ठवीणिकां करोति, कुर्वन्तं वा स्वदते।

३८. जो भिक्षु ओष्ठ से शब्द करता है अथवा करने वाले का अनुमोदन करता है।

३९. जे भिक्खू णासा-वीणियं करेति, करेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः नासावीणिकां करोति, कुर्वन्तं वा स्वदते।

३९. जो भिक्षु नासिका से शब्द करता है अथवा करने वाले का अनुमोदन करता है।

४०. जे भिक्खू कक्ख-वीणियं करेति, करेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः कक्षवीणिकां करोति, कुर्वन्तं वा स्वदते।

४०. जो भिक्षु कांख से शब्द करता है अथवा करने वाले का अनुमोदन करता है।

४१. जे भिक्खू हत्थ-वीणियं करेति, करेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः हस्तवीणिकां करोति, कुर्वन्तं वा स्वदते।

४१. जो भिक्षु हाथ से शब्द करता है अथवा करने वाले का अनुमोदन करता है।

४२. जे भिक्खू णह-वीणियं करेति, करेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः नखवीणिकां करोति, कुर्वन्तं वा स्वदते।

४२. जो भिक्षु नख से शब्द करता है अथवा करने वाले का अनुमोदन करता है।

४३. जे भिक्खू पत्त-वीणियं करेति, करेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः पत्रवीणिकां करोति, कुर्वन्तं वा स्वदते।

४३. जो भिक्षु पत्र से शब्द करता है अथवा करने वाले का अनुमोदन करता है।

४४. जे भिक्खू पुप्फ-वीणियं करेति, करेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः पुष्पवीणिकां करोति, कुर्वन्तं वा स्वदते।

४४. जो भिक्षु पुष्प से शब्द करता है अथवा करने वाले का अनुमोदन करता है।

४५. जे भिक्खू फल-वीणियं करेति, करेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः फलवीणिकां करोति, कुर्वन्तं वा स्वदते।

४५. जो भिक्षु फल से शब्द करता है अथवा करने वाले का अनुमोदन करता है।

४६. जे भिक्खू बीय-वीणियं करेति, करेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः बीजवीणिकां करोति, कुर्वन्तं वा स्वदते।

४६. जो भिक्षु बीज से शब्द करता है अथवा करने वाले का अनुमोदन करता है।

४७. जे भिक्खू हरिय-वीणियं करेति, करेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः हरितवीणिकां करोति, कुर्वन्तं वा स्वदते।

४७. जो भिक्षु हरित से शब्द करता है अथवा करने वाले का अनुमोदन करता है।

४८. जे भिक्खू मुह-वीणियं वाएति, वाएंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः मुखवीणिकां वादयति, वादयन्तं वा स्वदते।

४८. जो भिक्षु मुंह से वीणा बजाता है अथवा बजाने वाले का अनुमोदन करता है।

४९. जे भिक्खू दंत-वीणियं वाएति, वाएंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः दन्तवीणिकां वादयति, वादयन्तं वा स्वदते।

४९. जो भिक्षु दांत से वीणा बजाता है अथवा बजाने वाले का अनुमोदन करता है।

५०. जे भिक्खू उट्ठ-वीणियं वाएति, वाएंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः ओष्ठवीणिकां वादयति, वादयन्तं वा स्वदते।

५०. जो भिक्षु ओष्ठ से वीणा बजाता है अथवा बजाने वाले का अनुमोदन करता है।

५१. जे भिक्खू णासा-वीणियं वाएति, वाएंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः नासावीणिकां वादयति, वादयन्तं वा स्वदते।

५१. जो भिक्षु नासिका से वीणा बजाता है अथवा बजाने वाले का अनुमोदन करता है।

५२. जे भिक्खू कक्ख-वीणियं वाएति, वाएंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः कक्षवीणिकां वादयति, वादयन्तं वा स्वदते।

५२. जो भिक्षु कांख से वीणा बजाता है अथवा बजाने वाले का अनुमोदन करता है।

५३. जे भिक्खू हत्थ-वीणियं वाएति, वाएंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः हस्तवीणिकां वादयति, वादयन्तं वा स्वदते।

५३. जो भिक्षु हाथ से वीणा बजाता है अथवा बजाने वाले का अनुमोदन करता है।

५४. जे भिक्खू णह-वीणियं वाएति, वाएंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः नखवीणिकां वादयति, वादयन्तं वा स्वदते।

५४. जो भिक्षु नख से वीणा बजाता है अथवा बजाने वाले का अनुमोदन करता है।

५५. जे भिक्खू पत्त-वीणियं वाएति, वाएंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः पत्रवीणिकां वादयति, वादयन्तं वा स्वदते।

५५. जो भिक्षु पत्र से वीणा बजाता है अथवा बजाने वाले का अनुमोदन करता है।

५६. जे भिक्खू पुप्फ-वीणियं वाएति, वाएंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः पुष्पवीणिकां वादयति, वादयन्तं वा स्वदते।

५६. जो भिक्षु पुष्प से वीणा बजाता है अथवा बजाने वाले का अनुमोदन करता है।

५७. जे भिक्खू फल-वीणियं वाएति, वाएंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः फलवीणिकां वादयति, वादयन्तं वा स्वदते।

५७. जो भिक्षु फल से वीणा बजाता है अथवा बजाने वाले का अनुमोदन करता है।

५८. जे भिक्खू बीय-वीणियं वाएति, वाएंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः बीजवीणिकां वादयति, वादयन्तं वा स्वदते।

५८. जो भिक्षु बीज से वीणा बजाता है अथवा बजाने वाले का अनुमोदन करता है।

५९. जे भिक्खू हरिय-वीणियं वाएति, वाएंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः हरितवीणिकां वादयति, वादयन्तं वा स्वदते।

५९. जो भिक्षु हरित से वीणा बजाता है अथवा बजाने वाले का अनुमोदन करता है।

६०. एवं अण्णयराणि वा तहप्पगाराणि अणुदिण्णाइं सद्दाइं उदीरेति, उदीरेंतं वा सातिज्जति।।

एवमन्यतरान् वा तथाप्रकारान् अनुदीर्णान् शब्दान् उदीरयति, उदीरयन्तं वा स्वदते।

६०. इसी प्रकार अन्य उसी प्रकार के अनुदीर्ण शब्दों (तत, वितत आदि अनुत्पन्न वाद्य-शब्दों) की उदीरणा करता है अथवा उदीरणा करने वाले का अनुमोदन करता है।[११]

सेज्जा-पदं

शय्या-पदम्

शय्या-पद

६१. जे भिक्खू उद्देसियं सेज्जं अणुपविसति, अणुपविसंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः औद्देशिकीं शय्याम् अनुप्रविशति, अनुप्रविशन्तं वा स्वदते।

६१. जो भिक्षु औद्देशिक शय्या में अनुप्रविष्ट होता है अथवा अनुप्रविष्ट होने वाले की अनुमोदन करता है।

६२. जे भिक्खू सपाहुडियं सेज्जं अणुपविसति, अणुपविसंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः सप्राभृतिकां शय्याम् अनुप्रविशति, अनुप्रविशन्तं वा स्वदते।

६२. जो भिक्षु प्राभृतिका युक्त शय्या में अनुप्रविष्ट होता है अथवा अनुप्रविष्ट होने वाले का अनुमोदन करता है।

६३. जे भिक्खू सपरिकम्मं सेज्जं अणुपविसति, अणुपविसंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः सपरिकर्मां शय्याम् अनुप्रविशति, अनुप्रविशन्तं वा स्वदते।

६३. जो भिक्षु परिकर्मयुक्त शय्या में अनुप्रविष्ट होता है अथवा अनुप्रविष्ट होने वाले का अनुमोदन करता है।[१२]

संभोगवत्तियकिरिया-पदं

संभोगप्रत्ययक्रिया-पदम्

संभोजप्रत्ययिक क्रिया-पद

६४. जे भिक्खू 'णत्थि संभोगवत्तिया-किरियत्ति' वदति, वदंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः 'नास्ति संभोगप्रत्यया क्रिया' इति वदति, वदन्तं वा स्वदते।

६४. 'संभोज-प्रत्ययिक क्रिया (कर्मबन्धन) नहीं है'—जो भिक्षु ऐसा कहता है अथवा कहने वाले का अनुमोदन करता है।[१३]

धारणिज्ज-परिट्ठवण-पदं

धारणीय-परिष्ठापन-पदम्

धारणीय का परिष्ठापन-पद

६५. जे भिक्खू लाउयपायं वा दारुपायं वा मट्टियापायं वा अलं थिरं धुवं धारणिज्जं परिभिंदिय-परिभिंदिय परिट्ठवेति, परिट्ठवेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः अलाबुपात्रं वा दारुपात्रं वा मृत्तिकापात्रं वा अलं स्थिरं ध्रुवं धारणीयं परिभिद्य-परिभिद्य परिष्ठापयति, परिष्ठापयन्तं वा स्वदते।

६५. जो भिक्षु अलं (पर्याप्त/प्रमाणोपेत), स्थिर, ध्रुव एवं धारण करने योग्य तुम्बे के पात्र, लकड़ी के पात्र अथवा मिट्टी के पात्र को तोड़-तोड़ कर परिष्ठापित करता है अथवा परिष्ठापित करने वाले का अनुमोदन करता है।

६६. जे भिक्खू वत्थं वा कंबलं वा पायपुंछणयं वा अलं थिरं धुवं धारणिज्जं पलिछिंदिय-पलिछिंदिय परिट्ठवेति, परिट्ठवेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः वस्त्रं वा कम्बलं वा पादप्रोञ्छनकं वा अलं स्थिरं ध्रुवं धारणीयं परिछिद्य-परिछिद्य परिष्ठापयति, परिष्ठापयन्तं वा स्वदते।

६६. जो भिक्षु अलं (पर्याप्त/प्रमाणोपेत) स्थिर, ध्रुव एवं धारण करने योग्य वस्त्र, कंबल अथवा पादप्रोञ्छन को फाड़-फाड़ कर परिष्ठापित करता है अथवा परिष्ठापित करने वाले का अनुमोदन करता है।

६७. जे भिक्खू दंडगं वा लट्ठियं वा अवलेहणियं वा वेणुसूइयं वा अलं थिरं धुवं धारणिज्जं पलिभंजिय-पलिभंजिय परिट्ठवेति, परिट्ठवेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः दण्डकं वा यष्टिकां वा अवलेखनिकां वा वेणुसूचिकां वा अलं स्थिरं ध्रुवं धारणीयं परिभज्य-परिभज्य परिष्ठापयति, परिष्ठापयन्तं वा स्वदते।

६७. जो भिक्षु अलं (पर्याप्त/प्रमाणोपेत) स्थिर, ध्रुव एवं धारण करने योग्य दण्ड, लाठी, अवलेखनिका अथवा वेणुसूई को तोड़-तोड़ कर (टुकड़े-टुकड़े कर) परिष्ठापित करता है अथवा परिष्ठापित करने वाले का अनुमोदन करता है।[१४]

रयहरण-पदं

रजोहरण-पदम्

रजोहरण-पद

६८. जे भिक्खू अतिरेयपमाणं रयहरणं धरेति, धरेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः अतिरेकप्रमाणं रजोहरणं धरति, धरन्तं वा स्वदते।

६८. जो भिक्षु अतिरिक्त प्रमाण वाला—बत्तीस अंगुल से बड़ा रजोहरण धारण करता है अथवा करने वाले का अनुमोदन करता है।[१५]

६९. जे भिक्खू सुहुमाइं रयहरण-सीसाइं करेति, करेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः सूक्ष्माणि रजोहरणशीर्षाणि करोति, कुर्वन्तं वा स्वदते।

६९. जो भिक्षु सूक्ष्म (महीन) रजोहरण-शीर्ष (रजोहरण की फलियां) बनाता है अथवा बनाने वाले का अनुमोदन करता है।[१६]

७०. जे भिक्खू रयहरणं कंडूसग-बंधेणं बंधति, बंधंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः रजोहरणं 'कंडूसगबन्धेन' बध्नाति, बध्नन्तं वा स्वदते।

७०. जो भिक्षु रजोहरण को कंडूसक-बन्धन से बांधता है अथवा बांधने वाले का अनुमोदन करता है।[१७]

७१. जे भिक्खू रयहरणं अविहीए बंधति, बंधंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः रजोहरणम् अविधिना बध्नाति, बध्नन्तं वा स्वदते।

७१. जो भिक्षु अविधि से रजोहरण बांधता है अथवा बांधने वाले का अनुमोदन करता है।

७२. जे भिक्खू रयहरणस्स एक्कं बंधं देति, देंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः रजोहरणस्य एकं बन्धं ददाति, ददतं वा स्वदते।

७२. जो भिक्षु रजोहरण को एक बन्धन से बांधता है अथवा बांधने वाले का अनुमोदन करता है।

७३. जे भिक्खू रयहरणस्स परं तिण्हं बंधाणं देति, देंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः रजोहरणस्य परं त्रयाणां बन्धानां ददाति, ददतं वा स्वदते।

७३. जो भिक्षु रजोहरण के तीन से अधिक बंधन बांधता है अथवा बांधने वाले का अनुमोदन करता है।[१८]

७४. जे भिक्खू रयहरणं अणिसट्ठं धरेति, धरेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः रजोहरणम् अनिसृष्टं धरति, धरन्तं वा स्वदते।

७४. जो भिक्षु अनिसृष्ट (अननुज्ञात) रजोहरण को धारण करता है अथवा धारण करने वाले का अनुमोदन करता है।[१९]

७५. जे भिक्खू रयहरणं वोसट्ठं धरेति, धरेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः रजोहरणं व्युत्सृष्टं धरति, धरन्तं वा स्वदते।

७५. जो भिक्षु रजोहरण को व्युत्सृष्ट रखता है अथवा रखने वाले का अनुमोदन करता है।[२०]

७६. जे भिक्खू रयहरणं अहिट्ठेति, अहिट्ठेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः रजोहरणम् अधितिष्ठति, अधितिष्ठन्तं वा स्वदते।

७६. जो भिक्षु रजोहरण पर अधिष्ठित होता है (बैठता है) अथवा अधिष्ठित होने वाले का अनुमोदन करता है।

७७. जे भिक्खू रयहरणं उस्सीसमूले ठवेति, ठवेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः रजोहरणम् उच्छीर्षमूले स्थापयति, स्थापयन्तं वा स्वदते।

७७. जो भिक्षु रजोहरण को सिरहाने रखता है अथवा रखने वाले का अनुमोदन करता है।

७८. जे भिक्खू रयहरणं तुयट्टेति, तुयट्टेंतं वा सातिज्जति–

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घातियं ।।

यो भिक्षुः रजोहरणे त्वग्वर्तते, त्वग्वर्तमानं वा स्वदते।

तत्सेवमानः आपद्यते मासिकं परिहारस्थानम् उद्घातिकम्।

७८. जो भिक्षु रजोहरण पर सोता है अथवा सोने वाले का अनुमोदन करता है।[२१]

–इनका आसेवन करने वाले को लघुमासिक परिहारस्थान प्राप्त होता है।

टिप्पण

१. सूत्र १-११

जिस सचित्त वृक्ष के स्कन्ध का विस्तार हाथी के पैर जितना होता है, उसके चारों ओर रत्नि (बद्धमुष्टि हाथ) प्रमाण भूमि सचित्त होती है।[१] अतः वहां खड़े होने, बैठने, सोने आदि क्रियाओं का निषेध किया गया है। निशीथभाष्य और चूर्णि में इसके व्यावहारिक कारणों का भी उल्लेख है।

वृक्ष के दो प्रकार होते हैं—परिगृहीत और अपरिगृहीत। परिगृहीत वृक्ष के पुनः तीन प्रकार होते हैं—

१. देवता द्वारा परिगृहीत—देवता द्वारा परिगृहीत (अधिकृत) वृक्ष को भिक्षु पास खड़ा होकर देखता है तो उसका अधिपति देव कुपित हो सकता है। यदि वह देवता क्रोध-आवेश प्रकृति का (दुष्ट स्वभाव वाला) है तो मुनि को दृप्तचित्त, क्षिप्तचित्त आदि बना सकता है।

२. मनुष्य द्वारा परिगृहीत—जिस मनुष्य का उस वृक्ष पर अधिकार है, वह मुनि को पीट सकता है, चोट पहुंचा सकता है।

३. तिर्यंच द्वारा परिगृहीत—जिस पशु का उस वृक्ष पर अधिकार है, वह उस पर आक्रमण कर सकता है।[२]

वह वृक्ष देव, मनुष्य आदि किसी से परिगृहीत नहीं है, तब भी वृक्ष के ऊपर से ढेला आदि गिरने से चोट की संभावना रहती है। मुनि पक्षियों की बींट से लिप्त हो सकता है। सहसा वृक्ष का सहारा ले ले तो उसके शरीर की उष्मा आदि लगने से वनस्पतिकाय की विराधना होती है।[३] अतः संयमविराधना और आत्मविराधना से बचने हेतु सचित्त वृक्ष के अवग्रह में बैठने, खड़े होने, सोने, स्वाध्याय आदि क्रियाएं करने का निषेध किया गया है।

शब्द विमर्श

१. **रुक्खमूल**—वृक्ष के पास।[४] मूल का अर्थ है पास।[५]

२. **आलोकन**—एक बार देखना।[६]

३. **प्रलोकन**—बार-बार देखना।[७]

४. **स्थान**—स्थान, ऊर्ध्वस्थान (खड़ा होना)[८]

५. **शय्या**—सोना।[९]

६. **निषीधिका**—बैठना। यद्यपि यहां निसीहियं पद का प्रयोग है जिसका अर्थ है स्वाध्याय करना।[१०] किन्तु प्रस्तुत आलापक स्वाध्याय से सम्बद्ध अनेक अन्य सूत्र है अतः यहां इसका अर्थ है निषीदन—बैठना, विश्राम के लिए रुकना।[११]

७. **चेएति** (चेअ)—करता है।[१२]

८. **स्वाध्याय**—वाचना, पृच्छना, अनुप्रेक्षा आदि।[१३]

९. **उद्देश**—नया पढ़ना—यह अध्ययन तुम्हें पढ़ना चाहिए। गुरु के इस निर्देश को उद्देश कहा जाता है।[१४]

१०. **समुद्देश**—अस्थिर को स्थिर करने का निर्देश।[१५]

११. **अनुज्ञा**—स्थिरीभूत को धारण करने का निर्देश।[१६]

१२. **वाचना**—अन्य को सूत्रार्थ पढ़ाना।[१७]

१३. **पडिच्छ**—ग्रहण करना।[१८]

---

१. निभा. गा. १८९६ तथा चूर्णि
२. वही, गा. १९०३,१९०४
३. वही, गा. १९०५
४. वही, भा. २, चू.पृ. ३०७—मूलं रुक्खावग्गहो।
५. पाइय.—मूल—पास, निकट।
६. निभा. २, चू.पृ. ३०७—आलोयणं सकृत्।
७. वही—अनेकशः प्रलोकनं।
८. वही, पृ. ३०९—ठाणं काउस्सग्गो।
९. वही, भा. ३, चू.पृ. ३७७—सेज्जा सयणिज्जं।
१०. वही—णिसीहिका सज्झायकरणं।
११. (क) वही, गा. १९०९—ठाणं णिसीयण तुयट्टणं वा वि।
(ख) वही, भा. २ चू.पृ. ३०९—वीसम-ट्ठाण-णिमित्तं णिसीहिया।
१२. वही, ३, पृ. ३२०—चेतेइ करेति।
१३. वही, भा. २, पृ. ३११—अणुप्पेहा धम्मकहा पुच्छाओ सज्झायकरणं।
१४. (क) वही,
(ख) अनु.वृ.प. ३—इदमध्ययनादि त्वया पठितव्यमिति गुरुवचन-विशेषः उद्देशः।
१५. (क) निभा. २ चू.पृ. ३११
(ख) अनु.वृ.प. ३—तस्मिन्नेव शिष्येण अहीनादिलक्षणोपेतेऽधीते गुरोर्निवेदिते स्थिरपरिचितं कुर्विदमिति वचनविशेषः एव समुद्देशः।
१६. (क) निभा. २ चू.पृ. ३११
(ख) अनु.वृ.प. ३—तथा कृत्वा गुरोर्निवेदिते सम्यगिदं धार-यान्यांश्चाध्यापयेदिति तद्वचनविशेषः एवानुज्ञा।
१७. निभा. २, पृ. ३११—सुत्तत्थाणं वायणं देति।
१८. पाइय.—पडिच्छ—ग्रहण करना।

१९. **परिवर्तना**—पूर्व अधीत सूत्रार्थ का अभ्यास करना।[१]

२. सूत्र १२

गृहस्थ एवं अन्यतीर्थिक को जीवहिंसा का त्याग नहीं होता। अतः वे तप्त अयोगोलक के समान सर्वतः जीवोपघाती होते हैं। फलतः उनसे कुछ भी कार्य करवाने से आज्ञाभंग, अनवस्था आदि दोष आते हैं।[२] गृहस्थ से वस्त्र सिलाने पर षट्काय-विराधना, पश्चात्कर्म, अपभ्राजना आदि दोषों की भी संभावना रहती है।

३. सूत्र १३

प्रस्तुत सूत्र में संघाटी के दीर्घसूत्र बनाने का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है। कदाचित संघाटी छोटी हो, उसे बांधने के लिए सूत्र (डोरी) बनाना आवश्यक हो तो तज्जात सूत्र से चार अंगुल प्रमाण डोरियां बनाई जा सकती हैं।[३] दीर्घसूत्र बनाने से प्रतिलेखना में अनेक दोष आने की संभावना रहती है और अधिक लम्बी डोरियां आपस में उलझ जाएं तो सुलझाने में निरर्थक समय एवं शक्ति का व्यय होता है। डोरियां सुलझाते रहने से सूत्रार्थ में बाधा आदि दोष भी संभव हैं।[४]

४. सूत्र १४

कोई भिक्षु बीमार हो जाए और उसे कोई वैद्य चिकित्सा की दृष्टि से नीम, परवल आदि के पत्ते खाने का निर्देश दे, तब प्रश्न उपस्थित होता है कि परवल, बेल, नीम आदि के अचित्त पत्तों को अचित्त जल से धोकर खाने में क्या दोष है? आचार्य कहते हैं—अचित्त जल भी पत्ते आदि को धोकर गिराना पड़ता है, उसमें संपातिम जीवों के गिरने की तथा मरने की संभावना रहती है। यदि नीम, पीपल, परवल आदि के पत्ते सहजरूप से गृहस्थ द्वारा धोए हुए मिल जाएं तो वे ही लेने चाहिए ताकि धोने से जल-प्लावन और उससे होने वाले अन्य दोषों की संभावना न रहे। यदि गृहस्थ के घर सहज में धोए हुए पत्ते न मिलें तो उन्हें औषध रूप में उसी दिन लाकर धोकर उपयोग किया जा सकता है। पत्तों को धो-धोकर खाने से होने वाले दोषों की संभावना से यहां असमाचारी निष्पन्न लघुमासिक प्रायश्चित्त का विधान है।[५]

शब्द विमर्श

संफाणिय—धोकर।[६]

५. सूत्र १५-२२

प्रस्तुत आलापक में औपग्रहिक उपकरणों के प्रत्यर्पण सम्बन्धी नौ सूत्र हैं। प्रत्यर्पणीय उपकरणों के दो प्रकार हैं—१. शय्यातरनिश्रित तथा २. अन्य गृहस्थ से प्रातिहारिक रूप में गृहीत। पादप्रोञ्छन, दंड, लाठी, अवलेखनिका आदि उपकरण यदि प्रत्यर्पणीय रूप में गृहीत हों तो ग्रहण करते समय भिक्षु 'आज' या 'कल' इस प्रकार काल सीमा निश्चित न करे।[७] क्योंकि शाम को लौटाऊंगा कहकर दूसरे दिन लौटाने और दूसरे दिन लौटाऊंगा कहकर उसी रात को लौटाने पर भिक्षु को मृषावाद का दोष लगता है। फलतः गृहस्थों में अप्रत्यय (अविश्वास), उनके द्वारा खिंसा, उपालम्भ आदि दोषों की संभावना रहती है।[८] इसी प्रकार प्रत्यर्पित शय्यासंस्तारक का पुनः अनुज्ञा लिए बिना उपयोग करने पर अदत्तादान का दोष लगता है, अतः इनका प्रायश्चित्त है—लघुमासिक परिहारस्थान।

६. सूत्र २३

ववहारो में विधान है कि शय्या-संस्तारक को गृहस्थ को सर्वात्मना सौंपने के बाद दूसरी बार अनुज्ञा लिए बिना निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थियों को उनका उपयोग करना नहीं कल्पता।[९] पुनः अनुज्ञा लेकर उनका उपयोग करना विधिसम्मत है। क्योंकि एक बार सौंप देने पर शय्या-संस्तारक उस स्वामी के हो जाते है। पुनः अनुज्ञा लिए बिना उनका परिभोग करने पर अदत्तादान आदि दोषों की संभावना रहती है। अतः यदि उनको पुनः उपयोग में लेना हो तो अनुज्ञापूर्वक ही लेना चाहिए।

शब्द विमर्श

अहिट्ठ—अधि उपसर्गपूर्वक ष्ठा धातु का अर्थ है परिभोग करना।[१०]

७. सूत्र २४

पाट, कपास, ऊन आदि से सूत कातना गृहस्थ-प्रायोग्य कार्य है। सूत कातने में समय लगाने से मुनि के सूत्रार्थ में बाधा आती है। सूत कातने आदि की क्रिया में संपातिम जीवों तथा वायुकाय आदि की हिंसा का प्रसंग उड्डाह, हस्तोपघात आदि अनेक दोष संभव हैं।[११]

८. वेणुदंड अथवा वेत्रदंड (वेणुदडाणि वा वेत्तदंडाणि वा)

वेत्र और वेणु—दोनों बांस के लिए प्रयुक्त होते हैं। अतः शब्दकोशों में इन्हें एकार्थक माना गया है। प्रस्तुत आलापक में वेणु-दंड और वेत्र दंड दोनों शब्दों का साथ-साथ प्रयोग हुआ है। निशीथचूर्णिकार ने दोनों के भेद का निर्देश दिया है—पानी में उगने

१. **निभा. भा. २, पृ. ३११—सुत्तमत्थं वा पुव्वाधीतं अब्भासेति परियट्टेइ।**
२. **वही, गा. ६३३**
३. **वही, गा. १९३२,१९३३**
४. **वही, गा. १९३१**
५. **वही, गा. १९४०-१९४३ (सचूर्णि)**
६. **वही, भा. २ चू.पृ. ३१४—संफाणियत्ति धोविउं।**
७. **वही, पृ. ३१७—अज्जं वा कल्ले वा छिण्णकालं ण करेति।**
८. **वही, गा. १९४९**
९. वव. ८/७,९
१०. **निभा. भा. २, चू.पृ. ३१९—अहिट्ठेति परिभुंजति।**
११. **वही, गा. १९६६**

वाले बांस को वेत्र और स्थल पर उगने वाले बांस को वेणु कहा जाता है।[1]

९. सूत्र २५-३३

प्रस्तुत आलापक में सचित्त, एक वर्ण वाले तथा विविध वर्ण वाले काष्ठदंड, वेत्रदंड और वेणुदंड के ग्रहण, धारण एवं परिभोग के प्रायश्चित्त का कथन किया गया है। सचित्त दंड का ग्रहण, धारण आदि जीवोपघात का हेतु होने से अहिंसा महाव्रत की विराधना तथा चित्र एवं विचित्र दंड का ग्रहण, धारण आदि विभूषा का हेतु होने से ब्रह्मचर्य महाव्रत के उपघात का हेतु है अतः भिक्षु को इस प्रकार के दंडों का ग्रहण भी नहीं करना चाहिए, धारण एवं परिभोग की तो बात ही क्या?

शब्द-विमर्श

१. **चित्र**—एक वर्ण वाला।[2]

२. **विचित्र**—नाना वर्ण वाला।[3]

३. **करण**—दूसरे के हाथ से ग्रहण करना।[4]

४. **धारण**—अपरिभुक्त रूप में रखना।[5]

१०. सूत्र ३४-३५

प्रस्तुत सूत्रद्वयी में व्यावहारिक प्रतिक्रियाओं को ध्यान में रख कर नए बसे हुए आश्रयस्थानों में जाकर अशन, पान आदि लेने वाले भिक्षु के लिए प्रायश्चित्त का विधान किया गया है। नवनिवेशित गांव, नगर आदि में भिक्षु गोचरी हेतु प्रविष्ट होते हैं तो कोई भद्र गृहस्थ सोचता है—साधु पधार गए, मंगल उद्घाटन हो गया—ऐसा सोच वहां आवास करने लग जाता है। भविष्य में लाभ आदि होता देख वह मंगल बुद्धि का प्रवर्तन करता है। फलतः भिक्षु वहां गृहस्थों के निवास, आरम्भ, समारम्भ आदि अधिकरण का निमित्त बनता है। दूसरी ओर प्रान्त गृहस्थ मुनि को प्रविष्ट होता देख कर सोचता है—पहले पहल ये मुंडित मस्तक मिल गए, यहां सुख कहां से होगा? वह अन्य लोगों को भी वहां निवास करने से रोक देता है। अतः मुनि को नवनिवेशित नगर आदि में तथा लोहे आदि की खानों में गोचरी जाने का निषेध किया गया है।[6] साथ ही खानों में सचित्त पृथिवीकाय के संरंभ-समारंभ, सोने, चांदी आदि के हरण से शंका आदि दोष भी संभव हैं।[7]

शब्द विमर्श

ग्राम, नगर आदि बस्ती के प्रकार हैं, निशीथ चूर्णिकार के अनुसार इनका संक्षिप्त अर्थ इस प्रकार है—

१. **ग्राम**—जहां कर लगते हैं।

२. **नगर**—जहां कर नहीं लगता।

३. **खेट**—जिसके चारों ओर धूलि का प्राकार हो।

४. **कर्बट**—कुनगर (जहां क्रय-विक्रय न हो) कर्बट कहलाता है।

५. **मडंब**—जहां ढाई योजन तक अन्य गोकुल आदि न हो।

६. **द्रोणमुख**—जहां जल और स्थल—दोनों ओर से मुख (आगमन एवं निर्गमन का मार्ग) हो।

७. **पत्तन**—जल मध्यवर्ती भूभाग जलपत्तन और निर्जलभूभाग स्थलपत्तन कहलाता है। पूरी आदि जलपत्तन और आनन्दपुर आदि स्थलपत्तन हैं।

८. **आश्रम**—तापसों का निवास स्थान आदि आश्रम कहलाते हैं।

९. **निवेशन**—सार्थ का निवास-स्थान।

१०. **निगम**—जहां केवल व्यापारी-वर्ग निवास करता है।

११. **संबाध**—वर्षाकाल में कृषि करके कृषक लोग धान्य का वहन कर जहां दुर्ग आदि में ले जाते हैं, वह स्थान।

१२. **राजधानी**—जहां राजा अधिष्ठित हो—निवास करे वह स्थान।[8]

१३. **सन्निवेश**—यात्रा से आए हुए मनुष्यों के रहने का स्थान।[9] (विस्तृत एवं तुलनात्मक जानकारी हेतु द्रष्टव्य ठाणं २/३९० का टिप्पण)

१४. **अयः आकर यावत् वज्राकर**—लोहा, तांबा, त्रपु आदि जहां पैदा होते हों, वे स्थान क्रमशः अयःआकर (लोहे की खान) यावत् वज्राकर कहलाते हैं।[10]

११. सूत्र ३६-६०

प्रस्तुत वीणा पद में दो आलापक हैं। प्रथम आलापक में 'मुंहवीणियं करेति' इत्यादि बारह सूत्रों में मुंह, दांत, होठ आदि शरीरावयवों तथा पत्र, पुष्प, फल आदि वृक्षावयवों से विकृत शब्दों को पैदा करने का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है तथा अग्रिम आलापक में उन्हीं शरीरावयवों तथा वृक्षावयवों से वादित्र-शब्दों को उत्पन्न करने का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है। शरीर के विभिन्न अवयवों—मुंह, नाक, दांत, होठ आदि से तथा वृक्ष के पत्र, पुष्प आदि अवयवों से विकृत शब्दों को उत्पन्न करना, विभिन्न वाद्ययंत्रों की ध्वनि निकालना विकृत एवं असंयत चित्तवृत्ति का द्योतक है। इससे स्वयं के साथ-

---

१. निभा. भा. २, चू. पृ. ३८—वेत्तो पाणियवंसो, वेणू थलवंसो।
२. वही, पृ. ३२७—चित्रकः एकवर्णः।
३. वही—विचित्रो नानावर्णः।
४. वही, पृ. ३२६—करणं परहस्ताद् ग्रहणमित्यर्थः।
५. वही—ग्रहणादुत्तरकालं अपरिभोगेण धरणमित्यर्थः।
६. वही, गा. २००५
७. वही, गा. २०११
८. वही. भा. २, चू.पृ. ३२८
९. वही, भा. ३, चू.पृ. ३४६,३४७
१०. वही, भा. २, चू.पृ. ३२९

साथ दूसरों के भी मोह का उद्दीपन होता है। इस प्रकार की प्रवृत्तियों से लोगों में निन्दा, शासन की अप्रभावना, आत्मविराधना तथा संयमविराधना आदि अनेक दोष उत्पन्न होते हैं।[१] अतः मुंह, नाक, होठ, दांत आदि तथा पत्र, पुष्प आदि के द्वारा विकृत शब्दों को पैदा करने वाले एवं वाद्य-ध्वनियों को उत्पन्न करने वाले भिक्षु को प्रायश्चित्तार्ह माना गया है।

१२. सूत्र ६१-६३

जो साधुओं के उद्देश्य से बनाई जाए, वह शय्या औद्देशिक शय्या है।[२] जिस मकान, दुकान आदि का नवनिर्माण अथवा पुनर्निर्माण केवल निर्ग्रन्थों अथवा अन्यतीर्थिकों सहित निर्ग्रन्थों के लिए हो, वह उपाश्रय भी औद्देशिक होता है। जिस उपाश्रय की मरम्मत, समीकरण, छादन, लेपन आदि साधु के निमित्त हों, वह सप्राभृतिका शय्या है[३] तथा जिस मकान का परिकर्म—पृष्ठवंश, दीवार आदि को ठीक करना, उसके द्वार को छोटा, बड़ा करना आदि कार्य मुनि निमित्त हों, वह सपरिकर्म शय्या है। परिकर्म दो प्रकार का होता है—मूलगुण विषयक और उत्तरगुण विषयक। इन सबमें मुनि को निमित्त बनाकर पृथ्वीकाय, अप्काय आदि का आरम्भ-समारम्भ होता है। अतः मुनि को उसमें रहने का निषेध किया गया है। आयारचूला में बताया गया है कि जो उपाश्रय एक या अनेक साधर्मिकों के उद्देश्य से निर्मित, क्रीत आदि हो, वह पुरुषान्तरकृत, अपुरुषान्तरकृत, परिभुक्त, अपरिभुक्त सभी अवस्थाओं में अकल्पनीय है। किन्तु मरम्मत अथवा अन्य छोटा-मोटा परिकर्म साधु या उसके किसी साधर्मिक के निमित्त हो, वह पुरुषान्तरकृत, परिभुक्त या आसेवित होने पर कल्पनीय है।[४] अर्थात् औद्देशिक एवं मूलगुणपरिकर्म (पृष्ठवंश, धारणा एवं वेली से सम्बन्धित परिकर्म) युक्त शय्या पुरुषान्तरकृत एवं परिभुक्त होने पर भी सदोष एवं वर्जनीय है। जबकि उत्तरगुणपरिकर्म एवं प्राभृतिका (सम्मार्जन, अवलेपन आदि) से युक्त शय्या पुरुषान्तरकृत एवं परिभुक्त होने पर कल्पनीय हो जाती है।[५]

१३. सूत्र ६४

संभोज का अर्थ है—समान कल्प वाले साधुओं के साथ शास्त्रविहित विधि-विधान के अनुसार आहार, उपधि आदि उत्तरगुणों से संबंधित व्यवहार की व्यवस्था। संभोज का प्रयोजन है—ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप की अभिवृद्धि। जो सांभोजिक होता है उत्तर गुणों में विषण्ण या शिथिल होने पर उसकी सारणा-वारणा की जाती है। इस प्रकार उत्तरगुणों के संरक्षण से मूलगुण संरक्षित होते है, चारित्र की रक्षा होती है।[६]

जिस प्रकार खार, लवण, विष आदि आगन्तुक या अन्य किन्हीं तदुत्थ दोषों से कुओं का जल अपेय एवं आमयकर हो जाता है, तब जल लाने वाले से पूछा जाता है—पानी कहां से लाए। यदि दोषयुक्त कुओं से जल लाया गया है तो उसे लाने तथा पीने का निषेध किया जाता है। उसी प्रकार कुछ व्यक्तियों का श्रामण्य प्रमाद, शैथिल्य, सुविधावाद आदि से दूषित हो तो उनके साथ संवास, संभोज आदि करने पर शुद्धचारित्री के भी मूलगुणों एवं उत्तरगुणों के दूषित होने की संभावना रहती है अतः पार्श्वस्थ अवसन्न, कुशील आदि के साथ संभोज करने से संभोज प्रत्ययिक क्रिया (कर्मबन्धन) नहीं होता—यह कहना ठीक नहीं।[७]

संभोज एवं उसके प्रकारों के विस्तार हेतु द्रष्टव्य—समवाओ १२/२ का टिप्पण, भिक्षु आगम विषयकोष, भाग २, पृ. ६०५-६१४।

१४. सूत्र ६५-६७

प्रस्तुत प्रकरण में पात्र, कंबल, दंड आदि के लिए चार विशेषणों का प्रयोग किया गया है। सूत्रकार का आशय है कि जो धारणीय हो, उसका परिभेदन नहीं करना चाहिए। धारणीयता के लिए तीन पद प्रयुक्त हुए हैं—

१. अलं—जो वस्तु अपना कार्य करने में सक्षम एवं समुचित परिमाण वाली हो।

२. स्थिर—जो वस्तु मजबूत हो।

३. ध्रुव—जो वस्तु अप्रातिहारिक हो, त्रुटित व खंडित न हो।[८] समुचित परिमाण वाले उपयोगी उपकरणों को खण्ड-खण्ड करके परिष्ठापन करने से अजीव का असंयम होता है। स्वयं के अथवा अन्य साधर्मिक के आवश्यकता पड़ने पर अन्य उपकरण की गवेषणा में समय एवं शक्ति का अपव्यय होता है। फलतः सूत्रार्थ की हानि होती है। वस्त्र, पात्र, दंड आदि को टुकड़े-टुकड़े कर परिष्ठापन करते देखकर लोग उड्डाह करते हैं[९] अतः धारणीय उपकरणों का परिष्ठापन प्रायश्चित्तार्ह प्रवृत्ति है।

---

१. निभा. गा. २०१३,२०१४
२. वही, भा. २ चू.पृ. ३३१—उद्दिश्य कृता औद्देशिका।
३. वही, पृ. ३३३—जम्मि वसहीए ठियाण कम्म-पाहुडं भवति, सा सपाहुडिया छावण-लेवणादि-करणमित्यर्थः।
४. वही, पृ. ३३६—सह परिकम्मेण सपरिकम्मा, मूलगुणउत्तरपरिकर्म यस्यास्तीत्यर्थः।
५. आचू. २/३-१३
६. निभा. गा. २१५६—णाणदंसणचरित्ताण वुड्ढिहेउं तु एस संभोओ।
७. वही, गा. २१५०-२१५२,२१५७
८. वही, गा. २१५९
९. वही, गा. २१६०-२१६२

शब्द विमर्श

१. परिभिंदिय—तोड़ कर। पात्र को खंड-खंड करना परिभेदन है।[1]

२. पलिछिंदिय—फाड़ कर। वस्त्र आदि को शस्त्र आदि से फाड़ना परिछेदन है।[2]

३. पलिभंजिय—टुकड़े कर। दंडे, लाठी आदि का हाथ से आमोटन करना परिभंजन है।[3]

१५. सूत्र ६८

दंड सहित रजोहरण बत्तीस अंगुल लम्बा तथा हस्तपूरिम (हाथ में आए उतनी मोटाई वाला) होना चाहिए। रजोहरण की दशा मृदु एवं अशुषिर होनी चाहिए।[4] कठोर एवं शुषिर दशा वाले रजोहरण से प्रमार्जन करने पर संयम-विराधना होती है। वर्षारात्र में दो तथा ऋतुबद्धकाल में एक रजोहरण रखने का विधान है।[5]

बत्तीस अंगुल से अधिक लम्बा अथवा मोटा रजोहरण रखने पर अतिभार आदि से षड्जीवनिकाय की विराधना, भाजनविराधना एवं आत्मविराधना आदि दोषों की संभावना रहती है।[6] अतः मुनि को समुचित लम्बाई एवं मोटाई वाला रजोहरण धारण करना चाहिए।

१६. सूत्र ६९

रजोहरण की फलियां अत्यन्त सूक्ष्म (पतली) होने से आपस में उलझती रहती हैं, फलतः वह दुष्प्रतिलेख्य हो जाता है। वे दुर्बल होने से टूट जाती हैं।[7] अतः मुनि को सूक्ष्म रजोहरण-शीर्ष बनाने का निषेध है।

शब्द विमर्श

रजोहरण शीर्ष—रजोहरण की दशा—फलियां।[8]

१७. सूत्र ७०

कंडूसक बन्धन का अर्थ है—रजोहरण को सूती या ऊनी वस्त्र से वेष्टित कर उस पर ऊनी डोरा बांधना।[9] कंडूसक बंधन अनुपयोगी है तथा अतिरिक्त उपधि होने से अधिकरण है। इसको खोलने, बांधने आदि में समय का अपव्यय होता है अतः निष्कारण कंडूसक बंधन से बांधने का निषेध है।[10] अतः इसके लिए लघुमासिक प्रायश्चित्त का विधान है।

१८. सूत्र ७१-७३

रजोहरण को वाम पार्श्व से बांधना अविधि बंधन है।[11] रजोहरण को अविधि से बांधना, एक पार्श्व से, एक बंधन से बांधना अथवा तीन से अधिक बंधन लगाना अनाचीर्ण है, निषिद्ध है।[12] अतः इन सभी प्रवृत्तियों के लिए लघुमासिक प्रायश्चित्त का विधान है।

१९. सूत्र ७४

आगम साहित्य में रजोहरण के पांच प्रकार प्रज्ञप्त हैं—१. और्णिक २. औष्ट्रिक (ऊंट के केशों से निष्पन्न) ३. सानक (सन से निष्पन्न) ४. वच्चापिच्चिय—वल्वज नाम की मोटी घास को कूट कर बनाया हुआ तथा (५) मुंजापिच्चिय—मूंज को कूट कर बनाया हुआ।[13] उनसे भिन्न द्रव्य से निर्मित, बहुमूल्य, दुर्लभ, वर्णाढ्य रजोहरण को धारण करने से आज्ञाभंग, मिथ्यात्व आदि दोष आते हैं। रागोत्पत्ति होने से संयमविराधना होती है अतः तीर्थंकर एवं गुरु के द्वारा अननुमत रजोहरण रखने का निषेध है।[14]

विस्तार हेतु द्रष्टव्य निशीथभाष्य गा. २१८१-२१८३।

शब्द विमर्श

अनिसृष्ट—तीर्थंकरों के द्वारा अदत्त[15] अथवा गुरुजनों द्वारा अननुज्ञात।[16]

२०. सूत्र ७५

व्युत्सृष्ट का अर्थ है—आत्मावग्रह से परे।[17] यहां रजोहरण की अपेक्षा से चारों ओर एक हाथ की दूरी अव्युत्सृष्ट कही गई है।[18] रजोहरण मुनि का लिंग है। वह सदा उसके पास रहना चाहिए। यदि वह उसके हाथ की पहुंच से बाहर हो तो यथावसर प्रमार्जन न करने से आत्मविराधना एवं संयमविराधना होती है।[19] अतः रजोहरण को दूर रखना प्रायश्चित्तार्ह माना गया है। भाष्यकार के अनुसार

---

१. निभा. २, चू.पृ. ३६४—खंडाखंडिकरणं पलिभेओ भण्णति।
२. वही, पृ. ३६५—पलिछिंदिय शस्त्रादिना।
३. वही—हत्थेहिं आमोडणं पलिभंजणं।
४. वही. गा. २१७० व उसकी चूर्णि
५. वही, गा. २१६९
६. वही, गा. २१६८
७. वही, गा. २१७४ सचूर्णि।
८. वही, भा. २ चू.पृ. ३६६—रयहरणसीसगा दसाओ।
९. वही, पृ. ३६७—कंडूसगबंधो णाम जाहे रयहरणं तिभागपएसे खोमिएण उण्णिएण वा चीरेण वेढियं भवति, ताहे उण्णिय-दोरेण तिपासियं करेति, तं चीरं कंडूसगपट्टो भण्णति।
१०. वही, गा. २१७६ व उसकी चूर्णि
११. वही, भा. २ चू.पृ. ३६७—अपसव्वादि अविधिबंधो।
१२. वही, पृ. ३६७,३६८
१३. (क) ठाणं ५।१९१
(ख) कप्पो २।२९
१४. निभा. गा. २१८३
१५. वही, भा. २ चू.पृ. ३६८—अणिसट्ठं णाम तित्थकरेहिं अदिण्णं।
१६. वही—जं गुरुजणेण नो अणुण्णायं तं अणिसिट्ठं।
१७. वही, गा. २१८५
१८. वही, भा. २, चू.पृ. ३६९—इह पुण रयोहरणं पडुच्च समंततो हत्थो, हत्थाओ परं ण पावति त्ति वोसट्ठं भण्णति।
१९. वही, गा. २१८६

मुखवस्त्रिका, निषद्या आदि अन्य औघिक उपकरणों के विषय में भी यही विधि ज्ञातव्य है।[1]

२१. सूत्र ७६-७८

रजोहरण पर बैठना, सोना, उसे सिरहाने लगाना सूत्र में प्रतिषिद्ध है। अतः ऐसा करने से आज्ञाभंग, अनवस्था आदि दोष आते हैं। सोते या बैठते समय रजोहरण को वाम पार्श्व में रखना, रजोहरण दशा (फलियों) को ऊपर की ओर रखना, पैरों के पास रखना अथवा आगे-पीछे रखना अनुज्ञात नहीं है।[2] प्रमार्जन करते समय रजोहरण में कांटे, सचित्त रजें अथवा चींटी आदि सूक्ष्म प्राणी भी लग सकते हैं। यदि उन्हें पृथक् किए बिना रजोहरण पर मोटी पुस्तक आदि भारी वस्तु रख दी जाए अथवा कोई उस पर आधा या पूरा बैठ जाए, लेट जाए, उस पर सिर रख ले तो उन उपर्युक्त प्राणियों की विराधना से संयमविराधना भी संभव है। सोते या बैठते समय रजोहरण की फलियों को नीचे की ओर करके दाहिनी ओर रखना विधिसम्मत है।[3]

शब्द विमर्श

उस्सीसमूले—चूर्णिकार ने इसका अर्थ उपशीर्षमूल—मस्तक के सहारे रखना किया है।[4] उस्सीस का संस्कृत रूप उच्छीर्ष किया जाए तो उसका अर्थ होता है तकिया।[5] मूल का अर्थ है—पास। अतः उच्छीर्षमूल का अर्थ है—तकिए के पास।

---

१. निभा. गा. २१८८

२. वही, गा. २१९२,२१९३

३. वही, भा. २ चू.पृ. ३७०—तम्हा णिवण्णो णिसण्णो वा दाहिणपासे अधोदसं करेज्जा।

४. वही—सीसस्स वा उवक्खंभणं उसीसं, ठुवणं निक्खेवो।

५. पाइय.

छट्ठो उद्देसो

छठा उद्देशक

आमुख

प्रस्तुत उद्देशक का केन्द्रीय तत्त्व है ब्रह्मचर्य। इस सन्दर्भ में सूत्रकार ने मातृग्राम को एतद्विषयक निवेदन, हस्तकर्म, अंगादान विषयक विविध अकरणीय कार्यों के करने, कामकलह, तद्विषयक लेखन, पोषान्त-पृष्ठान्त विषयक प्रतिसेवनाओं, कामभावना से अहत, कृत्स्न, धौत-रक्त, मलिन आदि वस्त्रों के धारण, शरीर के विविध प्रकार के परिकर्म एवं प्रणीत आहार करने का प्रायश्चित्त बतलाया है। अब्रह्मचर्य के संकल्प से अथवा चित्त की तादृशी कुत्सित भावना से किया गया कर्म चेतना की संक्लिष्ट अवस्था का परिचायक है। अतः वह मैथुन संज्ञा के अंतर्गत है।

प्रस्तुत उद्देशक में सभी सूत्रों में 'माउग्गाम' और 'मेहुणवडिया' दो शब्दों का अनुवर्तन हुआ है। इन दो शब्दों को छोड़ दिया जाए तो सम्पूर्ण 'हत्थकम्म-पदं' नामक आलापक इसी आगम के प्रथम उद्देशक में तथा पायपरिकम्म, कायपरिकम्म आदि से 'सीसदुवारिया पदं' पर्यन्त चौवनसूत्रीय आलापक तृतीय उद्देशक में आ चुका है, किन्तु वहां इनका प्रयोजन अब्रह्म भाव नहीं है। अतः वहां इनका प्रायश्चित्त क्रमशः अनुद्घातिक मासिक एवं उद्घातिक मासिक है। प्रस्तुत प्रसंग में भाष्यकार ने मातृग्राम--स्त्री के तीन प्रकार किए हैं—दिव्य, मानुषिक और तैरश्च। पुनः प्रत्येक के तीन-तीन प्रकार किए हैं--

प्रकार	दिव्य	मानुषिक	तैरश्च
१. जघन्य	वाणव्यन्तर	प्राजापत्य	भेड़, बकरी आदि
२. मध्यम	भवनवासी, ज्योतिष्क	कौटुम्बिक	घोड़ी, शूकरी आदि
३. उत्कृष्ट	वैमानिक	दाण्डिक	गाय, भैंस आदि[१]

पुनः इनके दो-दो भेद हो जाते हैं—देहयुक्त और प्रतिमायुक्त। इसी प्रसंग में प्रतिमायुक्त के दो भेद—सन्निहित और असन्निहित करते हुए भाष्यकार ने बताया है कि कदाचित् वह प्रतिमा भद्रदेवता के द्वारा अधिष्ठित हो तो वह विभ्रम आदि कर सकती है, फलतः उसका वहीं प्रतिबंध हो सकता है। यदि वह प्रतिमा प्रान्तदेवता द्वारा अधिष्ठित हो तो वह उस व्यक्ति को क्षिप्तचित्त आदि कर सकती है। इस प्रकार भाष्यकार एवं चूर्णिकार ने दिव्य, मानुषिक एवं तिर्यंच से अब्रह्म के अवभाषण से होने वाले अनेक संभाव्य दोषों की चर्चा की है। सम्पूर्ण प्रसंग को पढ़ने पर ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में दुर्भिक्ष अशिव, राजाभियोग आदि के कारण साधुओं को किस प्रकार की भीषण परिस्थितियों का सामना करना पड़ता था। इसी क्रम में भाष्य में मोहचिकित्सा का भी सविस्तर वर्णन उपलब्ध होता है।

इसी प्रकार काम-भावना से लेख/पत्र आदि लिखना, विविध प्रकार के वस्त्रों को धारण करना, विगय खाना आदि क्रियाएं करना भी ब्रह्मचर्य के लिए घातक प्रवृत्तियां हैं। अतः प्रस्तुत उद्देशक में इन सबका भी अनुद्घातिक चातुर्मासिक प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है।

मोह के प्रबल उदय से अल्पसत्त्व व्यक्ति किस-किस प्रकार का आचरण कर लेता है—प्रस्तुत उद्देशक इसका सुन्दर निदर्शन है।

---

१. निभा. गा. २१९९ (सचूर्णि)

छट्ठो उद्देसो : छठा उद्देशक

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
विण्णवण-पदं	**विज्ञपन-पदम्**	**विज्ञापन-पद**
१. जे भिक्खू माउग्गामं मेहुण-वडियाए विण्णवेति, विण्णवेंतं वा सातिज्जति ।।	यो भिक्षुः मातृग्रामं मैथुनप्रतिज्ञया विज्ञपयति, विज्ञपयन्तं वा स्वदते ।	१. जो भिक्षु मातृग्राम (स्त्री)[1] को अब्रह्म-सेवन के संकल्प से[2] प्रार्थना करता है[3] अथवा प्रार्थना करने वाले का अनुमोदन करता है ।
हत्थकम्म-पदं	**हस्तकर्म-पदम्**	**हस्तकर्म-पद**
२. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए हत्थकम्मं करेति, करेंतं वा सातिज्जति ।।	यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया हस्तकर्म करोति, कुर्वन्तं वा स्वदते ।	२. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर (स्त्री के प्रति आसक्त हो कर) अब्रह्म-सेवन के संकल्प से हस्तकर्म करता है अथवा करने वाले का अनुमोदन करता है ।
३. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अंगादाणं कट्ठेण वा कलिंचेण वा अंगुलियाए वा सलागाए वा संचालेति, संचालेंतं वा सातिज्जति ।।	यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया अंगादानं काष्ठेन वा किलिञ्चेन वा अंगुलिकया वा शलाकया वा सञ्चालयति, सञ्चालयन्तं वा स्वदते ।	३. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से अंगादान को काष्ठ, किलिंच अथवा शलाका से संचालित करता है अथवा संचालित करने वाले का अनुमोदन करता है ।
४. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अंगादाणं संवाहेज्ज वा पलिमद्देज्ज वा, संवाहेंतं वा पलिमद्देंतं वा सातिज्जति ।।	यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया अंगादानं संवाहयेद् वा परिमर्दयेद् वा, संवाहयन्तं वा परिमर्दयन्तं वा स्वदते ।	४. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से अंगादान का संबाधन करता है अथवा परिमर्दन करता है और संबाधन अथवा मर्दन करने वाले का अनुमोदन करता है ।
५. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अंगादाणं तेल्लेण वा घएण वा वसाए वा णवणीएण वा अब्भंगेज्ज वा मक्खेज्ज वा, अब्भंगेंतं वा मक्खेंतं वा सातिज्जति ।।	यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया अंगादानं तैलेन वा घृतेन वा वसया वा नवनीतेन वा अभ्यञ्ज्याद् वा म्रक्षेद् वा, अभ्यञ्जन्तं वा म्रक्षन्तं वा स्वदते ।	५. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से अंगादान का तैल, घृत, वसा अथवा मक्खन से अभ्यंगन करता है अथवा म्रक्षण करता है और अभ्यंगन अथवा म्रक्षण करने वाले का अनुमोदन करता है ।

६. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अंगादाणं कक्केण वा लोद्धेण वा पउमचुण्णेण वा ण्हाणेण वा सिणाणेण वा वण्णेण वा चुण्णेण वा उव्वट्टेति वा परिवट्टेति वा, उव्वट्टेंतं वा परिवट्टेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया अंगादानं कल्केन वा लोध्रेण वा पद्मचूर्णेन वा 'ण्हाणेण' वा स्नानेन वा वर्णेन वा चूर्णेन वा उद्वर्तते वा परिवर्तते वा, उद्वर्तमानं वा परिवर्तमानं वा स्वदते।

६. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से अंगादान का कल्क, लोध, पद्मचूर्ण, ण्हाण, स्नानचूर्ण, वर्ण अथवा चूर्ण से उद्वर्तन करता है अथवा परिवर्तन करता है और उद्वर्तन अथवा परिवर्तन करने वाले का अनुमोदन करता है।

७. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अंगादाणं सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलेज्ज वा पधोएज्ज वा, उच्छोलेंतं वा पधोएंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया अंगादानं शीतोदकविकृतेन वा उष्णोदक-विकृतेन वा उत्क्षालयेद् वा प्रधावेद् वा, उत्क्षालयन्तं वा प्रधावन्तं वा स्वदते।

७. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से अंगादान का प्रासुक शीतल जल से अथवा प्रासुक उष्ण जल से उत्क्षालन करता है अथवा प्रधावन करता है और उत्क्षालन अथवा प्रधावन करने वाले का अनुमोदन करता है।

८. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अंगादाणं णिच्छल्लेति, णिच्छल्लेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया अंगादानं 'णिच्छल्लेति', 'णिच्छल्लेंतं' वा स्वदते।

८. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से अंगादान का निश्छलन करता है अथवा निश्छलन करने वाले का अनुमोदन करता है।

९. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अंगादाणं जिंघति, जिंघंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया अंगादानं जिघ्रति, जिघ्रन्तं वा स्वदते।

९. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से अंगादान को सूंघता है अथवा सूंघने वाले का अनुमोदन करता है।

१०. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अंगादाणं अण्णयरंसि अचित्तंसि सोयंसि अणुपवेसेत्ता सुक्कपोग्गले णिग्घायति, णिग्घायंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया अंगादानम् अन्यतरस्मिन् अचित्ते स्रोतसि अनुप्रवेश्य शुक्रपुद्गलान् निर्घातयति, निर्घातयन्तं वा स्वदते।

१०. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से अंगादान को अचित्त स्रोत में प्रविष्ट कर शुक्र पुद्गलों को निकालता है अथवा निकालने वाले का अनुमोदन करता है।[४]

अवाउडि-पदं

अप्रावृता-पदम्

अप्रावृत-पद

११. जे भिक्खू माउग्गामं मेहुण-वडियाए अवाउडिं सयं कुज्जा, सयं बूया वा, करेंतं वा वयंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः मातृग्रामं मैथुनप्रतिज्ञया अप्रावृतां स्वयं कुर्याद्, स्वयं ब्रूयाद् वा, कुर्वन्तं वा वदन्तं वा स्वदते।

११. जो भिक्षु अब्रह्म-सेवन के संकल्प से मातृग्राम को स्वयं अप्रावृत (वस्त्ररहित) करता है अथवा स्वयं अप्रावृत होने का कहता है और करने अथवा कहने वाले का अनुमोदन करता है।

कामकलह-पदं

१२. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए कलहं कुज्जा, कलहं बूया, कलह-वडियाए गच्छति, गच्छंतं वा सातिज्जति।।

कामकलह-पदम्

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया कलहं कुर्यात्, कलहं ब्रूयात्, कलहप्रतिज्ञया गच्छति, गच्छन्तं वा स्वदते।

कामकलह-पद

१२. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से कलह करता है, कलह करने को कहता है, कलह देखने की प्रतिज्ञा से जाता है अथवा जाने वाले का अनुमोदन करता है।[५]

लेह-पदं

१३. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए लेहं लिहति, लेहं लिहावेति, लेह-वडियाए वा गच्छति, गच्छंतं वा सातिज्जति।।

लेख-पदम्

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया लेखं लिखति, लेखं लेखयति, लेखप्रतिज्ञया वा गच्छति, गच्छन्तं वा स्वदते।

लेख-पद

१३. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से लेख लिखता है, लेख लिखवाता है, लेख लिखने के संकल्प से अन्यत्र जाता है अथवा जाने वाले का अनुमोदन करता है।[६]

पोसंतपिट्ठंत-पदं

१४. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए पोसंतं वा पिट्ठंतं वा भल्लायएण उप्पाएति, उप्पाएंतं वा सातिज्जति।।

पोषान्त-पृष्ठान्त-पदम्

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया पोषान्तं वा पृष्ठान्तं वा भल्लातकेन उत्पाचयति, उत्पाचयन्तं वा स्वदते।

पोषान्त-पृष्ठान्त-पद

१४. जो भिक्षु अब्रह्म-सेवन के संकल्प से स्त्री की योनि अथवा अपानद्वार को भिलावा से उत्पक्व बनाता है अथवा उत्पक्व बनाने वाले का अनुमोदन करता है।

१५. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए पोसंतं वा पिट्ठंतं वा भल्लायएण उप्पाएत्ता सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलेज्ज वा पधोएज्ज वा, उच्छोलेंतं वा पधोएंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया पोषान्तं वा पृष्ठान्तं वा भल्लातकेन उत्पाच्य शीतोदकविकृतेन वा उष्णोदक-विकृतेन वा उत्क्षालयेद् वा प्रधावेद् वा, उत्क्षालयन्तं वा प्रधावन्तं वा स्वदते।

१५. जो भिक्षु अब्रह्म-सेवन के संकल्प से स्त्री की योनि अथवा अपानद्वार को भिलावा से उत्पक्व बना कर, प्रासुक शीतल जल अथवा प्रासुक उष्ण जल से उसका उत्क्षालन करता है अथवा प्रधावन करता है और उत्क्षालन अथवा प्रधावन करने वाले का अनुमोदन करता है।

१६. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए पोसंतं वा पिट्ठंतं वा भल्लायएण उप्पाएत्ता सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलेत्ता वा पधोएत्ता वा अण्णयरेणं आलेवणजाएणं आलिंपेज्ज वा विलिंपेज्ज वा, आलिंपेंतं वा विलिंपेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया पोषान्तं वा पृष्ठान्तं वा भल्लातकेन उत्पाच्य शीतोदकविकृतेन वा उष्णोदक-विकृतेन वा उत्क्षाल्य वा प्रधाव्य वा अन्यतरेण आलेपनजातेन आलिम्पेद् वा विलिम्पेद् वा, आलिम्पन्तं वा विलिम्पन्तं वा स्वदते।

१६. जो भिक्षु अब्रह्म-सेवन के संकल्प से स्त्री की योनि अथवा अपानद्वार को भिलावा से उत्पक्व बना कर, प्रासुक शीतल जल अथवा प्रासुक उष्ण जल से उत्क्षालन अथवा प्रधावन कर किसी आलेपनजात से उसका आलेपन करता है अथवा विलेपन करता है और आलेपन अथवा विलेपन करने वाले का अनुमोदन करता है।

१७. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए पोसंतं वा पिट्ठंतं वा भल्लायएण उप्पाएत्ता सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलेत्ता वा पधोएत्ता वा अण्णयरेणं आलेवणजाएणं आलिंपेत्ता वा विलिंपेत्ता वा तेल्लेण वा घएण वा वसाए वा णवणीएण वा अब्भंगेज्ज वा मक्खेज्ज वा, अब्भंगेंतं वा मक्खेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया पोषान्तं वा पृष्ठान्तं वा भल्लातकेन उत्पाच्य शीतोदकविकृतेन वा उष्णोदक-विकृतेन वा उत्क्षाल्य वा प्रधाव्य वा अन्यतरेण आलेपनजातेन आलिप्य वा विलिप्य वा तैलेन वा घृतेन वा वसया वा नवनीतेन वा अभ्यञ्ज्याद् वा म्रक्षेद् वा, अभ्यञ्जन्तं वा म्रक्षन्तं वा स्वदते।

१७. जो भिक्षु अब्रह्म-सेवन के संकल्प से स्त्री की योनि अथवा अपानद्वार को भिलावा से उत्पक्व बना कर प्रासुक शीतल जल अथवा प्रासुक उष्ण जल से उत्क्षालन अथवा प्रधावन कर, किसी आलेपनजात से आलेपन अथवा विलेपन कर, तैल, घृत, वसा अथवा मक्खन से उसका अभ्यंगन करता है अथवा म्रक्षण करता है और अभ्यंगन अथवा म्रक्षण करने वाले का अनुमोदन करता है।

१८. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए पोसंतं वा पिट्ठंतं वा भल्लायएण उप्पाएत्ता सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलेत्ता वा पधोएत्ता वा अण्णयरेणं आलेवणजाएणं आलिंपेत्ता वा विलिंपेत्ता वा तेल्लेण वा घएण वा वसाए वा णवणीएण वा अब्भंगेत्ता वा मक्खेत्ता वा अण्णयरेणं धूवणजाएणं धूवेज्ज वा पधूवेज्ज वा, धूवेंतं वा पधूवेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया पोषान्तं वा पृष्ठान्तं वा भल्लातकेन उत्पाच्य शीतोदकविकृतेन वा उष्णोदक-विकृतेन वा उत्क्षाल्य वा प्रधाव्य वा अन्यतरेण आलेपनजातेन आलिप्य वा विलिप्य वा तैलेन वा घृतेन वा वसया वा नवनीतेन वा अभ्यज्य वा म्रक्षित्वा वा अन्यतरेण धूपनजातेन धूपायेद् वा प्रधूपायेद् वा, धूपायन्तं वा प्रधूपायन्तं वा स्वदते।

१८. जो भिक्षु अब्रह्म-सेवन के संकल्प से स्त्री की योनि अथवा अपानद्वार को भिलावा से उत्पक्व बना कर प्रासुक शीतल जल अथवा प्रासुक उष्ण जल से उत्क्षालन अथवा प्रधावन कर, किसी आलेपनजात से आलेपन अथवा विलेपन कर, तैल, घृत, वसा अथवा मक्खन से अभ्यंगन अथवा म्रक्षण कर, उसे किसी धूपजात से धूपित करता है अथवा प्रधूपित करता है और धूपित अथवा प्रधूपित करने वाले का अनुमोदन करता है।[७]

वत्थ-पदं

वस्त्र-पदम्

वस्त्र-पद

१९. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए कसिणाइं वत्थाइं धरेति, धरेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया कृत्स्नानि वस्त्राणि धरति, धरन्तं वा स्वदते।

१९. जो भिक्षु अब्रह्म-सेवन के संकल्प से स्त्री को देने के लिए कृत्स्न वस्त्रों का धारण करता है अथवा धारण करने वाले का अनुमोदन करता है।

२०. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अहयाइं वत्थाइं धरेति, धरेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया अहतानि वस्त्राणि धरति, धरन्तं वा स्वदते।

२०. जो भिक्षु अब्रह्म-सेवन के संकल्प से स्त्री को देने के लिए अहत (अखण्ड/खंजन आदि से अलिप्त) वस्त्रों को धारण करता है अथवा धारण करने वाले का अनुमोदन करता है

२१. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए धोय-रत्ताइं वत्थाइं धरेति,

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया धौतरक्तानि वस्त्राणि धरति, धरन्तं वा

२१. जो भिक्षु अब्रह्म-सेवन के संकल्प से स्त्री को देने के लिए धोए हुए और रंगे हुए वस्त्रों

धरेंतं वा सातिज्जति ।।

स्वदते।

का धारण करता है अथवा धारण करने वाले का अनुमोदन करता है।

२२. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए मलिणाइं वत्थाइं धरेति, धरेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया मलिनानि वस्त्राणि धरति, धरन्तं वा स्वदते।

२२. जो भिक्षु अब्रह्म-सेवन के संकल्प से स्त्री को आकृष्ट करने के लिए मलिन वस्त्रों को धारण करता है अथवा धारण करने वाले का अनुमोदन करता है।

२३. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए चित्ताइं वत्थाइं धरेति, धरेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया चित्राणि वस्त्राणि धरति, धरन्तं वा स्वदते।

२३. जो भिक्षु अब्रह्म-सेवन के संकल्प से स्त्री को देने के लिए रंगीन वस्त्रों को धारण करता है अथवा धारण करने वाले का अनुमोदन करता है।

२४. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए विचित्ताइं वत्थाइं धरेति, धरेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया विचित्राणि वस्त्राणि धरति, धरन्तं वा स्वदते।

२४. जो भिक्षु अब्रह्म-सेवन के संकल्प से स्त्री को देने के लिए रंग-बिरंगे वस्त्रों को धारण करता है अथवा धारण करने वाले का अनुमोदन करता है।[८]

पाय-परिकम्म-पदं

पादपरिकर्म-पदम्

पादपरिकर्म-पद

२५. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अप्पणो पाए आमज्जेज्ज वा पमज्जेज्ज वा, आमज्जंतं वा पमज्जंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया आत्मनः पादौ आमृज्याद् वा प्रमृज्याद् वा, आमार्जन्तं वा प्रमार्जन्तं वा स्वदते।

२५. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से अपने पैरों का आमार्जन करता है अथवा प्रमार्जन करता है और आमार्जन अथवा प्रमार्जन करने वाले का अनुमोदन करता है।

२६. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अप्पणो पाए संवाहेज्ज वा पलिमद्देज्ज वा, संवाहेंतं वा पलिमद्देंतं वा सातिज्जति ।।

यो ।भक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया आत्मनः पादौ संवाहयेद् वा परिमर्दयेद् वा, संवाहयन्तं वा परिमर्दयन्तं वा स्वदते।

२६. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से अपने पैरों का संबाधन करता है अथवा परिमर्दन करता है और संबाधन अथवा परिमर्दन करने वाले का अनुमोदन करता है।

२७. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अप्पणो पाए तेल्लेण वा घएण वा वसाए वा णवणीएण वा अब्भंगेज्ज वा मक्खेज्ज वा, अब्भंगेंतं वा मक्खेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया आत्मनः पादौ तैलेन वा घृतेन वा वसया वा नवनीतेन वा अभ्यञ्ज्याद् वा म्रक्षेद् वा, अभ्यञ्जन्तं वा म्रक्षन्तं वा स्वदते।

२७. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित अब्रह्म-सेवन के संकल्प से अपने पैरों का तैल, घृत, वसा अथवा मक्खन से अभ्यंगन करता है अथवा म्रक्षण करता है और अभ्यंगन अथवा म्रक्षण करने वाले का अनुमोदन करता है।

२८. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अप्पणो पाए लोद्धेण वा कक्केण वा चुण्णेण वा वण्णेण वा उल्लोलेज्ज वा उव्वट्टेज्ज वा, उल्लोलेंतं वा उव्वट्टेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया आत्मनः पादौ लोध्रेण वा कल्केन वा चूर्णेन वा वर्णेन वा उल्लोलयेद् वा उद्वर्तेत वा, उल्लोलयन्तं वा उद्वर्तमानं वा स्वदते।

२८. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से अपने पैरों पर लोध, कल्क, चूर्ण अथवा वर्ण का लेप करता है अथवा उद्वर्तन करता है और लेप अथवा उद्वर्तन करने वाले का अनुमोदन करता है।

२९. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अप्पणो पाए सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलेज्ज वा पधोएज्ज वा, उच्छोलेंतं वा पधोएंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया आत्मनः पादौ शीतोदकविकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन वा उत्क्षालयेद् वा प्रधावेद् वा, उत्क्षालयन्तं वा प्रधावन्तं वा स्वदते।

२९. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से अपने पैरों का प्रासुक शीतल जल अथवा प्रासुक उष्ण जल से उत्क्षालन करता है अथवा प्रधावन करता है और उत्क्षालन अथवा प्रधावन करने वाले का अनुमोदन करता है।

३०. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अप्पणो पाए फुमेज्ज वा रएज्ज वा, फुमेंतं वा रएंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया आत्मनः पादौ 'फुमेज्ज' (फूत्कुर्याद्) वा रजेद् वा, 'फुमेंतं' (फूत्कुर्वन्तं) वा रजन्तं वा स्वदते।

३०. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से अपने पैरों पर फूंक देता है अथवा रंग लगाता है और फूंक देने अथवा रंग लगाने वाले का अनुमोदन करता है।

काय-परिकम्म-पदं

कायपरिकर्म-पदम्

कायपरिकर्म-पद

३१. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अप्पणो कायं आमज्जेज्ज वा पमज्जेज्ज वा, आमज्जंतं वा पमज्जंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया आत्मनः कायम् आमृज्याद् वा प्रमृज्याद् वा, आमार्जन्तं वा प्रमार्जन्तं वा स्वदते।

३१. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से अपने शरीर का आमार्जन करता है अथवा प्रमार्जन करता है और आमार्जन अथवा प्रमार्जन करने वाले का अनुमोदन करता है।

३२. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अप्पणो कायं संवाहेज्जा वा पलिमद्देज्ज वा, संवाहेंतं वा पलिमद्देंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया आत्मनः कायं संवाहयेद् वा परिमर्दयेद् वा, संवाहयन्तं वा परिमर्दयन्तं वा स्वदते।

३२. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से अपने शरीर का संबाधन करता है अथवा परिमर्दन करता है और संबाधन अथवा परिमर्दन करने वाले का अनुमोदन करता है।

३३. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अप्पणो कायं तेल्लेण वा घएण वा वसाए वा णवणीएण वा अब्भंगेज्ज वा मक्खेज्ज वा, अब्भंगेंतं वा मक्खेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया आत्मनः कायं तैलेन वा घृतेन वा वसया वा नवनीतेन वा अभ्यञ्ज्याद् वा म्रक्षेद् वा, अभ्यञ्जन्तं वा म्रक्षन्तं वा स्वदते।

३३. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से अपने शरीर का तैल, घृत, वसा अथवा मक्खन से अभ्यंगन करता है अथवा म्रक्षण करता है और अभ्यंगन अथवा म्रक्षण करने वाले का अनुमोदन करता है।

३४. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अप्पणो कायं लोद्धेण वा कक्केण वा चुण्णेण वा वण्णेण वा उल्लोलेज्ज वा उव्वट्टेज्ज वा, उल्लोलेंतं वा उव्वट्टेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया आत्मनः कायं लोध्रेण वा कल्केन वा चूर्णेन वा वर्णेन वा उल्लोलयेद् वा उद्वर्तेत वा, उल्लोलयन्तं वा उद्वर्तमानं वा स्वदते।

३४. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से अपने शरीर पर लोध, कल्क, चूर्ण अथवा वर्ण का लेप करता है अथवा उद्वर्तन करता है और लेप अथवा उद्वर्तन करने वाले का अनुमोदन करता है।

३५. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अप्पणो कायं सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलेज्ज वा पधोएज्ज वा, उच्छोलेंतं वा पधोएंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया आत्मनः कायं शीतोदकविकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन वा उत्क्षालयेद् वा प्रधावेद् वा, उत्क्षालयन्तं वा प्रधावन्तं वा स्वदते।

३५. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से अपने शरीर का प्रासुक शीतल जल अथवा प्रासुक उष्ण जल से उत्क्षालन करता है अथवा प्रधावन करता है और उत्क्षालन अथवा प्रधावन करने वाले का अनुमोदन करता है।

३६. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अप्पणो कायं फुमेज्ज वा रएज्ज वा, फुमेंतं वा रएंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया आत्मनः कायं 'फुमेज्ज' (फूत्कुर्याद्) वा रजेद् वा, 'फुमेंतं' (फूत्कुर्वन्तं) वा रजन्तं वा स्वदते।

३६. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से अपने शरीर पर फूंक देता है अथवा रंग लगाता है और फूंक देने अथवा रंग लगाने वाले का अनुमोदन करता है।

वण-परिकम्म-पदं

व्रणपरिकर्म-पदम्

व्रणपरिकर्म-पद

३७. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अप्पणो कायंसि वणं आमज्जेज्ज वा पमज्जेज्ज वा, आमज्जंतं वा पमज्जंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया आत्मनः काये व्रणम् आमृज्याद् वा प्रमृज्याद् वा, आमार्जन्तं वा प्रमार्जन्तं वा स्वदते।

३७. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से अपने शरीर पर हुए व्रण का आमार्जन करता है अथवा प्रमार्जन करता है और आमार्जन अथवा प्रमार्जन करने वाले का अनुमोदन करता है।

३८. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अप्पणो कायंसि वणं संवाहेज्ज वा पलिमद्देज्ज वा, संवाहेंतं वा पलिमद्देंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया आत्मनः काये व्रणं संवाहयेद् वा परिमर्दयेद् वा, संवाहयन्तं वा परिमर्दयन्तं वा स्वदते।

३८. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से अपने शरीर पर हुए व्रण का संबाधन करता है अथवा परिमर्दन करता है और संबाधन अथवा परिमर्दन करने वाले का अनुमोदन करता है।

३९. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अप्पणो कायंसि वणं तेल्लेण वा घएण वा वसाए वा णवणीएण वा अब्भंगेज्ज वा मक्खेज्ज वा, अब्भंगेंतं वा मक्खेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया आत्मनः काये व्रणं तैलेन वा घृतेन वा वसया वा नवनीतेन वा अभ्यञ्ज्याद् वा म्रक्षेद् वा, अभ्यञ्जन्तं वा म्रक्षन्तं वा स्वदते।

३९. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से अपने शरीर पर हुए व्रण का तैल, घृत, वसा अथवा मक्खन से अभ्यंगन करता है अथवा म्रक्षण करता है और अभ्यंगन अथवा म्रक्षण करने वाले का अनुमोदन करता है।

४०. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अप्पणो कायंसि वणं लोद्धेण वा कक्केण वा चुण्णेण वा वण्णेण वा उल्लोलेज्ज वा उव्वट्टेज्ज वा, उल्लोलेंतं वा उव्वट्टेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया आत्मनः काये व्रणं लोध्रेण वा कल्केन वा चूर्णेन वा वर्णेन वा उल्लोलयेद् वा उद्वर्तेत वा, उल्लोलयन्तं वा उद्वर्तमानं वा स्वदते।

४०. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से अपने शरीर पर हुए व्रण पर लोध, कल्क, चूर्ण अथवा वर्ण का लेप करता है अथवा उद्वर्तन करता है और लेप अथवा उद्वर्तन करने वाले का अनुमोदन करता है।

४१. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अप्पणो कायंसि वणं सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलेज्ज वा पधोएज्जा वा, उच्छोलेंतं वा पधोएंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षु मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया आत्मनः काये व्रणं शीतोदकविकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन वा उत्क्षालयेद् वा प्रधावेद् वा, उत्क्षालयन्तं वा प्रधावन्तं वा स्वदते।

४१. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से अपने शरीर पर हुए व्रण का प्रासुक शीतल जल अथवा प्रासुक उष्ण जल से उत्क्षालन करता है अथवा प्रधावन करता है और उत्क्षालन अथवा प्रधावन करने वाले का अनुमोदन करता है।

४२. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अप्पणो कायंसि वणं फुमेज्ज वा रएज्ज वा, फुमेंतं वा रएंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षु मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया आत्मनः काये व्रणं 'फुमेज्ज' (फूत्कुर्याद्) वा रजेद् वा, 'फुमेंतं' (फूत्कुर्वन्तं) वा रजन्तं वा स्वदते।

४२. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से अपने शरीर पर हुए व्रण पर फूंक देता है अथवा रंग लगाता है और फूंक देने अथवा रंग लगाने वाले का अनुमोदन करता है।

गंडादि-परिकम्म-पदं

गंडादिपरिकर्म-पदम्

गंडादिपरिकर्म-पद

४३. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अप्पणो कायंसि गंडं वा पिडयं वा अरइयं वा असियं वा भगंदलं वा अण्णयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं अच्छिंदेज्ज वा विच्छिंदेज्ज वा, अच्छिंदेंतं वा विच्छिंदेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया आत्मनः काये गण्डं वा पिटकं वा अरतिकां वा अर्शो वा भगन्दरं वा अन्यतरेण तीक्ष्णेन शस्त्रजातेन आच्छिन्द्याद् वा विच्छिन्द्याद् वा, आच्छिन्दन्तं वा विच्छिन्दन्तं वा स्वदते।

४३. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से अपने शरीर में हुए गंडमाल, फोड़ा, फुंसी, अर्श अथवा भगन्दर का किसी तीक्ष्ण शस्त्रजात से आच्छेदन करता है अथवा विच्छेदन करता है और आच्छेदन अथवा विच्छेदन करने वाले का अनुमोदन करता है

४४. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अप्पणो कायंसि गंडं वा पिडयं वा अरइयं वा असियं वा भगंदलं वा अण्णयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं अच्छिंदित्ता वा विच्छिंदित्ता वा पूयं वा सोणियं वा णीहरेज्ज वा विसोहेज्ज वा, णीहरेंतं वा विसोहेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया आत्मनः काये गण्डं वा पिटकं वा अरतिकां वा अर्शो वा भगन्दरं वा अन्यतरेण तीक्ष्णेन शस्त्रजातेन आच्छिद्य वा विच्छिद्य वा पूयं वा शोणितं वा निस्सरेद् वा विशोधयेद् वा, निस्सरन्तं वा विशोधयन्तं वा स्वदते।

४४. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से अपने शरीर में हुए गंडमाल, फोड़ा, फुंसी, अर्श अथवा भगन्दर का किसी तीक्ष्ण शस्त्रजात से आच्छेदन अथवा विच्छेदन कर पीव अथवा रक्त को निकालता है अथवा साफ करता है और निकालने अथवा साफ करने वाले का अनुमोदन करता है।

४५. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अप्पणो कायंसि गंडं वा पिडयं वा अरइयं वा असियं वा भगंदलं वा अण्णयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं अच्छिंदित्ता वा विच्छिंदित्ता वा पूयं वा सोणियं वा णीहरित्ता वा विसोहेत्ता वा सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलेज्ज वा पधोएज्ज वा, उच्छोलेंतं वा पधोएंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षु मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया आत्मनः काये गण्डं वा पिटकं वा अरतिकां वा अर्शो वा भगन्दरं वा अन्यतरेण तीक्ष्णेन शस्त्रजातेन आच्छिद्य वा विच्छिद्य वा पूयं वा शोणितं वा निस्सृत्य वा विशोध्य वा शीतोदकविकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन वा उत्क्षालयेद् वा प्रधावेद् वा, उत्क्षालयन्तं वा प्रधावन्तं वा स्वदते।

४५. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से अपने शरीर में हुए गंडमाल, फोड़ा, फुंसी, अर्श अथवा भगन्दर किसी तीक्ष्ण शस्त्रजात से आच्छेदन अथवा विच्छेदन कर, पीव अथवा रक्त को निकाल कर अथवा साफ कर, उसका प्रासुक शीतल जल अथवा प्रासुक उष्ण जल से उत्क्षालन करता है अथवा प्रधावन करता है और उत्क्षालन अथवा प्रधावन करने वाले का अनुमोदन करता है।

४६. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अप्पणो कायंसि गंडं वा पिडयं वा अरइयं वा असियं वा भगं-दलं वा अण्णयरेणं तिक्खेणं सत्थ-जाएणं अच्छिंदित्ता वा विच्छिंदित्ता वा पूयं वा सोणियं वा णीहरित्ता वा विसोहेत्ता वा सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलेत्ता वा पधोएत्ता वा अण्णयरेणं आलेवणजाएणं आलिंपेज्ज वा विलिंपेज्ज वा, आलिंपेंतं वा विलिंपेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षु मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया आत्मनः काये गण्डं वा पिटकं वा अरतिकां वा अर्शो वा भगन्दरं वा अन्यतरेण तीक्ष्णेन शस्त्रजातेन आच्छिद्य वा विच्छिद्य वा पूयं वा शोणितं वा निस्सृत्य वा विशोध्य वा शीतोदकविकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन वा उत्क्षाल्य वा प्रधाव्य वा अन्यतरेण आलेपनजातेन आलिम्पेद् वा विलिम्पेद् वा, आलिम्पन्तं वा विलिम्पन्तं वा स्वदते।

४६. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से अपने शरीर में हुए गंडमाल, फोड़ा, फुंसी, अर्श अथवा भगन्दर का किसी तीक्ष्ण शस्त्रजात से आच्छेदन अथवा विच्छेदन कर, पीव अथवा रक्त को निकाल कर अथवा साफ कर, प्रासुक शीतल जल अथवा प्रासुक उष्ण जल से उत्क्षालन अथवा प्रधावन कर, उस पर किसी आलेपनजात से आलेपन करता है अथवा विलेपन करता है और आलेपन अथवा विलेपन करने वाले का अनुमोदन करता है।

४७. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अप्पणो कायंसि गंडं वा पिडयं वा अरइयं वा असियं वा भगंदलं वा अण्णयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं अच्छिंदित्ता वा विच्छिंदित्ता वा पूयं वा सोणियं वा णीहरित्ता वा विसोहेत्ता वा सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलेत्ता वा पधोएत्ता वा अण्णयरेणं आलेवणजाएणं आलिंपेत्ता वा विलिंपेत्ता वा तेल्लेण वा घएण वा वसाए वा णवणीएण वा अब्भंगेज्ज वा मक्खेज्ज वा, अब्भंगेंतं वा मक्खेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया आत्मनः काये गण्डं वा पिटकं वा अरतिकां वा अर्शो वा भगन्दरं वा अन्यतरेण तीक्ष्णेन शस्त्रजातेन आच्छिद्य वा विच्छिद्य वा पूयं वा शोणितं वा निस्सृत्य वा विशोध्य वा शीतोदकविकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन वा उत्क्षाल्य वा प्रधाव्य वा अन्यतरेण आलेपनजातेन आलिप्य वा विलिप्य वा तैलेन वा घृतेन वा वसया वा नवनीतेन वा अभ्यञ्ज्याद् वा म्रक्षेद् वा, अभ्यञ्जन्तं वा म्रक्षन्तं वा स्वदते।

४७. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से अपने शरीर में हुए गंडमाल, फोड़ा, फुंसी, अर्श अथवा भगन्दर का किसी तीक्ष्ण शस्त्रजात से आच्छेदन अथवा विच्छेदन कर, पीव अथवा रक्त को निकाल कर अथवा साफ कर, प्रासुक शीतल जल अथवा प्रासुक उष्ण जल से उत्क्षालन अथवा प्रधावन कर, उस पर किसी आलेपनजात से आलेपन अथवा विलेपन कर, उसका तैल, घृत, वसा अथवा मक्खन से अभ्यंगन करता है अथवा म्रक्षण करता है और अभ्यंगन अथवा म्रक्षण करने वाले का अनुमोदन करता है।

४८. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अप्पणो कायंसि गंडं वा पिडयं वा अरइयं वा असियं वा भगंदलं वा अण्णयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं अच्छिंदित्ता वा विच्छिंदित्ता वा पूयं वा सोणियं वा णीहरित्ता वा विसोहेत्ता वा सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलेत्ता वा पधोएत्ता वा अण्णयरेणं आलेवणजाएणं आलिंपेत्ता वा विलिंपेत्ता वा तेल्लेण वा घएण वा वसाए वा णवणीएण वा अब्भंगेत्ता वा मक्खेत्ता वा अण्णयरेणं धूवण-जाएणं धूवेज्ज वा पधूवेज्ज वा, धूवेंतं वा पधूवेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया आत्मनः काये गण्डं वा पिटकं वा अरतिकां वा अर्शो वा भगन्दरं वा अन्यतरेण तीक्ष्णेन शस्त्रजातेन आच्छिद्य वा विच्छिद्य वा पूयं वा शोणितं वा निस्सृत्य वा विशोध्य वा शीतोदकविकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन वा उत्क्षाल्य वा प्रधाव्य वा अन्यतरेण आलेपनजातेन आलिप्य वा विलिप्य वा तैलेन वा घृतेन वा वसया वा नवनीतेन वा अभ्यज्य वा म्रक्षित्वा वा अन्यतरेण धूपनजातेन धूपायेद् वा प्रधूपायेद् वा, धूपायन्तं वा प्रधूपायन्तं वा स्वदते ।

४८. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से अपने शरीर में हुए गंडमाल, फोड़ा, फुंसी, अर्श अथवा भगन्दर का किसी तीक्ष्ण शस्त्रजात से आच्छेदन अथवा विच्छेदन कर, पीव अथवा रक्त को निकाल कर अथवा साफ कर, प्रासुक शीतल जल अथवा प्रासुक उष्ण जल से उत्क्षालन अथवा प्रधावन कर, उस पर किसी आलेपनजात से आलेपन अथवा विलेपन कर, तैल, घृत, वसा अथवा मक्खन से अभ्यंगन अथवा म्रक्षण कर उसे किसी धूपजात से धूपित करता है अथवा प्रधूपित करता है और धूपित अथवा प्रधूपित करने वाले का अनुमोदन करता है।

किमि-पदं

४९. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अप्पणो पालुकिमियं वा कुच्छिकिमियं वा अंगुलीए णिवेसिय-णिवेसिय णीहरेति, णीहरेंतं वा सातिज्जति ।।

कृमि-पदम्

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया आत्मनः पायुकृमिकं वा कुक्षिकृमिकं वा अंगुल्या निवेश्य-निवेश्य निस्सरति, निस्सरन्तं वा स्वदते ।

कृमि-पद

४९. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से अपने अपान के कृमि और कुक्षि के कृमि को अंगुली डाल-डाल कर निकालता है अथवा निकालने वाले का अनुमोदन करता है।

णह-सिहा-पदं

५०. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अप्पणो दीहाओ णह-सिहाओ कप्पेज्ज वा संठवेज्ज वा, कप्पेंतं वा संठवेंतं वा सातिज्जति ।

नखशिखा-पदम्

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया आत्मनः दीर्घाः नखशिखाः कल्पेत वा संस्थापयेद् वा, कल्पमानं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते ।

नखशिखा-पद

५०. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से अपनी दीर्घ नखशिखा को काटता है अथवा व्यवस्थित करता है और काटने अथवा व्यवस्थित करने वाले का अनुमोदन करता है।

दीह-रोम-पदं

५१. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अप्पणो दीहाइं जंघ-रोमाइं कप्पेज्ज वा संठवेज्ज वा, कप्पेंतं वा संठवेंतं वा सातिज्जति ।

दीर्घरोम-पदम्

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया आत्मनः दीर्घाणि जंघारोमाणि कल्पेत वा संस्थापयेद् वा, कल्पमानं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते ।

दीर्घरोम-पद

५१. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से अपनी जंघाप्रदेश की दीर्घ रोमराजि को काटता है अथवा व्यवस्थित करता है और काटने अथवा व्यवस्थित करने वाले का अनुमोदन करता है।

५२. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अप्पणो दीहाइं वत्थि-रोमाइं कप्पेज्ज वा संठवेज्ज वा, कप्पेंतं वा संठवेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया आत्मनः दीर्घाणि वस्तिरोमाणि कल्पेत वा संस्थापयेद् वा, कल्पमानं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते।

५२. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से अपने वस्तिप्रदेश की दीर्घ रोमराजि को काटता है अथवा व्यवस्थित करता है और काटने अथवा व्यवस्थित करने वाले का अनुमोदन करता है।

५३. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अप्पणो दीह-रोमाइं कप्पेज्ज वा संठवेज्ज वा, कप्पेंतं वा संठवेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया आत्मनः दीर्घरोमाणि कल्पेत वा संस्थापयेद् वा, कल्पमानं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते।

५३. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से अपनी दीर्घ रोमराजि को काटता है अथवा व्यवस्थित करता है और काटने अथवा व्यवस्थित करने वाले का अनुमोदन करता है।

५४. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अप्पणो दीहाइं कक्खाण-रोमाइं कप्पेज्ज वा संठवेज्ज वा, कप्पेंतं वा संठवेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया आत्मनः दीर्घाणि कक्षारोमाणि कल्पेत वा संस्थापयेद् वा, कल्पमानं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते।

५४. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से अपनी कक्षाप्रदेश की दीर्घ रोमराजि को काटता है अथवा व्यवस्थित करता है और काटने अथवा व्यवस्थित करने वाले का अनुमोदन करता है।

५५. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अप्पणो दीहाइं मंसु-रोमाइं कप्पेज्ज वा संठवेज्ज वा, कप्पेंतं वा संठवेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया आत्मनः दीर्घाणि श्मश्रुरोमाणि कल्पेत वा संस्थापयेद् वा, कल्पमानं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते।

५५. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से अपनी श्मश्रु की दीर्घ रोमराजि को काटता है अथवा व्यवस्थित करता है और काटने अथवा व्यवस्थित करने वाले का अनुमोदन करता है।

दंत-पदं

दन्त-पदम्

दंत-पद

५६. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अप्पणो दंते आघंसेज्ज वा पघंसेज्ज वा, आघंसंतं वा पघंसंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया आत्मनः दन्तान् आघर्षेद् वा प्रघर्षेद् वा, आघर्षन्तं वा प्रघर्षन्तं वा स्वदते।

५६. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से अपने दांतों का आघर्षण करता है अथवा प्रघर्षण करता है और आघर्षण अथवा प्रघर्षण करने वाले का अनुमोदन करता है।

५७. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अप्पणो दंते उच्छोलेज्ज वा पधोएज्ज वा, उच्छोलेंतं वा पधोएंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया आत्मनः दन्तान् उत्क्षालयेद् वा प्रधावेद् वा, उत्क्षालयन्तं वा प्रधावन्तं वा स्वदते।

५७. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन से संकल्प से अपने दांतों का उत्क्षालन करता है अथवा प्रधावन करता है और उत्क्षालन अथवा प्रधावन करने वाले का अनुमोदन करता है।

५८. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अप्पणो दंते फुमेज्ज वा रएज्ज वा, फुमेंतं वा रएंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया आत्मनः दन्तान् 'फुमेज्ज' (फूत्कुर्याद्) वा रजेद् वा, 'फुमेंतं' (फूत्कुर्वन्तं) वा रजन्तं वा स्वदते।

५८. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से अपने दांतों पर फूंक देता है अथवा रंग लगाता है और फूंक देने अथवा रंग लगाने वाले का अनुमोदन करता है।

उट्ठ-पदं

ओष्ठ-पदम्

ओष्ठ-पद

५९. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अप्पणो उट्ठे आमज्जेज्ज वा पमज्जेज्ज वा, आमज्जंतं वा पमज्जंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया आत्मनः ओष्ठौ आमृज्याद् वा प्रमृज्याद् वा, आमार्जन्तं वा प्रमार्जन्तं वा स्वदते।

५९. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से अपने ओष्ठ का आमार्जन करता है अथवा प्रमार्जन करता है और आमार्जन अथवा प्रमार्जन करने वाले का अनुमोदन करता है।

६०. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अप्पणो उट्ठे संवाहेज्ज वा पलिमद्देज्ज वा, संवाहेंतं वा पलिमद्देंतं वा सतिज्जति।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया आत्मनः ओष्ठौ संवाहयेद् वा परिमर्दयेद् वा, संवाहयन्तं वा परिमर्दयन्तं वा स्वदते।

६०. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से अपने ओष्ठ का संबाधन करता है अथवा परिमर्दन करता है और संबाधन अथवा परिमर्दन करने वाले का अनुमोदन करता है।

६१. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अप्पणो उट्ठे तेल्लेण वा घएण वा वसाए वा णवणीएण वा अब्भंगेज्ज वा मक्खेज्ज वा, अब्भंगेंतं वा मक्खेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया आत्मनः ओष्ठौ तैलेन वा घृतेन वा वसया वा नवनीतेन वा अभ्यञ्ज्याद् वा म्रक्षेद् वा, अभ्यञ्जन्तं वा म्रक्षन्तं वा स्वदते।

६१. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से ओष्ठ का तैल, घृत, वसा अथवा मक्खन से अभ्यंगन करता है अथवा म्रक्षण करता है और अभ्यंगन अथवा म्रक्षण करने वाले का अनुमोदन करता है।

६२. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अप्पणो उट्ठे लोद्धेण वा कक्केण वा चुण्णेण वा वण्णेण वा उल्लोलेज्ज वा उव्वट्टेज्ज वा, उल्लोलेंतं वा उव्वट्टेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया आत्मनः ओष्ठौ लोध्रेण वा कल्केन वा चूर्णेन वा वर्णेन वा उल्लोलयेद् वा उद्वर्तेत वा, उल्लोलयन्तं वा उद्वर्तमानं वा स्वदते।

६२. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से अपने ओष्ठ पर लोध, कल्क, चूर्ण अथवा वर्ण का लेप करता है अथवा उद्वर्तन करता है और लेप अथवा उद्वर्तन करने वाले का अनुमोदन करता है।

६३. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अप्पणो उट्ठे सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलेज्ज वा पधोएज्ज वा, उच्छोलेंतं वा पधोएंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया आत्मनः ओष्ठौ शीतोदकविकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन वा उत्क्षालयेद् वा प्रधावेद् वा, उत्क्षालयन्तं वा प्रधावन्तं वा स्वदते।

६३. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से अपने ओष्ठ का प्रासुक शीतल जल से अथवा प्रासुक उष्ण जल से उत्क्षालन करता है अथवा प्रधावन करता है और उत्क्षालन अथवा प्रधावन करने वाले का अनुमोदन करता है।

६४. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अप्पणो उट्ठे फुमेज्ज वा रएज्ज वा, फुमेंतं वा रएंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया आत्मनः ओष्ठौ 'फुमेज्ज' (फूत्कुर्याद्) वा रजेद् वा, 'फुमेंतं' (फूत्कुर्वन्तं) वा रजन्तं वा स्वदते।

६४. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से अपने ओष्ठ पर फूंक देता है अथवा रंग लगाता है और फूंक देने अथवा रंग लगाने वाले का अनुमोदन करता है।

दीह-रोम-पदं

दीर्घरोम-पदम्

दीर्घरोम-पद

६५. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अप्पणो दीहाइं उत्तरोट्ठ-रोमाइं कप्पेज्ज वा संठवेज्ज वा, कप्पेंतं वा संठवेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया आत्मनः दीर्घाणि उत्तरौष्ठरोमाणि कल्पेत वा संस्थापयेद् वा, कल्पमानं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते।

६५. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से अपने उत्तरोष्ठ की दीर्घ रोमराजि को काटता है अथवा व्यवस्थित करता है और काटने अथवा व्यवस्थित करने वाले का अनुमोदन करता है।

६६. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अप्पणो दीहाइं णासा-रोमाइं कप्पेज्ज वा संठवेज्ज वा, कप्पेंतं वा संठवेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया आत्मनः दीर्घाणि नासारोमाणि कल्पेत वा संस्थापयेद् वा, कल्पमानं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते।

६६. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से अपनी नाक की दीर्घ रोमराजि को काटता है अथवा व्यवस्थित करता है और काटने अथवा व्यवस्थित करने वाले का अनुमोदन करता है।

अच्छि-पत्त-पदं

अक्षिपत्र-पदम्

अक्षिपत्र-पद

६७. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अप्पणो दीहाइं अच्छि-पत्ताइं कप्पेज्ज वा संठवेज्ज वा, कप्पेंतं वा संठवेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया दीर्घाणि अक्षिपत्राणि कल्पेत वा संस्थापयेद् वा, कल्पमानं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते।

६७. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन का संकल्प से अपने दीर्घ अक्षिपत्रों को काटता है अथवा व्यवस्थित करता है और काटने अथवा व्यवस्थित करने वाले का अनुमोदन करता है।

अच्छि-पदं

अक्षि-पदम्

अक्षि-पद

६८. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अप्पणो अच्छीणि आमज्जेज्ज वा पमज्जेज्ज वा, आमज्जंतं वा पमज्जंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया आत्मनः अक्षिणी आमृज्याद् वा प्रमृज्याद् वा, आमार्जन्तं वा प्रमार्जन्तं वा स्वदते।

६८. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से अपनी आंखों का आमार्जन करता है अथवा प्रमार्जन करता है और आमार्जन अथवा प्रमार्जन करने वाले का अनुमोदन करता है।

६९. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अप्पणो अच्छीणि संवाहेज्ज वा पलिमद्देज्ज वा,

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया आत्मनः अक्षिणी संवाहयेद् वा परिमर्दयेद् वा, संवाहयन्तं वा परिमर्दयन्तं वा स्वदते।

६९. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से संबाधन करता है अथवा परिमर्दन करता है और संबाधन

संवाहेंतं वा पलिमद्देंतं वा सातिज्जति।।

अथवा परिमर्दन करने वाले का अनुमोदन करता है।

७०. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अप्पणो अच्छीणि तेल्लेण वा घएण वा वसाए वा णवणीएण वा अब्भंगेज्ज वा मक्खेज्ज वा, अब्भंगेंतं वा मक्खेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया आत्मनः अक्षिणी तैलेन वा घृतेन वा वसया वा नवनीतेन वा अभ्यञ्ज्याद् वा म्रक्षेद् वा, अभ्यञ्जन्तं वा म्रक्षन्तं वा स्वदते।

७०. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से अपनी आंखों का तैल, घृत, वसा अथवा मक्खन से अभ्यंगन करता है अथवा म्रक्षण करता है और अभ्यंगन अथवा म्रक्षण करने वाले का अनुमोदन करता है।

७१. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अप्पणो अच्छीणि लोद्धेण वा कक्केण वा चुण्णेण वा वण्णेण वा उल्लोलेज्ज वा उव्वट्टेज्ज वा, उल्लोलेंतं वा उव्वट्टेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया आत्मनः अक्षिणी लोध्रेण वा कल्केन वा चूर्णेन वा वर्णेन वा उल्लोलयेद् वा उद्वर्तेत वा, उल्लोलयन्तं वा उद्वर्तमानं वा स्वदते।

७१. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से अपनी आंखों पर लोध, कल्क, चूर्ण अथवा वर्ण का लेप करता है अथवा उद्वर्तन करता है और लेप अथवा उद्वर्तन करने वाले का अनुमोदन करता है।

७२. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अप्पणो अच्छीणि सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलेज्ज वा पधोएज्ज वा, उच्छोलेंतं वा पधोएंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया आत्मनः अक्षिणी शीतोदकविकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन वा उत्क्षालयेद् वा प्रधावेद् वा, उत्क्षालयन्तं वा प्रधावन्तं वा स्वदते।

७२. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से अपनी आंखों का प्रासुक शीतल जल अथवा प्रासुक उष्ण जल से उत्क्षालन करता है अथवा प्रधावन करता है और उत्क्षालन अथवा प्रधावन करने वाले का अनुमोदन करता है।

७३. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अप्पणो अच्छीणि फुमेज्ज वा रएज्ज वा, फुमेंतं वा रएंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया आत्मनः अक्षिणी 'फुमेज्ज' (फूत्कुर्याद्) वा रजेद् वा, 'फुमेंतं' (फूत्कुर्वन्तं) वा रजन्तं वा स्वदते।

७३. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से अपनी आंखों पर फूंक देता है अथवा रंग लगाता है और फूंक देने अथवा रंग लगाने वाले का अनुमोदन करता है।

दीह-रोम-पदं

दीर्घरोम-पदम्

दीर्घरोम-पद

७४. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अप्पणो दीहाइं भमुग-रोमाइं कप्पेज्ज वा संठवेज्ज वा, कप्पेंतं वा संठवेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया आत्मनः दीर्घाणि भ्रूरोमाणि कल्पेत वा संस्थापयेद् वा, कल्पमानं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते।

७४. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से अपनी भौहों की दीर्घ रोमराजि को काटता है अथवा व्यवस्थित करता है और काटने अथवा व्यवस्थित करने वाले का अनुमोदन करता है।

७५. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अप्पणो दीहाइं पास-रोमाइं कप्पेज्ज वा संठवेज्ज वा, कप्पेंतं वा संठवेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया आत्मनः दीर्घाणि 'पास'रोमाणि कल्पेत वा संस्थापयेद् वा, कल्पमानं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते।

७५. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से अपनी पार्श्वभाग की दीर्घ रोमराजि को काटता है अथवा व्यवस्थित करता है और काटने अथवा व्यवस्थित करने वाले का अनुमोदन करता है।

मल-णीहरण-पदं

मलनिस्सरण-पदम्

मलनिर्हरण-पद

७६. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अप्पणो कायाओ सेयं वा जल्लं वा पंकं वा मलं वा णीहरेज्ज वा विसोहेज्ज वा, णीहरेंतं वा विसोहेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया आत्मनः कायात् स्वेदं वा जल्लं वा पंकं वा मलं वा निस्सरेद् वा विशोधयेद् वा, निस्सरन्तं वा विशोधयन्तं वा स्वदते।

७६. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से अपने शरीर के स्वेद, जल्ल, पंक अथवा मल का निर्हरण करता है अथवा विशोधन करता है और निर्हरण अथवा विशोधन करने वाले का अनुमोदन करता है।

७७. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अप्पणो अच्छिमलं वा कण्णमलं वा दंतमलं वा णहमलं वा णीहरेज्ज वा विसोहेज्ज वा, णीहरेंतं वा विसोहेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया आत्मनः अक्षिमलं वा कर्णमलं वा दन्तमलं वा नखमलं वा निस्सरेद् वा विशोधयेद् वा, निस्सरन्तं वा विशोधयन्तं वा स्वदते।

७७. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से अपनी आंख के मैल, कान के मैल, दांत के मैल अथवा नख के मैल का निर्हरण करता है अथवा विशोधन करता है और निर्हरण अथवा विशोधन करने वाले का अनुमोदन करता है।

सीसदुवारिय-पदं

शीर्षद्वारिका-पदम्

शीर्षद्वारिका-पद

७८. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए गामाणुगामं दूइज्जमाणे अप्पणो सीसदुवारियं करेति, करेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया ग्रामानुग्रामं दूयमानः आत्मनः शीर्षद्वारिकां करोति, कुर्वन्तं वा स्वदते।

७८. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से ग्रामानुग्राम परिव्रजन करता हुआ सिर ढंकता है अथवा ढंकने वाले का अनुमोदन करता है।[९]

पणीय-आहार-पदं

प्रणीताहार-पदम्

प्रणीत-आहार-पद

७९. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए खीरं वा दहिं वा णवणीयं वा सप्पिं वा गुलं वा खंडं वा सक्करं वा मच्छंडियं वा अण्णयरं वा पणीयं आहारं आहारेति, आहारेंतं वा सातिज्जति–

तं सेवमाणे आवज्जति चाउम्मासियं परिहाट्ठाणं अणुग्घातियं ।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया क्षीरं वा दधि वा नवनीतं वा सर्पिः वा गुडं वा खण्डं वा शर्करां वा मत्स्यण्डिकां वा अन्यतरं वा प्रणीतम् आहारम् आहरति, आहरन्तं वा स्वदते।

तत्सेवमानः आपद्यते चातुर्मासिकं परिहारस्थानम् अनुद्घातिकम्।

७९. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से दूध, दही, मक्खन, घी, गुड़, खांड, चीनी, मत्स्यंडिका अथवा अन्य किसी प्रणीत आहार का आहार करता है अथवा आहार करने वाले का अनुमोदन करता है।[१०]

—इनका आसेवन करने वाले को अनुद्घातिक चातुर्मासिक परिहारस्थान प्राप्त होता है।

टिप्पण

१. मातृग्राम (माउग्गाम)

शब्दकोश के अनुसार विषय, शब्द, अस्त्र, इन्द्रिय, भूत एवं गुण के आगे समूह के अर्थ में ग्राम शब्द का प्रयोग होता है।[1] आगम के व्याख्या-ग्रन्थों में ग्राम का इन्द्रिय अर्थ भी उपलब्ध होता है।[2] जिसकी इन्द्रियां माता के समान हों, वह मातृग्राम है।[3] महाराष्ट्र में स्त्री के लिए भी मातृग्राम शब्द का प्रयोग होता है।[4]

प्रस्तुत आगम में छठे एवं सातवें—दोनों उद्देशकों में 'माउग्गाम' एवं 'मेहुणवडिया' इन दो शब्दों का प्रयोग हुआ है। इन दोनों उद्देशकों का मुख्य प्रतिपाद्य है—अब्रह्मसेवन के संकल्प से की जाने वाली विविध प्रवृत्तियों का प्रायश्चित्त-कथन। इनमें 'माउग्गाम' के साथ दो विभक्तियां प्रयुक्त हैं—द्वितीया एवं षष्ठी। निशीथभाष्य एवं चूर्णि में षष्ठी विभक्त्यन्त मातृग्राम पद के विषय में अनेक उल्लेख मिलते हैं—

- मातृग्राम को हृदय में स्थापित कर।[5]
- मातृग्राम के लिए कमनीय अथवा अभिरमणीय बनने हेतु।[6]
- मातृग्राम को देने अथवा उसे आकृष्ट करने हेतु।[7]
- सम्बन्ध के अर्थ में प्रयुक्त षष्ठी विभक्ति।[8]

अतः इन सूत्रों में स्त्री के प्रति आसक्त होकर प्रवृत्ति हो रही है अथवा स्त्री के साथ अब्रह्म-सेवन के संकल्प से स्त्री की उपस्थिति में प्रवृत्ति हो रही है—इसका निर्णय अनुसंधान का विषय है।

२. अब्रह्म-सेवन के संकल्प से (मेहुणवडियाए)

मैथुन का अर्थ है—मिथुन भाव की प्रतिपत्ति, अब्रह्म।[9] स्त्री-पुरुष के परस्पर गात्रस्पर्श से होने वाला रागात्मक परिणाम मैथुन है।[10] उस रागमय परिणाम की प्रतिज्ञा अर्थात् संकल्प मैथुन-प्रतिज्ञा है।

३. प्रार्थना करता है (विण्णवेति)

विज्ञापना के दो अर्थ हैं—प्रार्थना और मैथुन का आसेवन।[11] प्रस्तुत प्रसंग में इसका प्रार्थना अर्थ ग्राह्य है।[12]

४. सूत्र २-१०

प्रस्तुत आगम के प्रथम उद्देशक में 'हस्तकर्म पद' में हस्तमैथुन आदि इन्हीं सब प्रवृत्तियों का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है। प्रस्तुत उद्देशक में इस आलापक में मैथुन की प्रतिज्ञा से स्त्री को हृदय में स्थापित कर 'यह मेरी स्त्री है'—ऐसा भाव करके इन प्रवृत्तियों को करने का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है। मैथुनभाव से की जाने वाली ये प्रवृत्तियां मैथुनसंज्ञा के अंतर्गत आती हैं।[13] अतः इनका प्रायश्चित्त चतुर्गुरु है।

५. सूत्र १२

कलह के दो प्रकार हैं—विषय-कलह और कषाय-कलह।[14] कामातुर मनोवृत्ति से किसी स्त्री को प्रान्तापित करना, उस प्रकार के शब्दों का प्रयोग करना विषय-कलह (काम-कलह) है। स्त्री के साथ काम-कलह करना, करने के लिए अन्य को कहना, काम-कलह देखने हेतु अन्यत्र जाना आदि ब्रह्मचर्य के लिए घातक प्रवृत्तियां है। इनसे कलंक आने की भी संभावना रहती है।[15] अतः भिक्षु के लिए इनका निषेध किया गया है।

६. सूत्र १३

अपने कुत्सित भावों को लिखित रूप में देकर किसी स्त्री के अब्रह्म की उदीरणा करना घातक प्रवृत्ति है। इससे अनेक दोषों की संभावना रहती है।[16] अतः प्रस्तुत सूत्र में इस प्रकार का संवाद

---

१. अचि. ६/५०–ग्रामो विषयशब्दास्त्र भूतेन्द्रियगुणाद् व्रजे।
२. (क) दसवे. जिचू. पृ. ३४३–गामगहणेण इंदियगहणं कयं।
(ख) दस.हा.टी. प. २६६–गामा इंदियाणि।
३. निभा. भा. २, चू. पृ. ३६१–मातिसमाणो गामो मातुगामो।
४. वही–मरहट्ठविसयभासाए वा इत्थी माउग्गामो भण्णति।
५. वही, पृ. ३८२–तं माउग्गामं हिअए ठवेउं 'मम एसा अविरति'त्ति काउं एवं हियए निवेसिऊण।
६. (क) वही, पृ. ३९४–इत्थीणं कमणिज्जो भविस्सामीति।
(ख) वही, पृ. ४०६
७. वही, पृ. ३८८–तेसिं दाहामि त्ति।
८. वही, पृ. ३८६,४०९
९. वही, पृ. ३७१–मिहुणभावो मेहुणं, मिथुनकर्म वा मेहुनं अब्रह्ममित्यर्थः।
१०. त.वा.७/१६/४–स्त्रीपुंसयोः परस्परगात्रोपश्लेषे रागपरिणामो मैथुनम्।।
११. निभा. भा. २, चू.पृ. ३७१–विज्ञापना प्रार्थना। अथवा तद्भावसेवनं विज्ञापना।
१२. वही, पृ. ३७१–इह तु प्रार्थना परिगृह्यते।
१३. वही, गा. २२४९
१४. वही, गा. २२५७, २२५८ व उनकी चूर्णि
१५. वही, गा. २२५९ व उसकी चूर्णि।
१६. वही, गा. २२६७

लिखने अथवा लिखवाने को प्रायश्चित्त-योग्य कार्य माना गया है। भाष्यकार ने प्रस्तुत संदर्भ में विविध प्रकार से संवाद आदि लिखने का तथा उससे होने वाले दुष्परिणामों का विस्तृत वर्णन किया है।[१]

७. सूत्र १४-१८

प्रस्तुत आलापक में रागासक्त भिक्षु की रागात्मक प्रवृत्ति का निरूपण किया गया है। वह भिलावे का प्रयोग बताकर स्त्री के गुप्तांगों में समस्या पैदा करता है, फिर उसके उपचार की प्रक्रिया करता है। इस प्रकार के प्रायश्चित्तार्ह आचरण के लिए प्रस्तुत आलापक में अनुद्घातिक चातुर्मासिक प्रायश्चित्त का विधान किया गया है।

शब्द-विमर्श

- **पोसंत**—योनि।[२]
- **पृष्ठान्त**—अपानद्वार।[३]
- **भल्लातक**—भिलावा।
- **उप्पाअ**—उत्पक्व बनाना। चूर्णि में इसकी व्याख्या 'उत् प्राबल्येन पावयति उप्पाएति' उपलब्ध होती है।[४] प्रतीत होता है पाचयति के स्थान पर लिपि दोष से प्रमादवशात् 'पावयति' हो गया है। भल्लातक का प्रयोग फोड़े आदि को पकाने में किया जाता है। निशीथभाष्य की गाथा २२७० की चूर्णि से भी इसी अर्थ की पुष्टि होती है।[५]

८. सूत्र १९-२४

कोई रागासक्त भिक्षु इस उद्देश्य से मलिन वस्त्र धारण करता है कि स्त्रियां उसकी आत्मार्थिता से प्रभावित होकर निःशंक रूप से उसके पास आए।[६] इसी प्रकार कोई अन्य भिक्षु उसी प्रकार की मलिन एवं अवाञ्छनीय भावना से बहुमूल्य, अखण्ड, धोए हुए और रंगे हुए या रंगीन वस्त्रों को धारण करता है अथवा रागासक्त चेतना से किसी स्त्री को देने के लिए बहुमूल्य अखण्ड, धौत या रक्त (रंगे हुए) वस्त्र रखता है—ये सब ब्रह्मचर्य के लिए घातक प्रवृत्तियां हैं। ऐसा करने वाले के लिए गुरु चातुर्मासिक प्रायश्चित्त का विधान है।

शब्द विमर्श

- **अहत**—अखण्ड, मशीन से निकला हुआ।[७]
- **धौत**—जल आदि से साफ किया हुआ।[८]
- **चित्र**—किसी एक वर्ण वाला।[९]
- **विचित्र**—दो, तीन रंगों से युक्त।[१०]

९. सूत्र २५-७८

तीसरे उद्देशक में सूत्र १६ से ७८ तक पाद-परिकर्म से लेकर शीर्षद्वारिका पर्यन्त सारी प्रवृत्तियों को निष्प्रयोजन अथवा अयतना से करने का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है। वहां इनका प्रायश्चित्त मासलघु है। प्रस्तुत उद्देशक में उन्हीं प्रवृत्तियों का अब्रह्मसेवन के संकल्प से करने का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है। मैथुनभाव से परिणत होने वाले भिक्षु की ये प्रवृत्तियां मैथुनसंज्ञा के अन्तर्गत हैं अतः इनका प्रायश्चित्त गुरु चातुर्मासिक है।

१०. सूत्र ७९

ज्ञान, दर्शन, चारित्र की वृद्धि के लिए सेवन की गई विकृति (विगय) भी कदाचित् भिक्षु को उत्पथगामी बना सकती है, उसके मोह को उद्दीप्त कर सकती है तो सुकुमार; कमनीय बनने के लिए अब्रह्म-सेवन के संकल्प से सेवित विकृति की तो बात ही क्या?[११] अतः प्रस्तुत सूत्र में सुकुमारता, अभिरमणीयता आदि के उद्देश्य से विगय खाने वाले भिक्षु के लिए अनुद्घातिक चातुर्मासिक प्रायश्चित्त बतलाया गया है।

शब्द विमर्श

- **खांड**—बूरा (देशी चीनी)
- **मत्स्यण्डिका**—मीजां खांड अथवा मिश्री।

---

१. निभा. गा. २२६१-२२६६
२. वही, भा. २, चू.पृ. ३८६—पोषः मृगीपदमित्यर्थः। तस्य अंतानि पोषंतानि।
३. वही—पिट्ठिए अंतं पिठंतं अपानद्वारमित्यर्थः।
४. वही
५. वही—उप्पक्कं ममेयं दंसेहित्ति काउं।
६. वही, पृ. ३८८—सो चेव मलिणो धरेति। वरं मम एयाओ अत्तट्ठभाविताओ मलिणवासस्स वीसंम्भं एंति।
७. वही—अहयं णाम तंतुग्गतं।
८. वही—पाणादिणा मलस्स फेडणं धोयं।
९. वही—चित्तं णाम एगतरवण्णुज्जलं।
१०. वही—विचित्तं णाम दोहिं तिहिं वा सव्वेहिं वा उज्जलं।
११. वही, गा. २२८४—
णाणादिसंधणट्ठा, वि सेविता णेति उप्पहं विगती।
किं पुण जो पडिसेवति विगती वण्णादिणं कज्जे॥

सत्तमो उद्देसो

सातवां उद्देशक

आमुख

पूर्ववर्ती उद्देशक के समान प्रस्तुत उद्देशक का केन्द्रीय तत्त्व भी ब्रह्मचर्य है। छठे उद्देशक के अन्तिम सूत्र में विकृति (विगय) के आहार का प्रतिषेध किया गया। प्रणीत आहार से शरीर की आंतरिक भूषा होती है। इस उद्देशक में मालिका पद के द्वारा बाह्य भूषा का प्रतिषेध प्रज्ञप्त है। इस उद्देशक के प्रारम्भ में मालिका, लोह, आभरण एवं वस्त्र पद के माध्यम से बाह्य विभूषा करने वाले को प्रायश्चित्तार्ह बताकर ब्रह्मचर्य की भावना पुष्ट की गई है। प्रस्तुत प्रसंग में भाष्य एवं चूर्णि में विविध प्रकार की मालाओं, धातुओं, आभूषणों एवं वस्त्रों के विषय में अच्छी जानकारी उपलब्ध होती है। इसे पढ़कर प्राचीन भारत की सभ्यता एवं संस्कृति के विषय में कई नए तत्त्वों का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

छठे उद्देशक के समान इस उद्देशक में भी सभी सूत्रों में माउग्गाम एवं मेहुणवडिया—इन दोनों शब्दों का अनुवर्तन हुआ है अतः उसके ही समान इस उद्देशक में प्रज्ञप्त पदों के आचरण से ब्रह्मव्रत-विराधना निमित्तक अनुद्घातिक चातुर्मासिक प्रायश्चित्त प्राप्त होता है। कुत्सित भावों से परस्पर पादपरिकर्म, कायपरिकर्म, व्रण, गण्ड आदि का परिकर्म, दीर्घ रोमराजि का कर्तन, नखों का संस्थापन आदि सारे कार्य भी मैथुन-संज्ञा के अन्तर्गत हैं। इसी प्रकार मैथुन की प्रतिज्ञा से पशु, पक्षी आदि के साथ क्रीड़ा करना, अंगसंचालन, चिकित्सा, मातृग्राम के साथ वस्त्र, पात्र, कंबल आदि तथा अशन, पान आदि का आदान-प्रदान आदि कार्य भी ब्रह्मचर्य के लिए घातक होने से अनुद्घातिक प्रायश्चित्त के योग्य माने गए हैं।

कुत्सित भावों के कारण स्वाध्याय के आदान-प्रदान जैसी निरवद्य प्रवृत्ति भी प्रायश्चित्तार्ह हो जाती है। इस प्रकार प्रस्तुत उद्देशक के स्वाध्याय-पद में समागत सूत्रद्वयी भावविशुद्धि के महत्त्व का सुन्दर निदर्शन प्रस्तुत करती है।

सत्तमो उद्देसो : सातवां उद्देशक

मूल

मालिया-पदं

१. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए तणमालियं वा मुंजमालियं वा वेत्तमालियं वा भिंडमालियं वा मयणमालियं वा पिच्छमालियं वा दंतमालियं वा सिंगमालियं वा संखमालियं वा हड्डमालियं वा कट्ठमालियं वा पत्तमालियं वा पुप्फमालियं वा फलमालियं वा बीजमालियं वा हरियमालियं वा करेति, करेंतं वा सातिज्जति ।।

२. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए तणमालियं वा मुंजमालियं वा वेत्तमालियं वा भिंडमालियं वा मयणमालियं वा पिच्छमालियं वा दंतमालियं वा सिंगमालियं वा संखमालियं वा हड्डमालियं वा कट्ठमालियं वा पत्तमालियं वा पुप्फमालियं वा फलमालियं वा बीजमालियं वा हरियमालियं वा धरेति, धरेंतं वा सातिज्जति ।।

३. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए तणमालियं वा मुंजमालियं वा वेत्तमालियं वा भिंडमालियं वा मयणमालियं वा पिच्छमालियं वा दंतमालियं वा सिंगमालियं वा संखमालियं वा हड्डमालियं वा कट्ठमालियं वा पत्तमालियं वा

संस्कृत छाया

मालिका-पदम्

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया तृणमालिकां वा मुञ्जमालिकां वा वेत्रमालिकां वा 'भिण्ड'मालिकां वा मदनमालिकां वा पिच्छमालिकां वा दन्तमालिकां का शृंगमालिकां वा शंखमालिकां वा 'हड्ड'मालिकां वा काष्ठमालिकां वा पत्रमालिकां वा पुष्पमालिकां वा फलमालिकां वा बीजमालिकां वा हरितमालिकां वा करोति, कुर्वन्तं वा स्वदते।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया तृणमालिकां वा मुञ्जमालिकां वा वेत्रमालिकां वा 'भिण्ड'मालिकां वा मदनमालिकां वा पिच्छमालिकां वा दन्तमालिकां वा शृंगमालिकां वा शंखमालिकां वा 'हड्ड'मालिकां वा काष्ठमालिकां वा पत्रमालिकां वा पुष्पमालिकां वा फलमालिकां वा बीजमालिकां वा हरितमालिकां वा धरति, धरन्तं वा स्वदते।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया तृणमालिकां वा मुञ्जमालिकां वा वेत्रमालिकां वा 'भिण्ड'मालिकां वा मदनमालिकां वा पिच्छमालिकां वा दन्तमालिकां वा शृंगमालिकां वा शंखमालिकां वा 'हड्ड'मालिकां वा काष्ठमालिकां वा पत्रमालिकां वा

हिन्दी अनुवाद

मालिका-पद

१. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से तृणमालिका, मूंजमालिका, वेत्रमालिका, भेंडमालिका, मदनमालिका, पिच्छमालिका, दंतमालिका, शृंगमालिका, शंखमालिका, अस्थिमालिका, काष्ठमालिका, पत्रमालिका, पुष्पमालिका, फलमालिका, बीजमालिका अथवा हरितमालिका करता है (बनाता है) अथवा करने वाले का अनुमोदन करता है।

२. जो भिक्षु को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से तृणमालिका, मूंजमालिका, वेत्रमालिका, भेंडमालिका, मदनमालिका, पिच्छमालिका, दंतमालिका, शृंगमालिका, शंखमालिका, अस्थिमालिका, काष्ठमालिका, पत्रमालिका, पुष्पमालिका, फलमालिका, बीजमालिका अथवा हरितमालिका को धारण करता है अथवा धारण करने वाले का अनुमोदन करता है।

३. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से तृणमालिका, मूंजमालिका, वेत्रमालिका, भेंडमालिका, मदनमालिका, पिच्छमालिका, दंतमालिका, शृंगमालिका, शंखमालिका, अस्थिमालिका, काष्ठमालिका, पत्रमालिका, पुष्पमालिका, फलमालिका, बीजमालिका अथवा

पुप्फमालियं वा फलमालियं वा बीजमालियं वा हरियमालियं वा पिणद्धति, पिणद्धंतं वा सातिज्जति।।

पुष्पमालिकां वा फलमालिकां वा बीजमालिकां वा हरितमालिकां वा पिनह्यति, पिनह्यन्तं वा स्वदते।

हरितमालिका पहनता है अथवा पहनने वाले का अनुमोदन करता है।[1]

लोह-पदं

लोह-पदम्

लोह-पद

४. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अय-लोहाणि वा तंब-लोहाणि वा तउय-लोहाणि वा सीसग-लोहाणि वा रुप्प-लोहाणि वा सुवण्ण-लोहाणि वा करेति, करेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया अयोलोहान् वा ताम्रलोहान् वा त्रपुकलोहान् वा सीसकलोहान् वा रूप्यलोहान् वा सुवर्णलोहान् वा करोति, कुर्वन्तं वा स्वदते।

४. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से लोहाधातु, तांबाधातु, त्रपुधातु, शीशाधातु, रुप्य (हिरण्य) धातु अथवा स्वर्णधातु बनाता है अथवा बनाने वाले का अनुमोदन करता है।

५. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अय-लोहाणि वा तंब-लोहाणि वा तउय-लोहाणि वा सीसग-लोहाणि वा रुप्प-लोहाणि वा सुवण्ण-लोहाणि वा धरेति, धरेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया अयोलोहान् वा ताम्रलोहान् वा त्रपुकलोहान् वा सीसकलोहान् वा रूप्यलोहान् वा सुवर्णलोहान् वा धरति, धरन्तं वा स्वदते।

५. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से लोहाधातु, तांबाधातु, त्रपुधातु, शीशाधातु, रुप्यधातु अथवा स्वर्णधातु को धारण करता है अथवा धारण करने वाले का अनुमोदन करता है।

६. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अय-लोहाणि वा तंब-लोहाणि वा तउय-लोहाणि वा सीसग-लोहाणि वा रुप्प-लोहाणि वा सुवण्ण-लोहाणि वा परिभुंजति, परिभुंजंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया अयोलोहान् वा ताम्रलोहान् वा त्रपुकलोहान् वा सीसकलोहान् वा रूप्यलोहान् वा सुवर्णलोहान् वा परिभुङ्क्ते, परिभुञ्जानं वा स्वदते।

६. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से लोहाधातु, तांबाधातु, त्रपुधातु, शीशाधातु, रुप्यधातु अथवा स्वर्णधातु का परिभोग करता है अथवा परिभोग करने वाले का अनुमोदन करता है।

आभरण-पदं

आभरण-पदम्

आभरण-पद

७. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए हाराणि वा अद्धहाराणि वा एगावली वा मुत्तावली वा कणगावली वा रयणावली वा कडगाणि वा तुडियाणि वा केऊराणि वा कुंडलाणि वा पट्टाणि वा मउडाणि वा पलंबसुत्ताणि वा सुवण्णसुत्ताणि वा करेति, करेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया हारान् वा अर्धहारान् वा एकावलीः वा मुक्तावलीः वा कनकावलीः वा रत्नावलीः वा कटकान् वा त्रुटिकानि वा केयूराणि वा कुण्डलानि वा पट्टानि वा मुकुटानि वा प्रलम्बसूत्राणि वा सुवर्णसूत्राणि वा करोति, कुर्वन्तं वा स्वदते।

७. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से हार, अर्धहार, एकावलि, मुक्तावलि, कनकावलि, रत्नावलि, वलय, तुडिय, केयूर, कुंडल, पट्ट, मुकुट, प्रलम्बसूत्र अथवा स्वर्णसूत्र बनाता है अथवा बनाने वाले का अनुमोदन करता है।

८. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया हारान्

८. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर

वडियाए हाराणि वा अद्धहाराणि वा एगावली वा मुत्तावली वा कणगावली वा रयणावली वा कडगाणि वा तुडियाणि वा केऊराणि वा कुंडलाणि वा पट्टाणि वा मउडाणि वा पलंबसुत्ताणि वा सुवण्णसुत्ताणि वा धरेति, धरेंतं वा सातिज्जति ।।

वा अर्धहारान् वा एकावलीः वा मुक्तावलीः वा कनकावलीः वा रत्नवलीः वा कटकान् वा त्रुटिकानि वा केयूराणि वा कुण्डलानि वा पट्टानि वा मुकुटानि वा प्रलम्बसूत्राणि वा सुवर्णसूत्राणि वा धरति, धरन्तं वा स्वदते ।

अब्रह्म-सेवन के संकल्प से हार, अर्धहार, एकावलि, मुक्तावलि, कनकावलि, रत्नावलि, वलय, तुडिय, केयूर, कुंडल, पट्ट, मुकुट, प्रलम्बसूत्र अथवा स्वर्णसूत्र को धारण करता है अथवा धारण करने वाले का अनुमोदन करता है।

९. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए हाराणि वा अद्धहाराणि वा एगावली वा मुत्तावली वा कणगावली वा रयणावली वा कडगाणि वा तुडियाणि वा केऊराणि वा कुंडलाणि वा पट्टाणि वा मउडाणि वा पलंबसुत्ताणि वा सुवण्णसुत्ताणि वा परिभुंजति, परिभुंजंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया हारान् वा अर्धहारान् वा एकावलीः वा मुक्तावलीः वा कनकावलीः वा रत्नावलीः वा कटकान् वा त्रुटिकानि वा केयूराणि वा कुण्डलानि वा पट्टानि वा मुकुटानि वा प्रलम्बसूत्राणि वा सुवर्णसूत्राणि वा परिभुङ्क्ते, परिभुञ्जानं वा स्वदते ।

९. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से हार, अर्धहार, एकावलि, मुक्तावलि, कनकावलि, रत्नावलि, वलय, तुडिय, केयूर, कुंडल, पट्ट, मुकुट, प्रलम्बसूत्र अथवा स्वर्णसूत्र का परिभोग करता है अथवा परिभोग करने वाले का अनुमोदन करता है।[२]

वत्थ-पदं

१०. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए आईणाणि वा सहिणाणि वा कल्लाणि वा सहिणकल्लाणाणि वा आयाणि वा कायाणि वा खोमाणि वा दुगुल्लाणि वा तिरीडपट्टाणि वा मलयाणि वा पत्तुण्णाणि वा अंसुयाणि वा चीणंसुयाणि वा देसरागाणि वा अमिलाणि वा गज्जलाणि वा फाडिगाणि वा कोतवाणि वा कंबलाणि वा पावारगाणि वा कणगाणि वा कणगकताणि वा कणगपट्टाणि वा कणगखचियाणि वा कणगफुल्लियाणि वा वग्घाणि वा विवग्घाणि वा आभरणाणि वा आभरणविचित्ताणि वा उद्दाणि वा गोरमिगाईणगाणि वा किण्ह-मिगाईणगाणि वा नीलमिगाईणगाणि वा पेसाणि वा पेसलेसाणि वा करेति, करेंतं वा सातिज्जति ।।

वस्त्र-पदम्

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया आजिनानि वा श्लक्ष्णानि वा कल्यानि वा श्लक्ष्णकल्याणानि वा आजानि वा कायानि वा क्षौमाणि वा दुकूलानि वा तिरीटपट्टानि वा मलयानि वा 'पत्तुण्णाणि' अंशुकानि वा चीनांशुकानि वा 'देसरागाणि' वा अमिलानि वा गर्जलानि वा स्फटिकानि वा कौतवानि वा कंबलानि वा प्रावारकाणि वा कनकानि वा कनककृतानि वा कनकपट्टानि वा कनकखचितानि वा कनक'फुल्लिताणि' वा वैयाघ्राणि वा विवैयाघ्राणि वा आभरणाणि वा आभरणविचित्राणि वा 'उद्दाणि' वा गौरमृगाजिनकानि वा कृष्णमृगाजिनकानि वा नीलमृगाजिनकानि वा 'पेसाणि' वा 'पेसलेसाणि' वा करोति, कुर्वन्तं वा स्वदते ।

वस्त्र-पद

१०. आजिनवस्त्र, सहिणवस्त्र, कल्यवस्त्र, सहिणकल्लाणवस्त्र, आजवस्त्र, कायवस्त्र, क्षौमवस्त्र, दुकूलवस्त्र, तिरीटपट्ट, मालय वस्त्र, पत्तुण्ण वस्त्र, अंशुक, चीनांशुक, दैशराग, अमिल वस्त्र, गर्जल वस्त्र, स्फटिक वस्त्र, कौतव वस्त्र, कंबल, प्रावारक, कनकवस्त्र, कनककृत, कनकपट्ट, कनक-खचित, कनकपुष्पित, व्याघ्रचर्मनिर्मित वस्त्र, विव्याघ्र के चर्म से निर्मित वस्त्र, आभरण-वस्त्र, आभरणविचित्र-वस्त्र, उद्रवस्त्र, गौरमृगाजिन, कृष्णमृगाजिन, नीलमृगाजिन, पैश अथवा पैशलेश वस्त्र—जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से इन वस्त्रों को बनाता है अथवा बनाने वाले का अनुमोदन करता है।

११. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए आईणाणि वा सहिणाणि वा कल्लाणि वा सहिणकल्लाणाणि वा आयाणि वा कायाणि वा खोमाणि वा दुगुल्लाणि वा तिरीडपट्टाणि वा मलयाणि वा पत्तुण्णाणि वा अंसुयाणि वा चीणंसुयाणि वा देसरागाणि वा अमिलाणि वा गज्जलाणि वा फाडिगाणि वा कोतवाणि वा कंबलाणि वा पावारगाणि वा कणगाणि वा कणगकताणि वा कणगपट्टाणि वा कणगखचियाणि वा कणगफुल्लियाणि वा वग्घाणि वा विवग्घाणि वा आभरणाणि वा आभरणविचित्ताणि वा उद्दाणि वा गोरमिगाईणगाणि वा किण्ह-मिगाईणगाणि वा नीलमिगाईणगाणि वा पेसाणि वा पेसलेसाणि वा धरेति, धरेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया आजिनानि वा श्लक्ष्णानि वा कल्यानि वा श्लक्ष्णकल्याणानि वा आजानि वा कायानि वा क्षौमाणि वा दुकूलानि वा तिरीटपट्टानि वा मलयानि वा 'पत्तुण्णाणि' अंशुकानि वा चीनांशुकानि वा 'देसरागाणि' वा अमिलानि वा गर्जलानि वा स्फटिकानि वा कौतवाणि वा कंबलानि वा प्रावारकाणि वा कनकानि वा कनककृतानि वा कनकपट्टानि वा कनकखचितानि वा कनक'फुल्लिताणि' वा वैयाघ्राणि वा विवैयाघ्राणि वा आभरणाणि वा आभरणविचित्राणि वा 'उद्राणि' वा गौरमृगाजिनकानि वा कृष्णमृगाजिनकानि वा नीलमृगाजिनकानि वा 'पेसाणि' वा 'पेसलेसाणि' वा धरति, धरन्तं वा स्वदते।

११. आजिनवस्त्र, सहिणवस्त्र, कल्यवस्त्र, सहिणकल्लाणवस्त्र, आजवस्त्र, कायवस्त्र, क्षौमवस्त्र, दुकूलवस्त्र, तिरीटपट्ट, मालय वस्त्र, पत्तुण्ण वस्त्र, अंशुक, चीनांशुक, दैशराग, अमिल वस्त्र, गर्जल वस्त्र, स्फटिक वस्त्र, कौतव वस्त्र, कंबल, प्रावारक, कनकवस्त्र, कनककृत, कनकपट्ट, कनक-खचित, कनकपुष्पित, व्याघ्रचर्मनिर्मित वस्त्र, विव्याघ्र के चर्म से निर्मित वस्त्र, आभरणवस्त्र, आभरणविचित्र वस्त्र, उद्रवस्त्र, गौरमृगाजिन, कृष्णमृगाजिन, नीलमृगाजिन, पैश अथवा पैशलेश—जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से इन वस्त्रों को धारण करता है अथवा धारण करने वाले का अनुमोदन करता है।

१२. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए आईणाणि वा सहिणाणि वा कल्लाणि वा सहिणकल्लाणाणि वा आयाणि वा कायाणि वा खोमाणि वा दुगुल्लाणि वा तिरीड-पट्टाणि वा मलयाणि वा पत्तुण्णाणि वा अंसुयाणि वा चीणंसुयाणि वा देसरागाणि वा अमिलाणि वा गज्जलाणि वा फाडिगाणि वा कोतवाणि वा कंबलाणि वा पावारगाणि वा कणगाणि वा कणगकताणि वा कणगपट्टाणि वा कणगखचियाणि वा कणगफुल्लि-याणि वा वग्घाणि वा विवग्घाणि वा आभरणाणि वा आभरणविचित्ताणि वा उद्दाणि वा गोरमिगाईणगाणि वा किण्हमिगाईणगाणि वा नीलमि-*गाईणगाणि* वा पेसाणि वा पेसलेसाणि वा परिभुंजति, परिभुंजंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया आजिनानि वा श्लक्ष्णानि वा कल्यानि वा श्लक्ष्णकल्याणानि वा आजानि वा कायानि वा क्षौमाणि वा दुकूलानि वा तिरीटपट्टानि वा मलयानि वा 'पत्तुण्णानि' वा अंशुकानि वा चीनांशुकानि वा 'देसरागाणि' वा अमिलानि वा गर्जलानि वा स्फटिकानि वा कौतवानि वा कंबलानि वा प्रावारकाणि वा कनकानि वा कनककृतानि वा कनकपट्टानि वा कनकखचितानि वा कनक'फुल्लिताणि' वा वैयाघ्राणि वा विवैयाघ्राणि वा आभरणाणि वा आभरणविचित्राणि वा 'उद्राणि' वा गौरमृगाजिनकानि वा कृष्णमृगाजिनकानि वा नीलमृगाजिनकानि वा 'पेसाणि' वा 'पेसलेसाणि' वा परिभुङ्क्ते, परिभुञ्जानं वा स्वदते।

१२. आजिनवस्त्र, सहिणवस्त्र, कल्यवस्त्र, सहिणकल्लाणवस्त्र, आजवस्त्र, कायवस्त्र, क्षौमवस्त्र, दुकूलवस्त्र, तिरीटपट्ट, मालय वस्त्र, पत्तुण्ण वस्त्र, अंशुक, चीनांशुक, दैशराग, अमिल वस्त्र, गर्जल वस्त्र, स्फटिक वस्त्र, कौतव वस्त्र, कंबल, प्रावारक, कनकवस्त्र, कनककृत, कनकपट्ट, कनक-खचित, कनकपुष्पित, व्याघ्रचर्मनिर्मित वस्त्र, विव्याघ्र के चर्म से निर्मित वस्त्र, आभरण वस्त्र, आभरणविचित्र वस्त्र, उद्रवस्त्र, गौरमृगाजिन, कृष्णमृगाजिन, नीलमृगाजिन, पैश अथवा पैशलेश—जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से इन वस्त्रों का परिभोग करता है अथवा परिभोग करने वाले का अनुमोदन करता है।[३]

संचालण-पदं

१३. जे भिक्खू माउग्गामं मेहुण-वडियाए अक्खंसि वा ऊरुंसि वा उदरंसि वा थणंसि वा गहाय संचालेति, संचालेंतं वा सातिज्जति।।

संचालन-पदम्

यो भिक्षुः मातृग्रामं मैथुनप्रतिज्ञया अक्षे वा ऊरौ वा उदरे वा स्तने वा गृहीत्वा सञ्चालयति, सञ्चालयन्तं वा स्वदते।

संचालन-पद

१३. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्मसेवन के संकल्प से अक्ष (कनपटी अथवा कोई भी इन्द्रिय)[४] ऊरु, उदर अथवा स्तन का ग्रहण कर उसे संचालित करता है अथवा संचालित करने वाले का अनुमोदन करता है।

पाय-परिकम्म-पदं

१४. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अण्णमण्णस्स पाए आमज्जेज्ज वा पमज्जेज्ज वा, आमज्जंतं वा पमज्जंतं वा सातिज्जति।।

पादपरिकर्म-पदम्

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया अन्योन्यस्य पादौ आमृज्याद् वा प्रमृज्याद् वा, आमार्जन्तं वा प्रमार्जन्तं वा स्वदते।

पादपरिकर्म-पद

१४. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से परस्पर एक दूसरे भिक्षु के पैरों का आमार्जन करता है अथवा प्रमार्जन करता है और आमार्जन अथवा प्रमार्जन करने वाले का अनुमोदन करता है।

१५. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अण्णमण्णस्स पाए संवाहेज्ज वा पलिमद्देज्ज वा, संवाहेंतं वा पलिमद्देंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया अन्योन्यस्य पादौ संवाहयेद् वा परिमर्दयेद् वा, संवाहयन्तं वा परिमर्दयन्तं वा स्वदते।

१५. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से परस्पर एक दूसरे भिक्षु के पैरों का संबाधन करता है अथवा परिमर्दन करता है और संबाधन अथवा परिमर्दन करने वाले का अनुमोदन करता है।

१६. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अण्णमण्णस्स पाए तेल्लेण वा घएण वा वसाए वा णवणीएण वा अब्भंगेज्ज वा मक्खेज्ज वा, अब्भंगेंतं वा मक्खेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया अन्योन्यस्य पादौ तैलेन वा घृतेन वा वसया वा नवनीतेन वा अभ्यञ्ज्याद् वा म्रक्षेद् वा, अभ्यञ्जन्तं वा म्रक्षन्तं वा स्वदते।

१६. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से परस्पर एक दूसरे भिक्षु के पैरों का तैल, घृत, वसा अथवा मक्खन से अभ्यंगन करता है अथवा म्रक्षण करता है और अभ्यंगन अथवा म्रक्षण करने वाले का अनुमोदन करता है।

१७. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अण्णमण्णस्स पाए लोद्धेण वा कक्केण वा चुण्णेण वा वण्णेण वा उल्लोलेज्ज वा उव्वट्टेज्ज वा, उल्लोलेंतं वा उव्वट्टेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया अन्योन्यस्य पादौ लोध्रेण वा कल्केन वा चूर्णेन वा वर्णेन वा उल्लोलयेद् वा उद्वर्तेत वा, उल्लोलयन्तं वा उद्वर्तमानं वा स्वदते।

१७. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से परस्पर एक दूसरे के पैरों पर लोध, कल्क, चूर्ण अथवा वर्ण का लेप करता है अथवा उद्वर्तन करता है और लेप अथवा उद्वर्तन करने वाले का अनुमोदन करता है।

१८. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अण्णमण्णस्स पाए

यो भिक्षु मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया अन्योन्यस्य पादौ शीतोदकविकृतेन वा

१८. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से परस्पर एक दूसरे

सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलेज्ज वा पधोएज्ज वा, उच्छोलेंतं वा पधोएंतं वा सातिज्जति।।

उष्णोदकविकृतेन वा उत्क्षालयेद् वा प्रधावेद् वा, उत्क्षालयन्तं वा प्रधावन्तं वा स्वदते।

भिक्षु के पैरों का प्रासुक शीतल जल से अथवा प्रासुक उष्ण जल से उत्क्षालन करता है अथवा प्रधावन करता है और उत्क्षालन अथवा प्रधावन करने वाले का अनुमोदन करता है।

१९. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अण्णमण्णस्स पाए फुमेज्ज वा रएज्ज वा, फुमेंतं वा रएंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया अन्योन्यस्य पादौ 'फुमेज्ज' (फूत्कुर्याद्) वा रजेद् वा, 'फुमेंतं' (फूत्कुर्वन्तं) वा रजन्तं वा स्वदते।

१९. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से परस्पर एक दूसरे भिक्षु के पैरों पर फूंक देता है अथवा रंग लगाता है और फूंक देने अथवा रंग लगाने वाले का अनुमोदन करता है।

काय-परिकम्म-पदं

कायपरिकर्म-पदम्

कायपरिकर्म-पद

२०. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अण्णमण्णस्स कायं आमज्जेज्ज वा पमज्जेज्ज वा, आमज्जंतं वा पमज्जंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया अन्योन्यस्य कायम् आमृज्याद् वा प्रमृज्याद् वा, आमार्जन्तं वा प्रमार्जन्तं वा स्वदते।

२०. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से एक दूसरे भिक्षु के शरीर का आमार्जन करता है अथवा प्रमार्जन करता है और आमार्जन अथवा प्रमार्जन करने वाले का अनुमोदन करता है।

२१. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अण्णमण्णस्स कायं संवाहेज्ज वा पलिमद्देज्ज वा, संवाहेंतं वा पलिमद्देंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया अन्योन्यस्य कायं संवाहयेद् वा परिमर्दयेद् वा, संवाहयन्तं वा परिमर्दयन्तं वा स्वदते।

२१. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से परस्पर एक दूसरे भिक्षु के शरीर का संबाधन करता है अथवा परिमर्दन करता है और संबाधन अथवा परिमर्दन करने वाले का अनुमोदन करता है।

२२. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अण्णमण्णस्स कायं तेल्लेण वा घएण वा वसाए वा णवणीएण वा अब्भंगेज्ज वा मक्खेज्ज वा, अब्भंगेंतं वा मक्खेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया अन्योन्यस्य कायं तैलेन वा घृतेन वा वसया वा नवनीतेन वा अभ्यञ्ज्याद् वा म्रक्षेद् वा, अभ्यञ्जन्तं वा म्रक्षन्तं वा स्वदते।

२२. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से परस्पर एक दूसरे भिक्षु के शरीर का तैल, घृत, वसा अथवा मक्खन से अभ्यंगन करता है अथवा म्रक्षण करता है और अभ्यंगन अथवा म्रक्षण करने वाले का अनुमोदन करता है।

२३. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अण्णमण्णस्स कायं लोद्धेण वा कक्केण वा चुण्णेण वा वण्णेण वा उल्लोलेज्ज वा उव्वट्टेज्ज वा, उल्लोलेंतं वा उव्वट्टेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया अन्योन्यस्य कायं लोध्रेण वा कल्केन वा चूर्णेन वा वर्णेन वा उल्लोलयेद् वा उद्वर्तेत वा, उल्लोलयन्तं वा उद्वर्तमानं वा स्वदते।

२३. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से परस्पर एक दूसरे भिक्षु के शरीर पर लोध, कल्क, चूर्ण अथवा वर्ण का लेप करता है अथवा उद्वर्तन करता है और लेप अथवा उद्वर्तन करने वाले का अनुमोदन करता है।

२४. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अण्णमण्णस्स कायं सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलेज्ज वा पधोएज्ज वा, उच्छोलेंतं वा पधोएंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया अन्योन्यस्य कायं शीतोदकविकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन वा उत्क्षालयेद् वा प्रधावेद् वा, उत्क्षालयन्तं वा प्रधावन्तं वा स्वदते।

२४. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से एक दूसरे भिक्षु के शरीर का प्रासुक शीतल जल अथवा प्रासुक उष्ण जल से उत्क्षालन करता है अथवा प्रधावन करता है और उत्क्षालन अथवा प्रधावन करने वाले का अनुमोदन करता है।

२५. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अण्णमण्णस्स कायं फुमेज्ज वा रएज्ज वा, फुमेंतं वा रएंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया अन्योन्यस्य कायं 'फुमेज्ज' (फूत्कुर्याद्) वा रजेद् वा, 'फुमेंतं' (फूत्कुर्वन्तं) वा रजन्तं वा स्वदते।

२५. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से एक दूसरे भिक्षु के शरीर पर फूंक देता है अथवा रंग लगाता है और फूंक देने अथवा रंग लगाने वाले का अनुमोदन करता है।

वण-परिकम्म-पदं

व्रणपरिकर्म-पदम्

व्रणपरिकर्म-पद

२६. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अण्णमण्णस्स कायंसि वणं आमज्जेज्ज वा पमज्जेज्ज वा, आमज्जंतं वा पमज्जंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया अन्योन्यस्य काये व्रणम् आमृज्याद् वा प्रमृज्याद् वा, आमार्जन्तं वा प्रमार्जन्तं वा स्वदते।

२६. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से एक दूसरे भिक्षु के शरीर पर हुए व्रण का आमार्जन करता है अथवा प्रमार्जन करता है और आमार्जन अथवा प्रमार्जन करने वाले का अनुमोदन करता है।

२७. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अण्णमण्णस्स कायंसि वणं संवाहेज्ज वा पलिमद्देज्ज वा, संवाहेंतं वा पलिमद्देंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया अन्योन्यस्य काये व्रणं संवाहयेद् वा परिमर्दयेद् वा, संवाहयन्तं वा परिमर्दयन्तं वा स्वदते।

२७. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से परस्पर एक दूसरे भिक्षु के शरीर पर हुए व्रण का संबाधन करता है अथवा परिमर्दन करता है और संबाधन अथवा परिमर्दन करने वाले का अनुमोदन करता है।

२८. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अण्णमण्णस्स कायंसि वणं तेल्लेण वा घएण वा वसाए वा णवणीएण वा अब्भंगेज्ज वा मक्खेज्ज वा, अब्भंगेंतं वा मक्खेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया अन्योन्यस्य काये व्रणं तैलेन वा घृतेन वा वसया वा नवनीतेन वा अभ्यञ्ज्याद् वा म्रक्षेद् वा, अभ्यञ्जन्तं वा म्रक्षन्तं वा स्वदते।

२८. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से परस्पर एक दूसरे भिक्षु के शरीर पर हुए व्रण का तैल, घृत, वसा अथवा मक्खन से अभ्यंगन करता है अथवा म्रक्षण करता है और अभ्यंगन अथवा म्रक्षण करने वाले का अनुमोदन करता है।

२९. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अण्णमण्णस्स कायंसि वणं लोद्धेण वा कक्केण वा चुण्णेण वा

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया अन्योन्यस्य काये व्रणं लोध्रेण वा कल्केन वा चूर्णेन वा वर्णेन वा उल्लोलयेद् वा

२९. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से परस्पर एक दूसरे भिक्षु के शरीर पर हुए व्रण पर लोध, कल्क,

वण्णेण वा उल्लोलेज्ज वा उव्वट्टेज्ज वा, उल्लोलेंतं वा उव्वट्टेंतं वा सातिज्जति।।

उद्वर्तेत वा, उल्लोलयन्तं वा उद्वर्तमानं वा स्वदते।

चूर्ण अथवा वर्ण का लेप करता है अथवा उद्वर्तन करता है और लेप अथवा उद्वर्तन करने वाले का अनुमोदन करता है।

३०. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अण्णमण्णस्स कायंसि वणं सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलेज्ज वा पधोएज्ज वा, उच्छोलेंतं वा पधोएंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षु मातृग्रामस्य. मैथुनप्रतिज्ञया अन्योन्यस्य काये व्रणं शीतोदकविकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन वा उत्क्षालयेद् वा प्रधावेद् वा, उत्क्षालयन्तं वा प्रधावन्तं वा स्वदते।

३०. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से परस्पर एक दूसरे भिक्षु के शरीर पर हुए व्रण का प्रासुक शीतल जल अथवा प्रासुक उष्ण जल से उत्क्षालन करता है अथवा प्रधावन करता है और उत्क्षालन अथवा प्रधावन करने वाले का अनुमोदन करता है।

३१. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अण्णमण्णस्स कायंसि वणं फुमेज्ज वा रएज्ज वा, फुमेंतं वा रएंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया अन्योन्यस्य काये व्रणं 'फुमेज्ज' (फूत्कुर्याद्) वा रजेद् वा, 'फुमेंतं' (फूत्कुर्वन्तं) वा रजन्तं वा स्वदते।

३१. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से परस्पर एक दूसरे भिक्षु के शरीर पर हुए व्रण पर फूंक देता है अथवा रंग लगाता है और फूंक देने अथवा रंग लगाने वाले का अनुमोदन करता है।

गंडादि-परिकम्म-पदं

गंडादिपरिकर्म-पदम्

गंडादिपरिकर्म-पद

३२. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अण्णमण्णस्स कायंसि गंडं वा पिडयं वा अरइयं वा असियं वा भगंदलं वा अण्णयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं अच्छिंदेज्ज वा विच्छिंदेज्ज वा, अच्छिंदेंतं वा विच्छिंदेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया अन्योन्यस्य काये गण्डं वा पिटकं वा अरतिकां वा अर्शो वा भगन्दरं वा अन्यतरेण तीक्ष्णेन शस्त्रजातेन आच्छिन्द्याद् वा विच्छिन्द्याद् वा, आच्छिन्दन्तं वा विच्छिन्दन्तं वा स्वदते।

३२. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से परस्पर एक दूसरे भिक्षु के शरीर में हुए गंडमाल, फोड़ा, फुंसी, अर्श अथवा भगन्दर का किसी तीक्ष्ण शस्त्रजात से आच्छेदन करता है अथवा विच्छेदन करता है और आच्छेदन अथवा विच्छेदन करने वाले का अनुमोदन करता है।

३३. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अप्पणो कायंसि गंडं वा पिडयं वा अरइयं वा असियं वा भगंदलं वा अण्णयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं अच्छिंदित्ता वा विच्छिंदित्ता वा पूयं वा सोणियं वा णीहरेज्ज वा विसोहेज्ज वा, णीहरेंतं वा विसोहेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया अन्योन्यस्य काये गण्डं वा पिटकं वा अरतिकां वा अर्शो वा भगन्दरं वा अन्यतरेण तीक्ष्णेन शस्त्रजातेन आच्छिद्य वा विच्छिद्य वा पूयं वा शोणितं वा निस्सरेद् वा विशोधयेद् वा, निस्सरन्तं वा विशोधयन्तं वा स्वदते।

३३. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से परस्पर एक दूसरे के शरीर में हुए गंडमाल, फोड़ा, फुंसी, अर्श अथवा भगन्दर का किसी तीक्ष्ण शस्त्रजात से आच्छेदन अथवा विच्छेदन कर पीव अथवा रक्त को निकालता है अथवा साफ करता है और निकालने अथवा साफ करने वाले का अनुमोदन करता है।

३४. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अण्णमण्णस्स कायंसि गंडं

यो भिक्षु मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया अन्योन्यस्य काये गण्डं वा पिटकं वा

३४. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से परस्पर एक दूसरे

वा पिडयं वा अरइयं वा असियं वा भगंदलं वा अण्णयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं अच्छिंदित्ता वा विच्छिंदित्ता वा पूयं वा सोणियं वा णीहरित्ता वा विसोहेत्ता वा सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलेज्ज वा पधोएज्ज वा, उच्छोलेंतं वा पधोएंतं वा सातिज्जति।।

अरतिकां वा अर्शो वा भगन्दरं वा अन्यतरेण तीक्ष्णेन शस्त्रजातेन आच्छिद्य वा विच्छिद्य वा पूयं वा शोणितं वा निस्सृत्य वा विशोध्य वा शीतोदकविकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन वा उत्क्षालयेद् वा प्रधावेद् वा, उत्क्षालयन्तं वा प्रधावन्तं वा स्वदते।

के शरीर में हुए गंडमाल, फोड़ा, फुंसी, अर्श अथवा भगन्दर का किसी तीक्ष्ण शस्त्रजात से आच्छेदन अथवा विच्छेदन कर, उसके पीव अथवा रक्त को निकाल कर अथवा साफ कर, उसका प्रासुक शीतल जल अथवा प्रासुक उष्ण जल से उत्क्षालन करता है अथवा प्रधावन करता है और उत्क्षालन अथवा प्रधावन करने वाले का अनुमोदन करता है।

३५. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अण्णमण्णस्स कायंसि गंडं वा पिडयं वा अरइयं वा असियं वा भगंदलं वा अण्णयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं अच्छिंदित्ता वा विच्छिंदित्ता वा पूयं वा सोणियं वा णीहरित्ता वा विसोहेत्ता वा सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलेत्ता वा पधोएत्ता वा अण्णयरेणं आलेवणजाएणं आलिंपेज्ज वा विलिंपेज्ज वा, आलिंपेंतं वा विलिंपेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षु मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया अन्योन्यस्य काये गण्डं वा पिटकं वा अरतिकां वा अर्शो वा भगन्दरं वा अन्यतरेण तीक्ष्णेन शस्त्रजातेन आच्छिद्य वा विच्छिद्य वा पूयं वा शोणितं वा निस्सृत्य वा विशोध्य वा शीतोदकविकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन वा उत्क्षाल्य वा प्रधाव्य वा अन्यतरेण आलेपनजातेन आलिम्पेद् वा विलिम्पेद् वा, आलिम्पन्तं वा विलिम्पन्तं वा स्वदते।

३५. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से परस्पर एक दूसरे के शरीर में हुए गंडमाल, फोड़ा, फुंसी, अर्श अथवा भगन्दर का किसी तीक्ष्ण शस्त्रजात से आच्छेदन अथवा विच्छेदन कर, उसके पीव अथवा रक्त को निकाल कर अथवा साफ कर, प्रासुक शीतल जल अथवा प्रासुक उष्ण जल से उत्क्षालन अथवा प्रधावन कर, उस पर किसी आलेपनजात का आलेपन करता है अथवा विलेपन करता है और आलेपन अथवा विलेपन करने वाले का अनुमोदन करता है।

३६. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अण्णमण्णस्स कायंसि गंडं वा पिडयं वा अरइयं वा असियं वा भगंदलं वा अण्णयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं अच्छिंदित्ता वा विच्छिंदित्ता वा पूयं वा सोणियं वा णीहरित्ता वा विसोहेत्ता वा सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलेत्ता वा पधोएत्ता वा अण्णयरेणं आलेवणजाएणं आलिंपेत्ता वा विलिंपेत्ता वा तेल्लेण वा घएण वा वसाए वा णवणीएण वा अब्भंगेज्ज वा मक्खेज्ज वा, अब्भंगेंतं वा मक्खेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया अन्योन्यस्य काये गण्डं वा पिटकं वा अरतिकां वा अर्शो वा भगन्दरं वा अन्यतरेण तीक्ष्णेन शस्त्रजातेन आच्छिद्य वा विच्छिद्य वा पूयं वा शोणितं वा निस्सृत्य वा विशोध्य वा शीतोदकविकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन वा उत्क्षाल्य वा प्रधाव्य वा अन्यतरेण आलेपनजातेन आलिप्य वा विलिप्य वा तैलेन वा घृतेन वा वसया वा नवनीतेन वा अभ्यञ्ज्याद् वा म्रक्षेद् वा, अभ्यञ्जन्तं वा म्रक्षन्तं वा स्वदते।

३६. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से परस्पर एक दूसरे के शरीर में हुए गंडमाल, फोड़ा, फुंसी, अर्श अथवा भगन्दर का किसी तीक्ष्ण शस्त्रजात से आच्छेदन अथवा विच्छेदन कर, उसके पीव अथवा रक्त को निकालकर अथवा साफ कर प्रासुक शीतल जल अथवा प्रासुक उष्ण जल से उत्क्षालन अथवा प्रधावन कर, उस पर किसी आलेपनजात का आलेपन अथवा विलेपन कर, उसका तैल, घृत, वसा अथवा मक्खन से अभ्यंगन करता है अथवा म्रक्षण करता है और अभ्यंगन अथवा म्रक्षण करने वाले का अनुमोदन करता है।

३७. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अण्णमण्णस्स कायंसि गंडं वा पिडयं वा अरइयं वा असियं वा भगंदलं वा अण्णयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं अच्छिंदित्ता वा विच्छिंदित्ता वा पूयं वा सोणियं वा णीहरित्ता वा विसोहेत्ता वा सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलेत्ता वा पधोएत्ता वा अण्णयरेणं आलेवणजाएणं आलिंपेत्ता वा विलिंपेत्ता वा तेल्लेण वा घएण वा वसाए वा णवणीएण वा अब्भंगेत्ता वा मक्खेत्ता वा अण्णयरेणं धूवणजाएणं धूवेज्ज वा पधूवेज्ज वा, धूवेंतं वा पधूवेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया अन्योन्यस्य काये गण्डं वा पिटकं वा अरतिकां वा अर्शो वा भगन्दरं वा अन्यतरेण तीक्ष्णेन शस्त्रजातेन आच्छिद्य वा विच्छिद्य वा पूयं वा शोणितं वा निस्सृत्य वा विशोध्य वा शीतोदकविकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन वा उत्क्षाल्य वा प्रधाव्य वा अन्यतरेण आलेपनजातेन आलिप्य वा विलिप्य वा तैलेन वा घृतेन वा वसया वा नवनीतेन वा अभ्यज्य वा म्रक्षित्वा वा अन्यतरेण धूपनजातेन धूपायेद् वा प्रधूपायेद् वा, धूपायन्तं वा प्रधूपायन्तं वा स्वदते।

३७. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से परस्पर एक दूसरे के शरीर में हुए गंडमाल, फोड़ा, फुंसी, अर्श अथवा भगन्दर का किसी तीक्ष्ण शस्त्रजात से आच्छेदन अथवा विच्छेदन कर पीव अथवा रक्त को निकाल कर अथवा साफ कर, प्रासुक शीतल जल अथवा प्रासुक उष्ण जल से उत्क्षालन अथवा प्रधावन कर, किसी आलेपनजात से आलेपन अथवा विलेपन कर उसका तैल, घृत, वसा अथवा मक्खन से अभ्यंगन अथवा म्रक्षण कर उसे किसी धूपजात से धूपित करता है अथवा प्रधूपित करता है और धूपित अथवा प्रधूपित करने वाले का अनुमोदन करता है।

किमि-पदं

कृमि-पदम्

कृमि-पद

३८. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अण्णमण्णस्स पालुकिमियं वा कुच्छिकिमियं वा अंगुलीए णिवेसिय-णिवेसिय णीहरेति, णीहरेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया अन्योन्यस्य पायुकृमिकं वा कुक्षिकृमिकं वा अंगुल्या निवेश्य-निवेश्य निस्सरति, निस्सरन्तं वा स्वदते।

३८. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से परस्पर एक दूसरे भिक्षु के अपान के कृमि अथवा कुक्षि के कृमि को अंगुली डाल-डाल कर निकालता है अथवा निकालने वाले का अनुमोदन करता है।

णह-सिहा-पदं

नखशिखा-पदम्

नखशिखा-पद

३९. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अण्णमण्णस्स दीहाओ णह-सिहाओ कप्पेज्ज वा संठवेज्ज वा, कप्पेंतं वा संठवेंतं वा सातिज्जति।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया अन्योन्यस्य दीर्घाः नखशिखाः कल्पेत वा संस्थापयेद् वा, कल्पमानं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते।

३९. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से परस्पर एक दूसरे भिक्षु की दीर्घ नखशिखा को काटता है अथवा व्यवस्थित करता है और काटने अथवा व्यवस्थित करने वाले का अनुमोदन करता है।

दीह-रोम-पदं

दीर्घरोम-पदम्

दीर्घरोम-पद

४०. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अण्णमण्णस्स दीहाइं जंघ-रोमाइं कप्पेज्ज वा संठवेज्ज वा, कप्पेंतं वा संठवेंतं वा सातिज्जति।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया अन्योन्यस्य दीर्घाणि जंघारोमाणि कल्पेत वा संस्थापयेद् वा, कल्पमानं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते।

४०. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से परस्पर एक दूसरे भिक्षु की जंघाप्रदेश की दीर्घ रोमराजि को काटता है अथवा व्यवस्थित करता है और

काटने अथवा व्यवस्थित करने वाले का अनुमोदन करता है।

४१. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अण्णमण्णस्स दीहाइं वत्थि-रोमाइं कप्पेज्ज वा संठवेज्ज वा, कप्पेंतं वा संठवेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया अन्योन्यस्य दीर्घाणि वस्तिरोमाणि कल्पेत वा संस्थापयेद् वा, कल्पमानं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते।

४१. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से परस्पर एक दूसरे भिक्षु के वस्तिप्रदेश की दीर्घ रोमराजि को काटता है अथवा व्यवस्थित करता है और काटने अथवा व्यवस्थित करने वाले का अनुमोदन करता है।

४२. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अण्णमण्णस्स दीह-रोमाइं कप्पेज्ज वा संठवेज्ज वा, कप्पेंतं वा संठवेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया अन्योन्यस्य दीर्घरोमाणि कल्पेत वा संस्थापयेद् वा, कल्पमानं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते।

४२. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से परस्पर एक दूसरे भिक्षु की दीर्घ रोमराजि को काटता है अथवा व्यवस्थित करता है और काटने अथवा व्यवस्थित करने वाले का अनुमोदन करता है।

४३. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अण्णमण्णस्स दीहाइं कक्खाण-रोमाइं कप्पेज्ज वा संठवेज्ज वा, कप्पेंतं वा संठवेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया अन्योन्यस्य कक्षारोमाणि कल्पेत वा संस्थापयेद् वा, कल्पमानं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते।

४३. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से परस्पर एक दूसरे भिक्षु की कक्षाप्रदेश की दीर्घ रोमराजि को काटता है अथवा व्यवस्थित करता है और काटने अथवा व्यवस्थित करने वाले का अनुमोदन करता है।

४४. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अण्णमण्णस्स दीहाइं मंसु-रोमाइं कप्पेज्ज वा संठवेज्ज वा, कप्पेंतं वा संठवेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया अन्योन्यस्य दीर्घाणि श्मश्रुरोमाणि कल्पेत वा संस्थापयेद् वा, कल्पमानं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते।

४४. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से परस्पर एक दूसरे भिक्षु की श्मश्रु की दीर्घ रोमराजि को काटता है अथवा व्यवस्थित करता है और काटने अथवा व्यवस्थित करने वाले का अनुमोदन करता है।

दंत-पदं

दन्त-पदम्

दंत-पद

४५. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अण्णमण्णस्स दंते आघंसेज्ज वा पघंसेज्ज वा, आघंसंतं वा पघंसंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया अन्योन्यस्य दन्तान् आघर्षेद् वा प्रघर्षेद् वा, आघर्षन्तं वा प्रघर्षन्तं वा स्वदते।

४५. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से परस्पर एक दूसरे भिक्षु के दांतों का आघर्षण करता है अथवा प्रघर्षण करता है और आघर्षण अथवा प्रघर्षण करने वाले का अनुमोदन करता है।

४६. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया

४६. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर

वडियाए अण्णमण्णस्स दंते उच्छोलेज्ज वा पधोएज्ज वा, उच्छोलेंतं वा पधोएंतं वा सातिज्जति।।

अन्योन्यस्य दन्तान् उत्क्षालयेद् वा प्रधावेद् वा, उत्क्षालयन्तं वा प्रधावन्तं वा स्वदते।

अब्रह्म-सेवन के संकल्प से परस्पर एक दूसरे भिक्षु के दांतों का उत्क्षालन करता है अथवा प्रधावन करता है और उत्क्षालन अथवा प्रधावन करने वाले का अनुमोदन करता है।

४७. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अण्णमण्णस्स दंते फुमेज्ज वा रएज्ज वा, फुमेंतं वा रएंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया अन्योन्यस्य दन्तान् 'फुमेज्ज' (फूत्कुर्याद्) वा रजेद् वा, 'फुमेंतं' (फूत्कुर्वन्तं) वा रजन्तं वा स्वदते।

४७. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से परस्पर एक दूसरे भिक्षु के दांतों पर फूंक देता है अथवा रंग लगाता है और फूंक देने अथवा रंग लगाने वाले का अनुमोदन करता है।

उट्ठ-पदं

ओष्ठ-पदम्

ओष्ठ-पद

४८. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अण्णमण्णस्स उट्ठे आमज्जेज्ज वा पमज्जेज्ज वा, आमज्जंतं वा पमज्जंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया अन्योन्यस्य ओष्ठौ आमृज्याद् वा प्रमृज्याद् वा, आमार्जन्तं वा प्रमार्जन्तं वा स्वदते।

४८. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से परस्पर एक दूसरे भिक्षु के ओष्ठ का आमार्जन करता है अथवा प्रमार्जन करता है और आमार्जन अथवा प्रमार्जन करने वाले का अनुमोदन करता है।

४९. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अण्णमण्णस्स उट्ठे संवाहेज्ज वा पलिमद्देज्ज वा, संवाहेंतं वा पलिमद्देंतं वा सतिज्जति।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया अन्योन्यस्य ओष्ठौ संवाहयेद् वा परिमर्दयेद् वा, संवाहयन्तं वा परिमर्दयन्तं वा स्वदते।

४९. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से परस्पर एक दूसरे भिक्षु के ओष्ठ का संबाधन करता है अथवा परिमर्दन करता है और संबाधन अथवा परिमर्दन करने वाले का अनुमोदन करता है।

५०. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अण्णमण्णस्स उट्ठे तेल्लेण वा घएण वा वसाए वा णवणीएण वा अब्भंगेज्ज वा मक्खेज्ज वा, अब्भंगेंतं वा मक्खेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया अन्योन्यस्य ओष्ठौ तैलेन वा घृतेन वा वसया वा नवनीतेन वा अभ्यञ्ज्याद् वा म्रक्षेद् वा, अभ्यञ्जन्तं वा म्रक्षन्तं वा स्वदते।

५०. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से परस्पर एक दूसरे भिक्षु के ओष्ठ का तैल, घृत, वसा अथवा मक्खन से अभ्यंगन करता है अथवा म्रक्षण करता है और अभ्यंगन अथवा म्रक्षण करने वाले का अनुमोदन करता है।

५१. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अण्णमण्णस्स उट्ठे लोद्धेण वा कक्केण वा चुण्णेण वा वण्णेण वा उल्लोलेज्ज वा उव्वट्टेज्ज वा, उल्लोलेंतं वा उव्वट्टेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया अन्योन्यस्य ओष्ठौ लोध्रेण वा कल्केन वा वर्णेन वा चूर्णेन वा उल्लोलयेद् वा उद्वर्तेत वा, उल्लोलयन्तं वा उद्वर्तमानं वा स्वदते।

५१. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से परस्पर एक दूसरे भिक्षु के ओष्ठ पर लोध, कल्क, चूर्ण अथवा वर्ण का लेप करना है अथवा उद्वर्तन करता है और लेप अथवा उद्वर्तन करने वाले का अनुमोदन करता है।

५२. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अण्णमण्णस्स उट्ठे सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलेज्ज वा पधोएज्ज वा, उच्छोलेंतं वा पधोएंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया अन्योन्यस्य ओष्ठौ शीतोदकविकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन वा उत्क्षालयेद् वा प्रधावेद् वा, उत्क्षालयन्तं वा प्रधावन्तं वा स्वदते।

५२. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से परस्पर एक दूसरे भिक्षु के ओष्ठ का प्रासुक शीतल जल अथवा प्रासुक उष्ण जल से उत्क्षालन करता है अथवा प्रधावन करता है और उत्क्षालन अथवा प्रधावन करने वाले का अनुमोदन करता है।

५३. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अण्णमण्णस्स उट्ठे फुमेज्ज वा रएज्ज वा, फुमेंतं वा रएंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया अन्योन्यस्य ओष्ठौ 'फुमेज्ज' (फूत्कुर्याद्) वा रजेद् वा, 'फुमेंतं' (फूत्कुर्वन्तं) वा रजन्तं वा स्वदते।

५३. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से परस्पर एक दूसरे भिक्षु के ओष्ठ पर फूंक देता है अथवा रंग लगाता है और फूंक देने अथवा रंग लगाने वाले का अनुमोदन करता है।

दीह-रोम-पदं

दीर्घरोम-पदम्

दीर्घरोम-पद

५४. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अण्णमण्णस्स दीहाइं उत्तरोट्ठ-रोमाइं कप्पेज्ज वा संठवेज्ज वा, कप्पेंतं वा संठवेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया अन्योन्यस्य दीर्घाणि उत्तरौष्ठरोमाणि कल्पेत वा संस्थापयेद् वा, कल्पमानं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते।

५४. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से परस्पर एक दूसरे भिक्षु के उत्तरोष्ठ की दीर्घ रोमराजि को काटता है अथवा व्यवस्थित करता है और काटने अथवा व्यवस्थित करने वाले का अनुमोदन करता है।

५५. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अण्णमण्णस्स दीहाइं णासा-रोमाइं कप्पेज्ज वा संठवेज्ज वा, कप्पेंतं वा संठवेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया अन्योन्यस्य दीर्घाणि नासारोमाणि कल्पेत वा संस्थापयेद् वा, कल्पमानं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते।

५५. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से परस्पर एक दूसरे भिक्षु के नाक की दीर्घ रोमराजि को काटता है अथवा व्यवस्थित करता है और काटने अथवा व्यवस्थित करने वाले का अनुमोदन करता है।

अच्छि-पत्त-पदं

अक्षिपत्र-पदम्

अक्षिपत्र-पद

५६. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अण्णमण्णस्स दीहाइं अच्छि-पत्ताइं कप्पेज्ज वा संठवेज्ज वा, कप्पेंतं वा संठवेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुन प्रतिज्ञया अन्योन्यस्य दीर्घाणि अक्षिपत्राणि कल्पेत वा संस्थापयेद् वा, कल्पमानं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते।

५६. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से परस्पर एक दूसरे भिक्षु के दीर्घ अक्षिपत्रों को काटता है अथवा व्यवस्थित करता है और काटने अथवा व्यवस्थित करने वाले का अनुमोदन करता है।

अच्छि-पदं

५७. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अण्णमण्णस्स अच्छीणि आमज्जेज्ज वा पमज्जेज्ज वा, आमज्जंतं वा पमज्जंतं वा सातिज्जति ।।

अक्षि-पदम्

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया अन्योन्यस्य अक्षिणी आमृज्याद् वा प्रमृज्याद् वा, आमार्जन्तं वा प्रमार्जन्तं वा स्वदते।

अक्षि-पद

५७. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से परस्पर एक दूसरे भिक्षु की आंखों का आमार्जन करता है अथवा प्रमार्जन करता है और आमार्जन अथवा प्रमार्जन करने वाले का अनुमोदन करता है।

५८. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अण्णमण्णस्स अच्छीणि संवाहेज्ज वा पलिमद्देज्ज वा, संवाहेंतं वा पलिमद्देंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया अन्योन्यस्य अक्षिणी संवाहयेद् वा परिमर्दयेद् वा, संवाहयन्तं वा परिमर्दयन्तं वा स्वदते।

५८. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से परस्पर एक दूसरे भिक्षु की आंखों का संबाधन करता है अथवा परिमर्दन करता है और संबाधन अथवा परिमर्दन करने वाले का अनुमोदन करता है।

५९. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अण्णमण्णस्स अच्छीणि तेल्लेण वा घएण वा वसाए वा णवणीएण वा अब्भंगेज्ज वा मक्खेज्ज वा, अब्भंगेंतं वा मक्खेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया अन्योन्यस्य अक्षिणी तैलेन वा धृतेन वा वसया वा नवनीतेन वा अभ्यञ्ज्याद् वा म्रक्षेद्, अभ्यञ्जन्तं वा म्रक्षन्तं वा स्वदते।

५९. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से परस्पर एक दूसरे भिक्षु का तैल, घृत, वसा अथवा मक्खन से अभ्यंगन करता है अथवा म्रक्षण करता है और अभ्यंगन अथवा म्रक्षण करने वाले का अनुमोदन करता है।

६०. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अण्णमण्णस्स अच्छीणि लोद्धेण वा कक्केण वा चुण्णेण वा वण्णेण वा उल्लोलेज्ज वा उव्वट्टेज्ज वा, उल्लोलेंतं वा उव्वट्टेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया अन्योन्यस्य अक्षिणी लोध्रेण वा कल्केन वा चूर्णेन वा वर्णेन वा उल्लोलयेद् वा उद्वर्तेत वा, उल्लोलयन्तं वा उद्वर्तमानं वा स्वदते।

६०. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से परस्पर एक दूसरे भिक्षु की आंखों पर लोध, कल्क, चूर्ण अथवा वर्ण का लेप करता है अथवा उद्वर्तन करता है और लेप अथवा उद्वर्तन करने वाले का अनुमोदन करता है।

६१. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अण्णमण्णस्स अच्छीणि सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलेज्ज वा पधोएज्ज वा, उच्छोलेंतं वा पधोएंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया अन्योन्यस्य अक्षिणी शीतोदकविकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन वा उत्क्षालयेद् वा प्रधावेद् वा, उत्क्षालयन्तं वा प्रधावन्तं वा स्वदते।

६१. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से परस्पर एक दूसरे भिक्षु की आंखों का प्रासुक शीतल जल से अथवा प्रासुक उष्ण जल से उत्क्षालन करता है अथवा प्रधावन करता है और उत्क्षालन अथवा प्रधावन करने वाले का अनुमोदन करता है।

६२. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अण्णमण्णस्स अच्छीणि

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया अन्योन्यस्य अक्षिणी 'फुमेज्ज'

६२. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से परस्पर एक दूसरे

फुमेज्ज वा रएज्ज वा, फुमेंतं वा रएंतं वा सातिज्जति ।।

(फूत्कुर्याद्) वा रजेद् वा, 'फुमेंतं' (फूत्कुर्वन्तं) वा रजन्तं वा स्वदते।

भिक्षु की आंखों पर फूंक देता है अथवा रंग लगाता है और फूंक देने अथवा रंग लगाने वाले का अनुमोदन करता है।

दीह-रोम-पदं

६३. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अण्णमण्णस्स दीहाइं भमुग-रोमाइं कप्पेज्ज वा संठवेज्ज वा, कप्पेंतं वा संठवेंतं वा सातिज्जति ।।

दीर्घरोम-पदम्

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया अन्योन्यस्य दीर्घाणि भ्रूरोमाणि कल्पेत वा संस्थापयेद् वा, कल्पमानं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते।

दीर्घरोम-पद

६३. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से परस्पर एक दूसरे भिक्षु की भौहों की दीर्घ रोमराजि को काटता है अथवा व्यवस्थित करता है और काटने अथवा व्यवस्थित करने वाले का अनुमोदन करता है।

६४. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अण्णमण्णस्स दीहाइं पास-रोमाइं कप्पेज्ज वा संठवेज्ज वा, कप्पेंतं वा संठवेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया अन्योन्यस्य 'पास'रोमाणि कल्पेत वा संस्थापयेद् वा, कल्पमानं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते।

६४. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से परस्पर एक दूसरे भिक्षु के पार्श्वभाग की दीर्घ रोमराजि को काटता है अथवा व्यवस्थित करता है और काटने अथवा व्यवस्थित करने वाले का अनुमोदन करता है।

मल-णीहरण-पदं

६५. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अण्णमण्णस्स कायाओ सेयं वा जल्लं वा पंकं वा मलं वा णीहरेज्ज वा विसोहेज्ज वा, णीहरेंतं वा विसोहेंतं वा सातिज्जति ।।

मलनिस्सरण-पदम्

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया अन्योन्यस्य कायात् स्वेदं वा जल्लं वा पंकं वा मलं वा निस्सरेद् वा विशोधयेद् वा, निस्सरन्तं वा विशोधयन्तं वा स्वदते।

मलनिर्हरण-पद

६५. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से परस्पर एक दूसरे भिक्षु के शरीर के स्वेद, जल्ल, पंक अथवा मल का निर्हरण करता है अथवा विशोधन करता है और निर्हरण अथवा विशोधन करने वाले का अनुमोदन करता है।

६६. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अण्णमण्णस्स अच्छिमलं वा कण्णमलं वा दंतमलं वा णहमलं वा णीहरेज्ज वा विसोहेज्ज वा, णीहरेंतं वा विसोहेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया अन्योन्यस्य अक्षिमलं वा कर्णमलं वा दन्तमलं वा नखमलं वा निस्सरेद् वा विशोधयेद् वा, निस्सरन्तं वा विशोधयन्तं वा स्वदते।

६६. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से परस्पर एक दूसरे भिक्षु की आंख के मैल, कान के मैल, दांत के मैल अथवा नख के मैल का निर्हरण करता है अथवा विशोधन करता है और निर्हरण अथवा विशोधन करने वाले का अनुमोदन करता है।

सीसदुवारिय-पदं

६७. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए गामाणुगामं दूइज्जमाणे

शीर्षद्वारिका-पदम्

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया ग्रामानुग्रामं दूयमानः अन्योन्यस्य

शीर्षद्वारिका-पद

६७. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से ग्रामानुग्राम

अण्णमण्णस्स सीसदुवारियं करेति, करेंतं वा सातिज्जति ।।

शीर्षद्वारिकां करोति, कुर्वन्तं वा स्वदते।

परिव्रजन करता हुआ परस्पर एक दूसरे भिक्षु का सिर ढंकता है अथवा ढंकने वाले का अनुमोदन करता है।[५]

पुढवी-पदं

पृथिवी-पदम्

पृथिवी-पद

६८. जे भिक्खू माउग्गामं मेहुण-वडियाए अणंतरहियाए पुढवीए णिसीयावेज्ज वा तुयट्टावेज्ज वा, णिसीयावेंतं वा तुयट्टावेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः मातृग्रामं मैथुनप्रतिज्ञया अनन्तर्हितायां पृथिव्यां निषादयेद् वा त्वग्वर्तयेद् वा, निषादयन्तं वा त्वग्वर्तयन्तं वा स्वदते।

६८. जो भिक्षु अब्रह्म-सेवन के संकल्प से मातृग्राम को अव्यवहित पृथिवी पर बिठाता है अथवा सुलाता है और बिठाने वाले अथवा सुलाने वाले का अनुमोदन करता है।

६९. जे भिक्खू माउग्गामं मेहुण-वडियाए ससिणिद्धाए पुढवीए णिसीयावेज्ज वा तुयट्टावेज्ज वा, णिसीयावेंतं वा तुयट्टावेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः मातृग्रामं मैथुनप्रतिज्ञया सस्निग्धायां पृथिव्यां निषादयेद् वा त्वग्वर्तयेद् वा, निषादयन्तं वा त्वग्वर्तयन्तं वा स्वदते।

६९. जो भिक्षु अब्रह्म-सेवन के संकल्प से मातृग्राम को सस्निग्ध पृथिवी पर बिठाता है अथवा सुलाता है और बिठाने अथवा सुलाने वाले का अनुमोदन करता है।

७०. जे भिक्खू माउग्गामं मेहुण-वडियाए ससरक्खाए पुढवीए णिसीयावेज्ज वा तुयट्टावेज्ज वा, णिसीयावेंतं वा तुयट्टावेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः मातृग्रामं मैथुनप्रतिज्ञया ससरक्षायां पृथिव्यां निषादयेद् वा त्वग्वर्तयेद् वा, निषादयन्तं वा त्वग्वर्तयन्तं वा स्वदते।

७०. जो भिक्षु अब्रह्म-सेवन के संकल्प से मातृग्राम को सरजस्क पृथिवी पर बिठाता है अथवा सुलाता है और बिठाने अथवा सुलाने वाले का अनुमोदन करता है।

७१. जे भिक्खू माउग्गामं मेहुण-वडियाए मट्टियाकडाए पुढवीए णिसीयावेज्ज वा तुयट्टावेज्ज वा, णिसीयावेंतं वा तुयट्टावेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः मातृग्रामं मैथुनप्रतिज्ञया मृत्तिकाकृतायां पृथिव्यां निषादयेद् वा त्वग्वर्तयेद् वा, निषादयन्तं वा त्वग्वर्तयन्तं वा स्वदते।

७१. जो भिक्षु अब्रह्म-सेवन के संकल्प से मातृग्राम को सचित्त मिट्टी युक्त पृथिवी पर बिठाता है अथवा सुलाता है और बिठाने अथवा सुलाने वाले का अनुमोदन करता है।

७२. जे भिक्खू माउग्गामं मेहुण-वडियाए चित्तमंताए पुढवीए निसीयावेज्ज वा तुयट्टावेज्ज वा, णिसीयावेंतं वा तुयट्टावेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः मातृग्रामं मैथुनप्रतिज्ञया चित्तवत्यां पृथिव्यां निषादयेद् वा त्वग्वर्तयेद् वा, निषादयन्तं वा त्वग्वर्तयन्तं वा स्वदते।

७२. जो भिक्षु अब्रह्म-सेवन के संकल्प से स्त्री को सचित्त पृथिवी पर बिठाता है अथवा सुलाता है और बिठाने अथवा सुलाने वाले का अनुमोदन करता है।

७३. जे भिक्खू माउग्गामं मेहुण-वडियाए चित्तमंताए सिलाए णिसीयावेज्ज वा तुयट्टावेज्ज वा, णिसीयावेंतं वा तुयट्टावेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः मातृग्रामं मैथुनप्रतिज्ञया चित्तवत्यां शिलायां निषादयेद् वा त्वग्वर्तयेद् वा, निषादयन्तं वा त्वग्वर्तयन्तं वा स्वदते।

७३. जो भिक्षु अब्रह्म-सेवन के संकल्प से स्त्री को सचित्त शिला पर बिठाता है अथवा सुलाता है और बिठाने अथवा सुलाने वाले का अनुमोदन करता है।

७४. जे भिक्खू माउग्गामं मेहुण-वडियाए चित्तमंताए लेलूए णिसीयावेज्ज वा तुयट्टावेज्ज वा, णिसीयावेंतं वा तुयट्टावेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः मातृग्रामं मैथुनप्रतिज्ञया चित्तवति 'लेलूए' निषादयेद् वा त्वग्वर्तयेद् वा, निषादयन्तं वा त्वग्वर्तयन्तं वा स्वदते।

७४. जो भिक्षु अब्रह्म-सेवन के संकल्प से मातृग्राम को सचित्त ढेले पर बिठाता है अथवा सुलाता है और बिठाने अथवा सुलाने वाले का अनुमोदन करता है।

दारु-पदं

७५. जे भिक्खू माउग्गामं मेहुण-वडियाए कोलावासंसि वा दारुए जीवपइट्ठिए सअंडे सपाणे सबीए सहरिए सउस्से सउदए सउत्तिंग-पणग-दग-मट्टिय-मक्कडग-संताणगंसि णिसीयावेज्ज वा तुयट्टावेज्ज वा, णिसीयावेंतं वा तुयट्टावेंतं वा सातिज्जति।।

दारु-पदम्

यो भिक्षुः मातृग्रामं मैथुनप्रतिज्ञया 'कोला'वासे वा दारुके जीवप्रतिष्ठिते साण्डे सप्राणे सबीजे सहरिते सावश्याये सोदके सोत्तिंग पनक-दक-मृत्तिका-मर्कटक-सन्तानके निषादयेद् वा त्वग्वर्तयेद् वा, निषादयन्तं वा त्वग्वर्तयन्तं वा स्वदते।

दारु-पद

७५. जो भिक्षु अब्रह्म-सेवन के संकल्प से स्त्री को घुणयुक्त लकड़ी, जीव-प्रतिष्ठित लकड़ी, अंडे सहित, प्राण सहित, बीज सहित, हरित सहित, ओस सहित और उदक सहित लकड़ी, कीटिकानगर, पनक, कीचड़ अथवा मकड़ी के जाले से युक्त लकड़ी पर बिठाता है अथवा सुलाता है और बिठाने अथवा सुलाने वाले का अनुमोदन करता है।[१]

अंकादि-पदं

७६. जे भिक्खू माउग्गामं मेहुण-वडियाए अंकंसि वा पलियंकंसि वा णिसीयावेज्ज वा तुयट्टावेज्ज वा, णिसीयावेंतं वा तुयट्टावेंतं वा सातिज्जति।।

अंकादि-पदम्

यो भिक्षुः मातृग्रामं मैथुनप्रतिज्ञया अंके वा पर्यंके वा निषादयेद् वा त्वग्वर्तयेद् वा, निषादयन्तं वा त्वग्वर्तयन्तं वा स्वदते।

अंकादि-पद

७६. जो भिक्षु अब्रह्म-सेवन के संकल्प से स्त्री को अंक अथवा पल्यंक में बिठाता है अथवा सुलाता है और बिठाने अथवा सुलाने वाले का अनुमोदन करता है।

७७. जे भिक्खू माउग्गामं मेहुण-वडियाए अंकंसि वा पलियंकंसि वा णिसीयावेत्ता वा तुयट्टावेत्ता वा असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा अणुग्घासेज्ज वा अणुपाएज्ज वा, अणुग्घासेंतं वा अणुपाएंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः मातृग्रामं मैथुनप्रतिज्ञया अंके वा पर्यंके वा निषाद्य वा त्वग्वर्तयित्वा वा अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा अनुग्रासयेद् वा अनुपाययेद् वा, अनुग्रासयन्तं वा अनुपाययन्तं वा स्वदते।

७७. जो भिक्षु अब्रह्म-सेवन के संकल्प से स्त्री को अंक अथवा पल्यंक में बिठाकर अथवा सुलाकर अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य खिलाता है अथवा पिलाता है और खिलाने अथवा पिलाने वाले का अनुमोदन करता है।

आगंतारादि-पदं

७८. जे भिक्खू माउग्गामं मेहुण-वडियाए आगंतारेसु वा आरामागारेसु वा गाहावइकुलेसु वा परियावसहेसु वा णिसीयावेज्ज वा तुयट्टावेज्ज वा, णिसीयावेंतं वा तुयट्टावेंतं वा सातिज्जति।।

आगन्त्रागारादि-पदम्

यो भिक्षु मातृग्रामं मैथुनप्रतिज्ञया आगन्त्रागारेषु वा आरामागारेषु वा 'गाहा'पतिकुलेषु वा पर्यावसथेषु वा निषादयेद् वा त्वग्वर्तयेद् वा, निषादयन्तं वा त्वग्वर्तयन्तं वा स्वदते।

आगंतागार आदि-पद

७८. जो भिक्षु अब्रह्म-सेवन के संकल्प से स्त्री को यात्रीगृहों, आरामगृहों, गृहपतिकुलों अथवा आश्रमों में बिठाता है अथवा सुलाता है और बिठाने अथवा सुलाने वाले का अनुमोदन करता है।

७९. जे भिक्खू माउग्गामं मेहुण-वडियाए आगंतारेसु वा आरामागारेसु वा गाहावइकुलेसु वा परियावसहेसु वा णिसीयावेत्ता वा तुयट्टावेत्ता वा असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा अणुग्घासेज्ज वा अणुपाएज्ज वा, अणुग्घासेंतं वा अणुपाएंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षु मातृग्रामं मैथुनप्रतिज्ञया आगन्त्रागारेषु वा आरामागारेषु वा 'गाहा'पतिकुलेषु वा पर्यावसथेषु वा निषाद्य वा त्वग्वर्तयित्वा वा अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा अनुग्रासयेद् वा अनुपाययेद् वा, अनुग्रासयन्तं वा अनुपाययन्तं वा स्वदते।

७९. जो भिक्षु अब्रह्म-सेवन के संकल्प से स्त्री को यात्रीगृहों, आरामगृहों, गृहपतिकुलों अथवा आश्रमों में बिठाकर अथवा सुलाकर अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य खिलाता है अथवा पिलाता है और खिलाने अथवा पिलाने वाले का अनुमोदन करता है।[७]

तेइच्छ-पदं

चिकित्सा-पदम्

चिकित्सा-पद

८०. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अण्णयरं तेइच्छं आउट्टति, आउट्टंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया अन्यतरां चिकित्सां आवर्तते, आवर्तमानं वा स्वदते।

८०. जो भिक्षु स्त्री के साथ अब्रह्म-सेवन के संकल्प से किसी प्रकार की चिकित्सा करता है अथवा चिकित्सा करने वाले का अनुमोदन करता है।[८]

पोग्गलाणं अवहरण-उवहरण-पदं

पुद्गलानामपहरण-उपहरण-पदम्

पुद्गलों का अपहरण-उपहरण-पद

८१. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अमणुण्णाइं पोग्गलाइं अवहरति, अवहरंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया अमनोज्ञान् पुद्गलान् अपहरति, अपहरन्तं वा स्वदते।

८१. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से अमनोज्ञ पुद्गलों का अपहरण—विलग करता है अथवा अपहरण करने वाले का अनुमोदन करता है।

८२. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए मणुण्णाइं पोग्गलाइं उवहरति, उवहरंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया मनोज्ञान् पुद्गलान् उपहरति, उपहरन्तं वा स्वदते।

८२. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से मनोज्ञ पुद्गलों का उपहरण—संयोग करता है अथवा उपहरण करने वाले का अनुमोदन करता है।[९]

पसु-पक्खि-पदं

पशु-पक्षि-पदम्

पशु-पक्षी-पद

८३. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अण्णयरं पसुजातिं वा पक्खिजातिं वा पायंसि वा पक्खंसि वा पुंछंसि वा सीसंसि वा गहाय उव्विहति वा पव्विहति वा संचालेति वा, उव्विहंतं वा पव्विहंतं वा संचालेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया अन्यतरां पशुजातिं वा पक्षिजातिं वा पादे वा पक्षे वा पुच्छे वा शीर्षे वा गृहीत्वा उद्विध्यति वा प्रविध्यति वा संचालयति वा, उद्विध्यन्तं वा प्रविध्यन्तं वा संचालयन्तं वा स्वदते।

८३. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से किसी पशुजाति अथवा पक्षीजाति को पैर, पंख, पूंछ अथवा सिर से पकड़ कर ऊंचा उठाता है, उत्पाटन करता है, उन्हें पकड़कर छोड़ता है (प्रव्यथित करता है) अथवा संचालित करता है और उत्पाटित करने, प्रव्यथित करने अथवा संचालित करने वाले का अनुमोदन करता है।

८४. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अण्णयरं पसुजातिं वा पक्खिजातिं वा सोयंसि कट्ठं वा कलिंचं वा अंगुलियं वा सलागं वा अणुप्पवेसेत्ता संचालेति, संचालेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया अन्यतरां पशुजातिं वा पक्षिजातिं वा स्रोतसि काष्ठं वा किलिञ्चं वा अंगुलिकां वा शलाकां वा अनुप्रवेश्य संचालयति, संचालयन्तं वा स्वदते।

८४. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से किसी पशुजाति अथवा पक्षीजाति के स्रोत (अपानद्वार और योनिद्वार) में काष्ठ, किलिंच, अंगुली अथवा शलाका को अनुप्रविष्ट कर संचालित करता है अथवा संचालित करने वाले का अनुमोदन करता है।

८५. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अण्णयरं पसुजातिं वा पक्खिजातिं वा 'अयमित्थि' त्ति कट्टु आलिंगेज्ज वा परिस्सएज्ज वा परिचुंबेज्ज वा विच्छेदेज्ज वा, आलिंगतं वा परिस्सयंतं वा परिचुंबेंतं वा विच्छेदेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया अन्यतरां पशुजातिं वा पक्षिजातिं वा 'इयं स्त्री'ति कृत्वा आलिंगेद् वा परिष्वजेत वा परिचुम्बेद् वा विच्छेदयेद् वा, आलिंगन्तं वा परिष्वजमानं वा परिचुम्बन्तं विच्छेदयन्तं वा स्वदते।

८५. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से किसी पशुजाति अथवा पक्षीजाति का 'यह स्त्री है'—ऐसा भाव लाकर आलिंगन (स्पर्श) करता है, परिष्वजन (उपगूहन) करता है, परिचुम्बन करता है अथवा विच्छेदन करता है और आलिंगन, परिष्वजन, परिचुम्बन अथवा विच्छेदन करने वाले का अनुमोदन करता है।[10]

दाण-पडिच्छण-पदं

दान-प्रत्येषण-पदम्

दान-प्रत्येषण (ग्रहण)-पद

८६. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा देति, देंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः मातृग्रामाय मैथुनप्रतिज्ञया अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा ददाति, ददतं वा स्वदते।

८६. जो भिक्षु (स्त्री को हृदय में स्थापित कर) अब्रह्म-सेवन के संकल्प से स्त्री को अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य देता है अथवा देने वाले का अनुमोदन करता है।

८७. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पडिच्छति, पडिच्छंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः मातृग्रामात् मैथुनप्रतिज्ञया अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा प्रतीच्छति, प्रतीच्छन्तं वा स्वदते।

८७. जो भिक्षु (स्त्री को हृदय में स्थापित कर) अब्रह्म-सेवन के संकल्प से स्त्री से अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य को ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

८८. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए वत्थं वा पडिग्गहं वा कंबलं वा पायपुंछणं वा देति, देंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः मातृग्रामाय मैथुनप्रतिज्ञया वस्त्रं वा प्रतिग्रहं वा कम्बलं वा पादप्रोञ्छनं वा ददाति, ददतं वा स्वदते।

८८. जो भिक्षु (स्त्री को हृदय में स्थापित कर) अब्रह्म-सेवन के संकल्प से स्त्री को वस्त्र, प्रतिग्रह (पात्र), कंबल अथवा पादप्रोञ्छन देता है अथवा देने वाले का अनुमोदन करता है।

८९. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए वत्थं वा पडिग्गहं वा कंबलं वा पायपुंछणं वा पडिच्छति,

यो भिक्षुः मातृग्रामात् मैथुनप्रतिज्ञया वस्त्रं वा प्रतिग्रहं वा कम्बलं वा पादप्रोञ्छनं वा प्रतीच्छति, प्रतीच्छन्तं वा स्वदते।

८९. जो भिक्षु (स्त्री को हृदय में स्थापित कर) अब्रह्म-सेवन के संकल्प से स्त्री से वस्त्र, प्रतिग्रह, कंबल अथवा पादप्रोञ्छन को ग्रहण

पडिच्छंतं वा सातिज्जति ।।

करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

सज्झाय-पदं

९०. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए सज्झायं वाएति, वाएंतं वा सातिज्जति ।।

स्वाध्याय-पदम्

यो भिक्षुः मातृग्रामं मैथुनप्रतिज्ञया स्वाध्यायं वाचयति, वाचयन्तं वा स्वदते।

स्वाध्याय-पद

९०. जो भिक्षु (स्त्री को हृदय में स्थापित कर) अब्रह्म-सेवन के संकल्प से स्त्री को स्वाध्याय की वाचना देता है अथवा वाचना देने वाले का अनुमोदन करता है।

९१. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए सज्झायं पडिच्छति, पडिच्छंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः मातृग्रामाद् मैथुनप्रतिज्ञया स्वाध्यायं प्रतीच्छति, प्रतीच्छन्तं वा स्वदते।

९१. जो भिक्षु (स्त्री को हृदय में स्थापित कर) अब्रह्म-सेवन के संकल्प से स्त्री से स्वाध्याय (सूत्रार्थ) को ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

आकार-करण-पदं

९२. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए अण्णयरेणं इंदिएणं आकारं करेति, करेंतं वा सातिज्जति—

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घातियं ।।

आकार-करण-पदम्

यो भिक्षुः मातृग्रामस्य मैथुनप्रतिज्ञया अन्यतरेण इन्द्रियेण आकारं करोति, कुर्वन्तं वा स्वदते।

तत्सेवमानः आपद्यते चातुर्मासिकं परिहारस्थानम् अनुद्घातिकम्।

आकारकरण-पद

९२. जो भिक्षु स्त्री को हृदय में स्थापित कर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से किसी इन्द्रिय से आकार—रागात्मक संकेत (चेष्टा) करता है अथवा करने वाले का अनुमोदन करता है।[११]

—इनका आसेवन करने वाले को अनुद्घातिक चातुर्मासिक (चतुर्गुरु) परिहारस्थान प्राप्त होता है।

टिप्पण

१. सूत्र १-३

गन्ध-द्रव्यों के प्रयोग के समान माला का प्रयोग भी अनाचार है क्योंकि यह सूक्ष्मजीवों की हिंसा एवं लोकापवाद का हेतु है।[1] माला के निर्माण में मुख्यतः वनस्पतिकायिक एवं तदाश्रित जीवों की हिंसा होती है। माला धारण करना (पहनना) विभूषा है तथा उनका संग्रहण आसक्ति और मूर्च्छा की अभिव्यक्ति तथा वृद्धि का हेतु है। इस दृष्टि से माला बनाने, रखने तथा धारण करने से अहिंसा, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह—मुख्यतः इन तीन महाव्रतों का उपघात संभव है। मातृग्राम के साथ अब्रह्म के संकल्प से माला का निर्माण, धारण एवं परिभोग करना मैथुन-संज्ञा के अंतर्गत है। ऐसा करने वाले मुनि के लिए सूत्रकार ने गुरुचातुर्मासिक परिहारस्थान का विधान किया है।

प्रस्तुत सूत्रत्रयी में सोलह प्रकार की मालाओं का उल्लेख है। उनके विषय में कुछ संक्षिप्त जानकारी इस प्रकार है—

१. तृणमालिका—घास की माला, जैसे—प्राचीन काल में मथुरा में वीरण (खस) आदि के तृण से पंचवर्णी मालाएं बनाई जाती थीं।[2]

२. मूंजमालिका—विद्या आदि की सिद्धि के लिए मूंज की मालाओं का उपयोग होता था।[3]

३. वेत्रमालिका—बेंत के काष्ठ से भी मालाओं का निर्माण होता था।[4]

४. भेंडमालिका—भेंड का अर्थ है वनस्पति-विशेष या एरण्ड काष्ठ।[5] मराठी भाषा में भेंडी का अर्थ है पारीष पीपल। इसके फलों में एरण्ड के बीज की आकृति के चार-चार बीज होते हैं।[6] भेंड-मालिया से संभवतः इन्हीं बीजों से निर्मित माला का कथन किया गया है। भावप्रकाश निघंटु में बड़ी इलायची की अनेक उपजातियों में एक है—बंगाल, आसाम आदि क्षेत्रों में होने वाली मोरंग इलायची।[7] उससे निर्मित माला भी को भी भेंडमालिका कहा जा सकता है क्योंकि चूर्णि में भेंडमाला के विषय में मोरंगमयी उल्लेख मिलता है।[8]

५. मदनमालिका—मैनफल नामक पौधे के किंचित् हरिताभ श्वेत सुगन्धित फूलों से निर्मित माला अथवा मोम के फूलों से निर्मित पंचवर्णी माला।[9]

६. पिच्छमालिका—मोर पंखों से निर्मित माला।

७. दंतमालिका—दंतमयी माला के विषय में भाष्यकार लिखते हैं—पोंडिय दंते।[10] पोंड या पोंडय का अर्थ है—यूथाधिपति। प्रतीत होता है कि उस समय हाथीदांत की मालाओं का भी उपयोग होता था।[11]

८. श्रृंगमालिका—सींग से निर्मित माला, जैसे—पारसी लोग महिष के सींगों से माला बनाते थे।[12]

९. शंखमालिका—शंख और कोड़ियों से निर्मित माला।

१०. हड्डमालिका—अस्थियों से निर्मित मालाओं का भी कहीं-कहीं प्रचलन था, जैसे—बंदर की हड्डी से निर्मित माला बच्चों को पहनाई जाती थी।[13]

११. काष्ठमालिका—चन्दन आदि के काष्ठ से विविध प्रकार की मालाएं बनाई जाती थीं।

१२. पत्रमालिका—तगर आदि के पत्तों से निर्मित माला।[14]

१३. पुष्पमालिका—गुलाब, गेंदा, चमेली आदि के फूलों से निर्मित माला।

१४. फलमालिका—फलों से निर्मित माला, जैसे—गुंजाफल (घुंघुची) की माला।[15]

१५. बीजमालिका—बीजों से निर्मित माला, जैसे—रुद्राक्ष और

१. दस. अ.चू. पृ. ६२,६३—गन्धमल्ले सुहुमघायउड्डाहा।
२. निभा. भा. २, चू.पृ. ३९६—वीरणातितणेहिं पंचवण्णमालियाओ कीरंति जहा महुराए।
३. वही—मुंजमालिया जहा विज्जातियाणं जडीकरणे।
४. वही—वेत्तकट्ठेसु कडगमादी कीरंति।
५. आचू. पृ. १५५—थुल्लसारं भेंडं एरण्डकट्ठं वा।
६. भा. नि., पृ. ५१५।
७. वही, पृ. २२२।
८. निभा.भा. २, चू.पृ. ३९६—भेंडेसु भेंडाकारा करेंति, मोरंगमयी वा।
९. वही—मयणे मयणपुप्फा कीरंति, पंचवण्णा।
१०. वही, गा. २२८९
११. वही, भा. २, चू.पृ. ३९६—हत्थिदंतेसु दंतमयी।
१२. वही—महिससिंगेसु जहा पारसियाणं।
१३. वही—मक्कडहड्डेसु हड्डमयी डिंभाणं गलेसु बज्झति।
१४. वही—तगरपत्तेसु माला गुज्झति।
१५. वही—फलेहि गुंजातितेहिं।

जीयापोता के बीजों की माला।[1] भावप्रकाश निघंटु के अनुसार जिनके लड़के पैदा होते ही मर जाते, वे जीयापोता के बीजों की माला पहनते थे।[2]

१६. हरितमालिका—हरी वनस्पति से निर्मित माला, जैसे—विवाहों में लगाई जाने वाली वन्दनमालाएं।[3]

२. सूत्र ४-९

प्रस्तुत सूत्र-षट्क में दो आलापक हैं—लोह-पद तथा आभरण-पद। सामान्यतः धातुओं एवं आभूषणों का ग्रहण, निर्माण, धारण आदि परिग्रह है, अनावश्यक संग्रह है। अतः अपरिग्रह महाव्रत का अतिक्रमण है, अनाचार है। किसी स्त्री के प्रति आसक्त होकर अब्रह्म-सेवन के संकल्प से विविध प्रकार की धातुओं अथवा आभूषणों का निर्माण करना, उन्हें रखना अथवा उनको शरीर पर धारण करना (परिभोग करना या पहनना) मैथुन-संज्ञा के अन्तर्गत है। अतः सूत्रकार ने इन सभी प्रकार की प्रवृत्तियों के लिए गुरु चातुर्मासिक प्रायश्चित्त का विधान किया है। भाष्यकार ने लोहपद एवं आभरण-पद के आचरण से अनेक दोषों की संभावना अभिव्यक्त की है, यथा—सविकारता, स्वयं के व दूसरे के मोह का उद्दीपन, आत्म-संयम-विराधना, वध, बंधन आदि।[4]

शब्द विमर्श

लोह—किसी भी प्रकार की धातु, जैसे—स्वर्णधातु, रजतधातु आदि।[5]

हार—अठारह लड़वाला।

अर्धहार—नौ लड़वाला।[6]

वलय—कड़ा।

तुडिय—बाहुरक्षिका, भुजबन्द।[7]

केयूर—बाजूबंद (हाथ का आभूषण)।

पट्ट—चार अंगुल प्रमाण स्वर्णपट्ट।[8]

प्रलम्बसूत्र—नाभि तक लटकने वाली माला।[9]

३. सूत्र १०-१२

आगम साहित्य में निर्ग्रन्थ एवं निर्ग्रन्थी के लिए पांच प्रकार के वस्त्र अनुज्ञात हैं।[10] प्रस्तुत वस्त्र-पद में पैंतीस प्रकार के वस्त्रों का उल्लेख हुआ है। आयारचूला में भी किंचित् पाठ-भेद एवं क्रम-भेद के साथ इन्हीं वस्त्रों का उल्लेख मिलता है।[11] निशीथचूर्णि तथा आयारचूला की चूर्णि एवं टीका में इन वस्त्रों के विषय में विशद जानकारी उपलब्ध होती है। डॉ. जगदीश चन्द्र जैन ने भी अपनी पुस्तक 'जैन आगम साहित्य में भारतीय इतिहास' के चौथे अध्याय में पाद-टिप्पणों में अनेक जैनेतर ग्रन्थों महाभारत, कौटलीय अर्थशास्त्र आदि के उद्धरण दिए हैं। उनमें कतिपय उपयोगी उद्धरणों को यहां यथावत् ग्रहण किया जा रहा है।

१. आजिन—चर्म से निर्मित वस्त्र।[12] चूहे आदि के चर्म से निष्पन्न वस्त्र।[13]

२. सहिण—सूक्ष्म वस्त्र।[14]

३. कल्य—स्निग्ध एवं लक्षणोपेत वस्त्र।[15] आयारचूला की टीका में शोभन (सुन्दर) वस्त्र के लिए कल्याण शब्द का प्रयोग हुआ है।[16]

४. सहिण-कल्लाण—सूक्ष्म एवं लक्षणोपेत वस्त्र।[17]

५. आज—बकरी के सूक्ष्म रोम से बना वस्त्र।[18] निशीथचूर्णि के अनुसार तोसलि देश के बकरों के खुरों में लगी शैवाल से निर्मित वस्त्र 'आज' कहलाता है।[19]

६. काय—प्राकृत शब्दकोष में काय शब्द देश का तथा वनस्पति (काला अम्बर) का वाचक माना गया है।[20] निशीथचूर्णि के अनुसार काय देश में जिस तालाब में काकजंघ नामक पौधे के मणि (अवयवविशेष) गिरते हैं, उससे रंगे हुए वस्त्र काय-वस्त्र कहलाते हैं।[21] शीलांकसूरि के अनुसार किसी देश में इन्द्रनीलवर्ण वाला कपास होता है, उससे निष्पन्न वस्त्र कायक कहलाते हैं।[22]

१. निभा. २ चू.पृ. ३९६—रुद्दक्खेहि वा पुत्तंजीवगेहि।
२. भा. नि., पृ. ५३१।
३. निभा. भा. २, चू.पृ. ३९६—विवाहेसु अणेगविहेसु अणेगविहो वंदणमालियाओ कीरंति।
४. वही, गा. २२९३—
सविगारो मोहुद्दीरणा य वक्खेव रागऽणाइण्णं।
गहणं च तेण दंडिय-दिट्ठंतो नंदिसेणेण।।
५. अचि. ४/१०५—सर्वज्ञ्च तैजसं लोहम्।
६. निभा २, चू.पृ. ३९८—अट्ठारसलयाओ हारो, णवसु अड्ढहारो।
७. वही—तुडियं बाहुरक्खिया।
८. वही—चउरंगुलो सुवण्णओ पट्टो।
९. वही—नाभिं जा गच्छइ सा पलंबा।
१०. (क) ठाणं ५।१९०
(ख) कप्पो २/२८
११. आचू. ५।१४,१५
१२. निभा. २, चू.पृ. ३९९।
१३. आचू. टी. पृ. २६३—आजिनानि मूषकादिचर्मनिष्पन्नानि।
१४. निभा. २, चू.पृ. ३९९
१५. वही—कल्लाणं स्निग्धं, लक्षणयुक्तं वा।
१६. आचू. टी. पृ. २६३—कल्याणानि-शोभानानि।
१७. आचू. टी. पृ. २६३—श्लक्ष्णाणि—सूक्ष्माणि च तानि वर्णाच्छव्यादिभिश्च कल्याणानि।
१८. आचू. टी. २६३—क्वचिद्देशे अजाः सूक्ष्मरोमवत्यो भवन्ति, तत्पक्ष्मनिष्पन्नानि आजकानि भवन्ति।
१९. निभा. २, चू.पृ. ३९९—आयं णाम तोसलिविसए सीयतलाए अयाणं खुरेसु सेवालतरिया लग्गंति, तत्थ वत्था कीरंति।
२०. पाइय.
२१. निभा. २, चू.पृ. ३९९—कायाणि कायविसए काकजंधस्स जहिं मणी पडितो तलागे तत्थ रत्ताणि जाणि ताणि कायाणि भण्णंति।
२२. आचू. टी. पृ. २६३—क्वचिद्देशे इन्द्रनीलवर्णः कर्पासो भवति, तेन निष्पन्नानि कायकानि।

७. क्षौम—कपास से निर्मित वस्त्र, सूती वस्त्र।

८. दुकूल—दुकूल नामक वृक्ष की छाल को ओखली में कूटकर उसके रेशे या सूक्ष्म रोओं से निर्मित वस्त्र।[1] शीलांकसूरि के अनुसार गौड देश में होने वाली विशिष्ट कपास से निर्मित वस्त्र दुकूल कहलाता है।[2]

९. तिरीटपट्ट—तिरीट नामक वृक्ष की छाल के पट्टसदृश तंतुओं से निर्मित वस्त्र।[3]

१०. मालय—मलय देश में होने वाले रेशम के कीड़ों की लार से निर्मित वस्त्र।[4] मलयज सूत्रों से निष्पन्न वस्त्र मालय कहलाते हैं।[5]

११. पत्तुण्ण—वल्कल तन्तुओं से निष्पन्न वस्त्र।[6] डॉ. जगदीशचन्द्र जैन के अनुसार महाभारत एवं कौटलीय अर्थशास्त्र में भी पत्रोर्ण वस्त्र का उल्लेख आता है।[7]

१२,१३. अंशुक और चीनांशुक—दुकूल वृक्ष के अन्तर्वर्ती सूक्ष्म रेशों से निर्मित महीन वस्त्र अंशुक तथा सूक्ष्मतर वस्त्र चीनांशुक कहलाता है।[8] ऐसा माना जाता है कि चीनांशुक चीनी रेशम या कोआ रेशम से बनता है। अणुओगद्दाराइं में पट्ट, मलय, अंशुक, चीनांशुक एवं कृमिराग को कीटज वस्त्र माना गया है।[9] विशेष हेतु द्रष्टव्य—जैन आगम साहित्य में भारतीय इतिहास, पृ. २०७, पाद टिप्पण ३।

१४. दैशराग—जिस देश में जो रंगने की विधि हो, उससे रंगा हुआ या देशविशेष में रंगा हुआ वस्त्र दैशराग है।[10] देशराग नामक देश में रंगा हुआ वस्त्र।[11]

१५. अमिल—अमिल का अर्थ है भेड़।[12] उसके सूक्ष्म रोओं से निर्मित वस्त्र।[13]

१६. गर्जल—पहनते समय मेघगर्जन या बिजली के समान कड़कड़ शब्द करने वाले वस्त्र।[14]

१७. स्फटिक—स्फटिक के समान स्वच्छ वस्त्र।[15]

१८. कौतव (कोयव)—चूहे के रोम से बना वस्त्र।[16]

१९. कंबल—भेड़ आदि की ऊन से बना वस्त्र।

२०. प्रावारक—जंगली जानवरों के रोओं से बना महीन और बढ़िया किस्म का दुशाला या तूस।[17]

२१. कनक—सोने को पिघला कर उसमें रंगे हुए सूत से बने वस्त्र।[18]

२२. कनककृत—स्वर्णमय किनारी वाले वस्त्र।[19] आचारचूला की वृत्ति में कनक के समान कान्ति वाले वस्त्रों को कनककान्ति कहा गया है।[20]

२३. कनकपट्ट—स्वर्ण के पट्टों वाले वस्त्र।[21]

२४. कनकखचित—सुनहरे धागे के बेल-बूंटे वाले वस्त्र।[22]

२५. कनकपुष्पित—जिस पर सोने के फूल कढ़े हुए हों।[23] इसे ट्रिंसल प्रिंटिंग कहते हैं।[24]

२६,२७. व्याघ्र चर्मनिर्मित, विव्याघ्र के चर्म से निर्मित—क्रमशः व्याघ्र एवं चीते की चर्म से निर्मित वस्त्र।[25]

२८. आभरण-वस्त्र—षट्पत्र आदि एक ही प्रकार के नमूनों से मंडित वस्त्र।[26]

---

१. निभा. २, चू.पृ. ३९९—दुगुल्लो रुक्खो, तस्स वागो घेत्तुं उदूखले कुट्टिज्जति....दुगुल्लो।
२. आचू. टी. २६३—दुकूलं गौडविषयविशिष्टकार्पासिकं।
३. निभा. भा. २ चू.पृ. ३९९—तिरीडरुक्खस्स वागो, तस्स तंतु पट्टसरिसो सो तिरीलो पट्टो, तम्मि कयाणि तिरीडपट्टाणि।
४. वही—किरीडयलाला मलयविसए मयलाणि पत्ताणि कोविज्जति।
५. आचू. टी. २६३—मलयानि-मलयज सूत्रोत्पन्नानि।
६. वही—पत्तुन्नं ति वल्कलतन्तुनिष्पन्नम्।
७. जैन आगम....., पृ. २०६, पादटिप्पण ४—पत्रोर्ण का उल्लेख महाभारत २/७८/५४ में है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र २/११/२९/११२ के अनुसार यह मगध, पुण्ड्रक तथा सुवर्ण कुड्यक—इन तीन देशों में उत्पन्न होता था।
८. निभा. भा. २ चू.पृ. ३९९—दुगुल्लातो अब्भंतरहिते जं उपज्जति तं अंसुयं, सुहुमतरं चीणंसुयं भण्णति।
९. अणु. सू. ४३।
१०. निभा. २, चू.पृ. ३९९—जत्थविसए जा रंगविधी ताए, देसे रागा देसरागा।
११. पाइय.
१२. दे. श. को.
१३. निभा. २, चू.पृ. ३९९—रोमेसु कया अमिला।
१४. वही, पृ. ४००—णिम्मला अमिला घट्टिणी घटिता ते परिभुज्जमाणा कडंकडेंति, गज्जितसमाणसद्दं करेंति ते गज्जला।
१५. वही—फडिगपाहाणनिभा फाडिया अच्छा इत्यर्थः।
१६. अनु. हारि. वृ. पृ. २२—कुतवं उंदररोमेसु।
१७. पाणिनि., पृ. १३५
१८. (क) निभा. चू.पृ. ४००—सुवण्णे दुते सुत्तं रज्जति, तेण जं वुतं तं कणगं।
(ख) जैन आगम.......पृ. २०७—सुवर्ण सुनहरे रंग का धागा होता है जो खासकर के रेशमी कीडों से तैयार होता है।
(ग) बृ.भा., गा. ३६६२ वृत्ति।
१९. निभा. भा. २ चू.पृ. ४००—अंता जस्स कणगेण कता तं कणगकयं।
२०. आचू. पृ. २६३—कनकस्येव कान्तिर्येषां तानि कनककान्तीनि।
२१. निभा. भा. २, चू.पृ. ४००—कणगेण जस्स पट्टा कता, तं कणगपट्टं।
२२. वही—कणगसुत्तेण फुल्लिया जस्स पाडिया, तं कणगखचितं।
२३. वही—कणगेण जस्स फुल्लिताउ दिण्णाउ तं कणगफुल्लियं।
२४. जैन आगम........पृ. २०८—अंग्रेजी में इसे ट्रिंसल प्रिंटिंग कहते हैं। इसकी छापने की विधि के लिए देखिए—सर जार्जवाट, इंडियन आर्ट एट दिल्ली (१९०३, पृ. २६७)
२५. निभा. भा. २, चू.पृ. ४००—वग्घस्स चम्मं वग्घाणि, चित्तगचम्मं विवग्घाणि।
२६. वही—एत्थ छपत्रिकादि एकाभरणेन मंडिता।

२९. आभरणविचित्र वस्त्र—पत्र, चन्द्रलेखा, स्वस्तिक आदि विविध नमूनों से मंडित वस्त्र।[1]

३०. उद्र-वस्त्र—कुत्ते की आकृति वाले जलचर प्राणी के चर्म से निर्मित वस्त्र।[2] अथवा सिन्धुदेशीय मत्स्य के सूक्ष्म चर्म से निर्मित वस्त्र।[3]

३१-३३. गौरमृगाजिन, कृष्णमृगाजिन और नीलमृगाजिन—क्रमशः सफेद, काले एवं नीले हरिण के चर्म से निर्मित वस्त्र।

३४. पैश और पैशलेश—सिन्धु देश में होने वाले 'पेश' नाम के पशु की चर्म एवं उसके सूक्ष्म पक्ष्म से निर्मित वस्त्र क्रमशः पैश और पैशलेश कहलाते हैं।[4] डॉ. जैन के अनुसार वैदिक युग में पेश के सुनहरे बेलबूंटों वाला कलात्मक वस्त्र होता था, जिसे पेशकारी स्त्रियां बनाया करती थीं।[5]

आयारचूला की चूर्णि, अनुयोगद्वार की वृत्ति एवं बृहत्कल्पभाष्य की टीका आदि में भी इनमें से कुछ वस्त्रों के विषय में अच्छी जानकारी उपलब्ध होती है। विनयवस्तु, महावग्ग आदि बौद्ध ग्रन्थों तथा महाभारत, तैत्तरीय-संहिता, कौटलीय-अर्थशास्त्र आदि ग्रन्थों में भी वस्त्रों के विषय में जानकारी उपलब्ध होती है।

जो भिक्षु इन महार्घ वस्त्रों का अब्रह्म-सेवन के संकल्प से निर्माण, धारण या उपयोग करता है, वह गुरुचातुर्मासिक प्रायश्चित्त को प्राप्त करता है।

सूत्र १३

४. अक्ष को (अक्खंसि)

चूर्णिकार ने अक्ष शब्द के दो अर्थ किए हैं—१. कनपटी का भाग २. कोई भी इन्द्रियजात।[6]

५. सूत्र १४-६७

पाद-परिकर्म से लेकर शीर्षद्वारिका पर्यन्त सारा आलापक परस्पर-करण के रूप में चौथे उद्देशक में आया हुआ है। छठे उद्देशक में यही आलापक मातृग्राम के साथ मैथुन-प्रतिज्ञा के विषय में स्वयं-करण के रूप में आया है। प्रस्तुत आलापक में उपर्युक्त दोनों दोषों का संयोग होने से दोनों से होने वाली दोषापत्ति स्वाभाविक है। मातृग्राम के लिए अभिरमणीय होने के संकल्प से परस्पर पाद-परिकर्म, काय-परिकर्म, व्रण-परिकर्म आदि कार्य करना मैथुन-संज्ञा के अंतर्गत है। अतः इनका प्रायश्चित्त गुरु चातुर्मासिक है।

६. सूत्र ६८-७५

अव्यवहित पृथिवी, सस्निग्ध पृथिवी, सरजस्कपृथिवी यावत् प्राण, बीज, हरित आदि से युक्त स्थान पर प्रमाद या अनाभोग से बैठना भी दोष का हेतु है, फिर मैथुन की प्रतिज्ञा से किसी मातृग्राम को बिठाने की तो बात ही क्या? प्रस्तुत आलापक में निषिद्ध सारे ही पद अहिंसा एवं ब्रह्मचर्य—दोनों महाव्रतों के लिए सद्योघाती हैं। अतः इनका आचरण करने वाले भिक्षु को गुरु चातुर्मासिक प्रायश्चित्त प्राप्त होता है।

शब्द विमर्श

१. अनन्तर्हित—अव्यवहित। जिस पृथिवी के अन्त जीवों से रहित हों, वह अन्तरहित कहलाती है। जो अन्तरहित नहीं है, वह संपूर्णतया सचित्त होती है, मिश्र नहीं।[7] अनन्त का एक अर्थ है मध्यस्थित। मध्यस्थित पृथिवी शस्त्रोपहत न होने के कारण सचित्त होती है।[8] परन्तु सूत्र ७२ में पुनः सचित्त पृथिवी पर बिठाने का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है, अतः यहां अनन्तर्हित का अर्थ 'अव्यवहित' करना अधिक संगत है। तेरहवें उद्देशक की व्याख्या में भाष्य एवं चूर्णि में भी अनन्तर्हित का अव्यवहित अर्थ उपलब्ध होता है।[9]

२. सस्निग्ध—जल से गीली, ईषद् आर्द्र।[10]

३. सरजस्क—सचित्त पृथ्वीकायिक रजों से स्पृष्ट।[11]

४. मृत्तिकाकृत—सचित्त मिट्टी से युक्त।[12]

५. लेलू—ढेला। यह देशी शब्द माना गया है।[13]

६. कोलावास—घुण से युक्त।[14] (जहां घुण रहते/होते हैं,

---

१. निभा. २ चू.पृ. ४००—आभरणत्थपत्रिकं चंदलेहिक-स्वस्तिक-घंटिक-मोत्तिकमादीहिं मंडिता आभरणविचित्ता।
२. वही—सुणगागिति जलचरा सत्ता तेसिं अजिणा उद्दा।
३. आचू. टी. पृ. २६३—उद्रा सिन्धुविषये मत्स्यास्तत्सूक्ष्मचर्मनिष्पन्नानि उद्राणि।
४. वही, पृ. २६३—पेसाणि सिन्धुविषये एव सूक्ष्मचर्माणः पशवः तच्चर्मनिष्पन्नानि इति, पेसलाणित्ति तच्चर्मपक्ष्मनिष्पन्नानि।
५. जैन आगम..... पृ. २०८, वैदिक युग में पेस के सुनहरे बेलबूंटों वाला कलात्मक वस्त्र होता था। पेशकारी स्त्रियां इसे बनाया करती थीं—वैदिक इण्डेक्स २, पृ. २२
६. निभा. भा. २, चू.पृ. ४००—अक्खा णाम संखाणियप्पदेसा। अहवा—अण्णतरं इंदियजायं अक्खं भण्णति।
७. वही, भा. ३, चू.पृ. ३७६—जीए पुढवीए अंता जीएहिं रहिया सा पुढवी अंतरहिया, ण अंतरहिया अणंतरहिया, सर्वा सचेतना इत्यर्थः।
८. वही, भा. २, चू.पृ. ४०७—सा सीतवातादिएहिं सत्थेहिं रहिता अशस्त्रोपहता।
९. वही, गा. ४२५८—अंतररहिताणंतर......। चूर्णि—अंतरणं ववधाणं तेण रहिता निरंतरमित्यर्थः।
१०. (क) वही, भा. २, चू.पृ. ४०७—आउक्काएण पुण ससणिद्धा।
(ख) वही, भा. ३, चू.पृ. ३७६—ईसिं उल्ला ससणिद्धा।
११. वही, भा. २, चू.पृ. ४०७—सचित्तपुढवीरयेण ससरक्खा।
१२. अर्थ समीक्षा की दृष्टि से मृत्तिकाकृत एवं सरजस्क पृथिवी एकार्थक प्रतीत होते हैं। विस्तार हेतु द्रष्टव्य—नव. पृ. ७१५—पादटिप्पण (१)।
१३. निभा. भा. २, चू.पृ. ४०७—लेलू लेट्टु।
१४. वही—कोला घुणा, ताण आवासो घुणितं काष्ठमित्यर्थः।

वह कोलावास कहलाता है।)

७. अण्डे, प्राण, बीज और हरित—चींटी आदि के अंडे, कुंथु आदि प्राणी, शालि आदि बीज और दुर्वा आदि हरित कहलाते हैं।[१] अनंकुरित बीज और अंकुरित हरित होता है।[२]

८. उर्त्तिग—देशीशब्दकोश में इसके दोनों अर्थ उपलब्ध होते हैं—१. चींटियों का बिल २. सर्पच्छत्र।[३] निशीथचूर्णि में इसका अर्थ कीटिकानगर किया गया है।[४]

९. पनक—काई। यह पांचों वर्ण की, अंकुरित तथा अनंकुरित—दोनों प्रकार की होती है।[५]

१०. दकमृत्तिका—इसे दो पद मानकर—पानी और मिट्टी दो अर्थ भी किए जा सकते हैं।[६] यहां इसका अर्थ गीली मिट्टी—कीचड़ किया गया है।[७]

११. मर्कटक-संतानक—मकड़ी का जाला।[८]

७. सूत्र ७६-७९

प्रस्तुत आलापकद्वयी में कुत्सित मनोभावों के साथ मातृग्राम के साथ की जाने वाली क्रियाओं के प्रायश्चित्त का निरूपण हुआ है। सामान्य मनोभावों से भी स्त्री के साथ ये क्रियाएं श्रामण्य के लिए अहितकर हैं तो अब्रह्म-सेवन के संकल्प से की जाने पर बात ही क्या?

८. सूत्र ८०

चिकित्सा के चार प्रकार हैं—१. वातिक चिकित्सा २. पैत्तिक चिकित्सा ३. श्लेष्मिक चिकित्सा और ४. सान्निपातिक चिकित्सा।[९] अब्रह्म के संकल्प से स्वयं की अथवा स्त्री की चिकित्सा करना वर्जनीय है। स्त्री की चिकित्सा करने पर उसके ज्ञातिजनों के रोष और उससे होने वाले उड्डाह, अप्रभावना आदि दोष भी संभव हैं।[१०]

शब्द विमर्श

आउट्ट—करना।[११]

९. सूत्र ८१,८२

अमनोज्ञ पुद्गलों के अपहार एवं मनोज्ञ पुद्गलों के उपहार के दो प्रकार हैं—शरीर एवं स्थान। शरीर के भीतर होने वाले अशुचि पुद्गलों—श्लेष्म, पित्त आदि का पृथक्करण वमन, विरेचन आदि से तथा बाह्य (अवयवों पर लगे हुए) पीव, शोणित आदि अशुचि पदार्थों का पृथक्करण स्नान, उद्वर्तन आदि से संभव है।

जहां जहां स्त्री बैठती है, उस स्थान के रेत, कूड़े, कंकर आदि को संमार्जन, आलेपन, जल के आवर्षण एवं पुष्पोपचार के द्वारा दूर करना अमनोज्ञ पुद्गलों का अपहार तथा वहां सुगन्धित पदार्थों या मनोज्ञ ध्वनियों के द्वारा मनोज्ञ पुद्गलों को उत्पन्न करना शुभ पुद्गलों का उपहार कहलाता है। कुत्सित भावों से इस प्रकार की प्रवृत्ति करने वाले को गुरु चातुर्मासिक प्रायश्चित्त प्राप्त होता है।[१२]

१०. सूत्र ८३-८५

पशु अथवा पक्षी के साथ कुतूहल अथवा क्रीड़ा के भाव से भी उनके अंगों का संचालन करना, उन्हें व्यथित करना वर्जित है तो अब्रह्म के संकल्प से अथवा 'एसा इत्थी' इस भाव से करना तो और भी कुत्सित प्रवृत्ति है। इससे आत्मविराधना, संयमविराधना एवं प्रवचनविराधना भी होती है, अतः इन प्रवृत्तियों का प्रायश्चित्त है—गुरु चातुर्मासिक।

शब्द विमर्श

१. उव्विह—प्राकृत शब्दकोष पाइयसद्दमहण्णवो में उव्विह धातु का एक अर्थ है ऊंचा फेंकना।[१३] निशीथचूर्णि में उज्जिहति-उप्पाडेति (उत्पाटन करना) किया गया है।

२. पव्विह—प्रकृष्ट रूप से व्यथित करना, ताड़ना देना। निशीथचूर्णि में इसका अर्थ प्रकृष्ट रूप से फेंकना अथवा पकड़ कर छोड़ना किया गया है।[१५]

३. आलिंग—आलिंगन करना, स्पर्श करना।[१६]

---

१. निभा. २ चू.पृ. ४०७—पिपीलियादिअंडेसु पडिबद्धं, पाणाकुंथुमादी, सालगादी बीया, दुव्वादी हरिया।
२. वही, भा. ३, चू. पृ. ३७६—सबीए.......अणंकुरियं, तं चेव अंकुरभिन्नं हरितं।
३. दे. श. को.
४. (क) निभा. भा. २, चू.पृ. ४०७—उत्तिंगो कीलियावासे।
(ख) वही, भा. ३, चू.पृ. ३७६—कीडयणगरगो उत्तिंगो।
५. (क) वही, भा. २, चू.पृ. ४०७—पणगो उल्ली।
(ख) वही, भा. ३, चू.पृ. ३७६—पणगो पंचवण्णो संकुरो अणंकुरो वा।
६. वही, भा. २, चू.पृ. ४०७—दगं पाणीयं, कोमारा मट्टिया।
७. (क) वही—उल्लिया मट्टिया।
(ख) वही, भा. ३, चू.पृ. ३७६—दगमट्टिया चिक्खल्लो सचित्तो मीसो वा।
८. वही, भा. २, चू.पृ. ४०७—कोलियापुडगो मक्कडसंताणओ।
९. वही, पृ. ४०९—चतुव्विधाए तिगिच्छाए-वादिय-पेत्तिय-संभिय-सण्णिवातियाए।
१०. वही—जा वि तत्थ घंसणपीसण-विराहणा.....पदोसं गच्छेज्जा।
११. वही—आउट्टति णाम करेति।
१२. वही, गा. २३१७-२३१९ व इनकी चूर्णि
१३. पाइय.
१४. निभा. भा. २, चू. पृ. ४१०—उज्जिहति—उप्पाडेति।
१५. वही—परगसिणं वहइ, खिवति पव्विहति। अहवा—प्रतीपं विहं पविहं मुंचतीत्यर्थः।
१६. वही, पृ. ४११—आलिंगनं स्पर्शनं।

४. **परिस्स**—परिष्वजन—उपगूहन करना।[1]

५. **परिचुंब**—चुम्बन करना, मुख से चूमना।[2]

११. सूत्र ८६-९२

प्रस्तुत उद्देशक के अन्य सूत्रों के समान इन सूत्रों में भी अशन, पान आदि तथा वस्त्र-पात्रादि के दान एवं ग्रहण, सूत्रार्थ के दान एवं ग्रहण तथा इन्द्रिय-विशेष के द्वारा संकेत—आकारकरण के पीछे अब्रह्म का भाव निहित है, अतः इनका प्रायश्चित्त अनुद्घातिक चातुर्मासिक है।

१. निभा. भा. २ चू.पृ. ४११—उपगूहनं परिष्वजनं।

२. वही—मुखेन चम्बनं।

अट्ठमो उद्देसो

आठवां उद्देशक

आमुख

प्रस्तुत उद्देशक में मुख्य प्रतिपाद्य दो हैं—ब्रह्मचर्य-विराधना का प्रायश्चित्त और राजपिण्ड-सेवन का प्रायश्चित्त। पूर्ववर्ती दो उद्देशकों के समान आठवें उद्देशक के पूर्वार्द्ध का केन्द्रीय तत्त्व है—ब्रह्मचर्य। भिक्षु ब्रह्मचर्य की सुरक्षा की दृष्टि से अकेली स्त्री के साथ कहां, क्या न करे—इसका विस्तृत निर्देश उपलब्ध होता है। भाष्यकार कहते हैं—माता के साथ भी अकेले साधु के लिए धर्मकथा करना वर्जित है तो फिर तरुण स्त्रियों के साथ अनार्य—कामकथा आदि की तो बात ही क्या?[१] स्त्री की ओर से भिक्षु अपनी दृष्टि को उसी प्रकार त्वरा के साथ प्रतिसंहृत कर ले, जैसे ग्रीष्म ऋतु की तपती दुपहरी में भास्कर को देख कर व्यक्ति अपनी दृष्टि को हटा लेता है। अकेला भिक्षु यदि अकेली स्त्री के साथ आहार, विहार, उच्चार आदि का परिष्ठापन, स्वाध्याय अथवा किसी प्रकार की अनार्य, असभ्य कथा करता है तो उसका चित्त उन्मार्ग की ओर उन्मुख हो सकता है, उसका स्वयं का ब्रह्मचर्य असुरक्षित हो जाता है तथा अन्य लोगों में भी शंका आदि दोष उत्पन्न हो सकते हैं। इसी प्रसंग में सूत्रकार ने केवल स्त्रियों के मध्य धर्मकथा करने, निर्ग्रन्थी के साथ अपहृत मनःसंकल्प होकर आहार, विहार आदि करने वाले भिक्षु के लिए भी प्रायश्चित्त का कथन किया है।

एकाकिनी स्त्री के साथ एकाकी भिक्षु के आहार, विहार के विषय में भाष्यकार ने अनात्मवशता, रोग, उपसर्ग, नगररोध, अटवी, संभ्रम, भय, वर्षा एवं दीक्षा आदि अपवादों का उल्लेख किया है, जिनमें उपसर्ग के प्रसंग में शशक, भसक एवं सुकुमालिका की कथा का विस्तार से कथन करते हुए मानवीय मनोविज्ञान एवं काम-विडम्बना का सुन्दर चित्रण किया है। इसी प्रकार नगररोध में भी भिक्षु नगर के आठ भाग कर भिक्षा करे, किन्तु मासकल्प की हानि न करे, साधु-साध्वियों के एकत्र वास की समस्याएं, उसके कारण एवं सावधानियों आदि का भी भाष्यकार ने अच्छा वर्णन किया है। कदाचित् किसी छिन्नमडंब आदि में स्वयं की मां, बहिन आदि कोई अशंकनीय स्त्री दीक्षा हेतु निवेदन करे और भिक्षु उसे दीक्षित करना चाहे तो उसकी तथा स्वयं की किस प्रकार परीक्षा करे, किस प्रकार उसके निर्वाह की व्यवस्था का सम्यग् ध्यान देकर उसे दीक्षित एवं शिक्षित करे तथा गुरुचरणों में पहुंचाए—इत्यादि अनेक बातों का भी बहुत सुन्दर वर्णन किया गया है।

प्रस्तुत (आठवें) उद्देशक के उत्तरार्द्ध का मुख्य प्रतिपाद्य राजपिण्ड से संबद्ध है। महोत्सवों, मेलों आदि में जहां भी राजपिण्ड हो—चाहे केवल राजा की ओर से भोज आदि दिया जाए अथवा राजा की अंशिका हो, यदि भिक्षु वहां आहार, पानक आदि ग्रहण करता है तो वे ही दोष संभव हैं, जो राजपिण्ड को ग्रहण करने से संभव हैं। इसी प्रकार क्षत्रिय, मूर्धाभिषिक्त राजा उत्तरशाला अथवा उत्तरगृह में गया हुआ हो, अश्वशाला, गजशाला, मंत्रशाला, गुह्यशाला आदि में गया हुआ हो, वहां दिए जाने वाले अशन, पान आदि को ग्रहण करने तथा राजा के द्वारा दिए गए अनाथपिण्ड, कृपणपिण्ड, वनीपकपिण्ड आदि को ग्रहण करने से भी अनेक दोषों की संभावना रहती है अतः प्रस्तुत उद्देशक में इन सबके लिए अनुद्घातिक चातुर्मासिक प्रायश्चित्त का विधान किया गया है।

---

१. निभा. गा. २३४४

अट्ठमो उद्देसो : आठवां उद्देशक

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
एगो एगित्थीए-पदं	**एकः एकस्त्रिया-पदम्**	**अकेला एकाकी स्त्री के साथ-पद**
१. जे भिक्खू आगंतारेसु वा आरामगारेसु वा गाहावइकुलेसु वा परियावसहेसु वा एगो एगित्थीए सद्धिं विहारं वा करेइ, सज्झायं वा करेइ, असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा आहारेति, उच्चारं वा पासवणं वा परिट्ठवेइ, अण्णयरं वा अणारियं णिट्ठुरं असमणपाओग्गं कहं कहेति, कहेंतं वा सातिज्जति ।।	यो भिक्षुः आगन्त्रागारेषु वा आरामागारेषु वा 'गाहा'पतिकुलेषु वा पर्यावसथेषु वा एकः एकस्त्रिया सार्द्धं विहारं वा करोति, स्वाध्यायं वा करोति, अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा आहरति, उच्चारं वा प्रस्रवणं वा परिष्ठापयति, अन्यतरां वा अनार्यां निष्ठुराम् अश्रमणप्रायोग्यां कथां कथयति, कथयन्तं वा स्वदते ।	१. जो भिक्षु यात्रीगृहों, आरामगृहों, गृहपतिकुलों अथवा आश्रमों में अकेला एकाकी स्त्री के साथ विहरण करता है, स्वाध्याय करता है, अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य खाता है, उच्चार अथवा प्रस्रवण का परित्याग करता है अथवा किसी प्रकार की अनार्य, निष्ठुर, अश्रमणप्रायोग्य कथा कहता है अथवा कहने वाले का अनुमोदन करता है।
२. जे भिक्खू उज्जाणंसि वा उज्जाणगिहंसि वा उज्जाणसालंसि वा णिज्जाणंसि वा णिज्जाणगिहंसि वा णिज्जाणसालंसि वा एगो एगित्थीए सद्धिं विहारं वा करेइ, सज्झायं वा करेइ, असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा आहारेति, उच्चारं वा पासवणं वा परिट्ठवेइ, अण्णयरं वा अणारियं णिट्ठुरं असमणपाओग्गं कहं कहेति, कहेंतं वा सातिज्जति ।।	यो भिक्षुः उद्याने वा उद्यानगृहे वा उद्यानशालायां वा निर्याणे वा निर्याणगृहे वा निर्याणशालायां वा एकः एकस्त्रिया सार्द्धं विहारं वा करोति, स्वाध्यायं वा करोति, अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा आहरति, उच्चारं वा प्रस्रवणं वा परिष्ठापयति, अन्यतरां वा अनार्यां निष्ठुराम् अश्रमणप्रायोग्यां कथां कथयति, कथयन्तं वा स्वदते ।	२. जो भिक्षु उद्यान, उद्यानगृह, उद्यानशाला, निर्याण, निर्याणगृह अथवा निर्याणशाला में अकेला एकाकी स्त्री के साथ विहरण करता है, स्वाध्याय करता है, अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य खाता है, उच्चार अथवा प्रस्रवण का परित्याग करता है अथवा किसी प्रकार की अनार्य, निष्ठुर, अश्रमणप्रायोग्य कथा कहता है अथवा कहने वाले का अनुमोदन करता है।
३. जे भिक्खू अट्टंसि वा अट्टालयंसि वा पागारंसि वा चरियंसि वा दारंसि वा गोपुरंसि वा एगो एगित्थीए सद्धिं विहारं वा करेइ, सज्झायं वा करेइ, असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा आहारेति, उच्चारं वा पासवणं वा परिट्ठवेति, अण्णयरं वा अणारियं	यो भिक्षुः अट्टे वा अट्टालके वा प्राकारे वा चरिकायां वा द्वारे वा गोपुरे वा एकः एकस्त्रिया सार्द्धं विहारं वा करोति, स्वाध्यायं वा करोति, अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा आहरति, उच्चारं वा प्रस्रवणं वा परिष्ठापयति, अन्यतरां वा अनार्यां निष्ठुराम् अश्रमणप्रायोग्यां कथां	३. जो भिक्षु अट्ट, अट्टालक, प्राकार, चरिका, द्वार अथवा गोपुर में अकेला एकाकी स्त्री के साथ विहरण करता है, स्वाध्याय करता है, अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य खाता है, उच्चार अथवा प्रस्रवण का परित्याग करता है अथवा किसी प्रकार की अनार्य, निष्ठुर, अश्रमणप्रायोग्य कथा कहता है और कहने

णिट्ठुरं असमणपाओग्गं कहं कहेंति, कहेंतं वा सातिज्जति ।।

कथयति, कथयन्तं वा स्वदते।

वाले का अनुमोदन करता है।

४. जे भिक्खू दगमग्गंसि वा दगपहंसि वा दगतीरंसि वा दगठाणंसि वा एगो एगित्थीए सद्धिं विहारं वा करेइ, सज्झायं वा करेइ, असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा आहारेति, उच्चारं वा पासवणं वा परिट्ठवेइ, अण्णयरं वा अणारियं णिट्ठुरं असमणपाओग्गं कहं कहेति, कहेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षु दकमार्गे वा दकपथे वा दकतीरे वा दकस्थाने वा एकः एकस्त्रिया सार्द्धं विहारं वा करोति, अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा आहरति, उच्चारं वा प्रस्रवणं वा परिष्ठापयति, अन्यतरां वा अनार्यां निष्ठुराम् अश्रमणप्रायोग्यां कथां कथयति, कथयन्तं वा स्वदते।

४. जो भिक्षु जलमार्ग, जलपथ, जलतीर अथवा जलस्थान (जलाशय) पर अकेला एकाकी स्त्री के साथ विहरण करता है, स्वाध्याय करता है, अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य खाता है, उच्चार अथवा प्रस्रवण का परित्याग करता है अथवा किसी प्रकार की अनार्य, निष्ठुर, अश्रमणप्रायोग्य कथा कहता है और कहने वाले का अनुमोदन करता है।

५. जे भिक्खू सुण्णगिहंसि वा सुण्णसालंसि वा भिण्णगिहंसि वा भिण्णसालंसि वा कूडागारंसि वा कोट्ठागारंसि वा एगो एगित्थीए सद्धिं विहारं वा करेइ, सज्झायं वा करेइ, असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा आहारेति, उच्चारं वा पासवणं वा परिट्ठवेइ, अण्णयरं वा अणारियं णिट्ठुरं असमणपाओग्गं कहं कहेंति, कहेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः शून्यगृहे वा शून्यशालायां वा भिन्नगृहे वा भिन्नशालायां वा कूटागारे वा कोष्ठागारे वा एकः एकस्त्रिया सार्द्धं विहारं वा करोति, स्वाध्यायं वा करोति, अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा आहरति, उच्चारं वा प्रस्रवणं वा परिष्ठापयति, अन्यतरां वा अनार्यां निष्ठुराम् अश्रमणप्रायोग्यां कथा कथयति, कथयन्तं वा स्वदते।

५. जो भिक्षु शून्यगृह, शून्यशाला, भिन्नगृह, भिन्नशाला, कूटागार अथवा कोष्ठागार में अकेला एकाकी स्त्री के साथ विहरण करता है, स्वाध्याय करता है, अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य खाता है, उच्चार अथवा प्रस्रवण का परित्याग करता है अथवा किसी प्रकार की अनार्य, निष्ठुर, अश्रमणप्रायोग्य कथा कहता है और कहने वाले का अनुमोदन करता है।

६. जे भिक्खू तणसालंसि वा तणगिहंसि वा तुससालंसि वा तुसगिहंसि वा बुससालंसि वा बुसगिहंसि वा एगो एगित्थीए सद्धिं विहारं वा करेइ, सज्झायं वा करेइ, असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा आहारेति, उच्चारं वा पासवणं वा परिट्ठवेइ, अण्णयरं वा अणारियं णिट्ठुरं असमणपाओग्गं कहं कहेति, कहेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः तृणशालायां वा तृणगृहे वा तुषशालायां वा तुषगृहे वा बुसशालायां वा बुसगृहे वा एकः एकस्त्रिया सार्द्धं विहारं वा करोति, स्वाध्यायं वा करोति, अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा आहरति, उच्चारं वा प्रस्रवणं वा परिष्ठापयति, अन्यतरां वा अनार्यां निष्ठुराम् अश्रमणप्रायोग्यां कथां कथयति, कथयन्तं वा स्वदते।

६. जो भिक्षु तृणशाला, तृणगृह, तुसशाला, तुसगृह, बुसशाला अथवा बुसगृह में अकेला एकाकी स्त्री के विहरण करता है, स्वाध्याय करता है, अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य खाता है, उच्चार अथवा प्रस्रवण का परित्याग करता है अथवा किसी प्रकार की अनार्य, निष्ठुर, अश्रमणप्रायोग्य कथा कहता है और कहने वाले का अनुमोदन करता है।

७. जे भिक्खू जाणसालंसि वा जाणगिहंसि वा जुग्गसालंसि वा जुग्गगिहंसि वा एगो एगित्थीए सद्धिं विहारं वा करेइ, सज्झायं वा करेइ,

यो भिक्षुः यानशालायां वा यानगृहे वा युग्यशालायां वा युग्यगृहे वा एकः एकस्त्रिया सार्द्धं विहारं वा करोति, स्वाध्यायं वा करोति, अशनं वा पानं वा

७. जो भिक्षु यानशाला, यानगृह, युग्यशाला अथवा युग्यगृह में अकेला एकाकी स्त्री के साथ विहरण करता है, स्वाध्याय करता है, अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य खाता है,

असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा आहारेति, उच्चारं वा पासवणं वा परिट्ठवेइ, अण्णयरं वा अणारियं णिट्ठुरं असमणपाओग्गं कहं कहेंति, कहेंतं वा सातिज्जति ।।

खाद्यं वा स्वाद्यं वा आहरति, उच्चारं वा प्रस्रवणं वा परिष्ठापयति, अन्यतरां वा अनार्यां निष्ठुराम् अश्रमणप्रायोग्यां कथां कथयति, कथयन्तं वा स्वदते ।

उच्चार अथवा प्रस्रवण का परित्याग करता है अथवा किसी प्रकार की अनार्य, निष्ठुर, अश्रमणप्रायोग्य कथा कहता है और कहने वाले का अनुमोदन करता है ।

८. जे भिक्खू पणियसालंसि वा पणियगिहंसि वा परियागसालंसि वा परियागगिहंसि वा कुवियसालंसि वा कुवियगिहंसि वा एगो एगित्थीए सद्धिं विहारं वा करेइ, सज्झायं वा करेइ, असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा आहारेति, उच्चारं वा पासवणं वा परिट्ठवेइ, अण्णयरं वा अणारियं णिट्ठुरं असमणपाओग्गं कहं कहेति, कहेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः पण्यशालायां वा पण्यगृहे वा 'परियाग'शालायां वा 'परियाग'गृहे वा कुप्यशालायां वा कुप्यगृहे वा एकः एकस्त्रिया सार्द्धं विहारं वा करोति, स्वाध्यायं वा करोति, अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा आहरति, उच्चारं वा प्रस्रवणं वा परिष्ठापयति, अन्यतरां वा अनार्यां निष्ठुराम् अश्रमणप्रायोग्यां कथां कथयति, कथयन्तं वा स्वदते ।

८. जो भिक्षु पण्यशाला, पण्यगृह, परियागशाला (विनिमयशाला), परियागगृह (विनिमय-गृह), कुप्यशाला अथवा कुप्यगृह में अकेला एकाकी स्त्री के साथ विहरण करता है स्वाध्याय करता है, अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य खाता है, उच्चार अथवा प्रस्रवण का परित्याग करता है अथवा किसी प्रकार की अनार्य, निष्ठुर, अश्रमणप्रायोग्य कथा कहता है और कहने वाले का अनुमोदन करता है ।

९. जे भिक्खू गोणसालंसि वा गोणगिहंसि वा महाकुलंसि वा महागिहंसि वा एगो एगित्थीए सद्धिं विहारं वा करेइ, सज्झायं वा करेइ, असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा आहारेति, उच्चारं वा पासवणं वा परिट्ठवेइ, अण्णयरं वा अणारियं णिट्ठुरं असमणपाओग्गं कहं कहेंति, कहेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः गौशालायां वा गोगृहे वा महाकुले वा महागृहे वा एकः एकस्त्रिया सार्द्धं विहारं वा करोति, स्वाध्यायं वा करोति, अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा आहरति, उच्चारं वा प्रस्रवणं वा परिष्ठापयति, अन्यतरां वा अनार्यां निष्ठुराम् अश्रमणप्रायोग्यां कथां कथयति, कथयन्तं वा स्वदते ।

९. जो भिक्षु गौशाला, गौगृह, महाकुल अथवा महागृह में अकेला एकाकी स्त्री के साथ विहरण करता है, स्वाध्याय करता है, अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य खाता है, उच्चार अथवा प्रस्रवण का परित्याग करता है अथवा किसी प्रकार की अनार्य, निष्ठुर, अश्रमणप्रायोग्य कथा कहता है और कहने वाले का अनुमोदन करता है ।[1]

इत्थीमज्झगतस्स अपरिमाणकहा-पदं

१०. जे भिक्खू राओ वा वियाले वा इत्थीमज्झगते इत्थीसंसत्ते इत्थीपरिवुडे अपरिमाणाए कहं कहेति, कहेंतं वा सातिज्जति ।।

स्त्रीमध्यगतस्य अपरिमाणकथा-पदम्

यो भिक्षुः रात्रौ वा विकाले वा स्त्रीमध्यगतः स्त्रीसंसक्तः स्त्रीपरिवृतः अपरिमाणेन कथां कथयति, कथयन्तं वा स्वदते ।

स्त्रीमध्यगत का अपरिमाणकथा-पद

१०. जो भिक्षु रात्रि अथवा विकाल वेला में स्त्रियों के मध्यगत, स्त्रियों से संसक्त और स्त्रियों से परिवृत होकर अपरिमित कथा कहता है अथवा कहने वाले का अनुमोदन करता है ।[2]

णिग्गंथीए सद्धिं-पदं

११. जे भिक्खू सगिणिच्चियाए वा परगणिच्चियाए वा णिग्गंथीए सद्धिं गामाणुगामं दूइज्जमाणे पुरओ

निर्ग्रन्थ्या सार्द्धं-पदम्

यो भिक्षुः स्वगणीयया वा परगणीयया वा निर्ग्रन्थ्या सार्द्धं ग्रामानुग्रामं दूयमानः पुरतः गच्छन् पृष्ठतः रीयमाणः

निर्ग्रन्थी के साथ-पद

११. जो भिक्षु स्वगण की अथवा परगण की निर्ग्रन्थी के साथ ग्रामानुग्राम परिव्रजन करता हुआ, उसके आगे चलता हुआ अथवा पीछे

गच्छमाणे पिट्ठओ रीयमाणे ओहय-मणसंकप्पे चिंतासोयसागरसंपविट्ठे करतलपल्हत्थमुहे अट्टज्झाणोवगए विहारं वा करेइ, सज्झायं वा करेइ, असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा आहारेति, उच्चारं वा पासवणं वा परिट्ठवेइ, अण्णयरं वा अणारियं णिट्ठुरं असमणपाओग्गं कहं कहेति, कहेंतं वा सातिज्जति ।।

अपहतमनःसंकल्पः चिन्ताशोकसागर-सम्प्रविष्टः करतलपर्यस्तमुखः आर्त्त-ध्यानोपगतः विहारं वा करोति, स्वाध्यायं वा करोति, अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा आहरति, उच्चारं वा प्रस्रवणं वा परिष्ठापयति, अन्यतरां वा अनार्यां निष्ठुराम् अश्रमणप्रायोग्यां कथां कथयति, कथयन्तं वा स्वदते।

आता हुआ अपहतमनःसंकल्प वाला होकर, चिन्ता और शोक सागर में प्रविष्ट हो, हथेली पर मुंह टिकाकर आर्त्तध्यान से युक्त हो विहरण करता है, स्वाध्याय करता है, अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य खाता है, उच्चार अथवा प्रस्रवण का परित्याग करता है अथवा किसी प्रकार की अनार्य, निष्ठुर, अश्रमणप्रायोग्य कथा कहता है अथवा कहने वाले का अनुमोदन करता है।[३]

अंतो उवस्सय-पदं

१२. जे भिक्खु णायगं वा अणायगं वा उवासयं वा अणुवासयं वा अंतो उवस्सयस्स अद्धं वा रातिं कसिणं वा रातिं संवसावेति, संवसावेंतं वा सातिज्जति ।।

अन्तःउपाश्रय-पदम्

यो भिक्षुः ज्ञातकं वा अज्ञातकं वा उपासकं वा अनुपासकं वा अन्तः उपाश्रयस्य अर्धां वा रात्रिं कृत्स्नां वा रात्रिं संवासयति, संवासयन्तं वा स्वदते।

अन्तः उपाश्रय-पद

१२. जो भिक्षु ज्ञाति (सम्बन्धी) अथवा अज्ञाति, उपासक अथवा अनुपासक (श्रावकेतर गृहस्थ) को उपाश्रय के अन्दर आधी रात अथवा पूरी रात संवास देता है अथवा संवास देने वाले का अनुमोदन करता है।

१३. जे भिक्खू णायगं वा अणायगं वा उवासयं वा अणुवासयं वा अंतो उवस्सयस्स अद्धं वा रातिं कसिणं वा रातिं संवसावेति, तं पडुच्च निक्खमति वा पविसति वा, निक्खमंतं वा पविसंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः ज्ञातकं वा अज्ञातकं वा उपासकं वा अनुपासकं वा अन्तः उपाश्रयस्य अर्धां वा रात्रिं कृत्स्नां वा रात्रिं संवासयति, तं प्रतीत्य निष्क्रामति वा प्रविशति वा, निष्क्रामन्तं वा प्रविशन्तं वा स्वदते।

१३. जो भिक्षु ज्ञाति (सम्बन्धी) अथवा अज्ञाति, उपासक अथवा अनुपासक को उपाश्रय के अन्दर आधी रात अथवा पूरी रात संवास देता है तथा उसके निमित्त निष्क्रमण करता है अथवा प्रवेश करता है और निष्क्रमण अथवा प्रवेश करने वाले का अनुमोदन करता है।[४]

मुद्धाभिसित्त-पदं

१४. जे भिक्खु रण्णो खत्तियाणं मुदियाणं मुद्धाभिसित्ताणं समवाएसु वा पिंडनियरेसु वा इंदमहेसु वा खंदमहेसु वा रुद्दमहेसु वा मुगुंदमहेसु वा भूतमहेसु वा जक्खमहेसु वा णागमहेसु वा थूभमहेसु वा चेतियमहेसु वा रुक्खमहेसु वा गिरिमहेसु वा दरिमहेसु वा अगडमहेसु वा तडागमहेसु वा दहमहेसु वा णदिमहेसु वा सरमहेसु वा सागरमहेसु वा आगरमहेसु वा

मूर्धाभिषिक्त-पदम्

यो भिक्षुः राज्ञः क्षत्रियाणां मुदितानां मूर्धाभिषिक्तानां समवायेषु वा पिण्डनिकरेषु वा इन्द्रमहेषु वा स्कन्दमहेषु वा रुद्रमहेषु वा मुकुन्दमहेषु वा भूतमहेषु वा यक्षमहेषु वा नागमहेषु वा स्तूपमहेषु वा चैत्यमहेषु वा रुक्षमहेषु वा गिरिमहेषु वा दरिमहेषु वा 'अगड'महेषु वा तडागमहेषु वा द्रहमहेषु वा नदीमहेषु वा सरोमहेषु वा सागरमहेषु वा आगरमहेषु वा अन्यतरेषु वा तथाप्रकारेषु विरूपरूपेषु महामहेषु अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा प्रतिगृह्णाति,

मूर्धाभिषिक्त-पद

१४. जो भिक्षु मूर्धाभिषिक्त शुद्धवंशीय क्षत्रिय राजा[५] के १. गोष्ठीभक्त आदि २. पितृभोज (मृतक भोज) ३. इन्द्र महोत्सव ४. स्कन्द महोत्सव ५. रुद्र महोत्सव ६. मुकुन्द महोत्सव ७. भूत महोत्सव ८. यक्ष महोत्सव ९. नाग महोत्सव १०. स्तूप महोत्सव ११. चैत्य महोत्सव १२. वृक्ष महोत्सव १३. गिरि महोत्सव १४. दरि महोत्सव १५. कूप महोत्सव १६. तालाब महोत्सव १७. द्रह महोत्सव १८. नदी महोत्सव १९. सरोवर महोत्सव २०. समुद्र महोत्सव २१. खान

अण्णयरेसु वा तहप्पगारेसु विरूवरूवेसु महामहेसु असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति ।।

प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते ।

महोत्सव अथवा अन्य उसी प्रकार के नाना महोत्सवों में अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य को ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।[६]

१५. जे भिक्खु रण्णो खत्तियाणं मुदियाणं मुद्धाभिसित्ताणं उत्तरसालंसि वा उत्तरगिहंसि वा रीयमाणाणं असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः राज्ञः क्षत्रियाणां मुदितानां मूर्धाभिषिक्तानाम् उत्तरशालायां वा उत्तरगृहे वा रीयमाणानाम् अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते ।

१५. जो भिक्षु उत्तरशाला अथवा उत्तरगृह[७] में जाते हुए मूर्धाभिषिक्त शुद्धवंशीय क्षत्रिय राजा का अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

१६. जे भिक्खु रण्णो खत्तियाणं मुदियाणं मुद्धाभिसित्ताणं हयसालगयाण वा गयसालगयाण वा मंतसालगयाण वा गुज्झसालगयाण वा मेहुणसालगयाण वा असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः राज्ञः क्षत्रियाणां मुदितानां मूर्धाभिषिक्तानां हयशालागतानां वा गजशालागतानां वा मंत्रशालागतनानां वा गुह्यशालागतानां वा मैथुनशालागतानां वा अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते ।

१६. जो भिक्षु अश्वशाला, हस्तिशाला, मंत्रणाशाला (मंत्रणाकक्ष), गुप्तशाला और मैथुनशाला में गए हुए मूर्धाभिषिक्त शुद्धवंशीय क्षत्रिय राजा का अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।[८]

१७. जे भिक्खु रण्णो खत्तियाणं मुदियाणं मुद्धाभिसित्ताणं सन्निहि-संनिचयाओ खीरं वा दहिं वा णवणीयं वा सप्पिं वा गुलं वा खंडं वा सक्करं वा मच्छंडियं वा अण्णयरं वा भोयणजायं पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः राज्ञः क्षत्रियाणां मुदितानां मूर्धाभिषिक्तानां सन्निधि-सन्निचयात् क्षीरं वा दधि वा नवनीतं वा सर्पिः वा तैलं वा गुडं वा खण्डं वा शर्करां वा मत्स्यण्डिकां वा अन्यतरद् वा भोजनजातं प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते ।

१७. जो भिक्षु मूर्धाभिषिक्त शुद्धवंशीय क्षत्रिय राजा के सन्निधि-संनिचय से क्षीर, दधि, मक्खन, घी, गुड़, खाण्ड, चीनी, मत्स्यंडिका अथवा अन्य किसी भोजनजात को ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

१८. जे भिक्खु रण्णो खत्तियाणं मुदियाणं मुद्धाभिसित्ताणं उस्सट्ठपिंडं वा संसट्ठपिंडं वा अणाहपिंडं वा किविणपिंडं वा वणीमगपिंडं वा पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति—

यो भिक्षुः राज्ञः क्षत्रियाणां मुदितानां मूर्धाभिषिक्तानाम् उत्सृष्टपिण्डं वा संसृष्टपिण्डं वा अनाथपिण्डं वा कृपणपिण्डं वा वनीपकपिण्डं वा प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते ।

१८. जो भिक्षु मूर्धाभिषिक्त शुद्धवंशीय क्षत्रिय राजा के उत्सृष्टपिण्ड, संसृष्टपिण्ड, अनाथपिण्ड, कृपणपिण्ड अथवा वनीपकपिण्ड को ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।[९]

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घातियं ।।

तत्सेवमानः आपद्यते चातुर्मासिकं परिहारस्थानम् अनुद्घातिकम् ।

—इनका आसेवन करने वाले को अनुद्घातिक चातुर्मासिक प्रायश्चित्त प्राप्त होता है।

टिप्पण

१. सूत्र १-९

भिक्षु के लिए निर्देश है कि वह कामदेव के मंदिर, शून्यगृह, दो दीवारों या घरों के बीच का प्रच्छन्न स्थान (संधिस्थल) में अकेला अकेली स्त्री के साथ न खड़ा रहे और न संलाप करे।[१] ये संदेहास्पद स्थान होते है। यहां खड़े होकर बात करने से देखने वाले गृहस्थ अथवा अन्य मुनि को उस भिक्षु, उस स्त्री अथवा दोनों के प्रति शंका हो सकती है।

प्रस्तुत आलापक में यात्रीगृह, आरामगृह यावत् महाकुल एवं महागृह--इन छायालीस स्थानों का उल्लेख हुआ है, जहां अकेले भिक्षु को अकेली स्त्री के साथ रहने, स्वाध्याय करने, अशन, पान आदि खाने, उच्चार आदि का परिष्ठापन करने एवं किसी प्रकार की अनौचित्यपूर्ण वार्ता करने का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है। ब्रह्मचर्य की सुरक्षा की दृष्टि से भिक्षु कान, नाक आदि अवयवों से रहित, सौ वर्ष की वृद्धा नारी से भी बचे[२], स्त्री के शरीरमात्र (अचित्त प्रतिमा) से भी बचे--यह आवश्यक है।[३] भाष्यकार ने कहा है--

अवि मायरं पि सद्धिं, कथा तु एगागियस्स पडिसिद्धा।
किं पुण अणारयादी, तरुणित्थीहिं सह गयस्स।।[४]

अकेले भिक्षु को माता के साथ धर्मकथा करना भी प्रतिषिद्ध है तो तरुणी स्त्रियों के साथ अनार्य आदि कथाओं की तो बात ही क्या?

शब्द विमर्श

१. यात्रीगृह, आरामगृह, गृहपतिकुल, परियावसथ (आश्रम)--द्रष्टव्य--निसीह. ३/१ का टिप्पण।

२. उद्यान--वह स्थान, जहां लोग उद्यानिका (गोठ) करने हेतु जाते हैं या नगर का निकटवर्ती स्थान।[५]

३. उद्यानगृह और उद्यानशाला--उद्यान में बने कुड्य युक्त आवास उद्यानगृह और कुड्य रहित आवास उद्यानशाला कहलाते हैं।

४. निर्याण और निर्याण गृह--राजा आदि के निर्गमन का स्थान या नगर का निर्गमन स्थान निर्याण और वहां बने हुए घर निर्याणगृह कहलाते हैं।[६]

६. निर्याणशाला--निर्याण-स्थानों में बने कुड्य रहित आवास।

७. अट्ट--प्राकार या प्रासाद के ऊपर का घर, अटारी (सैन्य गृह)।[७]

८. अट्टालक--नगर-प्राकार का एक देश, झरोखा, युद्ध करने का बुर्ज।[८]

९. प्राकार--परकोटा।

१०. चरिका--किले और नगर के बीच का आठ हाथ प्रमाण-मार्ग।[९]

११. गोपुर--प्रतोलिका द्वार।[१०]

१२. दकमाग--जलाशय में पानी आने का मार्ग।[११]

१३. दकपथ--लोग पानी लेने जाएं, वह पथ।[१२]

१४. दकतीर--जलाशय का तट (निकटवर्ती स्थान)।[१३]

१५. दकस्थान--जलाशय, तालाब आदि।

१६,१७. शून्यगृह, शून्यशाला--सूना घर[१४], सूनी शाला।

१८,१९. भिन्नगृह, भिन्नशाला--खण्डहर-गृह, खण्डहर-शाला।[१५]

२०. कूटागार--अधो विशाल, ऊपर-ऊपर संवर्धित होने वाले विशेष प्रकार के भवन।[१६]

२१. कोष्ठागार--धान्य-भंडार।[१७]

---

१. उत्तर. १/२६
२. दसवे. ८/५५
३. वही, ८/५३
४. निभा. गा. २३४४
५. वही, भा. २, चू.पृ. ४३३--उज्जाणं जत्थ लोगो उज्जाणियाए वच्चति। जं वा ईसि णगरस्स उवकंठं ठियं तं उज्जाणं।
६. वही--रायादियाण णिग्गमणट्ठाणं णिज्जाणिया, णगरणिग्गमे जं ठियं तं णिज्जाणं। एतेसु चेव गिहा कया उज्जाण-णिज्जाणगिहा।
७. पाइय.।
८. निभा. २, चू.पृ. ४३३--नगरे पागारो तस्सेव देसे अट्टालगो।
९. वही--पागारस्स अहो अट्ठहत्थो रहमग्गो चरिया।
१०. वही--बलाणगं दारं, दो बलाणगा पागारपडिबद्धा। ताण अंतरं गोपुरं।
११. वही--दगवाहो दगमग्गो।
१२. वही--जेण जणो दगस्स वच्चति, सो दगपहो।
१३. वही--दगब्भासं दगतीरं।
१४. वही--सुण्णं गिहं सुण्णागारं।
१५. वही--देसे पडियसडियं भिन्नागारं।
१६. वही--अधो विसालं, उवरुवरि संवड्ढितं कूडागारं।
१७. वही--धन्नागारं कोट्ठागारं।

२२,२३. **तृणशाला, तृणगृह**—दर्भ आदि घास रखने के कुड्यरहित एवं कुड्यसहित स्थान।[1]

२४,२५. **तुसशाला, तुसगृह**—मूंग, शालि आदि के छिलके रखने के कुड्यरहित एवं कुड्यसहित स्थान।[2]

२६,२७. **बुसशाला, बुसगृह**—धान का भूसा (कुतर), जिसे पशु खाते हैं, उसे रखने की शाला एवं गृह।[3]

२८,२९. **यानशाला, यानगृह**—शकट आदि यान को रखने की शाला और गृह।[4]

३०,३१. **युग्यशाला, युग्यगृह**—युग्य का अर्थ है शिविका, गोल्लदेश में प्रसिद्ध दो हाथ लम्बा चौड़ा यान-विशेष।[5] उसे रखने की शाला और गृह क्रमशः युग्यशाला और युग्यगृह।

३२,३३. **पण्यशाला, पण्यगृह**—जहां विक्रेय भांड रखे जाएं, वह हाट और गृह (दूकान)।[6]

३४,३५. **परियागशाला, परियागगृह**—चूर्णिकार के अनुसार पाषण्डी (अन्यतीर्थिकों) के आवसथ को परियागशाला एवं परियागगृह कहा जाता है।[7] किन्तु प्रथम सूत्र में 'परियावसह' पाठ है फिर प्रस्तुत सूत्र में 'परियागसालंसि' एवं परियागगिहंसि पाठ क्यों? पण्यशाला एवं पण्यगृह के साथ यदि 'परियाण' पाठ होता तो उसका अर्थ 'विनिमय' होता। किन्तु ऐसा किसी आदर्श में उपलब्ध नहीं है। अतः अर्थसंगति की दृष्टि से विनिमय के अर्थ में 'परियाग' शब्द को देशी माना जा रहा है। अतः प्रस्तुत प्रसंग में इनका अर्थ विनिमय शाला और विनिमय गृह होना चाहिए।

३६,३७. **कुप्ययशाला, कुप्यगृह**—अभिधानचिन्तामणि के अनुसार कुप्यशाला का अर्थ है—सोने, चांदी से भिन्न धातु (ताम्बे आदि से निर्मित्त गृहोपकरण) रखे जाने वाला घर।[8] प्राकृत कोश में इसका अर्थ है—गृहोपकरण रखने का स्थान।[9] शाला एवं गृह क्रमशः पूर्ववत् ज्ञातव्य हैं।

३८,३९. **गौशाला, गौगृह**—गायों आदि का कुड्यरहित एवं कुड्यसहित स्थान क्रमशः गौशाला एवं गौगृह कहलाता है।[10]

४०,४१. **महाकुल, महागृह**—इभ्यकुल अथवा बहुसंख्यक लोगों का परिवार और बड़ा (विशाल) घर।[11]

४२. **अनार्य कथा**—अनार्य लोगों के योग्य कथा अर्थात् काम-कथा।[12]

४३. **निष्ठुर कथा**—अप्रिय बात, जैसे—भल्लीगृहोत्पत्ति की कथा।[13]

४४. **अश्रमणप्रायोग्यकथा**—वह वार्ता, जो संयम के लिए उपकारी (उपादेय) न हो, देशकथा, भक्तकथा आदि।[14]

२. सूत्र १०

पूर्वोक्त सूत्रों में एक स्त्री के साथ रहने, खाने-पीने यावत् अश्रमणप्रायोग्य वार्तालाप करने का प्रायश्चित्त बतलाया गया है। प्रस्तुत सूत्र में अनेक स्त्रियों के मध्य, उनसे परिवृत होकर रात्रि अथवा विकालवेला में अपरिमित कथा करने का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है। अर्थात् जहां केवल स्त्रियां हो अथवा जिस परिषद् में स्त्रियों की बहुलता हो, वहां रात्रि या विकाल वेला में भिक्षु अधिकतम पांच प्रश्नों का उत्तर दे, अधिक लम्बे काल तक धर्मकथा भी न करे। दशवैकालिक सूत्र की हारिभद्रीया वृत्ति, उत्तराध्ययन सूत्र की चूर्णि तथा स्थानांग सूत्र की अभयदेवीया वृत्ति से भी इसी अर्थ का संपुष्टि होती है।[15] भाष्यकार के अनुसार इससे स्त्रियों के ज्ञातिजनों में अप्रीति, शंका आदि दोष तथा अन्य आत्म-पर-उभय समुत्थ दोष संभव हैं।[16] यदि अपवाद में कहीं केवल स्त्रियों के मध्य धर्मकथा करनी आवश्यक हो तो उनके अत्यधिक निकट न बैठे, तरुणी स्त्रियों पर दृष्टि न टिकाए, वृद्धा स्त्रियों की तरफ ईषद् दृष्टिक्षेप करता हुआ संयतभाव से वैराग्यपूर्ण कथा करे।[17]

शब्द विमर्श

१. **स्त्रीमध्यगत**—जिसके उभय पार्श्व में स्त्रियां बैठी हों।[18]

२. **स्त्रियों से संसक्त**—स्त्रियों के ऊरु, कोहनी आदि से

---

१. निभा. २ चू.पृ. ४३३—दब्भादितणट्ठाणं अधोपगासं तणसाला।
२. वही—सालिमादितुसट्ठाणं तुससाला।
३. पाइय.—भुस (शब्द)
४. निभा. २, चू.पृ. ४३३—जुगादि जाणाण अकुड्डा साला, सकुड्डं गिहं।
५. अणु., पृ. २३९
६. निभा. २, चू.पृ. ४३३—विक्केयं भंडं जत्थ छूढं चिट्ठति सा साला गिहं वा।
७. वही—पासण्डिणो परियागा.....।
८. अचि. ४।६२।
९. पाइय.
१०. निभा. भा. २, चू.पृ. ४३३—गोणादि जत्थ चिट्ठंति सा गोसाला गिहं च।
११. वही—मह पाहण्णे बहुत्ते वा, महंतं वा गिहं महागिहं, बहुसु वा उच्चारएसु महागिहं। महाकुलं पि इब्भकुलादी पाहण्णे बहुजण आइण्णं बहुत्ते।
१२. वही, पृ ४१६—अणारियाण जोग्गा अणारिया, सा य कामकहा।
१३. वही, पृ. ४१५—णिट्ठुरं णाम भल्लीघरकहणं।
१४. वही—देसभत्तकहादी जा संजमोवकारिका ण भवति, सा सव्वा असमणपाउग्गा।
१५. (क) दसवे. ८/४२
(ख) उत्तर. १६/४ की चूर्णि
(ग) ठाणं ९/३ की वृत्ति
१६. निभा. गा. २४३३ व उसकी चूर्णि।
१७. वही, गा. २४३५ व उसकी चूर्णि।
१८. वही, पृ. ४३४—इत्थीसु उभओ ठियासु मज्झं भवति।
१९. वही—उरुकोप्परमादीहिं संघट्टतो संसत्तो भवति, दिट्ठीए वा परोप्परं संसत्तो।

जिसका संघट्टन हो अथवा परस्पर दृष्टि से संसक्त।[१]

३. स्त्रियों से परिवृत—जो सर्वतः समन्तात् स्त्रियों से परिवेष्टित (घिरा हुआ) हो।[१]

४. अपरिमित कथा—तीन यावत् पांच प्रश्नों का उत्तर देना परिमित कथा (वार्ता) तथा छह या उससे अधिक प्रश्नों का उत्तर देना अपरिमित कथा है।[२]

३. सूत्र ११

अभ्युद्यतविहार की अपेक्षा विधिवत् गच्छ-परिपालन में अधिक निर्जरा होती है।[३] उसमें भी साध्वियों की सुरक्षा एवं उनका यथोचित निर्वहन गणधर का प्रमुख कर्त्तव्य है—भाष्य एवं चूर्णि में अनेकशः उल्लिखित इस तथ्य से तथा अन्य तत्कालीन परिस्थितियों के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि उस काल में साध्वियों के लिए अनेक व्यवस्थाएं साधुओं, विशेषतः गणधर को करनी होती थी, जैसे—क्षेत्र प्रतिलेखना, उचित उपाश्रय एवं शय्यातर की खोज आदि।[४] जहां मार्ग में श्वापद, म्लेच्छ आदि का भय होता, वहां साधु अपेक्षानुसार उनके आगे, पीछे या परिपार्श्व में परिव्रजन करते। प्रस्तुत सूत्र में आर्त्तध्यान-पूर्वक साध्वियों के साथ ग्रामानुग्राम परिव्रजन करने तथा स्वाध्याय आदि करने का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है। भाष्यकार के अनुसार जिस आर्त्तध्यान का कारण विषयराग हो, उससे आत्मविराधना, चारित्रविराधना आदि दोष संभव हैं। अतः उसका निषेध है। साध्वियों के कोई उपसर्ग हो, ग्लान्य हो, उसके निवारण के लिए होने वाली चिन्ता आदि इसके अपवाद हैं।[५]

४. सूत्र १२,१३

प्रस्तुत सूत्रद्वयी में गृहस्थ के साथ रात्रि में संवास करने तथा उसके निमित्त गमनागमन करने का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है। सम्बन्ध की दृष्टि से गृहस्थ दो प्रकार का हो सकता है—ज्ञाति और अज्ञाति (ज्ञातिजन से अतिरिक्त)। श्रद्धा एवं व्रत की अपेक्षा से भी उसके दो भेद हो जाते हैं—उपासक और अनुपासक (श्रावक के सिवाय अन्य गृहस्थ)।[६] इन सूत्रों में चारों ही प्रकार के गृहस्थ का कथन हुआ है।

इन सूत्रों में स्त्री या पुरुष का स्पष्ट निर्देश नहीं है। भाष्य एवं चूर्णि से भी स्पष्टतः ऐसी प्रतीति नहीं होती कि ये सूत्र केवल स्त्री के संवास संबंधी हैं। यद्यपि भाष्य एवं चूर्णि में एक निर्देश—'इत्थिं पडुच्च सुत्तं' मिलता है, किन्तु आगे भाष्यकार ने सहिरण्य, सभोयण आदि पदों से अपने अभिप्राय को विस्तृत कर दिया है।[७] प्रस्तुत गाथा, उसकी चूर्णि एवं अग्रिम गाथाओं से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि चाहे अकेली स्त्री हो, चाहे स्त्रीयुक्त पुरुष हो, धन सहित पुरुष हो या भक्तपान सहित पुरुष हो, इनके साथ संवास करने से शंका, कलह, हिंसा आदि अनेक दोषों की संभावना रहती है।[८] अतः गृहस्थ के साथ रात्रिसंवास करने पर गुरुचातुर्मासिक प्रायश्चित्त का विधान है। चूर्णिकार के अनुसार इन दोषों से रहित पुरुष के साथ संवास करने पर लघुचातुर्मासिक प्रायश्चित्त प्राप्त होता है।[९]

शब्द विमर्श

१. आधी अथवा पूरी रात—रात्रि के दो और चार प्रहर क्रमशः आधी और पूरी रात है। वैकल्पिक रूप में एक प्रहर और तीन प्रहर का—आधी और पूरी रात में ग्रहण किया जा सकता है—ऐसा चूर्णिकार का अभिमत है।[१०]

२. संवास देना—एक ही उपाश्रय में उन्हें रहने का कहना, अन्य कहने वाले का अनुमोदन करना, रहने का प्रतिषेध न करना और प्रतिषेध न करने वाले का अनुमोदन करना—सारा 'संवास देना' के अंतर्गत है।[११]

३. पडुच्च (निमित्त से)—गृहस्थ को कायिकी आदि के लिए निष्क्रमण करते देखकर सोचना—यह कायिकी संज्ञार्थ गया है, मैं भी चला जाऊं। अथवा उसे उस निमित्त से उठाना कि आओ, चलें।[१२]

सूत्र १४

५. मूर्धाभिषिक्त शुद्धवंशीय क्षत्रिय राजा (रण्णो खत्तियाणं मुदियाणं मुद्धाभिसित्ताणं)

प्रस्तुत आगम के आठवें उद्देशक[१३] तथा नवें उद्देशक[१४] में 'रण्णो खत्तियाणं मुदियाणं मुद्धाभिसित्ताणं' इस वाक्यांश का प्रयोग हुआ है। इस वाक्यांश में 'रण्णो' पद एकवचनान्त और खत्तियाणं आदि तीनों पद बहुवचनान्त हैं, ऐसा क्यों? इसे 'आर्ष' प्रयोग माना

---

१. निभा. भा. २ चू.पृ. ४३४—सव्वतो समंता परिवेढिओ परिवुडो भण्णति।
२. वही—परिमाणं जाव तिण्णि चउरो पंच वा वागरणानि परतो छट्ठादि अपरिमाणं कहं।
३. वही, पृ. ४२९—अब्भुज्जयविहारातो तस्स विधिपरियट्टणे बहुतरिया णिज्जरा।
४. (क) वही, गा. २४४८
(ख) विस्तार हेतु द्रष्टव्य वही, गा. २४४९-२४६५
५. वही, गा. २४४४-२४४७ सचूर्णि
६. वही, गा. २४६८
७. वही, गा. २४६९ सचूर्णि
८. वही, गा. २४७१,२४७२
९. वही, भा. २ चू.पृ. ४४२
१०. वही, भा. पृ. ४४१
११. वही—एगवसहीए संवासो 'वसाहि' त्ति भणति, अण्णं वा अणुमोदति। जो तं न पडिसेधेति, अण्णं वा अपडिसेधंतं अणुमोयति।
१२. वही, पृ. ४४३· पडुच्च त्ति जाहे सो गिहत्थो काइयादि णिग्गच्छति ताहे संजतो वि चिंतेति—एस काइयं गतो अहमवि एयणिस्साए काइयं गच्छामि, उट्ठावेति वा एहि, वच्चामो।
१३. निसीह. सू. ८/१४-१८
१४. वही, सू. ९/६-११, १३-२९

जाए अथवा यहां कोई अन्य हेतु होना चाहिए—यह विमर्शनीय है। प्रस्तुत संदर्भ में एक मत यह भी प्राप्त होता है कि यहां 'रण्णो' से राजा का तथा 'खत्तियाणं आदि से अमात्य, पुरोहित, ईश्वर आदि पदों पर अभिषिक्त अन्य शुद्ध क्षत्रिय पदाधिकारियों का ग्रहण किया जाए।[1]

६. सूत्र १४

प्राचीन काल में अनेक लौकिक देवी-देवताओं की पूजा होती थी तथा अनेक प्रकार के महोत्सव मनाने की परम्परा थी। इनमें आमोद-प्रमोद, नृत्य-गायन के साथ-साथ खाने-खिलाने आदि का भी आयोजन होता था। प्रस्तुत सूत्र में इन्द्र, स्कन्द, रुद्र, गिरि, दरि, नदी आदि अनेक महोत्सवों का उल्लेख हुआ है। इनमें राजा एवं प्रजाजन सभी समान रूप से भाग लेते अथवा कई महोत्सव विशेषतः राजाओं की ओर से आयोजित होते थे। प्रस्तुत सूत्र में उन्हीं महोत्सवों में अशन, पान आदि ग्रहण करने का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है, जो केवल मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा द्वारा आयोजित हों अथवा जिसमें वैसे राजा की अंशिका (भागीदारी) हो, क्योंकि उन महोत्सवों में अशन, पान आदि ग्रहण करने पर भद्र-प्रान्त कृत अनेक दोष संभव हैं—भद्रप्रकृति वाला राजा सोचता है—इस उपाय (बहाने) से भिक्षु मेरा आहार ग्रहण करते हैं, यही अच्छा है—ऐसा सोच वह बार-बार इस प्रकार के आयोजनों में प्रवृत्त होता है। प्रान्त प्रकृति वाला राजा इसे प्रकारान्तर से ग्रहण करना समझ कर मुनि के प्रति द्वेष करता है। फलतः वह भोजन, उपधि, स्थान आदि का व्यवच्छेद कर देता है।[2]

शब्द विमर्श

१. **क्षत्रिय**—क्षत्रिय जाति में उत्पन्न।[3]

२. **मुदित**—जाति से विशुद्ध।[4]

३. **मूर्धाभिषिक्त**—पिता आदि के द्वारा राज्याभिषेक किया हुआ।[5]

४. **समवाय**—गोष्ठी भोज (गोठ)[6]

५. **पिण्डनिकर**—पितृभोज (मृतक भोज)।[7]

६. **स्कन्द**—कार्तिकेय।[8]

७. **मुकुन्द**—बलदेव।[9]

८. **चैत्य**—देवकुल।।[10]

सूत्र १५

७. उत्तरशाला अथवा उत्तरगृह (उत्तरसालंसि वा उत्तरगिहंसि वा)

उत्तर शब्द अनेक अर्थों में प्रयुक्त होता है जैसे—श्रेष्ठ, उपरितन, अतिरिक्त, पश्चाद्वर्ती आदि। प्रस्तुत संदर्भ में भाष्यकार ने इसके पश्चाद्वर्ती अर्थ को ग्रहण किया है—जो मूलगृह (राजप्रासाद) के बाद बनाया जाए, वह घर और शाला क्रमशः उत्तरगृह एवं उत्तरशाला कहलाता है। इसका एक अन्य अर्थ है—क्रीड़ा स्थल, जो मूलगृह से प्रायः असंबद्ध होता है।[11] शाला कुड्यरहित एवं विशाल होती है, गृह कुड्य सहित और अनेकविध होता है।[12] उत्तरशाला और उत्तरगृह में प्रविष्ट राजा से अशन, पान आदि ग्रहण करने वाले भिक्षु के प्रति स्तैन्य आदि की आशंका हो सकती है[13] अतः भिक्षु को इन स्थानों का वर्जन करना चाहिए।

८. सूत्र १६

प्रस्तुत सूत्र में हयशाला, गजशाला आदि कुछ प्रसिद्ध शालाओं के साथ गुह्यशाला, मैथुनशाला आदि अप्रसिद्ध शालाओं का भी उल्लेख हुआ है। कुछ प्रतियों में मंत्रशाला और गुह्यशाला के साथ रहस्यशाला शब्द भी प्राप्त होता है।

चूर्णिकार के अनुसार जब मूर्धाभिषिक्त राजा अश्वशाला, गजशाला आदि में गया हुआ हो, उस समय घोड़ों, हाथियों आदि को खिलाने के लिए अथवा उन शालाओं में जो अनाथ आदि बैठे हों, उन्हें देने के लिए जो आहार ले जाया जाता है, उसे ग्रहण करने पर प्रायश्चित्त प्राप्त होता है क्योंकि इससे उनके अन्तराय लगती है तथा राजपिण्ड के ग्रहण से आने वाले अन्य दोषों की भी संभावना रहती है।[14]

शब्द विमर्श

१. **मंत्रशाला**—मंत्रणागृह (मंत्रणाकक्ष)।

---

१. निशी. (सं. व्या.), पृ. १९७—अत्र उपलक्षणात्—अमात्य-पुरोहितेश्वर-तलवर-माडम्बिक-कौटुम्बिकेभ्य-श्रेष्ठि-सेना-पत्यादीनामपि ग्रहणं कर्त्तव्यम्। ......राजाद्यतिरिक्तानाम-मात्यादीनामपि वक्ष्यमाणेषु समवायादिषु इन्द्रमहादिषु च साधुरशनादिकं न गृह्णीयादति सम्बन्धः।

२. निभा. गा. २४८०-२४८६

३. वही, भा. २ चू.पृ. ४४४—खत्तिय त्ति जातिग्गहणं।

४. वही—मुदितो जातिशुद्धो।

५. वही—पितिमादिएण अभिसित्तो मुद्धाभिसित्तो।

६. वही—समवायो गोष्ठीभत्तं।

७. वही—पिंडणिगरो दाइभत्तं, पितिपिण्डपदाणं वा पिंडणिगरो।

८. वही—खंधो स्कन्दकुमारो।

९. वही—मुकुंदो बलदेवः।

१०. वही—चेतितं देवकुलं।

११. वही, गा. २४९०

१२. वही, भा. २, चू.पृ. ४३३—अकुड्डा साला, सकुड्डं गिहं।

१३. वही, गा. २४८८

१४. वही २, चू.पृ. ४४६—हयगयसालासु हयगयाण उवजेवण-पिंडमाणियं देंति, तत्थ रायपिंडो अंतरायदोसो य सेससालासु पइट्ठा भत्ता। अहवा सुत्ताभिहियसालासु ठितादीण अणाहादियाण भत्तं पयच्छंति।

२. गुह्यशाला—जहां गुप्त वार्ता की जाए।

९. सूत्र १७,१८

राजा से संबद्ध स्थानों—उत्तरगृह, उत्तरशाला, गजशाला, अश्वशाला आदि में अशन-पान आदि को ग्रहण करने पर जिस प्रकार राजपिण्ड के ग्रहण से आने वाले भद्र-प्रान्तकृत दोष संभव है, उसी प्रकार राजा के सन्निधि सन्निचय से तथा राजा द्वारा अनाथ, वनीपक, कृपण आदि को दिये जाने वाले अशन आदि को ग्रहण करने पर भी वे ही दोष संभव हैं। अतः इन्हें भी राजपिण्ड के समान ही अग्राह्य माना गया है।[१]

१. सन्निधि-संनिचय—विनाशी द्रव्यों—दूध, दही आदि का संग्रह सन्निधि तथा अविनाशी द्रव्यों—घी, तेल, वस्त्र का संग्रह संचय कहलाता है।[२]

२. उत्सृष्ट-पिण्ड—उज्झितधर्मा आहार आदि, जैसे—कौए, कुत्ते आदि को दिया जाने वाला आहार।[३]

३. संसृष्टपिण्ड—भुक्तावशेष, राजा एवं राजपरिवार के खाने के बाद बचा हुआ भोजन।[४]

४. अनाथपिण्ड—जिसका कोई बांधव न हो (योगक्षेम का संवाहक न हो), वह अनाथ कहलाता है। अनाथ मनुष्यों के लिए बनाया गया आहार अनाथपिण्ड कहलाता है।[५]

५. कृपणपिण्ड—कृपण का अर्थ है पिण्डोलग—भिक्षाजीवी।[६] कृपणों को देने के लिए बनाया हुआ आहार कृपणपिण्ड कहलाता है।

६. वनीपकपिण्ड—याचना वृत्ति वाले वे लोग, जो दान आदि का फल बताकर दान प्राप्त करते हैं, वनीपक कहलाते हैं। उनके लिए निष्पन्न आहार वनीपकपिंड है।[७] विस्तार हेतु द्रष्टव्य—दसवे. ५/१/५१ का टिप्पण।

---

१. निभा. गा. २४९४,२४९५
२. वही, भा. २, चू.पृ. ४४६—सन्निही णाम दधिखीरादि जं विणासि दव्वं, जं पुण घय-तेल्ल-वत्थ-पत्त-गुल-खंड-सक्कराइयं अविणासि दव्वं, चिरमवि अच्छइ ण विणस्सइ, सो संचतो।
३. वही, पृ. ४४७—ऊसट्ठे उज्झियधम्मिए।
४. वही—संसत्तपिंडो भुत्तावसेसं।
५. वही—अणाहा अबंधवा तेसिं जो कओ पिंडो।
६. दसवे. हा.टी. पृ. १८४—कृपणं वा पिण्डोलकम्।
७. निभा. भा. २ चू. पृ. ४४७—वणिमगपिंडो णाम जो जायणवित्तिणो, दाणादिफलं लभंति, तेसिं जं कडं तं वणिमगपिण्डो भण्णति।

नवमो उद्देसो

नौवां उद्देशक

आमुख

प्रस्तुत उद्देशक का मुख्य प्रतिपाद्य है—राजा और राजपिण्ड। आठवें उद्देशक के समान ही इस उद्देशक में प्रज्ञप्त प्रतिषिद्ध पदों के समाचरण का प्रायश्चित्त है अनुद्घातिक चातुर्मासिक। आठवें उद्देशक के अन्तिम पांच सूत्रों में राजसत्क आहार को ग्रहण करने का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है। इस उद्देशक में राजपिण्ड एवं राजपिण्ड मिश्रित आहार को ग्रहण एवं भोग करने के प्रायश्चित्त के अतिरिक्त राजा के अन्तःपुर में प्रवेश, राजान्तःपुरिका के द्वारा अभ्याहृत अथवा मंगवा कर आहार आदि का ग्रहण, राजा से संबद्ध षड् दोषायतनों को जाने, पूछे एवं गवेषणा किए बिना भिक्षार्थ प्रवेश-निष्क्रमण, राजाओं के प्रवेश एवं निर्गमन को तथा राजरानियों को देखने की इच्छा, राजा के रहे हुए स्थान में रहना, महाभिषेक के समय प्रवेश-निष्क्रमण तथा आभिषेक्य राजधानियों में प्रवेश-निष्क्रमण—इन सब सूत्रों का उल्लेख (संग्रहण) हुआ है। यहां यह जिज्ञासा स्वाभाविक है कि सूत्रकार ने इन सूत्रों को आठवें उद्देशक में न रखकर नवें उद्देशक में क्यों रखा? अथवा आठवें उद्देशक के अन्तिम पांच सूत्रों को इस उद्देशक में क्यों नहीं रखा? भाष्य एवं चूर्णि में इस प्रश्न का कोई समाधान नहीं है। भाष्यकार ने भी क्षत्रिय, मुदित, मूर्धाभिषिक्त आदि शब्दों की व्याख्या आठवें उद्देशक में नहीं की, नवें उद्देशक में की है।

प्रस्तुत उद्देशक के भाष्य एवं चूर्णि को पढ़ने से पाठक को तत्कालीन भारतीय संस्कृति के विषय में अच्छी जानकारी उपलब्ध हो सकती है। जैसे—उस समय की राजनैतिक परिस्थितियां क्या थीं? क्या-क्या व्यवस्थाएं होती थीं? राजा के व्यक्तिगत जीवन से सम्बन्धित कार्यों में, अन्तःपुर में और अन्यान्य दायित्वों के निर्वहन में कितने और किस प्रकार के व्यक्ति नियोजित होते थे? राज्याभिषेक आदि के समय राजा के पास जाने अथवा न जाने से कौन-कौन-सी हानि हो सकती है? उस समय जाने वाले भिक्षु को क्या-क्या सावधानियां रखनी चाहिए? इत्यादि अनेक बातों की विस्तृत जानकारी निशीथभाष्य एवं उसकी चूर्णि में समुपलब्ध होती है।

भाष्यकार ने बताया है—उपयोग लगाकर राज्याभिषेक से पूर्व अथवा पश्चात् जाने वाला भिक्षु 'धर्मलाभ' कहकर राजा से कहे—प्रायोग्य की अनुज्ञा दें। यदि राजा पूछे कि 'प्रायोग्य क्या होता है?' अथवा 'मेरे पूर्ववर्ती राजाओं ने क्या दिया?' तो भिक्षु कहे—

आहार-उवहि-सेज्जा, ठाण-णिसीयण-तुयट्टगमणादी।
थीपुरिसाण य दिक्खा, दिण्णा ने पुव्वरादीहिं॥[1]

ऐसा सुनकर कोई प्रान्त प्रकृति वाला राजा कहे—दीक्षा को छोड़कर शेष सब की अनुज्ञा है क्योंकि यदि आप सबको दीक्षित कर लेंगे तो हम क्या करेंगे? इस प्रकार कहने पर उसे किस प्रकार समझाए, किस प्रकार विद्या आदि के द्वारा अनुकूल बनाए—इत्यादि संवाद का निशीथभाष्य एवं चूर्णि में बड़ा सुन्दर चित्रण किया गया है।

---

१. निभा. गा. २५७६

नवमो उद्देसो : नौवां उद्देशक

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
रायपिंड-पदं	**राजपिण्ड-पदम्**	**राजपिण्ड-पद**
१. जे भिक्खू रायपिंडं गेण्हति, गेण्हंतं वा सातिज्जति ।।	यो भिक्षुः राजपिण्डं गृह्णाति, गृह्णन्तं वा स्वदते ।	१. जो भिक्षु राजपिण्ड[1] का ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।
२. जे भिक्खू रायपिंडं भुंजति, भुंजंतं वा सातिज्जति ।।	यो भिक्षु राजपिण्डं भुङ्क्ते, भुञ्जानं वा स्वदते ।	२. जो भिक्षु राजपिण्ड का भोग करता है अथवा भोग करने वाले का अनुमोदन करता है।
रायंतेपुर-पदं	**राजान्तःपुर-पदम्**	**राजान्तःपुर-पद**
३. जे भिक्खू रायंतेपुरं पविसति, पविसंतं वा सातिज्जति ।।	यो भिक्षुः राजान्तःपुरं प्रविशति, प्रविशन्तं वा स्वदते ।	३. जो भिक्षु राजा के अन्तःपुर में प्रवेश करता है अथवा प्रवेश करने वाले का अनुमोदन करता है।[2]
४. जे भिक्खू रायंतेपुरियं वदेज्जा– 'आउसो! रायंतेपुरिए! णो खलु अम्हं कप्पइ रायंतेपुरं णिक्खमित्तए वा पविसित्तए वा, इमण्हं तुमं पडिग्गहगं गहाय रायंतेपुराओ असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा णीहरियं आहट्टु दलयाहि' जो तं एवं वदति, वदंतं वा सातिज्जति ।।	यो भिक्षुः राजान्तःपुरिकां वदेत्– आयुष्मति! राजान्तःपुरिके। नो खलु मम कल्पते राजान्तःपुरे निष्क्रमितुं वा प्रवेष्टुं वा, इमं त्वं प्रतिग्रहकं गृहीत्वा राजान्तःपुरात् अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा निस्सृतम् आहृत्य देहि, यः तामेवं वदति, वदन्तं वा स्वदते ।	४. जो भिक्षु राजा की अन्तःपुरिका (राजपत्नी) से कहे–हे आयुष्मती! राजान्तःपुरिके! हमें राजा के अन्तःपुर में निष्क्रमण अथवा प्रवेश करना नहीं कल्पता। अतः तुम इस प्रतिग्रह को लेकर राजा के अन्तःपुर से अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य निकालकर लाकर दे दो–जो उसको इस प्रकार कहता है अथवा कहने वाले का अनुमोदन करता है।
५. जे भिक्खुय णं रायंतेपुरिया वएज्जा– 'आउसंतो! समणा! णो खलु तुज्झं कप्पइ रायंतेपुरं णिक्खमित्तए वा पविसित्तए वा, आहरेयं पडिग्गहगं जा ते अहं रायंतेपुराओ असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा णीहरियं आहट्टु दलयामि' जे तं एवं वदतिं पडिसुणेति, पडिसुणेंतं वा सातिज्जति ।।	यं भिक्षुकं राजान्तःपुरिका वदेत्– आयुष्मन्! श्रमण! नो खलु तव कल्पते राजान्तःपुरे निष्क्रमितुं वा प्रवेष्टुं वा, आहरेमं प्रतिग्रहकं यावत् तुभ्यम् अहं राजान्तःपुरात् अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा निस्सृतम् आहृत्य ददामि, यः तामेवं वदन्तीं प्रतिशृणोति, प्रतिशृण्वन्तं वा स्वदते ।	५. यदि राजान्तःपुरिका भिक्षु से कहे–'हे आयुष्मन्! श्रमण! आपको राजा के अन्तःपुर में निष्क्रमण अथवा प्रवेश करना नहीं कल्पता। अतः आप यह प्रतिग्रह (पात्र) दो। मैं आपको राजा के अन्तःपुर से अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य निकालकर लाकर दूं'–जो भिक्षु इस प्रकार कहने वाली की बात को स्वीकार करता है अथवा स्वीकार करने वाले का अनुमोदन करता है।[3]

मुद्धाभिसित्त-पदं

मूर्धाभिषिक्त-पदम्

मूर्धाभिषिक्त-पद

६. जे भिक्खू रण्णो खत्तियाणं मुदियाणं मुद्धाभिसित्ताणं दोवारियभत्तं वा पसुभत्तं वा भयगभत्तं वा बलभत्तं वा कयगभत्तं वा कंतारभत्तं वा दुब्भिक्खभत्तं वा दमगभत्तं वा गिलाणभत्तं वा बद्दलियाभत्तं वा पाहुणभत्तं वा पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः राज्ञः क्षत्रियाणां मुदितानां मूर्धाभिषिक्तानां दौवारिकभक्तं वा पशुभक्तं वा भृतकभक्तं वा बलभक्तं वा कृतकभक्तं वा कांतारभक्तं वा दुर्भिक्षभक्तं वा द्रमकभक्तं वा ग्लानभक्तं वा बर्दलिकाभक्तं वा प्राघुणभक्तं वा प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते ।

६. जो भिक्षु मूर्धाभिषिक्त शुद्धवंशीय क्षत्रिय राजा के १. द्वारपालों के निमित्त बने भोजन २. पशुओं के निमित्त बने भोजन ३. भृतकों के निमित्त बने भोजन । ४. सेना के निमित्त बने भोजन ५. दासों के निमित्त बने भोजन ६. अटवी-निर्गत यात्रियों के निमित्त बने भोजन ७. दुर्भिक्ष-पीड़ितों के निमित्त बने भोजन ८. द्रमकों (दीन जनों) के निमित्त बने भोजन ९. रोगियों के निमित्त बने भोजन १०. अतिवृष्टि से पीड़ित लोगों के निमित्त बने भोजन अथवा ११. अतिथियों के निमित्त बने भोजन को ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।[४]

७. जे भिक्खू रण्णो खत्तियाणं मुदियाणं मुद्धाभिसित्ताणं इमाइं छद्दोसाययणाइं अजाणित्ता अपुच्छिय अगवेसिय परं चउराय-पंचरायाओ गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए णिक्खमति वा पविसति वा, णिक्खमंतं वा पविसंतं वा सातिज्जति, तं जहा—कोट्ठागार-सालाणि वा भंडागारसालाणि वा पाणसालाणि वा खीरसालाणि वा गंजसालाणि वा महाणससालाणि वा ।।

यो भिक्षुः राज्ञः क्षत्रियाणां मुदितानां मूर्धाभिषिक्तानाम् इमानि षड् दोषायतनानि अज्ञात्वा अपृष्ट्वा अगवेषयित्वा परं चतूरात्रपंचरात्रात् 'गाहा'पतिकुलं पिण्डपातप्रतिज्ञया निष्क्रामति वा प्रविशति वा, निष्क्रामन्तं वा प्रविशन्तं वा स्वदते, तद्यथा—कोष्ठागारशालाः वा भाण्डागार-शालाः वा पानशालाः वा क्षीरशालाः वा गञ्जशालाः वा महानसशालाः वा ।

७. जो भिक्षु मूर्धाभिषिक्त शुद्धवंशीय क्षत्रिय राजा के इन छह दोषायतनों की चार रात पांच रात में जानकारी किए बिना, पूछे बिना, गवेषणा किए बिना गृहपतिकुलों में पिण्डपात की प्रतिज्ञा से निष्क्रमण करता है अथवा प्रवेश करता है और निष्क्रमण अथवा प्रवेश करने वाले का अनुमोदन करता है। जैसे—कोष्ठागारशाला, भाण्डागारशाला, पानशाला, क्षीरशाला, गंजशाला और महानसशाला।[५]

८. जे भिक्खू रण्णो खत्तियाणं मुदियाणं मुद्धाभिसित्ताणं अइगच्छमाणाण वा णिग्गच्छमाणाण वा पदमवि चक्खुदंसण-पडियाए अभि-संधारेति, अभिसंधारेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः राज्ञः क्षत्रियाणां मुदितानां मूर्धाभिषिक्तानाम् अतिगच्छतां वा निर्गच्छतां वा पदमपि चक्षुर्दर्शनप्रतिज्ञया अभिसंधारयति, अभिसंधारयन्तं वा स्वदते ।

८. जो भिक्षु प्रविष्ट होने वाले अथवा निष्क्रमण करने वाले मूर्धाभिषिक्त शुद्धवंशीय क्षत्रिय राजा को देखने की प्रतिज्ञा से एक पैर भी चलता है अथवा चलने वाले का अनुमोदन करता है।

९. जे भिक्खू रण्णो खत्तियाणं मुदियाणं मुद्धाभिसित्ताणं इत्थीओ सव्वा-लंकारविभूसियाओ पदमवि चक्खु-दंसण-पडियाए अभिसंधारेति, अभिसंधारेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः राज्ञः क्षत्रियाणां मुदितानां मूर्धा-भिषिक्ताना स्त्रियः सर्वालंकारविभूषिताः पदमपि चक्षुर्दर्शनप्रतिज्ञया अभिसंधारयति, अभिसंधारयन्तं वा स्वदते ।

९. जो भिक्षु मूर्धाभिषिक्त शुद्धवंशीय क्षत्रिय राजा की सब अलंकारों से विभूषित स्त्रियों को देखने की प्रतिज्ञा से एक पैर भी चलता है अथवा चलने वाले का अनुमोदन करता है।[६]

१०. जे भिक्खू रण्णो खत्तियाणं मुदियाणं मुद्धाभिसित्ताणं मंसखायाण वा मच्छखायाण वा छविखायाण वा बहिया णिग्गयाणं असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः राज्ञः क्षत्रियाणां मुदितानां मूर्धाभिषिक्तानां मांसखादकानां वा मत्स्यखादकानां वा छविखादकानां वा बहिर्निर्गतानाम् अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते।

१०. मांसभोजी, मत्स्यभोजी अथवा छवीभोजी मूर्धाभिषिक्त शुद्धवंशीय क्षत्रिय राजा बहि-निर्गत—उद्यान में गोष्ठी-भोजन (पिकनिक अथवा वनभोज) करने गया हुआ हो। उसके खाने के लिए निष्पन्न अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य को जो भिक्षु ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।[७]

११. जे भिक्खू रण्णो खत्तियाणं मुदियाणं मुद्धाभिसित्ताणं अण्णयरं उववूहणियं समीहियं पेहाए ताए परिसाए अणुट्ठियाए अभिण्णाए अव्वोच्छिण्णाए जो तं अण्णं पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः राज्ञः क्षत्रियाणां मुदितानां मूर्धाभिषिक्तानाम् अन्यतरद् उपबृंहणीयं समीहितं प्रेक्ष्य तस्यां परिषदि अनुत्थितायाम् अभिन्नायाम् अव्यवच्छिन्नायाम् यस्तद् अन्नं प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते।

११. मूर्धाभिषिक्त शुद्धवंशीय क्षत्रिय राजा के लिए कोई उपबृंहणकारक (पुष्टिकारक) अशन आदि का उपहारविशेष लाए। उसे देखकर, जब तक भोजन करने वाली परिषद् उठ न जाए, कुछ लोग चले जाएं पर सब न जाएं, तब तक जो भिक्षु उस अन्न (अशन आदि) का ग्रहण करता है अथवा करने वाले का अनुमोदन करता है।[८]

१२. अह पुण एवं जाणेज्जा—इहज्ज राया खत्तिए परिवुसिए जे भिक्खू ताए गिहाए ताए पएसाए ताए उवासंतराए विहारं वा करेति, सज्झायं वा करेति, असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा आहारेति, उच्चारं वा पासवणं वा परिट्ठवेति, अण्णयरं वा अणारियं णिट्ठुरं असमणपाओग्गं कहं कहेति, कहेंतं वा सातिज्जति।।

अथ पुनः एवं जानीयात्—'इह अद्य राजा क्षत्रियः पर्युषितः', यो भिक्षुः तस्मिन् गृहे तस्मिन् प्रदेशे तस्मिन् अवकाशान्तरे विहारं वा करोति, स्वाध्यायं वा करोति, अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा आहरति, उच्चारं वा प्रस्रवणं वा परिष्ठापयति, अन्यतरां वा अनार्यां निष्ठुराम् अश्रमण-प्रायोग्यां कथां कथयति, कथयन्तं वा स्वदते।

१२. यदि पुनः ऐसा जाने—'आज यहां कोई क्षत्रिय राजा ठहरा हुआ था' तब जो भिक्षु उस घर में, घर के किसी प्रदेश में अथवा अन्य किसी अवकाशान्तर (समीपवर्ती बड़े स्थान) में रहता है, स्वाध्याय करता है, अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य का आहार करता है, उच्चार अथवा प्रस्रवण का परित्याग करता है अथवा किसी प्रकार की अनार्य, निष्ठुर, अश्रमणप्रायोग्य कथा कहता है अथवा कहने वाले का अनुमोदन करता है।[९]

१३. जे भिक्खू रण्णो खत्तियाणं मुदियाणं मुद्धाभिसित्ताणं बहिया जत्तासंठियाणं असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः राज्ञः क्षत्रियाणां मुदितानां मूर्धाभिषिक्तानां बहिः यात्रासंस्थितानाम् अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते।

१३. जो भिक्षु बहिर्यात्रा के लिए संप्रस्थित मूर्धाभिषिक्त शुद्धवंशीय क्षत्रिय राजा का अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

१४. जे भिक्खू रण्णो खत्तियाणं मुदियाणं मुद्धाभिसित्ताणं बहिया जत्तापडिणियत्ताणं असणं वा पाणं

यो भिक्षु राज्ञः क्षत्रियाणां मुदितानां मूर्धा-भिषिक्तानां बहिः यात्राप्रतिनिवृत्तानाम् अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा

१४. जो भिक्षु बहिर्यात्रा से प्रतिनिवृत्त (लौटे हुए) मूर्धाभिषिक्त शुद्धवंशीय क्षत्रिय राजा का अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य ग्रहण

वा खाइमं वा साइमं वा पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति।।

प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते।

करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

१५. जे भिक्खू रण्णो खत्तियाणं मुदियाणं मुद्धाभिसित्ताणं णदिजत्तापट्ठियाणं असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षु राज्ञः क्षत्रियाणां मुदितानां मूर्धाभिषिक्तानां नदीयात्राप्रस्थितानाम् अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते।

१५. जो भिक्षु नदीयात्रा हेतु संप्रस्थित मूर्धाभिषिक्त शुद्धवंशीय क्षत्रिय राजा का अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

१६. जे भिक्खू रण्णो खत्तियाणं मुदियाणं मुद्धाभिसित्ताणं णदिजत्ता-पडिणियत्ताणं असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः राज्ञः क्षत्रियाणां मुदितानां मूर्धाभिषिक्तानां नदीयात्राप्रतिनिवृत्तानाम् अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते।

१६. जो भिक्षु नदीयात्रा से प्रतिनिवृत्त मूर्धाभिषिक्त शुद्धवंशीय क्षत्रिय राजा का अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

१७. जे भिक्खू रण्णो खत्तियाणं मुदियाणं मुद्धाभिसित्ताणं गिरिजत्ता-पट्ठियाणं असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः राज्ञः क्षत्रियाणां मुदितानां मूर्धाभिषिक्तानां गिरियात्राप्रस्थितानाम् अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते।

१७. जो भिक्षु गिरियात्रा हेतु संप्रस्थित मूर्धाभिषिक्त शुद्धवंशीय क्षत्रिय राजा का अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

१८. जे भिक्खू रण्णो खत्तियाणं मुदियाणं मुद्धाभिसित्ताणं गिरिजत्ता-पडिणियत्ताणं असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः राज्ञः क्षत्रियाणां मुदितानां मूर्धाभिषिक्तानां गिरियात्राप्रतिनिवृत्तानाम् अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते।

१८. जो भिक्षु गिरियात्रा से प्रतिनिवृत्त मूर्धाभिषिक्त शुद्धवंशीय क्षत्रिय राजा का अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।[१०]

१९. जे भिक्खू रण्णो खत्तियाणं मुदियाणं मुद्धाभिसित्ताणं महा-भिसेयंसि वट्टमाणंसि णिक्खमति वा पविसति वा, णिक्खमंतं वा पविसंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः राज्ञः क्षत्रियाणां मुदितानां मूर्धाभिषिक्तानां महाभिषेके वर्तमाने निष्क्रामति वा प्रविशति वा, निष्क्रामन्तं वा प्रविशन्तं वा स्वदते।

१९. मूर्धाभिषिक्त शुद्धवंशीय क्षत्रिय राजा के महाभिषेक का विधि-विधान चल रहा हो, उस समय जो भिक्षु निष्क्रमण अथवा प्रवेश करता है और निष्क्रमण अथवा प्रवेश करने वाले का अनुमोदन करता है।[११]

२०. जे भिक्खू रण्णो खत्तियाणं मुदियाणं मुद्धाभिसित्ताणं इमा दस अभिसेयाओ रायहाणीओ उद्दिट्ठाओ गणियाओ वंजियाओ अंतोमासस्स दुक्खुत्तो वा तिक्खुत्तो वा णिक्खमति वा पविसति वा,

यो भिक्षुः राज्ञः क्षत्रियाणां मुदितानां मूर्धाभिषिक्तानां इमाः दश अभिषेकाः राजधान्यः उद्दिष्टाः गणिताः व्यंजिताः अन्तर्मासं द्विः वा त्रिः वा निष्क्रामति वा प्रविशति वा, निष्क्रामन्तं वा प्रविशन्तं वा स्वदते, तद्यथा—चंपा, मथुरा,

२०. मूर्धाभिषिक्त शुद्धवंशीय क्षत्रिय राजाओं की ये दस राज्याभिषेक योग्य राजधानियां उद्दिष्ट (कथित), गणित (संख्या में दस) और व्यंजित (नामोल्लेखपूर्वक कही गई) हैं, जैसे—चंपा, मथुरा, वाराणसी, श्रावस्ती, साकेत, कांपिल्यपुर, कौशाम्बी, हस्तिनापुर

णिक्खमंतं वा पविसंतं वा सातिज्जति, तं जहा—चंपा महुरा वाणारसी सावत्थी साएयं कंपिल्लं कोसंबी मिहिला हत्थिणापुरं रायगिहं ।।

वाराणसी, श्रावस्ती, साकेतं, काम्पिल्यं, कौशाम्बी, मिथिला, हस्तिनापुरं, राजगृहम्।

और राजगृह—जो भिक्षु एक महीने में दो बार अथवा तीन बार इन राजधानियों में प्रवेश करता है अथवा निष्क्रमण करता है और प्रवेश अथवा निष्क्रमण करने वाले का अनुमोदन करता है।[१२]

२१. जे भिक्खू रण्णो खत्तियाणं मुदियाणं मुद्धाभिसित्ताणं असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा परस्स णीहडं पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति, तं जहा—खत्तियाण वा राईण वा कुराईण वा रायपेसियाण वा ।।

यो भिक्षुः राज्ञः क्षत्रियाणां मुदितानां मूर्धाभिषिक्तानाम् अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा परस्मै निस्सृष्टं प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते, तद्यथा—क्षत्रियेभ्यः वा राजभ्यः वा 'कुराईण' वा राजप्रेष्येभ्यः वा।

२१. क्षत्रियों, राजाओं, कुराजाओं अथवा राजप्रेष्यों—मूर्धाभिषिक्त शुद्धवंशीय क्षत्रिय राजा द्वारा इनके लिए प्रदत्त अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य को जो भिक्षु ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

२२. जे भिक्खू रण्णो खत्तियाणं मुदियाणं मुद्धाभिसित्ताणं असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा परस्स णीहडं पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति, तं जहा—णडाण वा नट्टाण वा जल्लाण वा मल्लाण वा मुट्ठियाण वा वेलंबगाण वा कहगाण वा पवगाण वा लासगाण वा ।।

यो भिक्षुः राज्ञः क्षत्रियाणां मुदितानां मूर्धाभिषिक्तानाम् अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं परस्मै निस्सृष्टं प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते, तद्यथा—नटेभ्यः वा नर्त्तकेभ्यः वा जल्लेभ्यः वा मल्लेभ्यः वा मौष्टिकेभ्यः वा विडम्बकेभ्यः वा कथकेभ्यः वा प्लवकेभ्यः वा लासकेभ्यः वा।

२२. नट, नर्तक, जल्ल, मल्ल, मौष्टिक, विदूषक, कथा करने वाले, प्लवक अथवा लासक—मूर्धाभिषिक्त शुद्धवंशीय राजा द्वारा इनके लिए प्रदत्त अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य को जो भिक्षु ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

२३. जे भिक्खू रण्णो खत्तियाणं मुदियाणं मुद्धाभिसित्ताणं असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा परस्स णीहडं पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति, तं जहा—आसपोसयाण वा हत्थिपोसयाण वा महिसपोसयाण वा वसहपोसयाण वा सीहपोसयाण वा वग्घपोसयाण वा अयपोसयाण वा पोयपोसयाण वा मिगपोसयाण वा सुणहपोसयाण वा सूयरपोसयाण वा मेंढपोसयाण वा कुक्कुड-पोसयाण वा तित्तिरपोसयाण वा वट्टयपोसयाण वा लावयपोसयाण वा चीरल्लपोसयाण वा हंसपोसयाण वा मऊरपोसयाण वा सुयपोसयाण वा ।।

यो भिक्षुः राज्ञः क्षत्रियाणां मुदितानां मूर्धाभिषिक्तानाम् अशनं का पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा परस्मै निस्सृष्टं प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते, तद्यथा—अश्वपोषकेभ्यः वा हस्तिपोषकेभ्यः वा महिषपोषकेभ्यः वा वृषभपोषकेभ्यः वा सिंहपोषकेभ्यः वा व्याघ्रपोषकेभ्यः वा अजपोषकेभ्यः वा पोतपोषकेभ्यः वा मृगपोषकेभ्यः वा श्वपोषकेभ्यः वा शूकरपोषकेभ्यः वा मेषपोषकेभ्यः वा कुक्कुटपोषकेभ्यः वा तित्तिरपोषकेभ्यः वा वर्त्तकपोषकेभ्यः वा लावकपोषकेभ्यः वा 'चीरल्ल'पोषकेभ्यः वा हंसपोषकेभ्यः वा मयूरपोषकेभ्यः वा शुकपोषकेभ्यः वा।

२३. अश्वपोषक, हस्तिपोषक, महिषपोषक, वृषभपोषक, सिंहपोषक, व्याघ्रपोषक, अजपोषक, पोतपोषक, मृगपोषक, श्वानपोषक, शूकरपोषक, मेषपोषक, कुक्कुटपोषक, तीतरपोषक, बतखपोषक, लावकपोषक, चीरल्लपोषक, हंसपोषक, मयूरपोषक अथवा शुकपोषक—मूर्धाभिषिक्त शुद्धवंशीय क्षत्रिय राजा द्वारा इनके लिए प्रदत्त अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य को जो भिक्षु ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

२४. जे भिक्खू रण्णो खत्तियाणं मुदियाणं मुद्धाभिसित्ताणं असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा परस्स णीहडं पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति, तं जहा—आसदमगाण वा हत्थिदमगाण वा।।

यो भिक्षुः राज्ञः क्षत्रियाणां मुदितानां मूर्धाभिषिक्तानाम् अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा परस्मै निस्सृष्टं प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते, तद्‌यथा— अश्वदमकेभ्यः वा हस्तिदमकेभ्यः वा।

२४. अश्वदमक (अश्वशिक्षक) अथवा हस्तिदमक—मूर्धाभिषिक्त शुद्धवंशीय क्षत्रिय राजा के द्वारा इनके लिए प्रदत्त अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य को जो भिक्षु ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

२५. जे भिक्खू रण्णो खत्तियाणं मुदियाणं मुद्धाभिसित्ताणं असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा परस्स णीहडं पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति, तं जहा—आसमिंठाण वा हत्थिमिंठाण वा।।

यो भिक्षुः राज्ञः क्षत्रियाणां मुदितानां मूर्धाभिषिक्तानाम् अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा पस्मै निस्सृष्टं प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते, तद्‌यथा—अश्व'मिंठाण' वा हस्ति'मिंठाण' वा।

२५. अश्वमेंठ अथवा हस्तिमेंठ—मूर्धाभिषिक्त शुद्धवंशीय क्षत्रिय राजा के द्वारा इनके लिए प्रदत्त अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य को जो भिक्षु ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

२६. जे भिक्खू रण्णो खत्तियाणं मुदियाणं मुद्धाभिसित्ताणं असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा परस्स णीहडं पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति, तं जहा—आसारोहाण वा हत्थिआरोहाण वा।।

यो भिक्षुः राज्ञः क्षत्रियाणां मुदितानां मूर्धाभिषिक्तानाम् अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा परस्मै निस्सृष्टं प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते, तद्‌यथा—अश्वारोहेभ्यः वा हस्त्यारोहेभ्यः वा।

२६. अश्वारोही अथवा हस्त्यारोही (गजारोही)—मूर्धाभिषिक्त शुद्धवंशीय क्षत्रिय राजा के द्वारा इनके लिए प्रदत्त अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य को जो भिक्षु ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

२७. जे भिक्खू रण्णो खत्तियाणं मुदियाणं मुद्धाभिसित्ताणं असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा परस्स णीहडं पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति, तं जहा—सत्थाहाणं वा संवाहाण वा अब्भंगाण वा उव्वट्टाण वा मज्जावयाण वा मंडावयाण वा छत्तग्गहाण वा चामरग्गहाण वा हडप्पग्गहाण वा परियट्टग्गहाण वा दीवियग्गहाण वा असिग्गहाण वा धणुग्गहाण वा सत्तिग्गहाण वा कोंतग्गहाण वा।।

यो भिक्षुः राज्ञः क्षत्रियाणां मुदितानां मूर्धाभिषिक्तानाम् अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा परस्मै निस्सृष्टं प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते, तद्‌यथा— शस्त्राहेभ्यः वा संवाहेभ्यः वा अभ्यञ्जकेभ्यः वा उद्वर्तकेभ्यः वा मज्जापकेभ्यः वा मंडकेभ्यः वा छत्रग्रहेभ्यः वा चामरग्रहेभ्यः वा 'हडप्प'ग्रहेभ्यः वा परिवर्तग्रहेभ्यः वा द्वीपिकग्रहेभ्यः वा असिग्रहेभ्यः वा धनुर्ग्रहेभ्यः वा शक्तिग्रहेभ्यः वा कुन्तग्रहेभ्यः वा।

२७. शस्त्राह, संबाधन करने वाले, अभ्यंगन करने वाले, उद्वर्तन करने वाले, मज्जन (स्नान) करवाने वाले, मंडित (आभूषित) करने वाले, छत्र रखने वाले, चामर डुलाने वाले, हडप्प (आभरण-पेटिका) रखने वाले अर्थात् आभरण पहनाने वाले, वस्त्र परिवर्तन करवाने वाले, दीपिका रखने वाले, तलवार धारण करने वाले, धनुष धारण करने वाले, शक्ति धारण करने वाले अथवा भाला धारण करने वाले—मूर्धाभिषिक्त शुद्धवंशीय क्षत्रिय राजा के द्वारा इनके लिए प्रदत्त अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य को जो भिक्षु ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

२८. जे भिक्खू रण्णो खत्तियाणं मुदियाणं मुद्धाभिसित्ताणं असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा परस्स

यो भिक्षुः राज्ञः क्षत्रियाणां मुदितानां मूर्धाभिषिक्तानाम् अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा परस्मै निस्सृष्टं प्रतिगृह्णाति,

२८. वर्षधर, कंचुकी, द्वारपाल अथवा दंडारक्षिक—मूर्धाभिषिक्त शुद्धवंशीय क्षत्रिय राजा के द्वारा इनके लिए प्रदत्त अशन, पान,

णीहडं पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति, तं जहा—वरिसधराण वा कंचुइज्जाण दोवारियाण वा दंडारक्खियाण वा ।।

प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते, तद्यथा—वर्षधरेभ्यः वा कंचुकीयेभ्यः वा दौवारिकेभ्यः वा दण्डारक्षिकेभ्यः वा।

खाद्य अथवा स्वाद्य को जो भिक्षु ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

२९. जे भिक्खू रण्णो खत्तियाणं मुदियाणं मुद्धाभिसित्ताणं असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा परस्स णीहडं पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति, तं जहा—खुज्जाण वा चिलाइयाण वा वामणीण वा वडभीण वा बब्बरीण वा पउसीण वा जोणियाण वा पल्हवियाण वा ईसिणीण वा थारुगिणीण वा लासीण वा लउसीण वा सिंहलीण वा दमिलीण वा आरबीण वा पुलिंदीण वा पक्कणीण वा बहलीण वा मरुंडीण वा सबरीण वा पारसीण वा।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घातियं ।।

यो भिक्षुः राज्ञः क्षत्रियाणां मुदितानां मूर्धाभिषिक्तानाम् अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा परस्मै निस्सृष्टं प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते, तद्यथा—कुब्जाभ्यः वा किरातिकाभ्यः वा वामनीभ्यः वा वडभीभ्यः वा बर्बरीभ्यः वा बकुशीभ्यः वा यावनिकाभ्यः (योनिकाभ्यः) वा पल्हविकाभ्यः वा ईसीनिकाभ्यः वा थारुकिनीभ्यः वा लासिभ्यः वा लकुशिभ्यः वा सिंहलीभ्यः वा द्रविडीभ्यः वा आरबीभ्यः वा पुलिन्दीभ्यः वा पक्कणीभ्यः वा बहलीभ्यः वा मुरुण्डीभ्यः वा शबरीभ्यः वा पारसीभ्यः वा।

तत्सेवमानः आपद्यते चातुर्मासिकं परिहारस्थानम् अनुद्घातिकम्।

२९. कुब्जा, किराती, वामनी, वडभी (वक्रशरीर वाली), बर्बरी, बकुशी, यवनी, पल्हविका, ईसीनिका, थारुगिणिया, लासिका (लाटदेशीया), लकुशिका, सिंहलिका, द्राविड़ी (तमिलदेशीया), अरबी, पौलिंदी, पक्वणी, बहली, मुरुंडी, शबरी अथवा पारसी—मूर्धाभिषिक्त शुद्धवंशीय क्षत्रिय राजा के द्वारा इनके लिए प्रदत्त अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य को जो भिक्षु ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।[१३]

—इन का आसेवन करने वाले को चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान प्राप्त होता है।

टिप्पण

सूत्र १

१. राजपिण्ड (रायपिंडं)

प्रस्तुत आगम के आठवें उद्देशक में राजपिण्ड से संबंध रखने वाले छह सूत्र तथा नवें उद्देशक में इक्कीस सूत्र हैं।[1] मुख्यतया राजपिण्ड राजकीय भोजन का अर्थ देता है, किन्तु सामान्यतः राजपिण्ड शब्द से राजा के अपने निजी भोजन और राजसत्क भोजन—राजा के द्वारा दिए जाने वाले सभी प्रकार के भोजन, जिनका उल्लेख उपर्युक्त सूत्रों में हुआ है—का संग्रह होता है।

निसीहज्झयणं में राजा के तीन विशेषण उपलब्ध होते हैं—

१. वह जाति से क्षत्रिय होना चाहिए।

२. वह मुदित—जाति-शुद्ध होना चाहिए। अथवा जो उभय कुल विशुद्ध (उदित कुल एवं वंश में उत्पन्न) होना चाहिए।

३. वह मूर्धाभिषिक्त होना चाहिए।

निशीथभाष्य एवं चूर्णि के अनुसार अपने पूर्ववर्ती राजा के द्वारा मूर्धाभिषिक्त होकर सेनापति, अमात्य, पुरोहित, श्रेष्ठी और सार्थवाह सहित जो राजा राज्य का भोग करता है, उसका पिण्ड अग्राह्य है। शेष राजाओं के लिए विकल्प है—दोष की संभावना हो उनका आहार आदि न लिया जाए, दोष की संभावना न हो तो ले लिया जाए।[2]

राजा के घर का सरस आहार खाते रहने से रसलोलुपता न बढ़ जाए और ऐसा आहार अन्यत्र मिलना कठिन है—यों सोच मुनि अनेषणीय आहार लेने न लग जाएं—इन संभावनाओं को ध्यान में रखकर राजपिण्ड लेने का निषेध किया गया है। यह विधान एषणा शुद्धि के लिए है। निशीथचूर्णिकार ने यहां आकीर्ण दोष को प्रमुख बतलाया है। राजप्रासाद में सेनापति आदि आते जाते रहते है, वहां मुनि के पात्र आदि फूटने की तथा चोट लगने की संभावना रहती है इसलिए राजपिण्ड नहीं लेना चाहिए आदि-आदि।[3]

दसवेआलियं में राजपिण्ड के साथ 'किमिच्छक' अनाचार का भी उल्लेख मिलता है।[4] किमिच्छक शब्द अनाथपिण्ड, कृपणपिण्ड, वनीपकपिण्ड का अर्थ देता है।[5] इस प्रकार प्रस्तुत आगम के उपर्युक्त इक्कीस सूत्रों में राजपिण्ड और किमिच्छक दोनों अनाचारों के साथ साथ तत्सदृश अन्य संभावित अनाचारों के प्रायश्चित्त का भी संग्रह हो जाता है।

२. सूत्र ३

ठाणं में राजपिण्ड का भोग करने वाले को गुरु प्रायश्चित्त योग्य माना गया है।[6] राजा के अन्तःपुर में दंडारक्षिक, द्वारपाल, वर्षधर आदि विभिन्न लोगों का आवागमन रहता है। वहां अनेक कन्याएं एवं युवतियां होती हैं। अनेक प्रकार के गीत, नृत्य आदि के कारण वहां का वातावरण शृंगारप्रधान एवं भोगबहुल होता है। अतः वहां जाने पर भिक्षु के ईर्या, भाषा, एषणा आदि समितियों में स्खलना, पूर्वभोगों की स्मृति एवं कुतूहल के कारण ब्रह्मचर्य की अगुप्ति तथा अन्य अनेक दोष संभव हैं।[7] अतः सामान्यतः भिक्षु को अन्तःपुर से दूर रहना चाहिए। ठाणं में पांच कारणों से राजा के अन्तःपुर में प्रवेश करना अनुज्ञात माना गया है।[8]

३. सूत्र ४,५

भिक्षु के लिए राजा के अन्तःपुर में प्रवेश तथा राजपिण्ड का ग्रहण वर्जनीय है। ऐसी स्थिति में अन्तःपुरिका को अन्तःपुर से अशन, पान आदि लाकर देने का कहना अथवा ऐसा कहने वाली की बात को स्वीकार करना भी प्रकारान्तर से पूर्वोक्त विधि का उल्लंघन ही है। साथ ही इससे अभिहृत दोष, विषयुक्त या अभिमंत्रित आहार आदि की संभावना तथा भिक्षु के प्रति चोर, पारदारिक आदि की आशंका आदि दोष भी संभव हैं।[9] अतः अन्तःपुरिका से अशन आदि मंगवाना एवं लाए हुए को स्वीकार करना—दोनों ही राजपिण्ड ग्रहण के समान प्रायश्चित्त वाले कार्य हैं।

---

१. निसीह. ८/१४-१८ तथा ९/१,२,६,१०,११,१३-१९, २१-२९
२. निभा. गा. २४९७ तथा चूर्णि
३. वही, गा. २५०४-२५०७
४. दसवे. ३/३
५. वही, ३/३ का टिप्पण
६. ठाणं ५/१०१ का टिप्पण (पृ. ६२६)
७. (क) निभा. गा. २५१५,२५१७,२५१८
(ख) तुलना हेतु द्रष्टव्य ठाणं ५/१०२ का टिप्पण (टि. ६५)
८. ठाणं ५/१०२
९. निभा. गा. २५२२-२५२३

शब्द विमर्श

१. रायन्तेपुरिया—राजा के अन्तःपुर में रहने वाली, राजपत्नी।[1]

२. णीहरिय—निकालकर।

४. सूत्र ६

द्वारपालों, पशुओं, अटवी-निर्गत यात्रियों, दुर्भिक्षपीड़ितों आदि के लिए राजा के द्वारा प्रदत्त अशन, पान आदि को ग्रहण करने पर भी राजपिण्ड-ग्रहण सम्बन्धी दोष संभव हैं तथा जिनके निमित्त भोजन दिया जा रहा है, उनके मन में अप्रीति हो सकती है। अन्तराय आदि अन्य अनेक दोष भी संभव हैं।[2] अतः प्रस्तुत सूत्र में उसे ग्रहण करने वाले को प्रायश्चित्तार्ह माना गया है।

शब्द विमर्श

१. दोवारियभत्त—द्वारपालों[3] के निमित्त बना भोजन।

२. पसुभत्त—पशुओं के निमित्त बना भोजन।

३. भयगभत्त—भृतक के निमित्त बना भोजन।

४. बलभत्त—बल का अर्थ है चतुरंगिणी सेना—पदाति, अश्व, हाथी और रथ[4] उसके लिए बना भोजन।

५. कयगभत्त—क्रयक-दास के लिए बना भोजन। चूर्णिकार ने दास के लिए अकृतवृत्ति शब्द का प्रयोग किया है।[5]

६,७. कंतारभत्त, दुब्भिक्खभत्त—कान्तार (अटवी) निर्गत तथा दुर्भिक्ष पीड़ितों के लिए बना भोजन जो राजा के द्वारा दिया जाए, वह क्रमशः कान्तारभक्त एवं दुर्भिक्षभक्त है।[6]

८. दमगभत्त—दीनजनों के निमित्त बना भोजन।[7]

९. गिलाणभत्त—आरोग्यशाला में अथवा अन्य रोगियों को दिया जाने वाला भोजन।[8]

१०. वद्दलियाभत्त—सात दिनों तक निरन्तर वर्षा होने पर—अतिवृष्टि से पीड़ित लोगों के निमित्त राजा द्वारा दिया जाने वाला भोजन।[9]

११. पाहुणभत्त—राजा के अतिथि के निमित्त बना भोजन।[10]

(विस्तार हेतु द्रष्टव्य—ठाणं ९/६२ का टिप्पण)

५. सूत्र ७

जहां राजकुल का धान्यभंडार हो, जहां सुरा, मधु, सीधु आदि विविध पानक रख जाते हों, दूध, दही आदि का संचय हो, विविध प्रकार के धान्य कूटे जाते हों अथवा विविध प्रकार के रत्न रखे गए हों—ये स्थान दोषायतन माने गए हैं। वहां अज्ञान अथवा प्रमादवश चले जाने से भिक्षु के प्रति शंका हो सकती है, रुक्ष प्रकृति वाले रक्षक भिक्षु को बंदी बना सकते हैं, उसे शारीरिक कष्ट दे सकते हैं।[11] अतः राजधानी में पहुंचने के बाद भिक्षु को यथाशीघ्र इनकी जानकारी कर लेनी चाहिए।

सूत्र में चार-पांच रात का उल्लेख है। भाष्यकार ने इसकी अनेक प्रकार से संगति बिठाई है—

- पहले दिन जानकारी, पृच्छा, गवेषणा न करे तो मासलघु, दूसरे दिन मासगुरु, इस क्रम से चौथे दिन चतुर्गुरु प्रायश्चित्त प्राप्त होता है।
- कुछ आचार्यों के मतानुसार पहले दिन किसी व्याक्षेप अथवा श्रान्ति के कारण जानकारी न करे तो कोई प्रायश्चित्त नहीं, दूसरे दिन मासलघु, इस क्रम से पांचवें दिन चतुर्गुरु प्रायश्चित्त प्राप्त होता है।
- एक मत के अनुसार पहले दिन जानकारी न करने पर भिन्न मास का प्रायश्चित्त प्राप्त होता है, फलतः पांचवें दिन चतुर्गुरु प्रायश्चित्त आता है।
- एक अन्य मत के अनुसार पहले दिन का प्रायश्चित्त है बीस दिन रात, दूसरे दिन भिन्नमास, इस क्रम से पांचवें दिन चतुर्गुरु प्रायश्चित्त प्राप्त होता है।[12]

शब्द विमर्श

१. कोष्ठागार—धान्यभंडार, जहां सण आदि सत्रह प्रकार के धान्य रखे जाते हैं।[13]

२. भाण्डागार—रत्नभंडार, जहां सोलह प्रकार के रत्न रखे जाते हैं।[14]

३. पानशाला—जहां सुरा, मधु, सीधु, मत्यण्डिका, मृद्विका आदि के पानक रखे जाते हैं।[15]

---

१. निभा. २, चू.पृ. ४५३—अंतेपुरवासिणी अंतेपुरिया रण्णो भारिया इत्यर्थः।
२. वही, गा. २५२९-२५३१
३. वही, भा. २ चू. पृ. ४५५—दोवारिया दारपाला।
४. वही—बलं चउव्विहं—पाइक्कबलं आसबलं हत्थिबलं रहबलं।
५. वही—एतेसिं कयवित्तीण वा अकयवित्तीण वा णावालग्गाण वा जं रायकुलातो पेट्टगादि भत्तं णिग्गच्छति।
६. वही—कंतारातो अडविणिग्गयाणं भुक्खत्ताणं जं दुब्भिक्खे राया देति तं दुब्भिक्खभत्तं।
७. वही—दमगा रंका, तेसिं भत्तं दमगभत्तं।
८. वही—आरोग्गसालाए वा इतरमि त्ति विणावि आरोग्गसालाए जं गिलाणस्स दिज्जति तं गिलाणभत्तं।
९. वही—सत्ताहवद्दले पडंते भत्तं करेति राया।
१०. वही—रण्णो कोति पाहुणगो आगतो तस्स भत्तं आदेसभत्तं।
११. वही, गा. २५३८ व उसकी चूर्णि
१२. वही, गा. २५३६,२५३७
१३. वही, भा.२, चू.पृ. ४५६—जत्थ सण सत्तरसाणि धण्णाणि कोट्ठागारो।
१४. वही—भंडागारो जत्थ सोलसविहाइं रयणाइं।
१५. वही—पाणागारं जत्थ पाणियकम्मं तो सुरा-मधु-सीधु-खंडगं-मच्छंडिय-मुद्दियापभित्तीण पाणगाणि।

४. क्षीरशाला—जहां दूध, दही, नवनीत, तक्र आदि रखे जाते हैं।[१]

५. गंजशाला—जहां सन आदि सत्रह प्रकार के धान्य कूटे जाते हैं अथवा गंज का अर्थ है यव अतः गंजशाला अर्थात् यव रखने का स्थान।[२]

६. महासनशाला—जहां अशन, पान, खादिम आदि विविध खाद्य उपस्कृत किए जाते हैं।[३]

६. सूत्र ८,९

प्रस्तुत सूत्रद्वयी में राजा तथा रानी को देखने के संकल्प से जाने का प्रायश्चित्त बतलाया गया है। इस उद्देशक में चतुर्गुरु प्रायश्चित्त का प्रसंग है। अन्य दर्शनीय स्थलों को देखने के संकल्प से जाने पर चतुर्लघु प्रायश्चित्त प्राप्त होता है।[४] इससे ऐसा प्रतीत होता है कि अन्य दर्शनीय पदार्थों अथवा स्थलों की अपेक्षा राजा के प्रवेश एवं निष्क्रमण तथा अलंकृत-विभूषित राजरानियों को देखना अधिक दोषयुक्त है।

भाष्यकार ने प्रस्तुत संदर्भ में अनेक दोषों की संभावना व्यक्त की है। जैसे—कोई राजा युद्ध के लिए निर्गमन कर रहा हो और साधुओं के दर्शन के बाद उस युद्ध में विजय प्राप्त हो जाए तो वह उस विजय को साधुओं के दर्शन को परिणाम मानकर बार-बार युद्ध से पूर्व साधु-दर्शन की आकांक्षा करेगा। यदि वह पराजित हो जाए तो साधु-दर्शन को अपशकुन मानकर साधुओं के प्रति द्वेष करेगा, आहार, पानी, वसति आदि का व्यवच्छेद कर देगा।[५] दूसरी ओर राजा की समृद्धि आदि को देखकर कोई साधु निदान कर सकता है, भुक्तभोगों की स्मृति से या कुतूहलवश साधना के मार्ग से च्युत हो सकता है।[६] अलंकृत राजरानियों को रागदृष्टि से देखने पर वे या उनके सुहृज्जन साधु के प्रति आशंका कर सकते हैं, लोकापवाद आदि का प्रसंग उपस्थित हो सकता है। अथवा उनकी ओर देखते रहने से ईर्या में अनुपयुक्त भिक्षु के स्खलन, पतन, भाजनभेद आदि अन्य दोष संभव है।[७]

शब्द विमर्श

अभिसंधार—पर्यालोचन करना, निश्चय करना।[८]

७. सूत्र १०

जो राजा शिकार आदि के लिए अथवा गोष्ठी-भोज (पिकनिक) के लिए बाहर गया हुआ है, वहां उसके द्वारा किसी भोज का आयोजन हो या तत्रस्थ कार्पटिकों, भिक्षुओं आदि को देने के लिए राजा की ओर से अशन, पान आदि की व्यवस्था हो, उसे ग्रहण करना भी राजपिण्ड ग्रहण करने के समान ही दोषों का हेतु है।[९] अतः प्रायश्चित्तार्ह है।

शब्द विमर्श

१. मंसखाय—मृग आदि के शिकार के लिए निर्गत।[१०]

२. मच्छखाय—द्रह, नदी, समुद्र आदि में मत्स्य आदि के प्रयोजन से निर्गत।[११]

३. छविखाय—छवि का अर्थ है—चावल आदि की फली।[१२] फली, विविध प्रकार के फल खाने के लिए उद्यानिका हेतु निर्गत।[१३]

८. सूत्र ११

राजा जहां परिषद् के साथ आहार कर रहा हो, वहां कोई विशिष्ट खाद्य-पेय उपहृत किया जाए, वह भी राजपिण्ड ही होता है। अतः उस समस्त परिषद् के वहां से चले जाने से पूर्व वह उपबृंहणीय उपहार भी ग्रहण नहीं करना चाहिए। यह प्रस्तुत सूत्र का अभिप्राय है।

शब्द विमर्श

१. उववूहणिया—उपबृंहणकारक (पुष्टिकारक) अशन आदि। जिस अशन आदि से मेधा, धारणा, इन्द्रियपाटव, शरीर एवं आयु का सवंर्धन हो, वे उपबृंहणकारण कहलाते हैं।[१४]

२. समीहिय—उपहार।[१५]

३. अणुट्ठिता—आसन छोड़ कर खड़े न हुए हों।[१६]

४. अभिण्णा—परिषद् के कुछ लोग न चले गए हों।[१७]

५. अव्वोच्छिण्णा—परिषद् के समस्त लोग न चले गए हों।[१८]

---

१. निभा. भा. २ चू.पृ. ४५६—खीरघरं जत्थ खीर-दधि-णवणीय-तक्कादीणि अच्छंति।
२. वही—गंजसाला जत्थ सणसत्तरसाणि धण्णाणि कोट्टिज्जंति। अहवा गंजा जवा, ते जत्थ अच्छंति सा गंजसाला।
३. वही—महाणससाला जत्थ असण-पाण-खातिमादीणि णाणाविहभक्खे उवक्खडिज्जंति।
४. निसीह. १२/१७-२९
५. निभा. गा. २५४२
६. वही, गा. २५४३
७. वही, गा. २५४१ व उसकी चूर्णि
८. पाइय.
९. निभा. गा. २५५२
१०. वही, भा. २, चू.पृ. ४५९—मिगादिपारद्धिणिग्गता मंसखादगा।
११. वही—दह-णइ-समुद्देसु मच्छखादगा।
१२. वही—छवी कलमादिसंगा।
१३. वही—ता खायन्ति णिग्गया उज्जाणियाए वा णियकुलाण।
१४. वही, गा. २५५४—
मेहाधारण-इंदिय, देहाऊणि विवड्ढए जम्हा।
उववूहणीय तम्हा, चउव्विहा सा उ असणादी॥
१५. वही, भा. २, चू. पृ. ४५९—समीहिता समीपमतिता, तं पुण पाहुडं।
१६. वही, पृ. ४६०—आसणाणि मोत्तुं उद्धट्ठिताए अच्छंति।
१७. वही—ततो केति णिग्गता भिण्णा।
१८. वही—अवसेसेसु णिग्गतेसु वोच्छिण्णा।

९. सूत्र १२

जिस स्थान पर राजा ठहरा हुआ हो, उस स्थान पर दूसरे-तीसरे दिन रहने, आहार आदि करने, उच्चार-प्रस्रवण का परिष्ठापन करने तथा किसी भी प्रकार की अश्रमणप्रायोग्य कथा कहने वाले भिक्षु को प्रायश्चित्तार्ह माना गया है। जहां राजा रहता है, उस स्थान पर कुछ छूट गया हो, खो गया हो तो भिक्षु पर आरोप की संभावना रहती है।[१] वहां रहने पर विविध प्रकार की भोग सामग्री, चित्र आदि देखने से भुक्तभोगों की स्मृति अथवा तादृश कुतूहल के कारण मोहोद्भव की संभावना भी रहती है।[२] अतः ऐसे निवास/प्रवास स्थानों का वर्जन करना चाहिए।

१०. सूत्र १३-१८

कोई राजा शत्रु-विजय अथवा युद्ध हेतु प्रस्थान करते समय ब्राह्मणों आदि को भोजन करवाता है, कोई विजय-यात्रा से लौटकर उसकी खुशी में भोज देता है।[३] इसी प्रकार हाथियों को वश में करने के लिए गिरियात्रा तथा जलक्रीड़ा आदि के लिए नदीयात्रा पर जाने से पूर्व और लौटने के बाद राजाओं के द्वारा भोज का आयोजन किया जाता है। ये सब भी राजपिण्ड ही हैं अतः इनके विषय में भी वे ही दोष तथा वही प्रायश्चित्त ज्ञातव्य है, जो पूर्वसूत्रों में कहा जा चुका है।[४]

शब्द विमर्श

१. **बहिया जत्तासंठिया**—बहिर्यात्रा का अर्थ है शत्रु-पक्ष पर विजय प्राप्ति के निमित्त की जाने वाली यात्रा। भाष्य-गाथा २५६५ के अनुसार यहां पट्ठिय तथा गा. २५६६ के अनुसार यहां 'संपट्ठिय' शब्द होना चाहिए। किन्तु आदर्शों में प्रस्तुत सूत्र में 'संठिय' शब्द मिलता है अतः इसे इसी रूप में संप्रस्थित अर्थ में स्वीकार किया गया है।

२. **गिरिजत्ता**—हाथियों को पकड़ने के लिए गिरियात्रा की जाती है।[५]

११. सूत्र १९

जिस समय राजा के महाराज्याभिषेक का उत्सव मनाया जाता है, उस समय यदि भिक्षु वहां पहुंचता है तो जनाकीर्ण स्थान में होने वाले संयमविराधना एवं आत्मविराधना आदि दोष तो होते ही हैं, साथ ही यदि राजा और उसके पारिवारिक जन भद्रप्रकृति के हों तो भिक्षु को देखकर उनमें मंगलबुद्धि उत्पन्न होती है और संयोगवश यदि उसके राज्य में कोई मांगलिक कार्य हो जाए, विजय प्राप्त हो जाए तो वह अपनी हर मांगलिक प्रवृत्ति में भिक्षु के दर्शन करना चाहेगा। यदि राजा आदि रुक्षप्रकृति के हों तो अमंगलबुद्धि और अमांगलिकता की आशंका के कारण ये सदा भिक्षु से बचना चाहेंगे। इस प्रकार भिक्षु उसकी प्रवृत्ति-निवृत्ति में कारणभूत होने से अधिकरण का निमित्त बन सकता है। प्रान्त प्रकृति वाला राजा भिक्षु का प्रतिषेध अथवा किसी द्रव्य का व्यवच्छेद कर सकता है[६] अतः भिक्षु को महाराज्याभिषेक के अवसर पर उस कार्यक्रम के दौरान प्रवेश-निष्क्रमण नहीं करना चाहिए।

शब्द विमर्श

महाभिसेय—ईश्वर, तलवर आदि के पदाभिषेक की अपेक्षा महाराज्याभिषेक का कार्यक्रम विशिष्ट एवं बड़ा होता है अतः उसे महाभिषेक कहा जाता है।[७]

१२. सूत्र २०

प्राचीन काल में १. चम्पा—अंगदेश २. मथुरा—सूरसेन ३. वाराणसी—काशी ४. श्रावस्ती—कुणाल ५. साकेत—कौशल ६. हस्तिनापुर—कुरु ७. कांपिल्य—पांचाल ८. मिथिला—विदेह ९. कौशाम्बी—वत्स तथा १०. राजगृह—मगध की राजधानी थी। इनमें भरत, सगर, मघवा, सनत्कुमार, शान्ति, कुन्थु, अर, महापद्म, हरिषेण एवं जय राजा मुंडित होकर प्रव्रजित हुए।[८] निशीथभाष्य के अनुसार बारह चक्रवर्ती राजाओं में शान्ति, कुन्थु एवं अर—ये तीन एक राजधानी में उत्पन्न हुए तथा शेष नौ अन्य नौ राजधानियों में—इस प्रकार ये दस उनके जन्मस्थान हैं, प्रव्रज्या स्थान नहीं।[९] निशीथचूर्णि के अनुसार ये बारह चक्रवर्ती राजाओं की राजधानियां है।[१०] आवश्यक निर्युक्ति[११] के अनुसार सनत्कुमार, शान्ति, कुन्थु, अर एवं सुभूम—ये पांच हस्तिनापुर में उत्पन्न हुए। स्थानांग वृत्ति[१२] के अनुसार चक्रवर्ती के जन्मस्थान ही उनके प्रव्रज्या स्थान हैं—'ये च यत्रोत्पन्नास्ते तत्रैव प्रव्रजिताः' सुभूम एवं ब्रह्मदत्त प्रव्रजित नहीं हुए। ऐसी स्थिति में कौन, कहां प्रव्रजित हुए—यह अनुसंधान का विषय है।

निशीथभाष्य के अनुसार चक्रवर्ती राजाओं की राजधानियों में प्रवेश-निष्क्रमण के निषेध से वासुदेवों की राजधानियां तथा अन्य जनाकीर्ण नगरों का भी निषेध सूचित होता है।[१३] क्योंकि वहां जाने

१. निभा. गा. २५५९
२. वही, गा. २५६०,२५६१
३. वही भा. २, चू.पृ. ४६१—जाहे परविजयट्ठा गच्छति ताहे मंगलसंतिणिमित्तं दियादीण-भोयणं काउं गच्छंति, पडिणियत्ता विजए संखडिं करेति।
४. वही, गा. २५६४
५. वही, गा. २५६६—गिरिजत्ता गयगहणी।
६. वही, गा. २५६८,२५६९
७. वही, २, चू.पृ. ४६२—ईसरतलवरमादियाणं अभिसेगाण महंततरो अभिसेसो महाभिसेओ, अधिरायत्तेण अभिसेओ।
८. ठाणं १०/२८
९. निभा. गा. २५९०,२५९१
१०. वही, भा. २ चू.पृ. ४६६—बारसचक्कीण एया रायहाणीओ।
११. आवनि. ३९७
१२. स्था. वृ.पृ. ४५४
१३. निभा. भा. २ चू.पृ. ४६६—जासु वा णगरीसु केसवा अण्णा वि जा जणाइण्णा सा वि वज्जणिज्जा।

से अनेक दोष संभव हैं, जैसे—भुक्तभोगों की स्मृति, अभुक्तभोगों के प्रति कुतूहल, संयमभ्रंश, अत्यधिक भीड़ के कारण भिक्षा, विचारभूमि आदि में बाधा, स्वाध्याय, ध्यान में विघ्न आदि।[१] विस्तार हेतु द्रष्टव्य ठाणं १०।२७,२८ तथा उनके टिप्पण।

१३. सूत्र २१-२९

प्रस्तुत आलापक में राजा के द्वारा विभिन्न वर्गों के लिए प्रदत्त विभिन्न प्रकार के राजसत्क भोजन को ग्रहण करने का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है। इनमें कुछ राजा के अधीनस्थ काम करने वाले आरक्षक आदि, कुछ उसकी व्यक्तिगत सेवा में नियुक्त मर्दन, अभ्यंगन आदि करने वाले राजसेवक, कुछ अन्तःपुर में नियुक्त वर्षधर, कंचुकी आदि राजकर्मचारी, इक्कीस प्रकार की दासियां तथा पशु-पक्षियों के पालन-पोषण एवं प्रशिक्षण में नियुक्त राजकर्मचारी हैं तथा कुछ जल्ल, मल्ल आदि कलाकार वर्ग के लोग हैं। भाष्यकार के अनुसार इन विभिन्न प्रकार के व्यक्तियों के लिए राजा द्वारा प्रदत्त भोजन को ग्रहण करने पर वे ही दोष संभव हैं, जो राजपिण्ड को ग्रहण करने में आते हैं। अतः इनके लिए भी वही प्रायश्चित्त एवं अपवाद-पद है।[२]

शब्द विमर्श

१. **क्षत्रिय**—आरक्षक।[३]

२. **राजा**—अधिपति।[४]

३. **कुराजा**—कुत्सित राजा या प्रत्यन्तवर्ती नृप।[५]

४. **राजप्रेष्य**—राजकीय भृत्य।[६]

५. **णीहड**—प्रदत्त।[७]

१. **जल्ल**—कौड़ी से जुआ खेलने वाला।[८] निशीथचूर्णि के अनुसार जल्ल राजा के स्तोत्रपाठक होते हैं।[९]

२. **मल्ल**—पहलवान।[१०]

३. **मौष्टिक**—मुष्टियुद्ध करने वाले, युद्ध करने वाले मल्ल।[११]

४. **वेलंबक**—विदूषक।[१२]

५. **प्लवक**—छलांग भरने वाले, नदी, समुद्र आदि तैरने वाले।[१३]

६. **लासक**—रास रचाने वाले जिसमें वाद्य, नृत्य तथा गीत—तीनों हो, वह लास्य—रास कहलाता है, उसको प्रस्तुत करने वाले।[१४] निशीथ चूर्णि के अनुसार 'जय' 'जय' शब्द का प्रयोग करने वाले भांड लासक कहलाते हैं।[१५]

७. **दमक**—शिक्षक, जो अश्व आदि पशुओं एवं तीतर आदि पक्षियों को शिक्षित करते हैं।[१६]

८. **मेंठ**—युद्ध आदि के लिए पशु-पक्षियों को प्रशिक्षित करने वाले, योग्या (शस्त्रचालन का अभ्यास[१७]) कराने वाले[१८]

९. **आरोही**—युद्धकाल में आरोहण करने वाले।[१९]

१०. **सत्थाह**—शस्त्राह—शस्त्र को धारण (आधान करने) वाले अर्थात् सुरक्षा प्रहरी। निशीथचूर्णि के अनुसार इसका अर्थ है—धनुर्वेद आदि राजशास्त्रों का आख्यान (कथन) करने वाले।[२०]

११. **संवाह**—संबाधन—मर्दन करने वाले।[२१]

१२. **अब्भंग**—अभ्यंगन—तैल मर्दन करने वाले।[२२]

१३. **उव्वट्ट**—उद्वर्तन करने वाले।[२३]

१४. **मज्जावय**—मज्जन—स्नान करवाने वाले।[२४]

१५. **मंडावय**—मंडित (आभूषित) करने वाले।[२५]

१६. **छत्तग्गह**—छत्र रखने वाले।

१७. **चामरग्गह**—चामर डुलाने वाले।

१८. **हडप्पग्गह**—हडप्प (आभरण) पहनाने वाले।[२६]

१९. **परियट्टग्गह**—वस्त्र परिवर्तन करने वाले।[२७]

२०. **दीवियग्गह**—दीपिका रखने वाले।

२१. **असिग्गह**—तलवार धारण करने वाले।

२२-२४. **धणुग्गह—कोंतग्गह**—क्रमशः धनुष[२८] धारण करने वाले, शक्ति धारण करने वाले, भाला धारण करने वाले।

---

१. निभा. गा. २५९२-२५९४
२. वही, गा. २५९७,२५९८
३. वही, भा. २, चू.पृ. ४६७—क्षतात् त्रयान्तीति क्षत्रिया आरक्षकेत्यर्थः।
४. वही—अधिवो राया।
५. वही, पृ. ४६७,४६८—कुस्सितो राया कुराया। अहवा पच्चंतणिवो कुराया।
६. वही, पृ. ४६८—जे एतेसिं चेव प्रेष्या पेसिता।
७. वही—णीहडं—णिसट्ठं दत्तमित्यर्थः।
८. अणु. सू. ८८
९. निभा. २, चू.पृ. ४६८—जल्ला राज्ञः स्तोत्रपाठकाः।
१०. वही—अणाहमल्लगाणं पविट्ठा मल्ला।
११. वही—मुट्ठिया जुज्झणमल्ला।
१२. अणु. सू. ८८
१३. निभा. २ चू.पृ. ४६८—णदीसमुद्दादिसु जे तरंति ते पवगा।
१४. अणु. सू. ८८
१५. निभा. २ चू.पृ. ४६८—जयसद्दपयोत्तारो लासगा, भंडा इत्यर्थः।
१६. वही, पृ. ४६९—जे पढमं विणयं गाहेंति ते दमगा।
१७. अचि. ३।४५२
१८. निभा. भा. २ चू.पृ. ४६९—जे जणा जोगासणेहिं वावारं वा वहेंति ते मेंठा।
१९. वही—जुद्धकाले जे आरुहंति ते आरोहा।
२०. वही—ईसत्थमादियाणि रायसत्थाणि आहयंति कथयंति ते सत्थाहा।
२१. वही—पडिमद्दंति जे ते परिमद्दा, शयनकाले परिपिट्टंति।
२२. वही—शतपाकादिना तैलेन अब्भंगेति।
२३. वही—पादेहिं उव्वट्टेति।
२४. वही—ण्हावेंति जे ते मज्जावका।
२५. वही—मउडादिणा मंडेंति जे ते मंडावगा।
२६. वही—आभरणमंडयं हडप्पो।
२७. वही—वस्त्रपरावर्तं गृण्हंति जे ते परियट्टगा।
२८. वही—चावं धणुयं।

२५. **वर्षधर**—अन्तःपुर रक्षक षण्ढ।[1]

२६. **कंचुकी**—अन्तःपुरिका को राजा के समीप लाने ले जाने वाला।[2]

२७. **द्वारपाल**—विशिष्ट सूचनाएं देने वाला।[3]

२८. **दंडारक्षिक**—राजा की आज्ञा से स्त्री-पुरुषों को अन्तःपुर में प्रवेश आदि देने वाले।[4]

२९. **खुज्जा......पारसी**—ये इक्कीस प्रकार की दासियां हैं। इनमें कुब्जा[5], वामनी एवं वडभी[6] को छोड़कर शेष पृथक्-पृथक् देशों से सम्बद्ध हैं।[7] बर्बर, बकुश, यवन आदि देशों से संबद्ध होने के कारण उन दासियों के नाम बर्बरी, बकुशी, यवनी आदि हैं—ऐसा ज्ञातव्य है। राजकुमारों को अनेक देशों की भाषा एवं संस्कृति से परिचित कराने हेतु अनेक परिचारिकाएं रहती थीं। राजघरानों में विदेशी दासियों का रहना गौरव एवं समृद्धि का सूचक माना जाता था। नानादेशीय सेविकाओं के कारण अपने देश की शोभा बढ़ती है—ऐसी धारणा थी।[8] अन्य आगमों में भी अठारह देशीय दासियों का उल्लेख मिलता है। प्राचीन आगमेतर साहित्य तथा महाभारत आदि अन्य ग्रन्थों में भी यवन, पुलिंद, बर्बर आदि का उल्लेख उपलब्ध होता है।

---

१. निभा. भा. २, चू.पृ. ४५२—वरिसधरा जेसि जातमेत्ताण चेव दोभाउयाच्छेज्जं दाऊणं गालिया ते वड्ढिता। जातमेत्ताण चेव जेसिं मेलितेहिं चोतिआ ते चिप्पिसा।

२. वही—रण्णो आणत्तीए अंतेपुरियसमीवं गच्छंति, अंतपुरियाणत्तीए वा रण्णो समीवं गच्छंति ते कंचुइया।

३. वही—दोवारिया दारे चेव णिविट्ठा रक्खंति।

४. वही—दंडगहियग्गहत्थो सव्वतो अंतेपुरं रक्खइ। रण्णो वयणेण इत्थिं पुरिसं वा अंतेपुरं णीणेति पवेसेति, एस दंडारक्खितो।

५. वही, पृ. ४७०—शरीरवक्रा खुज्जा।

६. वही—पट्ठी कुज्जागारा णिग्गता वडभं।

७. वही—सेसा विसयाभिहाणेहिं वत्तव्वं।

८. णाया. १/८२ का टिप्पण।

दसमो उद्देसो

दसवां उद्देशक

आमुख

प्रस्तुत उद्देशक का मुख्य प्रतिपाद्य है—रात्रिभोजन, पर्युषणविषयक अतिक्रमण, पूज्यजनों को आगाढ़-परुष बोलने, आशातना करने, विपरीत प्रायश्चित्त देने, शैक्षापहार एवं दिशापहार तथा वैयावृत्य विषयक प्रमाद आदि का प्रायश्चित्त। इस प्रकार पूर्ववर्ती उद्देशक के समान इसका कोई एक मुख्य प्रतिपाद्य नहीं है।

ठाणं सूत्र में पांच अनुद्घात्य बतलाए गए है—१. हस्तकर्म २. मैथुन ३. रात्रिभोजन ४. शय्यातरपिण्ड एवं ५. राजपिण्ड।[1] प्रस्तुत आगम के अनुसार शय्यातरपिण्ड के ग्रहण, भोग आदि से उद्घातिक मासिक प्रायश्चित्त प्राप्त होता है। हस्तकर्म से अनुद्घातिक मासिक तथा शेष तीन—मैथुन, राजपिण्ड एवं रात्रिभोजन से अनुद्घातिक चातुर्मासिक प्रायश्चित्त प्राप्त होता है। इस उद्देशक के अनन्तर पूर्ववर्ती चार उद्देशकों में मैथुन एवं राजपिण्ड के लिए अनुद्घातिक चातुर्मासिक प्रायश्चित्त का प्ररूपण हुआ है। प्रस्तुत उद्देशक में रात्रिभोजन सम्बन्धी पांच सूत्रों का प्ररूपण है। कप्पो (बृहत्कल्पसूत्र) के पांचवें उद्देशक में भी ये ही सूत्र कुछ शब्द भेद के साथ इसी क्रम से आए हैं।[2]

प्रस्तुत उद्देशक का एक मुख्य विषय है—पर्युषणा। पर्युषणा विषयक समस्त विधि-निषेधों की जितनी विस्तृत जानकारी इस उद्देशक एवं इसकी भाष्य तथा चूर्णि में उपलब्ध होती है अन्यत्र दुर्लभ है। ठाणं में प्रथम प्रावृट् (संवत्सरी से पूर्ववर्ती पचास दिनों) में तथा वर्षावास में पर्युषणा-कल्पपूर्वक निवास करने के बाद ग्रामानुग्राम विचरण करने का निषेध तथा दोनों के पांच-पांच अपवाद प्रज्ञप्त हैं।[3] प्रस्तुत उद्देशक में उस निषेध का प्रायश्चित्त बतलाया गया है। इसी संदर्भ में भाष्य एवं चूर्णि में पर्युषणा के विविध एकार्थक शब्द एवं निरुक्त, द्रव्य; क्षेत्र आदि निक्षेपों से स्थापना पद की व्याख्या, कलहव्युपशमन, विगयवर्जन, कषायवर्जन, कषाय-षोडशक की सोदाहरण परिभाषाएं, कषाय के आधार पर गति आदि, केशलोच, पर्युषणा में आहार का निषेध, पर्युषणा कल्प-विधि, पर्युषणा से पूर्व या उसके अतिक्रान्त होने पर पर्युषित होने के दोष, अपवाद आदि विषयों का सविस्तर विवरण उपलब्ध होता है।

प्रस्तुत उद्देशक में भदन्त को आगाढ़ वचन बोलने एवं आशातना करने का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है। इस प्रसंग में भाष्यकार ने जाति, कुल, रूप आदि सत्रह द्वारों से सूचा एवं असूचा आगाढ़ वचन का विस्तार से वर्णन किया है। 'हम तो जातिहीन हैं, जातिमान लोगों से हमारा क्या विरोध?'—इस प्रकार बोलना असूचा एवं 'तुम जातिहीन हो'—इस प्रकार बोलना सूचा आगाढ़ वचन होता है। इस प्रसंग में चूर्णि में श्रुत, लाभ, बल, सत्त्व, शील, सामाचारी आदि की संक्षिप्त एवं सुन्दर परिभाषाएं उपलब्ध होती हैं। इसी प्रकार भाष्यकार एवं चूर्णिकार ने आशातना की परिभाषा, आशातना के द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव—ये चार भेद, उनसे होने वाले दोष एवं उनके अपवाद का सुन्दर चित्रण किया है।

प्रायश्चित्त के दो प्रकार होते हैं—उद्घातिक और अनुद्घातिक। उद्घात का अर्थ है—भागपात अर्थात् विभक्तीकरण। भागपात से निर्वृत्त प्रायश्चित्त लघु अथवा उद्घातिक कहलाता है, जैसे—किसी को लघुमासिक तपः प्रायश्चित्त प्राप्त हुआ तो उसे साढ़े सत्ताईस दिन का तप करना होगा। श्रीमद् अभयदेवसूरि ने इसकी विधि-विषयक गाथा को उद्धृत किया है—

अद्धेण छिन्नसेसं, पुव्वद्धेण तु संजुयं काउं।
देज्जाहि लहुयदाणं, गुरुदाणं तत्तियं चेव।।

---

१. ठाणं ५/१०१

२. कप्पो ५/६-१०

३. वही, ५/९९,१००

प्रदत्त प्रायश्चित्त को आधा करके (३०÷२=१५) उसमें उसके पूर्ववर्ती प्रायश्चित्त (२५ दिनरात) का आधा (१२ $^{१}/_{२}$ दिनरात) मिला देने पर जो प्रायश्चित्त दिया जाये, वह लघु प्रायश्चित्त है।[१]

सान्तरदान तथा अकर्कश काल में अकर्कश तप भी लघु प्रायश्चित्त कहलाते हैं। प्रस्तुत उद्देशक में दो सूत्रों में प्रायश्चित्त की विपरीत प्ररूपणा एवं दो सूत्रों में उसके विपरीत दान का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है। तदनन्तर सूत्रषट्क में परिहारतपःविषयक संभोज पद का प्रायश्चित्त कथन हुआ है। इसी प्रकार उद्घातिक, उद्घातिक हेतु एवं उद्घातिक संकल्प आदि के द्वारा प्राचीन प्रायश्चित्त परम्परा के विषय में अवबोध प्राप्त होता है। भाष्य और चूर्णि में प्रस्तुत संदर्भ में सम्पूर्ण परिहारतप की समाचारी का विस्तृत निरूपण मिलता है।

शैक्ष के ममत्व के कारण भिक्षु किस प्रकार शैक्ष का अपहरण करता है, किस प्रकार वह अन्य आचार्य के प्रति किसी शैक्ष के मन में विपरीत भाव भरता है, किस-किस प्रकार से स्वयं के आचार्य, उपाध्याय के प्रति व्यवहार करता है—इत्यादि प्रसंगों का भाष्य एवं चूर्णि में बड़ा ही मनोवैज्ञानिक चित्रण हुआ है।

---

१. स्था. वृ. प. १५२,१५३—मासो अर्द्धेन छिन्नो जातानि पञ्चदशदिनानि, ततो मासापेक्षया पूर्वं तपः पञ्चविंशतितमं, तदर्द्धं सार्धद्वादशकं, तेन संयुतं मासार्द्धं जातानि सप्तविंशतिदिनानि सार्द्धानीत्येवं कृत्वा यद् दीयते तद्लघुमासदानम्, एवमन्यान्यपि, एतन्निषेधादनुद्घातिमं तपो।

दसमो उद्देसो : दसवां उद्देशक

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
फरुसवयण-पदं	**परुषवचन-पदम्**	**परुषवचन-पद**
१. जे भिक्खू भदंतं आगाढं वदति, वदंतं वा सातिज्जति।	यो भिक्षुः भदन्त[1] आगाढं[2] वदति, वदन्तं वा स्वदते।	१. जो भिक्षु भदन्त (आचार्य)[1] को आगाढ़ वचन[2] बोलता है अथवा बोलने वाले का अनुमोदन करता है।
२. जे भिक्खू भदंतं फरुसं वदति, वदंतं वा सातिज्जति।	यो भिक्षुः भदन्तम् परुषं वदति, वदन्तं वा स्वदते।	२. जो भिक्षु भदन्त को परुष वचन[3] बोलता है अथवा बोलने वाले का अनुमोदन करता है।
३. जे भिक्खू भदंतं आगाढं फरुसं वदति, वदंतं वा सातिज्जति॥	यो भिक्षुः भदन्तं आगाढं परुषं वदति, वदन्तं वा स्वदते।	३. जो भिक्ष भदन्त को आगाढ़ परुष वचन बोलता है अथवा बोलने वाले का अनुमोदन करता है।
४. जे भिक्खू भदंतं अण्णयरीए अच्चासायणाए अच्चासाएति, अच्चासाएंतं वा सातिज्जति॥	यो भिक्षुः भदन्तम् अन्यतरया अत्याशातनया अत्याशातयति, अत्याशातयन्तं वा स्वदते।	४. जो भिक्षु भदन्त की किसी एक अत्याशातना से[4] अत्याशातना (अविनय) करता है अथवा अत्याशातना करने वाले का अनुमोदन करता है।
अणंतकाय संजुत्त-पदं	**अनन्तकायसंयुक्त-पदम्**	**अनन्तकायसंयुक्त-पद**
५. जे भिक्खू अणंतकायसंजुत्तं आहारं आहारेति, आहारेंतं वा सातिज्जति॥	यो भिक्षुः अनन्तकायसंयुक्तम् आहारम् आहरति, आहरन्तं वा स्वदते।	५. जो भिक्षु अनन्तकाय से मिश्रित (युक्त) आहार का आहार करता है अथवा आहार करने वाले का अनुमोदन करता है।[5]
आहाकम्म-पदं	**आधाकर्म-पदम्**	**आधाकर्म-पद**
६. जे भिक्खू आहाकम्मं भुंजति, भुंजंतं वा सातिज्जति॥	यो भिक्षुः आधाकर्म भुङ्क्ते, भुञ्जानं वा स्वदते।	६. जो भिक्षु आधाकर्म का भोग करता है अथवा भोग करने वाले का अनुमोदन करता है।[6]
निमित्त-पदं	**निमित्त-पदम्**	**निमित्त-पद**
७. जे भिक्खू पडुप्पण्णं निमित्तं	यो भिक्षुः प्रत्युत्पन्नं निमित्तं व्याकरोति,	७. जो भिक्षु प्रत्युत्पन्न (वर्तमान) निमित्त का

वागरेति, वागरेंतं वा सातिज्जति।

व्याकुर्वन्तं वा स्वदते।

कथन करता है अथवा करने वाले का अनुमोदन करता है।

८. जे भिक्खू अणागयं निमित्तं वागरेति, वागरेंतं वा सातिज्जति।

यो भिक्षुः अनागतं निमित्तं व्याकरोति, व्याकुर्वन्तं वा स्वदते।

८. जो भिक्षु अनागत (भविष्य सम्बन्धी) निमित्त का कथन करता है अथवा करने वाले का अनुमोदन करता है।[७]

सेह-पदं

शैक्ष-पदम्

शैक्ष-पद

९. जे भिक्खू सेहं अवहरति, अवहरंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः शैक्षम् अपहरति, अपहरन्तं वा स्वदते।

९. जो भिक्षु शैक्ष का अपहरण करता है अथवा अपहरण करने वाले का अनुमोदन करता है।

१०. जे भिक्खू सेहं विप्परिणामेति, विप्परिणामेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः शैक्षं विपरिणमयति, विपरिणमयन्तं वा स्वदते।

१०. जो भिक्षु शैक्ष को विपरिणत करता है अथवा विपरिणत करने वाले का अनुमोदन करता है।[८]

दिसा-पदं

दिशा-पदम्

दिशा-पद

११. जे भिक्खू दिसं अवहरति, अवहरंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः दिशम् अपहरति, अपहरन्तं वा स्वदते।

११. जो भिक्षु दिशा का अपहरण करता है अथवा अपहरण करने वाले का अनुमोदन करता है।

१२. जे भिक्खू दिसं विप्परिणामेति, विप्परिणामेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः दिशं विपरिणमयति, विपरिणमयन्तं वा स्वदते।

१२. जो भिक्षु दिशा को विपरिणत करता है अथवा विपरिणत करने वाले का अनुमोदन करता है।[९]

आदेस-पदं

आदेश-पदम्

आदेश-पद

१३. जे भिक्खू बहियावासियं आदेसं परं ति-रायाओ अविफालेत्ता संवसावेति, संवसावेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः बहिर्वासिकम् आदेशं परं त्रिरात्रात् 'अविप्फालेत्ता' संवासयति, संवासयन्तं वा स्वदते।

१३. जो भिक्षु अन्यगच्छवासी अतिथि भिक्षु को पूछताछ किए बिना तीन रात से अधिक साथ रखता है अथवा साथ रखने वाले का अनुमोदन करता है।[१०]

साहिगरण-पदं

साधिकरण-पदम्

साधिकरण-पद

१४. जे भिक्खू साहिगरणं अविओसविय-पाहुडं अकड-पायच्छित्तं परं ति-रायाओ विप्फालिय अविप्फालिय संभुंजति, संभुंजंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः साधिकरणम् अव्यपशमित-प्राभृतम् अकृतप्रायश्चित्तं परं त्रिरात्रात् 'विप्फालिय-अविप्फालिय' संभुङ्क्ते, संभुञ्जानं वा स्वदते।

१४. जो कलह कर आया है, उस कलह का व्युपशमन नहीं किया है, प्रायश्चित्त नहीं किया है, ऐसे भिक्षु को, पूछताछ किए बिना अथवा पूछताछ करके जो भिक्षु तीन रात से अधिक उसका संभोज रखता है अथवा संभोज रखने वाले का अनुमोदन करता है।[११]

उग्घाइय-अणुग्घाइय-पदं

१५. जे भिक्खू उग्घातियं अणुग्घातियं वदति, वदंतं वा सातिज्जति ।।

१६. जे भिक्खू अणुग्घातियं उग्घातियं वदति, वदंतं वा सातिज्जति ।।

१७. जे भिक्खू उग्घातियं अणुग्घातियं देति, देंतं वा सातिज्जति ।।

१८. जे भिक्खू अणुग्घातियं उग्घातियं देति, देंतं वा सातिज्जति ।।

१९. जे भिक्खू उग्घातियं सोच्चा णच्चा संभुंजति, संभुंजंतं वा सातिज्जति ।।

२०. जे भिक्खू उग्घातिय-हेउं सोच्चा णच्चा संभुंजति, संभुंजंतं वा सातिज्जति ।।

२१. जे भिक्खू उग्घातिय-संकप्पं सोच्चा णच्चा संभुंजति, संभुंजंतं वा सातिज्जति ।।

२२. जे भिक्खू अणुग्घाइयं सोच्चा णच्चा संभुंजति, संभुंजंतं वा सातिज्जति ।।

२३. जे भिक्खू अणुग्घाइय-हेउं सोच्चा

उद्घातिकानुद्घातिक-पदम्

यो भिक्षुः उद्घातिकम् अनुद्घातिकं वदति, वदन्तं वा स्वदते।

यो भिक्षुः अनुद्घातिकम् उद्घातिकं वदति, वदन्तं वा स्वदते।

यो भिक्षुः उद्घातिकम् अनुद्घातिकं ददाति, ददतं वा स्वदते।

यो भिक्षुः अनुद्घातिकम् उद्घातिकं ददाति, ददतं वा स्वदते।

यो भिक्षुः उद्घातिकं श्रुत्वा ज्ञात्वा संभुङ्क्ते, संभुञ्जानं वा स्वदते।

यो भिक्षुः उद्घातिकहेतुं श्रुत्वा ज्ञात्वा संभुङ्क्ते, संभुञ्जानं वा स्वदते।

यो भिक्षुः उद्घातिकसंकल्पं श्रुत्वा ज्ञात्वा संभुङ्क्ते, संभुञ्जानं वा स्वदते।

यो भिक्षुः अनुद्घातिकं श्रुत्वा ज्ञात्वा संभुङ्क्ते, संभुञ्जानं वा स्वदते।

यो भिक्षुः अनुद्घातिकहेतुं श्रुत्वा ज्ञात्वा

उद्घातिक-अनुद्घातिक-पद

१५. जो भिक्षु उद्घातिक (लघु) प्रायश्चित्त को अनुद्घातिक (गुरु) प्रायश्चित्त कहता है अथवा कहने वाले का अनुमोदन करता है।

१६. जो भिक्षु अनुद्घातिक प्रायश्चित्त को उद्घातिक प्रायश्चित्त कहता है अथवा कहने वाले का अनुमोदन करता है।

१७. जो भिक्षु उद्घातिक प्रायश्चित्त प्राप्त होने वाले को अनुद्घातिक प्रायश्चित्त देता है अथवा देने वाले का अनुमोदन करता है।

१८. जो भिक्षु अनुद्घातिक प्रायश्चित्त प्राप्त होने वाले को उद्घातिक प्रायश्चित्त देता है अथवा देने वाले का अनुमोदन करता है।[१२]

१९. जो भिक्षु उद्घातिक प्रायश्चित्त सेवन करने वाले को सुनकर जानकर उसके साथ संभोज रखता है अथवा संभोज रखने वाले का अनुमोदन करता है।

२०. जो भिक्षु उद्घातिक प्रायश्चित्त के हेतु को सुनकर जानकर उसके साथ संभोज रखता है अथवा संभोज रखने वाले का अनुमोदन करता है।

२१. जो भिक्षु उद्घातिक प्रायश्चित्त के संकल्प को सुनकर जानकर उसके साथ संभोज रखता है अथवा संभोज रखने वाले का अनुमोदन करता है।

२२. जो भिक्षु अनुद्घातिक प्रायश्चित्त सेवन करने वाले को सुनकर जानकर उसके साथ संभोज रखता है अथवा संभोज रखने वाले का अनुमोदन करता है।

२३. जो भिक्षु अनुद्घातिक प्रायश्चित्त के हेतु

णच्चा संभुंजति, संभुंजंतं वा सातिज्जति ।।

संभुङ्क्ते, संभुञ्जानं वा स्वदते।

को सुनकर जानकर उसके साथ संभोज रखता है अथवा संभोज रखने वाले का अनुमोदन करता है।

२४. जे भिक्खू अणुग्घाइय-संकप्पं सोच्चा णच्चा संभुंजति, संभुंजंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अनुद्घातिकसंकल्पं श्रुत्वा ज्ञात्वा संभुङ्क्ते, संभुञ्जानं वा स्वदते।

२४. जो भिक्षु अनुद्घातिक प्रायश्चित्त के संकल्प को सुनकर जानकर उसके साथ संभोज रखता है अथवा संभोज रखने वाले का अनुमोदन करता है।[13]

राई-भोयण-पदं

रात्रिभोजन-पदम्

रात्रिभोजन-पद

२५. जे भिक्खू उग्गयवित्तीए अणत्थमिय-मणसंकप्पे संथडिए णिव्वितिगिच्छा-समावण्णे णं अप्पाणे णं असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पडिग्गाहेत्ता भुंजति, भुंजंतं वा सातिज्जति।

यो भिक्षुः उद्गतवृत्तिकः अनस्तमितमनःसंकल्पः 'संथडिए' (संस्तृतः) निर्विचिकित्सासमापन्नः आत्मा अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा प्रतिगृह्य भुङ्क्ते, भुञ्जानं वा स्वदते।

२५. जो भिक्षु उद्गतवृत्तिक—सूर्योदय हो चुका है, इस वृत्ति वाला तथा अनस्तमितमनः संकल्प—सूर्यास्त नहीं हुआ है, इस मानसिक संकल्प वाला, समर्थ तथा सूर्योदय-सूर्यास्त के विषय में असंदिग्ध आत्मा वाला है, वह अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य को ग्रहण कर भोग करता है अथवा भोग करने वाले का अनुमोदन करता है।

अह पुण एवं जाणेज्जा—अणुग्गए सूरिए अत्थमिए वा से जं च मुहे जं च पाणिंसि जं च पडिग्गहंसि तं विगिंचेमाणे विसोहेमाणे णाइक्कमइ, जो तं भुंजति, भुंजंतं वा सातिज्जति ।।

अथ पुनरेवं जानीयात्—अनुद्गतः सूर्यः अस्तमितो वा, तस्य यच्च मुखे यच्च पाणौ यच्च प्रतिग्रहे तद् विविञ्चन् विशोधयन् नातिक्रामति, यस्तद् भुङ्क्ते, भुञ्जानं वा स्वदते।

बाद में वह इस प्रकार जाने—सूर्य उदित नहीं हुआ है अथवा अस्त हो चुका है, तो वह जो मुंह में है, जो हाथ में है तथा जो पात्र में है, उसका विवेचन—परिष्ठापन करता हुआ तथा विशोधन—मुख आदि की शुद्धि करता हुआ विधि का अतिक्रमण नहीं करता। किन्तु जो उसका भोग करता है अथवा भोग करने वाले का अनुमोदन करता है।

२६. जे भिक्खू उग्गयवित्तीए अणत्थमिय-मणसंकप्पे संथडिए वितिगिच्छा-समावण्णे णं अप्पाणे णं असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पडिग्गाहेत्ता भुंजति, भुंजंतं वा सातिज्जति।

यो भिक्षुः उद्गतवृत्तिकः अनस्तमितमनःसंकल्पः 'संथडिए' (संस्तृतः) विचिकित्सासमापन्नः आत्मा अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा प्रतिगृह्य भुङ्क्ते, भुञ्जानं वा स्वदते।

२६. जो भिक्षु उद्गतवृत्तिक—सूर्योदय हो चुका है, इस वृत्ति वाला तथा अनस्तमितमनः संकल्प—सूर्यास्त नहीं हुआ है, इस मानसिक संकल्प वाला, समर्थ तथा सूर्योदय-सूर्यास्त के विषय में संदिग्ध आत्मा वाला है, वह अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य को ग्रहण कर भोग करता है अथवा भोग करने वाले का अनुमोदन करता है।

अह पुण एवं जाणेज्जा—अणुग्गए सूरिए अत्थमिए वा से जं च मुहे जं च पाणिंसि जं च पडिग्गहंसि तं विगिंचेमाणे विसोहेमाणे

अथ पुनरेवं जानीयात्—अनुद्गतः सूर्यः अस्तमितो वा, तस्य यच्च मुखे यच्च पाणौ यच्च प्रतिग्रहे तद् विविञ्चन् विशोधयन् नातिक्रामति, यस्तद् भुङ्क्ते, भुञ्जानं वा

बाद में वह इस प्रकार जाने—सूर्य उदित नहीं हुआ है अथवा अस्त हो चुका है, तो वह जो मुंह में है, जो हाथ में है तथा जो पात्र में है, उसका विवेचन—परिष्ठापन करता हुआ

णाइक्कमइ, जो तं भुंजति, भुंजंतं वा सातिज्जति ।।

स्वदते।

तथा विशोधन—मुख आदि की शुद्धि करता हुआ विधि का अतिक्रमण नहीं करता। किन्तु जो उसका भोग करता है अथवा भोग करने वाले का अनुमोदन करता है।

२७. जे भिक्खू उग्गयवित्तीए अणत्थमिय-मणसंकप्पे असंथडिए णिव्वितिगिच्छा-समावण्णे णं अप्पाणे णं असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पडिग्गाहेत्ता भुंजति, भुंजंतं वा सातिज्जति।

यो भिक्षुः उद्गतवृत्तिकः अनस्तमितमनःसंकल्पः 'असंथडिए' (असंस्तृतः) निर्विचिकित्सासमापन्नः आत्मा अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा प्रतिगृह्य भुङ्क्ते, भुञ्जानं वा स्वदते।

२७. जो भिक्षु उद्गतवृत्तिक—सूर्योदय हो चुका है, इस वृत्ति वाला तथा अनस्तमितमनः संकल्प—सूर्यास्त नहीं हुआ है, इस मानसिक संकल्प वाला, असमर्थ तथा सूर्योदय-सूर्यास्त के विषय में असंदिग्ध आत्मा वाला है, वह अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य को ग्रहण कर भोग करता है अथवा भोग करने वाले का अनुमोदन करता है।

अह पुण एवं जाणेज्जा—अणुग्गए सूरिए अत्थमिए वा से जं च मुहे जं च पाणिंसि जं च पडिग्गहंसि तं विगिंचेमाणे विसोहेमाणे णाइक्कमइ, जो तं भुंजति, भुंजंतं वा सातिज्जति ।।

अथ पुनरेवं जानीयात्—अनुद्गतः सूर्यः अस्तमितो वा, तस्य यच्च मुखे यच्च पाणौ यच्च प्रतिग्रहे तद् विविञ्चन् विशोधयन् नातिक्रामति, यस्तद् भुङ्क्ते, भुञ्जानं वा स्वदते।

बाद में वह इस प्रकार जाने—सूर्य उदित नहीं हुआ है अथवा अस्त हो चुका है, तो वह जो मुंह में है, जो हाथ में है तथा जो पात्र में है, उसका विवेचन—परिष्ठापन करता हुआ तथा विशोधन—मुख आदि की शुद्धि करता हुआ विधि का अतिक्रमण नहीं करता। किन्तु जो उसका भोग करता है अथवा भोग करने वाले का अनुमोदन करता है।

२८. जे भिक्खू उग्गयवित्तीए अणत्थमिय-मणसंकप्पे असंथडिए वितिगिच्छा-समावण्णे णं अप्पाणे णं असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पडिग्गाहेत्ता भुंजति, भुंजंतं वा सातिज्जति।

यो भिक्षुः उद्गतवृत्तिकः अनस्तमित-मनःसंकल्पः 'असंथडिए' (असंस्तृतः) विचिकित्सासमापन्नः आत्मा अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा प्रतिगृह्य भुङ्क्ते, भुञ्जानं वा स्वदते।

२८. जो भिक्षु उद्गतवृत्तिक—सूर्योदय हो चुका है, इस वृत्ति वाला तथा अनस्तमितमनः-संकल्प—सूर्यास्त नहीं हुआ है, इस मानसिक संकल्प वाला, असमर्थ तथा सूर्योदय-सूर्यास्त के विषय में संदिग्ध आत्मा वाला है, वह अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य को ग्रहण कर भोग करता है अथवा भोग करने वाले का अनुमोदन करता है।

अह पुण एवं जाणेज्जा—अणुग्गए सूरिए अत्थमिए वा से जं च मुहे जं च पाणिंसि जं च पडिग्गहंसि तं विगिंचेमाणे विसोहेमाणे णाइक्कमइ जो तं भुंजति, भुंजंतं वा सातिज्जति ।।

अथ पुनरेवं जानीयात्—अनुद्गतः सूर्यः अस्तमितो वा, तस्य यच्च मुखे यच्च पाणौ यच्च प्रतिग्रहे तद् विविञ्चन् विशोधयन् नातिक्रामति, यस्तद् भुङ्क्ते, भुञ्जानं वा स्वदते।

बाद में वह इस प्रकार जाने—सूर्य उदित नहीं हुआ है अथवा अस्त हो चुका है, तो वह जो मुंह में है, जो हाथ में है, जो पात्र में है, उसका विवेचन—परिष्ठापन करता हुआ तथा विशोधन—मुख आदि की शुद्धि करता हुआ विधि का अतिक्रमण नहीं करता। किन्तु जो उसका भोग करता है अथवा भोग करने वाले का अनुमोदन करता है।[१४]

उग्गाल-पदं

२९. जे भिक्खू राओ वा वियाले वा सपाणं सभोयणं उग्गालं उग्गिलित्ता पच्चोगिलति, पच्चोगिलंतं वा सातिज्जति।।

उद्गार-पदम्

यो भिक्षुः रात्रौ वा विकाले वा सपानं सभोजनम् उद्गारम् उद्गीर्य प्रत्यवगिलति, प्रत्यवगिलन्तं वा स्वदते।

उद्गार-पद

२९. जो भिक्षु रात्रि अथवा विकाल वेला में पानसहित और भोजनसहित उद्गार का उद्गिरण कर उसे पुनः निगलता है अथवा पुनः निगलने वाले का अनुमोदन करता है।[१५]

गिलाण-पदं

३०. जे भिक्खू गिलाणं सोच्चा ण गवेसति, ण गवेसंतं वा सातिज्जति।।

ग्लान-पदम्

यो भिक्षुः ग्लानं श्रुत्वा न गवेषयति, न गवेषयन्तं वा स्वदते।

ग्लान-पद

३०. जो भिक्षु ग्लान के विषय में सुनकर उसकी गवेषणा नहीं करता अथवा गवेषणा नहीं करने वाले का अनुमोदन करता है।

३१. जे भिक्खू गिलाणं सोच्चा उम्मग्गं वा पडिपहं वा गच्छति, गच्छंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः ग्लानं श्रुत्वा उन्मार्गं वा प्रतिपथं वा गच्छति, गच्छन्तं वा स्वदते।

३१. जो भिक्षु ग्लान के विषय में सुनकर उन्मार्ग अथवा प्रतिपथ से चला जाता है अथवा जाने वाले का अनुमोदन करता है।[१६]

३२. जे भिक्खू गिलाणवेयावच्चे अब्भुट्ठियस्स सएण लाभेण असंथरमाणस्स, जो तस्स न पडितप्पति, न पडितप्पंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः ग्लानवैयावृत्ये अभ्युत्थितस्य स्वकेन लाभेन असंस्तरतः यः तस्य न प्रतितृप्यति, न प्रतितृप्यन्तं वा स्वदते।

३२. जो भिक्षु ग्लान के वैयावृत्त्य में अभ्युत्थित है, उसके अपने लाभ से उस का निर्वाह न होने पर जो (अन्य भिक्षु) उसको तृप्त नहीं करता—उसे भक्तपान आदि लाकर नहीं देता अथवा तृप्त न करने वाले का अनुमोदन करता है।

३३. जे भिक्खू गिलाणवेयावच्चे अब्भुट्ठिए गिलाणपाउग्गे दव्वजाए अलब्भमाणे, जो तं न पडियाइक्खति, न पडियाइक्खंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः ग्लानवैयावृत्ये अभ्युत्थितः ग्लानप्रायोग्ये द्रव्यजाते अलभ्यमाने, यस्तं न प्रत्याचक्षते, न प्रत्याचक्षाणं वा स्वदते।

३३. जो भिक्षु ग्लान के वैयावृत्त्य में अभ्युत्थित है, वह ग्लान-प्रायोग्य द्रव्यजात—औषध, पथ्य आदि न मिलने पर उस (आचार्य अथवा अन्य भिक्षुओं) को नहीं कहता अथवा नहीं कहने वाले का अनुमोदन करता है।[१७]

विहार-पदं

३४. जे भिक्खू पढमपाउसंसि गामाणुग्गामं दूइज्जति, दूइज्जंतं वा सातिज्जति।।

विहार-पदम्

यो भिक्षुः प्रथमप्रावृषि ग्रामानुग्रामं दूयते, दूयमानं वा स्वदते।

विहार-पद

३४. जो भिक्षु प्रथम प्रावृट् में ग्रामानुग्राम परिव्रजन करता है अथवा परिव्रजन करने वाले का अनुमोदन करता है।

३५. जे भिक्खू वासावासंसि पज्जोसवियंसि दूइज्जति, दूइज्जंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः वर्षावासे पर्युषिते दूयते, दूयमानं वा स्वदते।

३५. जो भिक्षु वर्षावास में पर्युषित होने के बाद परिव्रजन करता है अथवा परिव्रजन करने वाले का अनुमोदन करता है।[१८]

पज्जोसवणा-पदं

३६. जे भिक्खू पज्जोसवणाए ण पज्जोसवेति, ण पज्जोसवेंतं वा सातिज्जति ।।

३७. जे भिक्खू अपज्जोसवणाए पज्जोसवेति, पज्जोसवेंतं वा सातिज्जति ।।

३८. जे भिक्खू पज्जोसवणाए गोलोममाइं पि वालाइं उवाइणावेति, उवाइणावेंतं वा सातिज्जति ।।

३९. जे भिक्खू पज्जोसवणाए इत्तिरियं पाहारं आहारेति, आहारेंतं वा सातिज्जति ।।

४०. जे भिक्खू अण्णउत्थियं वा गारत्थियं वा पज्जोसवेति, पज्जोसवेंतं वा सातिज्जति ।।

४१. जे भिक्खू पढमसमोसरणुद्देसे पत्ताइं चीवराइं पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति–

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घातियं ।।

पर्युषणा-पदम्

यो भिक्षुः पर्युषणायां न परिवसति, न परिवसन्तं वा स्वदते।

यो भिक्षुः अपर्युषणायां परिवसति, परिवसन्तं वा स्वदते।

यो भिक्षुः पर्युषणायां गोलोममात्रान् अपि बालान् उपातिक्रामति, उपातिक्रामन्तं वा स्वदते।

यो भिक्षुः पर्युषणायाम् इत्वरिकमपि आहारम् आहरति, आहरन्तं वा स्वदते।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकं वा अगारस्थितं वा परिवासयति, परिवासयन्तं वा स्वदते।

यो भिक्षुः प्रथमसमवसरणोद्देशे प्राप्तानि चीवराणि प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते।

तत्सेवमानः आपद्यते चातुर्मासिकं परिहारस्थानम् अनुद्घातिकम्।

पर्युषणा-पद

३६. जो भिक्षु पर्युषणा (संवत्सरी) में पर्युषणा नहीं करता अथवा पर्युषणा नहीं करने वाले का अनुमोदन करता है।

३७. जो भिक्षु अपर्युषणा में पर्युषणा करता है अथवा पर्युषणा करने वाले का अनुमोदन करता है।[१९]

३८. जो भिक्षु पर्युषणा में गाय के रोम जितने बालों को भी रखता है अथवा रखने वाले का अनुमोदन करता है।

३९. जो भिक्षु पर्युषणा में थोड़ा सा भी आहार ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।[२०]

४०. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ को पर्युषित करता है अथवा पर्युषित करने वाले का अनुमोदन करता है।[२१]

४१. जो भिक्षु प्रथम समवसरण—वर्षावास प्रायोग्य क्षेत्र में प्राप्त तथा आषाढ़ पूर्णिमा संपन्न होने पर प्राप्त वस्त्र ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।[२२]

—इनका आसेवन करने वाले को अनुद्घातिक चातुर्मासिक (गुरुचौमासी) प्रायश्चित्त प्राप्त होता है।

टिप्पण

सूत्र १

१. भदन्त (भदंतं)

भदन्त शब्द भदि धातु से निष्पन्न हुआ है। यह कल्याण, सुख, दीप्ति एवं स्तुति के अर्थ में प्रयुक्त होता है। प्रस्तुत प्रसंग में यह स्तुति अर्थ में प्रयुक्त है। अतः भदन्त का अर्थ है पूज्य अर्थात् आचार्य।[1] शब्दकोष के अनुसार भदन्त शब्द के अर्थ हैं–कल्याण-कारक, सुखकारक और पूज्य।[2]

प्रस्तुत आलापक में आचार्य शब्द का प्रयोग न कर सूत्रकार ने 'भदन्त' शब्द का प्रयोग किया है। इससे संभावना की जा सकती है कि इससे उन्हें उपाध्याय, गणावच्छेदक, रत्नाधिक मुनियों आदि अन्य पूज्यजनों का ग्रहण अभिप्रेत रहा होगा।

२. आगाढ़ वचन (आगाढं)

ऐसी बात जो गोपनीय हो, अभिव्यक्ति के योग्य न हो, जिसे कहने से शरीर में ऊष्मा उत्पन्न हो जाए, वह वचन गाढ़वचन कहलाता है।[3] अत्यन्त गाढ़ वचन आगाढ़ वचन कहलाता है। निर्युक्तिकार ने इसके दो प्रकार किए हैं–असूचा और सूचा।[4] जिसमें प्रकारान्तर से दोषकथन किया जाए, आत्मनिर्देश से आचार्य आदि का दोष बताया जाए, वह असूचा आगाढ़वचन है, जैसे–हम तो कुलहीन है, कुलीन व्यक्तियों से हमारा क्या विरोध? प्रत्यक्षतः दूसरे का दोषकथन करना सूचा आगाढ़वचन है, जैसे–आप कुलहीन हैं। भाष्यकार ने जाति, कुल, रूप आदि सत्रह द्वारों से आगाढ़वचन का विस्तार से निरूपण किया है।[5]

३. परुष वचन (फरुसं)

स्नेहरहित निष्पिपास वचन को परुष वचन कहा जाता है।[6] अथवा जो वचन हिंसात्मक और मर्मभेदी होता है, वह परुष वचन कहलाता है।[7] शीलांकसूरि के अनुसार मर्मोद्घाटन करने वाली भाषा परुष भाषा कहलाती है।[8] प्रस्तुत आगम के दूसरे उद्देशक में स्वल्प परुष भाषा बोलने वाले के लिए लघुमासिक प्रायश्चित्त का विधान है।[9] प्रस्तुत सूत्र में भदन्त के लिए परुष भाषा बोलने वाले के लिए गुरु चातुर्मासिक प्रायश्चित्त का विधान है।

४. अत्याशातना से (अच्चासायणया)

गुरु अथवा रत्नाधिक मुनियों के प्रति विनय करने से प्राप्त होने वाले सुफल को समाप्त करने वाले व्यवहार को आशातना कहते हैं।[10] भगवती सूत्र की वृत्ति के अनुसार अत्याशातना का अर्थ है–किसी की शोभा या प्रतिष्ठा का भ्रंश–नाश करना।[11] दसाओ में तेतीस आशातनाओं का प्रज्ञापन हुआ है।[12] निशीथ भाष्यकार ने आशातना के चार प्रकार बतलाए हैं–

१. द्रव्य आशातना–गुरु अथवा रात्निक के साथ आहार करते हुए मनोज्ञ अशन आदि का स्वयं प्रचुरमात्रा में भोग करना आदि।

२. क्षेत्र आशातना–गमन आदि क्रियाओं में गुरु अथवा रत्नाधिक के अत्यन्त समीप, आगे, पीछे या दाएं-बाएं चलना आदि।

३. काल आशातना–रात्रि अथवा विकाल वेला में गुरु के द्वारा बुलाए जाने पर न सुनना आदि।

४. भाव आशातना–गुरु की धर्मकथा में बीच में बोलना आदि।

विशेष परिस्थितियों में अपवाद रूप में इन आशातनाओं का प्रयोग भी किया जा सकता है। जैसे–रात्निक आदि के लिए अपथ्यकर मनोज्ञ अशन आदि को उनसे पहले ही अधिक खा लेना, कांटों

---

१. निभा. भा. ३ चू. पृ १–भदि कल्याणे सुखे च दीप्तिस्तुतिसौख्येषु वा। माहात्म्यस्य सिलोकः भदन्तो आचार्यः।
२. पाइय.
३. निभा. भा. ३, चू.पृ. १–गाढं उक्तं गाढुत्तं, तं केरिसं? 'गूहणकरं' अन्यस्याख्यातुं न शक्यते। अहवा–सरीरस्योष्मा येनोक्तेन जायते तमागाढं।
४. वही, गा. २६०७–आगाढं पि य दुविहं, होइ असूयाए तह य सूयाए।
५. वही, गा. २६०९-२६१६
६. वही, भा. ३ चू.पृ. १–णेहरहियं णिप्पिवासं फरुसं भण्णति।
७. वही, चू.पृ. ४९–जं पुण हिंसगं मम्मघट्टणं च तं फरुसं।
८. आचू. वृ.पृ. २५९–परुषां मर्मोद्घाटनपराम्।
९. निसीह. २/५६
१०. निभा. ३ चू.पृ. ७–गुरुं पडुच्च विणयकरणे जं फलं तमायं सादेतीति आसादणा।
११. भग. (भाष्य) ३/१११ की वृत्ति–अत्याशातयितुं छायाया भ्रंशयितुम्।
१२. दसाओ ३/३

आदि से बचाने के लिए मार्ग में आगे-आगे चलना, ग्लान की वैयावृत्य में संलग्न होने के कारण गुरु के बुलाने पर भी न आना, अवसन्न आचार्य को उद्यतविहारी बनाने के प्रयोजन से परिषद् के मध्य उनकी बात काटना आदि।[१]

५. सूत्र ५

उन्मिश्र एषणा का सातवां दोष है। साधु को देने योग्य प्रासुक आहार में यदि अनन्तकाय वनस्पति मिली हुई हो तो वह साधु के लिए अग्राह्य होती है। उससे अनन्तकायिक वनस्पति जीवों की विराधना होती है। अनन्तकाय के मिश्रण से स्वाद में वृद्धि होने के कारण आसक्ति, अंगारदोष, प्रमाणातिरिक्त खाना, विसूचिका आदि भी संभव हैं। अतः अनन्तकाय-संयुक्त आहार करने वाले भिक्षु को गुरु चातुर्मासिक प्रायश्चित्त प्राप्त होता है।[२]

६. सूत्र ६

मन से साधु के निमित्त आरम्भ-समारम्भ का संकल्प कर आहार आदि निष्पन्न करना आधाकर्म है। निशीथभाष्य एवं बृहत्कल्पभाष्य में आधाकर्म पद के अनेक एकार्थक नामों की निक्षेप पद्धति से व्याख्या की गई है—

- जिस आहार आदि को ग्रहण करने से आत्मा पर कर्म अथवा कर्मों में आत्मा का आधान होता है, वह आधाकर्म है।
- जिस आहार आदि को ग्रहण करने से आत्मा अधोगमन करती है—विशुद्ध संयम-स्थानों से नीचे-नीचे अविशुद्ध संयम-स्थानों में गमन करती है, वह अधःकर्म—आधाकर्म होता है।
- जिस आहार को ग्रहण करने से भाव आत्मा—ज्ञान, दर्शन, चारित्र का हनन होता है, वह आधाकर्म है।[३]

आधाकर्म के तीन प्रकार हैं—१. आहार २. उपधि (वस्त्र, पात्र) तथा ३. वसति।[४] आयारचूला में भी भिक्ष के लिए आधाकर्मयुक्त आहार को अनेषणीय बताते हुए उसका निषेध किया गया है।[५] आधाकर्मभोजी श्रमण आयुष्य को छोड़कर शेष सात कर्मों की शिथिल बंधनबद्ध प्रकृतियों का गाढ़ बंधनबद्ध करता है।[६]

७. सूत्र ७,८

निमित्त का अर्थ है—अतीत, वर्तमान और भविष्य सम्बन्धी शुभाशुभ फल बताने वाली विद्या।[७] इसके मुख्यतः छह प्रकार (विषय) हैं—लाभ, अलाभ, सुख, दुःख, जीवन और मरण। इन छह विषयों से सम्बद्ध निमित्त हिंसा का हेतु बन सकता है अतः मुनि गृहस्थ को इनसे सम्बन्धित फलाफल न बताए। उत्तरज्झयणाणि में निमित्त का कथन करने वाले भिक्षु को पापश्रमण कहा गया है।[८] वह यथार्थतः श्रमण नहीं होता।[९]

गृहस्थ अथवा अन्यतीर्थिक को लाभ, अलाभ आदि से संबद्ध फलाफल बताने वाला भिक्षु उनकी सावद्य प्रवृत्तियों में निमित्त बनता है। यदि निमित्त असत्य निकल जाए तो उसके द्वितीय महाव्रत में दोष लगता है तथा यशोहानि होती है। निमित्त कथन से होने वाले अनर्थ को निशीथभाष्य में एक सुन्दर कथा के द्वारा समझाया गया है।

एक बार एक निमित्तज्ञ से एक ग्राम प्रमुख की पत्नी ने पूछा—मेरा पति परदेश से कब लौटेगा। उसने कहा—अमुक दिन अमुक वेला में आ जाएगा। उस महिला ने अपने सारे पारिवारिक जनों को यह बात बता दी।

सारे पारिवारिकजनों को अगवानी में आया देख ग्रामप्रमुख चकित रह गया। उसने कहा—मैंने कोई सूचना नहीं भेजी, फिर आप लोगों को कैसे ज्ञात हुआ। पत्नी ने सारी बात कह दी, फिर भी उसे विश्वास नहीं हुआ। उसने निमित्तज्ञ की परीक्षा के लिए उसे बुला कर पूछा—मेरी घोड़ी गर्भवती है, इसके क्या होगा? निमित्तज्ञ ने बताया—पंचपुण्ड्र (पांच स्थानों पर सफेद चिह्न वाला) अश्व। उसने तत्काल उसका पेट चीर दिया। निमित्त सत्य निकला। ग्रामस्वामी बोला—यदि तुम्हारा ज्ञान अयथार्थ होता तो तुम्हारी भी यही गति होती।

भाष्यकार कहते हैं—ऐसे अवितथ नैमित्तिक कितने होते हैं? सार यह है कि भिक्षु को निमित्त कथन नहीं करना चाहिए ताकि इस प्रकार के दोषों की संभावना न रहे।[१०]

अतः प्रस्तुत सूत्रद्वयी में वर्तमान एवं भविष्य सम्बन्धी निमित्त का कथन करने वाले भिक्षु को गुरु चातुर्मासिक प्रायश्चित्त के योग्य माना गया है।

८. सूत्र ९,१०

शैक्ष का अर्थ है—शिक्षा के योग्य।[११] उसके दो प्रकार होते हैं—प्रव्रजित और प्रव्राजनीय (अप्रव्रजित)।[१२] कोई शैक्ष किसी भिक्षु के साथ अथवा अकेला किसी आचार्य के पास दीक्षित होने जा रहा

---

१. विस्तार हेतु द्रष्टव्य—निभा. गा. २६४२-२६४८
२. विस्तार हेतु द्रष्टव्य—वही, गा. २६५९,२६६०
३. (क) वही, गा. २६६६
   (ख) बृभा. गा.
४. निभा. गा. २६६३-२६६५
५. आचू. १/१२३—परो-आहाकम्मियं असणं वा पाणं वा.....अप्फासुयं अणेसणिज्जं त्ति मण्णमाणे लाभे संते णो पडिगाहेज्जा।
६. विस्तार हेतु द्रष्टव्य—भग. (भाष्य) १/४३६,४३७ व उसका भाष्य।
७. दसवे. ८/५० का टिप्पण
८. उत्तर. १७/१८
९. वही ८/१३
१०. निभा. गा. २६९४-२६९६
११. निभा. भा. ३ चू.पृ. २१—सेहणिज्जो सेहो।
१२. वही—दुविहो—पव्वतिते अपव्वतिते वा।

हो और उसे भक्तपान या उपदेश देकर आकृष्ट कर लेना अथवा बीच में ही उसे छिपा देना, अन्य किसी के साथ अन्यत्र भेज देना आदि कार्य शैक्ष का अपहरण है।

किसी अन्य आचार्य के शैक्ष के मन को उसके गच्छ या आचार्य से विपरिणत करना, उसके मन को फंटाना विपरिणमन है, जैसे—उसे कहना—अमुक आचार्य सातिचार चारित्र का पालन करते हैं, श्रुतसम्पन्न नहीं हैं। हमारे आचार्य निरतिचार चारित्र का पालन करते हैं, बहुश्रुत हैं। इस प्रकार स्वयं के आचार्य अथवा संघ के अयथार्थ या यथार्थ गुणों का कथन और अन्य, जिसके पास प्रव्रजित है या प्रव्रजित होना चाहता है, उसके सत्, असत् दोषों का कथन कर उसके भावों को परिवर्तित करना विपरिणमन है।

निशीथभाष्य में शैक्ष के अपहार एवं विपरिणामन का सुविस्तृत एवं मनोवैज्ञानिक वर्णन किया गया है।[१] शैक्षापहार एवं शैक्ष विपरिणामन से तृतीय महाव्रत की विराधना होती है अतः ये प्रायश्चित्तार्ह माने गए हैं।

९. सू. ११,१२

प्रव्रज्या अथवा उपस्थापना के समय जिस आचार्य अथवा उपाध्याय का उपदेश किया जाए—निर्देश दिया जाए, वह उसकी दिशा कहलाता है।[२] संयत की दो दिशा होती है—आचार्य और उपाध्याय। संयती के प्रवर्तिनी सहित तीन दिशाएं होती हैं।[३] उस दिशा को छोड़ अन्य आचार्य आदि को स्वीकार करना दिशापहार है। किसी आचार्य के जाति, कुल, तप, यश, लाभ इत्यादि गुणों से अनुरक्त होकर अथवा स्वयं की दिशा में इन गुणों का अभाव देखकर उसके प्रति द्वेष के कारण दिशा का परित्याग दिशापहार है।

अन्य व्यक्ति के द्वारा दिशा (आचार्य आदि) के प्रति भावों को विपरिणत करना दिशा-विपरिणाम है। इसके मुख्यतः दो कारण हैं—

१. उस शिष्य के प्रति अत्यधिक अनुराग

२. उस आचार्य अथवा उपाध्याय के प्रति अत्यधिक द्वेष—उसके शिष्य न हो—ऐसी भावना। द्वेषभाव से दिशा विपरिणामन करने वाला कहता है—यह तुम्हारा गुरु अल्पवयस्क है और तुम स्थविर। कैसे तुम अपने पौत्रवय वाले के शिष्य बनोगे? कैसे उसका विनय करोगे?

दिशापहार एवं दिशा विपरिणामन में राग-द्वेष की प्रबलता होती है। अतः कर्म बन्धन का हेतु है।

१०. सूत्र १३

कभी-कभी साधु के वेश में कोई गुप्तचर, चोर, अशिवगृहीत, पारदारिक अथवा राजा का अपकारी (प्रत्यनीक) आदि भी आ सकता है। आगन्तुक कौन है? क्यों आया है? कहां जाना चाहता है? अपने गच्छ से निर्गमन का क्या हेतु है?—इत्यादि सारी बातों की जानकारी करना विकटना अथवा आलोचना कहलाती है। जिस दिन कोई अन्यगच्छीय भिक्षु आए, उसी दिन उससे इन सारी बातों की जानकारी करनी चाहिए। यदि कुल, गण आदि के किसी विशेष कार्य, ग्लान अथवा अनशनी के वैयावृत्य अथवा परवादी के साथ वाद, गोष्ठियों आदि के कारण उस दिन जानकारी न की जा सके तो दूसरे या तीसरे दिन तक अवश्य जानकारी करनी चाहिए। अन्यथा उसे संवास देने वाले को गुरु चातुर्मासिक प्रायश्चित्त प्राप्त होता है।

शब्द विमर्श

१. **आदेश**—प्राघुर्णक (अतिथि)[४]

२. **बहियावासी**—अन्यगच्छवासी।[५]

३. **विप्फालणा**—आलोचना।[६]

११. सूत्र १४

अधिकरण का अर्थ है—कलह।[७] प्रस्तुत सूत्र में साधिकरण—कलहकारी भिक्षु के साथ संभोज रखने का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है। कषाय से कलुषित चित्त कर्मबन्धन का कारण है। वह आत्मा को निरन्तर अधोगति की ओर ले जाता है अतः कषायाविष्ट होना या अशुभ भावों से युक्त होना अधिकरण है।[८]

साधु दो प्रकार के अधिकरण से साधिकरण बनता है—

१. स्वपक्षाधिकरण—साधु के साथ कलह।

२. परपक्षाधिकरण—गृहस्थ के साथ कलह।

कलह से होने वाले दोष मुख्यतः ये हैं—

१. पश्चात्ताप

२. चारित्रभेद (चारित्र का विनाश)।

३. अपयश

४. ज्ञान एवं चारित्र की हानि।

५. साधुओं के प्रति द्वेष वृद्धि

६. संसारवृद्धि।[९]

इसलिए जितना जल्दी हो सके, कलह को उपशान्त करना चाहिए। उसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।

---

१. निभा. गा. २७०१-२७२७

२. वही, भा. ३ चू. पृ. २९—दिशेति व्यपदेशः प्रव्रजनकाले उपस्थापनकाले वा। यो आचार्य उपाध्यायो वा व्यपदिश्यते सा तस्य दिशा इत्यर्थः।

३. वही, पृ. २८१—साहुस्स आयरियउवज्झाया दुविहा दिसा दिज्जति। इत्थियाए तइया-पवत्तिणी दिसा दिज्जति।

४. वही, पृ. ३६—आगतो आदेसं करोतीति आएसो, प्राघुर्णकमित्यर्थः।

५. वही—अण्णगच्छवासी बहियावासी भण्णति।

६. वही—विप्फालणा णाम वियडणा—किं निमितं आगता? अणज्जंतो वा भदंत! कतो आगता? कहिं वा वच्चइ?

७. वही, पृ. १३९—अधिकरणं कलहो भण्णति।

८. वही, गा. २७७२ व उसकी चूर्णि

९. वही, गा. २०८७

भाष्यकार के अनुसार जब तक कलह शान्त न हो, तब तक साधिकरण भिक्षु को प्रतिदिन चार बार उपशम की प्रेरणा देनी चाहिए—१. स्वाध्यायकाल २. भिक्षाकाल ३. भक्तार्थ (भोजन) काल और ४. आवश्यक काल। स्वाध्याय प्रारम्भ करने के समय आचार्य उस कषायाविष्ट भिक्षु से कहते हैं—आर्य! ये साधु स्वाध्याय नहीं कर पा रहे हैं, तुम शान्त हो जाओ। यदि वह उपशान्त नहीं होता तो भिक्षार्थ-गमन के समय पुनः कहते हैं—आर्य! उपशान्त हो जाओ। भिक्षा से लौटने के बाद पुनः उसे कहते हैं—आर्य! ये साधु आहार नहीं कर पा रहे हैं, तुम शान्त हो जाओ। फिर भी वह शान्त नहीं होता तो प्रतिक्रमण के समय पुनः उसे उपशम की प्रेरणा दी जाती है। इस प्रकार जब तक वह उपशान्त नहीं होता, प्रतिदिन उसे चार बार उपशम की प्रेरणा दी जाती है।[1]

गृहस्थ के साथ कलह होने पर संयमविराधना, आत्मविराधना, व्युद्ग्रहण, प्रवचन-विराधना एवं संघविनाश आदि अनेक दोष संभव हैं।[2] इसलिए साधिकरण भिक्षु जब तक कलह को उपशान्त न कर ले, कलह से प्राप्त होने वाले प्रायश्चित्त का वहन न कर ले, तब तक पूछताछ करके भी उसके साथ संभोज नहीं रखना चाहिए, बिना पूछताछ के तो संभोज की बात ही क्या?

प्रस्तुत संदर्भ में कलह की उत्पत्ति, उसकी उपेक्षा से होने वाली हानियां, कलहकारी भिक्षु एवं गृहस्थ को उपशान्त करने की विधि एवं उनके साथ कैसा व्यवहार किया जाए—इत्यादि बातों के विषय में भाष्य एवं चूर्णि में विशद, सरस एवं मनोवैज्ञानिक विवेचन उपलब्ध होता है।

शब्द विमर्श

१. साधिकरण—कषायभाव या अशुभ-भाव सहित अथवा कर्मबन्धन के कारण से युक्त।[3]

२. पाहुड—कलह।[4]

३. संभोज—एक मंडली में भोजन करना।[5]

१२. सूत्र १५-१८

प्रायश्चित्त का प्रयोजन है—दोष की विशुद्धि। प्रायश्चित्त लेने वाला ऋजुतापूर्वक अपने दोष का निवेदन करता है। उसके बाद प्रायश्चित्त-दाता का यह कर्त्तव्य बनता है कि वह उसे उतना ही प्रायश्चित्त दे, जिससे उसके दोष की पूर्ण विशुद्धि हो जाए। जितना प्रायश्चित्त प्राप्त होना चाहिए, उससे न्यून मात्रा में प्रायश्चित्त दिया जाए तो दोष की पूरी विशुद्धि नहीं होती। यदि प्रायश्चित्त अधिक दिया जाए तो प्रायश्चित्त ग्रहणकर्त्ता को परितापना होती है। प्रायश्चित्त के भय से वह दूसरी बार आलोचना के लिए प्रस्तुत ही नहीं हो पाता।

लघु प्रायश्चित्त के स्थान पर गुरु और गुरु प्रायश्चित्त के स्थान पर लघु प्रायश्चित्त की प्ररूपणा करने से श्रुतधर्म तथा विपरीत प्रायश्चित्त देने से चारित्रधर्म की विराधना होती है।[6] भाष्यकार के अनुसार विपरीत प्रायश्चित्त की प्ररूपणा एवं आरोपणा (दान) में मुख्यतः निम्नांकित दोष संभव हैं—

१. आज्ञाभंग २. अनवस्था[7] ३. मिथ्यात्व ४. परितापना ५. अननुकम्पा ६. दोष का विश्वासपूर्वक आसेवन ७. धर्म की आशातना ८. मोक्षमार्ग की विराधना।[8]

शब्द विमर्श

१. उद्घातिक—लघु, जिसे अन्तरालपूर्वक वहन किया जाए।[9]

२. अनुद्घातिक—गुरु, जिसे निरन्तर वहन किया जाए।[10]

१३. सूत्र १९-२४

तपःप्रायश्चित्त के दो प्रकार हैं—शुद्ध तप और परिहार तप। अगीतार्थ, दुर्बल धृतिवाले तथा सामान्य संहननवाले भिक्षु तथा सभी साध्वियों को शुद्ध तप ही दिया जाता है। वज्रकुड्य के समान सुदृढ धृतिवाला एवं उत्कृष्ट संहननवाला गीतार्थ भिक्षु, जो जघन्यतः नवें पूर्व की तृतीय आचारवस्तु तथा उत्कृष्टतः कुछ न्यून दसपूर्व का ज्ञाता हो, उसे परिहारतप दिया जाता है।[11]

परिहार तप रूप प्रायश्चित्त को वहन करने वाले भिक्षु के साथ गच्छ आलाप, प्रतिपृच्छा आदि दस पदों का परिहार करता है। इनमें संभोज दसवां पद है।[12] इसका अतिक्रमण करने पर गच्छवासी एवं परिहारतपस्वी दोनों को गुरु चातुर्मासिक प्रायश्चित्त आता है।[13]

प्रस्तुत सूत्र-षट्क का सम्बन्ध संभोजपद से है। अतः इनका सम्बन्ध परिहार तपःप्रायश्चित्त से है, शुद्ध तपःप्रायश्चित्त से नहीं।[14] प्रस्तुत सन्दर्भ में भाष्यकार एवं चूर्णिकार ने परिहार तपःप्रायश्चित्त की विधि का विस्तृत विवेचन किया है।[15]

---

१. निभा.गा. २७९६-२७९८ व उनकी चूर्णि
२. विस्तार हेतु द्रष्टव्य वही, गा. २८३६-२८३८
३. वही, भा. ३ चू. पृ. ३८—साधिकरणो कषायभावाशुभभावसहितो इत्यर्थः। .....भावाधिकरणं कर्मबन्धकारणमित्यर्थः।
४. वही—पाहुडं कलहमित्यर्थः।
५. वही—संभुंजण संभोएण संभुंजति—एगमंडलीए त्ति वुत्तं भवति।
६. वही, गा. २८६५
७. (क) वही, गा. २८६२ की चूर्णि (पृ. ६०)
(ख) द्रष्टव्य १/१५ का टिप्पण।
८. निभा., गा. २८६३-२८६६
९. वही, भा. ३ चू.पृ. ६२—उग्घातियं णाम जं संतरं वहति, लघुमित्यर्थः।
१०. वही—अणुग्घातियं णाम जं णिरंतरं वहति, गुरुमित्यर्थः।
११. वही, गा. २८७३, २८७६
१२. वही, गा. २८८१
१३. वही, गा. २८८२, २८८३ की चूर्णि
१४. वही, गा. २८८६
१५. विस्तार हेतु द्रष्टव्य—वही, गा. २८६८-२८८६

शब्द विमर्श

१. उद्घातिक—उद्घातिक (लघु) प्रायश्चित्त-स्थान का सेवन करने वाला।

२. उद्घातिक-हेतु—उद्घातिक प्रायश्चित्त-स्थान का सेवन करने के बाद आलोचना न ले, तब तक।

३. उद्घातिक-संकल्प—आलोचना लेने के बाद प्रायश्चित्त में स्थापित करने के दिन तक।[1]

१४. सूत्र २५-२८

प्रस्तुत चार सूत्रों का सार-संक्षेप इस प्रकार है—

१. सूर्योदय हो चुका अथवा सूर्यास्त नहीं हुआ—इस विषय में मुनि असंदिग्ध है, किन्तु बाद में पता चलता है कि सूर्योदय नहीं हुआ अथवा सूर्यास्त हो गया है।

२. सूर्योदय हो चुका अथवा सूर्यास्त नहीं हुआ—इस विषय में मुनि संदिग्ध है, किन्तु बाद में पता चलता है कि सूर्योदय नहीं हुआ अथवा सूर्यास्त हो गया है।

इन दोनों ही भंगों में संस्तृत और असंस्तृत की अपेक्षा से दो-दो भंग बन जाते हैं। प्रथम भंग में भिक्षु असंदिग्ध चित्तवृत्ति वाला है, अतः वह अपने उस संकल्प के साथ खाने से शुद्ध है लेकिन जैसे ही उसे ज्ञात होता है कि सूर्योदय नहीं हुआ है अथवा सूर्यास्त हो चुका है तो उसे अपने मुंह में, हाथ में और पात्र में जो कुछ है, उसका परिष्ठापन कर हाथ, मुंह आदि की शोधि कर लेनी चाहिए।

जो मुनि संदिग्ध चित्तवृत्ति वाला है, वह अपनी संदेहावस्था के कारण प्रायश्चित्त का भागी होता है। जैसे ही उसे ज्ञात हो कि सूर्योदय नहीं हुआ है अथवा सूर्यास्त हो चुका है तो मुंह, हाथ आदि में विद्यमान आहार का परिष्ठापन कर विशोधन कर लेना चाहिए।

भगवई में सूर्योदय से पूर्व आहार का ग्रहण कर सूर्योदय के बाद उसके परिभोग को क्षेत्रातिक्रान्त पान-भोजन की संज्ञा दी गई है।[2]

दसवेआलियं में निर्देश है कि मुनि सूर्यास्त होने के बाद अगले दिन सूर्योदय से पूर्व किसी भी प्रकार की आहारसंबंधी अभिलाषा न करे।[3] ओघनिर्युक्ति में मुनि के लिए प्रातः, मध्याह्न और सायं तीन समय आहार का उल्लेख है।[4]

भिक्षु के लिए आहार के समय का निर्देश प्रस्तुत आलापक (सूत्रचतुष्टयी) से फलित होता है, वह यह है कि भिक्षु सूर्योदय के पश्चात् तथा सूर्यास्त से पूर्व विवेकपूर्वक आहार कर सकता है।

प्रस्तुत सूत्रचतुष्टयी में संथडिए और असंथडिए—ये दो पद विमर्शनीय हैं। प्रश्न उपस्थित होता है कि संथडिए और असंथडिए—इन दोनों पदों में निव्वितिगिच्छा-समावण्णे तथा वितिगिच्छासमावण्णे के सांयोगिक पदों की संयोजना एवं उत्तरवर्ती सारी प्रक्रिया समान है, वैसी स्थिति में केवल 'संथडिए'—इस विधान से ही काम चल जाता, फिर असंथडिए का विधान क्यों? क्योंकि असंथडिए के लिए कोई विशेष निर्देश नहीं है।

इस प्रश्न का उत्तर संभवतः यह हो सकता है कि संस्तृत के लिए जो विधान है, असंस्तृत के लिए भी वही है। असंस्तृत इस विधान का अपवाद नहीं है। चाहे संस्तृत हो या असंस्तृत, संदिग्ध हो या असंदिग्ध, यदि ज्ञात होने के साथ ही भिक्षु 'विगिंचन और विशोधन' कर लेता है तो विधि का अतिक्रमण नहीं करता। भाष्यकार के अनुसार वह तीर्थंकरों की आज्ञा, श्रुतधर्म, चारित्रमर्यादा और रात्रिभोजन का अतिक्रमण नहीं करता। निशीथ चूर्णिकार के अनुसार वह धर्म का अतिक्रमण नहीं करता।[5] प्रायश्चित्त का विधान उस अशन आदि को खानेवाले और देनेवाले के लिए किया गया है।

द्रष्टव्य कप्पो ५/६-९ व उसका टिप्पण।

शब्द विमर्श

१. उद्गतवृत्तिक—सूर्योदय के साथ आहार करने वाला।[6]

२. अनस्तमितमनःसंकल्प—सूर्यास्त से पूर्व आहार के मानसिक संकल्प वाला।[7]

३. संस्तृत—समर्थ। यहां संस्तृत पद के दो अर्थ हैं—

१. पर्याप्तभोजी—जिसे पर्याप्त भोजन-पानी उपलब्ध है।

२. प्रतिदिनभोजी—जो प्रतिदिन आहार करता है।[8]

४. असंस्तृत—असमर्थ। जिसे पर्याप्त भक्त-पान प्राप्त नहीं है अथवा जो उपवास आदि के कारण छिन्नभक्त है।[9]

५. निर्विचिकित्सासमापन्न—असंदिग्ध मनःस्थिति वाला।[10]

---

१. निभा. ३ चू.पृ. ६२—पायच्छित्तमापण्णस्स जाव मणालोइयं ताव हेऊ भण्णति। आलोइए 'अमुगदिणे तुज्झेयं पच्छित्तं दिज्जिहिति' त्ति संकप्पियं भन्नति।

२. भग. ७/२२

३. दसवे. ८/२८

४. ओनि. २५०, भा. गा. १४८,१४९

५. (क) निभा.गा. २९१७—णातिक्कमते आणं धम्मं मेरं व रातिभत्तं वा।
(ख) वही, भा. ३ चू.पृ. ६८—अतिक्कमणं लंघणं, धम्मो त्ति सुतचरण धम्मो।

६. वही—उग्गते आदिच्चे वित्ती जस्स सो उग्गतवित्ती।

७. वही—अणत्थमिए आदिच्चे जस्स मणसंकप्पो भवति स भण्णति—अणत्थमियमणसंकप्पो।

८. वही—संथडिओ णाम हट्ठसमत्थो, तद्दिवसं पज्जत्तभोगी वा—अध्वान-प्रतिपन्नो क्षपक-ग्लानो वा न भवतीत्यर्थः।

९. वही, पृ. ७७—छट्ठऽट्ठमादिणा तवेण किलंतो असंथडो, गेलण्णेणं वा दुब्बलसरीरो असंथडो, दीहद्धाणेण वा पज्जत्तं अलभंतो असंथडो।

१०. वही, पृ. ६८—वितिगिच्छा विमर्षः मतिविप्लुती संदेह इत्यर्थः। सा णिग्गता वितिगिच्छा जस्स सो णिव्वितिगिच्छो भवति।

६. **विचिकित्सासमापन्न**—संदिग्ध मनःस्थिति वाला।

७. **विगिंचन**—परिष्ठापन।[1]

८. **विशोधन**—आहार आदि के लेप का मार्जन करना, धोना।[2]

१५. सूत्र २९

मुनि संयतभोजी होता है। उसके लिए प्रमाणोपेत आहार का विधान है। यद्यपि सबके लिए एक समान आहार का परिमाण नहीं बताया जा सकता, फिर भी आनुपातिक रूप में उसका निर्धारण करना आवश्यक है। मुनि का एक विशेषण है—संयमयात्रामात्रावृत्तिकः। मुनि को उतना ही आहार करना चाहिए, जितने से उसकी संयमयात्रा सम्यक् प्रकार से चल सके। जिस प्रकार गाड़ी के अक्ष की धुरी पर अंजन लगाया जाता है, व्रण पर यथावश्यक लेप किया जाता है, उसी प्रकार मुनि उतना ही खाए जितना उसके जीवन-निर्वाह के लिए आवश्यक हो।[3] जितने भोजन से संयमयोगों की हानि न हो, वही मुनि के भोजन का प्रमाण है।[4]

भगवई में मुनि के लिए बत्तीस कवल आहार को प्रमाणोपेत माना गया है। बत्तीस कवल से एक भी कवल कम खाने वाला मुनि 'प्रकामरसभोजी' नहीं कहलाता।[5] प्रस्तुत प्रसंग में ओवाइयं का द्रव्य-अवमौदरिका का प्रकरण भी द्रष्टव्य है।[6]

प्रश्न होता है—किसी कारणवश मात्रा का अतिक्रमण हो जाने से अथवा कभी-कभी प्रमाणोपेत भोजन करने पर भी वायु आदि के क्षुब्ध हो जाने से यदि भोज्यकण सहित या पानयुक्त उद्गार आ जाए तो मुनि को क्या करना चाहिए। सूत्रकार कहते हैं—रात्रि अथवा विकालवेला में पान-भोजन सहित उद्गार आ जाए तो उसे निगलना नहीं चाहिए।

पान-भोजन सहित उद्गार को रात्रि या विकालवेला में निगलने वाला भिक्षु रात्रिभोजन व्रत में अतिचार लगाता है। अतः कप्पो (बृहत्कल्पसूत्र) के अनुसार उसे रात्रिभोजन व्रत के भंग से प्राप्त होने वाला चतुर्गुरु प्रायश्चित्त प्राप्त होता है।[7] प्रस्तुत आगम में भी इसके लिए गुरु चातुर्मासिक प्रायश्चित्त का विधान है।

शब्द विमर्श

१. **रात्रि**—कुछ आचार्यों के अनुसार रात्रि का अर्थ है—संध्या। जबकि एक अन्य मत के अनुसार रात्रि का अर्थ है—संध्या का अपगम।

२. **विकालवेला**—कुछ आचार्यों के अनुसार विकालवेला का अर्थ है—संध्या का अपगम। जबकि अन्य मत के अनुसार संध्या को विकाल वेला कहते हैं।[8]

१६. (सूत्र ३०,३१)

जो भिक्षु ग्लान की अग्लानभाव से सेवा करता है, वह तीर्थ की सेवा करता है, तीर्थंकर की सेवा करता है तथा प्रवचन की प्रभावना करता है। उसे विपुल निर्जरा का लाभ होता है। अतः किसी के द्वारा सुनकर अथवा स्वयं जानकारी मिलने पर भिक्षु को तत्काल ग्लान की गवेषणा करनी चाहिए। जो भिक्षु ग्लान के विषय में सुनकर भी उसके वैयावृत्य में उपस्थित नहीं होता अपितु उन्मार्ग, अन्य मार्ग या प्रतिपथ से चला जाता है, सेवा से जी चुराता है, अथवा स्वयं की अक्षमता का बहाना बनाता है। उसे आज्ञाभंग, अनवस्था आदि दोष प्राप्त होते हैं, कुलस्थविर, गणस्थविर एवं संघस्थविर उसे उपालम्भ देते हैं। वे उसे कहते हैं—क्या तुम ग्लान को करवट बदलाने, उसे क्ष्वेडमल्लक देने अथवा ग्लान के परिचारकों की उपधि-प्रतिलेखना जैसे छोटे-छोटे कार्यों में भी अक्षम हो?[9] इस प्रकार अशक्तता आदि का बहाना बनाकर सेवा से बचने वाले को उपालम्भ एवं प्रायश्चित्त प्रदान कर वैयावृत्य का महत्त्व बढ़ाया जाता है, वैयावृत्य करने वालों का उपबृंहण किया जाता है।

प्रस्तुत प्रसंग में भाष्यकार एवं चूर्णिकार ने वैयावृत्य करने वाले भिक्षु की विशेषताओं, वैद्य के पास जाने एवं उसे बुलाने की विधि आदि अनेक विषयों का विस्तृत विवेचन किया है।[10]

१७. (सूत्र ३२,३३)

जो भिक्षु ग्लान की वैयावृत्य में नियुक्त है, उसके प्रति अन्य भिक्षुओं का तथा अन्य भिक्षुओं के प्रति उसका क्या दायित्व बनता है तथा वे परस्पर एक दूसरे का सहयोग किस प्रकार कर सकते हैं—इसका सुन्दर निदर्शन प्रस्तुत सूत्रद्वयी में उपलब्ध होता है।

जो भिक्षु ग्लान की वैयावृत्य में नियुक्त है, यदि वही उसके लिए प्रायोग्य भक्तपान एवं औषध आदि द्रव्य लाता है, वही उसकी शारीरिक परिचर्या में भी संलग्न है तो कई बार वेला का अतिक्रमण होने के कारण उसे यथेष्ट लाभ प्राप्त नहीं हो पाता। अपेक्षित द्रव्य के अभाव में ग्लान का एवं स्वयं का सम्यक् निर्वाह दुष्कर हो जाता है, आत्मविराधना एवं प्रवचन की अप्रभावना की भी संभावना हो

१. निभा. भा. २ चू. पृ. ६८—विगिंचमाणे त्ति परिठविते।
२. वही—विसोहेमाणे त्ति णिरवयवं करेंतो।
३. भग. ७/२४—अक्खोवंजणाणुलेवण-भूयं संजमजायामायावत्तियं।
४. बृभा. गा. ५८५२
५. भग. ७/२४—बत्तीसं कुक्कुडिअंडगपमाणमेत्ते कवले आहार-माहारेमाणे पमाणपत्ते, एत्तो एक्केण वि घासेणं ऊणगं आहार-माहारेमाणे समणे णिग्गंथे नो पकामरसभोइत्ति वत्तव्वं सिया।
६. ओवा. सू. ३३
७. कप्पो. ५/१०
८. निभा. भा. ४, चू. पृ. १०६
९. वही, गा. २९८४
१०. वही, गा. २९७१-३१२७

सकती है।[१] ऐसी स्थिति में अन्य भिक्षुओं को उसका यथोचित सहयोग करना चाहिए। वैयावृत्य में नियुक्त भिक्षु ग्लान के प्रायोग्य आहार, पानी, औषध एवं पथ्य के लिए यथाशक्ति प्रयत्न करे। फिर भी उसे आहार, औषध आदि प्रायोग्य द्रव्य उपलब्ध न हो सके तो वह आचार्य अथवा अन्य भिक्षुओं से कह दे ताकि वे उसका सहयोग कर सके। प्रस्तुत सूत्रद्वयी में उपर्युक्त दायित्व का निर्वहन न करने वाले भिक्षुओं को प्रायश्चित्तार्ह माना गया है।[२]

निशीथभाष्यकार के अनुसार अनवस्थाप्य एवं परिहार तपःप्रायश्चित्त प्राप्त भिक्षु इस सूत्र के अपवाद हैं।[३] इस विषय में भाष्यकार ने वैयावृत्य करने वाले भिक्षु की अर्हता एवं उसके अभाव में होने वाले दोषों का सविस्तर विवेचन किया है।[४]

शब्द विमर्श

१. असंथरमाणस्स–निर्वाह न होने वाले भिक्षु का।

२. पडितप्पति–तृप्त नहीं करता–उसे भक्तपान आदि लाकर नहीं देता।[५]

३. पडियाइक्खति–कहता है।

१८. सूत्र ३४,३५

वर्षावास तीन प्रकार का माना गया है–

१. जघन्य–सत्तर दिनों का, संवत्सरी से कार्तिक पूर्णिमा तक।

२. मध्यम–चार मास का, श्रावण कृष्णा एकम से कार्तिक पूर्णिमा तक।

३. उत्कृष्ट–छह मास का, आषाढ़ से मृगसर तक।[६]

प्रस्तुत सूत्रद्वयी में प्रथम प्रावृट् तथा वर्षावास में पर्युषणा कल्प के द्वारा निवास करने के बाद विहार करने वाले के लिए अनुद्घातिक चातुर्मासिक प्रायश्चित्त का विधान है।

प्रावृट् का अर्थ है–आषाढ़ और श्रावण दो मास अथवा चार मास का वर्षाकाल।[७] आषाढ़ को प्रथम प्रावृट् कहा जाता है।[८] इस प्रकार प्रथम प्रावृट् में विहार न किया जाए–इसका अर्थ है आषाढ़ में विहार न किया जाए।

प्रावृट् का अर्थ यदि चातुर्मासप्रमाण काल किया जाए तो प्रथम प्रावृट् में विहार के निषेध का अर्थ होगा–पर्युषणाकल्प से पूर्ववर्ती पचास दिनों में विहार न किया जाए।

पर्युषणाकल्प पूर्वक निवास के बाद विहार न किया जाए–इसका अर्थ है भाद्रव शुक्ला पंचमी से कार्तिक पूर्णिमा तक विहार न किया जाए। इस प्रकार इन दो सूत्रों का संयुक्त अभिप्राय है–चातुर्मास में विहार न किया जाए।

प्रश्न होता है–चातुर्मास में विहार न किया जाए, इस प्रकार एक सूत्र के द्वारा निषेध न कर, दो पृथक् सूत्रों के द्वारा निषेध क्यों किया गया? जैसा कि कप्पो (बृहत्कल्पसूत्र) में उपलब्ध होता है। इसका समाधान ढूंढने पर सहज ही हमारा ध्यान उस प्राचीन परम्परा की ओर खिंच जाता है जिससे यह विदित होता है कि मुनि पर्युषणा-कल्प पूर्वक निवास करने के बाद साधारणतः विहार कर ही नहीं सकते, किन्तु पूर्ववर्ती पचास दिनों में उपयुक्त सामग्री के अभाव में विहार कर सकते हैं।[९] यही कारण है कि ठाणं में भी एतद् विषयक दो सूत्र तथा दोनों के भिन्न-भिन्न पांच आपवादिक कारण उपलब्ध होते हैं–प्रथम प्रावृट् में शरीर, उपकरण आदि के अपहरण का भय, दुर्भिक्ष, किसी के द्वारा गांव से निष्कासन, बाढ़ एवं अनार्यों के उपद्रव के कारण ग्रामानुग्राम परिव्रजन अनुज्ञात है। वर्षावास में पर्युषणाकल्प द्वारा पर्युषित होने के बाद ज्ञान, दर्शन, चारित्र की वृद्धि या सुरक्षा, आचार्य या उपाध्याय का कालधर्म को प्राप्त हो जाना और वर्षाक्षेत्र से बहिःस्थित आचार्य के वैयावृत्य के लिए ग्रामानुग्राम परिव्रजन अनुज्ञात है।[१०] प्रस्तुत सूत्रद्वयी में इन अपवादों के अभाव में परिव्रजन करने वाले को गुरु चातुर्मासिक प्रायश्चित्त दिया गया है।

तुलना हेतु द्रष्टव्य–कप्पो १।३५, ३६ का टिप्पण।

१९. सूत्र ३६,३७

भगवान अजितनाथ से भगवान पार्श्वनाथ तक अर्थात् मध्यम बावीस तीर्थंकरों के शासनकाल में अस्थित कल्प होता है। उस समय पर्युषणा का काल नियत नहीं होता। प्रथम एवं चरम तीर्थंकर के शासनकाल में स्थितकल्प होता है। अतः चाहे वर्षा हो या न हो, पर्युषणा के नियतकाल में पर्युषित होना अनिवार्य है।

स्थितकल्प की मर्यादा है कि सामान्यतः भिक्षु को आषाढ़ी पूर्णिमा तक पर्युषित हो जाना चाहिए–एकत्र प्रवास कर लेना चाहिए।

१. निभा. भा. ३, चू.पृ. ११७,११८
२. वही, पृ. १२०
३. वही, गा. ३११६
४. वही, गा. ३१०५-३११३
५. वही, पृ. ११८–ण पडितप्पति भत्तपाणादिणा।
६. वही, गा. ३१५४-३१५६
७. स्था. वृ.प. २९४–आषाढ़ श्रावणौ प्रावृट्.....अथवा चतुर्मास-प्रमाणो वर्षाकालः प्रावृडिति विवक्षितः।
८. निभा. ३ चू. पृ. १२१–आसाढो पढमपाउसो भण्णति।
९. स्था. वृ. प. २९४,२९५
१०. ठाणं ५/९९,१००

आषाढ़ शुक्ला दसमी तक यदि भिक्षु वर्षावास-प्रायोग्य क्षेत्र में पहुंच जाए तो पांच दिन में क्षार, मल्लक, डगलग (ढेला) आदि आवश्यक द्रव्यों को ग्रहण कर आषाढ़ी पूर्णिमा तक पर्युषित हो जाए—यह उत्सर्ग मार्ग है। यदि आषाढ़ी पूर्णिमा के दिन पर्युषित न हो सके तो पांच दिन बाद पर्युषित हो जाए। इस प्रकार पांच-पांच दिन बढ़ाने का क्रम अन्ततः भाद्रव शुक्ला पंचमी तक भी पहुंच सकता है, किन्तु उसका अतिक्रमण नहीं किया जा सकता।[१] सांवत्सरिक महत्त्व के कारण ही इसका प्रचलित नाम संवत्सरी है।

प्रस्तुत सूत्रद्वयी में पर्युषणा में पर्युषित न होने का तथा अपर्युषणा अर्थात् पर्युषणा काल के पूर्व या उसके अतिक्रान्त होने के बाद पर्युषित होने का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है। भाष्यकार के अनुसार अशिव, दुर्भिक्ष, राजद्वेष आदि इस विधान के अपवाद हैं।[२]

२०. सूत्र ३८,३९

पर्युषणा का अन्तिम एवं अनतिक्रमणीय दिन है—भाद्रव शुक्ला पंचमी। इसे संवत्सरी महापर्व के नाम से जाना जाता है। जो भिक्षु संवत्सरी के दिन गोलोम (गाय के रोम) जितने या उससे लम्बे बाल रखता है अथवा इत्वरिक आहार भी ग्रहण करता है, उसे गुरु चातुर्मासिक प्रायश्चित्त प्राप्त होता है तथा आज्ञाभंग, अनवस्था आदि दोष लगते हैं।[३] चतुर्विध आहार में ठोस वस्तुओं के लिए अल्पतम परिमाण है—तिलतुष मात्र या एक कवल और द्रव पदार्थों, पानक आदि का इत्वरिक परिमाण है—बिन्दुमात्र।[४]

शब्द विमर्श

१. गोलोममाइं पि—गाय के लोम जितने भी। चूर्णिकार के अनुसार 'अपि' शब्द के द्वारा 'हस्तप्राप्य' (हाथ में पकड़े जा सकें उतने) बालों का ग्रहण किया गया है।[५]

२. उवातिणावेति—चूर्णिकार के अनुसार 'उवातिणावेति' का अर्थ है—पर्युषणा की रात्रि का अतिक्रमण करता है। यहां इसका भावार्थ है—पर्युषणा की रात्रि के बाद भी बाल रखता है।[६]

२१. सूत्र ४०

निशीथभाष्य एवं चूर्णि के अनुसार प्राचीन काल में 'पर्युषणा कल्प' का पठन कर पर्युषित होने की विधि थी। उसमें भिक्षु के लिए पर्युषणा से सम्बन्धित आवश्यक कार्यों का निर्देश था। उसका वाचन रात्रि में केवल भिक्षुओं की उपस्थिति में होता था। उस विधि के अनुसार गृहस्थ एवं अन्यतीर्थिक के समक्ष पर्युषणाकल्प का वाचन निषिद्ध था।[७] भाष्यकार के अनुसार इससे सम्मिश्रवास, शंका आदि दोषों की संभावना रहती है।[८] तेरापंथ के चतुर्थ आचार्य श्रीमद्जयाचार्य कृत हुण्डी से प्रस्तुत सूत्र का वाच्यार्थ कुछ भिन्न प्रतीत होता है।

अन्यतीर्थी अने गृहस्थ ने पज्जुसण करावै तो, पज्जुसण ने संवत्सरी, ते ऊपर पोते केश न राखे तिम गृहस्थ नें पिण कहे तुमे केस कटावो, इम कहे ते पज्जुसण करायां इत्यादि सावद्य कर्त्तव्य पज्जुसण दिनै ते न करे, तिवारे अनेरा गृहस्थ ने साधु कहे आज पज्जुसण छे, अनेरा गृहस्थ ए कार्य करै छे तुम्हे पिण ए कार्य करो इम पज्जुसण न करावै, पिण पज्जुसण संवत्सरी रे दिन पोसा करायां दोस नथी।'[९]

इस प्रकार प्रस्तुत सूत्र एवं एतद् विषयक परम्परा का संधान-सूत्र अन्वेषण का विषय है।

२२. सूत्र ४१

भिक्षु किस काल एवं क्षेत्र में वस्त्र ग्रहण करे—इस विषय में कप्पो (बृहत्कल्पसूत्र) में निषेधक एवं विधायक दोनों सूत्र उपलब्ध होते हैं।[१०] प्रस्तुत सूत्र में उपर्युक्त निषेध के अतिक्रमण का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है।

पर्युषणा अथवा वर्षावास का एक पर्यायवाची नाम है—प्रथम समवसरण। वर्ष का प्रारंभ पर्युषणा काल से होता है अतः उसे प्रथम समवसरण कहा जाता है।[११] इसीलिए शेषकाल को ऋतुबद्धकाल अथवा द्वितीय समवसरण कहा जाता है। मुनि को प्रथम समवसरण में वस्त्र ग्रहण करना नहीं कल्पता।[१२] प्रस्तुत सूत्र में उसी अतिक्रमण का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है।

भाष्यकार ने क्षेत्र और काल से प्राप्त और अप्राप्त के आधार पर चार भंगों का निर्देश दिया है—

---

१. निभा. भा. ३ चू.पृ. १३०,१३१—सेसकालं पज्जोसवेताणं अववातो। अववाते वि सविसतिरातमासातो परेण अतिक्कमेउं ण वट्टति। सवीसतिराते मासे पुण्णे जति वासखेत्तं ण लब्भति तो रुक्खहेट्ठा वि पज्जोसवेयव्वं।
२. वही, गा. ३१५२, ३१५८-३१६०
३. वही, गा. ३२१०, ३२१२, ३२१५
४. वही, ३ पृ. १५७
५. वही, ३ चू. पृ. १५५—गोलोममात्रापि न कर्तव्या, किमुत दीर्घा। अहवा—हस्तप्राप्या अपिशब्देन विशेष्यंति।
६. वही—उवातिणावति त्ति पज्जोसवणारयणिं अतिक्कामतीत्यर्थः।
७. वही, गा. ३२१८-३२२० व इनकी चूर्णि।
८. वही, भा. ३, चू.पृ. १५७—एतेसिं सम्मीसवासे दोसा भवंति। ....सम्मीसवासदोसो संकादोसो य।
९. नि. हुंडी १०/५१
१०. कप्पो ३/१६,१७
११. निभा. ३ चू.पृ.१२६—जतो पज्जोसवणातो वरिसं आढप्पति, अतो पढमं समोसरणं भण्णति।
१२. कप्पो. ३/१६

१. क्षेत्र से प्राप्त, काल से अप्राप्त

२. काल से प्राप्त, क्षेत्र से अप्राप्त

३. क्षेत्र एवं काल दोनों से प्राप्त

४. क्षेत्र एवं काल दोनों से अप्राप्त।

ज्ञातव्य है कि वर्षावास प्रायोग्य क्षेत्र में पहुंच जाना क्षेत्र से प्राप्त और आषाढ़ी पूर्णिमा का सम्पन्न हो जाना काल से प्राप्त कहलाता है।

शब्द विमर्श

१. प्रथम समवसरण—वर्षावास (चतुर्मास काल)।[1]

२. उद्देश-प्राप्त—क्षेत्र और काल के विभाग से प्राप्त।[2]

३. चीवर—वस्त्र।

विशेष हेतु द्रष्टव्य—कप्पो ३/१६,१७ और उसका भाष्य निशीथ भाष्य गा. ३२२३-३२७५।

---

१. निभा. भा. ३ चू.पृ. १५८

२. (क) वही, पृ. १५९

(ख) बृभा. गा. ४२३६ की वृत्ति—पढमसमोसरणे.....प्राप्तानि।

एक्कारसमो उद्देसो

ग्यारहवां उद्देशक

आमुख

प्रस्तुत उद्देशक के मुख्य प्रतिपाद्य हैं—बहुमूल्य पात्र के ग्रहण, धारण एवं परिभोग का प्रायश्चित्त, अभिहृत पात्र ग्रहण करने का प्रायश्चित्त, धर्म एवं दिवाभोजन के अवर्णवाद तथा अधर्म एवं रात्रिभोजन के वर्णवाद का प्रायश्चित्त, अन्यतीर्थिक एवं गृहस्थ का शरीर-परिकर्म करने, रात्रिभोजन-विरमण व्रत के अतिचार तथा वैराज्य, विरुद्धराज्य आदि में गमनागमन करने का प्रायश्चित्त, निवेदनापिण्ड ग्रहण करने, यथाच्छन्द की वन्दना-प्रशंसा करने, अयोग्य के दीक्षा देने एवं उससे वैयावृत्य करवाने, सचेल-अचेल के संवास तथा बालमरण आदि का प्रायश्चित्त।

दसवें उद्देशक के अन्तिम सूत्र में कालप्रतिषेध का कथन किया गया है। प्रस्तुत उद्देशक का प्रारम्भ भाव-प्रतिषेध से हुआ है। विविध प्रकार के धातुघटित पात्र, हाथीदांत के पात्र, शंख, वस्त्र आदि से निर्मित अथवा उन-उन बन्धनों से बद्ध कलाकारी वाले पात्र रखना, उनका निर्माण अथवा परिभोग करना संयमानुकूल प्रवृत्ति नहीं है। गणनातिरिक्त, प्रमाणातिरिक्त एवं बहुमूल्य उपकरण संयम की दृष्टि से अनुपयोगी होने के कारण अधिकरण होते हैं। निशीथभाष्य एवं चूर्णि के अनुसार इस प्रकार के पात्र आदि रखने से भार, परितापना, मारण, अधिकरण, सूत्रार्थ-पलिमंथु, आज्ञालोप, मनःसंताप आदि दस दोष संभव हैं।[१] भिक्षु तीन प्रकार के पात्र रख सकता है—मिट्टी का, काष्ठ का एवं तुम्बे का। सामान्यतः ये पात्र भी उसे अर्धयोजन की मर्यादा में तृतीय प्रहर में गवेषणीय हैं। यदि ग्लान्य, भिक्षा, वसति आदि की दुर्लभता आदि कारणों से समूचा संघ उस क्षेत्र में न जा सके तो कुछ पात्रकल्पिक भिक्षु द्विगुण, त्रिगुण अथवा चतुर्गुण पात्र ला सकते हैं। यदि अर्द्धयोजन की मर्यादा से अधिक दूरी पर पात्र-प्राप्ति की संभावना हो और मार्ग अनेक विघ्न-बाधाओं से युक्त हो तो भी सामान्यतः गृहस्थ के द्वारा पात्र नहीं मंगवाये जा सकते।

प्रस्तुत उद्देशक में सूत्रकार ने धर्म और दिवाभोजन के अवर्णवाद एवं अधर्म तथा रात्रिभोजन के वर्णवाद को प्रायश्चित्तार्ह कार्य बताया है। इस प्रसंग में व्याख्या-साहित्य में धर्म के प्रकार, अवर्णवाद के स्वरूप एवं प्रकारों का विशद विवेचन मिलता है। इसी प्रकार दिवाभोजन के दोष एवं रात्रिभोजन के गुण क्या बतलाए जा सकते हैं, कोई किस प्रकार उनका क्रमशः अवर्णवाद एवं वर्णवाद करता है, इसका भी संक्षिप्त वर्णन मिलता है। रात्रिभोजन विरमण व्रत भी महाव्रतों के समान त्रिकरण, त्रियोग से पालनीय है अतः दिन में गृहीत अशनादि को रात्रि में उपभोग करना अथवा परिवसित रखकर अगले दिन उपभोग करना, रात्रि में ग्रहण-उपभोग करना, आगाढ़ कारण के बिना अशन, पान आदि को परिवासित रखना, परिवासित अशन, पान आदि को स्वल्पमात्र भी खाना तथा सोंठ, पीपल आदि सामान्य औषध द्रव्य को बासी रखकर खाना रात्रिभोजन-विरमण नामक षष्ठ व्रत का अतिचार है।

भिक्षु जिस गांव, नगर अथवा राज्य में रहता है, वहां की सामाजिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक परम्पराओं, स्थितियों एवं परिस्थितियों से उसकी साधना प्रभावित होती है। जहां राजनैतिक अराजकता हो, राजा एवं उसके अधिकारियों का पारस्परिक वैमनस्य हो, राजा कालधर्म को प्राप्त हो गया हो अथवा दो, तीन राजाओं में परम्परागत वैर-विरोध हो, वैसे राज्यों में गमनागमन करने से भिक्षु के प्रति चोर, लुटेरा, जासूस आदि होने की शंका हो सकती है। उसके साथ कानूनी कठोरता बरती जा सकती है, अन्य भी अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ सकता है अतः इस प्रकार के गणराज्य, यौवराज्य, दोराज्य, वैराज्य एवं विरुद्धराज्य में भिक्षु विहार की प्रतिज्ञा से न जाए।[२] जो वहां बारम्बार गमनागमन करता है, वह राज्यसीमा एवं जन

१. निभा. गा. ३२८० (सचूर्णि)

२. आचू. ३/१०

सीमा दोनों के अतिक्रमण का दोषी है।[1] अतः प्रस्तुत उद्देशक में ऐसा करने वाले भिक्षु के लिए प्रायश्चित्त का निरूपण है। प्रस्तुत प्रसंग पढ़ने से सहज ही यह अनुमान होता है कि आयारचूला, कप्पो (बृहत्कल्पसूत्र) एवं णिसीहज्झयणं के रचनाकारों के समक्ष समान परिस्थितियां रही होंगी, तभी उनकी चिन्तन की धारा इतनी एकरूपता के साथ प्रवाहित हुई है।

जहां गणना और योग्यता में से अथवा परिमाण एवं गुणवत्ता में से एक के चयन का प्रसंग हो, वहां क्रमशः योग्यता और गुणवत्ता को ही प्रमुखता देनी चाहिए। चाहे प्रसंग प्रव्रज्या या उपस्थापना का हो अथवा सेवा/वैयावृत्य करवाने का, पात्रता का विचार अपेक्षित है। प्रस्तुत उद्देशक के 'अनल पद' के संदर्भ में दीक्षा के अनेक मानदण्डों का भाष्य में सविस्तर उत्सर्गापवाद सहित निरूपण हुआ है। कौन स्त्री अथवा पुरुष कहां, कब तक, किस परिस्थिति में प्रव्रज्या के योग्य होते हैं तथा किन-किन कारणों से सदोष अथवा अयोग्य व्यक्ति को भी दीक्षित किया जा सकता है—इत्यादि का विशद वर्णन करते हुए भाष्यकार एवं चूर्णिकार ने यथास्थान यथौचित्य बालमनोविज्ञान, वृद्धमनोविज्ञान एवं काममनोविज्ञान का सुन्दर चित्रण किया है।

दीक्षा के पश्चात् जीवनचर्या के मुख्य अंग हैं—शिक्षा पद—सूत्रग्रहण, अर्थग्रहण, देशदर्शन और शिष्यनिष्पत्ति। इसके पश्चात् यदि आयुष्य दीर्घ हो, संहनन एवं धृति से सम्पन्न हो तो तप, श्रुत, सत्त्व एकत्व एवं बल—इन पांच तुलाओं से स्वयं को तौलकर जिनकल्प, यथालन्द आदि अभ्युद्यतविहार को स्वीकार करे। यदि आयुष्य अल्प हो और अभ्युद्यतविहार की योग्यता न हो तो अभ्युद्यतमरण स्वीकार करे। यदि ये दोनों ही योग्यताएं न हों तो वह बालमरण की ओर अभिप्रेरित होता है। प्रस्तुत उद्देशक में बालमरण के बीस प्रकारों की अनुमोदना एवं प्रशंसा करने वाले के लिए प्रायश्चित्त का कथन किया गया है। निशीथभाष्य एवं चूर्णि में अभ्युद्यतमरण का सत्ताईस द्वारों के द्वारा बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया गया है।

---

१. कप्पो १/३७

एक्कारसमो उद्देसो : ग्यारहवां उद्देशक

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
पाय-पदं	**पात्र-पदम्**	**पात्र-पद**
१. जे भिक्खू अयपायाणि वा कंसपायाणि वा तंबपायाणि वा तउयपायाणि वा सुवण्णपायाणि वा रुप्पपायाणि वा जायरूवपायाणि वा हारपुडपायाणि वा मणिपायाणि वा मुत्तापायाणि वा कायपायाणि वा दंतपायाणि वा सिंगपायाणि वा चम्मपायाणि वा सेलपायाणि वा चेलपायाणि वा अंकपायाणि वा संखपायाणि वा वइरपायाणि वा करेति, करेंतं वा सातिज्जति ।।	यो भिक्षुः अयःपात्राणि वा कांस्यपात्राणि वा ताम्रपात्राणि वा त्रपुकपात्राणि वा सुवर्णपात्राणि वा रूप्यपात्राणि वा जातरूपपात्राणि वा हारपुटपात्राणि वा मणिपात्राणि वा मुक्तापात्राणि वा काचपात्राणि वा दन्तपात्राणि वा शृंगपात्राणि वा चर्मपात्राणि वा शैलपात्राणि वा चेलपात्राणि वा अंकपात्राणि वा शंखपात्राणि वा वज्रपात्राणि वा करोति, कुर्वन्तं वा स्वदते ।	१. जो भिक्षु लोहपात्र, कांस्य (कांसी के)-पात्र, ताम्रपात्र, त्रपु (रांगा के)-पात्र, स्वर्णपात्र, रुप्य (चांदी के)-पात्र, जातरूपपात्र, हारपुटपात्र, मणिपात्र, मुक्तापात्र, कांचपात्र, दंतपात्र, शृंगपात्र, चर्मपात्र, शैलपात्र (प्रस्तरपात्र), चेलपात्र (वस्त्र-निर्मित पात्र), अंकपात्र, शंखपात्र अथवा वज्र (हीरे के)-पात्र का निर्माण करता है अथवा निर्माण करने वाले का अनुमोदन करता है।
२. जे भिक्खू अयपायाणि वा कंसपायाणि वा तंबपायाणि वा तउयपायाणि वा सुवण्णपायाणि वा रुप्पपायाणि वा जायरूवपायाणि वा हारपुडपायाणि वा मणिपायाणि वा मुत्तापायाणि वा कायपायाणि वा दंतपायाणि वा सिंगपायाणि वा चम्मपायाणि वा सेलपायाणि वा चेलपायाणि वा अंकपायाणि वा संखपायाणि वा वइरपायाणि वा धरेति, धरेंतं वा सातिज्जति ।।	यो भिक्षुः अयःपात्राणि वा कांस्यपात्राणि वा ताम्रपात्राणि वा त्रपुकपात्राणि वा सुवर्णपात्राणि वा रूप्यपात्राणि वा जातरूपपात्राणि वा हारपुटपात्राणि वा मणिपात्राणि वा मुक्तापात्राणि वा काचपात्राणि वा दन्तपात्राणि वा शृंगपात्राणि वा चर्मपात्राणि वा शैलपात्राणि वा चेलपात्राणि वा अंकपात्राणि वा शंखपात्राणि वा वज्रपात्राणि वा धरति, धरन्तं वा स्वदते ।	२. जो भिक्षु लोहपात्र, कांस्यपात्र, ताम्रपात्र, त्रपुपात्र, स्वर्णपात्र, रुप्यपात्र, जातरूपपात्र, हारपुटपात्र, मणिपात्र, मुक्तापात्र, कांचपात्र, दंतपात्र, शृंगपात्र, चर्मपात्र, शैलपात्र, चेलपात्र, अंकपात्र, शंखपात्र अथवा वज्रपात्र को धारण करता है अथवा धारण करने वाले का अनुमोदन करता है।
३. जे भिक्खू अयपायाणि वा कंसपायाणि वा तंबपायाणि वा तउयपायाणि वा सुवण्णपायाणि वा रुप्पपायाणि वा जायरूवपायाणि वा हारपुडपायाणि वा मणिपायाणि वा	यो भिक्षुः अयःपात्राणि वा कांस्यपात्राणि वा ताम्रपात्राणि वा त्रपुकपात्राणि वा सुवर्णपात्राणि वा रूप्यपात्राणि वा जारूपपात्राणि वा हारपुटपात्राणि वा मणिपात्राणि वा	३. जो भिक्षु लोहपात्र, कांस्यपात्र, ताम्रपात्र, त्रपुपात्र, स्वर्णपात्र, रुप्यपात्र, जातरूपपात्र, हारपुटपात्र, मणिपात्र, मुक्तापात्र, कांचपात्र, दंतपात्र, शृंगपात्र, चर्मपात्र, शैलपात्र, चेलपात्र, अंकपात्र,

मुत्तापायाणि वा कायपायाणि वा दंतपायाणि वा सिंगपायाणि वा चम्मपायाणि वा सेलपायाणि वा चेलपायाणि वा अंकपायाणि वा संखपायाणि वा वइरपायाणि वा परिभुंजति, परिभुंजंतं वा सातिज्जति॥

मुक्तापात्राणि वा काचपात्राणि वा दन्तपात्राणि वा शृंगपात्राणि वा चर्मपात्राणि वा शैलपात्राणि वा चेलपात्राणि वा अंकपात्राणि वा शंखपात्राणि वा वज्रपात्राणि वा परिभुङ्क्ते, परिभुञ्जानं वा स्वदते।

शंखपात्र अथवा वज्रपात्र का परिभोग करता है अथवा परिभोग करने वाले का अनुमोदन करता है।[1]

पाय-बंधण-पदं

४. जे भिक्खू अयबंधणाणि वा कंसबंधणाणि वा तंबबंधणाणि वा तउयबंधणाणि वा सुवण्णबंधणाणि वा रुप्पबंधणाणि वा जायरूव-बंधणाणि वा हारपुडबंधणाणि वा मणिबंधणाणि वा मुत्ताबंधणाणि वा कायबंधणाणि वा दंतबंधणाणि वा सिंगबंधणाणि वा चम्मबंधणाणि वा सेलबंधणाणि वा चेलबंधणाणि वा अंकबंधणाणि वा संखबंधणाणि वा वइरबंधणाणि वा करेति, करेंतं वा सातिज्जति॥

पात्रबंधन-पदम्

यो भिक्षुः अयोबन्धनानि वा कांस्यबंधनानि वा ताम्रबंधनानि वा त्रपुकबन्धानानि वा सुवर्णबन्धनानि वा रूप्यबन्धनानि वा जातरूपबन्धनानि वा हारपुटबंधनानि वा मणिबंधनानि वा मुक्ताबन्धनानि वा काचबन्धनानि वा दन्तबन्धनानि वा शृंगबन्धनानि वा चर्मबन्धनानि वा शैलबन्धनानि वा चेलबन्धनानि वा अंकबन्धनानि वा शंखबन्धनानि वा वज्रबन्धनानि वा करोति, कुर्वन्तं वा स्वदते।

पात्रबन्धन-पद

४. जो भिक्षु लोहबंधन, कांस्यबन्धन, ताम्रबन्धन, त्रपुबन्धन, स्वर्णबन्धन, रुप्यबन्धन, जातरूपबन्धन, हारपुटबन्धन, मणिबन्धन, मुक्ताबन्धन, कांचबन्धन, दंतबन्धन, शृंगबन्धन, चर्मबन्धन, शैलबन्धन, चेलबन्धन, अंकबन्धन, शंखबन्धन अथवा वज्रबन्धन से युक्त पात्र का निर्माण करता है अथवा निर्माण करने वाले का अनुमोदन करता है।

५. जे भिक्खू अयबंधणाणि वा कंसबंधणाणि वा तंबबंधणाणि वा तउयबंधणाणि वा सुवण्णबंधणाणि वा रुप्पबंधणाणि वा जायरूव-बंधणाणि वा हारपुडबंधणाणि वा मणिबंधणाणि वा मुत्ताबंधणाणि वा कायबंधणाणि वा दंतबंधणाणि वा सिंगबंधणाणि वा चम्मबंधणाणि वा सेलबंधणाणि वा चेलबंधणाणि वा अंकबंधणाणि वा संखबंधणाणि वा वइरबंधणाणि वा धरेति, धरेंतं वा सातिज्जति॥

यो भिक्षुः अयोबन्धनानि वा कांस्यबन्धनानि वा ताम्रबन्धनानि वा त्रपुकबन्धनानि वा सुवर्णबन्धनानि वा रूप्यबन्धनानि वा जातरूपबन्धनानि वा हारपुटबन्धनानि वा मणिबन्धानि वा मुक्ताबन्धनानि वा काचबन्धनानि वा दन्तबन्धनानि वा शृंगबन्धनानि वा चर्मबन्धनानि वा शैलबन्धनानि वा चेलबन्धनानि वा अंकबन्धनानि वा शंखबन्धनानि वा वज्रबन्धानानि वा धरति, धरन्तं वा स्वदते।

५. जो भिक्षु लोहबंधन, कांस्यबन्धन, ताम्रबन्धन, त्रपुबन्धन, स्वर्णबन्धन, रुप्यबन्धन, जातरूपबन्धन, हारपुटबन्धन, मणिबन्धन, मुक्ताबन्धन, कांचबन्धन, दंतबन्धन, शृंगबन्धन, चर्मबन्धन, शैलबन्धन, चेलबन्धन, अंकबन्धन, शंखबन्धन अथवा वज्रबन्धन से युक्त पात्र को धारण करता है अथवा धारण करने वाले का अनुमोदन करता है।

६. जे भिक्खू अयबंधणाणि वा कंसबंधणाणि वा तंबबंधणाणि वा तउयबंधणाणि वा सुवण्णबंधणाणि वा रुप्पबंधणाणि वा

६. यो भिक्षुः अयोबन्धनानि वा कांस्यबन्धनानि वा ताम्रबन्धनानि वा त्रपुकबन्धनानि वा सुवर्णबन्धनानि वा रूप्यबन्धनानि वा जातरूपबन्धनानि वा

६. जो भिक्षु लोहबंधन, कांस्यबन्धन, ताम्रबन्धन, त्रपुबन्धन, स्वर्णबन्धन, रुप्यबन्धन, जातरूपबन्धन, हारपुटबन्धन, मणिबन्धन, मुक्ताबन्धन, कांचबन्धन,

जायरूवबंधणाणि वा हारपुड-बंधणाणि वा मणिबंधणाणि वा मुत्ताबंधणाणि वा कायबंधणाणि वा दंतबंधणाणि वा सिंगबंधणाणि वा चम्मबंधणाणि वा सेलबंधणाणि वा चेलबंधणाणि वा अंकबंधणाणि वा संखबंधणाणि वा वइरबंधणाणि वा परिभुंजति, परिभुंजंतं वा सातिज्जति ।।

हारपुटबन्धनानि वा मणिबन्धनानि वा मुक्ताबन्धनानि वा काचबन्धनानि वा दन्तबन्धनानि वा शृंगबन्धनानि वा चर्मबन्धनानि वा शैलबन्धनानि वा चेलबन्धनानि वा अंकबन्धनानि वा शंखबन्धनानि वा वज्रबन्धनानि वा परिभुङ्क्ते, परिभुञ्जानं वा स्वदते।

दंतबन्धन, शृंगबन्धन, चर्मबन्धन, शैलबन्धन, चेलबन्धन, अंकबन्धन, शंखबन्धन अथवा वज्रबन्धन से युक्त पात्र का परिभोग करता है अथवा परिभोग करने वाले का अनुमोदन करता है।[२]

अद्धजोयणमेरा-पदं

७. जे भिक्खू परं अद्धजोयणमेराओ पायवडियाए गच्छति, गच्छंतं वा सातिज्जति ।।

अर्धयोजन'मेरा'-पदम्

यो भिक्षुः परम् अर्धयोजन'मेराओ' पात्रप्रतिज्ञया गच्छति, गच्छन्तं वा स्वदते।

अर्धयोजनमर्यादा-पद

७. जो भिक्षु पात्र लेने का संकल्प कर अर्धयोजन की मर्यादा से परे (आगे) जाता है अथवा जाने वाले का अनुमोदन करता है।[३]

८. जे भिक्खू परं अद्धजोयणमेराओ सपच्चवायंसि पायं अभिहडं आहट्टु दिज्जमाणं पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः परम् अर्धयोजन'मेराओ' सप्रत्यपाये पात्रम् अभिहृतमाहृत्य दीयमानं प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं व स्वदते।

८. जो भिक्षु सप्रत्यपाय (विघ्नयुक्त) पथ से अर्धयोजन की मर्यादा से परे सामने से लाकर दिए जाते हुए पात्र को ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।[४]

धम्म-अवण्ण-पदं

९. जे भिक्खू धम्मस्स अवण्णं वदति, वदंतं वा सातिज्जति ।।

धर्मावर्ण-पदम्

यो भिक्षुः धर्मस्य अवर्णं वदति, वदन्तं वा स्वदते।

धर्म-अवर्ण-पद

९. जो भिक्षु धर्म का अवर्णवाद (अकीर्ति/निन्दा) करता है अथवा अवर्णवाद करने वाले का अनुमोदन करता है।

अधम्म-वण्ण-पदं

१०. जे भिक्खू अधम्मस्स वण्णं वदति, वदंतं वा सातिज्जति ।।

अधर्मवर्ण-पदम्

यो भिक्षुः अधर्मस्य वर्णं वदति, वदन्तं वा स्वदते।

अधर्म-वर्ण-पद

१०. जो भिक्षु अधर्म का वर्णवाद (श्लाघा) करता है अथवा वर्णवाद करने वाले का अनुमोदन करता है।[५]

पाय-परिकम्म-पदं

११. जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा गारत्थियस्स वा पाए आमज्जेज्ज वा पमज्जेज्ज वा, आमज्जंतं वा पमज्जंतं वा सातिज्जति ।।

पादपरिकर्म-पदम्

यो भिक्षुः अन्ययूथिकस्य वा अगारस्थितस्य वा पादौ आमृज्याद् वा प्रमृज्याद् वा, आमार्जन्तं वा प्रमार्जन्तं वा स्वदते।

पादपरिकर्म-पद

११. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के पैरों का आमार्जन करता है अथवा प्रमार्जन करता है और आमार्जन अथवा प्रमार्जन करने वाले का अनुमोदन करता है।

१२. जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा गारत्थियस्स वा पाए संवाहेज्ज वा पलिमद्देज्ज वा, संवाहेंतं वा पलिमद्देंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकस्य वा अगारस्थितस्य वा पादौ संवाहयेद् वा परिमर्दयेद् वा, संवाहयन्तं वा परिमर्दयन्तं वा स्वदते।

१२. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के पैरों का संबाधन करता है अथवा परिमर्दन करता है और संबाधन अथवा परिमर्दन करने वाले का अनुमोदन करता है।

१३. जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा गारत्थियस्स वा पाए तेल्लेण वा घएण वा वसाए वा णवणीएण वा अब्भंगेज्ज वा मक्खेज्ज वा, अब्भंगेंतं वा मक्खेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकस्य वा अगारस्थितस्य वा पादौ तैलेन वा घृतेन वा वसया वा नवनीतेन वा अभ्यञ्ज्याद् वा म्रक्षेद् वा, अभ्यञ्जन्तं वा म्रक्षन्तं वा स्वदते।

१३. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के पैरों का तैल, घृत, वसा अथवा मक्खन से अभ्यंगन करता है अथवा म्रक्षण करता है और अभ्यंगन अथवा म्रक्षण करने वाले का अनुमोदन करता है।

१४. जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा गारत्थियस्स वा पाए लोद्धेण वा कक्केण वा चुण्णेण वा वण्णेण वा उल्लोलेज्ज वा उव्वट्टेज्ज वा, उल्लोलेंतं वा उव्वट्टेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकस्य वा अगारस्थितस्य वा पादौ लोध्रेण वा कल्केन वा चूर्णेन वा वर्णेन वा उल्लोलयेद् वा उद्वर्तेत वा, उल्लोलयन्तं वा उद्वर्तमानं वा स्वदते।

१४. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के पैरों पर लोध, कल्क, चूर्ण अथवा वर्ण का लेप करता है अथवा उद्वर्तन करता है और लेप अथवा उद्वर्तन करने वाले का अनुमोदन करता है।

१५. जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा गारत्थियस्स वा पाए सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलेज्ज वा पधोएज्ज वा, उच्छोलेंतं वा पधोएंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकस्य वा अगारस्थितस्य वा पादौ शीतोदकविकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन वा उत्क्षालयेद् वा प्रधावेद् वा, उत्क्षालयन्तं वा प्रधावन्तं वा स्वदते।

१५. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के पैरों का प्रासुक शीतल जल अथवा प्रासुक उष्ण जल से उत्क्षालन करता है अथवा प्रधावन करता है और उत्क्षालन अथवा प्रधावन करने वाले का अनुमोदन करता है।

१६. जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा गारत्थियस्स वा पाए फुमेज्ज वा रएज्ज वा, फुमेंतं वा रएंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकस्य वा अगारस्थितस्य वा पादौ 'फुमेज्ज' (फूत्कुर्याद्) वा रजेद् वा, 'फुमेंतं' (फूत्कुर्वन्तं) वा रजन्तं वा स्वदते।

१६. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के पैरों पर फूंक देता है अथवा रंग लगाता है और फूंक देने अथवा रंग लगाने वाले का अनुमोदन करता है।

काय-परिकम्म-पदं

कायपरिकर्म-पदम्

कायपरिकर्म-पद

१७. जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा गारत्थियस्स वा कायं आमज्जेज्ज वा पमज्जेज्ज वा, आमज्जंतं वा पमज्जंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकस्य वा अगारस्थितस्य वा कायम् आमृज्याद् वा प्रमृज्याद् वा, आमार्जन्तं वा प्रमार्जन्तं वा स्वदते।

१७. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के शरीर का आमार्जन करता है अथवा प्रमार्जन करता है और आमार्जन अथवा प्रमार्जन करने वाले का अनुमोदन करता है।

१८. जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा गारत्थियस्स वा कायं संवाहेज्ज वा

यो भिक्षुः अन्ययूथिकस्य वा अगारस्थितस्य वा कायं संवाहयेद् वा

१८. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के शरीर का संबाधन करता है अथवा परिमर्दन

पलिमद्देज्ज वा, संवाहेंतं वा पलिमद्देंतं वा सातिज्जति ।।

परिमर्दयेद् वा, संवाहयन्तं वा परिमर्दयन्तं वा स्वदते ।

करता है और संबाधन अथवा परिमर्दन करने वाले का अनुमोदन करता है ।

१९. जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा गारत्थियस्स वा कायं तेल्लेण वा घएण वा वसाए वा णवणीएण वा अब्भंगेज्ज वा मक्खेज्ज वा, अब्भंगेंतं वा मक्खेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकस्य वा अगारस्थितस्य वा कायं तैलेन वा घृतेन वा वसया वा नवनीतेन वा अभ्यञ्ज्याद् वा म्रक्षेद् वा, अभ्यञ्जन्तं वा म्रक्षन्तं वा स्वदते ।

१९. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के शरीर का तैल, घृत, वसा अथवा मक्खन से अभ्यंगन करता है अथवा म्रक्षण करता है और अभ्यंगन अथवा म्रक्षण करने वाले का अनुमोदन करता है ।

२०. जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा गारत्थियस्स वा कायं लोद्धेण वा कक्केण वा चुण्णेण वा वण्णेण वा उल्लोलेज्ज वा उव्वट्टेज्ज वा, उल्लोलेंतं वा उव्वट्टेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकस्य वा अगारस्थितस्य वा कायं लोध्रेण वा कल्केन वा चूर्णेन वा वर्णेन वा उल्लोलयेद् वा उद्वर्तेत वा, उल्लोलयन्तं वा उद्वर्तमानं वा स्वदते ।

२०. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के शरीर पर लोध, कल्क, चूर्ण अथवा वर्ण का लेप करता है अथवा उद्वर्तन करता है और लेप अथवा उद्वर्तन करने वाले का अनुमोदन करता है ।

२१. जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा गारत्थियस्स वा कायं सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलेज्ज वा पधोएज्ज वा, उच्छोलेंतं वा पधोएंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकस्य वा अगारस्थितस्य वा कायं शीतोदक-विकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन वा उत्क्षालयेद् वा प्रधावेद् वा, उत्क्षालयन्तं वा प्रधावन्तं वा स्वदते ।

२१. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के शरीर का प्रासुक शीतल जल अथवा प्रासुक उष्ण जल से उत्क्षालन करता है अथवा प्रधावन करता है और उत्क्षालन अथवा प्रधावन करने वाले का अनुमोदन करता है ।

२२. जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा गारत्थियस्स वा कायं फुमेज्ज वा रएज्ज वा, फुमेंतं वा रएंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकस्य वा अगारस्थितस्य वा कायं 'फुमेज्ज' (फूत्कुर्यात्) वा रजेद् वा, 'फुमेंतं' (फूत्कुर्वन्तं) वा रजन्तं वा स्वदते ।

२२. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के शरीर पर फूंक देता है अथवा रंग लगाता है और फूंक देने अथवा रंग लगाने वाले का अनुमोदन करता है ।

वण-परिकम्म-पदं

व्रणपरिकर्म-पदम्

व्रणपरिकर्म-पद

२३. जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा गारत्थियस्स वा कायंसि वणं आमज्जेज्ज वा पमज्जेज्ज वा, आमज्जंतं वा पमज्जंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकस्य वा अगारस्थितस्य वा काये व्रणम् आमृज्याद् वा प्रमृज्याद् वा, आमार्जन्तं वा प्रमार्जन्तं वा स्वदते ।

२३. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के शरीर पर हुए व्रण का आमार्जन करता है अथवा प्रमार्जन करता है और आमार्जन अथवा प्रमार्जन करने वाले का अनुमोदन करता है ।

२४. जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा गारत्थियस्स वा कायंसि वणं संवाहेज्ज वा पलिमद्देज्ज वा, संवाहेंतं वा पलिमद्देंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकस्य वा अगारस्थितस्य वा काये व्रणं संवाहयेद् वा परिमर्दयेद् वा, संवाहयन्तं वा परिमर्दयन्तं वा स्वदते ।

२४. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के शरीर पर हुए व्रण का संबाधन करता है अथवा परिमर्दन करता है और संबाधन अथवा परिमर्दन करने वाले का अनुमोदन करता है ।

२५. जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा गारत्थियस्स वा कायंसि वणं तेल्लेण वा घएण वा वसाए वा णवणीएण वा अब्भंगेज्ज वा मक्खेज्ज वा, अब्भंगेंतं वा मक्खेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकस्य वा अगारस्थितस्य वा काये व्रणं तैलेन वा घृतेन वा वसया वा नवनीतेन वा अभ्यञ्ज्याद् वा म्रक्षेद् वा, अभ्यञ्जन्तं वा म्रक्षन्तं वा स्वदते।

२५. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के शरीर पर हुए व्रण का तैल, घृत, वसा अथवा मक्खन से अभ्यंगन करता है अथवा म्रक्षण करता है और अभ्यंगन अथवा म्रक्षण करने वाले का अनुमोदन करता है।

२६. जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा गारत्थियस्स वा कायंसि वणं लोद्धेण वा कक्केण वा चुण्णेण वा वण्णेण वा उल्लोलेज्ज वा उव्वट्टेज्ज वा, उल्लोलेंतं वा उव्वट्टेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकस्य वा अगारस्थितस्य वा काये व्रणं लोध्रेण वा कल्केन वा चूर्णेन वा वर्णेन वा उल्लोलयेद् वा उद्वर्तेत वा, उल्लोलयन्तं वा उद्वर्तमानं वा स्वदते।

२६. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के शरीर पर हुए व्रण पर लोध, कल्क, चूर्ण अथवा वर्ण का लेप करता है अथवा उद्वर्तन करता है और लेप अथवा उद्वर्तन करने वाले का अनुमोदन करता है।

२७. जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा गारत्थियस्स वा कायंसि वणं सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलेज्ज वा पधोएज्ज वा, उच्छोलेंतं वा पधोएंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकस्य वा अगारस्थितस्य वा काये व्रणं शीतोदकविकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन वा उत्क्षालयेद् वा प्रधावेद् वा, उत्क्षालयन्तं वा प्रधावन्तं वा स्वदते।

२७. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के शरीर पर हुए व्रण का प्रासुक शीतल जल अथवा प्रासुक उष्ण जल से उत्क्षालन करता है अथवा प्रधावन करता है और उत्क्षालन अथवा प्रधावन करने वाले का अनुमोदन करता है।

२८. जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा गारत्थियस्स वा कायंसि वणं फुमेज्ज वा रएज्ज वा, फुमेंतं वा रएंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकस्य वा अगारस्थितस्य वा काये व्रणं 'फुमेज्ज' (फूत्कुर्याद्) वा रजेद् वा, 'फुमेंतं' (फूत्कुर्वन्तं) वा रजन्तं वा स्वदते।

२८. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के शरीर पर हुए व्रण पर फूंक देता है अथवा रंग लगाता है और फूंक देने अथवा रंग लगाने वाले का अनुमोदन करता है।

गंडादि-परिकम्म-पदं

गण्डादिपरिकर्म-पदम्

गंडादिपरिकर्म-पद

२९. जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा गारत्थियस्स वा कायंसि गंडं वा पिडयं वा अरइयं वा असियं वा भगंदलं वा अण्णयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं अच्छिंदेज्ज वा विच्छिंदेज्ज वा, अच्छिंदेंतं वा विच्छिंदेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकस्य वा अगारस्थितस्य वा काये गण्डं वा पिटकं वा अरतिकां वा अर्शो वा भगन्दरं वा अन्यतरेण तीक्ष्णेन शस्त्रजातेन आच्छिन्द्याद् वा विच्छिन्द्याद् वा, आच्छिन्दन्तं वा विच्छिन्दन्तं वा स्वदते।

२९. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के शरीर में हुए गंडमाल, फोड़ा, फुंसी, अर्श अथवा भगन्दर का किसी तीक्ष्ण शस्त्रजात से आच्छेदन करता है अथवा विच्छेदन करता है और आच्छेदन अथवा विच्छेदन करने वाले का अनुमोदन करता है।

३०. जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा गारत्थियस्स वा कायंसि गंडं वा पिडयं वा अरइयं वा असियं वा भगंदलं वा अण्णयरेणं तिक्खेणं

यो भिक्षुः अन्ययूथिकस्य वा अगारस्थितस्य वा काये गण्डं वा पिटकं वा अरतिकां वा अर्शो वा भगन्दरं वा अन्यतरेण तीक्ष्णेन शस्त्रजातेन आच्छिद्य

३०. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के शरीर में हुए गंडमाल, फोड़ा, फुंसी, अर्श अथवा भगन्दर का किसी तीक्ष्ण शस्त्रजात से आच्छेदन अथवा विच्छेदन कर पीव

सत्थजाएणं अच्छिंदित्ता वा विच्छिंदित्ता वा पूयं वा सोणियं वा णीहरेज्ज वा विसोहेज्ज वा, णीहरेंतं वा विसोहेंतं वा सातिज्जति ।।

वा विच्छिद्य वा पूयं वा शोणितं वा निस्सरेद् वा विशोधयेद् वा, निस्सरन्तं वा विशोधयन्तं वा स्वदते।

अथवा रक्त को निकालता है अथवा साफ करता है और निकालने अथवा साफ करने वाले का अनुमोदन करता है।

३१. जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा गारत्थियस्स वा कायंसि गंडं वा पिडयं वा अरइयं वा असियं वा भगंदलं वा अण्णयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं अच्छिंदित्ता वा विच्छिंदित्ता वा पूयं वा सोणियं वा णीहरित्ता वा विसोहेत्ता वा सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलेज्ज वा पधोएज्ज वा, उच्छोलेंतं वा पधोएंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकस्य वा अगारस्थितस्य वा काये गण्डं वा पिटकं वा अरतिकां वा अर्शो वा भगन्दरं वा अन्यतरेण तीक्ष्णेन शस्त्रजातेन आच्छिद्य वा विच्छिद्य वा पूयं वा शोणितं वा निस्सृत्य वा विशोध्य वा शीतोदकविकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन वा उत्क्षालयेद् वा प्रधावेद् वा, उत्क्षालयन्तं वा प्रधावन्तं वा स्वदते।

३१. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के शरीर में हुए गंडमाल, फोड़ा, फुंसी, अर्श अथवा भगन्दर का किसी तीक्ष्ण शस्त्रजात से आच्छेदन अथवा विच्छेदन कर, उसकी पीव अथवा रक्त को निकाल कर अथवा साफ कर उसका प्रासुक शीतल अथवा प्रासुक उष्ण जल से उत्क्षालन करता है अथवा प्रधावन करता है और उत्क्षालन अथवा प्रधावन करने वाले का अनुमोदन करता है।

३२. जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा गारत्थियस्स वा कायंसि गंडं वा पिडयं वा अरइयं वा असियं वा भगंदलं वा अण्णयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं अच्छिंदित्ता वा विच्छिंदित्ता वा पूयं वा सोणियं वा णीहरित्ता वा विसोहेत्ता वा सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलेत्ता वा पधोएत्ता वा अण्णयरेणं आलेवणजाएणं आलिंपेज्ज वा विलिंपेज्ज वा, आलिंपंतं वा विलिंपंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकस्य वा अगारस्थितस्य वा काये गंडं वा पिटकं वा अरतिकां वा अर्शो का भगन्दरं वा अन्यतरेण तीक्ष्णेन शस्त्रजातेन आच्छिद्य वा विच्छिद्य वा पूयं वा शोणितं वा निस्सृत्य वा विशोध्य वा शीतोदकविकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन वा उत्क्षाल्य वा प्रधाव्य वा अन्यतरेण आलेपनजातेन आलिम्पेद् वा विलिम्पेद् वा, आलिम्पन्तं वा विलिम्पन्तं वा स्वदते।

३२. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के शरीर में हुए गंडमाल, फोड़ा, फुंसी, अर्श अथवा भगन्दर का किसी तीक्ष्ण शस्त्रजात से आच्छेदन अथवा विच्छेदन कर, उसकी पीव अथवा रक्त को निकाल कर अथवा साफ कर, उसका प्रासुक शीतल अथवा प्रासुक उष्ण जल से उत्क्षालन अथवा प्रधावन कर उस पर किसी आलेपनजात से आलेपन करता है अथवा विलेपन करता है और आलेपन अथवा विलेपन करने वाले का अनुमोदन करता है।

३३. जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा गारत्थियस्स वा कायंसि गंडं वा पिडयं वा अरइयं वा असियं वा भगंदलं वा अण्णयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं अच्छिंदित्ता वा विच्छिंदित्ता वा पूयं वा सोणियं वा णीहरित्ता वा विसोहेत्ता वा सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-

यो भिक्षुः अन्ययूथिकस्य वा अगारस्थितस्य वा काये गण्डं वा पिटकं वा अरतिकां वा अर्शो वा भगन्दरं वा अन्यतरेण तीक्ष्णेन शस्त्रजातेन आच्छिद्य वा विच्छिद्य वा पूयं वा शोणितं वा निस्सृत्य वा विशोध्य वा शीतोदकविकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन वा उत्क्षाल्य वा प्रधाव्य वा अन्यतरेण

३३. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के शरीर में हुए गंडमाल, फोड़ा, फुंसी, अर्श अथवा भगन्दर का किसी तीक्ष्ण शस्त्रजात से आच्छेदन अथवा विच्छेदन कर, उसकी पीव अथवा रक्त को निकाल कर अथवा साफ कर, उसका प्रासुक शीतल अथवा प्रासुक उष्ण जल से उत्क्षालन अथवा प्रधावन कर, उस पर किसी आलेपनजात से

वियडेण वा उच्छोलेत्ता वा पधोएत्ता वा अण्णयरेणं आलेवणजाएणं आलिंपेत्ता वा विलिंपेत्ता वा तेल्लेण वा घएण वा वसाए वा णवणीएण वा अब्भंगेज्ज वा मक्खेज्ज वा, अब्भंगेंतं वा मक्खेंतं वा सातिज्जति।।

आलेपनजातेन आलिप्य वा विलिप्य वा तैलेन वा घृतेन वा वसया वा नवनीतेन वा अभ्यज्ज्याद् वा म्रक्षेद् वा, अभ्यज्जन्तं वा म्रक्षन्तं वा स्वदते।

आलेपन अथवा विलेपन कर उसका तैल, घृत, वसा अथवा मक्खन से अभ्यंगन करता है अथवा म्रक्षण करता है और अभ्यंगन अथवा म्रक्षण करने वाले का अनुमोदन करता है।

३४. जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा गारत्थियस्स वा कायंसि गंडं वा पिडयं वा अरइयं वा असियं वा भगंदलं वा अण्णयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं अच्छिंदित्ता वा विच्छिंदित्ता वा पूयं वा सोणियं वा णीहरित्ता वा विसोहेत्ता वा सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलेत्ता वा पधोएत्ता वा अण्णयरेणं आलेवणजाएणं आलिंपेत्ता वा विलिंपेत्ता वा तेल्लेण वा घएण वा वसाए वा णवणीएण वा अब्भंगेत्ता वा मक्खेत्ता वा अण्णयरेणं धूवणजाएणं धूवेज्ज वा पधूवेज्ज वा, धूवेंतं वा पधूवेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकस्य वा अगारस्थितस्य वा काये गण्डं वा पिटकं वा अरतिकां वा अर्शो वा भगन्दरं वा अन्यतरेण तीक्ष्णेन शस्त्रजातेन आच्छिद्य वा विच्छिद्य वा पूयं वा शोणितं वा निस्सृत्य वा विशोध्य वा शीतोदकविकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन वा उत्क्षाल्य वा प्रधाव्य वा अन्यतरेण आलेपनजातेन आलिप्य वा विलिप्य वा तैलेन वा घृतेन वा वसया वा नवनीतेन वा अभ्यज्ज्य वा म्रक्षित्वा वा अन्यतरेण धूपनजातेन धूपायेद् वा प्रधूपायेद् वा, धूपायन्तं वा प्रधूपायन्तं वा स्वदते।

३४. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के शरीर में हुए गंडमाल, फोड़ा, फुंसी, अर्श अथवा भगन्दर का किसी तीक्ष्ण शस्त्रजात से आच्छेदन अथवा विच्छेदन कर, उसकी पीव अथवा रक्त को निकाल कर अथवा साफ कर, उसका प्रासुक शीतल जल अथवा प्रासुक उष्ण जल से उत्क्षालन अथवा प्रधावन कर, उस पर किसी आलेपनजात से आलेपन अथवा विलेपन कर, उसका तैल, घृत, वसा अथवा मक्खन से अभ्यंगन अथवा म्रक्षण कर, उसे किसी धूपजात से धूपित करता है अथवा प्रधूपित करता है और धूपित अथवा प्रधूपित करने वाले का अनुमोदन करता है।

किमि-पदं

३५. जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा गारत्थियस्स वा पालुकिमियं वा कुच्छिकिमियं वा अंगुलीए णिवेसिय-णिवेसिय णीहरेति, णीहरेंतं वा सातिज्जति।।

कृमि-पदम्

यो भिक्षुः अन्ययूथिकस्य वा अगारस्थितस्य वा पायुकृमिकं वा कुक्षिकृमिकं वा अंगुल्या निवेश्य-निवेश्य निस्सरति, निस्सरन्तं वा स्वदते।

कृमि-पद

३५. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के अपान की कृमि अथवा कुक्षि की कृमि को अंगुली डाल-डाल कर निकालता है अथवा निकालने वाले का अनुमोदन करता है।

णह-सिहा-पदं

३६. जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा गारत्थियस्स वा दीहाओ णह-सिहाओ कप्पेज्ज वा संठवेज्ज वा, कप्पेंतं वा संठवेंतं वा सातिज्जति।

नखशिखा-पदम्

यो भिक्षुः अन्ययूथिकस्य वा अगारस्थितस्य वा दीर्घाः नखशिखाः कल्पेत वा संस्थापयेद् वा, कल्पमानं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते।

नखशिखा-पद

३६. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ की दीर्घ नखशिखा को काटता है अथवा व्यवस्थित करता है और काटने अथवा व्यवस्थित करने वाले का अनुमोदन करता है।

दीह-रोम-पदं

३७. जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा गारत्थियस्स वा दीहाइं जंघ-रोमाइं कप्पेज्ज वा संठवेज्ज वा, कप्पेंतं वा संठवेंतं वा सातिज्जति।

दीर्घरोम-पदम्

यो भिक्षुः अन्ययूथिकस्य वा अगारस्थितस्य वा दीर्घाणि जंघारोमाणि कल्पेत वा संस्थापयेद् वा, कल्पमानं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते।

दीर्घरोम-पद

३७. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ की जंघाप्रदेश की दीर्घ रोमराजि को काटता है अथवा व्यवस्थित करता है और काटने अथवा व्यवस्थित करने वाले का अनुमोदन करता है।

३८. जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा गारत्थियस्स वा दीहाइं वत्थि-रोमाइं कप्पेज्ज वा संठवेज्ज वा, कप्पेंतं वा संठवेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकस्य वा अगारस्थितस्य वा दीर्घाणि वस्तिरोमाणि कल्पेत वा संस्थापयेद् वा, कल्पमानं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते।

३८. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ की वस्तिप्रदेश की दीर्घ रोमराजि को काटता है अथवा व्यवस्थित करता है और काटने अथवा व्यवस्थित करने वाले का अनुमोदन करता है।

३९. जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा गारत्थियस्स वा दीह-रोमाइं कप्पेज्ज वा संठवेज्ज वा, कप्पेंतं वा संठवेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकस्य वा अगारस्थितस्य वा दीर्घरोमाणि कल्पेत वा संस्थापयेद् वा, कल्पमानं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते।

३९. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ की दीर्घ रोमराजि को काटता है अथवा व्यवस्थित करता है और काटने अथवा व्यवस्थित करने वाले का अनुमोदन करता है।

४०. जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा गारत्थियस्स वा दीहाइं कक्खाण-रोमाइं कप्पेज्ज वा संठवेज्ज वा, कप्पेंतं वा संठवेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकस्य वा अगारस्थितस्य वा दीर्घाणि कक्षारोमाणि कल्पेत वा संस्थापयेद् वा, कल्पमानं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते।

४०. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ की कक्षा की दीर्घ रोमराजि को काटता है अथवा व्यवस्थित करता है और काटने अथवा व्यवस्थित करने वाले का अनुमोदन करता है।

४१. जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा गारत्थियस्स वा दीहाइं मंसु-रोमाइं कप्पेज्ज वा संठवेज्ज वा, कप्पेंतं वा संठवेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकस्य वा अगारस्थितस्य वा दीर्घाणि श्मश्रुरोमाणि कल्पेत वा संस्थापयेद् वा, कल्पमानं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते।

४१. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ की श्मश्रु की दीर्घ रोमराजि को काटता है अथवा व्यवस्थित करता है और काटने अथवा व्यवस्थित करने वाले का अनुमोदन करता है।

दंत-पदं

४२. जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा गारत्थियस्स वा दंते आघंसेज्ज वा पघंसेज्ज वा, आघंसंतं वा पघंसंतं वा सातिज्जति।।

दन्त-पदम्

यो भिक्षुः अन्ययूथिकस्य वा अगारस्थितस्य वा दन्तान् आघर्षेद् वा प्रघर्षेद् वा, आघर्षन्तं वा प्रघर्षन्तं वा स्वदते।

दंत-पद

४२. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के दांतों का आघर्षण करता है अथवा प्रघर्षण करता है और आघर्षण अथवा प्रघर्षण करने वाले का अनुमोदन करता है।

४३. जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा

यो भिक्षुः अन्ययूथिकस्य वा

४३. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के

गारत्थियस्स वा दंते उच्छोलेज्ज वा पधोएज्ज वा, उच्छोलेंतं वा पधोएंतं वा सातिज्जति ।।

अगारस्थितस्य वा दन्तान् उत्क्षालयेद् वा प्रधावेद् वा, उत्क्षालयन्तं वा प्रधावन्तं वा स्वदते ।

दांतों का उत्क्षालन करता है अथवा प्रधावन करता है और उत्क्षालन अथवा प्रधावन करने वाले का अनुमोदन करता है।

४४. जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा गारत्थियस्स वा दंते फुमेज्ज वा रएज्ज वा, फुमेंतं वा रएंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकस्य वा अगारस्थितस्य वा दन्तान् 'फुमेज्ज' (फूत्कुर्याद्) वा रजेद् वा, 'फुमेंतं' (फूत्कुर्वन्तं) वा रजन्तं वा स्वदते ।

४४. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के दांतों पर फूंक देता है अथवा रंग लगाता है और फूंक देने अथवा रंग लगाने वाले का अनुमोदन करता है।

उट्ठ-पदं

ओष्ठ-पदम्

ओष्ठ-पद

४५. जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा गारत्थियस्स वा उट्ठे आमज्जेज्ज वा पमज्जेज्ज वा, आमज्जंतं वा पमज्जंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकस्य वा अगारस्थितस्य वा ओष्ठौ आमृज्याद् वा प्रमृज्याद् वा, आमार्जन्तं वा प्रमार्जन्तं वा स्वदते।

४५. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के ओष्ठ का आमार्जन करता है अथवा प्रमार्जन करता है और आमार्जन अथवा प्रमार्जन करने वाले का अनुमोदन करता है।

४६. जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा गारत्थियस्स वा उट्ठे संवाहेज्ज वा पलिमद्देज्ज वा, संवाहेंतं वा पलिमद्देंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकस्य वा अगारस्थितस्य वा ओष्ठौ वा संवाहयेद् वा परिमर्दयेद् वा, संवाहयन्तं वा परिमर्दयन्तं वा स्वदते ।

४६. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के ओष्ठ का संबाधन करता है अथवा परिमर्दन करता है और संबाधन अथवा परिमर्दन करने वाले का अनुमोदन करता है।

४७. जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा गारत्थियस्स वा उट्ठे तेल्लेण वा घएण वा वसाए वा णवणीएण वा अब्भंगेज्ज वा मक्खेज्ज वा, अब्भंगेंतं वा मक्खेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकस्य वा अगारस्थितस्य वा ओष्ठौ तैलेन वा घृतेन वा वसया वा नवनीतेन वा अभ्यञ्ज्याद् वा म्रक्षेद् वा, अभ्यञ्जन्तं वा म्रक्षन्तं वा स्वदते ।

४७. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के ओष्ठ का तैल, घृत, वसा अथवा मक्खन से अभ्यंगन करता है अथवा म्रक्षण करता है और अभ्यंगन अथवा म्रक्षण करने वाले का अनुमोदन करता है।

४८. जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा गारत्थियस्स वा उट्ठे लोद्धेण वा कक्केण वा चुण्णेण वा वण्णेण वा उल्लोलेज्ज वा उव्वट्टेज्ज वा, उल्लोलेंतं वा उव्वट्टेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकस्य वा अगारस्थितस्य वा ओष्ठौ लोध्रेण वा कल्केन वा चूर्णेन वा वर्णेन वा उल्लोलयेद् वा उद्वर्तेत वा, उल्लोलयन्तं वा उद्वर्तमानं वा स्वदते ।

४८. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के ओष्ठ पर लोध, कल्क, चूर्ण अथवा वर्ण का लेप करता है अथवा उद्वर्तन करता है और लेप अथवा उद्वर्तन करने वाले का अनुमोदन करता है।

४९. जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा गारत्थियस्स वा उट्ठे सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलेज्ज वा पधोएज्ज वा,

यो भिक्षुः अन्ययूथिकस्य वा अगारस्थितस्य वा ओष्ठौ शीतोदकविकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन वा उत्क्षालयेद् वा प्रधावेद् वा,

४९. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के ओष्ठ का प्रासुक शीतल जल अथवा प्रासुक उष्ण जल से उत्क्षालन करता है अथवा प्रधावन करता है और उत्क्षालन

उच्छोलेंतं वा पधोएंतं वा सातिज्जति।।

उत्क्षालयन्तं वा प्रधावन्तं वा स्वदते।

अथवा प्रधावन करने वाले का अनुमोदन करता है।

५०. जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा गारत्थियस्स वा उट्ठे फुमेज्ज वा रएज्ज वा, फुमेंतं वा रएंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकस्य वा अगारस्थितस्य वा ओष्ठौ 'फुमेज्ज' (फूत्कुर्याद्) वा रजेद् वा, 'फुमेंतं' (फूत्कुर्वन्तं) वा रजन्तं वा स्वदते।

५०. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के ओष्ठ पर फूंक देता है अथवा रंग लगाता है और फूंक देने अथवा रंग लगाने वाले का अनुमोदन करता है।

दीह-रोम-पदं

दीर्घरोम-पदम्

दीर्घरोम-पद

५१. जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा गारत्थियस्स वा दीहाइं उत्तरोट्ठ-रोमाइं कप्पेज्ज वा संठवेज्ज वा, कप्पेंतं वा संठवेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकस्य वा अगारस्थितस्य वा दीर्घाणि उत्तरौष्ठरोमाणि कल्पेत वा संस्थापयेद् वा, कल्पमानं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते।

५१. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के उत्तरोष्ठ की दीर्घ रोमराजि को काटता है अथवा व्यवस्थित करता है और काटने अथवा व्यवस्थित करने वाले का अनुमोदन करता है।

५२. जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा गारत्थियस्स वा दीहाइं णासा-रोमाइं कप्पेज्ज वा संठवेज्ज वा, कप्पेंतं वा संठवेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकस्य वा अगारस्थितस्य वा दीर्घाणि नासारोमाणि कल्पेत वा संस्थापयेद् वा, कल्पमानं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते।

५२. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ की नाक की दीर्घ रोमराजि को काटता है अथवा व्यवस्थित करता है और काटने अथवा व्यवस्थित करने वाले का अनुमोदन करता है।

अच्छि-पत्त-पदं

अक्षिपत्र-पदम्

अक्षिपत्र-पद

५३. जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा गारत्थियस्स वा दीहाइं अच्छि-पत्ताइं कप्पेज्ज वा संठवेज्ज वा, कप्पेंतं वा संठवेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकस्य वा अगारस्थितस्य वा दीर्घाणि अक्षिपत्राणि कल्पेत वा संस्थापयेद् वा, कल्पमानं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते।

५३. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के दीर्घ अक्षिपत्र (पलक की रोमराजि) को काटता है अथवा व्यवस्थित करता है और काटने अथवा व्यवस्थित करने वाले का अनुमोदन करता है।

अच्छि-पदं

अक्षि-पदम्

अक्षि-पद

५४. जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा गारत्थियस्स वा अच्छीणि आमज्जेज्ज वा पमज्जेज्ज वा, आमज्जंतं वा पमज्जंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकस्य वा अगारस्थितस्य वा अक्षिणी आमृज्याद् वा प्रमृज्याद् वा, आमार्जन्तं वा प्रमार्जन्तं वा स्वदते।

५४. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ की आंखों का आमार्जन करता है अथवा प्रमार्जन करता है और आमार्जन अथवा प्रमार्जन करने वाले का अनुमोदन करता है।

५५. जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा गारत्थियस्स वा अच्छीणि संवाहेज्ज वा पलिमद्देज्ज वा, संवाहेंतं वा

यो भिक्षुः अन्ययूथिकस्य वा अगारस्थितस्य वा अक्षिणी संवाहयेद् वा परिमर्दयेद् वा, संवाहयन्तं वा परिमर्दयन्तं

५५. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ की आंखों का संबाधन करता है अथवा परिमर्दन करता है और संबाधन अथवा

पलिमद्देंतं वा सातिज्जति।।

वा स्वदते।

परिमर्दन करने वाले का अनुमोदन करता है।

५६. जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा गारत्थियस्स वा अच्छीणि तेल्लेण वा घएण वा वसाए वा णवणीएण वा अब्भंगेज्ज वा मक्खेज्ज वा, अब्भंगेंतं वा मक्खेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकस्य वा अगारस्थितस्य वा अक्षिणी तैलेन वा घृतेन वा वसया वा नवनीतेन वा अभ्यञ्ज्याद् वा म्रक्षेद् वा, अभ्यञ्जन्तं वा म्रक्षन्तं वा स्वदते।

५६. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ की आंखों का तैल, घृत, वसा अथवा मक्खन से अभ्यंगन करता है अथवा म्रक्षण करता है और अभ्यंगन अथवा म्रक्षण करने वाले का अनुमोदन करता है।

५७. जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा गारत्थियस्स वा अच्छीणि लोद्धेण वा कक्केण वा चुण्णेण वा वण्णेण वा उल्लोलेज्ज वा उव्वट्टेज्ज वा, उल्लोलेंतं वा उव्वट्टेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकस्य वा अगारस्थितस्य वा अक्षिणी लोध्रेण वा कल्केन वा चूर्णेन वा वर्णेन वा उल्लोलयेद् वा उद्वर्तेत वा, उल्लोलयन्तं वा उद्वर्तमानं वा स्वदते।

५७. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ की आंखों पर लोध, कल्क, चूर्ण अथवा वर्ण का लेप करता है अथवा उद्वर्तन करता है और लेप करने अथवा उद्वर्तन करने वाले का अनुमोदन करता है।

५८. जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा गारत्थियस्स वा अच्छीणि सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलेज्ज वा पधोएज्ज वा, उच्छोलेंतं वा पधोएंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकस्य वा अगारस्थितस्य वा अक्षिणी शीतोदकविकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन वा उत्क्षालयेद् वा प्रधावेद् वा, उत्क्षालयन्तं वा प्रधावन्तं वा स्वदते।

५८. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ की आंखों का प्रासुक शीतल जल अथवा प्रासुक उष्ण जल से उत्क्षालन करता है अथवा प्रधावन करता है और उत्क्षालन अथवा प्रधावन करने वाले का अनुमोदन करता है।

५९. जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा गारत्थियस्स वा अच्छीणि फुमेज्ज वा रएज्ज वा, फुमेंतं वा रएंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकस्य वा अगारस्थितस्य वा अक्षिणी 'फुमेज्ज' (फूत्कुर्याद्) वा रजेद् वा, 'फुमेंतं' (फूत्कुर्वन्तं) वा रजन्तं वा स्वदते।

५९. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ की आंखों पर फूंक देता है अथवा रंग लगाता है और फूंक देने अथवा रंग लगाने वाले का अनुमोदन करता है।

दीह-रोम-पदं

दीर्घरोम-पदम्

दीर्घरोम-पद

६०. जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा गारत्थियस्स वा दीहाइं भमुग-रोमाइं कप्पेज्ज वा संठवेज्ज वा, कप्पेंतं वा संठवेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकस्य वा अगारस्थितस्य वा दीर्घाणि भ्रूरोमाणि कल्पेत वा संस्थापयेद् वा, कल्पमानं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते।

६०. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ की भौंहों की दीर्घ रोमराजि को काटता है अथवा व्यवस्थित करता है और काटने अथवा व्यवस्थित करने वाले का अनुमोदन करता है।

६१. जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा गारत्थियस्स वा दीहाइं पास-रोमाइं कप्पेज्ज वा संठवेज्ज वा, कप्पेंतं वा

यो भिक्षुः अन्ययूथिकस्य वा अगारस्थितस्य वा दीर्घाणि 'पास'रोमाणि कल्पेत वा संस्थापयेद् वा,

६१. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के पार्श्वभाग की दीर्घ रोमराजि को काटता है अथवा व्यवस्थित करता है और काटने

संठवेंतं वा सातिज्जति ।।

कल्पमानं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते।

अथवा व्यवस्थित करने वाले का अनुमोदन करता है।

मल-णीहरण-पदं

६२. जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा गारत्थियस्स वा कायाओ सेयं वा जल्लं वा पंकं वा मलं वा णीहरेज्ज वा विसोहेज्ज वा, णीहरेंतं वा विसोहेंतं वा सातिज्जति ।।

मलनिस्सरण-पदम्

यो भिक्षुः अन्ययूथिकस्य वा अगारस्थितस्य वा कायात् स्वेदं वा जल्लं वा पंकं वा मलं वा निस्सरेद् वा विशोधयेद् वा, निस्सरन्तं वा विशोधयन्तं वा स्वदते।

मलनिर्हरण-पद

६२. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के शरीर के स्वेद, जल्ल, पंक अथवा मल का निर्हरण करता है अथवा विशोधन करता है और निर्हरण अथवा विशोधन करने वाले का अनुमोदन करता है।

६३. जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा गारत्थियस्स वा अच्छिमलं वा कण्णमलं वा दंतमलं वा णहमलं वा णीहरेज्ज वा विसोहेज्ज वा, णीहरेंतं वा विसोहेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकस्य वा अगारस्थितस्य वा अक्षिमलं वा कर्णमलं वा दंतमलं वा नखमलं वा निस्सरेद् वा विशोधयेद् वा, निस्सरन्तं वा विशोधयन्तं वा स्वदते।

६३. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ की आंख के मैल, कान के मैल, दांत के मैल अथवा नख के मैल का निर्हरण करता है अथवा विशोधन करता है और निर्हरण अथवा विशोधन करने वाले का अनुमोदन करता है।

सीसदुवारिय-पदं

६४. जे भिक्खू गामाणुगामं दूइज्जमाणे अण्णउत्थियस्स वा गारत्थियस्स वा सीसदुवारियं करेति, करेंतं वा सातिज्जति ।।

शीर्षद्वारिका-पदम्

यो भिक्षुः ग्रामानुग्रामं दूयमानः अन्ययूथिकस्य वा अगारस्थितस्य वा शीर्षद्वारिकां करोति, कुर्वन्तं वा स्वदते।

शीर्षद्वारिका-पद

६४. जो भिक्षु ग्रामानुग्राम परिव्रजन करता हुआ अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ का सिर ढंकता है अथवा सिर ढंकने वाले का अनुमोदन करता है।[६]

बीभावण-पदं

६५. जे भिक्खू अप्पाणं बीभावेति, बीभावेंतं वा सातिज्जति ।।

भापन-पदम्

यो भिक्षुः आत्मानं भापयति, भापयन्तं वा स्वदते।

भयोत्पादन-पद

६५. जो भिक्षु स्वयं को डराता है अथवा डराने वाले का अनुमोदन करता है।

६६. जे भिक्खू परं बीभावेति, बीभावेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः परं भापयति, भापयन्तं वा स्वदते।

६६. जो भिक्षु दूसरे को डराता है अथवा डराने वाले का अनुमोदन करता है।[७]

विम्हावण-पदं

६७. जे भिक्खू अप्पाणं विम्हावेति, विम्हावेंतं वा सातिज्जति ।।

विस्मापन-पदम्

यो भिक्षुः आत्मानं विस्मापयति, विस्मापयन्तं वा स्वदते।

विस्मापन (विस्मय-करण)-पद

६७. जो भिक्षु स्वयं को विस्मित करता है अथवा विस्मित करने वाले का अनुमोदन करता है।

६८. जे भिक्खू परं विम्हावेति, विम्हावेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः परं विस्मापयति, विस्मापयन्तं वा स्वदते।

६८. जो भिक्षु दूसरे को विस्मित करता है अथवा विस्मित करने वाले का अनुमोदन करता है।[८]

विप्परियास-पदं

६९. जे भिक्खू अप्पाणं विप्परियासेति, विप्परियासेंतं वा सातिज्जति ।।

७०. जे भिक्खू परं विप्परियासेति, विप्परियासेंतं वा सातिज्जति ।।

विपर्यास-पदम्

यो भिक्षुः आत्मानं विपर्यासयति, विपर्यासयन्तं वा स्वदते।

यो भिक्षुः परं विपर्यासयति, विपर्यासयन्तं वा स्वदते।

विपर्यास-पद

६९. जो भिक्षु स्वयं को विपर्यस्त करता है अथवा विपर्यस्त करने वाले का अनुमोदन करता है।

७०. जो भिक्षु दूसरे को विपर्यस्त करता है अथवा विपर्यस्त करने वाले का अनुमोदन करता है।[९]

मुहवण्ण-पदं

७१. जे भिक्खू मुहवण्णं करेति, करेंतं वा सातिज्जति ।।

मुखवर्ण-पदम्

यो भिक्षुः मुखवर्णं करोति, कुर्वन्तं वा स्वदते।

मुखवर्ण-पद

७१. जो भिक्षु मुखवर्ण (कुतीर्थ, कुशास्त्र आदि की श्लाघा) करता है अथवा करने वाले का अनुमोदन करता है।[१०]

वेरज्ज-विरुद्ध-रज्ज-पदं

७२. जे भिक्खू वेरज्ज-विरुद्ध-रज्जंसि सज्जं गमणं सज्जं आगमणं सज्जं गमणागमणं करेति, करेंतं वा सातिज्जति ।।

वैराज्य-विरुद्धराज्य-पदम्

यो भिक्षुः वैराज्य-विरुद्धराज्ये सद्यः गमनं सद्यः आगमनं सद्यः गमनागमनं करोति, कुर्वन्तं वा स्वदते।

वैराज्य-विरुद्धराज्य-पद

७२. जो भिक्षु वैराज्य अथवा विरुद्धराज्य में सद्यः गमन, सद्यः आगमन और सद्यः गमनागमन करता है अथवा करने वाले का अनुमोदन करता है।[११]

दियाभोयण-अवण्ण-पदं

७३. जे भिक्खू दियाभोयणस्स अवण्णं वयति, वयंतं वा सातिज्जति ।।

दिवा भोजनावर्ण-पदम्

यो भिक्षुः दिवाभोजनस्य अवर्णं वदति, वदन्तं वा स्वदते।

दिवाभोजन-अवर्ण-पद

७३. जो भिक्षु दिवाभोजन (दिन में खाने) का अवर्णवाद करता है अथवा करने वाले का अनुमोदन करता है।

राइभोयण-वण्ण-पदं

७४. जे भिक्खू राइभोयणस्स वण्णं वयति, वयंतं वा सातिज्जति ।।

रात्रिभोजन-वर्ण-पदम्

यो भिक्षुः रात्रिभोजनस्य वर्णं वदति, वदन्तं वा स्वदते।

रात्रिभोजन-वर्ण-पद

७४. जो भिक्षु रात्रिभोजन का वर्णवाद (श्लाघा) करता है अथवा करने वाले का अनुमोदन करता है।[१२]

दिया-रत्ति-भोयण-पदं

७५. जे भिक्खू दिया असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पडिग्गाहेत्ता दिया भुंजति, भुंजंतं वा सातिज्जति ।।

दिवा-रात्रि-भोजन-पदम्

यो भिक्षुः दिवा अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा प्रतिगृह्य दिवा भुङ्क्ते, भुञ्जानं वा स्वदते।

दिवारात्रि-भोजन-पद

७५. जो भिक्षु दिन में अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य ग्रहण कर दिन में खाता है अथवा खाने वाले का अनुमोदन करता है।

७६. जे भिक्खू दिया असणं वा पाणं वा

यो भिक्षुः दिवा अशनं वा पानं वा खाद्यं

७६. जो भिक्षु दिन में अशन, पान, खाद्य

खाइमं वा साइमं वा पडिग्गाहेत्ता रत्तिं भुंजति, भुंजंतं वा सातिज्जति ।।

वा स्वाद्यं वा प्रतिगृह्य रात्रौ भुङ्क्ते, भुञ्जानं वा स्वदते।

अथवा स्वाद्य ग्रहण कर रात में खाता है अथवा खाने वाले का अनुमोदन करता है।

७७. जे भिक्खू रत्तिं असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पडिग्गाहेत्ता दिया भुंजति, भुंजंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः रात्रौ अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा प्रतिगृह्य दिवा भुङ्क्ते, भुञ्जानं वा स्वदते।

७७. जो भिक्षु रात में अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य ग्रहण कर दिन में खाता है अथवा खाने वाले का अनुमोदन करता है।

७८. जे भिक्खू रत्तिं असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पडिग्गाहेत्ता रत्तिं भुंजति, भुंजंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः रात्रौ अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा प्रतिगृह्य रात्रौ भुङ्क्ते, भुञ्जानं वा स्वदते।

७८. जो भिक्षु रात में अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य ग्रहण कर रात में खाता है अथवा खाने वाले का अनुमोदन करता है।[१३]

परिवासित-पदं

परिवासित-पदम्

परिवासित-पद

७९. जे भिक्खू असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं अणागाढे परिवासेति, परिवासेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा अनागाढे परिवासयति, परिवासयन्तं वा स्वदते।

७९. जो भिक्षु आगाढ़ कारण के बिना अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य को परिवासित रखता है अथवा परिवासित रखने वाले का अनुमोदन करता है।

८०. जे भिक्खू परिवासियस्स असणस्स वा पाणस्स वा खाइमस्स वा साइमस्स वा तयप्पमाणं वा भूतिप्पमाणं वा बिंदुप्पमाणं वा आहारं आहारेति, आहारेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः परिवासितस्य अशनस्य वा पानस्य वा खाद्यस्य वा स्वाद्यस्य वा त्वक्प्रमाणं वा भूतिप्रमाणं वा बिंदुप्रमाणं वा आहारम् आहरति, आहरन्तं वा स्वदते।

८०. जो भिक्षु परिवासित अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य का त्वक्प्रमाण, भूतिप्रमाण अथवा बिन्दुप्रमाण भी आहार करता है अथवा आहार करने वाले का अनुमोदन करता है।[१४]

संखडि-पदं

संस्कृति-पदम्

संखडी-पद

८१. जे भिक्खू मंसादीयं वा मच्छादीयं वा मंसखलं वा मच्छखलं वा आहेणं वा पहेणं वा संमेलं वा हिंगोलं वा अण्णयरं वा तहप्पगारं विरूवरूवं हीरमाणं पेहाए ताए आसाए ताए पिवासाए तं रयणिं अण्णत्थ उवाइणावेति, उवाइणावेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः मांसादिकं वा मत्स्यादिकं वा मांसखलं वा मत्स्यखलं वा 'आहेणं' वा 'पहेणं' वा 'संमेलं' वा 'हिंगोलं' वा अन्यतरं वा तथाप्रकारं विरूपरूपं ह्रियमाणं प्रेक्ष्य तया आशया तया पिपासया तां रजनीम् अन्यत्र उपातिक्रामति, उपातिक्रामन्तं वा स्वदते।

८१. जो भिक्षु मांसादिक भोजन, मत्स्यादिक भोजन, मांस सुखाने के स्थान अथवा मत्स्य सुखाने के स्थान की ओर ले जाए जाते हुए अथवा वधू के घर से वर के घर और वर के घर से वधू के घर की ओर ले जाए जाते हुए भोजन, श्राद्ध-भोजन, गोष्ठी-भोजन अथवा वैसे विविध प्रकार के भोजन को ले जाए जाते हुए देखकर उस आशा से, उस पिपासा से (उसको खाने-पीने की इच्छा से) वह रात अन्यत्र बिताता है अथवा बिताने वाले का अनुमोदन करता है।[१५]

णिवेयणपिंड-पदं

८२. जे भिक्खू णिवेयणपिंडं भुंजति, भुंजंतं वा सातिज्जति ।।

निवेदनपिण्ड-पदम्

यो भिक्षुः निवेदनपिण्डं भुङ्क्ते, भुञ्जानं वा स्वदते।

निवेदन (नैवेद्य)-पिण्ड

८२. जो भिक्षु नैवेद्य-पिण्ड का भोग करता है अथवा भोग करने वाले का अनुमोदन करता है।[१६]

अहाछंद-पदं

८३. जे भिक्खू अहाछंदं पसंसति, पसंसंतं वा सातिज्जति ।।

८४. जे भिक्खू अहाछंदं वंदति, वंदंतं वा सातिज्जति ।।

यथाच्छन्द-पदम्

यो भिक्षुः यथाच्छन्दं प्रशंसति, प्रशंसन्तं वा स्वदते।

यो भिक्षुः यथाच्छन्दं वन्दते, वन्दमानं वा स्वदते।

यथाच्छन्द-पद

८३. जो भिक्षु यथाच्छन्द की प्रशंसा करता है अथवा प्रशंसा करने वाले का अनुमोदन करता है।

८४. जो भिक्षु यथाच्छन्द को वन्दना करता है अथवा वन्दना करने वाले का अनुमोदन करता है।[१७]

अणल-पदं

८५. जे भिक्खू णायगं वा अणायगं वा उवासगं वा अणुवासगं वा अणलं पव्वावेति, पव्वावेंतं वा सातिज्जति ।।

८६. जे भिक्खू णायगं वा अणायगं वा उवासगं वा अणुवासगं वा अणलं उवट्ठावेति, उवट्ठावेंतं वा सातिज्जति ।।

८७. जे भिक्खू अणलेणं वेयावच्चं कारेति, कारेंतं वा सातिज्जति ।।

अनल-पदम्

यो भिक्षुः ज्ञातकं वा अज्ञातकं वा उपासकं वा अनुपासकं वा अनलं प्रव्राजयति, प्रव्राजयन्तं वा स्वदते।

यो भिक्षुः ज्ञातकं वा अज्ञातकं वा उपासकं वा अनुपासकं वा अनलम् उपस्थापयति, उपस्थापयन्तं वा स्वदते।

यो भिक्षुः अनलेन वैयावृत्यं कारयति, कारयन्तं वा स्वदते।

अनल-पद

८५. जो भिक्षु ज्ञाति अथवा अज्ञाति, उपासक अथवा अनुपासक (श्रावकेतर) अयोग्य व्यक्ति को प्रव्रजित करता है अथवा प्रव्रजित करने वाले का अनुमोदन करता है।

८६. जो भिक्षु ज्ञाति अथवा अज्ञाति, उपासक अथवा अनुपासक अयोग्य व्यक्ति को उपस्थापित करता है अथवा उपस्थापित करने वाले का अनुमोदन करता है।

८७. जो भिक्षु अयोग्य भिक्षु से वैयावृत्य करवाता है अथवा करवाने वाले का अनुमोदन करता है।[१८]

सचेल-अचेल-पदं

८८. जे भिक्खू सचेले सचेलयाणं मज्झे संवसति, संवसंतं वा सातिज्जति ।।

८९. जे भिक्खू सचेले अचेलयाणं मज्झे संवसति, संवसंतं वा सातिज्जति ।।

सचेल-अचेल-पदम्

यो भिक्षुः सचेलः सचेलकानां मध्ये संवसति, संवसन्तं वा स्वदते।

यो भिक्षुः सचेलः अचेलकानां मध्ये संवसति, संवसन्तं वा स्वदते।

सचेल-अचेल-पद

८८. जो सचेल भिक्षु सचेल संयतियों के मध्य संवास करता है अथवा संवास करने वाले का अनुमोदन करता है।

८९. जो सचेल भिक्षु अचेल संयतियों के मध्य संवास करता है अथवा संवास करने वाले का अनुमोदन करता है।

९०. जे भिक्खू अचेले सचेलयाणं मज्झे संवसति, संवसंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः अचेलः सचेलकानां मध्ये संवसति, संवसन्तं वा स्वदते।

९०. जो अचेल भिक्षु सचेल संयतियों के मध्य संवास करता है अथवा संवास करने वाले का अनुमोदन करता है।

९१. जे भिक्खू अचेले अचेलयाणं मज्झे संवसति, संवसंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः अचेलः अचेलकानां मध्ये संवसति, संवसन्तं वा स्वदते।

९१. जो अचेल भिक्षु अचेल संयतियों के मध्य संवास करता है अथवा संवास करने वाले का अनुमोदन करता है।[१९]

पारियासिय-पदं

परिवासित-पदम्

परिवासित-पद

९२. जे भिक्खू पारियासियं पिप्पलिं वा पिप्पलिचुण्णं वा सिंगबेरं वा सिंगबेरचुण्णं वा बिलं वा लोणं उब्भियं वा लोणं आहारेति, आहारेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः परिवासितं पिप्पलिं वा पिप्पलिचूर्णं वा शृंगबेरं वा शृंगबेरचूर्णं वा विडं वा लवणम् उद्भिदं वा लवणम् आहरति, आहरन्तं वा स्वदते।

९२. जो भिक्षु परिवासित पीपल, पीपल का चूर्ण, सोंठ, सोंठ का चूर्ण, बिडलवण अथवा उद्भिज लवण का आहार करता है (खाता है) अथवा आहार करने वाले का अनुमोदन करता है।[२०]

बालमरण-पदं

बालमरण-पदम्

बालमरण-पद

९३. जे भिक्खू गिरिपडणाणि वा मरुपडणाणि वा भिगुपडणाणि वा तरुपडणाणि वा गिरिपक्खंदणाणि वा मरुपक्खंदणाणि वा भिगुपक्खंदणाणि वा तरुपक्खंदणाणि वा जलपवेसाणि वा जलणपवेसाणि वा जलपक्खंदणाणि वा जलणपक्खंदणाणि वा विसभक्खणाणि वा सत्थोपाडणाणि वा वलयमरणाणि वा वसट्टमरणाणि वा तब्भवमरणाणि वा अंतोसल्लमरणाणि वा वेहाणसमरणाणि वा गिद्धपट्ठाणि वा अण्णयराणि वा तहप्पगाराणि बालमरणाणि पसंसति, पसंसंतं वा सातिज्जति—

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घातियं।।

यो भिक्षुः गिरिपतनानि वा मरुपतनानि वा भृगुपतनानि वा तरुपतनानि वा गिरिप्रस्कन्दनानि वा मरुप्रस्कन्दनानि वा भृगुप्रस्कन्दनानि वा तरुप्रस्कन्दनानि वा जलप्रवेशानि वा ज्वलनप्रवेशानि वा जलप्रस्कन्दनानि वा ज्वलनप्रस्कन्दनानि वा विषभक्षणानि वा शस्त्रावपाटनानि वा वलयमरणानि वा वशार्त्तमरणानि वा तद्भवमरणानि वा अन्तःशल्यमरणानि वा वैहायसमरणानि वा गृध्रपृष्ठानि वा अन्यतराणि वा तथाप्रकाराणि बालमरणानि प्रशंसति, प्रशंसन्तं वा स्वदते।

तत्सेवमानः आपद्यते चातुर्मासिकं परिहारस्थानम् अनुद्घातिकम्।

९३. जो भिक्षु गिरिपतन, मरुपतन, भृगुपतन, तरुपतन, गिरिप्रस्कंदन, मरुप्रस्कंदन, भृगुप्रस्कंदन, तरुप्रस्कंदन, जलप्रवेश, ज्वलनप्रवेश, जलप्रस्कंदन, ज्वलनप्रस्कंदन, विषभक्षण, शस्त्रोत्पाटन, वलयमरण, वशार्तमरण, तद्भवमरण, अन्तःशल्यमरण, वैहायसमरण, गृद्धपृष्ठमरण अथवा अन्य उसी प्रकार के बालमरण की प्रशंसा करता है अथवा प्रशंसा करने वाले का अनुमोदन करता है।[२१]

—इनका आसेवन करने वाले भिक्षु को अनुद्घातिक चातुर्मासिक (गुरु चौमासी) प्रायश्चित्त प्राप्त होता है।

टिप्पण

१. सूत्र १-३

प्रस्तुत पात्र-पद में लोहे, तांबे, सोने, चांदी आदि पन्द्रह प्रकार के पात्रों का उल्लेख हुआ है। मुनि के लिए धातुनिर्मित एवं बहुमूल्य पात्रों का निर्माण एवं उपयोग निषिद्ध है। मुनि इन विविध प्रकार के महान् मूल्य वाले पात्रों को अप्रासुक एवं अनेषणीय मानता हुआ ग्रहण न करे।[1]

निशीथभाष्यकार के अनुसार महार्घ्य पात्रों को धारण करने वाला भिक्षु गणनातिरिक्त अथवा प्रमाणातिरिक्त पात्र भी धारण कर लेता है। वह भार, स्तेनभय आदि के कारण विहार नहीं करता। पात्र के लोभ से स्तेन आदि उसे परितापित करते हैं, मारते हैं, कलह करते हैं, जिससे आत्मविराधना एवं संयमविराधना होती है। चोरी के भय से वह पात्र का प्रतिलेखन नहीं करता। पात्र की चोरी होने पर उसके मनःसंताप पैदा होता है–इत्यादि अनेक दोषों की संभावना होने से बहुमूल्य पात्रों का उपयोग निषिद्ध है।[2]

आयारचूला एवं निसीहज्झयणं के उपर्युक्त पाठों से प्रतीत होता है कि उस समय अनेक प्रकार के तथा अनेक धातुओं, रत्नों आदि से पात्र बनाए जाते थे। निशीथचूर्णि के अनुसार विशिष्ट शिल्प-कौशल के द्वारा मुक्ता, प्रस्तर एवं वस्त्र को पुटिकाकार बनाकर पात्र निर्माण होता था।[3]

शब्द विमर्श

● **स्वर्णपात्र, जातरूपपात्र**–स्वर्ण एवं जातरूप पर्यायवाची नाम हैं। इनकी भिन्नता के विषय में सभी व्याख्याकार मौन हैं।

● **हारपुट पात्र**–लोहे आदि के ऐसे पात्र, जिन पर मोतियों के हार अथवा मौक्तिकलताओं से विशेष कलाकारी की जाती थी, सजाया जाता था, हारपुट पात्र कहलाते थे।[4]

● **अंकपात्र**–अंक रत्न की एक जाति है।[5] रत्नप्रकाश के अनुसार अंक का अर्थ है पन्ना, जो नीम की पत्ती के समान पीत आभा वाला हरे रंग का रत्न होता है।[6] उत्तरज्झयणाणि में शुक्ललेश्या के वर्ण के लिए शंख, अंक, मणि, कुंदपुष्प आदि की उपमा दी गई है।[7] इससे इसका वर्ण श्वेत मानना अधिक संगत प्रतीत होता है।

२. सूत्र ४-६

धातुघटित एवं बहुमूल्य पात्रों के समान ही धातुओं आदि के बन्धन से बांधे गए पात्रों का भी आयारचूला में निषेध किया गया है।[8] विविध प्रकार के बहुमूल्य बंधनों से बद्ध पात्रों को रखने में भी प्रायः वे ही दोष संभव हैं जो उनसे निर्मित पात्रों को रखने में आते हैं। अतः दोनों में समान प्रायश्चित्त प्राप्त होता है।

३. सूत्र ७

आयारचूला में विधान है कि भिक्षु अथवा भिक्षुणी पात्र-प्राप्ति की प्रतिज्ञा से आधे योजन (साधिक छह किमी.) की मर्यादा से आगे जाने का संकल्प न करे।[9]

प्रस्तुत सूत्र में उपर्युक्त विधि के अतिक्रमण का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है। जो भिक्षु पात्रैषणा के लिए इससे दूर जाता है, वह आज्ञाभंग, आत्म-संयम विराधना आदि दोषों को प्राप्त होता है।[10] सूत्र-पौरुषी एवं अर्थ-पौरुषी का भंग होने से सूत्रार्थ-नाश की भी संभावना रहती है।

४. सूत्र ८

आहार के समान वस्त्र, पात्र आदि के उत्पादन में भी भिक्षु को उद्‌गम एवं एषणा के दोषों का वर्जन करना होता है। अतः वह औद्देशिक, क्रीत, प्रामित्य, आहृत आदि दोषों से दुष्ट पात्र को अनेषणीय मानता हुआ ग्रहण न करे।[11] वह सामान्यतः स्वयं के प्रवासक्षेत्र तथा उसके पार्श्ववर्ती आधे योजन तक के क्षेत्र में पात्र-प्राप्ति का प्रयत्न करता है। प्रस्तुत सूत्र इस विधि का अपवाद है।

भिक्षु को पात्र की अत्यन्त अपेक्षा हो, स्वयं के क्षेत्र में एषणीय पात्र न हो, जहां पात्र मिलने की संभावना हो, वहां अशिव,

१. आचू. ६/१३
२. निभा. भा. ३ चू. पृ. १७३
३. वही, पृ. १७२–मुक्ता शैलमयं प (वा) सेप्पतो खलियं वा पुडियाकारं कज्जइ।
४. वही–हारपुडं णाम अयमाद्याः पात्रविशेषाः मौक्तिकलताभिरुप-शोभिता।
५. पाइय.
६. रत्न. (भू.) पृ. ४
७. उत्तर. ३४/९
८. आचू. ६/१४
९. वही ६/१
१०. निभा. गा. ३२८५, ३२८७ सचूर्णि।
११. आचू. ६/४

दुर्भिक्ष आदि आपदाओं के कारण जाना शक्य न हो अथवा वह स्वयं इन आपदाओं से ग्रस्त होने के कारण जाने में असमर्थ हो, मार्गवर्ती क्षेत्र इन उपद्रवों से युक्त हों, राजद्वेष अथवा म्लेच्छभय हो, मुनि ग्लान-वैयावृत्य में लगा हुआ होने से वहां जा न सके, वहां जाने से शैक्ष के अपहरण की संभावना हो, चारित्रदोष अथवा एषणा-दोषों कारण वहां मुनि स्वयं न जा सके, श्वापद आदि का भय हो तो भाष्यकार के अनुसार भिक्षु पश्चात्कृत या अणुव्रती श्रावक आदि से यतनापूर्वक कहकर पात्र मंगवा सकता है।[१]

यदि सभी भिक्षु गीतार्थ हों तो गृहस्थ द्वारा आनीत पात्र को ले लें। यदि सभी गीतार्थ न हों तो एक बार उसे प्रतिषेध कर दे और बाद में यतनापूर्वक ले ले।[२]

५. सूत्र ९,१०

धर्म के दो प्रकार प्रज्ञप्त है—श्रुतधर्म और चारित्रधर्म।[३] श्रुतधर्म के प्रकार हैं—सूत्र और अर्थ। यह पंचविध (वाचना आदि) स्वाध्याय रूप है।[४] अथवा आचारांग सूत्र से लेकर पूर्वगत पर्यन्त समस्त श्रुतधर्म है।

चारित्रधर्म के दो प्रकार हैं—अगार और अनगार।[५] समस्त मूलगुण एवं उत्तरगुण चारित्रधर्म है।[६]

आगमों में षड्जीवनिकाय, महाव्रत, प्रमाद-अप्रमाद आदि के बार-बार कथन की क्या अपेक्षा है? श्रमण जीवन वैराग्य-प्रधान होता है, उसमें ज्योतिष, गणित आदि के ज्ञान से क्या प्रयोजन? जहां जीवोत्पत्ति की संभावना न हो, वहां दो बार प्रतिलेखना अनपेक्षित है—इत्यादि कहना धर्म का अवर्णवाद है, आशातना है।[७]

हिंसा, मृषा आदि के समर्थक पापश्रुतों, चरक, परिव्राजक आदि के पंचाग्नि तप आदि व्रतों की प्रशंसा अथवा अठारह पापमय प्रवृत्तियों में से किसी का उपबृंहण करना अधर्म का वर्णवाद है।[८]

धर्म का अवर्णवाद एवं अधर्म का वर्णवाद करने से मिथ्यात्व का पोषण होता है, पापकारी प्रवृत्तियों की प्रेरणा एवं अनुमोदना होती हैं।[९] ये कर्म-बन्धन के हेतु हैं। अतः इन्हें प्रायश्चित्तार्ह माना गया है।

६. सूत्र ११-६४

प्रस्तुत आगम में पाद-परिकर्म से शीर्षद्वारिका पर्यन्त सम्पूर्ण आलापक अन्यत्र भी प्रज्ञप्त है। यहां इसका प्ररूपण गृहस्थ अथवा अन्यतीर्थिक के परिकर्म के संदर्भ में हुआ है। भिक्षु यदि गृहस्थ अथवा अन्यतीर्थिक का वैयावृत्य करता है तो मिथ्यात्व का स्थिरीकरण होता है। शैक्ष आदि के वहां जाने तथा परिचय-प्रसंग आदि से सम्बद्ध दोषों की संभावना रहती है। प्रवचन की अप्रभावना होती है। अतः भिक्षु को गृहस्थ तथा अन्यतीर्थिक का पादपरिकर्म, कायपरिकर्म आदि वैयावृत्य नहीं करना चाहिए।[१०]

७. सूत्र ६५,६६

पिशाच, स्तेन, दुष्ट हाथी आदि को देखकर भयभीत होना अथवा उनकी कल्पना मात्र से, अपने नकारात्मक चिन्तन के कारण भयभीत होना स्वयं को डराना है तथा इनकी उपस्थिति का कथन कर अथवा काल्पनिक वार्ता से दूसरे को डराना दूसरे को भयभीत करना है। भय मोहनीय कर्म की उत्तरप्रकृति है तथा अशुभ कर्मबन्धन का हेतु है। इससे व्यक्ति क्षिप्तचित्त हो सकता है। भय की उदीरणा से आत्मविराधना एवं संयमविराधना भी संभव है। अतः भिक्षु न स्वयं भयभीत हो और न दूसरे को भयभीत करे।[११]

८. सूत्र ६७,६८

विद्या, मंत्र आदि का प्रयोग करके अथवा किसी भी प्रकार की तपोलब्धि के द्वारा स्वयं को अथवा दूसरे को विस्मित करना भिक्षु के लिए वर्जनीय है। सद्भूत विद्या एवं मंत्र का प्रयोग करना दृप्तचित्तता का हेतु बन सकता है। इनसे आजीववृत्तिता नामक अनाचार को पोषण मिलता है। असद्भूत विधियों से दूसरे को विस्मित करने का प्रयत्न माया एवं मृषावाद है।[१२] अतः विस्मित होने एवं विस्मित करने की प्रवृत्ति को भिक्षु के लिए प्रायश्चित्तार्ह माना गया है।

९. सूत्र ६९,७०

जो द्रव्य, क्षेत्र आदि भाव जिस रूप में नियत है, उससे भिन्न रूप में चिन्तन करना अथवा क्रिया से विपरीत करना स्वयं का विपर्यास है तथा उसे विपरीत अथवा भिन्न रूप में प्रतिपादित करना दूसरे को विपर्यस्त बनाना है।[१३] जैसे कोई व्यक्ति दाड़िम को नहीं जानता, वह दाड़िम के विषय में पूछता है तो उसे आम्रातक बता देना अथवा स्वयं को रोगी अथवा तपस्वी न होने पर भी रोगी अथवा तपस्वी बताना आदि। भाष्यकार ने विपर्यास के द्रव्य, क्षेत्र,

---

१. निभा. गा. ३२९६ सचूर्णि।
२. वही, गा. ३२९७ सचूर्णि।
३. वही, गा. ३२९९—दुविहो य होइ धम्मो, सुयधम्मो खलु चरित्तधम्मो य।
४. वही, गा. ३२९९,३३००
५. वही, गा. ३३००
६. वही, भा. ३ चू. पृ. १७७—एक्केक्को दुविहो मूलुत्तरगुणेसु।
७. वही, गा. ३२०७, ३२०८ सचूर्णि
८. वही, भा. ३ चू.पृ. १७९—(सू. १० की चूर्णि)
९. वही, गा. ३३११ सचूर्णि।
१०. वही, गा. ३३१२ सचूर्णि।
११. वही, गा. ३३१७-३३२० सचूर्णि
१२. विस्तार हेतु द्रष्टव्य—वही, गा. ३३३७-३३४१
१३. वही, गा. ३३४५

काल और भाव–चार भेद किए हैं।[1]

स्वयं अथवा दूसरे को विपर्यस्त करने से बादरमृषावाद तथा माया का दोष लगता है, यथार्थ का अपलाप होता है तथा दूसरे को यथार्थ का ज्ञान होने पर उसके साथ कलह की संभावना रहती है।[2] अतः ये दोनों प्रवृत्तियां प्रायश्चित्तार्ह हैं।

१०. सूत्र ७१

मुखवर्ण का शाब्दिक अर्थ है–प्रशंसा करना, श्लाघा करना।[3] चूर्णिकार के अनुसार मुख का अर्थ है प्रवेश।[4] निक्षेप-विधि से व्याख्या करें तो भावमुख का अर्थ है तीन सौ तरेसठ मतवाद। उस भावमुख के वर्ण (श्लाघा) को ग्रहण करना अर्थात् उनकी प्रशंसा करना मुखवर्ण है।[5]

कुतीर्थ, कुशास्त्र, कुधर्म, कुव्रत, कुदान और उन्मार्ग के भक्तों के समक्ष उनके मत की प्रशंसा करना मुखवर्ण है।[6] जो जिसका भक्त है उसके समक्ष अनुकूल बोलने से आज्ञाभंग आदि दोष आते हैं, मिथ्यात्व का स्थिरीकरण एवं सावद्य प्रवृत्तियों की अनुमोदना होती है तथा प्रवचन की अपभ्राजना होती है। लोग कहते हैं– ये चाटुकार हैं।[7] अतः कुतीर्थिक आदि की प्रशंसा करने वाले भिक्षु को गुरु चातुर्मासिक प्रायश्चित्त प्राप्त होता है।

११. सूत्र ७२

आयारचूला के अनुसार यदि संयम-निर्वाह के योग्य अन्य जनपद हों तो साधु-साध्वियों को अराजक, गणराजक, यौवराज्य, वैराज्य एवं विरुद्ध राज्य में विहार के संकल्प से नहीं जाना चाहिए।[8] प्रस्तुत सूत्र में वैराज्य एवं विरुद्धराज्य में जाने वाले भिक्षु को प्रायश्चित्तार्ह माना गया है।

जिन राज्यों में पूर्व पुरुषों से परम्परागत वैर चल रहा हो, वर्तमान शासकों में वैरभाव हो या स्वच्छन्दता के कारण अन्य राजाओं के साथ वैरोत्पादन में अनुरक्ति हो, जिसके ईश्वर, श्रेष्ठी आदि अन्य अधिकारीगण राजा से विरक्त हो गए हों अथवा राजा के कालधर्म को प्राप्त हो जाने के कारण जो राज्य राजाविहीन हो गए हों, वे वैराज्य कहलाते हैं।[9]

जहां परस्पर गमनागमन विरुद्ध हो, वे परस्पर विरुद्ध राज्य कहलाते हैं।[10] इसी प्रकार राजाविहीन, युवराज आदि से रहित राज्यों में अव्यवस्था एवं अराजकता रहती है। अतः इन राज्यों तथा विरुद्ध राज्यों में जाने से भिक्षु के प्रति चोर, जासूस आदि होने की शंका संभव है।[11] सूत्रकार ने ऐसे राज्यों में सद्यःगमन–वर्तमान में गमन अथवा बार-बार गमनागमन करने वाले भिक्षु को प्रायश्चित्तार्ह कहा है।

भाष्यकार के अनुसार जिन राज्यों में परस्पर व्यापारियों का गमनागमन विरुद्ध न हो अथवा जहां किसी अन्य आपवादिक परिस्थिति में वैराज्य अथवा विरुद्ध राज्य में अनिवार्यतः जाना हो तो विधिपूर्वक गमन अथवा आगमन किया जा सकता है।[12]

कप्पो (बृहत्कल्पसूत्र) में वैराज्य एवं विरुद्धराज्य में सद्यः गमन, सद्यः आगमन एवं सद्यः गमनागमन का निषेध करते हुए बताया गया है कि वैराज्य एवं विरुद्धराज्य में गमनागमन करने वाला निर्ग्रन्थ अथवा निर्ग्रन्थी तीर्थंकर एवं राजा की आज्ञा का अतिक्रमण करता है अतः उसे गुरुचातुर्मासिक प्रायश्चित्त प्राप्त होता है।[13]

तुलना हेतु द्रष्टव्य–कप्पो १/३७ का टिप्पण।

१२. सूत्र ७३,७४

रात्रिभोजन प्राणातिपातविरमण मृषावादविरमण आदि मूलगुणों का विराधक है। अतः प्रत्येक निर्ग्रन्थ के लिए रात्रिभोजन विरमण व्रत पांच महाव्रतों के समान अनिवार्य व्रत है। यह उसकी सतत तपस्या एवं संयमानुकूल वृत्ति है।[14] रात्रिभोजन करने वाला किस प्रकार पांचों महाव्रतों एवं पांचों समितियों की विराधना करता है तथा संयमविराधना के साथ-साथ आत्मविराधना भी करता है इसका भाष्य एवं चूर्णि में सुन्दर वर्णन उपलब्ध होता है।[15] इस प्रकार अनेक दोषों से दूषित रात्रिभोजन की श्लाघा करना[16] अथवा दिवा-भोजन को अबलकर (पोषक तत्त्वों से रहित), चक्षुहत (दृष्टि-दोष से दूषित) आदि कहते हुए दोषपूर्ण बताना, उसका अवर्णवाद करना शंका, मिथ्याप्ररूपणा आदि अन्य दोषों का कारण बनता है।[17] रात्रिभोजन की प्रशंसा एवं दिवाभोजन की निन्दा–दोनों प्रकारान्तर से रात्रिभोजन की अनुमोदना है। अतः ऐसा आचरण करने वाले मुनि को गुरु चातुर्मासिक प्रायश्चित्त प्राप्त होता है।

---

१. निभा. गा. ३३४३, ३३४४, ३३४६-३३४९
२. वही, गा. ३३५१ सचूर्णि।
३. पाइय.
४. निभा. भा. ३ चू. पृ. १९५–मुहं ति पवेसो।
५. वही–तिन्निसया-तिसट्ठा पावा दुरासया भावमुहं। तस्स भावमुहस्स वन्नं अणतीति वन्नं आदत्ते–गृह्णातीत्यर्थः।
६. वही, गा. ३३५३, ३३५४ सचूर्णि।
७. वही, भा. चू. पृ. १९५
८. आचू. ३/१०
९. निभा. गा. ३३६० सचूर्णि
१०. वही, भा. ३ चू. पृ. १९६–जेसिं राईणं परोप्परं गमणागमणविरुद्धं, तं वेरज्जं विरुद्धरज्जे।
११. वही, पृ. १९८
१२. वही, गा. ३३८३-३३९० सचूर्णि।
१३. कप्पो. १/३७
१४. दसवे. ६/२२
१५. निभा. गा. ५६३८-५६४३ सचूर्णि
१६. वही, गा. ३३९५
१७. वही, गा. ३३९२, ३३९४

१३. सूत्र ७५-७८

प्रस्तुत आलापक में दिन एवं रात्रि में आहार के ग्रहण एवं भोग विषयक चतुर्भंगी निर्दिष्ट है—

१. दिन में ग्रहण, दिन में भोग—दिन में गृहीत अशन, पान आदि को परिवासित रखकर दूसरे दिन खाना।[1]

२. दिन में ग्रहण, रात्रि में भोग—शाम को सूर्यास्त से पूर्व अपराह्न संखड़ी आदि में गृहीत अशन, पान आदि को रात्रि में (सूर्यास्त के बाद) खाना।[2]

३. रात्रि में ग्रहण, दिन में भोग—विचारभूमि आदि के लिए निर्गत भिक्षु द्वारा सूर्योदय से पूर्व नैवेद्य, पूजा आदि में उपहृत द्रव्यों आदि का ग्रहण एवं सूर्योदय के पश्चात् उसका भोग।[3]

४. रात्रि में ग्रहण, रात्रि में भोग—बल, वर्ण आदि की वृद्धि के लिए अथवा ज्ञातिजनों के द्वारा साग्रह निमंत्रण पर ज्ञातिकुलों आदि में जाकर रात्रि में अशनादि का ग्रहण एवं रात्रि में ही भोग।[4]

इनमें प्रथम भंग में परिवासित दोष एवं रात्रि में संचय सम्बन्धी दोष होते हैं। शेष तीनों भंगों में एषणा आदि से संबद्ध अनेक दोष, संयमविराधना एवं आत्मविराधना संभव है। चारों ही भंगों में रात्रिभोजन व्रत का अतिक्रमण होता है। अतः ये रात्रिभोजन के समान ही प्रायश्चित्तार्ह हैं।[5]

तुलना हेतु द्रष्टव्य भगवई ७/२४ का भाष्य।

१४. सूत्र ७९,८०

परिवासित अशन, पान आदि का अल्पतम भोग भी रात्रिभोजन विरमण व्रत का अतिचार है। इसमें संचय संबंधी दोषों के साथ आत्मविराधना एवं संयमविराधना की भी संभावना रहती है।[6] अतः अत्यन्त आगाढ़ कारण के बिना अशन, पान आदि को परिवासित रखना तथा परिवासित अशन का तिलतुष प्रमाण एवं पानक आदि का बिन्दु प्रमाण भी भोग करना निषिद्ध है।

कप्पो (बृहत्कल्प सूत्र) में परिवासित आहार को त्वक्प्रमाण, भूतिप्रमाण एवं बिन्दुप्रमाण भी खाने का निषेध किया गया है। वहां भी आगाढ़ रोग एवं आतंक का अपवाद प्रज्ञप्त है।[7] प्रस्तुत सूत्रद्वयी में अनागाढ़ कारण में अशन, पान को परिवासित रखने और उसे खाने का गुरु चातुर्मासिक प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है।

तुलना हेतु द्रष्टव्य—कप्पो ५/३७ का टिप्पण।

शब्द विमर्श

१. **अनागाढ़**—'आगाढ' शब्द की व्याख्या चार निक्षेपों से की जा सकती है—

● **द्रव्यागाढ**—दुर्लभ द्रव्य, यथा—शतपाक, सहस्रपाक तैल अथवा घी आदि।

● **क्षेत्रागाढ**—अटवी-प्रपन्न अवस्था में होने वाला असंस्तरण (अनिर्वाह) आदि।

● **कालागाढ**—दुर्भिक्ष अथवा अवमकाल आदि।

● **भावागाढ**—इसके दो प्रकार हैं—ग्लानागाढ और परिज्ञागाढ। आगाढ रोग अथवा आतंक जिसमें तत्काल चिकित्सा एवं पथ्य आवश्यक हो, वह ग्लानागाढ़ तथा अनशनस्थ भिक्षु की असमाधि अवस्था परिज्ञाभावागाढ है।[8]

प्रस्तुत प्रसंग में 'अनागाढ ग्लान्य' ग्राह्य है। वह रोग, जिसमें दोष एवं गुण के अल्पबहुत्व के आधार पर चिकित्सा आदि में क्रम किया जा सके, जो कालक्षेप को सहन कर सके, वह अनागाढ रोग होता है।[9]

२. **त्वक्प्रमाण**—तिल-तुष का त्रिभागमात्र।[10]

३. **भूतिप्रमाण**—संदशक (अंगुष्ठ एवं प्रदेशिनी अंगुली को मिलाने पर बनने वाली चिमटी) में आए उतना भस्म आदि द्रव्य।[11]

४. **बिन्दुप्रमाण**—जल आदि द्रव पदार्थों की एक बूंद।[12]

१५. सूत्र ८१

जहां भोज का आयोजन होता है, उस जनाकीर्ण स्थान में गोचराग्र के लिए जाने से संयमविराधना, आत्मविराधना, भाजनविराधना आदि अनेक दोष होते हैं, स्त्रियों को प्रमत्त एवं विह्वल अवस्था में देखने से स्मृतिजन्य एवं कुतूहलजन्य दोष भी संभव हैं।[13] प्रस्तुत सूत्र में मांसादिक एवं मत्स्यादिक भोज का उल्लेख है, उनमें जाने से उड्डाह एवं प्रवचन की अप्रभावना होती है। अतः विविध प्रकार के भोज के आयोजन में भोजन के समय वहां जाना अथवा उस आशा से अन्यत्र रात्रि बिताना मुनि के लिए निषिद्ध है। इससे आज्ञाभंग, अनवस्था आदि अनेक दोष संभव हैं।[14]

---

१. निभा. भा. ३ चू. पृ. २०५—दिया घेत्तुं णिसि संवासेतुं तं बितियदिणे भुंजमाणस्स पढमभंगो भवति।
२. वही, पृ. २०७—अवरण्हसंखडीए दिया गहियं रायो भुत्तं बितियभंगो।
३. वही—अणुदिते सूरिये बाहिं वियारभूमिं गयस्स देव-उवहार-बलि-णिमंत्रणे रातो गहिते दिया भुत्ते ततियभंगो।
४. वही—सण्णायगकुलगताणं सण्णायगवयणेण अप्पणो बलत्थताते रातो घेत्तुं रातो भुंजंताण चरिमभंगो।
५. (क) वही, गा. ३३९७—चउभंगो रातिभोयणे।
(ख) वही, भा. ३ चू. पृ. २०५,२०६
६. वही, गा. ३४७४, ३४७५ सचूर्णि।
७. कप्पो ५।३७
८. निभा. गा. ३४७३ सचूर्णि।
९. वही, भा. ३ चू. पृ. ११८—आगाढे खिप्पं करणं, अणागाढे कमकरणं।
१०. वही, पृ. १५७—तये त्ति तिलतुसतिभागमेत्तं।
११. वही—भूतिरिति यत् प्रमाणमंगुष्ठ-प्रदेशिनीसंदंसकेन भस्म गृह्यते।
१२. वही—पानके बिन्दुमात्रमपि।
१३. वही, गा. ३४८६ सचूर्णि।
१४. वही, गा. ३४८०

शब्द विमर्श

१. मंसादीयं—जिस भोज में सर्वप्रथम मांस परोसा जाए, मांस लाने के लिए जाते हुए अथवा मांस लाने के बाद जो भोज किया जाता है, वह मांसादिक भोज कहलाता है।[1]

२. मच्छादीयं—जिस भोज में सर्वप्रथम मत्स्य परोसा जाए, मत्स्य लेने जाते समय अथवा मछली पकड़ कर आने के बाद दिया जाने वाला भोज मत्स्यादिक भोज कहलाता है।[2]

३. मंसखलं, मच्छखलं—वे स्थान, जहां मांस और मत्स्य सुखाए जाएं, क्रमशः मसंखल और मच्छखल कहलाते हैं।[3]

४. आहेणं, पहेणं—जो अन्य घर से लाया जाए, वह भोजन 'आहेण' तथा अन्य घर में ले जाया जाए, वह भोजन 'पहेणं' कहलाता है। एक अन्य व्याख्या के अनुसार वधूगृह से वरगृह में ले जाया जाने वाला 'आहेण' और वरगृह से वधूगृह में ले जाया जाने वाला 'पहेणग' होता है। अथवा वर और वधू के घर से एक दूसरे के घर पर ले जाया जाने वाला सारा 'आहेणक' और अन्यतः ले जाया जाने वाला 'पहेणक' होता है।[4]

५. संमेलं—विवाह-भक्त (भोज) अथवा गोष्ठीभक्त (गोठ) 'सम्मेल' कहलाता है।[5]

६. हिंगोलं—मृतक के उपलक्ष्य में किया जाने वाला श्राद्धविशेष 'हिंगोल' कहलाता है।[6]

१६. सूत्र ८२

निवेदनपिण्ड का अर्थ है—मनौतिपूर्वक अथवा मनौति के बिना पूर्णभद्र, मणिभद्र आदि, अरिहंतपाक्षिक देवों—यक्ष, व्यन्तरदेव आदि के लिए उपहृत अशन, पान आदि।[7] इसे ग्रहण करने पर स्थापित, मिश्रजात आदि दोष संभव हैं।[8] अतः प्रस्तुत सूत्र में निवेदनापिण्ड—नैवेद्य द्रव्य खाने वाले भिक्षु के लिए प्रायश्चित्त का विधान किया गया है। भाष्यकार ने प्रस्तुत संदर्भ में कुछ अपवादों एवं उनमें नैवेद्य पिण्ड की ग्रहण-विधि का निर्देश दिया है।[9]

१७. सूत्र ८३,८४

यथाच्छन्द का अर्थ है—अपने अभिप्राय के अनुसार प्ररूपणा करने वाला।[10] वह सैद्धान्तिक दृष्टि से, चारित्रिक दृष्टि से एवं परलोक आदि के विषय में अनेक सूत्रविरुद्ध प्ररूपणाएं करता है।[11]

यथाच्छन्द की प्रशंसा करने तथा उसे वन्दना, नमस्कार करने से मिथ्यात्व का स्थिरीकरण होता है। शैक्ष की मिथ्या अवधारणाओं को पोषण मिलता है। फलतः शैक्ष एवं अभिनवधर्मा श्रमणोपासक उन्मार्ग में प्रस्थित हो सकते हैं। अतः उसकी प्रशंसा करना—'उत्सूत्र होने पर भी इसकी प्ररूपणा यौक्तिक है'—इत्यादि कहना, उसे वन्दना करना, बार-बार उसका संसर्ग करना प्रतिषिद्ध है। ऐसा करने वाले भिक्षु को गुरुचातुर्मासिक प्रायश्चित्त प्राप्त होता है।[12]

१८. सूत्र ८५-८७

अनल का अर्थ है—अयोग्य।[13] वय, जाति, वेद (काम-वासना की उत्कटता), शारीरिक विकलांगता, अस्वास्थ्य आदि अनेक कारणों से प्रव्रज्या की अर्हता पर प्रश्नचिह्न लग जाता है। भाष्यकार के अनुसार अठारह प्रकार के पुरुष, बीस प्रकार की स्त्रियां तथा दस प्रकार के नपुंसक प्रव्रज्या के योग्य नहीं होते।[14] जहां किसी आपवादिक परिस्थिति में उन्हें दीक्षित करना अनिवार्य हो, वहां उन्हें उपस्थापना (विभागपूर्वक महाव्रतों का प्रशिक्षण एवं प्रत्याख्यान) नहीं दी जाती, ताकि कार्य-परिसमाप्ति पर उनका विवेक किया जा सके।[15] भाष्य एवं चूर्णि के अनुसार उन्हें न मुंडित किया जाता, न शिक्षित एवं उपस्थापित किया जाता और न उनके साथ संभोज एवं संवास किया जाता।[16]

प्रस्तुत आलापक के अन्तिम सूत्र में अयोग्य से वैयावृत्य करवाने वाले के लिए प्रायश्चित्त का विधान किया गया है। प्रश्न हो सकता है कि दीक्षा एवं उपस्थापना का निषेध करने के बाद इस सूत्र का क्या प्रयोजन? चूर्णिकार कहते हैं—प्रव्रज्या और उपस्थापना के योग्य व्यक्ति भी वैयावृत्य के अयोग्य हो सकते हैं। जिसने पिण्डैषणा का सूत्रतः एवं अर्थतः ज्ञान नहीं किया, जो वैयावृत्य के प्रति श्रद्धावान नहीं अथवा जो अकल्प्य का परिहार (वर्जन) नहीं करता, वह भिक्षु वैयावृत्य के लिए अयोग्य माना गया है।[17] अतः अयोग्य से वैयावृत्य करवाने वाले के लिए पृथक् प्रायश्चित्त-सूत्र का निर्देश प्राप्त है।

---

१. निभा. भा. ३ चू. पृ. २२२,२२३
२. वही
३. वही, पृ. २२२—मंसखलं जत्थ मंसाणि सोसिज्जंति एवं गच्छखलं पि।
४. वही, पृ. २२२,२२३
५. वही, पृ. २२३
६. वही, पृ. २२३—जं मतभत्तं करडुगादियं तं हिंगोलं।
७. वही, पृ. २२४—उवाइयं अणोवाइयं वा जं पुण्णभद्द-माणिभद्द-सव्वाणजक्ख-महुंडिमादियाण निवेदिज्जति, सो निवेयणापिंडो।
८. वही, पृ. २२५—एत्थ ओसक्कण-मीसजाय-ठवियदोसा।
९. वही, गा. ३४९१ सचूर्णि।
१०. वही, पृ. २२५—छंदोऽभिप्रायः, यथा स्वाभिप्रेतं तथा प्रज्ञापयन् अहाछंदो भवति।
११. विस्तार हेतु द्रष्टव्य वही, गा. ३४९२-३४९९
१२. वही, गा. ३५००, ३५०१
१३. वही, भा. ३ चू. पृ. २२८—न अलं अनलं अपर्याप्तः—अयोग्य इत्यर्थः।
१४. वही, गा. ३५०५-३५०८ (विस्तार हेतु द्रष्टव्य ३५०९-३७७१)
१५. वही, गा. ३६०८—कए तु कज्जे विगिंचणता।
१६. वही भा. ३ चू. पृ. २७८—जति अणलो पव्वावितो 'सिअ' त्ति अजाणया जाणया वा कारणेण, सेसं पणगं णायराविज्जति। तं च इमं—मुंडावण सिक्खावण उवट्ठावणा संभुंजण संवासे त्ति।
१७. वही, गा. ३७७३ व उसकी चूर्णि (सम्पूर्ण)

१९. सूत्र ८८-९१

साध्वियां सामान्यतः सचेल (सवस्त्र) ही होती हैं। कदाचित् उपधि के उपघात अथवा उपधि के अपहरण के कारण अल्पचेल भी हो सकती है। अकेला साधु, चाहे साध्वियां सचेल हों या अचेल (अल्पचेल), उनके साथ न रहे क्योंकि साधु-साध्वियों के एकत्र संवास से शंका, कांक्षा, चित्तक्षोभ, ब्रह्मव्रत की अगुप्ति आदि अनेक दोषों की संभावना होती है।[१]

ठाणं में सुदीर्घ अटवी, पृथक् उपाश्रय का अभाव, चोर एवं दुष्ट युवकों से साध्वियों की सुरक्षा आदि पांच कारणों से साधु-साध्वियों के एकत्र-प्रवास को अनुज्ञात माना गया है।[२] इसी प्रकार कोई साधु क्षिप्तचित्त, दृप्तचित्त, उन्मादग्रस्त या यक्षाविष्ट हो जाए और अन्य कोई साधु उसे संभालने वाला न हो तो वह अचेल अवस्था में भी सचेल साध्वियों के साथ रह सकता है।[३] आपवादिक परिस्थितियों में साध्वियों ने किसी पुरुष को दीक्षित किया, यदि कोई अन्य निर्ग्रन्थ वहां नहीं है तो वह उन्हीं के पास रहेगा। इस प्रकार ठाणं के दोनों सूत्र निशीथसूत्रोक्त सचेल-अचेल विषयक चतुर्भंगी के अपवाद हैं।

प्रस्तुत चतुर्भंगी की व्याख्या का एक नय यह भी हो सकता है कि सचेल भिक्षु को भिन्न सामाचारी वाले सचेल भिक्षुओं तथा अचेल-जिनकल्पिक भिक्षु के साथ रहना नहीं कल्पता, उसी प्रकार अचेल-जिनकल्पिक भिक्षु को सचेल-स्थविरकल्पिक भिक्षुओं तथा अचेल जिनकल्पिक भिक्षु को अन्य जिनकल्पिक भिक्षुओं के साथ रहना नहीं कल्पता, इस प्रकार यह सचेल-अचेल विषयक चतुर्भंगी केवल भिक्षुओं के सन्दर्भ में भी सम्भव है।[४]

२०. सूत्र ९२

प्रस्तुत उद्देशक के सूत्र ७९,८० में आगाढ़ कारण के बिना अशन, पान आदि को परिवासित रखने तथा उसका स्वल्पमात्र भी उपभोग करने का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है। प्रश्न होता है कि आहार को परिवासित रखने में दोष है तो क्या नमक, सोंठ आदि अनाहार द्रव्यों को परिवासित रखा जा सकता है?[५] आचार्य कहते हैं-अनाहार द्रव्यों को परिवासित रखने से भी सन्निधि-संचय सम्बन्धी दोषों की संभावना रहती है। उसमें भी आत्मविराधना एवं संयमविराधना संभव है अतः सामान्यतः पीपल, पीपल का चूर्ण, बिडलवण आदि अनाहार द्रव्यों को भी परिवासित रखना विहित नहीं।[६] अशन, पान आदि चतुर्विध द्रव्यों को बासी रखकर खाने से जिस प्रकार रात्रिभोजन-विरमण व्रत की विराधना होती है, लघु चातुर्मासिक प्रायश्चित्त प्राप्त होता है उसी प्रकार अनाहार द्रव्यों को परिवासित रखकर खाने से भी रात्रिभोजनविरमण व्रत की विराधना एवं गुरुचातुर्मासिक प्रायश्चित्त प्राप्त होता है।

शब्द विमर्श

१. बिलं वा लोणं-विडलवण (गोमूत्र में पकाया हुआ नमक)

२. उब्भियं वा लोण-उद्भिजलवण (सामुद्रिक लवण)।

(विस्तार हेतु द्रष्टव्य दसवे. ६/१७ का टिप्पण)

२१. सूत्र ९३

मरण के दो प्रकार हैं-बालमरण और पंडितमरण।[७] जो चारित्र से हीन होता है, वह विषयों, ऋद्धि, रस आदि में आसक्त होकर बालमरण को प्राप्त करता है तथा दुर्गति में जाता है। प्रस्तुत सूत्र में बीस प्रकार के बालमरणों का नामोल्लेख हुआ है। पर्वत, मरु, भृगु, तरु, जल और अग्नि में पतन या प्रस्कन्दन, विषभक्षण, शस्त्रोत्पाटन, फांसी लेकर, गला घोंटकर आदि अप्राकृतिक विधियों से प्राण-त्याग करना बालमरण कहलाता है।

यदि मुनि बालमरण की प्रशंसा करता है तो मिथ्यात्व से ग्रस्त लोग सोचते हैं-ये मुनि इन गिरिपतन, तरुपतन आदि से मृत्यु की प्रशंसा करते है, इसका अभिप्राय है, ये करणीय हैं। बालमरण दोष नहीं है।' इस प्रकार उनके मिथ्यात्व का स्थिरीकरण होता है। परीषह से पराजित शैक्ष बालमरण की ओर उत्प्रेरित होता है। तथा बालमरण से मृत्यु को प्राप्त होने वाले व्यक्ति जिन प्राणियों के ऊपर पड़ते हैं, उनके प्राणातिपात का अनुमोदन होता है।[८] अतः बालमरण की प्रशंसा करने वाले भिक्षु को गुरु चातुर्मासिक प्रायश्चित्त प्राप्त होता है।

शब्द विमर्श

१. गिरि, मरु और भृगु-जिस पर्वत पर चढ़ने पर नीचे प्रपात स्थान दिखाई दे वह गिरि तथा जहां से प्रपात-स्थान दिखाई न दे वह मरु कहलाता है।[९] नदी, तटी, विद्युत्खात-प्रदेश अथवा कूप भृगु कहलाता है।[१०]

२. पतन और प्रस्कन्दन-स्थान पर स्थित व्यक्ति का ऊपर उछल कर नीचे गिरना पतन या प्रपतन तथा कुछ दूर दौड़कर गिरना प्रस्कन्दन कहलाता है।[११] पीपल, वट आदि वृक्षों की शाखाओं पर

---

१. निभा. गा. ३७७७, ३७७८, ३७८०
२. ठाणं ५/१०७
३. वही ५/१०८
४. निशी. (सं. व्या.) पृ. २७७, २७८ (सू. ८७-९० की चूर्णि)
५. निभा. ३ चू. पृ. २८९
६. वही, गा. ३७९५, ३७९६ सचूर्णि।
७. भग. २/४९-दुविहे मरणे पण्णत्ते-बालमरणे य पंडितमरणे य।
८. निभा. गा. ३८०७-सचूर्णि
९. वही, भा. ३ चू. पृ. २९१-जत्थ पव्वए आरूढेहिं अहो पवाय-ठाणं दीसइ सो गिरी भण्णइ। अदिस्समाणे मरू।
१०. वही-भिगू णदितडी आदिसहातो विज्जुक्खायं, अगडो वा भन्नइ।
११. वही, गा. ३८०३-पडणं तु उप्पतित्ता, पक्खंदण धाविऊण जं पडति।

हाथों से पकड़ कर लटकते हुए गिरना अथवा वृक्ष पर समपाद स्थित होकर बिना उछले गिरना प्रपतन कहलाता है।[1] वृक्ष पर स्थित व्यक्ति का उछल कर गिरना अथवा हाथों के सहारे लटककर झूलते हुए गिरना प्रस्कन्दन कहलाता है।[2]

३. वलयमरण--संयमयोगों से भ्रष्ट होकर, हीनसत्त्व व्यक्ति का अकाम मरण अथवा गला घोंटकर मरना वलयमरण है।[3]

४. वशार्त्तमरण--इन्द्रिय विषयों के वशीभूत होकर अथवा राग-द्वेष के वशीभूत होकर मरना वशार्त्त मरण है।[4] विजयोदया में वशार्त्त मरण के चार भेद बताए गए हैं--इन्द्रियवशार्त्त, वेदना-वशार्त्त, कषायवशार्त्त और नोकषायवशार्त्त।[5]

५. तद्‌भवमरण--वर्तमान में जिस भव (मनुष्य अथवा तिर्यंच भव) में है, उसी भव के आयुष्य के हेतुओं में वर्त्तन करते हुए पुनः उसी भव में उत्पन्न होने के इच्छुक प्राणी का उसी आयुष्य का बन्धन कर मरना तद्‌भवमरण है।[6]

६. अन्तःशल्यमरण--बाण आदि की नोक के शरीर में रह जाने से होने वाला मरण द्रव्य अन्तःशल्यमरण तथा मूल या उत्तर गुणों से संबद्ध अतिचारों का प्रतिसेवन कर आलोचना किए बिना अथवा मायापूर्वक आलोचना करके मरना भाव अन्तःशल्यमरण है।[7]

७. वैहायसमरण--रस्सी आदि से फंदा डालकर मरना वैहायसमरण है।[8]

८. गृद्धपृष्ठमरण--गाय, हाथी आदि के कलेवर में प्रविष्ट होकर गृद्ध (गीध पक्षी या मांस-गृद्ध शृगाल आदि प्राणी) के द्वारा स्वयं का भक्षण करवाकर प्राणत्याग करना गृद्धपृष्ठ मरण है।[9]

---

१. निभा. गा. ३८०४--ओलंबिऊण समपाइतं च तरुणो उ पवडणं होति।
२. वही--पक्खंदणुप्पतित्ता, अंदोलेऊण वा पडणं।
३. वही, भा. ३ चू. पृ. २९१--संजमजोगेसु वलंतो हीणसत्ताए जो अकामगो मरइ एयं वलयमरणं, गलं वा अप्पणो वलेइ।
४. वही--इंदियविसएसु रागदोसवसट्टो मरंतो वसट्टमरणं मरइ।
५. उत्तर. पृ. १२९--(अध्ययन ५ का आमुख--विजयो. वृ. पृ. ८९,९०)
६. निभा. भा. ३ चू. पृ. २९२--जम्मि भवे वट्टइ तस्सेव भवस्स हेउसु वट्टमाणो आउयं बंधित्ता पुणो तत्थोववज्जिउकामस्स जं मरणं, तं तब्भवमरणं।
७. वही, पृ. २९२--दव्वे णारायादिणा सल्लियस्स मरणं, भावे मूलुत्तराइयारे पडिसेवित्ता गुरुणो अणालोइत्ता पलिउंचमाणस्स वा भावसल्लेण सल्लियस्स एरिसस्स अविगडभावस्स अंतोसल्लमरणं।
८. वही--वेहाणसं रज्जुए अप्पाणं उल्लंबेइ।
९. वही--गिद्धिहिं पुट्ठं गिद्धपुट्ठं गृद्धैर्भक्षितव्यमित्यर्थः, तं गोमाइकलेवरे अत्ताणं पक्खिवित्ता गिद्धेहिं अप्पाणं भक्खावेइ।

बारसमो उद्देसो

बारहवां उद्देशक

आमुख

प्रस्तुत उद्देशक का केन्द्रीय तत्त्व है—अहिंसा एवं अपरिग्रह। इस संदर्भ में त्रस प्राणियों को बांधने एवं बन्धनमुक्त करने, परित्तकाय-संयुक्त आहार करने, सलोम चर्म तथा गृहस्थ के वस्त्र से आच्छन्न पीठ आदि पर बैठने, गृहस्थ के वस्त्र, पात्र आदि का उपयोग, पुरःकर्मदोष तथा रूपासक्ति एवं चक्षुरिन्द्रिय के आकर्षण से किए जाने वाले कार्यों के प्रायश्चित्त का प्रज्ञापन किया गया है।

अहिंसा महाव्रत की सम्यक् परिपालना के लिए निर्ग्रन्थ नवकोटि विशुद्ध भिक्षा के द्वारा अपना जीवनयापन करता है। वह आहार-प्राप्ति के लिए न स्वयं आरम्भ-समारम्भ करता है, न करवाता है और न अन्य (करने वाले) का अनुमोदन करता है। वह गृहस्थों से यथाकृत आहार को माधुकरी वृत्ति से ग्रहण कर अस्वाद वृत्ति के साथ उसका भोग करता है। पानभोजन के प्रसंग में सूत्रकार का निर्देश है कि भिक्षु चार प्रकार के अतिक्रमण से बचने का प्रयास करे—क्षेत्रातिक्रमण, कालातिक्रमण, मार्गातिक्रमण एवं प्रमाणातिक्रमण।[1] प्रस्तुत उद्देशक में कालातिक्रमण एवं मार्गातिक्रमण पानभोजन का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है। निशीथभाष्य एवं उसकी चूर्णि में इनसे होने वाले अनेक दोषों का वर्णन करते हुए एक प्रश्न उपस्थित किया गया है—

प्रश्न—आहार करना दोष का मुख्य हेतु है। अतः श्रेयस्कर है कि सतत आहार ही न किया जाए।

आचार्य—कार्य के दो प्रकार हैं—साध्य और असाध्य। उचित साधन के द्वारा साध्य कार्य को करने वाला सफल होता है और असाध्य कार्य को सिद्ध करने वाला मात्र क्लेश को प्राप्त करता है। मोक्ष का साधन है—ज्ञान, दर्शन और चारित्र। उनके लिए शरीर अपेक्षित है और देहधारण के लिए आहार। अतः साध्य-प्राप्ति के लिए शास्त्रोक्त विधि से आहार का ग्रहण एवं धारण करना अनुज्ञात है।[2]

गच्छवासी अपेक्षानुसार पहली प्रहर में गृहीत अशन, पान आदि को दूसरी और तीसरी प्रहर में रखे अथवा अर्द्धयोजन की मर्यादा तक उसे ले जाए तो दोषभाक् नहीं। जिनकल्पी सर्वथा निरपवाद होते हैं, अतः वे जिस प्रहर में जिस ग्राम, नगर आदि में अशन, पान आदि ग्रहण करते हैं, उसी में उसे पूर्णतः समाप्त कर देते हैं।

इसी प्रकार प्रस्तुत उद्देशक में पुरःकर्म कृत हाथ, पात्र, दर्वी आदि से भिक्षा ग्रहण करने, पृथिवीकाय, अप्काय आदि पांच स्थावरकायों के स्वल्पमात्र भी समारम्भ करने, सचित्त वृक्ष पर आरोहण करने, परित्तकाय-संयुक्त आहार करने तथा सलोम चर्म पर अधिष्ठित होने का प्रायश्चित्त कथन किया गया है, जो अहिंसा महाव्रत की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। सलोम चर्म शुषिर होता है, उसके रोओं के भीतर छोटे-छोटे प्राणी सम्मूर्च्छित हो सकते हैं, इसलिए भिक्षु को उसका उपयोग नहीं करना चाहिए। इस प्रसंग में बृहत्कल्पभाष्य में बताया गया है कि सलोम चर्म का स्पर्श पुरुष के स्पर्श के समान होता है। अतः ब्रह्मचर्य की सुरक्षा के लिए निर्ग्रन्थी को सलोम चर्म ग्रहण करना नहीं कल्पता। निशीथभाष्य के अनुसार निर्ग्रन्थ के लिए निर्लोम चर्म का निषेध ब्रह्मव्रत की सुरक्षा के लिए किया गया है।[3]

आगाढ़ कारण को छोड़कर भिक्षु रात्रि में परिवासित आलेपन से शरीर पर आलेपन, विलेपन तथा तैल, घृत आदि से अभ्यंगन, म्रक्षण नहीं कर सकता।[4] प्रस्तुत उद्देशक में दिवा-रात्रि की चतुर्भंगी के द्वारा परिवासित गोबर एवं विविध प्रकार के आलेपनों से व्रण के आलेपन एवं विलेपन का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है। ज्ञातव्य है कि परिवासित अशन, पान का आहार करने से

१. भग. ७/२४
२. निभा. गा. ४१५६-४१६०
३. वही, गा. ४०११,४०१२
४. कप्पो ५/३८,३९

गुरु चातुर्मासिक प्रायश्चित्त प्राप्त होता है, जबकि गोबर अथवा मलहम आदि से व्रण का आलेपन विलेपन करने से लघुचातुर्मासिक।

आयारचूला के बारहवें अध्ययन 'रूव-सत्तिक्कयं' में सोलह सूत्रों में विविध प्रकार के रूपों को चक्षुदर्शन की प्रतिज्ञा से–चक्षुरिन्द्रिय की प्रीति के लिए देखने के संकल्प का निषेध किया गया है। प्रस्तुत उद्देशक के 'चक्खुदंसण-पडिया-पदं तथा रूवासत्ति पदं' में उसकी समरूपता के दर्शन होते हैं। ग्रामवध, नगरवध आदि, ग्राममहोत्सव, नगरमहोत्सव आदि, ग्रामपथ, नगरपथ आदि के विषय में आयारचूला में कोई निषेध उपलब्ध नहीं होता, जबकि प्रस्तुत उद्देशक में उसको देखने के संकल्प से जाने वाले के लिए प्रायश्चित्त का कथन किया गया है। इसी प्रकार आयारचूला में आराम, उद्यान आदि, अट्ट, अट्टालिका, त्रिक, चतुष्क आदि को देखने का निषेध किया गया है, परन्तु प्रस्तुत उद्देशक में इनके विषय में प्रायश्चित्त का कथन नहीं किया गया है। इस तुलना से ऐसा प्रतीत होता है कि आयारचूला में निषिद्ध स्थानों के समान प्रस्तुत उद्देशक में उक्त स्थान भी इस तथ्य की ओर संकेत करते हैं कि वे सभी स्थान, जिन्हें देखने का प्रयोजन मात्र चक्षुरिन्द्रिय की प्रीति हो, जिन्हें देखकर राग अथवा द्वेष की उत्पत्ति अथवा वृद्धि हो, उन सब स्थानों को देखने जाने का निषेध है। प्रस्तुत आगम के अनुसार उस भिक्षु को लघुचातुर्मासिक प्रायश्चित्त प्राप्त होता है।

प्रस्तुत उद्देशक के अंतिम सूत्र में पांच महार्णव, महानदियों को एक मास में दो बार अथवा तीन बार नौका से अथवा भुजाओं से तैरने का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है। ठाणं एवं कप्पो (बृहत्कल्प सूत्र) में गंगा, यमुना, सरयू आदि पांच नदियों के उत्तरण एवं संतरण का निषेध किया गया है।[१] कप्पो (बृहत्कल्प सूत्र) में एरावती के स्थान पर कोशिका को महानदी माना गया है। वहां एरावती, जो कुणाला में प्रवहमान है, उसे जंघा संतार्य मानते हुए उसे पार करने की वही विधि बताई गई है, जो आयारचूला में 'जघासंतारिम-उदग-पद' में बताई गई है।[२] भाष्यकार ने इस प्रसंग में संघट्ट, लेप, थाह, अथाह, संतरण-उत्तरण आदि की परिभाषाएं बताते हुए नौका-विहार से होने वाले दोषों एवं तत्सम्बन्धी अपवादों तथा यतना आदि की विस्तार से चर्चा की है।[३]

---

१. (क) ठाणं ५/९८
(ख) कप्पो ३/३४

२. वही, ३/३४

३. निभा. ४२०१-४२५५

बारसमो उद्देसो : बारहवां उद्देशक

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
कोलुणपडिया-पदं	**कारुण्यप्रतिज्ञा-पदम्**	**कारुण्यप्रतिज्ञा-पद**
१. जे भिक्खू कोलुणपडियाए अण्णयरिं तसपाणजातिं तणपासएण वा मुंजपासएण वा कट्ठपासएण वा चम्मपासएण वा वेत्तपासएण वा रज्जुपासएण वा सुत्तपासएण वा बंधति, बंधंतं वा सातिज्जति ।।	यो भिक्षुः कारुण्यप्रतिज्ञया अन्यतरां त्रसप्राणजातिं तृणपाशकेन वा मुञ्जपाशकेन वा काष्ठपाशकेन वा चर्मपाशकेन वा वेत्रपाशकेन वा रज्जुपाशकेन वा सूत्रपाशकेन वा बध्नाति, बध्नन्तं वा स्वदते।	१. जो भिक्षु कारुण्य की प्रतिज्ञा (अनुकम्पाभाव) से किसी त्रसप्राणजाति को तृणपाश (घास के बन्धन), मुंजपाश, काष्ठपाश, चर्मपाश, वेत्रपाश (बेंत के बन्धन), रज्जुपाश अथवा सूत्रपाश से बांधता है अथवा बांधने वाले का अनुमोदन करता है।
२. जे भिक्खू कोलुणपडियाए अण्णयरिं तसपाणजातिं तणपासएण वा मुंजपासएण वा कट्ठपासएण वा चम्मपासएण वा वेत्तपासएण वा रज्जुपासएण वा सुत्तपासएण वा बद्धेल्लयं मुयति, मुयंतं वा सातिज्जति ।।	यो भिक्षुः कारुण्यप्रतिज्ञया अन्यतरां त्रसप्राणजातिं तृणपाशकेन वा मुञ्जपाशकेन वा काष्ठपाशकेन वा चर्मपाशकेन वा वेत्रपाशकेन वा रज्जुपाशकेन वा सूत्रपाशकेन वा बद्धं मुञ्चति, मुञ्चन्तं वा स्वदते।	२. जो भिक्षु कारुण्य की प्रतिज्ञा से तृणपाश, मुंजपाश, काष्ठपाश, चर्मपाश, वेत्रपाश, रज्जुपाश अथवा सूत्रपाश से बद्ध किसी त्रसप्राणजाति को मुक्त करता है अथवा मुक्त करने वाले का अनुमोदन करता है।[1]
पच्चक्खाण-भंग-पदं	**प्रत्याख्यान-भंग-पदम्**	**प्रत्याख्यान-भंग-पद**
३. जे भिक्खू अभिक्खणं पच्चक्खाणं भंजति, भंजंतं वा सातिज्जति ।।	यो भिक्षुः अभीक्ष्णं प्रत्याख्यानं भनक्ति, भञ्जन्तं वा स्वदते।	३. जो भिक्षु बार-बार प्रत्याख्यान का भंग करता है अथवा भंग करने वाले का अनुमोदन करता है।[2]
परित्तकायसंजुत्त-पदं	**परीतकायसंयुक्त-पदम्**	**परित्तकायसंयुक्त-पद**
४. जे भिक्खू परित्तकायसंजुत्तं आहारं आहारेति, आहारेंतं वा सातिज्जति ।।	यो भिक्षुः परीतकायसंयुक्तम् आहारम् आहरति, आहरन्तं वा स्वदते।	४. जो भिक्षु प्रत्येककाय से मिश्रित आहार करता है अथवा आहार करने वाले का अनुमोदन करता है।[3]
सलोमचम्म-पदं	**सलोम-चर्म-पदम्**	**सलोमचर्म-पद**
५. जे भिक्खू सलोमाइं चम्माइं अहिट्ठेति, अहिट्ठेंतं वा सातिज्जति ।।	यो भिक्षुः सलोमानि चर्माणि अधितिष्ठति, अधितिष्ठन्तं वा स्वदते।	५. जो भिक्षु लोम (रोम) सहित चर्म का उपयोग करता है अथवा उपयोग करने वाले का अनुमोदन करता है।[4]

परवत्थोच्छन्नपीढ-पदं

६. जे भिक्खू तणपीढगं वा पलालपीढगं वा छगणपीढगं वा वेत्तपीढगं वा कट्ठपीढगं वा परवत्थेणोच्छण्णं अहिट्ठेति, अहिट्ठेंतं वा सातिज्जति।।

परवस्त्रावच्छन्नपीठ-पदम्

यो भिक्षुः तृणपीठकं वा पलालपीठकं वा 'छगण'पीठकं वा वेत्रपीठकं वा काष्ठपीठकं वा परवस्त्रेणावच्छन्नं अधितिष्ठति, अधितिष्ठन्तं वा स्वदते।

परवस्त्राच्छादितपीठ-पद

६. जो भिक्षु गृहस्थ के वस्त्र से आच्छन्न घास के पीढे, पलाल के पीढे, गोबर के पीढे, बेंत के पीढे अथवा काठ के पीढे का उपयोग करता है अथवा उपयोग करने वाले का अनुमोदन करता है।[५]

णिग्गंथी-संघाडि-पदं

७. जे भिक्खू णिग्गंथीए संघाडिं अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा सिव्वावेति, सिव्वावेंतं वा सातिज्जति।।

निर्ग्रन्थी-संघाटी-पदम्

यो भिक्षुः निर्ग्रन्थ्याः संघाटीम् अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा सेवयति, सेवयन्तं वा स्वदते।

निर्ग्रन्थी-संघाटी-पद

७. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थी की संघाटी (पछेवड़ी) सिलवाता है अथवा सिलवाने वाले का अनुमोदन करता है।[६]

थावरकायसमारंभ-पदं

८. जे भिक्खू पुढवीकायस्स कलमायमवि समारंभति, समारंभंतं वा सातिज्जति।।

स्थावरकायसमारंभ-पदम्

यो भिक्षुः पृथिवीकायस्य कलमात्रमपि समारभते, समारभमाणं वा स्वदते।

स्थावरकाय-समारंभ-पद

८. जो भिक्षु चने जितनी भी (स्तोकप्रमाण) पृथिवीकाय का समारम्भ करता है अथवा समारम्भ करने वाले का अनुमोदन करता है।

९. एवं आउक्कायस्स वा तेउकायस्स वा वाउकायस्स वा वणप्फइकायस्स वा कलमायमवि समारंभति, समारंभंतं वा सातिज्जति।।

एवं अप्कायस्य वा तेजस्कायस्य वा वायुकायस्य वा वनस्पतिकायस्य वा कलमात्रमपि समारभते, समारभमाणं वा स्वदते।

९. इसी प्रकार (जो भिक्षु) चने जितनी भी अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय अथवा वनस्पतिकाय का समारम्भ करता है अथवा समारम्भ करने वाले का अनुमोदन करता है।[७]

रुक्खारोहण-पदं

१०. जे भिक्खू सचित्तरुक्खं दुरुहति, दुरुहंतं वा सातिज्जति।।

रूक्षारोहण-पदम्

यो भिक्षुः सचित्तरुक्षं 'दुरुहति' (आरोहति), दुरुहंतं (आरोहन्तं) वा स्वदते।

वृक्षारोहण-पद

१०. जो भिक्षु सचित्त वृक्ष पर चढ़ता है अथवा चढ़ने वाले का अनुमोदन करता है।[८]

गिहि-पदं

११. जे भिक्खू गिहिमत्ते भुंजति, भुंजंतं वा सातिज्जति।।

गृहि-पदम्

यो भिक्षुः गृह्यमत्रे भुङ्क्ते, भुञ्जानं वा स्वदते।

गृही-पद

११. जो भिक्षु गृहस्थ के पात्र में आहार करता है अथवा आहार करने वाले का अनुमोदन करता है।

१२. जे भिक्खू गिहिवत्थं परिहेति, परिहेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः गृहिवस्त्रं परिदधाति, परिदधतं वा स्वदते।

१२. जो भिक्षु गृहस्थ का वस्त्र पहनता है अथवा पहनने वाले का अनुमोदन करता है।[९]

१३. जे भिक्खू गिहिणिसेज्जं वाहेति, वाहेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः गृहिनिषद्यां वाहयति, वाहयन्तं वा स्वदते।

१३. जो भिक्षु गृहस्थ की निषद्या पर बैठता है अथवा बैठने वाले का अनुमोदन करता है।[१०]

१४. जे भिक्खू गिहितिगिच्छं करेति, करेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः गृहिचिकित्सां करोति, कुर्वन्तं वा स्वदते।

१४. जो भिक्षु गृहस्थ की चिकित्सा करता है अथवा करने वाले का अनुमोदन करता है।[११]

पुरेकम्म-पदं

१५. जे भिक्खू पुरेकम्मकडेण हत्थेण वा मत्तेण वा दव्वीए वा भायणेण वा असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति ।।

पुरःकर्म-पदम्

यो भिक्षुः पुरःकर्मकृतेन हस्तेन वा अमत्रेण वा दर्व्या वा भाजनेन वा अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते।

पुरःकर्म-पद

१५. जो भिक्षु पुरःकर्मकृत हाथ, अमत्र (मिट्टी के बर्तन), दर्वी (कड़छी) अथवा भाजन (कांस्यपात्र) से अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।[१२]

१६. जे भिक्खू गिहत्थाण वा अण्णउत्थियाण वा सीओदग-परिभोईण हत्थेण वा मत्तेण वा दव्वीए वा भायणेण वा असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः गृहस्थानां वा अन्ययूथिकानां वा शीतोदकपरिभोजिना हस्तेन वा अमत्रेण वा दर्व्या वा भाजनेन वा अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते।

१६. जो भिक्षु गृहस्थ अथवा अन्यतीर्थिक के शीतोदकपरिभोगी—सचित्त जल के परिभोग से युक्त हाथ, अमत्र, दर्वी अथवा भाजन से अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।[१३]

चक्खुदंसणपडिया-पदं

१७. जे भिक्खू कट्ठकम्माणि वा चित्तकम्माणि वा पोत्थकम्माणि वा दंतकम्माणि वा मणिकम्माणि वा सेलकम्माणि वा गंथिमाणि वा वेढिमाणि वा पूरिमाणि वा संघातिमाणि वा पत्तच्छेज्जाणि वा विहाणि वा वेहिमाणि वा चक्खुदंसणपडियाए अभिसंधारेति, अभिसंधारेंतं वा सातिज्जति ।।

चक्षुर्दर्शनप्रतिज्ञा-पदम्

यो भिक्षुः काष्ठकर्माणि वा चित्रकर्माणि वा पुस्तकर्माणि वा दन्तकर्माणि वा मणिकर्माणि वा शैलकर्माणि वा ग्रन्थिमानि वा वेष्टिमानि वा पूरिमाणि वा संघातिमानि वा पत्रच्छेद्यानि वा 'विहाणि' वा द्वैधिकानि वा चक्षुर्दर्शनप्रतिज्ञया अभिसंधारयति, अभिसंधारयन्तं वा स्वदते।

चक्षुदर्शनप्रतिज्ञा-पद

१७. जो भिक्षु काष्ठकर्म, चित्रकर्म, पुस्तकर्म, दंतकर्म, मणिकर्म, शैलकर्म, ग्रन्थिम, वेष्टिम, पूरिम, संघातिम, पत्रछेद्य कर्म, विहा (वाही) अथवा वेधिम को आंख से देखने की प्रतिज्ञा से जाने का संकल्प करता है अथवा संकल्प करने वाले का अनुमोदन करता है।

१८. जे भिक्खू वप्पाणि वा फलिहाणि वा उप्पलाणि वा पल्ललाणि वा उज्झराणि वा णिज्झराणि वा वावीणि वा पोक्खराणि वा दीहियाणि वा गुंजालियाणि वा

यो भिक्षुः वप्रान् वा परिखाः वा उत्पलानि वा पल्वलानि वा उज्झरान् वा निर्झरान् वा वापीः वा पुष्कराणि वा दीर्घिकाः वा गुञ्जालिकाः वा सरांसि वा सरःपंक्तीः वा सरःसरःपंक्तीः वा

१८. जो भिक्षु केदार, परिखा, उत्पल, पल्वल, उज्झर, निर्झर, वापी, पुष्कर, दीर्घिका, गुंजालिका, सर, सरपंक्ति अथवा सरसरपंक्ति को आंख से देखने की प्रतिज्ञा से जाने का संकल्प करता है अथवा

सराणि वा सरपंतियाणि वा सरसरपंतियाणि वा चक्खुदंसण-पडियाए अभिसंधारेति, अभिसंधारेंतं वा सातिज्जति ।।

चक्षुर्दर्शनप्रतिज्ञया अभिसंधारयति, अभिसंधारयन्तं वा स्वदते।

संकल्प करने वाले का अनुमोदन करता है।

१९. जे भिक्खू कच्छाणि वा गहणाणि वा णूमाणि वा वणाणि वा वणविदुग्गाणि वा पव्वयाणि वा पव्वयविदुग्गाणि वा चक्खुदंसण-पडियाए अभिसंधारेति, अभिसंधारेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः कच्छान् वा गहनानि वा नूमानि वा वनानि वा वनविदुर्गाणि वा पर्वतानि वा पर्वतविदुर्गाणि वा चक्षुर्दर्शनप्रतिज्ञया अभिसंधारयति, अभिसंधारयन्तं वा स्वदते।

१९. जो भिक्षु कच्छ, गहन, नूम, वन, वनविदुर्ग, पर्वत अथवा पर्वतविदुर्ग को आंख से देखने की प्रतिज्ञा से जाने का संकल्प करता है अथवा संकल्प करने वाले का अनुमोदन करता है।

२०. जे भिक्खू गामाणि वा णगराणि वा खेडाणि वा कब्बडाणि वा मडंबाणि वा दोणमुहाणि वा पट्टणाणि वा आगराणि वा संबाहाणि वा सण्णिवेसाणि वा चक्खुदंसण-पडियाए अभिसंधारेति, अभिसंधारेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः ग्रामान् वा नगराणि वा खेटानि वा कर्बटानि वा मडंबानि वा द्रोणमुखानि वा पत्तनानि वा आकरान् वा संबाधान् वा सन्निवेशान् वा चक्षुर्दर्शनप्रतिज्ञया अभिसंधारयति, अभिसंधारयन्तं वा स्वदते।

२०. जो भिक्षु ग्राम, नगर, खेट, कर्बट, मडंब, द्रोणमुख, पत्तन, आकर, संबाध अथवा सन्निवेश को आंख से देखने की प्रतिज्ञा से जाने का संकल्प करता है अथवा संकल्प करने वाले का अनुमोदन करता है।

२१. जे भिक्खू गाममहाणि वा णगरमहाणि वा खेडमहाणि वा कब्बडमहाणि वा मडंबमहाणि वा दोणमुहमहाणि वा पट्टणमहाणि वा आगरमहाणि वा संबाहमहाणि वा सण्णिवेसमहाणि वा चक्खुदंसण-पडियाए अभिसंधारेति, अभिसंधारेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः ग्राममहान् वा नगरमहान् वा खेटमहान् वा कर्बटमहान् वा मडंबमहान् वा द्रोणमुखमहान् वा पत्तनमहान् वा आकरमहान् वा संबाधमहान् वा सन्निवेशमहान् वा चक्षुर्दर्शनप्रतिज्ञया अभिसंधारयति, अभिसंधारयन्तं वा स्वदते।

२१. जो भिक्षु ग्राममहोत्सव, नगरमहोत्सव, खेटमहोत्सव, कर्बटमहोत्सव, मडंबमहोत्सव, द्रोणमुखमहोत्सव, पत्तनमहोत्सव, आकरमहोत्सव, संबाधमहोत्सव अथवा सन्निवेशमहोत्सव को आंख से देखने की प्रतिज्ञा से जाने का संकल्प करता है अथवा संकल्प करने वाले का अनुमोदन करता है।

२२. जे भिक्खू गामवहाणि वा णगरवहाणि वा खेडवहाणि वा कब्बडवहाणि वा मडंबवहाणि वा दोणमुहवहाणि वा पट्टणवहाणि वा आगरवहाणि वा संबाहवहाणि वा सण्णिवेसवहाणि वा चक्खुदंसण-पडियाए अभिसंधारेति, अभिसंधारेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः ग्रामवधान् वा नगरवधान् वा खेटवधान् वा कर्बटवधान् वा मडंबवधान् वा द्रोणमुखवधान् वा पत्तनवधान् वा आकरवधान् वा संबाधवधान् वा सन्निवेशवधान् वा चक्षुर्दर्शनप्रतिज्ञया अभिसंधारयति, अभिसंधारयन्तं वा स्वदते।

२२. जो भिक्षु ग्रामवध, नगरवध, खेटवध, कर्बटवध, मडंबवध, द्रोणमुखवध, पत्तनवध, आकरवध, संबाधवध अथवा सन्निवेशवध को आंख से देखने की प्रतिज्ञा से जाने का संकल्प करता है अथवा संकल्प करने वाले का अनुमोदन करता है।

२३. जे भिक्खू गामपहाणि वा

यो भिक्षुः ग्रामपथान् वा नगरपथान् वा

२३. जो भिक्षु ग्रामपथ, नगरपथ, खेटपथ,

णगरपहाणि वा खेडपहाणि वा कब्बडपहाणि वा मडंबपहाणि वा दोणमुहपहाणि वा पट्टणपहाणि वा आगरपहाणि वा संबाहपहाणि वा सण्णिवेसपहाणि वा चक्खुदंसण-पडियाए अभिसंधारेति, अभिसंधारेंतं वा सातिज्जति ।।

खेटपथान् वा कर्बटपथान् वा मडंबपथान् वा द्रोणमुखपथान् वा पत्तनपथान् वा आकरपथान् वा संबाधपथान् वा सन्निवेशपथान् वा चक्षुर्दर्शनप्रतिज्ञया अभिसंधारयति, अभिसंधारयन्तं वा स्वदते।

कर्बटपथ, मडंबपथ, द्रोणमुखपथ, पत्तनपथ, आकरपथ, संबाधपथ अथवा सन्निवेशपथ को आंख से देखने की प्रतिज्ञा से जाने का संकल्प करता है अथवा संकल्प करने वाले का अनुमोदन करता है।

२४. जे भिक्खू आसकरणाणि वा हत्थिकरणाणि वा उट्टकरणाणि वा गोणकरणाणि वा महिसकरणाणि वा सूकरकरणाणि वा चक्खुदंसण-पडियाए अभिसंधारेति, अभिसंधारेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अश्वकरणानि वा हस्तिकरणानि वा उष्ट्रकरणानि वा गोकरणानि वा महिषकरणानि वा शूकरकरणानि वा चक्षुर्दर्शनप्रतिज्ञया अभिसंधारयति, अभिसंधारयन्तं वा स्वदते।

२४. जो भिक्षु अश्वकरण, हस्तिकरण, उष्ट्रकरण, गौकरण, महिषकरण अथवा शूकरकरण को आंख से देखने की प्रतिज्ञा से जाने का संकल्प करता है अथवा संकल्प करने वाले का अनुमोदन करता है।

२५. जे भिक्खू आसजुद्धाणि वा हत्थिजुद्धाणि वा उट्टजुद्धाणि वा गोणजुद्धाणि वा महिसजुद्धाणि वा सूकरजुद्धाणि वा चक्खुदंसण-पडियाए अभिसंधारेति, अभिसंधारेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अश्वयुद्धानि वा हस्तियुद्धानि वा उष्ट्रयुद्धानि वा गोयुद्धानि वा महिषयुद्धानि वा शूकरयुद्धानि वा चक्षुर्दर्शनप्रतिज्ञया अभिसंधारयति, अभिसंधारयन्तं वा स्वदते।

२५. जो भिक्षु अश्वयुद्ध, हस्तियुद्ध, उष्ट्रयुद्ध, गौयुद्ध (वृषभयुद्ध), महिषयुद्ध अथवा शूकरयुद्ध को आंख से देखने की प्रतिज्ञा से जाने का संकल्प करता है अथवा संकल्प करने वाले का अनुमोदन करता है।

२६. जे भिक्खू उज्जूहियाठाणाणि वा हयजूहियाठाणाणि वा गयजूहिया-ठाणाणि वा चक्खुदंसणपडियाए अभिसंधारेति, अभिसंधारेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः 'उज्जुहिया'स्थानानि वा हययूथिकास्थानानि वा गजयूथिका-स्थानानि वा चक्षुर्दर्शनप्रतिज्ञया अभिसंधारयति, अभिसंधारयन्तं वा स्वदते।

२६. जो भिक्षु उज्जुहिया स्थान, हययूथिका स्थान अथवा गजयूथिका स्थान को आंख से देखने की प्रतिज्ञा से जाने का संकल्प करता है अथवा संकल्प करने वाले का अनुमोदन करता है।

२७. जे भिक्खू अभिसेयठाणाणि वा अक्खाइयठाणाणि वा माणुम्माणियठाणाणि वा महयाहय-णट्ट-गीय-वादिय-तंती-तल-ताल-तुडिय-पडुप्पवाइयठाणाणि वा चक्खुदंसणपडियाए अभिसंधारेति, अभिसंधारेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अभिषेकस्थानानि वा आख्यायिकास्थानानि वा मानोन्मानिकस्थानानि वा महदाहत-नृत्य-गीत-वादित्र-तंत्री-तल-ताल-त्रुटित-पटुप्रवादितस्थानानि वा चक्षुर्दर्शनप्रतिज्ञया अभिसंधारयति, अभिसंधारयन्तं वा स्वदते।

२७. जो भिक्षु अभिषेक स्थान, आख्यायिका-स्थान, मानोन्मान स्थान अथवा आहत नाट्यों, गीतों तथा कुशल वादक के द्वारा बजाए हुए वादित्र, तंत्री, तल, ताल और त्रुटित की ध्वनि वाले स्थान को आंख से देखने की प्रतिज्ञा से जाने का संकल्प करता है अथवा संकल्प करने वाले का अनुमोदन करता है।

२८. जे भिक्खू डिंबाणि वा डमराणि वा खाराणि वा वेराणि वा महाजुद्धाणि

यो भिक्षुः डिम्बानि वा डमराणि वा क्षाराणि वा वैराणि वा महायुद्धानि वा

२८. जो भिक्षु डिंब, डमर, खार, वैर, महायुद्ध, महासंग्राम, कलह अथवा कोलाहल को

वा महासंगामाणि वा कलहाणि वा बोलाणि वा चक्खुदंसणपडियाए अभिसंधारेति, अभिसंधारेंतं वा सातिज्जति।।

महासंग्रामान् वा कलहान् वा बोलान् वा चक्षुर्दर्शनप्रतिज्ञया अभिसंधारयति, अभिसंधारयन्तं वा स्वदते।

आंख से देखने की प्रतिज्ञा से जाने का संकल्प करता है अथवा संकल्प करने वाले का अनुमोदन करता है।

२९. जे भिक्खू विरूवरूवेसु महुस्सवेसु इत्थीणि वा पुरिसाणि वा थेराणि वा मज्झिमाणि वा डहराणि वा–अणलंकियाणि वा सुअलंकियाणि वा गायंताणि वा वायंताणि वा णच्चंताणि वा हंसताणि वा रमंताणि वा मोहंताणि वा विपुलं असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा परिभाएंताणि वा परिभुंजंताणि वा चक्खुदंसणपडियाए अभिसंधारेति, अभिसंधारेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः विरूपरूपेषु महोत्सवेषु स्त्रीः वा पुरुषान् वा स्थविरान् वा मध्यमान् वा डहरान् वा अनलंकृतान् वा स्वलंकृतान् वा गायतः वा वादयतः वा नृत्यतः वा हसतः वा रममाणान् वा मोहयतः वा विपुलम् अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा परिभाजयतः वा परिभुञ्जानान् वा चक्षुर्दर्शनप्रतिज्ञया अभिसंधारयति, अभिसंधारयन्तं वा स्वदते।

२९. जो भिक्षु विविध प्रकार के महोत्सवों में, जहां अलंकाररहित अथवा सुअलंकृत स्थविर, मध्यम वय वाले अथवा छोटी अवस्था वाले स्त्री अथवा पुरुष, गाते हुए, बजाते हुए, नाचते हुए, हंसते हुए, क्रीड़ा करते हुए, मोहित करते हुए, विपुल अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य को बांट रहे हों अथवा खा रहे हों, उन्हें आंख से देखने की प्रतिज्ञा से जाने का संकल्प करता है अथवा संकल्प करने वाले का अनुमोदन करता है।[१४]

रूवासत्ति-पदं

३०. जे भिक्खू इहलोइएसु वा रूवेसु परलोइएसु वा रूवेसु दिट्ठेसु वा रूवेसु अदिट्ठेसु वा रूवेसु सुएसु वा रूवेसु असुएसु वा रूवेसु विण्णाएसु वा रूवेसु अविण्णाएसु वा रूवेसु सज्जति रज्जति गिज्झति अज्झोववज्जति, सज्जमाणं वा रज्जमाणं वा गिज्झमाणं वा अज्झोववज्जमाणं वा सातिज्जति।।

रूपासक्ति-पदम्

यो भिक्षुः ऐहलौकिकेषु वा रूपेषु पारलौकिकेषु वा रूपेषु दृष्टेषु वा रूपेषु अदृष्टेषु वा रूपेषु श्रुतेषु वा रूपेषु अश्रुतेषु वा रूपेषु विज्ञातेषु वा रूपेषु अविज्ञातेषु वा रूपेषु सजति रज्यति गृध्यति अध्युपपद्यते, सजन्तं वा रज्यन्तं वा गृध्यन्तं वा अध्युपपद्यमानं वा स्वदते।

रूपासक्ति-पद

३०. जो भिक्षु ऐहलौकिक रूपों अथवा पारलौकिक रूपों में, दृष्टरूपों अथवा अदृष्टरूपों में, श्रुतरूपों अथवा अश्रुतरूपों में, विज्ञातरूपों अथवा अविज्ञातरूपों में आसक्त होता है, अनुरक्त होता है, गृद्ध होता है, अध्युपपन्न होता है और आसक्त, अनुरक्त, गृद्ध अथवा अध्युपपन्न होने वाले का अनुमोदन करता है।[१५]

कालातिक्कंत-पदं

३१. जे भिक्खू पढमाए पोरिसीए असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पडिग्गाहेत्ता पच्छिमं पोरिसिं उवातिणावेति, उवातिणावेंतं वा सातिज्जति।।

कालातिक्रान्त-पदम्

यो भिक्षुः प्रथमायां पौरुष्याम् अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा प्रतिगृह्य पश्चिमां पौरुषीम् उपादापयति (अतिक्रामयति), उपादापयन्तं (अतिक्रामयन्तं) वा स्वदते।

कालातिक्रान्त-पद

३१. जो भिक्षु प्रथम पौरुषी में अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य को ग्रहण कर पश्चिम पौरुषी तक रखता है अथवा रखने वाले का अनुमोदन करता है।

मग्गातिक्कंत-पदं*

३२. जे भिक्खू परं अद्धजोयणमेराओ परेण असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा उवातिणावेति, उवातिणावेंतं वा सातिज्जति ।।

मार्गातिक्रान्त-पदम्

यो भिक्षुः परं अर्धयोजन'मेराओ' परेण अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा उपादापयति (अतिक्रामयति), उपादापयन्तं (अतिक्रामयन्तं) वा स्वदते।

मार्गातिक्रान्त-पद

३२. जो भिक्षु अर्धयोजन की मर्यादा से परे (से अधिक दूर तक) अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य ले जाता है अथवा ले जाने वाले का अनुमोदन करता है।[१६]

गोमय-पदं

३३. जे भिक्खू दिवा गोमयं पडिग्गाहेत्ता दिवा कायंसि वणं आलिंपेज्ज वा विलिंपेज्ज वा, आलिंपंतं वा विलिंपंतं वा सातिज्जति ।।

३४. जे भिक्खू दिवा गोमयं पडिग्गाहेत्ता रत्तिं कायंसि वणं आलिंपेज्ज वा विलिंपेज्ज वा, आलिंपंतं वा विलिंपंतं वा सातिज्जति ।।

३५. जे भिक्खू रत्तिं गोमयं पडिग्गाहेत्ता दिवा कायंसि वणं आलिंपेज्ज वा विलिंपेज्ज वा, आलिंपंतं वा विलिंपंतं वा सातिज्जति ।।

३६. जे भिक्खू रत्तिं गोमयं पडिग्गाहेत्ता रत्तिं कायंसि वणं आलिंपेज्ज वा विलिंपेज्ज वा, आलिंपंतं वा विलिंपंतं वा सातिज्जति ।।

गोमय-पदम्

यो भिक्षुः दिवा गोमयं प्रतिगृह्य दिवा काये व्रणम् आलिम्पेद् वा विलिम्पेद् वा, आलिम्पन्तं वा विलिम्पन्तं वा स्वदते।

यो भिक्षुः दिवा गोमयं प्रतिगृह्य रात्रौ काये व्रणम् आलिम्पेद् वा विलिम्पेद् वा, आलिम्पन्तं वा विलिम्पन्तं वा स्वदते।

यो भिक्षुः रात्रौ गोमयं प्रतिगृह्य दिवा काये व्रणम् आलिम्पेद् वा विलिम्पेद् वा, आलिम्पन्तं वा विलिम्पन्तं वा स्वदते।

यो भिक्षुः रात्रौ गोमयं प्रतिगृह्य रात्रौ काये व्रणम् आलिम्पेद् वा विलिम्पेद् वा, आलिम्पन्तं वा विलिम्पन्तं वा स्वदते।

गोमय-पद

३३. जो भिक्षु दिन में गोबर ग्रहण कर अपने शरीर पर हुए व्रण का दिन में आलेपन करता है अथवा विलेपन करता है और आलेपन अथवा विलेपन करने वाले का अनुमोदन करता है।

३४. जो भिक्षु दिन में गोबर ग्रहण कर अपने शरीर पर हुए व्रण का रात में आलेपन करता है अथवा विलेपन करता है और आलेपन अथवा विलेपन करने वाले का अनुमोदन करता है।

३५. जो भिक्षु रात में गोबर ग्रहण कर अपने शरीर पर हुए व्रण का दिन में आलेपन करता है अथवा विलेपन करता है और आलेपन अथवा विलेपन करने वाले का अनुमोदन करता है।

३६. जो भिक्षु रात में गोबर ग्रहण कर अपने शरीर पर हुए व्रण का रात में आलेपन करता है अथवा विलेपन करता है और आलेपन अथवा विलेपन करने वाले का अनुमोदन करता है।

---

* नवसुत्ताणि में प्रस्तुत पद का शीर्षक खेत्तातिक्कंत पदं दिया हुआ है। चूंकि यह पाठ क्षेत्र सम्बन्धी मर्यादा के अतिक्रमण के सन्दर्भ में है, इसलिए संगत भी हो सकता है परन्तु भगवई ७/२४ में मग्गातिकंत पाणभोयण की परिभाषा यह की गई है--

जे णं निग्गंथे वा निग्गंथी वा फासुएसणिज्जं असण-पाण-खाइम-साइमं पडिग्गाहेत्ता परं अद्धजोयणमेराए वीइक्कमावेत्ता आहारमाहारेइ, एस णं गोयमा! मग्गातिक्कंते पाणभोयणे।

चूंकि आगम के मूलपाठ में अर्धयोजन की मर्यादा के अतिक्रमण को मार्गातिक्रान्त कहा गया है, अतः प्रस्तुत सूत्र का शीर्षक 'मग्गातिक्कंतपदं' अधिक संगत प्रतीत होता है, इसलिए हमने यहां यही शीर्षक रखा है।

आलेवणजाय-पदं

३७. जे भिक्खू दिवा आलेवणजायं पडिग्गाहेत्ता दिवा कायंसि वणं आलिंपेज्ज वा विलिंपेज्ज वा, आलिंपंतं वा विलिंपंतं वा सातिज्जति।।

३८. जे भिक्खू दिवा आलेवणजायं पडिग्गाहेत्ता रत्तिं कायंसि वणं आलिंपेज्ज वा विलिंपेज्ज वा, आलिंपंतं वा विलिंपंतं वा सातिज्जति।।

३९. जे भिक्खू रत्तिं आलेवणजायं पडिग्गाहेत्ता दिवा कायंसि वणं आलिंपेज्ज वा विलिंपेज्ज वा, आलिंपंतं वा विलिंपंतं वा सातिज्जति।।

४०. जे भिक्खू रत्तिं आलेवणजायं पडिग्गाहेत्ता रत्तिं कायंसि वणं आलिंपेज्ज वा विलिंपेज्ज वा, आलिंपंतं वा विलिंपंतं वा सातिज्जति।।

आलेपनजात-पदम्

यो भिक्षुः दिवा आलेपनजातं प्रतिगृह्य दिवा काये व्रणम् आलिम्पेद् वा विलिम्पेद् वा, आलिम्पन्तं वा विलिम्पन्तं वा स्वदते।

यो भिक्षुः दिवा आलेपनजातं प्रतिगृह्य रात्रौ काये व्रणम् आलिम्पेद् वा विलिम्पेद् वा, आलिम्पन्तं वा विलिम्पन्तं वा स्वदते।

यो भिक्षुः रात्रौ आलेपनजातं प्रतिगृह्य दिवा काये व्रणम् आलिम्पेद् वा विलिम्पेद् वा, आलिम्पन्तं वा विलिम्पन्तं वा स्वदते।

यो भिक्षुः रात्रौ आलेपनजातं प्रतिगृह्य रात्रौ काये व्रणम् आलिम्पेद् वा विलिम्पेद् वा, आलिम्पन्तं वा विलिम्पन्तं वा स्वदते।

आलेपनजात-पद

३७. जो भिक्षु दिन में आलेपनजात को ग्रहण कर अपने शरीर पर हुए व्रण का दिन में आलेपन करता है अथवा विलेपन करता है और आलेपन अथवा विलेपन करने वाले का अनुमोदन करता है।

३८. जो भिक्षु दिन में आलेपनजात को ग्रहण कर अपने शरीर पर हुए व्रण का रात में आलेपन करता है अथवा विलेपन करता है और आलेपन अथवा विलेपन करने वाले का अनुमोदन करता है।

३९. जो भिक्षु रात में आलेपनजात को ग्रहण कर अपने शरीर पर हुए व्रण का दिन में आलेपन करता है अथवा विलेपन करता है और आलेपन अथवा विलेपन करने वाले का अनुमोदन करता है।

४०. जो भिक्षु रात में आलेपनजात को ग्रहण कर अपने शरीर पर हुए व्रण का रात में आलेपन करता है अथवा विलेपन करता है और आलेपन अथवा विलेपन करने वाले का अनुमोदन करता है।[१७]

उवहिवहावण-पदं

४१. जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा उवहिं वहावेति, वहावेंतं वा सातिज्जति।।

४२. जे भिक्खू तण्णीसाए असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा देति, देंतं वा सातिज्जति।।

उपधि-वाहन-पदम्

यो भिक्षुः अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा उपधिं वाहयति, वाहयन्तं वा स्वदते।

यो भिक्षुः तन्निश्रया अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा ददाति, ददतं वा स्वदते।

उपधिवाहन-पद

४१. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से उपधि का वहन कराता है अथवा वहन कराने वाले का अनुमोदन करता है।

४२. जो भिक्षु उसकी निश्रा से (उपधि-वहन कराने के लिए) अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य देता है अथवा देने वाले का अनुमोदन करता है।[१८]

महाणई-पदं

४३. जे भिक्खू इमाओ पंच महण्णवाओ महाणईओ उद्दिट्ठाओ

महानदी-पदम्

यो भिक्षुः इमाः पंच महार्णवाः महानद्यः उद्दिष्टाः गणिताः व्यञ्जिताः अन्तर्मासं

महानदी-पद

४३. जो भिक्षु महानदी के रूप में कथित, गणित और प्रख्यात इन पांच महार्णव

गणियाओ वंजियाओ अंतोमासस्स दुक्खुत्तो वा तिक्खुत्तो वा उत्तरति वा संतरति वा, उत्तरंतं वा संतरंत वा सातिज्जति, तं जहा–गंगा जउणा सरऊ एरावती मही–
तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घातियं ।।

द्विः वा त्रिः वा उत्तरति वा सन्तरति वा, उत्तरन्तं वा सन्तरन्तं वा स्वदते, तद्यथा–गंगा, यमुना, सरयू, ऐरावती, मही–

तत्सेवमानः आपद्यते चातुर्मासिकं परिहारस्थानम् उद्घातिकम्।

महानदियों का एक मास में दो बार अथवा तीन बार उत्तरण अथवा संतरण करता है अथवा उत्तरण अथवा संतरण करने वाले का अनुमोदन करता है जैसे–१. गंगा २. यमुना ३. सरयू ४. ऐरावती ५. मही।[११]
–इनका आसेवन करने वाले भिक्षु को चातुर्मासिक उद्घातिक (लघु चौमासी) प्रायश्चित्त प्राप्त होता है।

टिप्पण

१. सूत्र १,२

प्रस्तुत सूत्रद्वयी में कारुण्य की प्रतिज्ञा—करुणा भाव से त्रस-प्राणियों को घास, मूंज, काठ आदि के पाश (बन्धन) से बांधने तथा उन बन्धनों से बंधे हुए प्राणियों को खोलने का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है। भिक्षु मुधाजीवी होता है—संयम-निर्वाह हेतु निःस्वार्थ भाव से जीता है। गृहस्थ अथवा अन्य असंयत त्रस प्राणियों के प्रति करुणा कर गृहस्थ-प्रायोग्य कार्य करना उसकी श्रमणचर्या के प्रतिकूल है।

बछड़े, गाय, भैंस आदि को बांधते समय वह प्राणी उसे सींग, खुर आदि से चोट पहुंचा सकता है, अतिगाढ़ बंधन से बांध दिए जाएं तो तड़फड़ाते हुए स्वयं मर जाते हैं अथवा अन्य प्राणियों को मार देते हैं। इस प्रकार आत्मविराधना एवं संयमविराधना की संभावना एवं प्रवचन की अप्रभावना को देखते हुए उन्हें बांधना प्रतिषिद्ध है।[1]

बंधे हुए प्राणियों को अनुकम्पापूर्वक खोल दिया जाए और वे प्राणी बन्धन-मुक्त होकर छह जीवनिकाय की हिंसा करे, उन्हें कोई चोर चुरा ले जाए, वे कुएं अथवा किसी गड्ढे आदि में गिर जाए—इत्यादि दोषों के कारण प्राणियों के बंधन को खोलना भी प्रायश्चित्तार्ह कार्य है।[2]

यदि गृहस्थ उन्हें इस प्रकार के किसी सावद्य कार्य के लिए निवेदन भी करे तो वह उन्हें स्पष्ट कह दे—हम तुम्हारे घर में भाजनभूत (बर्तन की तरह) सब व्यापारों से निवृत्त होकर रहेंगे। हम अपने ध्यान में रहते हुए गृहस्थ के कार्यों के प्रति अद्रष्टा-अश्रोता हैं।[3]

२. सूत्र ३

प्रत्याख्यान का बारम्बार भंग करना शबलदोष है, इससे संयम चितकबरा हो जाता है।[4] जानते हुए प्रत्याख्यान का भंग करने से मुख्यतः सात दोष आते हैं—

१. प्रत्याख्यान का भंग करने वाले के प्रति विश्वास नहीं रहता।

२. लोगों में अवर्णवाद होता है।

३. उत्तरगुण के प्रत्याख्यान का भंग करते-करते उसकी चेतना इतनी मूढ़ हो जाती है कि वह प्रसंगवश मूलगुणों का प्रत्याख्यान भी तोड़ देता है।

४. जैसी प्रतिज्ञा करता है, वैसा आचरण नहीं करता। अतः माया लगती है।

५. कथनी-करनी में विषमता से मृषावाद का दोष लगता है।

६. प्रत्याख्यान का भंग करने से संयमविराधना होती है।

७. प्रमत्त को देवता छल लेते हैं—क्षिप्तचित्त आदि कर देते हैं, फलतः आत्मविराधना भी संभव है।[5]

भाष्यकार के अनुसार अभीक्ष्ण का अर्थ तृतीय बार से है। अतः उसमें चतुर्लघु प्रायश्चित्त प्राप्त होता है।[6]

३. सूत्र ४

प्रस्तुत आगम के दसवें उद्देशक में अनन्तकाय-संयुक्त आहार करने का गुरुचातुर्मासिक प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है।[7] प्रस्तुत सूत्र में परित्तकाय—प्रत्येककाय-संयुक्त अशन, पान आदि का आहार करने का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है। उन्मिश्रदोष से दूषित आहार को ग्रहण करने से अहिंसा महाव्रत की विराधना होती है। नमक, सचित्त पुष्प, पत्र अथवा लवंग आदि मिला देने से अशन, पान आदि का स्वाद बढ़ जाता है, रसासक्ति से मात्रातिरिक्त खाने पर आत्मविराधना की संभावना रहती है।[8] चौवन अनाचारों की सूचि में चौदह अनाचार सचित्त वस्तुओं के ग्रहण से सम्बन्धित हैं।[9]

४. सूत्र ५

स्थविरभूमिप्राप्त स्थविर चर्म, छत्र, दण्ड आदि धारण करते थे।[10] चर्म के दो प्रकार होते हैं—सलोम और निर्लोम। सलोम चर्म शुषिर होता है। उसके रोओं के भीतर प्राणियों के सम्मूर्च्छन की संभावना रहती है। वर्षाकाल में उसके जीवसंसक्त होने का भय

---

१. निभा. गा. ३९८१
२. वही, गा. ३९८२ (सचूर्णि)
३. वही, गा. ३९७८, ३९७९
४. दसाओ २/७
५. निभा. गा. ३९८८ सचूर्णि
६. वही, गा. ३९८७—सुत्तणिवातो ततिए।
७. निसीह. १०/५
८. निभा. गा. ३९९२, ३९९३
९. दसवे. अध्य. ३ का आमुख।
१०. वव. ८/५

रहता है। अतः अहिंसा की दृष्टि से उसे अग्राह्य माना गया है।[1]

प्रस्तुत सूत्र में भिक्षु के लिए सलोम चर्म के ग्रहण का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है। कप्पो (बृहत्कल्पसूत्र) में निर्ग्रन्थी के लिए सलोम चर्म को ग्रहण करने का निषेध किया गया है।[2] साथ ही निर्ग्रन्थों के लिए निर्लोमचर्म के ग्रहण की अनुज्ञा दी गई है।[3] कप्पो (बृहत्कल्पसूत्र) में प्रज्ञप्त निषेध एवं विधान का प्रयोजन ब्रह्मचर्य-सुरक्षा प्रतीत होता है। अहिंसा की दृष्टि से सूत्रकार ने निर्ग्रन्थों को एक रात के लिए प्रातिहारिक रूप में परिभुक्त चर्म को ग्रहण करने की अनुज्ञा दी है।[4]

विस्तार हेतु द्रष्टव्य—कप्पो ३/३,४ के टिप्पण।

शब्द विमर्श

अहिट्ठ—उपयोग करना। चूर्णिकार के अनुसार यहां इसका अर्थ है—'यह मेरा है' इस रूप में ग्रहण करना।[5]

५. सूत्र ६

गृहस्थ के वस्त्र से आच्छादित पीढ़े पर बैठने से आत्म-विराधना एवं संयमविराधना के दोष की संभावना रहती है। कदाचित् कोई गृहस्थ प्रत्यनीकता, प्रवंचना अथवा प्रमाद के कारण एक अथवा दो पैरों से रहित या जीर्णशीर्ण पीढ़े पर वस्त्र बिछा दे और भिक्षु बिना प्रतिलेखना के उस पर बैठ जाए तो वह गिर सकता है, जिससे प्रवचन की अप्रभावना एवं साधु की निन्दा हो सकती है। साधु के उठने के बाद गृहस्थ उस वस्त्र को धोए, साफ करे तो पश्चात्कर्म दोष लगता है।[6] अतः जिस पर गृहस्थ का वस्त्र बिछा हो, ऐसे अशुषिर आसन पर से उस वस्त्र को हटाकर प्रतिलेखनापूर्वक ही भिक्षु उसका उपयोग करे।[7]

६. सूत्र ७

भिक्षु गृहस्थ अथवा अन्यतीर्थिक से स्वयं का उत्तरीय-वस्त्र सिलवाता है तो उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है।[8] यदि वह किसी साध्वी का उत्तरीय सिलवाता है तो पूर्वोक्त दोषों के अतिरिक्त शंका, वशीकरण आदि दोष भी संभव हैं।[9] अतः इसमें लघु चातुर्मासिक प्रायश्चित्त प्राप्त होता है।

७. सूत्र ८,९

प्रस्तुत सूत्रद्वयी में पांच स्थावरकायों के अल्पमात्र भी समारम्भ का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है। षड्जीवनिकाय जैनदर्शन की विशेष प्रतिपत्ति है। जैन दर्शन के अनुसार असंख्य पृथिवीकायिक जीवों के शरीरों का समूह है—एक चने जितनी सचेतन पृथिवी। वनस्पतिकाय को छोड़कर शेष तीनों (अप्, तेजस, वायु) जीवनिकायों के विषय में भी यही तथ्य स्वीकृत है।[10] वनस्पतिकाय में एक, असंख्य अथवा अनन्त जीवों के शरीर के समूह से चने जितनी वनस्पति निष्पन्न होती है।[11]

भिक्षु प्राणातिपात से सर्वथा विरत होता है। अतः उसे गोचरी, विचार-भूमि आदि के लिए गमनागमन तथा उपाश्रय में उपधि आदि के विषय में पूर्ण सावधानी रखनी चाहिए, ताकि उसके द्वारा किसी जीव को विराधना न हो।

सूत्र में 'कलमाय' पद प्रयुक्त हुआ है। कल शब्द का अर्थ है—चना।[12] चूर्णिकार के अनुसार यह प्रमाण कठिन पृथिवी, तेजस्, वायु एवं वनस्पतिकाय के विषय में है, अप्काय के विषय में इसे बिन्दुप्रमाण मानना चाहिए।[13]

८. सूत्र १०

सचित्त वृक्ष के तीन प्रकार होते हैं—

१. संख्यातजीवी—ताड़ आदि।

२. असंख्यातजीवी—आम्र आदि।

३. अनन्तजीवी—थूहर आदि।[14]

भाष्यकार के अनुसार प्रस्तुत सूत्र का कथन प्रथम दो के विषय में हैं।[15] अनन्तकायिक वृक्ष पर चढ़ने से गुरुचातुर्मासिक प्रायश्चित्त प्राप्त होता है[16] जो प्रस्तुत उद्देशक का विषय नहीं है। वृक्षारोहण करने से वनस्पतिकाय की तथा गिर पड़ने पर अन्य जीवनिकायों की विराधना होती है। पड़ने से आत्मविराधना, प्रवचन की अप्रभावना आदि दोष भी संभव हैं।[17] आयारचूला में भी श्वापद आदि के भय से वृक्षारोहण का निषेध किया गया है।[18]

१. निभा. गा. ३९९८
२. कप्पो ३/३
३. वही, ३/४
४. वही—से वि य परिभुत्ते—अपडिहारिए......एगराइए..... ।
५. निभा. भा. ३ चू. पृ. ३२०—अहिट्ठेइ णाम 'ममेयं' त्ति जो गिण्हइ।
६. वही, गा. ४०२२,४०२३ (सचूर्णि)
७. वही, गा. ४०२५ (सचूर्णि)
८. निसीह. ५/१२
९. निभा. गा. ४०२८ (सचूर्णि)
१०. वही, भा. ३ चू.पृ. ३२८—वणस्सइकायमेत्तं वज्जित्ता सेसेगेंदियकायाणं असंखेज्जाणं जीवसरीराणं समुदयसमितिसमागमेणं कलमेत्तं लब्भति।
११. वही—एगस्स पत्तेयवणस्सतिकायस्स असंखेज्जाण वा कलधन्नप्पमाणमेत्तं सरीरं भवति।
१२. वही, पृ. ३२७—कलो त्ति चणओ, तप्पमाणमेत्तं।
१३. वही—एवं कढिणाउक्काए तेउवाऊपत्तेयवणस्सतिसु। दवे पुण आउक्काए बिंदुमित्तं। वाउक्काते.....वत्थिपूरणे लब्भति।
१४. वही, पृ. ३२८—संखेज्जजीवा तालादी, असंखेज्जजीवा अंबादी, अणंतजीवा थोहरादी।
१५. वही, गा. ४०३९
१६. वही, भा. ३ चू. पृ. ३२८—अणंतेसु चउगुरुगा।
१७. वही, गा. ४०४०
१८. आचू. ३/५९—णो रुक्खसि दुरुहेज्जा।

९. सूत्र ११,१२

गृही-अमत्र चौवन अनाचारों की सूचि में ग्यारहवां अनाचार है।[१] मुनि अपनी नेश्राय के पात्र में ही आहार का ग्रहण एवं भोग करता है तथा अपनी नेश्राय के वस्त्रों को ही पहनता है। गृहस्थ के वस्त्र अथवा पात्र को प्रातिहारिक रूप में ग्रहण कर उपयोग करने पर पुरःकर्म, पश्चात्कर्म आदि दोष संभव हैं। यदि कोई उन्हें चुरा ले अथवा वस्त्र फट जाए, पात्र टूट जाए तो अधिकरण आदि दोष भी संभव हैं।[२] अतः मुनि के लिए निर्देश है कि वह गृहस्थ के पात्र—कटोरी, थाली आदि में कभी भी अशन, पान न करे तथा अचेल हो जाए, तब भी गृहस्थ के वस्त्र को न पहने।[३] प्रस्तुत सूत्रद्वयी में इन्हीं दोनों निर्देशों के अतिक्रमण का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है।

विस्तार हेतु द्रष्टव्य—दसवे. ३/३ का टिप्पण (पृ. ६०,६१)

१०. सूत्र १३

चूर्णिकार के अनुसार गृही-निषद्या का अर्थ है—पलंग आदि, उन पर बैठने वाले को चतुर्लघु प्रायश्चित्त प्राप्त होता है।[४] निशीथभाष्य में गृही-निषद्या के जो दोष बताए गए हैं, वे दसवेआलियं में गृहान्तर निषद्या के विषय में बताए गए हैं।[५] उत्तरज्झयणाणि 'गिहिनिसेज्जं च वाहेइ' का अर्थ 'गृहस्थ की शय्या पर बैठता है'—किया गया है।[६]

आसंदी, पल्यंक आदि गृहस्थ के आसनों अथवा शय्याओं का प्रयोग अहिंसा महाव्रत की सुरक्षा की दृष्टि से निषिद्ध है क्योंकि इनमें गंभीर छिद्र होने से ये दुष्प्रतिलेख्य होते हैं।[७] गृहान्तर-निषद्या का प्रयोग ब्रह्मचर्यगुप्ति हेतु तथा शंका आदि अन्य दोषों के निवारण की दृष्टि से निषिद्ध है।[८] आसंदी, पल्यंक तथा गृहान्तर निषद्या—ये तीनों अनाचार हैं।[९] प्रस्तुत सूत्र को इन तीनों का प्रायश्चित्त सूत्र भी माना जा सकता है।

विस्तार हेतु द्रष्टव्य—दसवे. ३/५, पृ. ७५-७८।

११. सूत्र १४

चिकित्सा का अर्थ है—वमन, विरेचन, अभ्यंग, पान आदि के द्वारा रोग का प्रतिकार।[१०] उसके दो प्रकार हैं—

१. सूक्ष्म चिकित्सा—स्वयं रोग का प्रतिकार न करते हुए गृहस्थ से यह कहना कि मैं वैद्य नहीं हूं। यह अर्थ- पद है अर्थात् प्रकारान्तर से इससे यह अर्थ ध्वनित होता है कि वैद्य को दिखाओ अथवा गृहस्थ के पूछने पर कहना—मेरे यह रोग अमुक औषधि से ठीक हुआ था।[११]

२. बादर चिकित्सा—रोग-प्रतिकार हेतु औषध आदि का कथन करना।[१२] गृहस्थ को हिंसा का त्याग नहीं होता। रोगी अवस्था में वह जिन सावद्य कार्यों में अव्यापृत रहता है, स्वस्थ होने पर वह उनमें और अधिक व्यापृत हो सकता है। चिकित्सा के लिए जिन कन्दमूल, सचित्त जल, अग्नि आदि का आरम्भ करेगा, उनमें भी भिक्षु निमित्त बनेगा। अतः गृहस्थ की चिकित्सा करना, वैद्यक-वृत्ति से आहार, सम्मान आदि प्राप्त करना अनाचार है। गृहस्थ की बादर चिकित्सा करने वाले भिक्षु को लघुचातुर्मासिक प्रायश्चित्त प्राप्त होता है।[१३]

१२. सूत्र १५

साधु को भिक्षा देने के निमित्त सजीव जल से हाथ, कड़छी आदि धोना अथवा अन्य किसी प्रकार का आरम्भ—हिंसा करना पूर्वकर्म दोष है।[१४] मुनि के लिए निर्देश है कि पुराकर्म कृत हाथ, कड़छी और बर्तन से भिक्षा देती हुई स्त्री को मुनि प्रतिषेध करे—इस प्रकार का आहार मैं नहीं ले सकता।[१५] यह एषणा सम्बन्धी (दायक) दोष है। इसमें अप्काय का समारम्भ होता है, अतः यह प्रायश्चित्तार्ह है।

१३. सूत्र १६

पूर्वकर्म के समान पश्चात्कर्म दोष का सम्बन्ध भी अप्काय से है। भिक्षा देने के पश्चात् उस पात्र, हाथ या कड़छी आदि को धोना पड़े, वहां पश्चात्कर्म दोष होता है।[१६]

प्रस्तुत सूत्र में 'सीओदगपरिभोईण' पद का प्रयोग किया गया है। निशीथभाष्य एवं चूर्णि के अनुसार यह पात्र आदि का विशेषण बनता है—जिस अमत्र (पात्र) से सचित्त जल का परिभोग किया

१. दसवे. अध्य. ३ का आमुख
२. निभा. गा. ४०४४, ४०४७
३. सूय. १/९/२०—
परमत्ते अन्नपाणं, ण भुंजेज्ज कयाइ वि।
परवत्थं अचेलोऽवि, तं विज्जं परिजाणिया।।
४. निभा. ३ चू.पृ. ३३०—गिहिणिसेज्जा पलियंकादी, तत्थ णिसीदंतस्स चउलहुं।
५. (क) वही, गा. ४०४८
(ख) दसवे. ६/५७-५९
६. उत्तर. १७/१९
७. दसवे. ६/५५
८. वही, ६/५८
९. वही, ३/५
१०. निभा. भा. ३ चू. पृ. ३३१—तिगिच्छा णाम रोगप्रतिकारः, वमन-विरेचन-अभ्यंगपानादिभिः।
११. वही—सुहुमतिगिच्छा णाम णाहं वेज्जो अट्ठापदं देति। अहवा—भणाति मम एरिसो रोगो अमुगेण पण्णत्तो।
१२. वही, पृ. ३३२—चउप्पादं वा तेगिच्छं करेइ।
१३. वही, गा. ४०५५ की चूर्णि
१४. वही, गा. ४०६३—
हत्थं वा मत्तं वा, पुव्वं सीओदएण जो धोवे।
समणट्ठयाए दाता, तं पुरकम्मं वियाणाहि।।
१५. दसवे. ५/१/३२
१६. निभा. भा. ३ चू. पृ. ३४३—भिक्खप्पयाणोवलित्तं पच्छा धुवंतस्स पच्छाकम्मं।

जाता है, उससे भिक्षा ग्रहण करना प्रतिषिद्ध है।[1]

जो गृहस्थ अथवा अन्यतीर्थिक सचित्त जल का परिभोग कर रहा है, उस जल से उसका हाथ, पात्र आदि गीला है और वह उससे किसी खाद्य पदार्थ को देता है तो पहले (दान देते समय) भी जल के जीवों की विराधना होती है तथा पुनः जल में डालने पर भी जल की विराधना होती है।[2] अतः जल में डालने वाले पात्र आदि से लेपयुक्त पदार्थ नहीं लेने चाहिए। शुष्क और अलेपकृत द्रव्य ग्रहण करने से पश्चात्कर्म की संभावना नहीं रहती। अतः वे ग्रहण किए जा सकते हैं।[3]

१४. सूत्र १७-२९

जगत में अनेक प्रकार के दर्शनीय स्थल, विशिष्ट कलापूर्ण वस्तुएं एवं विविध प्रकार के महोत्सव आदि होते हैं। जो व्यक्ति उन्हें देखने के संकल्प से, अभिप्राय से जाता है, उसके कला कौशल आदि को देखकर उसके मन में कलाकार अथवा उसके निर्माता के प्रति राग अथवा अनुमोदन के भाव आ सकते हैं। 'अमुक वस्तु सुन्दर बनी है' 'अमुक व्यक्ति ने अमुक वस्तु बनाकर अपने अर्थ का सम्यक् नियोजन किया है'—इत्यादि भाव अथवा वाचिक अभिव्यक्ति से अनुमोदन का दोष लगता है।[4] किसी कलाकृति में कमी देखकर वह उसके प्रति यह अभिव्यक्ति दे—'इस कलाकार को सम्यक् प्रशिक्षण नहीं मिला', 'अमुक व्यक्ति कला का परीक्षक नहीं था, इसीलिए उसने ऐसा निर्माण करवाया'—इत्यादि वचनों से उस कलाकृति या कलाकार के प्रति द्वेष प्रकट होता है।[5] वहां रहने वाले प्राणियों के लिए भय, अंतराय आदि दोषों में भी वह निमित्त बनता है।[6] अतः भिक्षु को देखने के संकल्प से सूत्रोक्त स्थानों अथवा इसी प्रकार के अन्य स्थानों में नहीं जाना चाहिए।

प्रस्तुत आलापक की चूर्णि में व्याख्यात पाठ आदर्शों में स्वीकृत पाठ से अनेक स्थानों पर भिन्न है। चूर्णि में व्याख्यात पाठ भी अस्पष्ट है एवं पूर्णतया शुद्ध प्रतीत नहीं होता। आयारचूला की चूर्णि में भी कई स्थल व्याख्यात नहीं है। अतः अनेक शब्दों के विमर्शहेतु अन्वेषण अपेक्षित है।

शब्द विमर्श

१. काष्ठकर्म—काष्ठाकृति—मनुष्य, पशु आदि की काष्ठनिर्मित आकृति।[7]

२. चित्रकर्म—चित्राकृति, पट, कुड्य, फलक आदि पर किसी आकृति अथवा दृश्य का चित्रांकन।[8]

३. पुस्तकर्म—वस्त्रनिर्मित पुतली, वर्तिका से लिखित पुस्तक।[9] पहलवी भाषा में पुस्त का अर्थ है—चमड़ा। अतः पुस्तकर्म का एक अर्थ है—चमड़े पर बने चित्र आदि।[10]

४. दंतकर्म—हाथीदांत से बनाई हुई कलाकृति।

५. मणिकर्म—मणियों—कीमती पत्थरों से बनाई हुई कलाकृति।

६. शैलकर्म—पत्थर से बनाई हुई कलाकृति।

७. ग्रंथिम—वस्त्र, रस्सी अथवा धागे से गूंथकर या पुष्प, फल आदि को गूंथकर बनाई गई आकृति।[11]

८. वेष्टिम—फूलों को वेष्टित कर बनाई गई कलाकृति।[12]

९. पूरिम—पीतल आदि से निर्मित प्रतिमा अथवा पोली प्रतिमा में पीतल आदि भरकर बनाई गई प्रतिमा (आकृति)।[13]

१०. संघातिम—अनेक वस्त्र-खंडों को जोड़कर बनाई गई आकृति।[14]

११. पत्रछेद्य कर्म—बाण से पत्ती छेदने की कला, नक्काशी का काम।[15]

१२. विहा/वाही—एक कला विशेष।[16]

१३. वेधिम—बींध कर (छेद करके) की जाने वाली कलाकृति, तोड़ कर बनाई जाने वाली कलाकृति।[17]

विहा अथवा वाही और वेधिम—तीनों शब्दों के विषय में सभी व्याख्याकार मौन हैं।

काष्ठकर्म, चित्रकर्म आदि कुछ शब्दों के तुलनात्मक विमर्श हेतु द्रष्टव्य—अणुओगद्दाराइं सूत्र १० का टिप्पण।

१४. वप्र—केदार।[18] आयारचूला की टीका में वप्र का एक अर्थ समुन्नत भूभाग किया है।[19]

---

१. निभा. ३ चू. पृ. ३४३—जेण मत्तएण सच्चित्तोदगं परिभुज्जति तेण भिक्खग्गहणं पडिसिद्धं।
२. वही, गा. ४११४ (सचूर्णि)।
३. वही, भा. ३ चू. पृ. ३४४
४. वही, गा. ४१२० (सचूर्णि)
५. वही, गा. ४१२२
६. वही, गा. ४१२३ (सचूर्णि)
७. वही ३ चू. पृ. ३४९—कट्ठकम्मं कोट्टिमादि।
८. अणु. पृ. १९
९. निभा. भा. ३ चू. पृ. ३४९—पुस्तकेषु च वस्त्रेषु वा पोत्थं।
१०. अणु. पृ. १९
११. निभा. भा. ३ चू. पृ. ३४९—पूयादिया पुप्फलादिषु गंठिमं जहा आणंदपुरे।
१२. वही—पुप्फपूरगादिवेढिमं प्रतिमा।
१३. वही—पूरिमं स च कक्षुकादि।
१४. वही—मुकुटसंबंधिसु वा संघाडिमं।
१५. पाइय. (परिशि.)
१६. दे.श.को.
१७. वही,
१८. निभा. ३ चू. पृ. ३४४—वप्पो केदारो।
१९. आचू. टी. पृ. २२५

१५. परिखा—चूर्णिकार ने परिखा का अर्थ खातिका किया है।[१] वैसे परिखा ऊपर नीचे समान रूप से खोदी जाती है जबकि खातिका ऊपर से चौड़ी और नीचे से संकड़ी होती है।[२]

१६. उत्पल—द्वीपविशेष अथवा समुद्रविशेष।[३] जलाशय के प्रकरण में होने के कारण इसका अर्थ भी जलाशय-विशेष होना चाहिए।

१७. पल्वल—जल का छोटा गड्ढा।[४] छोटा तालाब।[५]

१८. उज्झर—पर्वतीय तट से जल का नीचे गिरना, पहाड़ी झरना।[६]

१९. निर्झर—झरना।[७]

२०. वापी—बावड़ी, यह समवृत्त होती है।[८]

२१. पुष्कर—पुष्करिणी—चतुष्कोण बावड़ी, कमलयुक्त जलाशय।[९] स्थानांगवृत्ति के अनुसार वापी चतुष्कोण एवं पुष्करिणी वृत्ताकार होती है।[१०]

२२. दीर्घिका—नहर, जिसमें से जल की प्रणालियां निकलती हों, वह ऋजु जलाशय।[११]

२३. गुंजालिका—वक्राकार नहर।[१२] परस्पर कपाट से संयुक्त अथवा अनेक नालिकाओं वाला जलाशय।[१३]

२४. सरः—वह तालाब, जिसके जल का सोता भीतर होता है। नैसर्गिक जलाशय, बांध।[१४]

२५. सरःपंक्ति—पंक्तिबद्ध नैसर्गिक जलाशय।[१५]

२६. सरःसरःपंक्ति—तालाबों की वह परस्पर कपाट संयुक्त श्रेणी, जिसमें एक तालाब का पानी संचरण-द्वार से दूसरे तालाब में जाता है।[१६]

२७. कच्छ—इक्षु आदि की वाटिका, जलबहुलप्रदेश, नदी के जल से वेष्टित वन आदि।[१७] चूर्णिकार के अनुसार इक्षुवन आदि को कच्छ कहा जाता है।[१८]

२८. गहन और वन—शब्दकोष के अनुसार गहन और वन एकार्थक शब्द हैं। निशीथ चूर्णि में गहन का अर्थ कानन और वन का अर्थ उद्यान किया गया है।[१९] भगवती की वृत्ति के अनुसार नगर का निकटवर्ती उपवन कानन, दूरवर्ती वृक्षसंकुल प्रदेश वन और फूलों से लदा वृक्षसंकुल बगीचा उद्यान कहलाता है। एकार्थक कोष के अनुसार गहन अत्यन्त सघन एवं दुष्प्रवेश्य होता है तथा वन एक जाति के वृक्षों से संकुल और नगर से दूर होता है।[२०]

२९. नूम—प्रच्छन्नगृह, गुफा आदि।[२१] चूर्णिकार ने नूमगृह का अर्थ भूमिगृह किया है।[२२]

३०. वन विदुर्ग—एकजातीय अथवा अनेकजातीय वृक्षों से व्याप्त वन।[२३]

३१. पर्वतविदुग—बहुत से पर्वतों का समूह।[२४]

तुलना हेतु द्रष्टव्य भगवई ५/१८९ का भाष्य, ठाणं २/३९० एवं अणुओगद्दाराइं ३९२ का टिप्पण।

३२. ग्राम, नगर यावत् सन्निवेश

द्रष्टव्य—निसीहज्झयणं ५/३४,३५ का टिप्पण।

३३. ग्राम महोत्सव यावत् सन्निवेश महोत्सव—निशीथ-चूर्णिकार के अनुसार ग्राम में यात्रा करना ग्राम-महोत्सव है।[२५] इसी प्रकार सन्निवेशमहोत्सव पर्यन्त अन्य महोत्सवों के विषय में ज्ञातव्य है।

३४. ग्रामवध यावत् सन्निवेशवध—ग्राम का वध—सारे ग्रामवासियों की हत्या ग्रामघात अथवा ग्रामवध है।[२६] प्रस्तुत सूत्रोक्त शेष शब्दों के विषय में भी इसी प्रकार ज्ञातव्य है।

३५. अश्वकरण यावत् शूकरकरण—करण का अर्थ है—प्रशिक्षण। घोड़े, हाथी, ऊंट, गाय आदि का प्रशिक्षण क्रमशः अश्वकरण, गजकरण, उष्ट्रकरण, गौकरण आदि कहलाता है।[२७]

---

१. निभा. भा. ३ चू. पृ. ३४४—परिहा खातिया।
२. भग. ५/१८९ का भाष्य
३. पाइय.
४. भग. ५/१८९ का भाष्य
५. पाइय.
६. वही
७. वही
८. निभा. भा. ३ चू. पृ. ३४६—समवृत्ता वापी।
९. वही—चातुरस्सा पुक्खरिणी।
१०. स्था. वृ. प. ८३—वापी चतुरस्रा, पुष्करिणी वृत्ता।
११. अनु.चू. पृ. ५३—सारणी रिजु दीहिया।
१२. वही—बंका गुंजालिया।
१३. निभा. भा. ३ चू. पृ. ३४६—अन्नोन्नकवाडसंजुत्ताओ गुंजालिया भण्णंति।......णिक्का अणेगभेदगता गुंजालिया।
१४. अमवृ. प. १४६—सरःस्वयंसंभूतो जलाशयः।
१५. निभा. भा. ३ चू. पृ. ३४६—ताणि चेवं बहूणि पंतीठियाणि पत्तेयबाहुजुत्ताणि सरपंत्ती।
१६. वही—ताणि चेव बहूणि अन्नोन्नकवाडसंजुत्ताणि सरसरपंत्ती।
१७. पाइय.
१८. निभा. ३ चू. पृ. ३४६—इक्खुमादि कच्छा।
१९. वही, गहणाणि काननानि.....वणाणि उज्जाणाणि।
२०. (क) भग. वृ. ५/१८९
(ख) एका. को. पृ. ३१२
२१. पाइय.
२२. निभा. भा. ३ चू. पृ. ३४४—णूमगिहं भूमिघरं।
२३. वही, पृ. ३४६—एगजातीय-अणेगजाईयरुक्खाउलं गहणं वणविदुग्गं।
२४. वही—बहुएहिं पव्वतेहिं पव्वयविदुग्गं।
२५. वही, पृ. ३४७—ग्रामे महो ग्राममहो—यात्रा इत्यर्थः।
२६. वही—ग्रामस्य वधो ग्रामवधो-ग्रामघातेत्यर्थः।
२७. वही, पृ. ३४८—आससिक्खावणं आसकरणं एवं सेसाणि वि।

३६. अश्वयुद्ध यावत् शूकरयुद्ध—घोड़ों का परस्पर युद्ध अश्वयुद्ध है।[1] इसी प्रकार हस्तियुद्ध, उष्ट्रयुद्ध आदि भी ज्ञातव्य हैं।

३७. उज्जूहिया स्थान—जंगल की ओर जाने वाली गायों का समूह उज्जूहिया कहलाता है अथवा गोसंखड़ी (गायों की सामूहिक चारे पानी की व्यवस्था) उज्जूहिका कहलाती है।[2] इस प्रकार यह गायों से संबद्ध स्थान-विशेष—गौशाला आदि होना चाहिए।

हययूथिकास्थान एवं गजयूथिकास्थान के विषय में भाष्य एवं चूर्णि मौन है। संभवतः ये अश्वशाला एवं गजशाला जैसे स्थान होने चाहिए। सूत्र (१२/२६) का पाठ चूर्णि में व्याख्यात पाठ से भिन्न है।

३८. अभिषेक स्थान—आयारचूला में 'अभिसेयठाणाणि' पाठ नहीं मिलता।[3] भाष्यचूर्णि सहित निशीथसूत्र की प्रकाशित प्रति के अनुसार मुनि जिनविजयजी के द्वारा सम्पादित मूल पुस्तक में यह पाठ उपलब्ध होता है। अभिषेक का अर्थ है—राजा, आचार्य आदि का पदारोहण अथवा स्नान-महोत्सव।[4] अभिषेक स्थान का वाच्यार्थ इन कार्यक्रमों से संबद्ध स्थान होना चाहिए।

३९. आख्यायिका स्थान—आख्यायिका का अर्थ है—कथा।[5] वे स्थान, जहां कथाएं कही जाएं अथवा कलाकृतियों के माध्यम से प्रस्तुत की जाएं, संभवतः वे स्थान आख्यायिका स्थान होने चाहिए।

४०. मानोन्मान का स्थान—प्रस्थक, घट आदि से धान्य अथवा रस आदि द्रव पदार्थ को मापना मान तथा तोल कर परिमाण जानना उन्मान कहलाता है।[6] जहां माप-तोल किया जाए, वह स्थान।

४१. महयाहय-गीय-वादिय-तंती.....ट्ठाणाणि—ऐसे स्थान जहां पर विविध प्रकार के नाट्य एवं गीतों के साथ तंत्री तल, ताल, त्रुटित आदि अनेक प्रकार के वाद्यों को उच्च ध्वनि के साथ बजाया जा रहा हो।[7] अनेक अंग एवं अंगबाह्य आगमों में '**महयाहय-णट्ट....पडुप्पवाइय**'—इस वाक्यांश का प्रयोग उपलब्ध होता है।

४२. डिंब—दंगा, शत्रुसैन्य का भय, परचक्र भय।[8]

४३. डमर—राष्ट्र का भीतरी विप्लव अथवा बाह्य उपद्रव।[9] अपने ही राज्य के राजकुमार आदि के द्वारा किया गया उपद्रव।

४४. खार—पारस्परिक मात्सर्य।[10]

४५. वैर—शत्रुता का भाव।

४६. महायुद्ध—व्यवस्थाशून्य महारण।[11]

४७. महासंग्राम—चक्रव्यूह आदि की रचना के साथ लड़ा जाने वाला महारण।[12]

४८. बोल—कोलाहल।[13]

तुलना हेतु द्रष्टव्य भग. ३/२५८ का भाष्य।

१५. सूत्र ३०

रूपासक्ति पद में विविध प्रकार के रूपों में आसक्ति को प्रायश्चित्तार्ह माना गया है। प्रस्तुत सन्दर्भ में रूप के विषय में चार विरोधी युग्मों का कथन किया गया है—

१. ऐहलौकिक-पारलौकिक—मनुष्य का रूप ऐहलौकिक एवं हाथी, घोड़े आदि तिर्यंचों का रूप पारलौकिक रूप है।

२. दृष्ट-अदृष्ट—जो इन्द्रियों से प्रत्यक्ष दिखाई दे, वे दृष्ट रूप हैं, जैसे—मनुष्य का रूप। देव आदि का परोक्ष रूप अदृष्ट रूप है।[14]

३. श्रुत-अश्रुत—जो रूप, श्रोत्रेन्द्रिय के विषय बन गए हों (किसी के द्वारा सुनकर जाने गए हों), वे श्रुत और तदितर रूप अश्रुत रूप कहलाते है।

४. विज्ञात-अविज्ञात—जिन रूपों के विषय में पढ़कर अथवा अन्य किसी माध्यम से ज्ञान कर लिया जाए, वे विज्ञात तथा उनसे भिन्न रूप अविज्ञात रूप कहलाते हैं। भाष्य एवं चूर्णि में इनकी कोई व्याख्या उपलब्ध नहीं होती। चूर्णि में इनके स्थान पर मनोज्ञ एवं अमनोज्ञ पद की व्याख्या की गई है।

आसक्ति के विषय में चार क्रिया-पद आए हैं—सज्जति, रज्जति, गिज्झति और अज्झोववज्जति। चूर्णिकार ने इनको एकार्थक मानते हुए भी वैकल्पिक रूप में इनमें किञ्चित् भेद का कथन किया है, जो इस प्रकार है—

१. सज्जणता—आसेवन का भाव।

२. रज्जणता—मन में अनुरक्ति का भाव।

---

१. निभा. ३ चू. पृ. ३४८—**हयो अश्वः तेषां परस्परतो युद्धं, एवमन्येषामपि।**
२. वही, **गावीओ उज्जूहिताओ अडविहुत्ताओ उज्जुहिज्जंति। अहवा—गोसंखडी उज्जूहिगा भन्नति।**
३. आचू. १२/११
४. पाइय.
५. वही
६. अणु. पृ. २२२,२२३
७. णाया. १/१/११८
८. (क) पाइय. (परिशि.)
(ख) भग. वृ. ३/२५८—**डिम्बा—विघ्नाः।**
९. (क) पाइय.
(ख) भग. वृ. ३/२५८
१०. वही—**खारत्ति परस्परमत्सराः।**
११. वही—**महायुद्धानि व्यवस्थाविहीनमहारणाः।**
१२. वही—**महासंग्राम त्ति सव्यवस्थाचक्रवादिव्यूहरचनोपेतमहारणाः।**
१३. वही—**बोल त्ति अव्यक्ताक्षरध्वनिसमूहाः।**
१४. निभा. भा. ३ चू. पृ. ३५०—**इहलोइया मणुस्सा, परलोइया हयगयादि। पुव्वं पच्चक्खं दिट्ठा, अदिट्ठा देवादी।**

३. गृद्धि—दोषयुक्त जानने पर भी उस वस्तु के प्रति अविरति का भाव।

४. अध्युपपाद—अत्यासक्ति—अत्यधिक गृद्धि अथवा मूर्च्छा का भाव।[१]

संग, राग, मूर्च्छा, गृद्धि और अध्युपपन्नता की अर्थ-परम्परा विषयक तुलना हेतु द्रष्टव्य—ठाणं ५/६-१० का टिप्पण।

१६. सूत्र ३१,३२

प्रस्तुत सूत्रद्वयी में आहार के सन्दर्भ में कालसीमा तथा मार्गसीमा के अतिक्रमण का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है। कप्पो (बृहत्कल्पसूत्र) में उसके अतिक्रमण का निषेध प्रज्ञप्त है।[२] व्याख्याप्रज्ञप्ति में भी इनके संवादी पाठ मिलते हैं।

भगवई में पान-भोजन के प्रसंग में अतिक्रमण के चार प्रकार बतलाए गए हैं—

१. क्षेत्रातिक्रान्त—सूर्य उगने से पूर्व आहार ग्रहण कर सूर्योदय के पश्चात् खाना।

२. कालातिक्रान्त—प्रथम प्रहर में गृहीत आहार को पश्चिम प्रहर में खाना।

३. मार्गातिक्रान्त—अर्धयोजन (दो कोश) से अधिक दूरी तक आहार ले जाकर उसे खाना।

४. प्रमाणातिक्रान्त—आहार का सामान्य अनुपात है—बत्तीस कवल। उस परिमाण से अधिक खाना।[३]

निर्ग्रन्थ एवं निर्ग्रन्थी को प्रथम प्रहर में गृहीत अशन, पान आदि को अन्तिम प्रहर तक रखना नहीं कल्पता। कदाचित् कुछ रह जाए तो प्रासुक स्थंडिल पर उसका परिष्ठापन कर दे। यह निषेध संचय आदि दोषों की दृष्टि से प्रज्ञप्त है।[४] इसी प्रकार वह अशन, पान आदि को दो कोश की मर्यादा से आगे न ले जाए। निशीथ चूर्णिकार ने इन्हें क्रमशः काल एवं क्षेत्र का अतिक्रमण माना है।[५] भाष्य एवं चूर्णि में इनसे प्राप्त होने वाले दोषों एवं अपवादों की विस्तृत चर्चा की है।[६]

साधना के लिए शरीर अपेक्षित है तथा शरीर के लिए आहार आवश्यक है। मुनि को आहार का ग्रहण एवं परिभोग अनुज्ञात काल में करना चाहिए। वह असंग्रही होता है। अतः उसके लिए सर्वोत्तम विकल्प है—जिस पौरुषी में, जिस क्षेत्र में आहार ग्रहण करे, उसी पौरुषी में, उस क्षेत्र में (दो कोस की सीमा के भीतर भीतर) उसका परिभोग कर ले। प्रथम प्रहर में गृहीत आहार को चरम प्रहर तक रखना उस कालसीमा का अतिक्रमण है। इससे संचय का दोष लगता है। अशन, पान आदि को रखने में यतना न रखी जाए तो उसके संसक्त होने की भी संभावना रहती है। जीवयुक्त (संसक्त) पदार्थ खाने के काम नहीं आता और उसकी परिष्ठापना में भी जीवविराधना को टालना कठिन होता है। भाष्यकार ने प्रस्तुत प्रसंग में अन्य संभावित दोषों का भी उल्लेख किया है।[७]

जिस गांव नगर आदि में अशन, पान को ग्रहण किया जाए, उससे आधा योजन या उससे अधिक दूरी पर जाकर उसका उपभोग किया जाए, तब भी आज्ञाभंग, अनवस्था आदि अनेक दोष आते हैं। अधिक भार लेकर चलने से ईर्यासमिति का सम्यक् शोधन नहीं होता, अशन अथवा पानक के गिरने से पृथिवीकाय आदि जीवों की विराधना भी संभव है, चोरों के द्वारा अपहरण, पात्रभंग आदि अन्य दोष भी संभव हैं।[८]

प्रस्तुत पद (सूत्र ३२) का शीर्षक खेत्तातिक्कंत पदं दिया हुआ है। चूंकि यह पाठ क्षेत्र सम्बन्धी मर्यादा के अतिक्रमण के सन्दर्भ में है, इसलिए संगत भी हो सकता है परन्तु भगवई ७/२४ में 'मग्गातिकंत पाणभोयण' की परिभाषा यह की गई है—

जे णं निग्गंथे वा निग्गंथी वा फासुएसणिज्जं असण-पाण-खाइम-साइमं पडिग्गाहेत्ता परं अद्धजोयणमेराए वीइक्कमावेत्ता आहार--माहारेइ, एस णं गोयमा! मग्गातिक्कंते पाणभोयणे।

चूंकि आगम के मूलपाठ में अर्धयोजन की मर्यादा के अतिक्रमण को मार्गातिक्रान्त कहा गया है। अतः प्रस्तुत सूत्र का शीर्षक 'मग्गातिक्कंत-पदं' अधिक संगत प्रतीत होता है इसलिए हमने यहां यही शीर्षक रखा है।

तुलना हेतु द्रष्टव्य—भगवई २, ७/२४ का भाष्य पृ. ३३६ तथा कप्पो ४/१२,१३ का टिप्पण।

शब्द विमर्श

१. उवातिणावेति—अतिक्रमण करता है।[९] आगे ले जाता है।[१०]

२. मेरा—मर्यादा, सीमा।

---

१. निभा. ३, चू. पृ. ३५०—सज्जणादी पदा एगट्ठिया। अहवा—आसेवणभावे सज्जणता, मणसा पीतिगमणं रज्जणता, सदोसुवलद्धे वि अविरमो गेधी, अगम्मगमणासेवणे वि अज्जुववातो।

२. कप्पो ४/१२,१३

३. भग. ७/२४

४. निभा. गा. ४१४२-४१४४

५. वही, भा. ३ चू. पृ. ३५१,३५५

६. वही, गा. ४१४१-४१९५ (सचूर्णि)

७. वही, गा. ४१४२-४१४६ व उनकी चूर्णि।

८. वही, गा. ४१६९

९. वही, भा. ३ चू.पृ. ३५१—कालप्पमाणं अभिहितं जं तस्स अतिक्कमणं तं उवातिणावितं भन्नति।

१०. वही, पृ. ३५५—खेत्तप्पमाणाओ परेण असणाइ संकामेइ।

१७. सूत्र ३३-४०

ग्यारहवें उद्देशक में 'दिवा-रात्रि-भोजन-पद' नामक आलापक में चतुर्विध आहार—अशन, पान आदि के विषय में चार भंग प्रज्ञप्त हैं। गोमय एवं आलेपनजात के विषय में भी वे ही चार-चार भंग बनते हैं। दिन में गृहीत गोबर अथवा किसी आलेपन—मलहम, लेप आदि को रात में शरीर के किसी व्रण आदि पर लगाने से रात्रिभोजन व्रत में अतिचार लगता है, उसी प्रकार रात में गृहीत गोबर या आलेपन को रात अथवा दिन में एक या अनेक बार लगाने से तथा दिन में ग्रहण किए हुए गोबर आदि को परिवासित रखकर दूसरे दिन उपयोग में लेने से भी रात्रिभोजन विरमणव्रत में अतिचार लगता है। परिवासित गोबर एवं आलेपनजात का उपयोग करने में सन्निधि, संचय आदि से होने वाले दोष भी संभव हैं। कप्पो (बृहत्कल्प सूत्र) में आगाढ़ कारण के सिवाय परिवासित आलेपन से शरीर पर आलेपन-विलेपन का तथा तैल, घृत आदि से शरीर पर म्रक्षण आदि करने का निषेध है।[१] ज्ञातव्य है कि वेदना की उपशान्ति, व्रण-परिपाक, रुधिर, पीव आदि के निर्घातन एवं व्रणसंरोहण के लिए अनेक प्रकार के आलेपन द्रव्यों[२] तथा विषघात के लिए गोबर का उपयोग किया जाता है। ये अनाहार्य द्रव्य हैं। अतः आगाढ़ कारण के बिना इन्हें परिवासित रखकर उपयोग करने से लघुचातुर्मासिक प्रायश्चित्त प्राप्त होता है।[३]

निशीथ भाष्य एवं चूर्णि में बताया गया है कि तत्काल का विसर्जित, छाया में स्थित, अशुष्क माहिष-गोमय (भैंस का गोबर) आशु विषघाती होता है, विषापहार में अधिक गुणकारी होता है।[४] इस दृष्टि से भी परिवासित गोबर का वर्जन अपेक्षित है।

१८. सूत्र ४१,४२

उद्यतविहारी संविग्न भिक्षु को अपने से भिन्न समाचारी वाले असांभोजिक भिक्षु से भी अपना वैयावृत्य नहीं करवाना और न ही उस निमित्त से उनके साथ आहार, पानी का आदान-प्रदान करना, फिर गृहस्थ अथवा अन्यतीर्थिक की तो बात ही क्या? गृहस्थ एवं अन्यतीर्थिक को सम्पूर्ण सावद्ययोग का त्याग नहीं होता। वे भिक्षु की उपधि को सचित्त पृथिवीकाय, वनस्पतिकाय आदि पर गिरा सकते हैं, मलिन एवं दुर्गन्धयुक्त उपकरणों को देखकर घृणा से अवर्णवाद कर सकते हैं, पात्र आदि का हरण कर सकते हैं। अतः भिक्षु उनसे अपनी उपधि का वहन न करवाए।[५]

'यह मेरा उपकरण वहन करता है'—ऐसा सोचकर उसे अशन, पान आदि देना भी साधु-चर्या के योग्य कार्य नहीं। भिक्षु से प्राप्त अशन, पान आदि से बलवृद्धि कर वह सावद्य कार्यों में प्रवृत्त होता है, वहां भी प्रकारान्तर से भिक्षु को अनुमोदना का दोष लगता है। उसे खाने के बाद कोई व्याधि आदि हो जाए तो निन्दा, शासन की अप्रभावना आदि अन्य दोष भी संभव हैं।[६]

१९. सूत्र ४३

भगवान महावीर ने षड्जीवनिकाय का प्रतिपादन किया। चलने-फिरने वाले त्रस प्राणियों के समान पृथिवी, जल, अग्नि, वायु एवं वनस्पति भी सजीव है। बड़ी-बड़ी और अत्यधिक जल वाली नदियों में अप्कायिक जीवों के साथ-साथ वनस्पतिकायिक जीव एवं छोटे-बड़े त्रसप्राणी भी होते हैं। उन्हें भुजाओं से अथवा कुम्भ, दृति, नौका आदि साधनों से तैरना, पार करना अहिंसा महाव्रत का अतिचार है एवं इसमें अन्य अनेक व्यावहारिक दोष भी संभव हैं।

कप्पो (बृहत्कल्प सूत्र)[७] तथा ठाणं में गंगा, यमुना आदि पांच नदियों में एक महीने में दो अथवा तीन बार उत्तरण एवं संतरण का निषेध प्रज्ञप्त है। प्रस्तुत सूत्र में उसी का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है। ज्ञातव्य है कि प्रस्तुत सूत्र में भी ठाणं के समान 'एरावती' नदी को महार्णव महानदी माना है, जबकि कप्पो (बृहत्कल्प सूत्र) में इसके स्थान पर कोशिका का ग्रहण किया गया है तथा कुणाला में प्रवहमान ऐरावती को जंघासंतार्य मानते हुए उसे पार करने की विधि का निर्देश दिया गया है।[९] आयारचूला में नौका द्वारा नदी पार करने के समान जंघासंतार्य जल को पार करते समय भी सम्पूर्ण शरीर का प्रमार्जन, साकार भक्त-प्रत्याख्यान एवं 'एगं पायं जले किच्चा, एगं पायं थले किच्चा—इस सम्पूर्ण विधि का निर्देश दिया गया है।[१०] ठाणं में इन नदियों के विस्तार आदि की संक्षिप्त जानकारी मिलती है।[११]

शब्द-विमर्श

१. **महार्णव**—समुद्र की भांति अथाह जलवाली।[१२]

२. **उत्तरण**—भुजाओं से तैरकर पार करना।

३. **संतरण**—कुंभ, दृति, नौका आदि से पार करना।[१३]

तुलना हेतु द्रष्टव्य ठाणं ५/९८ का टिप्पण, कप्पो ४/२९,३० का टिप्पण तथा नवसुत्ताणि पृ. ५८५ का फुटनोट ७

१. कप्पो ५/३८,३९
२. निभा. गा. ४२०१
३. निसीह. १२/३३-४०
४. निभा. गा. ४१९९ (सचूर्णि)
५. वही, गा. ४२०५
६. वही, गा. ४२०६
७. कप्पो ४/२९
८. ठाणं ५/९८
९. कप्पो ४/३०
१०. आचू. ३/१५,३४
११. ठाणं १०/२५ का टिप्पण
१२. निभा. भा. ३ चू. पृ. ३६४
१३. वही, गा. ४२०९

तेरसमो उद्देसो

तेरहवां उद्देशक

आमुख

प्रस्तुत उद्देशक का मुख्य विषय है—अव्यवहित, सचित्त, सस्निग्ध आदि पृथिवी पर स्थान, निषीदन आदि, गृहस्थों एवं अन्यतीर्थिकों को अतीतनिमित्त, लक्षण, व्यंजन, स्वप्न आदि के फलाफल बताने, उनके लिए धातु, निधि आदि का कथन करने, मात्रक, दर्पण, तलवार, तैल, घृत, फाणित आदि में स्वयं का प्रतिबिम्ब देखने, धात्रीपिण्ड, दूतीपिण्ड, निमित्तपिण्ड आदि पन्द्रह प्रकार के ग्रहणैषणा के दोषों से युक्त आहार को ग्रहण करने आदि का प्रायश्चित्त।

पूर्ववर्ती उद्देशक में पांच स्थावरकायों के आरम्भ-समारम्भ, सचित्त वृक्ष पर आरोहण, पुरःकर्म आदि से सम्बन्धित प्रायश्चित्त का कथन किया गया है। इस उद्देशक का प्रारम्भ सचित्त, सस्निग्ध, सरजस्क पृथिवी, शिला आदि पर स्थान, निषीदन आदि क्रियाओं के प्रायश्चित्त के कथन से किया गया है—इस अपेक्षा से इन दोनों उद्देशकों में अहिंसा महाव्रत की विराधना को केन्द्रीय प्रतिपाद्य माना जा सकता है। अक्षुण्ण पृथिवीतल तथा पृथिवी के अंतर्गत होने वाले खनिज ठोस एवं द्रव पार्थिव पदार्थ सचेतन होते हैं—यह जैन तत्त्व दर्शन का विशेष अभ्युपगम है। इन्द्रिय ज्ञान एवं वैज्ञानिक उपकरणों के द्वारा पृथिवी की सचेतनता को नहीं जाना जा सकता क्योंकि उनमें सूक्ष्म स्पन्दन जितनी भी गतिमयता नहीं होती। निशीथभाष्य में पृथिवीकायिक आदि एकेन्द्रिय जीवों की वेदना को सौ वर्ष की आयु वाले जराजीर्ण वृद्ध तथा सुप्त एवं मत्त पुरुष की वेदना से उपमित किया गया है।[1] भाष्यकार कहते हैं—वनस्पति में स्निग्धता होती है, तभी उसे खाने से शरीर का उपचय होता है, किन्तु उस स्निग्धता से हाथ, पैर आदि का म्रक्षण किया जा सके, ऐसा सम्भव नहीं, क्योंकि वह अत्यल्प होती है। उसी प्रकार एकेन्द्रियों के क्रोध आदि भाव, साकार उपयोग एवं सात-असात वेदना आदि सूक्ष्म और इतने अनुपलक्ष्य होते हैं कि न तो अनतिशायी ज्ञानी उसे जान सकता है और न वे जीव पर्याप्त संज्ञी पञ्चेन्द्रिय प्राणी के समान अपने क्रोधादि भावों को व्यक्त कर सकते।[2]

प्रस्तुत उद्देशक का दूसरा महत्त्वपूर्ण प्रतिपाद्य है—गृहस्थ एवं अन्यतीर्थिक को भिक्षु क्या न सिखाए। भिक्षु पारमार्थिक पथ का अनुगामी होता है। अतः वह ऐसा कोई भी कार्य नहीं कर सकता, जो स्वयं उसके अथवा अन्य किसी के भवभ्रमण का हेतु बने। वे कलाएं, जिन्हें जानकर, सीखकर कोई अर्थोपार्जन कर सके, गृहस्थोचित कार्यों में जिनका उपयोग किया जा सके, उनका प्रशिक्षण गृहस्थों एवं अन्यतीर्थिकों को देने से वे उनका प्रयोग सावद्य कार्यों में कर सकते हैं। इसी प्रकार उनकी सांसारिक हितसिद्धि करने के लिए यदि भिक्षु कौतुककर्म, भूतिकर्म, निमित्त, मंत्र, विद्या आदि का प्रयोग करता है तो वह भी संसार वृद्धि का कारण है। अतः ऐसे कार्य करने वाले भिक्षु को लघुचातुर्मासिक प्रायश्चित्त प्राप्त होता है।

साधना का पथ आत्मसौन्दर्य का पथ है। भिक्षु कषायों को उपशान्त कर उस पथ पर अग्रसर होता है। क्षयोपशम के पथ से विचलित होकर जब वह उदय के पथ पर उतर जाता है, तब वह दर्पण आदि में अपना प्रतिबिम्ब देख लेता है और देहप्रलोकना नामक अतिचार का सेवन कर बैठता है। जिस प्रकार दर्पण देह-प्रलोकन का माध्यम बनता है, वैसे ही तलवार, मणि, तैल, फाणित (द्रव गुड़) आदि में भी प्रतिबिम्ब देखा जा सकता है। अतः प्रस्तुत उद्देशक के सूत्राष्टक में इन विविध पदार्थों में अपना प्रतिबिम्ब देखने का निषेध किया गया है। ये पदार्थ इस तथ्य की ओर संकेत करते हैं कि भिक्षु इस प्रकार के किसी भी पदार्थ में स्वयं का प्रतिबिम्ब न देखे। प्रतिबिम्ब में दृष्ट सौन्दर्य उन्निष्क्रमण, गौरव, हर्षातिरेक से दृप्तचित्तता तथा

---

१. निभा. गा. ४२६३ २. वही, गा. ४२६४,४२६५

अपनी कुरूपता का दर्शन क्षिप्तचित्तता, हीनभावना, बाकुशत्व आदि का हेतु बन सकता है। अतः प्रस्तुत आलापक में देहप्रलोकन का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है।

भिक्षु पूर्ण अहिंसा का पालन करने के लिए गृहस्थ के घर में निष्पन्न सहजसिद्ध आहार को माधुकरी वृत्ति से ग्रहण करता है। एषणा समिति के मुख्यतः तीन भेद हो जाते हैं—गवेषणा, ग्रहणैषणा एवं परिभोगैषणा। धात्रीपिण्ड, दूतीपिण्ड, निमित्तपिण्ड, आजीवकपिण्ड आदि सदोष एषणाओं का सम्बन्ध ग्रहणैषणा के साथ है। यह विषय मुख्यतः पिण्डनिर्युक्ति का है। पिण्डनिर्युक्ति के समान निशीथभाष्य एवं चूर्णि में भी इन दोषों के प्रकारों एवं इनसे होने वाले दोषों की सोदाहरण विवेचना के साथ इनके अपवादों का विस्तृत वर्णन मिलता है।[1] सारा प्रकरण अनेक दृष्टियों से मननीय एवं विचारणीय है।

बारम्बार दोष सेवन करने वाले दुश्शील भिक्षु सद्भिक्षु नहीं होते। उनकी प्रशंसा करना, उन्हें वन्दना-नमस्कार करना, बार-बार उनका संसर्ग करना उनकी असंविग्नता एवं दोषाचरण को प्रोत्साहित करना है। प्रस्तुत उद्देशक में पार्श्वस्थ, अवसन्न आदि की वन्दना एवं प्रशंसा करने का प्रायश्चित्त कथन किया गया है। निशीथभाष्य एवं उसकी चूर्णि में इन असंविग्न भिक्षुओं के दोषों, प्रकारों एवं इनकी वन्दना आदि के विषय में मननीय अपवादों की संक्षिप्त चर्चा की गई है।

---

१. निभा. गा. ४३७५-४४७२ चू. पृ. ४०३-४२६

तेरसमो उद्देसो : तेरहवां उद्देशक

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
पुढवी-पदं	**पृथिवी-पदम्**	**पृथिवी-पद**
१. जे भिक्खू अणंतरहियाए पुढवीए ठाणं वा सेज्जं वा णिसेज्जं वा णिसीहियं वा चेएति, चेएंतं वा सातिज्जति ।।	यो भिक्षुः अनन्तर्हितायां पृथिव्यां स्थानं वा शय्यां वा निषद्यां वा नैषेधिकीं वा चेतयति, चेतयन्तं वा स्वदते।	१. जो भिक्षु अव्यवहित पृथिवी पर स्थान, शय्या, निषद्या अथवा नैषेधिकी करता है अथवा करने वाले का अनुमोदन करता है।
२. जे भिक्खू ससिणिद्धाए पुढवीए ठाणं वा सेज्जं वा णिसेज्जं वा णिसीहियं वा चेएति, चेएंतं वा सातिज्जति ।।	यो भिक्षुः सस्निग्धायां पृथिव्यां स्थानं वा शय्यां वा निषद्यां वा नैषेधिकीं वा चेतयति, चेतयन्तं वा स्वदते।	२. जो भिक्षु सस्निग्ध पृथिवी पर स्थान, शय्या, निषद्या अथवा नैषेधिकी करता है अथवा करने वाले का अनुमोदन करता है।
३. जे भिक्खू ससरक्खाए पुढवीए ठाणं वा सेज्जं वा णिसेज्जं वा णिसीहियं वा चेएति, चेएंतं वा सातिज्जति ।।	यो भिक्षुः ससरक्षायां पृथिव्यां स्थानं वा शय्यां वा निषद्यां वा नैषेधिकीं वा चेतयति, चेतयन्तं वा स्वदते।	३. जो भिक्षु सरजस्क पृथिवी पर स्थान, शय्या, निषद्या अथवा नैषेधिकी करता है अथवा करने वाले का अनुमोदन करता है।
४. जे भिक्खू मट्टियाकडाए पुढवीए ठाणं वा सेज्जं वा णिसेज्जं वा णिसीहियं वा चेएति, चेएंतं वा सातिज्जति ।।	यो भिक्षुः मृत्तिकाकृतायां पृथिव्यां स्थानं वा शय्यां वा निषद्यां वा नैषेधिकीं वा चेतयति, चेतयन्तं वा स्वदते।	४. जो भिक्षु सचित्त मिट्टी युक्त पृथिवी पर स्थान, शय्या, निषद्या अथवा नैषेधिकी करता है अथवा करने वाले का अनुमोदन करता है।
५. जे भिक्खू चित्तमंताए पुढवीए ठाणं वा सेज्जं वा णिसेज्जं वा णिसीहियं वा चेएति, चेएंतं वा सातिज्जति ।।	यो भिक्षुः चित्तवत्यां पृथिव्यां स्थानं वा शय्यां वा निषद्यां वा नैषेधिकीं वा चेतयति, चेतयन्तं वा स्वदते।	५. जो भिक्षु सचित्त पृथिवी पर स्थान, शय्या, निषद्या अथवा नैषेधिकी करता है अथवा करने वाले का अनुमोदन करता है।
६. जे भिक्खू चित्तमंताए सिलाए ठाणं वा सेज्जं वा णिसेज्जं वा णिसीहियं वा चेएति, चेएंतं वा सातिज्जति ।।	यो भिक्षुः चित्तवत्यां शिलायां स्थानं वा शय्यां वा निषद्यां वा नैषेधिकीं वा चेतयति, चेतयन्तं वा स्वदते।	६. जो भिक्षु सचित्त शिला पर स्थान, शय्या, निषद्या अथवा नैषेधिकी करता है अथवा करने वाले का अनुमोदन करता है।
७. जे भिक्खू चित्तमंताए लेलूए ठाणं वा सेज्जं वा णिसेज्जं वा णिसीहियं वा चेएति, चेएंतं वा सातिज्जति ।।	यो भिक्षुः चित्तवति 'लेलुए' स्थानं वा शय्यां वा निषद्यां वा नैषेधिकीं वा चेतयति, चेतयन्तं वा स्वदते।	७. जो भिक्षु सचित्त ढेले पर स्थान, शय्या, निषद्या अथवा नैषेधिकी करता है अथवा करने वाले का अनुमोदन करता है।[1]

दारु-पदं

८. जे भिक्खू कोलावासंसि वा दारुए जीवपइट्ठिए सअंडे सपाणे सबीए सहरिए सओस्से सउदए सउत्तिंग-पणग-दग-मट्टिय-मक्कडा-संताणगंसि ठाणं वा सेज्जं वा णिसेज्जं वा णिसीहियं वा चेएति, चेएंतं वा सातिज्जति ।।

दारु-पदम्

यो भिक्षुः 'कोला'वासे वा दारुके जीवप्रतिष्ठिते साण्डे सप्राणे सबीजे सहरिते सावश्याये सोदके-सोत्तिंग-पनक-दक-मृत्तिका-मर्कटकसंतानके स्थानं वा शय्यां वा निषद्यां वा नैषेधिकीं वा चेतयति, चेतयन्तं वा स्वदते ।

दारु-पद

८. जो भिक्षु घुणयुक्त लकड़ी, जीवप्रतिष्ठित लकड़ी, अंडेसहित, प्राणसहित, बीजसहित, हरितसहित, ओससहित उदकसहित और कीटिकानगर, पनक, कीचड़ अथवा मकड़ी के जाले से युक्त लकड़ी पर स्थान, शय्या, निषद्या अथवा नैषेधिकी करता है अथवा करने वाले का अनुमोदन करता है।[२]

अंतरिक्खजाय-पदं

९. जे भिक्खू थूणंसि वा गिहेलुयंसि वा उसुकालंसि वा कामजलंसि वा अण्णयरंसि वा तहप्पगारंसि अंतरिक्खजायंसि दुब्बद्धे दुण्णिक्खित्ते अणिकंपे चलाचले ठाणं वा सेज्जं वा णिसेज्जं वा णिसीहियं वा चेएति, चेएंतं वा सातिज्जति ।।

अन्तरिक्षजात-पदम्

यो भिक्षुः स्थूणायां वा गृहैलुके वा 'उसुकाले' वा कामजले वा अन्यतरस्मिन् वा तथाप्रकारे अन्तरिक्षजाते दुर्बद्धे दुर्निक्षिप्ते अनिष्कम्पे चलाचले स्थानं वा शय्यां वा निषद्यां वा नैषेधिकीं वा चेतयति, चेतयन्तं वा स्वदते ।

अन्तरिक्षजात-पद

९. जो भिक्षु खंभे, देहली, ऊखल, स्नानपीठ अथवा अन्य वैसे अंतरिक्षजात, जो दुर्बद्ध हों, दुर्निक्षिप्त हों, अनिष्कम्प हों एवं चलाचल हों, उन पर स्थान, शय्या, निषद्या अथवा नैषेधिकी करता है अथवा करने वाले का अनुमोदन करता है।

१०. जे भिक्खू कुलियंसि वा भित्तिंसि वा सिलंसि वा लेलुंसि वा अण्णयरंसि वा तहप्पगारंसि अंतरिक्खजायंसि दुब्बद्धे दुण्णिक्खित्ते अणिकंपे चलाचले ठाणं वा सेज्जं वा णिसेज्जं वा णिसीहियं वा चेएति, चेएंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः कुड्ये वा भित्तौ वा शिलायां वा 'लेलुंसि' वा अन्यतरस्मिन् वा तथाप्रकारे अन्तरिक्षजाते दुर्बद्धे दुर्निक्षिप्ते अनिष्कम्पे चलाचले स्थानं वा शय्यां वा निषद्यां वा नैषधिकीं वा चेतयति, चेतयन्तं वा स्वदते ।

१०. जो भिक्षु कुड्य, भित्ति, शिला, ढेला अथवा अन्य वैसे अन्तरिक्षजात, जो दुर्बद्ध हों, दुर्निक्षिप्त हों, अनिष्कम्प हों एवं चलाचल हों, उन पर स्थान, शय्या, निषद्या अथवा नैषेधिकी करता है अथवा करने वाले का अनुमोदन करता है।

११. जे भिक्खू खंधंसि वा फलिहंसि वा मंचंसि वा मंडबंसि वा मालंसि वा पासायंसि वा हम्मतलंसि वा अण्णयरंसि वा तहप्पगारंसि अंतरिक्खजायंसि दुब्बद्धे दुण्णिक्खित्ते अणिकंपे चलाचले ठाणं वा सेज्जं वा णिसेज्जं वा णिसीहियं वा चेएति, चेएंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः स्कन्धे वा परिघे वा मंचे वा मण्डपे वा 'माले' वा प्रासादे वा हर्म्यतले वा अन्यतरस्मिन् वा तथाप्रकारे अन्तरिक्षजाते दुर्बद्धे दुर्निक्षिप्ते अनिष्कम्पे चलाचले स्थानं वा शय्यां वा निषद्यां वा नैषेधिकीं वा चेतयति, चेतयन्तं वा स्वदते ।

११. जो भिक्षु प्राकार, अर्गला, मचान, मंडप, माल (मंजिल), प्रासाद, हर्म्यतल अथवा अन्य वैसे अंतरिक्षजात, जो दुर्बद्ध हों, दुर्निक्षिप्त हों, अनिष्कम्प हों एवं चलाचल हों, उन पर स्थान, शय्या, निषद्या अथवा नैषेधिकी करता है अथवा करने वाले का अनुमोदन करता है।[३]

अण्णउत्थिय-गारत्थिय-पदं

१२. जे भिक्खू अण्णउत्थियं वा गारत्थियं वा सिप्पं वा सिलोगं वा अट्ठापदं वा कक्कडगं वा वुग्गहं वा सलाहं वा सलाहकहत्थयं वा सिक्खावेति, सिक्खावेंतं वा सातिज्जति ।।

१३. जे भिक्खू अण्णउत्थियं वा गारत्थियं वा आगाढं वदति, वदंतं वा सातिज्जति ।।

१४. जे भिक्खू अण्णउत्थियं वा गारत्थियं वा फरुसं वदति, वदंतं वा सातिज्जति ।।

१५. जे भिक्खू अण्णउत्थियं वा गारत्थियं वा आगाढं फरुसं वदति, वदंतं वा सातिज्जति ।।

१६. जे भिक्खू अण्णउत्थियं वा गारत्थियं वा अण्णयरीए अच्चासायणाए अच्चासाएति, अच्चासाएंतं वा सातिज्जति ।।

१७. जे भिक्खू अण्णउत्थियाण वा गारत्थियाण वा कोउगकम्मं करेति, करेंतं वा सातिज्जति ।।

१८. जे भिक्खू अण्णउत्थियाण वा गारत्थियाण वा भूतिकम्मं करेति, करेंतं वा सातिज्जति ।।

१९. जे भिक्खू अण्णउत्थियाण वा गारत्थियाण वा पसिणं वागरेइ, वागरेंतं वा सातिज्जति ।।

२०. जे भिक्खू अण्णउत्थियाण वा

अन्ययूथिक-अगारस्थित-पदम्

यो भिक्षुः अन्ययूथिकं वा अगारस्थितं वा शिल्पं वा श्लोकं वा अष्टापदं वा कर्कटकं वा व्युद्ग्रहं वा श्लाघां वा श्लाघाहस्तकं वा शिक्षयति, शिक्षयन्तं वा स्वदते।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकं वा अगारस्थितं वा आगाढं वदति, वदन्तं वा स्वदते।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकं वा अगारस्थितं वा परुषं वदति, वदन्तं वा स्वदते।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकं वा अगारस्थितं वा आगाढं परुषं वदति, वदन्तं वा स्वदते।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकं वा अगारस्थितं वा अन्यतरया अत्याशातनया अत्याशातयति, अत्याशातयन्तं वा स्वदते।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकानां वा अगारस्थितानां वा कौतुककर्म करोति, कुर्वन्तं वा स्वदते।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकानां वा अगारस्थितानां वा भूतिकर्म करोति, कुर्वन्तं वा स्वदते।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकानां वा अगारस्थितानां वा प्रश्नं व्याकरोति, व्याकुर्वन्तं वा स्वदते।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकानां वा

अन्यतीर्थिक-अगारस्थित-पद

१२. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ को शिल्प, श्लोक, अष्टापद, कर्कटक हेतु, व्युद्ग्रह, श्लाघा (काव्यरचना) अथवा सब कलाओं को सिखाता है अथवा सिखाने वाले का अनुमोदन करता है।[४]

१३. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ को आगाढ़ वचन कहता है अथवा कहने वाले का अनुमोदन करता है।

१४. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ को परुष वचन कहता है अथवा कहने वाले का अनुमोदन करता है।

१५. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ को आगाढ़-परुष वचन कहता है अथवा कहने वाले का अनुमोदन करता है।

१६. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ की किसी एक अत्याशातना से अत्याशातना करता है अथवा अत्याशातना करने वाले का अनुमोदन करता है।[५]

१७. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ का कौतुक कर्म करता है अथवा करने वाले का अनुमोदन करता है।

१८. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ का भूतिकर्म करता है अथवा करने वाले का अनुमोदन करता है।

१९. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के लिए प्रश्न-विद्या का प्रयोग करता है अथवा प्रयोग करने वाले का अनुमोदन करता है।

२०. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के

गारत्थियाण वा पसिणापसिणं वागरेइ, वागरेंतं वा सातिज्जति ।।

अगारस्थितानां वा प्रश्नाप्रश्नं व्याकरोति, व्याकुर्वन्तं वा स्वदते।

लिए प्रश्नाप्रश्न-विद्या का प्रयोग करता है अथवा प्रयोग करने वाले का अनुमोदन करता है।

२१. जे भिक्खू अण्णउत्थियाण वा गारत्थियाण वा तीतं निमित्तं वागरेइ, वागरेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकानां वा अगारस्थितानां वा अतीतनिमित्तं व्याकरोति, व्याकुर्वन्तं वा स्वदते।

२१. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ को अतीत निमित्त बताता है अथवा बताने वाले का अनुमोदन करता है।

२२. जे भिक्खू अण्णउत्थियाण वा गारत्थियाण वा लक्खणं वागरेइ, वागरेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकानां वा अगारस्थितानां वा लक्षणं व्याकरोति, व्याकुर्वन्तं वा स्वदते।

२२. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ को लक्षण (लक्षणों का फल) बताता है अथवा बताने वाले का अनुमोदन करता है।

२३. जे भिक्खू अण्णउत्थियाण वा गारत्थियाण वा वंजणं वागरेइ, वागरेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकानां वा अगारस्थितानां वा व्यञ्जनं व्याकरोति, व्याकुर्वन्तं वा स्वदते।

२३. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ को व्यंजन (व्यंजन का फल) बताता है अथवा बताने वाले का अनुमोदन करता है।

२४. जे भिक्खू अण्णउत्थियाण वा गारत्थियाण वा सुमिणं वागरेइ, वागरेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकानां वा अगारस्थितानां वा स्वप्नं व्याकरोति, व्याकुर्वन्तं वा स्वदते।

२४. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ को स्वप्न (स्वप्न का फल) बताता है अथवा बताने वाले का अनुमोदन करता है।

२५. जे भिक्खू अण्णउत्थियाण वा गारत्थियाण वा विज्जं पउंजति, पउंजंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकानां वा अगारस्थितानां वा विद्यां प्रयुङ्क्ते, प्रयुञ्जानं वा स्वदते।

२५. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के लिए विद्या का प्रयोग करता है अथवा प्रयोग करने वाले का अनुमोदन करता है।

२६. जे भिक्खू अण्णउत्थियाण वा गारत्थियाण वा मंतं पउंजति, पउंजंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकानां वा अगारस्थितानां वा मन्त्रं प्रयुङ्क्ते, प्रयुञ्जानं वा स्वदते।

२६. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के लिए मंत्र का प्रयोग करता है अथवा प्रयोग करने वाले का अनुमोदन करता है।

२७. जे भिक्खू अण्णउत्थियाण वा गारत्थियाण वा जोगं पउंजति, पउंजंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकानां वा अगारस्थितानां वा योगं प्रयुङ्क्ते, प्रयुञ्जानं वा स्वदते।

२७. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के लिए योग का प्रयोग करता है अथवा प्रयोग करने वाले का अनुमोदन करता है।[६]

२८. जे भिक्खू अण्णउत्थियाण वा गारत्थियाण वा नट्ठाणं मूढाणं विप्परियासियाणं मग्गं वा पवेदेति, संधिं वा पवेदेति, मग्गाओ वा संधिं पवेदेति, संधीओ वा मग्गं पवेदेति, पवेदेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकानां वा अगारस्थितानां वा नष्टानां मूढानां विपर्यस्तानां मार्गं वा प्रवेदयति, संधिं वा प्रवेदयति, मार्गाद् वा संधिं प्रवेदयति, संधेः वा मार्गं प्रवेदयति, प्रवेदयन्तं वा स्वदते।

२८. जो भिक्षु पथच्युत, दिशामूढ़ तथा विपर्यस्त हुए अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ को मार्ग बताता है, संधि बताता है, मार्ग से संधि बताता है अथवा संधि से मार्ग बताता है और बताने वाले का अनुमोदन करता है।[७]

२९. जे भिक्खू अण्णउत्थियाण वा गारत्थियाण वा धाउं पवेदेति, पवेदेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकानां वा अगारस्थितानां वा धातुं प्रवेदयति, प्रवेदयन्तं वा स्वदते।

२९. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ को धातु का कथन करता है अथवा कथन करने वाले का अनुमोदन करता है।

३०. जे भिक्खू अण्णउत्थियाण वा गारत्थियाण वा णिहिं पवेदेति, पवेदेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकानां वा अगारस्थितानां वा निधिं प्रवेदयति, प्रवेदयन्तं वा स्वदते।

३०. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ को निधि का कथन करता है अथवा कथन करने वाले का अनुमोदन करता है।[८]

अप्पाणं देहति-पदं

आत्मानं पश्यति-पदम्

आत्मदर्शन-पद

३१. जे भिक्खू मत्तए अप्पाणं देहति, देहंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः अमत्रके आत्मानं पश्यति, पश्यन्तं वा स्वदते।

३१. जो भिक्षु मात्रक में स्वयं को देखता है अथवा देखने वाले का अनुमोदन करता है।

३२. जे भिक्खू अद्दाए अप्पाणं देहति, देहंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः 'अद्दाए' आत्मानं पश्यति, पश्यन्तं वा स्वदते।

३२. जो भिक्षु दर्पण में स्वयं को देखता है अथवा देखने वाले का अनुमोदन करता है।

३३. जे भिक्खू असीए अप्पाणं देहति, देहंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः असौ आत्मानं पश्यति, पश्यन्तं वा स्वदते।

३३. जो भिक्षु तलवार में स्वयं को देखता है अथवा देखने वाले का अनुमोदन करता है।

३४. जे भिक्खू मणीए अप्पाणं देहति, देहंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः मणौ आत्मानं पश्यति, पश्यन्तं वा स्वदते।

३४. जो भिक्षु मणि में स्वयं को देखता है अथवा देखने वाले का अनुमोदन करता है।

३५. जे भिक्खू उड्डपाणे अप्पाणं देहति, देहंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः 'उड्डपाणे' आत्मानं पश्यति, पश्यन्तं वा स्वदते।

३५. जो भिक्षु कुंडे के पानी में स्वयं को देखता है अथवा देखने वाले का अनुमोदन करता है।

३६. जे भिक्खू तेल्ले अप्पाणं देहति, देहंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः तैले आत्मानं पश्यति, पश्यन्तं वा स्वदते।

३६. जो भिक्षु तेल में स्वयं को देखता है अथवा देखने वाले का अनुमोदन करता है।

३७. जे भिक्खू फाणिए अप्पाणं देहति, देहंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः फाणिते आत्मानं पश्यति, पश्यन्तं वा स्वदते।

३७. जो भिक्षु फाणित में स्वयं को देखता है अथवा देखने वाले का अनुमोदन करता है।

३८. जे भिक्खू वसाए अप्पाणं देहति, देहंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः वसायाम् आत्मानं पश्यति, पश्यन्तं वा स्वदते।

३८. जो भिक्षु वसा में स्वयं को देखता है अथवा देखने वाले का अनुमोदन करता है।[९]

तिगिच्छा-पदं

चिकित्सा-पदम्

चिकित्सा-पद

३९. जे भिक्खू वमणं करेति, करेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः वमनं करोति, कुर्वन्तं वा स्वदते।

३९. जो भिक्षु वमन करता है अथवा करने वाले का अनुमोदन करता है।

४०. जे भिक्खू विरेयणं करेति, करेंतं वा सातिज्जति ।।	यो भिक्षुः विरेचनं करोति, कुर्वन्तं वा स्वदते ।	४०. जो भिक्षु विरेचन करता है अथवा करने वाले का अनुमोदन करता है ।
४१. जे भिक्खू वमण-विरेयणं करेति, करेंतं वा सातिज्जति ।।	यो भिक्षुः वमनविरेचनं करोति, कुर्वन्तं वा स्वदते ।	४१. जो भिक्षु वमन-विरेचन करता है अथवा करने वाले का अनुमोदन करता है ।[१०]
४२. जे भिक्खू अरोगे य परिकम्मं करेति, करेंतं वा सातिज्जति ।।	यो भिक्षुः अरोगे च परिकर्म करोति, कुर्वन्तं वा स्वदते ।	४२. जो भिक्षु आरोग्य-प्रतिकर्म (नीरोग होने पर भी चिकित्सा) करता है अथवा करने वाले का अनुमोदन करता है ।[११]
पासत्थादि-वंदण-पसंसण-पदं	**पार्श्वस्थादि-वंदन-प्रशंसन-पदम्**	**पार्श्वस्थादि-वंदन-प्रशंसन-पद**
४३. जे भिक्खू पासत्थं वंदति, वंदंतं वा सातिज्जति ।।	यो भिक्षुः पार्श्वस्थं वन्दते, वन्दमानं वा स्वदते ।	४३. जो भिक्षु पार्श्वस्थ को वन्दना करता है अथवा वन्दना करने वाले का अनुमोदन करता है ।
४४. जे भिक्खू पासत्थं पसंसति, पसंसंतं वा सातिज्जति ।।	यो भिक्षुः पार्श्वस्थं प्रशंसति, प्रशंसन्तं वा स्वदते ।	४४. जो भिक्षु पार्श्वस्थ की प्रशंसा करता है अथवा प्रशंसा करने वाले का अनुमोदन करता है ।
४५. जे भिक्खू ओसण्णं वंदति, वंदंतं वा सातिज्जति ।।	यो भिक्षुः अवसन्नं वन्दते, वन्दमानं वा स्वदते ।	४५. जो भिक्षु अवसन्न को वन्दना करता है अथवा वन्दना करने वाले का अनुमोदन करता है ।
४६. जे भिक्खू ओसण्णं पसंसति, पसंसंतं वा सातिज्जति ।।	यो भिक्षुः अवसन्नं प्रशंसति, प्रशंसन्तं वा स्वदते ।	४६. जो भिक्षु अवसन्न की प्रशंसा करता है अथवा प्रशंसा करने वाले का अनुमोदन करता है ।
४७. जे भिक्खू कुसीलं वंदति, वंदंतं वा सातिज्जति ।।	यो भिक्षुः कुशीलं वन्दते, वन्दमानं वा स्वदते ।	४७. जो भिक्षु कुशील को वन्दना करता है अथवा वन्दना करने वाले का अनुमोदन करता है ।
४८. जे भिक्खू कुसीलं पसंसति, पसंसंतं वा सातिज्जति ।।	यो भिक्षुः कुशीलं प्रशंसति, प्रशंसन्तं वा स्वदते ।	४८. जो भिक्षु कुशील की प्रशंसा करता है अथवा प्रशंसा करने वाले का अनुमोदन करता है ।
४९. जे भिक्खू नितियं वंदति, वंदंतं वा सातिज्जति ।।	यो भिक्षुः नैत्यिकं वन्दते, वन्दमानं वा स्वदते ।	४९. जो भिक्षु नैत्यिक को वन्दना करता है अथवा वन्दना करने वाले का अनुमोदन करता है ।

५०. जे भिक्खू नितियं पसंसति, पसंसंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः नैत्यिकं प्रशंसति, प्रशंसन्तं वा स्वदते।

५०. जो भिक्षु नैत्यिक की प्रशंसा करता है अथवा प्रशंसा करने वाले का अनुमोदन करता है।

५१. जे भिक्खू संसत्तं वंदति, वंदंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः संसक्तं वन्दते, वन्दमानं वा स्वदते।

५१. जो भिक्षु संसक्त को वन्दना करता है अथवा वन्दना करने वाले का अनुमोदन करता है।

५२. जे भिक्खू संसत्तं पसंसति, पसंसंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः संसक्तं प्रशंसति, प्रशंसन्तं वा स्वदते।

५२. जो भिक्षु संसक्त की प्रशंसा करता है अथवा प्रशंसा करने वाले का अनुमोदन करता है।[१२]

५३. जे भिक्खू काहियं वंदति, वंदंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः काथिकं वन्दते, वन्दमानं वा स्वदते।

५३. जो भिक्षु काथिक को वन्दना करता है अथवा वन्दना करने वाले का अनुमोदन करता है।

५४. जे भिक्खू काहियं पसंसति, पसंसंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः काथिकं प्रशंसति, प्रशंसन्तं वा स्वदते।

५४. जो भिक्षु काथिक की प्रशंसा करता है अथवा प्रशंसा करने वाले का अनुमोदन करता है।

५५. जे भिक्खू पासणियं वंदति, वंदंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः प्राश्निकं वन्दते, वन्दमानं वा स्वदते।

५५. जो भिक्षु प्राश्निक को वन्दना करता है अथवा वन्दना करने वाले का अनुमोदन करता है।

५६. जे भिक्खू पासणियं पसंसति, पसंसंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः प्राश्निकं प्रशंसति, प्रशंसन्तं वा स्वदते।

५६. जो भिक्षु प्राश्निक की प्रशंसा करता है अथवा प्रशंसा करने वाले का अनुमोदन करता है।

५७. जे भिक्खू मामायं वंदति, वंदंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः मामाकं वन्दते, वन्दमानं वा स्वदते।

५७. जो भिक्षु मामाक को वन्दना करता है अथवा वन्दना करने वाले का अनुमोदन करता है।

५८. जे भिक्खू मामायं पसंसति, पसंसंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः मामाकं प्रशंसति, प्रशंसन्तं वा स्वदते।

५८. जो भिक्षु मामाक की प्रशंसा करता है अथवा प्रशंसा करने वाले का अनुमोदन करता है।

५९. जे भिक्खू संपसारयं वंदति, वंदंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः सम्प्रसारकं वन्दते, वन्दमानं वा स्वदते।

५९. जो भिक्षु संप्रसारक को वन्दना करता है अथवा वन्दना करने वाले का अनुमोदन करता है।

६०. जे भिक्खू संपसारयं पसंसति, पसंसंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः सम्प्रसारकं प्रशंसति, प्रशंसन्तं वा स्वदते।

६०. जो भिक्षु संप्रसारक की प्रशंसा करता है अथवा प्रशंसा करने वाले का अनुमोदन करता है।[१३]

पिंड-पदं

पिण्ड-पदम्

पिण्ड-पद

६१. जे भिक्खू धाइपिंडं भुंजति, भुंजंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः धात्रीपिण्डं भुङ्क्ते, भुञ्जानं वा स्वदते।

६१. जो भिक्षु धात्रीपिण्ड का भोग करता है अथवा भोग करने वाले का अनुमोदन करता है।

६२. जे भिक्खू दूतिपिंडं भुंजति, भुंजंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः दूतीपिण्डं भुङ्क्ते, भुञ्जानं वा स्वदते।

६२. जो भिक्षु दूतीपिण्ड का भोग करता है अथवा भोग करने वाले का अनुमोदन करता है।

६३. जे भिक्खू णिमित्तपिंडं भुंजति, भुंजंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः निमित्तपिण्डं भुङ्क्ते, भुञ्जानं वा स्वदते।

६३. जो भिक्षु निमित्तपिण्ड का भोग करता है अथवा भोग करने वाले का अनुमोदन करता है।

६४. जे भिक्खू आजीवियपिंडं भुंजति, भुंजंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः आजीविकपिण्डं भुङ्क्ते, भुञ्जानं वा स्वदते।

६४. जो भिक्षु आजीविकपिण्ड का भोग करता है अथवा भोग करने वाले का अनुमोदन करता है।

६५. जे भिक्खू वणीमगपिंडं भुंजति, भुंजंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः वनीपकपिण्डं भुङ्क्ते, भुञ्जानं वा स्वदते।

६५. जो भिक्षु वनीपकपिण्ड का भोग करता है अथवा भोग करने वाले का अनुमोदन करता है।

६६. जे भिक्खू तिगिच्छापिंडं भुंजति, भुंजंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः चिकित्सापिण्डं भुङ्क्ते, भुञ्जानं वा स्वदते।

६६. जो भिक्षु चिकित्सापिण्ड का भोग करता है अथवा भोग करने वाले का अनुमोदन करता है।

६७. जे भिक्खू कोहपिंडं भुंजति, भुंजंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः क्रोधपिण्डं भुङ्क्ते, भुञ्जानं वा स्वदते।

६७. जो भिक्षु क्रोधपिण्ड का भोग करता है अथवा भोग करने वाले का अनुमोदन करता है।

६८. जे भिक्खू माणपिंडं भुंजति, भुंजंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः मानपिण्डं भुङ्क्ते, भुञ्जानं वा स्वदते।

६८. जो भिक्षु मानपिण्ड का भोग करता है अथवा भोग करने वाले का अनुमोदन करता है।

६९. जे भिक्खू मायापिंडं भुंजति, भुंजंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः मायापिण्डं भुङ्क्ते, भुञ्जानं वा स्वदते।

६९. जो भिक्षु मायापिण्ड का भोग करता है अथवा भोग करने वाले का अनुमोदन करता है।

७०. जे भिक्खू लोभपिंडं भुंजति, भुंजंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः लोभपिण्डं भुङ्क्ते, भुञ्जानं वा स्वदते।

७०. जो भिक्षु लोभपिण्ड का भोग करता है अथवा भोग करने वाले का अनुमोदन करता है।

७१. जे भिक्खू विज्जापिंडं भुंजति, भुंजंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः विद्यापिण्डं भुङ्क्ते, भुञ्जानं वा स्वदते।

७१. जो भिक्षु विद्यापिण्ड का भोग करता है अथवा भोग करने वाले का अनुमोदन करता है।

७२. जे भिक्खू मंतपिंडं भुंजति, भुंजंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः मंत्रपिण्डं भुङ्क्ते, भुञ्जानं वा स्वदते।

७२. जो भिक्षु मंत्रपिण्ड का भोग करता है अथवा भोग करने वाले का अनुमोदन करता है।

७३. जे भिक्खू जोगपिंडं भुंजति, भुंजंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः योगपिण्डं भुङ्क्ते, भुञ्जानं वा स्वदते।

७३. जो भिक्षु योगपिण्ड का भोग करता है अथवा भोग करने वाले का अनुमोदन करता है।

७४. जे भिक्खू चुण्णपिंडं भुंजति, भुंजंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः चूर्णपिण्डं भुङ्क्ते, भुञ्जानं वा स्वदते।

७४. जो भिक्षु चूर्णपिण्ड का भोग करता है अथवा भोग करने वाले का अनुमोदन करता है।

७५. जे भिक्खू अंतद्धाणपिंडं भुंजति, भुंजंतं वा सातिज्जति–

यो भिक्षुः अन्तर्धानपिण्डं भुङ्क्ते, भुञ्जानं वा स्वदते।

७५. जो भिक्षु अन्तर्धानपिण्ड का भोग करता है अथवा भोग करने वाले का अनुमोदन करता है।[१४]

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घातियं।।

तत्सेवमानः आपद्यते चातुर्मासिकं परिहारस्थानम् उद्घातिकम्।

–इनका आसेवन करने वाले को उद्घातिक चातुर्मासिक प्रायश्चित्त प्राप्त होता है।

टिप्पण

१. सूत्र १-७

प्रस्तुत आलापक में अव्यवहित पृथिवी, सचित्त जल से स्निग्ध पृथिवी, सचित्त आरण्यरजों से मिश्र पृथिवी, मृत्तिकायुक्त पृथिवी, सचित्त पृथिवी, शिला एवं ढेले पर खड़े होने, बैठने, सोने तथा स्वाध्याय करने का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है।

प्रस्तुत आगम के पांचवें उद्देशक में सचित्त वृक्षमूल में स्थान, शय्या और निषीदिका करने का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है। वहां 'निसीहिया' पद से निषद्या (बैठने की क्रिया) का ग्रहण किया गया है। यहां निषद्या और नैषेधिकी दो पदों से बैठने और स्वाध्याय करने--इन दो क्रियाओं का ग्रहण किया गया है।

जैन तत्त्वदर्शन के अनुसार जब तक पृथिवी किसी शस्त्र से अनुपहत है, शस्त्रपरिणति से रहित है, तब तक वह सचित्त है।[1] एक बलवान तरुण एक जराजीर्ण वृद्ध पर आक्रमण करे, तब उसे जितनी वेदना होती है, सचित्त पृथिवीकाय पर बैठने, सोने आदि की क्रिया से उन जीवों को उससे भी अधिक वेदना होती है।[2] जिस प्रकार वृक्ष की स्निग्धता अल्प होने के कारण सामान्य जन के अनुभव में नहीं आती, उसी प्रकार स्थावर जीवों की वेदना अव्यक्त होने के कारण अनतिशयज्ञानी के लिए अज्ञेय है।[3] सचित्त पृथिवी आदि पर उपर्युक्त अथवा इसी प्रकार की अन्य क्रियाएं करने से उन जीवों की विराधना होती है तथा भिक्षु के अहिंसा महाव्रत की विराधना होती है। अतः सचित्त पृथिवी, शिला, ढेला आदि पर इन क्रियाओं को करना प्रायश्चित्तयोग्य माना गया है।

शब्दविमर्श हेतु द्रष्टव्य निसीह. ७/६८-७४।

२. सूत्र ८

सूखी हुई लकड़ी अथवा लकड़ी से बने फलक आदि पर भिक्षु स्थान, निषीदन आदि क्रियाएं कर सकता है, किन्तु उसमें घुण लगे हों अथवा वह अन्य किसी त्रस प्राणी या उसके अंडों से युक्त हो तो उस पर बैठने, सोने आदि से संयमविराधना एवं आत्मविराधना संभव है। इसी प्रकार बीज, हरियाली, कीटिकानगर, काई, ओस, कीचड़ आदि से युक्त पृथ्वी अथवा काष्ठ-फलक आदि पर भी भिक्षु को स्थान, निषीदन, स्वाध्याय आदि क्रियाएं नहीं करनी चाहिए, ताकि जीव-विराधना न हो।

यद्यपि सूत्रपाठ में विशेष्य के रूप में एक 'दारु' पद ही प्रयुक्त है तथा इसका नाम भी दारुपद है तथापि चूर्णिकार ने सप्राण और सबीज के विशेष्य के रूप में 'दारुए पुढवीए वा' दो पदों का प्रयोग किया है।[4] पृथिवी पर भी प्राण, बीज, कीटिकानगर आदि हो सकते हैं। अतः उस पर भी बैठना, खड़ा होना आदि अहिंसा महाव्रत का अतिचार होने से प्रायश्चित्तार्ह है।

३. सूत्र ९-११

प्रस्तुत आलापक में ऐसे ऊंचे स्थानों पर खड़े होने, बैठने, लेटने अथवा स्वाध्याय करने का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है, जो रस्सी, काष्ठ आदि से भलीभांति बद्ध नहीं हो, सम्यक् रूप से स्थापित एवं स्थिर न हो। दुर्बद्ध, दुर्निक्षिप्त एवं चलाचल खम्भे, देहली, ऊखल आदि पर बैठना, सोना आदि क्रियाएं करने पर गिरने का भय रहता है। अधिक ऊपर से गिरने पर हाथ, पैर आदि टूटने से आत्मविराधना, पात्र टूटने से भाजनविराधना एवं नीचे छोटे जीवों के मर जाने से संयमविराधना संभव है। कदाचित् खंभा, देहली आदि टूट जाए और गृहस्थ उनकी मरम्मत करवाए, नया बनाए तो अधिकरण, लोकापवाद आदि दोष भी संभव हैं।[5]

आयारचूला में भी आगाढ़-अनागाढ़ कारण के बिना मंच, माल (मंजिल), प्रासाद, हर्म्यतल और उसी प्रकार के अन्तरिक्ष-जात स्थानों पर स्थान, शय्या और निषीधिका करने का निषेध प्रज्ञप्त है।[6]

शब्द विमर्श

थूणा--वेली (खंभा, खूंटी)।[7]

गिहेलुय--देहली।[8]

---

१. दसवे. ४/४
२. निभा. गा. ४२६३
३. वही, गा. ४२६४
४. वही, भा. ३, चू.पृ. ३७६-सपाणे वा दारुए पुढवीए वा।
५. वही, गा. ४२७०-
पवडंते कायवहो आउवघातो य भाणभेदादी।
तस्सेव पुणक्करणे, अहिगरणं अण्णकरणं वा।।
६. आचू. २/१८
७. निभा. गा. ४२६८-थूणाओ होंति वियली।
८. वही-गिहेलुओ उंबरो।

उसुकाल—ऊखल।[1]

कामजल—स्नानपीठ।[2]

अंतरिक्खजाय—जमीन के ऊपर रही हुई प्रासाद, मंच आदि वस्तु।[3]

कुलिय—मिट्टी से बनाई गई भींत।[4]

भित्ति—ईंट आदि की दीवार।[5]

खंध—प्राकार अथवा पीठिका[6] अथवा मिट्टी, ईंट आदि से बना घर।[7]

फलिह—अर्गला, नगरद्वार को बन्द करने के बाद उसके पीछे दिया जाने वाला फलक।[8]

मंच—दीवार रहित मंच, मचान।[9]

मंडप—वल्ली आदि से वेष्टित स्थान, विश्राम या स्नान आदि करने का स्थान।[10]

माल—घर की दूसरी मंजिल आदि।[11]

प्रासाद—महल।[12]

हर्म्यतल—सबसे ऊपर की छत।[13]

४. सूत्र १२

भिक्षु गृहस्थ एवं अन्यतीर्थिक का आध्यात्मिक मार्गदर्शन कर सकता है। उन्हें सन्मार्ग दिखा सकता है। गृहस्थ अथवा अन्यतीर्थिक को विविध प्रकार की शिल्पकला का प्रशिक्षण देना, स्तुति-वर्णन, द्यूत, व्युद्ग्रह आदि में जीतने की कला सिखाना आदि कार्य सावद्य हैं। वे इनका जीविकोपार्जन आदि अन्य गृहस्थप्रायोग्य प्रयोजनों में उपयोग कर सकते हैं, अतः भिक्षु गृहस्थ अथवा अन्यतीर्थिक को शिल्प, श्लोक, अष्टापद आदि न सिखाए।

निशीथभाष्य एवं चूर्णि के अनुसार शिल्प, श्लोक आदि से गणित, लक्षण, शकुनरुत आदि अन्य कलाएं भी सूचित होती हैं। अतः उन्हें सिखाने वाले भिक्षु को भी आज्ञाभंग आदि दोष तथा लघुचातुर्मासिक प्रायश्चित्त प्राप्त होता है।[14]

शब्द विमर्श

शिल्प—रफू करना आदि।[15]

श्लोक—गुणों का वर्णन करना, स्तुति।[16]

अष्टापद—चतुरंगद्यूत।[17]

कर्कटक—उभयतोपाश हेतु, जैसे—यदि आप जीव को नित्य मानें तो उसमें नारक आदि पर्यायें घटित नहीं होतीं। यदि जीव अनित्य है तो उसमें कृतप्रणाश आदि दोष आते हैं।[18]

व्युद्ग्रह—कलह, जैसे—राजा आदि के अमुक समय युद्ध/आक्रमण होगा—ऐसा कहना अथवा दो व्यक्ति कलह करते हैं उनमें एक को जीतने के लिए उत्तर बताना।[19]

श्लाघा—प्रशस्ति करना, काव्यार्थ बताना या काव्य रचना के प्रयोग बताना।[20]

श्लाघाहस्तक—हस्त का अर्थ है—समूह, जैसे—पेहुण हस्त अर्थात् मोरपिच्छों का समूह।[21] इससे काव्य आदि सब कलाओं का सूचन होता है।[22]

५. सूत्र १३-१६

प्रस्तुत आगम के दसवें उद्देशक में भदंत को आगाढ़, परुष एवं आगाढ-परुष वचन बोलने तथा उनकी अत्याशातना करने का प्रायश्चित्त गुरुचातुर्मासिक बतलाया गया था। प्रस्तुत उद्देशक में गृहस्थ के प्रति आगाढ़, परुष आदि बोलने तथा उसका आशातना करने का लघुचातुर्मासिक प्रायश्चित्त बतलाया गया है।

भाष्यकार कहते हैं—भिक्षु क्रोध-निग्रह की साधना में तत्पर हैं, फिर भी मर्म-भेद होने पर कुपित हो सकते हैं तो गृहस्थ की तो बात ही क्या?[23] इसी प्रकार कठोर एवं अशिष्ट वाणी तथा आशातनापूर्ण व्यवहार से भी गृहस्थ कुपित हो सकता है।

मर्मोद्घाटन आदि से कुपित गृहस्थ मरने-मारने पर भी उतारु

---

१. निभा. गा. ४२६८—उदुखलं उसुकालं।
२. वही—सिणाणपीढं तु कामजलं।
३. पाइय.
४. निभा. गा. ४२७३—कुलियं तु होइ कुड्डं।
५. पाइय. (परिशि.)
६. निभा. गा. ४२७६—खंधो खलु पायारो, पेढं वा।
७. वही—खंधो उ घरो।
८. निभा. गा. ४२७६—फलिहो तु अग्गला होइ।
९. वही—मंचो अकुड्डो।
१०. पाइय.
११. निभा. भा. ३ चू. पृ. ३७९—गिहोवरि मालो दुभूमादी।
१२. वही—णिज्जूहगवक्खोवसोभितो पासादो।
१३. वही—सव्वोवरि तलं हम्मतलं।
१४. वही, गा. ४२७८ सचूर्णि।
१५. वही, भा. ३, चू. पृ. ३८०—सिप्पं, जं आयारियउवदेसेण सिक्खविज्जति जहा तुण्णागतूणादि।
१६. वही—सिलोगो गुणवयणेहिं वण्णणा।
१७. वही—अट्ठापदं चउरंगेहिं जूतं।
१८. वही—कक्कडगहेऊ जत्थ भणिते उभयहा पि दोसो भवति—जहा जीवस्स णिच्चत्तपरिग्गहे णारगादिभावो ण भवति, अणिच्चे वा भणिते विणासी घटवत् कृतविप्रणाशादयश्च दोषा भवंति।
१९. वही—वुग्गहो-रायादीणं अमुककाले कलहो भविस्सति दोण्हं वा कलहंताणं एक्कस्स उत्तरं कहेति।
२०. वही—सलाहा कव्वकरणप्पओगो।
२१. दसवे. हा.टी.प. १५४—पेहुणहस्त.......तत्समूहः।
२२. निभा. भा. ३, चू.पृ. ३८०—सलाहकहत्थेणं ति सव्वकलातो सूतितातो भवंति।
२३. वही, गा. ४२८५

हो जाता है। राजकुल आदि में भिक्षु की शिकायत कर बन्दी बनवाना, देशनिष्कासन करवाना आदि के लिए प्रयत्न कर सकता है। अतः अन्यतीर्थिक एवं गृहस्थ के प्रति भी मर्मभेदी एवं परुष भाषा का प्रयोग नहीं करना चाहिए। उनके प्रति भी शिष्ट एवं मधुर व्यवहार करना चाहिए।[1]

६. सूत्र १७-२७

गृहस्थ एवं अन्यतीर्थिक–चरक, शाक्य, परिव्राजक आदि के सावद्य योग का प्रत्याख्यान नहीं होता। अतः वे तप्त अयोगोलक के समान समन्ततः जीवोपघाती होते हैं। भिक्षु उनके शरीर की रक्षा अथवा अन्य किसी प्रयोजन से कौतुककर्म, भूतिकर्म आदि करता है, देवता अथवा विद्या का आह्वान कर उन्हें प्रश्नों का उत्तर देता है, उसे लक्षण, व्यंजन, स्वप्न आदि के फल बताता है, उनके प्रयोजन से विद्या, मंत्र, योग आदि का प्रयोग करता है तो उसे भी सावद्य योग की अनुमोदना का दोष लगता है। यदि कोई मिथ्या कथन हो जाए अथवा गृहस्थ आदि उसे विपरीत समझ ले, कदाचित् उनका कोई अशुभ हो जाए तो कलह, लोकापवाद, वध, बन्धन आदि दोष भी संभव हैं। निर्युक्तिकार के अनुसार कौतुककर्म, भूतिकर्म, प्रश्नाप्रश्न, निमित्त, स्वप्न, लक्षण, मूल, मंत्र, विद्या आदि के आधार पर आजीविका निर्वाह करने वाला भिक्षु कुशील होता है।[2]

शब्द विमर्श

कौतुककर्म–दृष्टि दोष आदि से रक्षा के लिए किया जाने वाला मषी-तिलक, रक्षा-बन्धन आदि प्रयोग, सौभाग्य आदि के लिए किया जाने वाला स्नपन, विस्मापन, धूम, होम आदि कर्म।[3] मृतवत्सा स्त्री आदि को श्मशान, चत्वर आदि में स्नान करवाना।[4]

भूतिकर्म–शरीर आदि की रक्षा के लिए किया जाने वाला भस्मलेपन, सूत्रबंधन आदि।[5] विद्या से अभिमंत्रित राख लगाना आदि।

प्रश्न–दर्पण आदि में देवता का आह्वान, मंत्रविद्या विशेष।[6] चूर्णिकार के अनुसार प्रश्नव्याकरण में पहले इस प्रकार के तीन सौ चौबीस प्रश्न थे।[7]

प्रश्नाप्रश्न–मंत्र-विद्या के बल से स्वप्न आदि में देवता के आह्वान द्वारा जाना हुआ शुभाशुभ फल का कथन।[8] विद्याभिमंत्रित घंटिका को कान के पास बजाने पर कर्णपिशाचिका देवी का आसन चलित हो जाता है और वह प्रश्न का उत्तर देती है।[9]

अतीतनिमित्त–अतीत में तुम्हें यह लाभ हुआ, तुम्हारे माता-पिता इतने काल तक जीवित थे–इत्यादि अतीतकालीन निमित्तों का कथन।[10]

लक्षण–पूर्वजन्मों के शुभ नाम एवं शुभ शरीरांगोपांग नाम कर्म के उदय से शरीर के अवयवों पर होने वाले शुभ चिह्न तथा स्वर, वर्ण आदि।[11] ये सहजात होते हैं।[12]

व्यंजन–तिल, मष आदि चिह्न, जो शरीर पर बाद में पैदा होते हैं, सहजात नहीं होते।[13]

स्वप्न–अर्ध जागृत अवस्था में दृष्ट, अनुभूत आदि विषयों का साक्षात् दर्शन। यह नोइन्द्रिय (मन) मतिज्ञान का विषय है।[14] भाष्य एवं चूर्णि में स्वप्न के पांच प्रकारों–याथातथ्य, प्रतान, चिन्ता आदि का विशद विवरण मिलता है।[15]

विद्या–जिसे उपचार से सिद्ध किया जाए अर्थात् जिसे साधने के लिए कोई विशेष साधना, जप, होम आदि अनुष्ठान अपेक्षित हों, वह विद्या होती है।[16] जिसकी अधिष्ठात्री देवी हो, वह विद्या है।[17]

मंत्र–जिसे पढ़ने मात्र से सिद्ध किया जा सके, वह मंत्र कहलाता है।[18] जिसका अधिष्ठाता देव हो, वह मंत्र है।[19]

योग–किसी को वश में करने के लिए या पागल आदि बनाने के लिए प्रयुक्त होने वाला चूर्णविशेष। वशीकरण, विद्वेषण, पादलेप, अंतर्धान आदि के चूर्ण आदि योग कहलाते हैं।[20]

वागरेइ–प्रयोग करता है, बताता है।

७. सूत्र २८

कदाचित् कोई गृहस्थ आदि मार्गच्युत हो जाए, अटवी आदि में दिग्भ्रान्त हो जाए अथवा विपर्यास के कारण जिस दिशा से आया है, पुनः उसी दिशा में चलने लगे, तब भी भिक्षु को उसे मार्ग अथवा

१. निभा. गा. ४२८६
२. वही, गा. ४३४५
३. पाइय.
४. निभा. भा. ३, चू. पृ. ३८३–णिदुमादियाण मसाणचत्वरादिसु ण्हवणं कज्जति।
५. वही–रक्खाणिमित्तं भूती, विज्जाभिमंतीए भूतीए......।
६. पाइय.
७. निभा. भा. ३ चू. पृ. ३८३
८. वही, गा. ४२९०
९. दे. श. को. (द्रष्टव्य–इंखिणी शब्द)
१०. निभा. भा. ३, चू. पृ. ३८३
११. वही–ते य अण्णजम्मकयसुभणामसरीरअंगोवंगकम्मोदयाओ भवंति।
१२. वही, गा. ४२९५–सहजं च लक्खणं।
१३. वही–वंजणं तु मसगादी।............पच्छा समुप्पण्णं।
१४. वही, गा. ४२९८ तथा उसकी चूर्णि।
१५. वही, गा. ४३००-४३०३
१६. वही, भा. ३, चू.पृ. ३८५–सोवचारसाधणा विज्जा।
१७. वही–इत्थि अभिहाणा विज्जा।
१८. वही–पढियसिद्धो मंतो।
१९. वही–पुरिसाभिहाणो मंतो।
२०. वही, गा. ४३०४–जोगो पुण पायलेवादी।......(चू.) वसीकरण-विद्देसणुच्छादणपादलेवंतद्धाणादिया जोगा बहुविधीता।

संधि (मार्ग का उद्‌गम) का कथन नहीं करना चाहिए। गृहस्थ आदि मार्ग में षट्‌काय की विराधना कर सकते हैं, कदाचित् उस मार्ग में उनके समक्ष श्वापद, स्तेन आदि के कारण उपद्रव हो सकते हैं। यदि भिक्षु ने उसे मार्ग बताया है तो वह उपर्युक्त परिस्थितियों में प्रद्विष्ट हो सकता है, प्रत्यनीकता के कारण अन्य कोई अपराध—वध, बंधन आदि कर सकता है।[1]

शब्द विमर्श

नष्ट—मार्गच्युत।[2]

मूढ़—दिग्भ्रान्त।[3]

विपर्यस्त—जिस दिशा अथवा पथ से आए, विपर्यय के कारण उसी में जाने वाले।[4]

संधि—दो घरों के बीच का अन्तर (बीच की गली)।[5]

मार्ग—गाड़ी का रास्ता (शकट पथ) अथवा सारा ही पथ मार्ग कहलाता है।[6]

पवेदेति—बताता है, कथन करता है।

८. सूत्र २९,३०

धातु के तीन प्रकार होते हैं—

१. पाषाण धातु—जिसे धमन कर स्वर्ण आदि प्राप्त किए जाएं।[7]

२. रस धातु—जिस द्रव विशेष को तांबे आदि पर डालकर सोना आदि बनाया जाए।[8]

३. मृत्तिका धातु—विशिष्ट योगपूर्वक धमन कर जिस मिट्टी से सोना आदि बनाया जाए।[9]

निधान—भूमि आदि में निक्षिप्त धन।[10] खजाने के भी देवता, मनुष्य आदि से परिगृहीत, अपरिगृहीत, जलगत, स्थलगत आदि अनेक भेद होते हैं।[11]

किसी भिक्षु को धातु और निधान का ज्ञान हो, तब भी वह गृहस्थ आदि को न बताए क्योंकि इससे अधिकरण, षट्‌काय की विराधना आदि अनेक दोष संभव हैं।[12]

९. सूत्र ३१-३८

चौवन अनाचारों की शृंखला में सत्रहवां अनाचार है—देह-प्रलोकन।[13] देह प्रलोकन का अर्थ है—दर्पण आदि में शरीर अथवा रूप को देखना। दर्पण के समान पात्र, तलवार, मणि, जल, तेल, मधु, घी, फाणित आदि में भी शरीर को देखा जा सकता है। देह-प्रलोकन के अंतर्गत इन सबका अधिग्रहण हो जाता है। अगस्त्यसिंह स्थविर के अनुसार देह-प्रलोकन ब्रह्मचर्य के लिए घातक है।[14] निशीथभाष्यकार के अनुसार पात्र, दर्पण आदि में रूप देखने से प्रतिगमन (उन्निष्क्रमण), निदान, बाकुशत्व, गौरव, क्षिप्तचित्तता, लोकापवाद आदि दोष भी संभव हैं।[15]

अद्दाए—अद्दाग देशी शब्द है। इसका अर्थ है—दर्पण।[16]

उड्डुपाणे—उड्डु देशी शब्द है। इसका अर्थ है—दीर्घ, बड़ा, कुआं आदि।[17] भाष्य चूर्णि सहित निशीथसूत्र में इसके स्थान पर 'कुड्डापाणे' (पाद-टिप्पण में कुंडपाणिए) पाठ रखा गया है।[18]

निशीथ की हुंडी में इसका अर्थ ऊंडो पाणी (गहरा जल) किया गया है।[19]

देहति—देह देशी धातु है। इसका अर्थ है—देखना।

१०. सूत्र ३९-४१

वमन का अर्थ है—ऊर्ध्वविरेक।[20] हरिभद्रसूरि के अनुसार मदनफल आदि के प्रयोग से उल्टी करना वमन है।[21]

विरेचन का अर्थ है—अधोविरेक।[22] जुलाब आदि के द्वारा मल का शोधन विरेचन है। सूयगडो में इनके साथ वस्तिकर्म का भी निषेध किया गया है।[23] दसवेआलियं में भी इन्हें अनाचार माना गया है।[24] रोग की संभावना से बचने के लिए, रूप, बल आदि बनाए रखने के लिए वमन एवं विरेचन करना अनाचार है।

---

१. निभा. गा. ४३१०
२. वही, गा. ४३०६—णट्ठा पंथफिडिता।
३. वही—मूढा उ दिसाविभागममुणेंता।
४. वही—तं चिय दिसं पहं वा, वच्चेंति विवज्जियावण्णा।
५. दसवे. अ.चू.पृ. १०७—संधी जमलघराण अंतरं।
६. वही, गा. ४३०७—मग्गो खलु सगडपहो पंथो व।
७. निभा भा. ३, चू. पृ. ३८७—जत्थ पासाणे जुत्तिणा जुत्ते वा धम्ममाने सुवण्णादी पडति सो पासाणधातू।
८. वही—जेण धातुपाणिएण तंबगादि आसित्तं सुवण्णादि भवति, सो रसो भण्णति।
९. वही—जा मट्टिया जोगजुत्ता अजुत्ता वा धम्ममाणा सुवण्णादि भवति सा धातुमट्टिया।
१०. वही—णिधाणं णिधी, णिहितं स्थापितं द्रविणजातमित्यर्थः।
११. वही, गा. ४३१४
१२. वही, गा. ४३१५ सचूर्णि।
१३. दसवे. अध्य. ३ (आमुख, पृ. ४०)
१४. दसवे अ.चू. पृ. ३३—संलोयणेण बंभपीडा।
१५. निभा. गा. ४३२६
१६. दे. श. को. (पृ. ५४)
१७. वही
१८. निभा. भा. ३ चू. पृ. ३८९
१९. नि. हुंडी (अप्रकाशित)
२०. निभा. भा. ३, चू.पृ. ३९२—उड्डविसेसो वमणं।
२१. दसवे. हा. टी. प. १८—वमनं मदनफलादिना।
२२. निभा. भा. ३, चू. पृ. ३९२—अहो सावणं विरेयो।
२३. सूय. १।९।१२
२४. दसवे. ३।९

निशीथभाष्य के अनुसार मेरा वर्ण सुन्दर हो जाए, स्वर मधुर हो जाए, बल बढ़े, मैं दीर्घायु बनूं, मैं कृश अथवा स्थूल हो जाऊं—इत्यादि प्रयोजनों से वमन, विरेचन आदि करने वाला भिक्षु प्रायश्चित्त का भागी होता है।[१]

११. सूत्र ४२

'मुझे रोग न हो'—इस भावना से अनागत रोग का प्रतिकर्म करना अरोग प्रतिकर्म है।[२] चौवन अनाचारों में चिकित्सा को अनाचार माना गया है क्योंकि इससे सूत्रार्थ की हानि होती है।[३]

निशीथभाष्य के अनुसार मासकल्प पूरा होने के बाद अर्थात् अमुक काल में मेरे अमुक व्याधि होने वाली है। उस समय उसकी निरवद्य चिकित्सा उपलब्ध नहीं होने वाली है तथा चिकित्सा के अभाव में मेरे आवश्यक योगों की हानि संभव है। वर्तमान में उससे बचने के निरवद्य उपाय उपलब्ध हैं—इत्यादि अनेक गुण-दोषों का विचार कर सूत्रार्थ-ग्रहण करने में समर्थ तथा गच्छ के लिए विविध दृष्टियों से उपकारी भिक्षु अनागत रोग का प्रतिकर्म करे।[४]

आरोग्य-प्रतिकर्म का दूसरा हेतु है—उपेक्षित व्याधि दुश्छेद्य होती है। जिस प्रकार विष-वृक्ष अंकुर अवस्था में नखच्छेद्य होता है, किन्तु बाद में कुठारच्छेद्य। उसी प्रकार अनागत व्याधि सुच्छेद्य होती है। अतः अल्पतर आयास से उसका प्रतिकर्म कर मुनि सूत्रार्थ-अव्यवच्छित्ति का प्रयत्न करे।[५]

चिकित्सा-अनाचार के विषय में विस्तार हेतु द्रष्टव्य—दसवे. ३/४ का टिप्पण २६।

१२. सूत्र ४३-५२

पार्श्वस्थ, अवसन्न, कुशील, यथाच्छन्द एवं संसक्त—ये असंविग्न भिक्षु के पांच प्रकार हैं, क्योंकि ये पुष्ट आलम्बन के बिना, निष्प्रयोजन मूलगुण एवं उत्तरगुण में दोष लगाते रहते हैं।[६] इनकी प्रशंसा करने से सुखशीलता को प्रश्रय मिलता है। वन्दना एवं कृतिकर्म करने से शैक्ष भिक्षुओं में उनके प्रति बहुमान एवं भक्ति का भाव पैदा होता है।[७] बार-बार संसर्ग से सुखशीलता की अनुमोदना तथा तज्जन्य दोषों का प्रसंग बनता है। अतः पार्श्वस्थ आदि चार तथा नैत्यिक की वन्दना एवं प्रशंसा करने से लघुचातुर्मासिक तथा यथाच्छन्द की वन्दना प्रशंसा करने से गुरुचातुर्मासिक प्रायश्चित्त प्राप्त होता है।

पार्श्वस्थ आदि के शब्द-विमर्श हेतु द्रष्टव्य—निसीह. ४/२७-३६ का टिप्पण।

१३. सूत्र ५३-६०

पार्श्वस्थ, अवसन्न आदि असंविग्न भिक्षु मूलगुणों एवं उत्तरगुणों में दोष लगाते हैं, काथिक, प्रेक्षणिक आदि सामान्य आचार-विचार में दोष लगाते हैं। उनको वन्दना-नमस्कार करने, उनकी प्रशंसा करने आदि से दोषों की अनुमोदना आदि का प्रसंग आता है।[८] भाष्यकार के अनुसार गच्छ परिरक्षा, चिकित्सा, दुर्भिक्ष आदि कारण इसके अपवाद हैं।[९] इसी प्रकार उत्तरगुणों में अवसन्न व्यक्ति भी विशिष्ट दीर्घ संयम-पर्याय, विशिष्ट शिष्य-संपदा, विशिष्ट कुलोत्पन्नता आदि गुणों के कारण वन्दनीय एवं सत्करणीय हो जाते हैं।[१०]

शब्द-विमर्श

काथिक—जो भिक्षु स्वाध्याय आदि करणीय योगों को छोड़कर देशकथा आदि में रत रहता है अथवा आहार, वस्त्र, पात्र आदि की प्राप्ति, पूजा और यशःप्राप्ति के लिए धर्मकथा में रत रहता है, सूत्रपौरुषी, अर्थपौरुषी आदि अन्य करणीय कार्य नहीं करता, वह काथिक होता है।[११]

प्रश्न होता है—धर्मकथा स्वाध्याय का ही एक प्रकार है। भव्य प्राणियों को प्रतिबोध देकर धर्मकथी भिक्षु तीर्थ की अव्यवच्छित्ति एवं प्रभावना में निमित्त बनता है, फिर उसका प्रतिषेध क्यों?

आचार्य कहते हैं—यह सही है कि धर्मकथा स्वाध्याय का अंग है परन्तु भिक्षु को मात्र धर्मकथा ही नहीं करनी चाहिए। प्रतिलेखना, सूत्रार्थ-ग्रहण, आचार्य आदि का वैयावृत्त्य आदि भी यथासमय करणीय हैं। अतः क्षेत्र, काल एवं पुरुष सापेक्ष धर्मकथा ही करणीय है।[१२]

प्रेक्षणिक/प्राश्निक—जो भिक्षु नृत्य, नाटक आदि का प्रेक्षण करता है, लौकिक व्यवहारों में न्यायपूर्वक विभाजन (बंटवारा) करने में समर्थ है तथा उसी प्रकार के अन्य न्याय आदि कार्य करता है, छंद, निरुक्त, काव्य तथा अन्य लौकिक शास्त्रों का भावार्थ बताता है, शकुनरुत आदि कलाएं सिखाता है, वह प्रेक्षणिक कहलाता है।[१३]

१. निभा. गा. ३३३१
२. निभा. भा. ३, चू.पृ. ३१३—मा मे रोगो भविस्सति त्ति अणागयं चेव रोगपरिकम्मं करेति।
३. दसवे. अ.चू. पृ. ६३—तिगिच्छे सुत्त-अत्थ पलिमंथो।
४. निभा. गा. ४३३७ सचूर्णि।
५. वही, गा. ४३३८ सचूर्णि।
६. वही, भा. ४ चू.पृ. ९५—पंचविहो असंविग्गो—पासत्थो, ओसन्नो, कुसीलो, संसत्तो, अहाछंदो।
७. वही, गा. ४३६३-४३६६
८. निभा. गा. ४३६३
९. वही, गा. ४३६९
१०. वही, गा. ४३७३, ४३७४ सचूर्णि।
११. (क) वही, भा. ३ चू. पृ. ३९८—सज्झायादिकरणिज्जे जोगे मोत्तुं जो देसकहादिकहातो कधेति सो काहितो।
(ख) वही, गा. ४३५३ (सचूर्णि)
१२. वही, गा. ४३५४, ४३५५
१३. वही, गा. ४३५६-४३५८

मामाक—जो भिक्षु आहार, उपकरण, शरीर, विचारभूमि, स्वाध्यायभूमि, वसति, कुल, ग्राम आदि में ममत्व भाव से प्रतिबद्ध होता है तथा उपकरण आदि के विषय में अन्य को प्रतिषेध करता है—अमुक उपकरण मेरा है, इसे कोई न ले।' वह मामाक कहलाता है।[1]

संप्रसारक—जो गृहस्थ के कार्यों में अल्प या अधिक पर्यालोचन करता है, उन्हें तद्विषयक मंत्रणा देता है, वह संप्रसारक कहलाता है।[2] गृहस्थ को गृह-प्रवेश, यात्रा, विवाह, क्रय-विक्रय आदि कार्यों का मुहूर्त्त बताना, यह खरीदो, यह मत खरीदो—इत्यादि मंत्रणा देना—संप्रसारकत्व है।[3]

१४. सूत्र ६१-७५

भिक्षा के तीन प्रकार हैं—

१. दीन वृत्ति—अनाथ और अपंग व्यक्ति मांग कर खाते हैं—यह दीन वृत्ति भिक्षा है। इसका हेतु है—असमर्थता।

२. पौरुषघ्नी—श्रम करने में समर्थ व्यक्ति मांग कर खाते हैं—यह पौरुषघ्नी भिक्षा है। इसका हेतु है—अकर्मण्यता।

३. सर्वसंपत्करी भिक्षा—संयमी माधुकरी वृत्ति से सहज-सिद्ध आहार लेते हैं—यह सर्वसंपत्करी भिक्षा है। इसका हेतु है—अहिंसा।[4]

भिक्षु को सदा अदीनवृत्ति से एषणा करते हुए आहार, उपधि आदि का उत्पादन करना होता है। जो भिक्षु धात्रीकर्म करके बच्चे को खिलाकर, उसे मंडित कर अथवा धाय के गुण-दोष का कथन कर आहार प्राप्त करता है, संदेशवाहक के समान स्वजन-संबंधियों के समाचारों का आदान-प्रदान कर आहार प्राप्त करता है, इसी प्रकार अतीत आदि के निमित्त का कथन कर, कुल, जाति आदि का परिचय देकर, दान-फल का कथन कर, चिकित्सा कार्य का सम्पादन कर अथवा क्रोध, मान, माया और लोभ पूर्वक आहार आदि प्राप्त करता है, विद्या, मंत्र, चूर्ण एवं योग का प्रयोग कर आहार प्राप्त करता है, वह सर्वसंपत्करी भिक्षा नहीं है। इनका हेतु अहिंसा एवं संयमी जीवन भी नहीं है। वस्तुतः ये सारे उत्पादना के दोष हैं। प्रस्तुत आलापक में पूर्वसंस्तव, पश्चात् संस्तव तथा मूलकर्म का प्रायश्चित्त नहीं बताया गया है, उत्पादना के शेष दोषों के सेवन का लघुचातुर्मासिक प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है।

निशीथभाष्य एवं चूर्णि में तथा पिण्डनिर्युक्ति में इनका उदाहरण सहित विस्तृत विवेचन उपलब्ध होता है।

शब्द विमर्श

१. धात्रीपिण्ड—धाय की भांति बालक को खिलाकर, मार्जन (स्नान आदि) करवाकर, मंडन आदि करके अथवा एक धाय के स्थान पर दूसरी धाय की व्यवस्था आदि के माध्यम से आहार प्राप्त करना धात्रीपिण्ड है।[5]

संगम नामक स्थविर जंघाबल के क्षीण हो जाने से एक ही क्षेत्र को नौ भागों में विभक्त कर नवकल्पी विहार करते थे। दत्त नामक मुनि एक बार उनके पास आया। संगम स्थविर ने उसकी सामुदानिक भिक्षा की कठिनाई समझी। वे उसे एक श्रेष्ठी के घर ले गए। वहां रोते बच्चे को संगम स्थविर ने कहा—'बच्चे! चुप हो जाओ।' गुरु के प्रभाव से पूतना निकल गई और बालक स्वस्थ हो गया। पुत्र की स्वस्थता से प्रसन्न होकर सेठानी ने दत्त को प्रचुर मात्रा में लड्डू बहरा दिए। संगम स्थविर ने अन्यत्र अज्ञातउञ्छ ग्रहण किया। शाम को उन्होंने दत्त से कहा—तुमने धात्रीपिण्ड का भोग किया है। दत्त ने स्वीकार नहीं किया। क्षेत्र-देवता ने रुष्ट होकर दुर्दिन की विकुर्वणा की। दत्त ठंड से ठिठुरने लगा। गुरु ने कहा—अन्दर आ जाओ। उसे द्वार दिखाई नहीं दिया। गुरु ने अपनी अंगुली के श्लेष्म लगाया। अंगुली प्रदीप्त प्रदीप सी प्रकाशित हो गई। गुरु के अतिशय को देख कर उसे उनके विशुद्ध चारित्र पर विश्वास हुआ। उसने अपनी भूल के लिए क्षमायाचना की। इस प्रकार बच्चे को चुप करके भिक्षा लेना धात्रीपिण्ड है।

विस्तार हेतु द्रष्टव्य—निशीथभाष्य परि. २ कथा सं. ८६।

निशीथभाष्य एवं चूर्णि में धात्रीपिण्ड के विविध प्रकारों, दोषों आदि का सविस्तर विवरण किया गया है।[6]

२. दूतीपिण्ड—दौत्य कर्म के द्वारा—संदेश, समाचार आदि का संप्रेषण कर आहार प्राप्त करना दूतीपिण्ड है।[7]

निशीथभाष्य एवं चूर्णि में स्वग्राम-परग्राम आदि भेदों का विस्तार से निरूपण करते हुए निम्नांकित उदाहरण दिया है—

दो गांवों में वैर था। एक गांव में साधु प्रवासित थे। एक मुनि प्रतिदिन दूसरे गांव गोचरी जाता था। एक दिन शय्यातरी ने कहा—मेरी पुत्री को कह देना—हमारे गांव के लोग तुम्हारे गांव पर चढ़ाई करने वाले हैं, तैयार हो जाए। पुत्री, जो दूसरे गांव में ब्याही हुई थी, उसने अपने गांव में आक्रमण की बात प्रचारित कर दी। दोनों गांवों में जमकर युद्ध हुआ। उस युद्ध में शय्यातरी का पुत्र, जामाता एवं पति तीनों मारे गए। यदि मुनि ने आक्रमण की सूचना न दी होती तो इतनी जनहानि न हुई होती।[8]

१. निभा. गा. ४३५९,४३६०
२. वही, गा. ४३६१ सचूर्णि।
३. वही, गा. ४३६२ सचूर्णि।
४. दसवे. अ. १ का आमुख (पृ. १७७)
५. निभा. गा. ४३७७,४३८०
६. वही, गा. ४३७५-४३९८
७. वही, भा. ३, चू. पृ. ४०१—**गिहिसंदेसगं णेति आणेति वा जं तण्णिमित्तं पिंडं लभति सो दूतीपिंडो।**
८. वही, गा. ४३९७-४४०२

३. निमित्तपिण्ड—लाभ-अलाभ, सुख-दुःख और जन्म-मृत्यु—इस षड्विध निमित्त का कथन कर आहार प्राप्त करना निमित्तपिण्ड है।[1]

४. आजीवकपिंड—जाति, कुल, गण आदि का परिचय देकर आहार प्राप्त करना आजीवकपिण्ड है।[2] निशीथभाष्य एवं चूर्णि में जाति, कुल, गण, कर्म एवं शिल्प—इस पंचविध आजीववृत्तिता का सूचा एवं असूचा आदि भेदों सहित विस्तृत निरूपण उपलब्ध होता है।[3]

५. वनीपकपिड—स्वयं को श्रमण, ब्राह्मण, कृपण, अतिथि आदि का भक्त बताकर अथवा उनकी प्रशंसा कर आहार की याचना करना वनीपकपिण्ड है।[4] वनीपक पिण्ड से मिथ्यात्व का स्थिरीकरण, उद्गम दोष, शासन की अप्रभावना आदि दोषों की संभावना रहती है।[5] भाष्यकार एवं चूर्णिकार ने वनीपकपिण्ड के विविध प्रकारों का विस्तृत वर्णन किया है।[6]

६. चिकित्सापिण्ड—वैद्य की भांति गृहस्थ की चिकित्सा—व्याधि प्रतिकर्म कर आहार प्राप्त करना चिकित्सापिण्ड है।[7] वैद्यक वृत्ति से पिण्डैषणा के विषय में भाष्यकार ने दुर्बल व्याघ्र की चिकित्सा का दृष्टान्त प्रस्तुत किया है—

एक बार एक वैद्य जंगल में गया। वहां एक बाघ पीड़ा से कराह रहा था। उसने अनुकम्पा कर बाघ को स्वस्थ कर दिया। स्वास्थ्य लाभ करने पर बाघ अनेक जीवों की हिंसा में प्रवृत्त हुआ। उसी प्रकार गृहस्थ की चिकित्सा करने से स्वास्थ्य-लाभ कर वह अधिक आरम्भ-समारम्भ करता है। अतः उसकी चिकित्सा हिंसा का हेतु है।

७. क्रोधपिण्ड—अपनी विद्या, तप अथवा प्रभाव के द्वारा 'इनका कोप मेरे लिए अच्छा नहीं'—यह अनुभूति करवाकर आहार प्राप्त करना क्रोधपिण्ड है।[8] प्रस्तुत संदर्भ में भाष्यकार ने धर्मरुचि अनगार का दृष्टान्त दिया है।[9]

एक गृहस्थ के घर मृत्युभोज था। धर्मरुचि नामक मुनि मासखमण का पारणा करने वहां पहुंचे पर भोज में लगे लोगों ने उनकी ओर ध्यान नहीं दिया। मुनि ने बहुत देर प्रतीक्षा की, फिर यह कहते हुए चला गया—दूसरों से दिलाओगे! अन्यत्र भिक्षा कर पारणा किया। पुनः मासखमण के पारणे में वैसा ही घटित हुआ। उस दिन भी उस घर में एक व्यक्ति मर गया। तीसरे मासखमण के पारणे में तीसरा व्यक्ति मर गया और मुनि धर्मरुचि पुनः खाली पात्र लेकर 'दूसरों से दिलाओगे' कहते हुए लौटने लगे। तब एक स्थविर ने कहा—इस ऋषि को उपशान्त करो। कहीं एक-एक व्यक्ति के मरने से सारा कुल ही विनष्ट न हो जाए। लोगों ने उसे प्रचुर मात्रा में घेवर आदि देकर शान्त किया। यह भिक्षा उसके क्रोध से डर कर दी गई। अतः क्रोधपिण्ड है।

विस्तार हेतु द्रष्टव्य निशीथभाष्य परि. २ कथा सं. ८८

८. मानपिण्ड—दूसरों के प्रशंसात्मक शब्दों से उत्साहित होकर गर्वपूर्वक आहार की एषणा में प्रवृत्त होना मानपिण्ड है।[10] पिण्डनिर्युक्ति के समान निशीथभाष्य में भी सेवइयों का रोचक दृष्टान्त देकर मानपिण्ड को समझाया गया है।[11]

एक गांव में सेवइयों का उत्सव था। वहां एक आचार्य बड़े शिष्य-समुदाय के साथ विराजमान थे। शिष्यों में चर्चा चली कि हमें कौन सेवइयां लाकर दे। एक क्षुल्लक ने अभिमानपूर्वक यह स्वीकार किया कि मैं आप सबके लिए घी गुड़ युक्त पर्याप्त सेवइयां लाऊंगा। एक घर में बहुत सी सेवइयां देखी, लेकिन उस गृहिणी ने उसे सेवइयां देने से इन्कार कर दिया। शिष्य ने गर्व से कहा—देखना, ये सेवइयां मैं अवश्य लूंगा। उसने उस घर के मालिक इन्द्रदत्त को सेवइयां देने के लिए वचनबद्ध कर लिया। घर जाकर इन्द्रदत्त ने पत्नी को ऊपर से गुड़ उतारने के लिए कहा। पत्नी के ऊपर से गुड़ उतारने पर उसने नसैनी हटा ली और क्षुल्लक को गुड़ और सेवइयां देने लगा। क्षुल्लक ने संकेत के द्वारा गृहिणी को जता दिया कि मैंने सेवइयां लेकर जो कहा, सो कर दिखाया। यह मानपिण्ड है। (कथा के विस्तार हेतु द्रष्टव्य—निशीथभाष्य परि. २ कथा. सं. ८९)

९. मायापिण्ड—मायापूर्वक आहार प्राप्त करना मायापिण्ड है। मायापिण्ड के विषय में निशीथभाष्य एवं चूर्णि में कोई व्याख्या उपलब्ध नहीं होती। पिण्डनिर्युक्ति में इस विषय में आषाढ़भूति की कथा का संकेत मिलता है।[12]

१. निभा. भा., ३ चू.पृ. ४१०—तीतमणागतवट्टमाणत्थाणोपलद्धिकारणं णिमित्तं भण्णति, जो तं पयुंजिता असणादिमुप्पादेति सो णिमित्त-पिण्डो भण्णति।
२. वही, पृ. ४१२—जातिमातिभावं उवजीवति त्ति आजीवणपिंडो।
३. वही, गा. ४४११-४४१६
४. वही, गा. ४४१९
५. वही, गा. ४४२२
६. वही, गा. ४४२०-४४३०
७. वही, भा. ३, चू.पृ. ४१६—रोगावणयणं तिगिच्छा, तं जो करेति गिहस्स......।
८. (क) वही, पृ. ४१८—कोहप्रसादात्पिंडं लभते स कोपपिण्डः।
(ख) वही, गा. ४४४०, ४४४१
९. वही, गा. ४४४२
१०. (क) वही, गा. ४४४५
(ख) वही, भा. ३ चू. पृ. ४१९—अभिमाणतो पिंडग्गहणं करेति त्ति माणपिंडो।
११. वही, गा. ४४४६-४४५३
१२. पिं. नि. २१९/१ असाडभूति त्ति खुड्डओ तस्स।

१०. लोभपिण्ड—आसक्तिपूर्वक किसी वस्तु की येन केन प्रकारेण गवेषणा करना अथवा उत्तम भोजन को अतिप्रमाण में ग्रहण करना लोभपिण्ड है। पिण्डनिर्युक्ति में इस विषय में केसरियामोदक की घटना का संकेत मिलता है।[1]

११. विद्यापिण्ड—विद्या का प्रदर्शन कर आहार प्राप्त करना विद्यापिण्ड है। प्रस्तुत संदर्भ में निशीथभाष्यकार ने भिक्षु-उपासक का दृष्टान्त देते हुए विद्या-पिण्ड के दोषों का निरूपण किया है।[2]

एक व्यक्ति बौद्ध भिक्षुओं का उपासक था। वह साधुओं को दान नहीं देता था। एक साधु ने कहा—यदि आप विद्यापिण्ड लेना चाहें तो मैं इस व्यक्ति से सब कुछ दिलवा सकता हूं। साधुओं ने स्वीकार कर लिया। उस साधु ने उस भिक्षु-उपासक को विद्या से वशीभूत कर लिया। उससे बहुत सी खाद्य वस्तुएं, वस्त्र आदि लेने के बाद जब विद्या का उपसंहार किया तो भिक्षु-उपासक बोलने लगा—अरे! किसने मुझे से सब कुछ हरण कर लिया। परिजनों ने कहा—तुमने अपने हाथ से साधुओं को दिया है।

१२. मंत्रपिण्ड—मंत्र के द्वारा चमत्कार दिखाकर आहार प्राप्त करना मंत्रपिण्ड है। भाष्यकार ने पादलिप्त एवं मुरुण्डराज के कथानक से मंत्रपिण्ड को समझाते हुए उसके दोषों का निरूपण किया है।[3]

एक बार राजा मुरुण्ड के सिर में अत्यन्त तीव्र वेदना हुई। कोई भी वैद्य राजा को स्वस्थ नहीं कर पाया। आचार्य पादलिप्त को बुलाया गया। उन्होंने एकान्त में बैठकर अपने घुटने पर मंत्र प्रयोग करते हुए अपनी प्रदेशिनी अंगुली को घुमाया। जैसे-जैसे अंगुली घुमाई गई, वैसे-वैसे राजा की पीड़ा शान्त हो गई। इस प्रकार मंत्र-प्रयोग से प्रभावित कर किसी से आहार-ग्रहण का प्रयत्न किया जाए अथवा आहार-प्राप्ति के लिए मंत्र का प्रयोग किया जाए, वह मंत्रपिण्ड है।

१३. योगपिण्ड—पादलेप आदि योगों के द्वारा पानी पर चलकर अथवा आकाश में गमन कर भिक्षा प्राप्त करना योगपिण्ड है। प्रस्तुत सन्दर्भ में निशीथभाष्य में ब्रह्मद्वीप के तापस-प्रमुख का उदाहरण दिया गया है।[4]

वेणा नदी के तट पर पांच सौ तापस रहते थे। उन का कुलपति पादलेप योग का ज्ञाता था। वह अष्टमी, चतुर्दशी आदि पर्व दिनों में पादलेप योग का प्रयोग कर वेणा नदी के जल पर पैरों से चलकर वेणातट नगर पहुंच जाता। लोग इसे तपःप्रभाव मानकर उससे आकृष्ट हो जाते और वस्त्र, भोजन आदि से उसका सत्कार करते। यह योगपिण्ड है।

१४. चूर्णपिण्ड—अनेक औषधियों का मिश्रण चूर्ण कहलाता है।[5] वशीकरण-चूर्ण आदि के द्वारा वशीकृत कर आहार प्राप्त करना चूर्णपिण्ड है।[6] निशीथभाष्यकार के अनुसार वशीकरण आदि चूर्ण से द्वारा आहार प्राप्त करने पर भी वे ही दोष संभव है जो मंत्र, विद्या आदि के द्वारा आहार प्राप्त करने में आते हैं।[7]

१५. अन्तर्धानपिण्ड—अंजन-प्रयोग आदि से अदृश्य होकर आहार प्राप्त करना अन्तर्धानपिण्ड है।[8] प्रस्तुत सन्दर्भ में निशीथ-भाष्यकार ने चाणक्य एवं दो क्षुल्लकों की घटना का उदाहरण दिया है।[9]

दुर्भिक्ष का समय था। सुस्थित आचार्य पाटलिपुत्र में विराजमान थे। उनके पास दो छोटे शिष्य थे। उनको अंजन-योग ज्ञात हो गया। उन्होंने अंजन-योग का प्रयोग कर राजा चन्द्रगुप्त के साथ भोजन करना प्रारम्भ कर दिया। निरन्तर ऊनोदरी के कारण राजा दुर्बल हो गया। चाणक्य ने राजा के लिए एक द्वारवाली भोजनभूमि बनवाई और द्वार पर ईंटों का चूर्ण बिछा दिया। पदचिह्नों से पता चला कि ये अदृश्य होकर खाने वाले व्यक्ति पादचारी एवं अंजनसिद्ध हैं। चाणक्य ने द्वार बन्द कर वहां धूआं कर दिया। अश्रुओं के साथ अंजन निकल गया और क्षुल्लक पकड़े गए। इस प्रकार अदृश्य होकर आहार-ग्रहण करना अन्तर्धानपिण्ड है।

विस्तार हेतु द्रष्टव्य—निशीथभाष्य, परि. २ कथा सं. ९२

---

१. पि.नि. २१९/९—संभोइय मोदगे लंभो।
२. निभा. गा. ४४५७-४४५९
३. वही, गा. ४४६०, ४४६१
४. वही, गा. ४४७०-४४७२
५. पिं प्र. टी. प. ४०—चूर्णः औषधद्रव्यसंकरक्षोदः।
६. निभा. भा. ३ चू.पृ. ४२३—वसीकरणाइया चुण्णा, तेहिं जो पिंडं उप्पादेति।
७. वही, गा. ४४६२
८. वही, भा. ३, चू. पृ. ४२३—अप्पाणं अंतरहितं करेंतो जो पिंडं गेण्हति सो अंतद्धाणपिंडो भण्णति।
९. वही, गा. ४४६४-४४६५

चउद्दसमो उद्देसो

चौदहवां उद्देशक

आमुख

प्रस्तुत उद्देशक का केन्द्रीय प्रतिपाद्य है—प्रतिग्रह (पात्र)। गच्छवासी (स्थविरकल्पी) भिक्षु की मुख्य औधिक उपधि है—वस्त्र, पात्र, कम्बल और पादप्रोञ्छन। आगम के कई सूत्रों में इनके लिए समान विधि-निषेध प्राप्त होते हैं। आयारचूला में 'पिंडेसणा' के समान 'पाएसणा' पर भी सम्पूर्ण अध्ययन उपलब्ध है। यहां एक प्रश्न उपस्थित होता है कि आहार के विषय में आधाकर्मी, औद्देशिक आदि उद्‌गमदोषों तथा धात्रीपिण्ड, दूतीपिण्ड, निमित्तपिण्ड, क्रोधपिण्ड आदि उत्पादना-दोषों का विचार किया जाता है तो पात्र के विषय में उनका विचार क्यों नहीं? दूसरी ओर पात्र के विषय में प्रस्तुत उद्देशक में क्रीत, प्रामित्य, परिवर्त्य आदि दोषों का विचार किया गया है तो प्रस्तुत आगम में आहार के विषय में उन दोषों का प्रायश्चित्त कथन क्यों नहीं? आयारचूला में पिंडेसणा, वत्थेसणा, पाएसणा, ठाणं, सेज्जा आदि सबके विषय में एक ही समान 'समारब्भ समुद्दिस्स कीयं पामिच्चं अच्छेज्जं....आदि पाठ उपलब्ध होता है।

निसीहज्झयणं में सर्वप्रथम किणेति, पामिच्चेति, परियट्टेति....आदि पाठ इसी उद्देशक में आए हैं। अतः निशीथभाष्य एवं चूर्णि में आहार के सम्बन्ध में भी इन दोषों के विविध प्रकारों—आत्मभावक्रीत, परभावक्रीत, लौकिक प्रामित्य, लोकोत्तर प्रामित्य, लौकिक परिवर्त्य, लोकोत्तर परिवर्त्य तथा एतद्विषयक दोषों एवं अपवादों का वर्णन किया गया है।[१] अतः चूर्णिकार ने प्रश्न उपस्थित किया—

प्रश्नकर्त्ता—पात्राधिकार का प्रसंग है फिर क्रीतकृत आदि भक्त (आहार) के विषय में कथन का क्या प्रयोजन? पात्र के विषय में ही कहना चाहिए।

आचार्य—यद्यपि यह सम्पूर्ण अधिकार पात्र से संबद्ध है फिर भी पूर्वसिद्ध होने से पिण्ड के विषय में कहा जा रहा है। वैसे भी जो विधि क्रीतकृत आदि भक्त के विषय में ज्ञातव्य है, वही सारी विधि पात्र के विषय में ज्ञातव्य है। अतः पात्र के प्रसंग में आहार के क्रीत, प्रामित्य आदि विषयक विचार प्रासंगिक हैं।[२]

प्रस्तुत उद्देशक के साथ आयारचूला के छठे अध्ययन की तुलना करने से ज्ञात होता है कि आयारचूला में जिन-जिन कार्यों का निषेध किया गया है, उनमें से जिनको गुरुचातुर्मासिक प्रायश्चित्त योग्य माना गया, उनका प्रस्तुत उद्देशक में कथन नहीं किया गया, जैसे—महामूल्य वाले, धातुघटित अथवा धातुघटित बन्धन वाले पात्र रखना, पात्र की प्रतिज्ञा से अर्धयोजन की मर्यादा से अधिक जाना तथा उतनी मर्यादा से अधिक दूरी से सप्रत्यपाय मार्ग से अभिहृत दोषयुक्त पात्र ग्रहण करना आदि।[३] शेष प्रायः सभी पात्र-विषयक निषेधों का प्रायश्चित्त लघु चातुर्मासिक है। अतः उनको इस उद्देशक में सूत्रनिबद्ध किया गया है। आयारचूला में बताया गया है कि कोई गृहस्थ यदि भिक्षु के लिए पात्र का अभ्यंगन, म्रक्षण, आघर्षण-प्रघर्षण तथा उत्क्षालन-प्रधावन करके दे तो वह उस पात्र को अप्रासुक अनेषणीय मानता हुआ ग्रहण न करे।[४] प्रस्तुत उद्देशक में पुराने पात्र को नया बनाने अथवा दुर्गन्धमय पात्र को सुगन्धित करने के लिए लोध, चूर्ण आदि से आघर्षण-प्रघर्षण करने तथा गर्म अथवा ठण्डे जल से उत्क्षालन-प्रधावन करने वाले भिक्षु के लिए प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है।

आयारचूला में पात्र को अव्यवहित, सस्निग्ध, सरजस्क और सचित्त पृथिवी, शिला आदि तथा विविध प्रकार के दुर्निबद्ध, दुर्निक्षिप्त चलाचल, अधर स्थानों पर पात्र के आतापन-प्रतापन का निषेध करते हुए यह निर्देश दिया गया है कि वह

---

१. निभा. गा. ४४७४-४५२३
२. वही, गा. ४५२२ (सचूर्णि)
३. निसीह. ११/१-८
४. आचू. ६/२२-२४

उस पात्र को लेकर एकान्त में जाए, वहां जाकर दग्धस्थंडिल, अस्थिराशि, किट्टराशि, तुषराशि, गोमयराशि अथवा अन्य उसी प्रकार के स्थंडिल की प्रतिलेखना कर, उसको प्रमार्जित कर यतनापूर्वक पात्र का आतापन-प्रतापन करे।[1] प्रस्तुत उद्देशक में केवल उन पूर्वोक्त निषिद्ध स्थानों पर पात्र के आतापन-प्रतापन के प्रायश्चित्त का निरूपण है।

प्राचीनकाल में पात्र-आनयन की सम्पूर्ण विधि निर्धारित थी। हर साधु पात्र लाने नहीं जाता था। जिनको पात्र की आवश्यकता होती, वे गुरु से निवेदन करते। पात्र-आनयन करने वाले भिक्षु दो प्रकार के होते—१. गुरु द्वारा नियुक्त उपकरण-उत्पादन (प्राप्ति) की लब्धि से युक्त भिक्षु। २. उपकरण-उत्पादन विषयक सूत्रार्थ के ज्ञाता उत्साही मुनि, जो स्वयं यह अभिग्रह करते हैं कि हमें अमुक उपकरण उत्पादन करना (लाना) चाहिए।[2]

दोनों ही प्रकार के भिक्षु गुरु द्वारा निर्दिष्ट संख्या में पात्र ग्रहण करते, लाकर उसे गुरु के सम्मुख रख देते। यदि आवश्यक पात्रों को ग्रहण करने के बाद उन्हें कोई सुलक्षण पात्र मिल जाता तो वह किसी गणि, वाचक आदि को लक्ष्य करके अथवा सहज भाव से भी अतिरिक्त पात्र लेकर आ जाते। प्रस्तुत संदर्भ में भाष्य एवं चूर्णि में बताया गया है कि जिसके उद्देश, समुद्देश पूर्वक अतिरिक्त पात्र लाया जाता, उसकी खोज किस प्रकार की जाती तथा निर्दिष्ट गणि आदि से पूर्व भी अतिरिक्त पात्र को अंगविकल, जुंगित, स्थविर अथवा बाल साधु को किस क्रम से दिया जाता।

आयारचूला में विधान है—**'जे णिग्गंथे तरुणे जुगवं बलवं अप्पायंके थिरसंघयणे, से एगं पायं धारेज्जा, णो बीयं'**। इस संदर्भ में भाष्यकार ने चालना प्रत्यवस्थान के द्वारा यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि मात्रक भी स्थविरकल्पिक की औधिक उपधि है और उसे ग्रहण न करने से अनेक दोषों की संभावना है। इस प्रकार संक्षेप में कहा जा सकता है कि प्रस्तुत सम्पूर्ण प्रकरण पात्र-विषयक अनेक नई दृष्टियों को स्पष्ट करने वाला है।

---

१. आचू. ६/३८-४२

२. निभा. गा. ४५४६, चू.पृ. ४४३

चउद्दसमो उद्देसो : चौदहवां उद्देशक

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
पडिग्गह-पदं	**प्रतिग्रह-पदम्**	**प्रतिग्रह-पद**
१. जे भिक्खू पडिग्गहं किणेति, किणावेति, कीयमाहट्टु दिज्जमाणं पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति ।।	यो भिक्षुः प्रतिग्रहं क्रीणाति, क्रापयति, क्रीतमाहृत्य दीयमानं प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते ।	१. जो भिक्षु प्रतिग्रह (पात्र) का क्रय करता है, क्रय करवाता है और क्रीत किए हुए लाकर दिए जाने वाले पात्र को ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।
२. जे भिक्खू पडिग्गहं पामिच्चेति, पामिच्चावेति, पामिच्च-माहट्टु दिज्जमाणं पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति ।।	यो भिक्षुः प्रतिग्रहं प्रामित्यति, प्रामित्ययति, प्रामित्यमाहृत्य दीयमानं प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते ।	२. जो भिक्षु प्रतिग्रह को उधार लेता है, उधार लिवाता है और उधार लिए हुए लाकर दिए जाने वाले पात्र को ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।
३. जे भिक्खू पडिग्गहं परियट्टेति, परियट्टावेति, परियट्टिय-माहट्टु दिज्जमाणं पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति ।।	यो भिक्षुः परिवर्तते, परिवर्तयति, परिवर्तितमाहृत्य दीयमानं प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते ।	३. जो भिक्षु प्रतिग्रह का परिवर्तन करता है, परिवर्तन करवाता है और परिवर्तित किए हुए लाकर दिए जाने वाले पात्र को ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।
४. जे भिक्खू पडिग्गहं अच्छेज्जं अणिसट्टं अभिहडमाहट्टु दिज्जमाणं पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति ।।	यो भिक्षुः प्रतिग्रहं आच्छेद्यं अनिसृष्टं अभिहृतमाहृत्य दीयमानं प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते ।	४. जो भिक्षु छीन कर लाए हुए, अननुज्ञात और सामने लाकर दिए जाने वाले पात्र को ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।[1]
५. जे भिक्खू अइरेगं पडिग्गहं गणिं उद्दिसिय गणिं समुद्दिसिय तं गणिं अणापुच्छिय अणामंतिय अण्णमण्णस्स वियरति, वियरंतं वा सातिज्जति ।।	यो भिक्षुः अतिरेकं प्रतिग्रहं गणिनमुद्दिश्य गणिनं समुद्दिश्य तं गणिनम् अनापृच्छ्य अनामन्त्र्य अन्योन्यस्मै वितरति, वितरन्तं वा स्वदते ।	५. जो भिक्षु गणि को उद्दिष्ट कर, गणि को समुद्दिष्ट कर, उस गणि को पूछे बिना, आमन्त्रित किए बिना अतिरेक पात्र को परस्पर एक दूसरे को देता है अथवा देने वाले का अनुमोदन करता है।[2]
६. जे भिक्खू अइरेगं पडिग्गहं खुड्डगस्स वा खुड्डियाए वा थेरगस्स वा थेरियाए	यो भिक्षुः अतिरेकं प्रतिग्रहं क्षुद्रकाय वा क्षुद्रिकायै वा स्थविराय वा स्थविरायै	६. क्षुल्लक अथवा क्षुल्लिका, स्थविर अथवा स्थविरा—जो अहस्तच्छिन्न है, अपादच्छिन्न

वा—अहत्थच्छिण्णस्स अपाय-च्छिण्णस्स अकण्णच्छिण्णस्स अणासच्छिण्णस्स अणोट्ठच्छिण्णस्स सक्कस्स—देति, देंतं वा सातिज्जति।।

वा—अहस्तच्छिन्नाय अपादच्छिन्नाय अकर्णच्छिन्नाय अनासाच्छिन्नाय अनोष्ठच्छिन्नाय शक्ताय—ददाति, ददतं वा स्वदते।

है, अकर्णच्छिन्न है, अनासिकाच्छिन्न है, अनोष्ठच्छिन्न है, सशक्त है—उसे जो भिक्षु अतिरिक्त पात्र देता है अथवा देने वाले का अनुमोदन करता है।

७. जे भिक्खू अइरेगं पडिग्गहं खुड्डगस्स वा खुड्डियाए वा थेरगस्स वा थेरियाए वा—हत्थच्छिण्णस्स पायच्छिण्णस्स कण्णच्छिण्णस्स णासच्छिण्णस्स ओट्ठच्छिण्णस्स असक्कस्स—न देति, न देंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः अतिरेकं प्रतिग्रहं क्षुद्रकाय वा क्षुद्रिकायै वा स्थविराय वा स्थविरायै वा—हस्तच्छिन्नाय पादच्छिन्नाय कर्णच्छिन्नाय नासाच्छिन्नाय ओष्ठच्छिन्नाय अशक्ताय न ददाति, न ददतं वा स्वदते।

७. क्षुल्लक अथवा क्षुल्लिका, स्थविर अथवा स्थविरा—जो हस्तच्छिन्न है, पादच्छिन्न है, कर्णच्छिन्न है, नासिकाच्छिन्न है, ओष्ठच्छिन्न है, अशक्त है—उसे जो भिक्षु अतिरिक्त पात्र नहीं देता अथवा नहीं देने वाले का अनुमोदन करता है।[३]

८. जे भिक्खू पडिग्गहं अणलं अथिरं अधुवं अधारणिज्जं धरेति, धरेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः प्रतिग्रहम् अनलम् अस्थिरम् अध्रुवम् अधारणीयं धरति, धरन्तं वा स्वदते।

८. जो भिक्षु अनल (अपर्याप्त), अस्थिर, अध्रुव, अधारणीय (रखने के अयोग्य) पात्र को धारण करता है अथवा धारण करने वाले का अनुमोदन करता है।

९. जे भिक्खू पडिग्गहं अलं थिरं धुवं धारणिज्जं न धरेति, न धरेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः प्रतिग्रहम् अलं स्थिरं ध्रुवं धारणीयं न धरति, न धरन्तं वा स्वदते।

९. जो भिक्षु पर्याप्त, स्थिर, ध्रुव, धारणीय पात्र को धारण नहीं करता अथवा धारण न करने वाले का अनुमोदन करता है।[४]

१०. जे भिक्खू वण्णमंतं पडिग्गहं विवण्णं करेति, करेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः वर्णवन्तं प्रतिग्रहं विवर्णं करोति, कुर्वन्तं वा स्वदते।

१०. जो भिक्षु वर्णवान पात्र को विवर्ण बनाता है अथवा बनाने वाले का अनुमोदन करता है।

११. जे भिक्खू विवण्णं पडिग्गहं वण्णमंतं करेति, करेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः विवर्णं प्रतिग्रहं वर्णवन्तं करोति, कुर्वन्तं वा स्वदते।

११. जो भिक्षु विवर्ण पात्र को वर्णवान बनाता है अथवा बनाने वाले का अनुमोदन करता है।[५]

१२. जे भिक्खू 'णो णवए मे पडिग्गहे लद्धे' त्ति कट्टु सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलेज्ज वा पधोवेज्ज वा उच्छोलेंतं वा पधोवेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः 'नो नवकः मया प्रतिग्रहः लब्धः' इति कृत्वा शीतोदकविकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन वा उत्क्षालयेद् वा प्रधावेद् वा, उत्क्षालयन्तं वा प्रधावन्तं वा स्वदते।

१२. 'मुझे नवीन पात्र प्राप्त नहीं हुआ'—ऐसा सोचकर जो भिक्षु प्रासुक शीतल जल से अथवा प्रासुक उष्ण जल से पात्र का उत्क्षालन करता है अथवा प्रधावन करता है और उत्क्षालन अथवा प्रधावन करने वाले का अनुमोदन करता है।

१३. जे भिक्खू 'णो णवए मे पडिग्गहे लद्धे' त्ति कट्टु बहुदेवसिएण

यो भिक्षुः 'नो नवकः मया प्रतिग्रहः लब्धः' इति कृत्वा बहुदैवसिकेन

१३. 'मुझे नवीन पात्र प्राप्त नहीं हुआ'—ऐसा सोचकर जो भिक्षु बहुदैवसिक प्रासुक

सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलेज्ज वा पधोवेज्ज वा, उच्छोलेंतं वा पधोवेंतं वा सातिज्जति ।।

शीतोदकविकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन वा उत्क्षालयेद् वा प्रधावेद् वा, उत्क्षालयन्तं वा प्रधावन्तं वा स्वदते।

शीतल जल से अथवा प्रासुक उष्ण जल से पात्र का उत्क्षालन करता है अथवा प्रधावन करता है और उत्क्षालन अथवा प्रधावन करने वाले का अनुमोदन करता है।

१४. जे भिक्खू 'णो णवए मे पडिग्गहे लद्धे' त्ति कट्टु कक्केण वा लोद्धेण वा चुण्णेण वा वण्णेण वा आघंसेज्ज वा पघंसेज्ज वा, आघंसंतं वा पघंसंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः 'नो नवकः मया प्रतिग्रहः लब्धः' इति कृत्वा कल्केन वा लोध्रेण वा चूर्णेन वा वर्णेन वा आघर्षेद् वा प्रघर्षेद् वा, आघर्षन्तं वा प्रघर्षन्तं वा स्वदते।

१४. 'मुझे नवीन पात्र प्राप्त नहीं हुआ'—ऐसा सोचकर जो भिक्षु कल्क, लोध, चूर्ण अथवा वर्ण से पात्र का आघर्षण करता है अथवा प्रघर्षण करता है और आघर्षण अथवा प्रघर्षण करने वाले का अनुमोदन करता है।

१५. जे भिक्खू 'णो णवए मे पडिग्गहे लद्धे' त्ति कट्टु बहुदेवसिएण कक्केण वा लोद्धेण वा चुण्णेण वा वण्णेण वा आघंसेज्ज वा पघंसेज्ज वा, आघंसंतं वा पघंसंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः 'नो नवकः मया प्रतिग्रहः लब्धः' इति कृत्वा बहुदैवसिकेन कल्केन वा लोध्रेण वा चूर्णेन वा वर्णेन वा आघर्षेद् वा प्रघर्षेद् वा, आघर्षन्तं वा प्रघर्षन्तं वा स्वदते।

१५. 'मुझे नवीन पात्र प्राप्त नहीं हुआ'—ऐसा सोचकर जो भिक्षु बहुदैवसिक कल्क, लोध, चूर्ण अथवा वर्ण से पात्र का आघर्षण करता है अथवा प्रघर्षण करता है और आघर्षण अथवा प्रघर्षण करने वाले का अनुमोदन करता है।[1]

१६. जे भिक्खू 'दुब्भिगंधे मे पडिग्गहे लद्धे' त्ति कट्टु सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलेज्ज वा पधोवेज्ज वा, उच्छोलेंतं वा पधोवेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः 'दुब्भि'गंधः मया प्रतिग्रहः लब्धः' इति कृत्वा शीतोदकविकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन वा उत्क्षालयेद् वा प्रधावेद् वा, उत्क्षालयन्तं वा प्रधावन्तं वा स्वदते।

१६. 'मुझे दुर्गन्धयुक्त पात्र प्राप्त हुआ है'—ऐसा सोचकर जो भिक्षु प्रासुक शीतल जल से अथवा प्रासुक उष्ण जल से उत्क्षालन करता है अथवा प्रधावन करता है और उत्क्षालन अथवा प्रधावन करने वाले का अनुमोदन करता है।

१७. जे भिक्खू 'दुब्भिगंधे मे पडिग्गहे लद्धे त्ति' कट्टु बहुदेवसिएण सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलेज्ज वा पधोवेज्ज वा, उच्छोलेंतं वा पधोवेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः 'दुब्भि'गंधः मया प्रतिग्रहः लब्धः' इति कृत्वा बहुदैवसिकेन शीतोदकविकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन वा उत्क्षालयेद् वा प्रधावेद् वा, उत्क्षालयन्तं वा प्रधावन्तं वा स्वदते।

१७. 'मुझे दुर्गन्धयुक्त पात्र प्राप्त हुआ है'—ऐसा सोचकर जो भिक्षु बहुदैवसिक प्रासुक शीतल जल से अथवा प्रासुक उष्ण जल से पात्र का उत्क्षालन करता है अथवा प्रधावन करता है और उत्क्षालन अथवा प्रधावन करने वाले का अनुमोदन करता है।

१८. जे भिक्खू 'दुब्भिगंधे मे पडिग्गहे लद्धे' त्ति कट्टु कक्केण वा लोद्धेण वा चुण्णेण वा वण्णेण वा आघंसेज्ज वा पघंसेज्ज वा, आघंसंतं वा पघंसंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः 'दुब्भि'गंधः मया प्रतिग्रहः लब्धः' इति कृत्वा कल्केन वा लोध्रेण वा चूर्णेन वा वर्णेन वा आघर्षेद् वा प्रघर्षेद् वा, आघर्षन्तं वा प्रघर्षन्तं वा स्वदते।

१८. 'मुझे दुर्गन्धयुक्त पात्र प्राप्त हुआ है'—ऐसा सोचकर जो भिक्षु कल्क, लोध, चूर्ण अथवा वर्ण से पात्र का आघर्षण करता है अथवा प्रघर्षण करता है और आघर्षण अथवा प्रघर्षण करने वाले का अनुमोदन करता है।

१९. जे भिक्खू 'दुब्भिगंधे मे पडिग्गहे लद्धे' त्ति कट्टु बहुदेसिएण कक्केण वा लोद्धेण वा चुण्णेण वा वण्णेण वा आघंसेज्ज वा पघंसेज्ज वा, आघंसंतं वा पघंसंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षु "दुब्भि'गंधः मया प्रतिग्रहः लब्धः' इति कृत्वा बहुदेसिकेन कल्केन वा लोध्रेण वा चूर्णेन वा वर्णेन वा आघर्षेद् वा प्रघर्षेद् वा, आघर्षन्तं वा प्रघर्षन्तं वा स्वदते।

१९. 'मुझे दुर्गन्धयुक्त पात्र प्राप्त हुआ है'—ऐसा सोचकर जो भिक्षु बहुदेसिक (तीन प्रसृति से अधिक) कल्क, लोध, चूर्ण अथवा वर्ण से पात्र का आघर्षण करता है अथवा प्रघर्षण करता है और आघर्षण अथवा प्रघर्षण करने वाले का अनुमोदन करता है।[७]

२०. जे भिक्खू अणंतरहियाए पुढवीए पडिग्गहं आयावेज्ज वा पयावेज्ज वा, आयावेंतं वा पयावेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः अनन्तर्हितायां पृथिव्यां प्रतिग्रहम् आतापयेद् वा प्रतापयेद् वा, आतापयन्तं वा प्रतापयन्तं वा स्वदते।

२०. जो भिक्षु अव्यवहित पृथिवी पर पात्र का आतापन करता है अथवा प्रतापन करता है और आतापन अथवा प्रतापन करने वाले का अनुमोदन करता है।

२१. जे भिक्खू ससिणिद्धाए पुढवीए पडिग्गहं आयावेज्ज वा पयावेज्ज वा, आयावेंतं वा पयावेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः सस्निग्धायां पृथिव्यां प्रतिग्रहम् आतापयेद् वा प्रतापयेद् वा, आतापयन्तं वा प्रतापयन्तं वा स्वदते।

२१. जो भिक्षु सस्निग्ध पृथिवी पर पात्र का आतापन करता है अथवा प्रतापन करता है और आतापन अथवा प्रतापन करने वाले का अनुमोदन करता है।

२२. जे भिक्खू ससरक्खाए पुढवीए पडिग्गहं आयावेज्ज वा पयावेज्ज वा, आयावेंतं वा पयावेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः ससरक्षायां पृथिव्यां प्रतिग्रहम् आतापयेद् वा प्रतापयेद् वा, आतापयन्तं वा प्रतापयन्तं वा स्वदते।

२२. जो भिक्षु सरजस्क पृथिवी पर पात्र का आतापन करता है अथवा प्रतापन करता है और आतापन अथवा प्रतापन करने वाले का अनुमोदन करता है।

२३. जे भिक्खू मट्टियाकडाए पुढवीए पडिग्गहं आयावेज्ज वा पयावेज्ज वा, आयावेंतं वा पयावेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः मृत्तिकाकृतायां पृथिव्यां प्रतिग्रहम् आतापयेद् वा प्रतापयेद् वा, आतापयन्तं वा प्रतापयन्तं वा स्वदते।

२३. जो भिक्षु सचित्त मिट्टी युक्त पृथिवी पर पात्र का आतापन करता है अथवा प्रतापन करता है और आतापन अथवा प्रतापन करने वाले का अनुमोदन करता है।

२४. जे भिक्खू चित्तमंताए पुढवीए पडिग्गहं आयावेज्ज वा पयावेज्ज वा, आयावेंतं वा पयावेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः चित्तवत्यां पृथिव्यां प्रतिग्रहम् आतापयेद् वा प्रतापयेद् वा, आतापयन्तं वा प्रतापयन्तं वा स्वदते।

२४. जो भिक्षु सचित्त पृथिवी पर पात्र का आतापन करता है अथवा प्रतापन करता है और आतापन अथवा प्रतापन करने वाले का अनुमोदन करता है।

२५. जे भिक्खू चित्तमंताए सिलाए पडिग्गहं आयावेज्ज वा पयावेज्ज वा, आयावेंतं वा पयावेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः चित्तवत्यां शिलायां प्रतिग्रहम् आतापयेद् वा प्रतापयेद् वा, आतापयन्तं वा प्रतापयन्तं वा स्वदते।

२५. जो भिक्षु सचित्त शिला पर पात्र का आतापन करता है अथवा प्रतापन करता है और आतापन अथवा प्रतापन करने वाले का अनुमोदन करता है।

२६. जे भिक्खू चित्तमंताए लेलूए

यो भिक्षुः चित्तवति 'लेलूए' प्रतिग्रहम्

२६. जो भिक्षु सचित्त ढेले पर पात्र का

पडिग्गहं आयावेज्ज वा पयावेज्ज वा, आयावेंतं वा पयावेंतं वा सातिज्जति ।।

आतापयेद् वा प्रतापयेद् वा, आतापयन्तं वा प्रतापयन्तं वा स्वदते।

आतापन करता है अथवा प्रतापन करता है और आतापन अथवा प्रतापन करने वाले का अनुमोदन करता है।

२७. जे भिक्खू कोलावासंसि वा दारुए जीवपइट्ठिए सअंडे सपाणे सबीए सहरिए सओस्से सउदए सउत्तिंग-पणग - दग - मट्टिय - मक्कडा-संताणगंसि पडिग्गहं आयावेज्ज वा पयावेज्ज वा, आयावेंतं वा पयावेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः 'कोला'वासे वा दारुके जीवप्रतिष्ठिते साण्डे सप्राणे सबीजे सहरिते सावश्याये सोदके सोत्तिंग-पनक-दक-मृत्तिका-मर्कटकसंतानके प्रतिग्रहम् आतापयेद् वा प्रतापयेद् वा, आतापयन्तं वा प्रतापयन्तं वा स्वदते।

२७. जो भिक्षु घुणयुक्त लकड़ी, जीवप्रतिष्ठित लकड़ी, अंडे सहित, प्राणसहित, बीज-सहित, हरितसहित, ओससहित उदक-सहित और कीटिका नगर, पनक, कीचड़ अथवा मकड़ी के जाले से युक्त लकड़ी पर पात्र का आतापन करता है अथवा प्रतापन करता है और आतापन अथवा प्रतापन करने वाले का अनुमोदन करता है।

२८. जे भिक्खू थूणंसि वा गिहेलुयंसि वा उसुकालंसि वा कामजलंसि वा अण्णयरंसि वा तहप्पगारंसि अंतरिक्खजायंसि दुब्बद्धे दुण्णिक्खित्ते अणिकंपे चलाचले पडिग्गहं आयावेज्ज वा पयावेज्ज वा, आयावेंतं वा पयावेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः स्थूणायां वा गृहैलुके वा 'उसुकाले' वा कामजले वा अन्यतरस्मिन् वा तथाप्रकारे अन्तरिक्षजाते दुर्बद्धे दुर्निक्षिप्ते अनिष्कम्पे चलाचले प्रतिग्रहम् आतापयेद् वा प्रतापयेद् वा, आतापयन्तं वा प्रतापयन्तं वा स्वदते।

२८. जो भिक्षु खंभे, देहली, ऊखल, स्नानपीठ अथवा अन्य वैसे अन्तरिक्षजात, जो दुर्बद्ध हों, दुर्निक्षिप्त हों, अनिष्कम्प हों एवं चलाचल हों, उन पर पात्र का आतापन करता है अथवा प्रतापन करता है और आतापन अथवा प्रतापन करने वाले का अनुमोदन करता है।

२९. जे भिक्खू कुलियंसि वा भित्तिंसि वा सिलंसि वा लेलुंसि वा अण्णयरंसि वा तहप्पगारंसि अंतरिक्खजायंसि दुब्बद्धे दुण्णिक्खित्ते अणिकंपे चलाचले पडिग्गहं आयावेज्ज वा पयावेज्ज वा, आयावेंतं वा पयावेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः कुड्ये वा भित्तौ वा शिलायां वा 'लेलुंसि' वा अन्यतरस्मिन् तथाप्रकारे अन्तरिक्षजाते दुर्बद्धे दुर्निक्षिप्ते अनिष्कम्पे चलाचले प्रतिग्रहम् आतापयेद् वा प्रतापयेद् वा, आतापयन्तं वा प्रतापयन्तं वा स्वदते।

२९. जो भिक्षु कुड्य, भित्ति, शिला, ढेला अथवा अन्य वैसे अन्तरिक्षजात, जो दुर्बद्ध हों, दुर्निक्षिप्त हों, अनिष्कम्प हों एवं चलाचल हों, उन पर पात्र का आतापन करता है अथवा प्रतापन करता है और आतापन अथवा प्रतापन करने वाले का अनुमोदन करता है।

३०. जे भिक्खू खंधंसि वा फलिहंसि वा मंचंसि वा मंडवंसि वा मालंसि वा पासायंसि वा हम्मतलंसि वा अण्णयरंसि वा तहप्पगारंसि अंतरिक्खजायंसि दुब्बद्धे दुण्णि-क्खित्ते अणिकंपे चलाचले पडिग्गहं आयावेज्ज वा पयावेज्ज वा, आया-वेंतं वा पयावेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः स्कन्धे वा परिघे वा मञ्चे वा मण्डपे वा 'माले' वा प्रासादे वा हर्म्यतले वा अन्यतरस्मिन् वा तथाप्रकारे अन्तरिक्षजाते दुर्बद्धे दुर्निक्षिप्ते अनिष्कम्पे चलाचले प्रतिग्रहम् आतापयेद् वा प्रतापयेद् वा, आतापयन्तं वा प्रतापयन्तं वा स्वदते।

३०. जो भिक्षु प्राकार, अर्गला, मचान, मंडप, माल (मंजिल), प्रासाद, हर्म्यतल अथवा अन्य वैसे अन्तरिक्षजात, जो दुर्बद्ध हों, दुर्निक्षिप्त हों, अनिष्कम्प हों एवं चलाचल हों, उन पर पात्र का आतापन करता है अथवा प्रतापन करता है और आतापन अथवा प्रतापन करने वाले का अनुमोदन करता है।[८]

३१. जे भिक्खू पडिग्गहाओ पुढवीकायं णीहरति, णीहरावेति, णीहरियं आहट्टु देज्जमाणं पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः प्रतिग्रहात् पृथिवीकायं निस्सरति, निस्सारयति, निस्सृतम् आहृत्य दीयमानं प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते।

३१. जो भिक्षु पात्र से पृथिवीकाय को निकालता है, निकलवाता है, निकाले हुए को लाकर दिए जाते हुए पात्र को ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

३२. जे भिक्खू पडिग्गहाओ आउकायं णीहरति, णीहरावेति, णीहरियं आहट्टु देज्जमाणं पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः प्रतिग्रहात् अप्कायं निस्सरति, निस्सारयति, निस्सृतम् आहृत्य दीयमानं प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते।

३२. जो भिक्षु पात्र से अप्काय को निकालता है, निकलवाता है, निकाले हुए को लाकर दिए जाते हुए पात्र को ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

३३. जे भिक्खू पडिग्गहाओ तेउक्कायं णीहरति, णीहरावेति, णीहरियं आहट्टु देज्जमाणं पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः प्रतिगृहात् तेजस्कायं निस्सरति, निस्सारयति, निस्सृतम् आहृत्य दीयमानं प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते।

३३. जो भिक्षु पात्र से तेजस्काय को निकालता है, निकलवाता है, निकाले हुए को लाकर दिए जाते हुए पात्र को ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

३४. जे भिक्खू पडिग्गहाओ कंदाणि वा मूलाणि वा पत्ताणि वा पुप्फाणि वा फलाणि वा बीजाणि वा णीहरति, णीहरावेति, णीहरियं आहट्टु देज्जमाणं पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः प्रतिग्रहात् कन्दानि वा मूलानि वा पत्राणि वा पुष्पाणि वा फलानि वा बीजानि वा निस्सरति, निस्सारयति, निस्सृतम् आहृत्य दीयमानं प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते।

३४. जो भिक्षु पात्र से कन्द, मूल, पत्र, पुष्प, फल अथवा बीज को निकालता है, निकलवाता है, निकाले हुए को लाकर दिए जाते हुए पात्र को ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

३५. जे भिक्खू पडिग्गहाओ ओसहिबीयाइं णीहरति, णीहरावेति, णीहरियं आहट्टु देज्जमाणं पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः प्रतिग्रहात् ओषधिबीजानि निस्सरति, निस्सारयति, निस्सृतम् आहृत्य दीयमानं प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते।

३५. जो भिक्षु पात्र से औषधि बीजों (धान्य बीजों) को निकालता है, निकलवाता है, निकाले हुए को लाकर दिए जाते हुए पात्र को ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

३६. जे भिक्खू पडिग्गहाओ तसपाणजातिं णीहरति, णीहरावेति, णीहरियं आहट्टु देज्जमाणं पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः प्रतिग्रहात् त्रसप्राणजातिं निस्सरति, निस्सारयति, निस्सृतम् आहृत्य दीयमानं प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते।

३६. जो भिक्षु पात्र से त्रसप्राणजाति को निकालता है, निकलवाता है, निकाले हुए को लाकर दिए जाते हुए पात्र को ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।[१]

३७. जे भिक्खू पडिग्गहगं निक्कोरेति, निक्कोरावेति, निक्कोरियं

यो भिक्षुः प्रतिग्रहकं 'निक्कोरेति', 'निक्कोरावेति', 'निक्कोरियं' आहृत्य

३७. जो भिक्षु पात्र के मुख का अपनयन करता है, मुख का अपनयन करवाता है, मुख का

आहट्टु देज्जमाणं पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति ।।

दीयमानं प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते।

अपनयन किए हुए लाकर दिए जाते हुए पात्र को ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।[१०]

३८. जे भिक्खू णायगं वा अणायगं वा उवासगं वा अणुवासगं वा—गामंतरंसि वा गामपहंतरंसि वा पडिग्गहगं ओभासिय-ओभासिय जायति, जायंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः ज्ञातकं वा अज्ञातकं वा उपासकं वा अनुपासकं वा ग्रामान्तरे वा ग्रामपथान्तरे वा प्रतिग्रहकम् अवभाष्य-अवभाष्य याचते, याचमानं वा स्वदते।

३८. जो भिक्षु ज्ञाति अथवा अज्ञाति, उपासक अथवा अनुपासक (श्रावकेतर) से—ग्रामान्तर अथवा ग्रामपथान्तर में पात्र की मांग-मांग कर याचना करता है अथवा याचना करने वाले का अनुमोदन करता है।

३९. जे भिक्खू णायगं वा अणायगं वा उवासगं वा अणुवासगं वा परिसामज्झाओ उट्ठवेत्ता पडिग्गहगं ओभासिय-ओभासिय जायति, जायंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः ज्ञातकं वा अज्ञातकं वा उपासकं वा अनुपासकं वा परिषन्मध्याद् उत्थाप्य प्रतिग्रहकम् अवभाष्य-अवभाष्य याचते, याचमानं वा स्वदते।

३९. जो भिक्षु ज्ञाति अथवा अज्ञाति, उपासक अथवा अनुपासक को परिषद् मध्य से उठाकर पात्र की मांग-मांग कर याचना करता है अथवा याचना करने वाले का अनुमोदन करता है।[११]

४०. जे भिक्खू पडिग्गहणीसाए उडुबद्धं वसति, वसंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः प्रतिग्रहनिश्रया ऋतुबद्धं वसति, वसन्तं वा स्वदते।

४०. जो भिक्षु पात्र की निश्रा में ऋतुबद्धकाल में रहता है अथवा रहने वाले का अनुमोदन करता है।

४१. जे भिक्खू पडिग्गहणीसाए वासावासं वसति, वसंतं वा सातिज्जति—

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घातियं ।।

यो भिक्षुः प्रतिग्रहनिश्रया वर्षावासं वसति, वसन्तं वा स्वदते।

तत्सेवमानः आपद्यते चातुर्मासिकं परिहारस्थानम् उद्घातिकम्।

४१. जो भिक्षु पात्र की निश्रा में वर्षावास में रहता है अथवा रहने वाले का अनुमोदन करता है।[१२]

—इनका आसेवन करने वाले को उद्घातिक चातुर्मासिक प्रायश्चित्त प्राप्त होता है।

टिप्पण

१. सूत्र १-४

भिक्षु सर्वथा अपरिग्रही होता है। आहार, वस्त्र, पात्र आदि सभी वस्तुएं उसे एषणा समिति पूर्वक भिक्षा के द्वारा ही ग्रहण करनी होती हैं। आवश्यक वस्तुओं को भी वह खरीद कर, उधार लेकर अथवा बदल कर नहीं ले सकता। आयारचूला में कहा गया है कि स्वयं या अपने साधर्मिक के लिए क्रीत, प्रामित्य, परिवर्तित, आच्छिन्न, अनिसृष्ट एवं अभिहृत दोष से युक्त पात्र को भिक्षु पुरुषान्तरकृत, परिभुक्त, आसेवित आदि किसी भी अवस्था में ग्रहण न करे।[1]

किसी भी वस्तु को क्रय करने वाला क्रेता होता है और विक्रय करने वाला विक्रेता। क्रय और विक्रय दोनों वणिक्-वृत्तियां हैं। अतः भिक्षु भिक्षा से आहार, उपधि आदि को ग्रहण करे, क्रय-विक्रय से नहीं।[2] क्रीत के समान उधार लेकर दिए गए अथवा अपनी किसी वस्तु के द्वारा परिवर्तित कर दिए गए पात्र को ग्रहण करने पर भी कलह आदि अनेक दोष संभव हैं। बलात् किसी से छीन कर दिए गए पात्र को लेने से अहिंसा एवं अचौर्य—दोनों महाव्रतों में अतिचार लगता है। अनिसृष्ट दोष युक्त पात्र ग्रहण करने से अचौर्य तथा अभिहृत दोषयुक्त पात्र ग्रहण करने से अहिंसा महाव्रत में अतिचार लगता है। ये छहों उद्गम दोष के अंतर्गत आते हैं। निशीथभाष्य एवं चूर्णि में इनके विषय में अच्छा विवरण उपलब्ध होता है।[3]

शब्द विमर्श

१. परियट्टिय—अपने पात्र आदि देकर दूसरे का पात्र आदि लेना।[4]

२. अच्छेज्जं—अन्य व्यक्ति की वस्तु को साधु के लिए बलात् छीनकर देना।[5]

३. अणिसट्ठं—जिसमें दूसरे की भागीदारी हो, उसकी अनुज्ञा के बिना देना।[6]

२. सूत्र ५

ववहारो में अतिरिक्त पात्र के विषय में दो विधान उपलब्ध होते हैं—

निर्ग्रन्थ अथवा निर्ग्रन्थी को अन्य निर्ग्रन्थ अथवा निर्ग्रन्थी के लिए अतिरिक्त पात्र को धारण अथवा ग्रहण करना कल्पता है।

जिस निर्ग्रन्थ अथवा निर्ग्रन्थी के लिए अतिरिक्त पात्र धारण अथवा ग्रहण किया जाए, उसे पूछे बिना, आमंत्रित किए बिना अन्य किसी को देना नहीं कल्पता।[7]

व्याख्या साहित्य के अनुसार जिस भिक्षु को पात्र चाहिए, उसे गुरु से निवेदन करना होता था तथा जो पात्र लाने के लिए अन्य क्षेत्र में जाते, वे भी पात्र लाकर गुरु के पास रख देते, फिर गुरु ही उनका यथाविधि वितरण करते।[8] गुरु से पूछे बिना कोई किसी के लिए पात्र नहीं लाता था और न कोई स्वयं किसी को लाने के लिए निवेदन करता।

प्रस्तुत सूत्र में इसी व्यवस्था एवं विधान के भंग का प्रायश्चित्त बतलाया गया है।

शब्द विमर्श

उद्देश—सामान्य निर्देश, जैसे—गणि को देना है, वाचक को देना है आदि।[9]

समुद्देश—नामनिर्देश पूर्वक अवधारण, जैसे—अमुक गणि, अमुक वाचक को देना है, आदि।[10]

३. सूत्र ६,७

सामान्य विधि के अनुसार जो पात्र जिसके निर्देश पूर्वक लाया जाए, उसे वह अवश्य प्राप्त होना चाहिए। किन्तु जो अनिर्दिष्ट पात्र हो, उसे देने में लाने वाला स्वतंत्र होता है। विशेष विधि के अनुसार

---

१. आचू. ६/४-७
२. उत्तर. ३५/१४,१५
३. निभा. गा. ४४७४-४५२३
४. वही, भा. ३, चू.पृ. ४३१—अप्पणिज्जं देति परसंतियं गेण्हति त्ति परियट्टियं।
५. वही, पृ. ४३३—अण्णस्स संतयं साहुअट्ठाए बला अच्छिंदिउं देज्जा।
६. वही—जं णिद्देज्जं दिण्णं तं णिसट्ठं, पडिपक्खे अणिसट्ठं।
७. वव. ८/१६
८. निभा. भा. ३, चू.पृ. ४४४—जस्स पाएण कज्जं सो गुरुं विण्णवेति, जो य भण्णते तेण वि गुरू पुच्छियव्वो। अह दूरं गताणं को वि भणेज्ज—मे पातं आणेह, तत्थ उ साधारणं। गुरुवयणं ठवेंति—गिण्हिस्सामो अम्हे पायं, तस्स उ गुरू जाणगा भविस्संतीत्यर्थः।
९. वही, पृ. ४३९—अविसेसिओ उद्देसो—गणिस्स दाहामि वायगस्स वा।
१०. वही—विसेसओ समुद्देसो.......जहा अमुगगणिस्स दाहामो वायगस्स वा।

अंगविकल एवं असमर्थ भिक्षु यदि मांग ले तो उन्हें निर्दिष्ट व्यक्ति से पूर्व भी पात्र देना चाहिए।

जिस प्रकार रोगी को औषध दी जाए, निरोग को औषध से क्या प्रयोजन? उसी प्रकार जो हाथ, पैर आदि अवयवों से विकल होने के कारण स्वयं पात्र की गवेषणा आदि में अक्षम हैं, क्षुल्लक भिक्षु अगीतार्थ होने के कारण तथा अत्यधिक वयःस्थविर गमनागमन की शक्ति से रहित होने के कारण स्वयं पात्र नहीं ला सकते, उन्हें पात्र लाकर देना चाहिए, नीरोग एवं सशक्त को क्यों दिए जाएं?[1]

अशक्त एवं विकलांग भिक्षु को पात्र न दिया जाए और वे स्वयं पात्रान्वेषण हेतु भ्रमण करें तो संयमविराधना, लोकनिन्दा आदि दोषों की संभावना रहती है।[2] भाष्यकार के अनुसार विकलांग के समान अटवी-निर्गत, बाल, वृद्ध, रोगी एवं जातिजुंगित भी पात्र देने की प्राथमिकता में ग्राह्य हैं अर्थात् उन्हें भी पात्र देना चाहिए।[3] अंगविकल में पादविकल, अक्षिविकल, नासिकाविकल, हाथविकल और कानविकल—इस क्रम से पात्र देना चाहिए। अंग-विकल में साधु और साध्वी—दोनों वर्गों को पात्र देने हों तो प्राथमिकता साध्वियों को दी जाती है।[4]

४. सूत्र ८,९

प्रस्तुत आगम के पांचवें उद्देशक में प्रमाणोपेत, मजबूत, अप्रातिहारिक और लक्षणयुक्त अखंड पात्र को तोड़-तोड़ कर परिष्ठापन करने का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है।[5] प्रस्तुत सूत्रद्वयी में इन्हीं चारों विशेषणों से युक्त पात्र को धारण न करने तथा इन विशेषताओं से रहित पात्र को धारण करने का प्रायश्चित्त बतलाया गया है। अतिरिक्त प्रमाण और न्यून प्रमाण वाला पात्र क्रमशः आत्मविराधना एवं एषणाघात का निमित्त बनता है। अस्थिर पात्र में भिक्षा लेने से वह भग्न हो सकता है, फलतः एषणाघात, सूत्रार्थहानि आदि दोष संभव हैं। प्रातिहारिक पात्र के टूट जाने, खो जाने आदि से कई दोषों की संभावना रहती है तथा अलाक्षणिक (हुंड संस्थान वाला, विषम संस्थानवाला आदि) पात्र को धारण करने से चारित्रभेद, गणभेद आदि दोषों की संभावना रहती है। दूसरी ओर इन सभी विशेषताओं से युक्त पात्र को धारण न करने, तोड़कर परिष्ठापित करने से गृहस्थों में अप्रीति, अप्रत्यय एवं लोकनिन्दा आदि दोष संभव हैं।[6]

शब्दविमर्श हेतु द्रष्टव्य सूत्र ५/६५-६६ का टिप्पण।

५. सूत्र १०,११

आयारचूला में निर्देश है कि भिक्षु अथवा भिक्षुणी वर्णवान, पात्रों को विवर्ण एवं विवर्ण पात्रों को वर्णवान न बनाए।[7]

भिक्षु को कदाचित् कोई वर्णाढ्य पात्र प्राप्त हो, 'कोई मेरे पात्र का हरण न कर ले।'—इस बुद्धि से कोई उसके वर्ण को गर्म जल से धोकर, गोबर, मिट्टी, क्षार आदि का लेप कर उसे विवर्ण बनाए—यह उचित नहीं है। इसी प्रकार कोई पात्र स्तेनाहृत हो और उसे उसका पूर्वस्वामी पहचान न पाए—इस दृष्टि से उसके वर्ण का विपर्यास करना उचित नहीं।[8]

विवर्ण पात्र को सुवर्ण बनाने के दो हेतु हैं—

१. उसका पूर्वस्वामी उसे पहचान न सके।

२. पात्र के प्रति राग भाव।

इन कारणों से प्रक्षण, धूपन आदि के द्वारा पात्र को वर्णाढ्य बनाना भी उचित नहीं।[9]

पात्र का निरर्थक परिकर्म करने से आत्मोपघात, जीवविराधना, संयमविराधना एवं सूत्रार्थ-पलिमंथु आदि अनेक दोष संभव हैं।[10]

६. सूत्र १२-१५

भिक्षु के लिए निर्देश है कि पुराने पात्र को नया बनाने मात्र के लिए परिकर्म न करे। आयारचूला में पुराने को नया बनाने के तीन परिकर्मों का निषेध है[11]—

● तेल, घृत आदि के द्वारा अभ्यंगन और म्रक्षण।

● कल्क, लोध्र, वर्ण, चूर्ण आदि के द्वारा आघर्षण और प्रघर्षण।

● प्रासुक शीतल अथवा उष्ण जल से उत्क्षालन और प्रधावन।

प्रस्तुत सूत्र चतुष्टयी में दो परिकर्मों का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है—

● उत्क्षालन-प्रधावन के दो सूत्र और

● आघर्षण-प्रघर्षण के दो सूत्र।

निशीथसूत्र की कुछ प्रतियों में अभ्यंगन-म्रक्षण संबंधी दो सूत्र भी उपलब्ध होते हैं—ऐसा नवसुत्ताणि एवं भाष्य-चूर्णि सहित निशीथ सूत्र की प्रति में उल्लिखित पाद-टिप्पणों से स्पष्ट है।[12]

निशीथभाष्यकार एवं चूर्णिकार के समक्ष अभ्यंगन-म्रक्षण

---

१. निभा. गा. ४६१२
२. वही, गा. ४६२३
३. वही, गा. ४५६७
४. वही, गा. ४६२४—
 पादच्छि-नासकर-कन्नजुंगिते, जातिजुंगिते चेव।
 वोच्चत्थे चउलहुगा, सरिसे पुव्वं तु समणीणं।।
५. निसीह. ५।६५
६. निभा. गा. ४६२९,४६३० सचूर्णि।
७. आचू. ६।५६
८. निभा. गा. ४६३५
९. वही, गा. ४६३३, ४६३४
१०. वही, गा. ४६३६
११. आचू. ६।३२-३४
१२. (क) नवसु. पृ. ७५६
 (ख) निभा. भा. ३, चू.पृ. ४६४

संबंधी सूत्र नहीं रहे अथवा उन्होंने उनको अपेक्षित नहीं समझा—इसका कोई निश्चित आधार उपलब्ध नहीं होता।

प्रस्तुत आलापक का एक अन्य विमर्शनीय विषय है—'बहुदेवसिएण' अथवा 'बहुदेसिएण'। आयारचूला में बहुदेसिएण पाठ उपलब्ध होता है। निशीथसूत्र की अनेक प्रतियों में 'बहुदेवसिएण' पाठ मिलता है। निशीथभाष्य एवं चूर्णि में दोनों पाठों की व्याख्या इस प्रकार मिलती है—

१. देसी का अर्थ है—प्रसृति (पूर्ण अंजलि अथवा दो पल प्रमाण)। एक, दो और तीन प्रसृति को 'देश' कहा जाता है। तीन से अधिक प्रसृति जल आदि का उपयोग करना बहुदेसिक जल आदि का उपयोग है।[१]

२. तत्काल गृहीत अथवा तद्दिवसगृहीत जल आदि तद्देवसिक होते हैं। संवासित—एक अथवा अधिक रात बासी रखे हुए जल आदि बहुदेवसिक होते हैं।[२]

भाष्यकार एवं चूर्णिकार के अनुसार पात्र यदि वशीकरण योग, विष अथवा मद्य से भावित हो तो उसे एक या अनेक दिन तक उत्क्षालन, आघर्षण अथवा अभ्यंगन आदि के द्वारा उपयोग के योग्य बनाया जा सकता है।[३]

७. सूत्र १६-१९

मेरा पात्र दुर्गन्धयुक्त है'—ऐसा सोच कर भिक्षु अथवा भिक्षुणी तेल, घृत आदि से पात्र का अभ्यंगन अथवा म्रक्षण न करे कल्क, लोध्र, चूर्ण आदि द्रव्यों से आघर्षण-प्रघर्षण न करे तथा प्रासुक शीतल अथवा उष्ण जल से उत्क्षालन-प्रधावन न करे। यह सामान्य विधान है।[४] अपवादपद में अभियोग, विषप्रयोग, मद्य आदि की अशुभ गंध का निवारण करने हेतु यतनापूर्वक अभ्यंगन, आघर्षण आदि परिकर्म अनुज्ञात हैं।[५]

पूर्व आलापक के समान इस आलापक में भी आयारचूला एवं निसीहज्झयणं के पाठ में भेद है।

८. सूत्र २०-३०

आयारचूला में पात्र-आतापन पद में अव्यवहित पृथ्वी, सस्निग्ध पृथ्वी आदि स्थानों पर पात्र को एक बार अथवा बार-बार आतापन करने का निषेध किया गया है।[६] निसीहज्झयणं के प्रस्तुत आलापक में उसी निषेध के अतिक्रमण का प्रायश्चित्त बतलाया गया है।[७] अव्यवहित, सस्निग्ध और सरजस्क भूमि, शिला, ढेला, घुणयुक्त काष्ठ अथवा अन्य त्रस-स्थावर जीवयुक्त स्थान पर पात्र सुखाने पर जीवविराधना होती है। अतः संयमविराधना से बचने हेतु इनका निषेध प्रज्ञप्त है। जो स्तम्भ, देहली, मचान, माल (मंजिल) आदि खुले हों, दुर्बद्ध हों, अस्थिर हों, उन पर सूखने के लिए पात्र रखा जाए तो पात्र गिर सकता है, टूट सकता है, भिक्षु स्वयं भी पात्र उतारते अथवा पात्र रखते समय गिर सकता है, चोट लग सकती है। इस प्रकार पात्रविराधना, आत्मविराधना आदि दोषों की संभावना के कारण स्तम्भ, देहली आदि अंतरिक्षजात स्थानों पर पात्र का आतापन-प्रतापन करना प्रायश्चित्त योग्य कार्य माना गया है।[८]

शब्द विमर्श हेतु द्रष्टव्य—निसीह. १३/१-११ का टिप्पण।

९. सूत्र ३१-३६

जिस पात्र में सचित्त पृथ्वीकाय, सचित्त जल, तेजस्काय अथवा कंद, मूल, पत्र आदि सचित्त वनस्पतिकाय हो अथवा धान्य बीज हों, उन्हें निकाल कर पात्र लेने से उन-उन स्थावरकायिक जीवों की विराधना होती है। पात्र लेने के लिए जीवों को एक स्थान से दूसरे स्थान में संक्रान्त करना अहिंसा महाव्रत का अतिचार है। अतः भिक्षु स्वयं स्थावरकायिक अथवा त्रसकायिक प्राणियों को स्थानान्तरित न करे और न स्थानान्तरित कर दिए जाने वाले पात्र को ग्रहण करे। आयारचूला में कहा गया है—

'यदि कोई गृहस्थ किसी से कहे—लाओ, हम इस पात्र से कंद, मूल, पत्र, पुष्प अथवा फल का विशोधन कर यह पात्र श्रमण को दें। उस पात्र को अप्रासुक अनेषणीय मानता हुआ भिक्षु उसे ग्रहण न करे तथा गृहस्थ से कहे कि इस प्रकार का पात्र लेना हमें नहीं कल्पता।[९]

१०. सूत्र ३७

प्रस्तुत सूत्र में खुदाई आदि के द्वारा पात्र के मुख को ठीक करने, मुख का अपनयन करने, करवाने तथा अनुमोदन करने का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है। प्रस्तुत आगम के प्रथम उद्देशक में अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से पात्र के परिघट्टन, संस्थापन एवं समीकरण करवाने (जमाने) का गुरुमासिक[१०] तथा द्वितीय उद्देशक में परिघट्टन आदि क्रियाओं को स्वयं करने का लघुमासिक प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है।[११]

उपर्युक्त तीनों सूत्रों के भाष्य पर विमर्श करने पर यह स्पष्ट है कि भिक्षु को यथासंभव यथाकृत पात्र ग्रहण करना चाहिए ताकि परिकर्म की क्रिया से उसके स्वाध्याय तथा अन्य आवश्यक योगों

१. निभा. गा. ४६४३—देसी नामं पसती, तिप्पतिपरेण वा वि बहुदेसो।
२. वही, कक्कादि अणाहारेण वा वि बहुदिवसवुत्थेणं।
३. वही, गा. ४६४६
४. आचू. ६/३५-३६
५. निभा. गा. ४६४६ सचूर्णि।
६. आचू. ६/३८-८१
७. निसीह. १४/२०-३०
८. निभा. गा. ४६४८,४६४९
९. आचू. ६/२५
१०. निसीह. १/१९
११. वही, २/२४

की हानि न हो। चूर्णिकार के अनुसार 'कोरने' की क्रिया से शुषिर सम्बन्धी दोष आते है। अतः इसमें लघुचातुर्मासिक प्रायश्चित्त प्राप्त होता है।[1] पात्र पर खुदाई करके उसके मुख आदि को सुन्दर बनाते समय कुंथु आदि जीवों की विराधना तथा शस्त्र से चोट लग जाने पर शरीरविराधना भी संभव है।[2]

शब्द विमर्श

णिक्कोरण—पात्र आदि के मुख का अपनयन करना।[3]

११. सूत्र ३८,३९

कोई गृहस्वामी निकटवर्ती गांव, खेत, खलिहान आदि में गया हुआ है अथवा रास्ते में सामने से आ रहा है। उससे अथवा किसी परिषद् में बैठा हुआ है, उसे बीच में उठाकर उससे पात्र मांगा जाए तो भद्र प्रकृतिवाला गृहस्थ सोचता है—'इन्हें पात्र की अत्यन्त आवश्यकता होगी, तभी ये इस प्रकार आकर मुझसे पात्र मांग रहे हैं।'[4] और ऐसा सोचकर वह बनवाकर, उधार लेकर अथवा खरीद कर भी भिक्षु को पात्र देता है। दूसरी ओर रुक्ष प्रकृति का गृहस्थ सोचता है—'ये लोकव्यवहार भी नहीं जानते, न पूर्वापर का विचार करते हैं।' इस प्रकार रुष्ट होकर वह पात्र देने से इन्कार कर सकता है।[5] अतः भिक्षु गृहस्वामी के घर जाकर पहले यह ज्ञात करे कि उसके पास पात्र है या नहीं। 'पात्र है'—यह ज्ञात होने पर उसके घर जाकर विधिपूर्वक पात्र की याचना करे। बार-बार घर जाने पर भी पात्र अथवा पात्र का स्वामी उपलब्ध न हो तो किस प्रकार यतनापूर्वक पात्र का अवभाषण करे—निशीथभाष्य में इसका विशद विवरण मिलता है।[6]

शब्द विमर्श

● **ग्रामान्तर**—निकटवर्ती गांव, अंतरपल्लि खेत आदि।[7]

● **ग्रामपथान्तर**—दो गांवों के बीच का मार्ग। चूर्णि में ग्रामान्तर एवं ग्रामपथान्तर के स्थान पर प्रतिग्राम और प्रतिपथ की व्याख्या मिलती है।[8]

१२. सूत्र ४०,४१

मासकल्प प्रायोग्य अथवा वर्षावास प्रायोग्य क्षेत्र को छोड़कर 'यहां अच्छे पात्र मिलेंगे'—इस आशा से ऋतुबद्धकाल अथवा वर्षाकाल में रहना—पात्र की निश्रा से रहना है अथवा गृहस्थ को यह कहना—हम पात्र के लिए यहां रह रहे हैं अथवा पात्र के निमित्त आए हैं—यह भी पात्र की निश्रा है।[9]

पात्र की निश्रा से कालातिक्रान्त रहने से नैत्यिकवास सम्बन्धी दोष आते हैं। कालातिकान्त नहीं रहे, तब भी आज्ञाभंग आदि दोष आते हैं। यदि पात्र के निमित्त रहना भी हो तो ग्लान-वैयावृत्य, स्वाध्याय आदि किसी प्रशस्त आलम्बन के व्याज से रहे तथा पात्रविषयक अभिप्राय गृहस्थ को न जताए।[10]

---

१. निभा. भा. ३ चू.पृ. ४७२—तं झुसिरं ति काऊण चउलहुं।
२. वही, पृ. ४७३—कुंथुमादिविराहणे संजमविराहणा, सत्थमादिणा लंछिते आयविराहणा।
३. वही, पृ. ४७२—मुहस्स अवणयणं णिक्कोरणं।
४. वही, गा. ४६७७ सचूर्णि
५. वही, गा. ४६७६ सचूर्णि
६. वही, गा. ४६७९, ४६८०, ४६८४, ४६८५
७. वही, गा. ४६७५—गामंतर दोण्ह मज्झ खेत्तादी।
८. वही, भा. ३, चू.पृ. ४७४ (गा. ४६७५ की चूर्णि)
९. वही पृ. ४७६—अण्ण मासकप्पवासाजोग्गा वा खेत्ता मोत्तुं एत्थ पादे लभिस्सामो त्ति जे वसति, एत्थ पादे णिस्सा भवति। एयाए पादणिस्साए।
१०. वही, गा. ४६८९ सचूर्णि।

पण्णरसमो उद्देसो

पन्द्रहवां उद्देशक

आमुख

प्रस्तुत उद्देशक का मुख्य विषय है—परिष्ठापनिका समिति से सम्बन्धित निषिद्ध पदों के आचरण, अन्ययूथिक एवं गृहस्थ के द्वारा स्वयं के शरीर आदि का परिकर्म एवं विभूषा के निमित्त स्वयं के शरीर आदि का परिकर्म, अन्यतीर्थिक, गृहस्थ तथा असंविग्न भिक्षुओं के साथ आहार-पानी तथा उपधि के आदान-प्रदान करने एवं सचित्त आम आदि को खाने का प्रायश्चित्त।

प्रस्तुत आगम में परिष्ठापनिका समिति सम्बन्धी अनेक आलापकों का संग्रहण हुआ है। चौथे उद्देशक में उच्चारप्रस्रवण के परिष्ठापन की विधि, क्षेत्र एवं परित्याग के पश्चात् स्वच्छता आदि के विषय में अनेक निर्देश उपलब्ध होते हैं। शेष उद्देशकों में गृहीत'उच्चारप्रस्रवण-पद' का सम्बन्ध उनके परिष्ठापन क्षेत्र से है। प्रस्तुत उद्देशक में यात्रीगृह, आरामगृह आदि ऐसे छयालीस स्थानों पर उच्चाप्रस्रवण के परिष्ठापन का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है, जहां पर परिष्ठापन करने से साधु-संस्था का अवर्णवाद, प्रवचनहानि, जुगुप्सा, अभिनवधर्मा श्रावकों का विपरिणमन आदि अनेक दोषों की संभावना है। आयारचूला के 'उच्चारपासवण-सत्तिक्कयं' नामक अध्ययन में इनमें से कुछ स्थानों पर उच्चार-प्रस्रवण के विसर्जन का निषेध किया गया है। शेष स्थानों पर विसर्जन का निषेध न करने के पीछे क्या हेतु रहा है? यह अन्वेषण का विषय है।

प्रस्तुत आगम में पादपरिकर्म, कायपरिकर्म, व्रणपरिकर्म, गंडादिपरिकर्म, दीर्घरोम एवं मलनिर्हरण आदि से सम्बद्ध चौवन सूत्रों का अनेकशः कथन हुआ है। प्रस्तुत उद्देशक में इनका दो बार उल्लेख है—

१. अन्ययूथिक एवं गृहस्थ के द्वारा साधु का परिकर्म।

२. विभूषा की प्रतिज्ञा से साधु द्वारा स्वयं का परिकर्म।

भिक्षु विभूषा के संकल्प से जिस प्रकार शरीर एवं शरीर के विविध अवयवों का आमार्जन-प्रमार्जन, संबाधन-परिमर्दन, अभ्यंगन-म्रक्षण, उत्क्षालन, प्रधावन आदि कार्य नहीं कर सकता, उसी प्रकार वह वस्त्र, पात्र, कंबल, पादप्रोञ्छन आदि उपकरणों को विभूषा के लिए न धारण कर सकता है और न उनका प्रक्षालन कर सकता।

भिक्षु की विहार चर्या (जीवनशैली) का केन्द्रीय तत्त्व है—अहिंसा एवं संयम। उसे जीवन-पर्यन्त सभी सपाप प्रवृत्तियों का तीन करण एवं तीन योग से प्रत्याख्यान होता है। गार्हस्थ्य में रहते हुए कोई व्यक्ति तीन करण, तीन योग से सभी सावद्य कार्यों का परित्याग कर दे—यह सामान्यतः संभव नहीं। अतः भिक्षु गृहस्थों एवं अन्यतीर्थिकों को अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, वस्त्र, पात्र, कम्बल एवं पादप्रोञ्छन नहीं दे सकता।

प्रस्तुत उद्देशक में असंविग्न भिक्षुओं—पार्श्वस्थ, अवसन्न, कुशील, नैत्यिक एवं संसक्त भिक्षुओं के साथ अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, पात्र, कम्बल और पादप्रोञ्छन के आदान-प्रदान का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है।

आयारचूला के 'ओग्गह-पडिमा' नामक अध्ययन में बताया गया है कि आम्रवन में अवग्रह ग्रहण करे तो जो आम्र या आम्रखण्ड तिर्यक्छिन्न, व्यवच्छिन्न तथा आगन्तुक अण्डे, प्राण, बीज, हरित, ओस, उदक, उत्तिंग, पनक, दकमृत्तिका और मकड़ी के जाले से रहित हो, उसे प्रासुक एषणीय मानता हुआ ग्रहण करे।[१] प्रस्तुत उद्देशक में सचित्त एवं सचित्त-प्रतिष्ठित आम्र तथा आम्र के विविध खण्डों को खाने अथवा स्वाद लेकर खाने का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है। भाष्यकार ने प्रस्तुत प्रसंग में विदशना (स्वाद लेकर खाने) के विषय में बताया है कि प्राचीन काल में आम का छिलका उतार कर उसे गुड़, कपूर,

१. आचू. ७/२८,३१

नमक अथवा इसी प्रकार के अन्य पदार्थ से सुस्वादु बनाकर खाया जाता था। प्रस्तुत संदर्भ में निशीथभाष्य में आम पद की विविध निक्षेपों से व्याख्या की गई है जो अनेक दृष्टियों से ज्ञानवर्धक है। प्रसंगतः अनन्तकायिक वनस्पति के लक्षण, श्रुतज्ञानी एवं केवलज्ञानी की तुलना, तत्त्वनिरूपण में उपमा एवं दृष्टान्त का महत्त्व, परिणामक, अपरिणामक एवं अतिपरिणामक शिष्यों की चिन्तन एवं कार्यशैली, प्रलम्ब के विधिभिन्न-अविधिभिन्न प्रकारों का निरूपण आदि अनेक विषयों की सुन्दर जानकारी उपलब्ध होती है।

पण्णरसमो उद्देसो : पन्द्रहवां उद्देशक

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
फरुसवयण-पदं	**परुषवचन-पदम्**	**परुष वचन-पद**
१. जे भिक्खू भिक्खुं आगाढं वदति, वदंतं वा सातिज्जति।	यो भिक्षुः भिक्षु आगाढं वदति, वदन्तं वा स्वदते।	१. जो भिक्षु भिक्षु को आगाढ़ वचन बोलता है अथवा बोलने वाले का अनुमोदन करता है।
२. जे भिक्खू भिक्खुं फरुसं वदति, वदंतं वा सातिज्जति।	यो भिक्षुः भिक्षु परुषं वदति, वदन्तं वा स्वदते।	२. जो भिक्षु भिक्षु को परुष वचन बोलता है अथवा बोलने वाले का अनुमोदन करता है।
३. जे भिक्खू भिक्खुं आगाढं फरुसं वदति, वदंतं वा सातिज्जति॥	यो भिक्षुः भिक्षुं आगाढं परुषं वदति, वदन्तं वा स्वदते।	३. जो भिक्षु भिक्षु को आगाढ़-परुष वचन बोलता है अथवा बोलने वाले का अनुमोदन करता है।
४. जे भिक्खू भिक्खुं अण्णयरीए अच्चासायणाए अच्चासाएति, अच्चासाएंतं वा सातिज्जति॥	यो भिक्षुः भिक्षुम् अन्यतरया अत्याशातनया अत्याशातयति, अत्याशातयन्तं वा स्वदते।	४. जो भिक्षु भिक्षु की किसी एक अत्याशातना से अत्याशातना करता है अथवा अत्याशातना करने वाले का अनुमोदन करता है।[1]
अंब-पदं	**आम्र-पदम्**	**आम्र-पद**
५. जे भिक्खू सचित्तं अंबं भुंजति, भुजंतं वा सातिज्जति॥	यो भिक्षुः सचित्तम् आम्रं भुङ्क्ते, भुञ्जानं वा स्वदते।	५. जो भिक्षु सचित्त आम खाता है अथवा खाने वाले का अनुमोदन करता है।
६. जे भिक्खू सचित्तं अंबं विडसति, विडसंतं वा सातिज्जति॥	यो भिक्षुः सचित्तम् आम्रं 'विडसति' (विदशति), 'विडसंतं' (विदशन्तं) वा स्वदते।	६. जो भिक्षु सचित्त आम को स्वाद लेकर खाता है अथवा स्वाद लेकर खाने वाले का अनुमोदन करता है।
७. जे भिक्खू सचित्तं अंबं वा अंबपेसिं वा अंबभित्तं वा अंबसालगं वा अंबडगलं वा अंबचोयगं वा भुंजति, भुंजंतं वा सातिज्जति॥	यो भिक्षुः सचित्तम् आम्रं वा आम्रपेशीं वा आम्रभित्तं वा आम्रसालकं वा आम्र'डगलं' वा आम्रचोयगं वा भुङ्क्ते, भुञ्जानं वा स्वदते।	७. जो भिक्षु सचित्त आम (केरी), आम की पेशी, आम-भित्तग, आम-शालक, आम-डगल अथवा आम-चोयग को खाता है अथवा खाने वाले का अनुमोदन करता है।

८. जे भिक्खू सचित्तं अंबं वा अंबपेसिं वा अंबभित्तं वा अंबसालगं वा अंबडगलं वा अंबचोयगं वा विडसति, विडसंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः सचित्तम् आम्रं वा आम्रपेशीं वा आम्रभित्तं वा आम्रसालकं वा आम्र'डगलं' वा आम्रचोयगं वा 'विडसति' (विदशति), 'विडसंतं' (विदशन्तं) वा स्वदते।

८. जो भिक्षु सचित्त आम (केरी), आम की पेशी, आम-भित्तग, आम-शालक, आम-डगल अथवा आम-चोयग को स्वाद लेकर खाता है अथवा स्वाद लेकर खाने वाले का अनुमोदन करता है।

९. जे भिक्खू सचित्तपइट्ठियं अंबं भुंजति, भुंजंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः सचित्तप्रतिष्ठितम् आम्रं भुङ्क्ते, भुञ्जानं वा स्वदते।

९. जो भिक्षु सचित्त-प्रतिष्ठित आम खाता है अथवा खाने वाले का अनुमोदन करता है।

१०. जे भिक्खू सचित्तपइट्ठियं अंबं विडसति, विडसंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः सचित्तप्रतिष्ठितम् आम्रं 'विडसति' (विदशति), 'विडसंतं' (विदशन्तं) वा स्वदते।

१०. जो भिक्षु सचित्त-प्रतिष्ठित आम को स्वाद लेकर खाता है अथवा स्वाद लेकर खाने वाले का अनुमोदन करता है।

११. जे भिक्खू सचित्त-पइट्ठियं अंबं वा अंबपेसिं वा अंबभित्तं वा अंबसालगं वा अंबडगलं वा अंबचोयगं वा भुंजति, भुंजंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः सचित्तप्रतिष्ठितम् आम्रं वा आम्रपेशीं वा आम्रभित्तं वा आम्रसालकं वा आम्र'डगलं' वा आम्रचोयगं वा भुङ्क्ते, भुञ्जानं वा स्वदते।

११. जो भिक्षु सचित्त-प्रतिष्ठित आम (केरी), आम की पेशी, आम-भित्तग, आम-शालक, आम-डगल अथवा आम-चोयग को खाता है अथवा खाने वाले का अनुमोदन करता है।

१२. जे भिक्खू सचित्तपइट्ठियं अंबं वा अंबपेसिं वा अंबभित्तं वा अंबसालगं वा अंबडगलं वा अंबचोयगं वा विडसति, विडसंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः सचित्तप्रतिष्ठितम् आम्रं वा आम्रपेशीं वा आम्रभित्तं वा आम्रसालकं वा आम्र'डगलं' वा आम्रचोयगं वा 'विडसति' (विदशति), 'विडसंतं' (विदशन्तं) वा स्वदते।

१२. जो भिक्षु सचित्त-प्रतिष्ठित आम (केरी), आम की पेशी, आम-भित्तग, आम-शालक, आम-डगल अथवा आम-चोयग को स्वाद लेकर खाता है अथवा खाने वाले का अनुमोदन करता है।[2]

पाय-परिकम्म-पदं

पादपरिकर्म-पदम्

पादपरिकर्म-पद

१३. जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा अप्पणो पाए आमज्जावेज्ज वा पमज्जावेज्ज वा, आमज्जावेंतं वा पमज्जावेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा आत्मनः पादौ आमार्जयेद् वा प्रमार्जयेद् वा, आमार्जयन्तं वा प्रमार्जयन्तं वा स्वदते।

१३. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के द्वारा अपने पैरों का आमार्जन करवाता है अथवा प्रमार्जन करवाता है और आमार्जन अथवा प्रमार्जन करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

१४. जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा अप्पणो पाए संवाहावेज्ज वा पलिमद्दावेज्ज वा, संवाहावेंतं वा पलिमद्दावेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा आत्मनः पादौ संवाहयेद् वा परिमर्दयेद् वा, संवाहयन्तं वा परिमर्दयन्तं वा स्वदते।

१४. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के द्वारा अपने पैरों का संबाधन करवाता है अथवा परिमर्दन करवाता है और संबाधन अथवा परिमर्दन करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

१५. जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा

यो भिक्षुः अन्ययूथिकेन वा

१५. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के

गारत्थिएण वा अप्पणो पाए तेल्लेण वा घएण वा वसाए वा णवणीएण वा अब्भंगावेज्ज वा मक्खावेज्ज वा, अब्भंगावेंतं वा मक्खावेंतं वा सातिज्जति ।।

अगारस्थितेन वा आत्मनः पादौ तैलेन वा घृतेन वा वसया वा नवनीतेन वा अभ्यञ्जयेद् वा म्रक्षयेद् वा, अभ्यञ्जयन्तं वा म्रक्षयन्तं वा स्वदते।

द्वारा अपने पैरों का तैल, घृत, वसा अथवा मक्खन से अभ्यंगन करवाता है अथवा म्रक्षण करवाता है और अभ्यंगन अथवा म्रक्षण करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

१६. जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा अप्पणो पाए लोद्धेण वा कक्केण वा चुण्णेण वा वण्णेण वा उल्लोलावेज्ज वा उव्वट्टावेज्ज वा, उल्लोलावेंतं वा उव्वट्टावेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा आत्मनः पादौ लोध्रेण वा कल्केन वा चूर्णेन वा वर्णेन वा उल्लोलयेद् वा उद्वर्तयेद् वा, उल्लोलयन्तं वा उद्वर्तयन्तं वा स्वदते।

१६. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के द्वारा अपने पैरों पर लोध, कल्क, चूर्ण अथवा वर्ण का लेप करवाता है अथवा उद्वर्तन करवाता है और लेप अथवा उद्वर्तन करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

१७. जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा अप्पणो पाए सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलावेज्ज वा पधोवावेज्ज वा, उच्छोलावेंतं वा पधोवावेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा आत्मनः पादौ शीतोदकविकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन वा उत्क्षालयेद् वा प्रधावयेद् वा, उत्क्षालयन्तं वा प्रधावयन्तं वा स्वदते।

१७. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के द्वारा अपने पैरों का प्रासुक शीतल जल अथवा प्रासुक उष्ण जल से उत्क्षालन करवाता है अथवा प्रधावन करवाता है और उत्क्षालन अथवा प्रधावन करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

१८. जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा अप्पणो पाए फुमावेज्ज वा रयावेज्ज वा, फुमावेंतं वा रयावेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा आत्मनः पादौ 'फुमावेज्ज' (फूत्कारयेद्) वा रञ्जयेद् वा, 'फुमावेंतं' (फूत्कारयन्तं) वा रञ्जयन्तं वा स्वदते।

१८. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के द्वारा अपने पैरों का फूंक दिलवाता है अथवा रंग लगवाता है और फूंक दिलवाने अथवा रंग लगवाने वाले का अनुमोदन करता है।

काय-परिकम्म-पदं

कायपरिकर्म-पदम्

कायपरिकर्म-पद

१९. जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा अप्पणो कायं आमज्जावेज्ज वा पमज्जावेज्ज वा, आमज्जावेंतं वा पमज्जावेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा आत्मनः कायम् आमार्जयेद् वा प्रमार्जयेद् वा, आमार्जयन्तं वा प्रमार्जयन्तं वा स्वदते।

१९. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के द्वारा अपने शरीर का आमार्जन करवाता है अथवा प्रमार्जन करवाता है और आमार्जन अथवा प्रमार्जन करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

२०. जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा अप्पणो कायं संवाहावेज्ज वा पलिमद्दावेज्ज वा, संवाहावेंतं वा पलिमद्दावेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा आत्मनः कायं संवाहयेद् वा परिमर्दयेद् वा, संवाहयन्तं वा परिमर्दयन्तं वा स्वदते।

२०. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के द्वारा अपने शरीर का संबाधन करवाता है अथवा परिमर्दन करवाता है और संबाधन अथवा परिमर्दन करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

२१. जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा अप्पणो कायं तेल्लेण वा घएण वा वसाए वा णवणीएण वा अब्भंगावेज्ज वा मक्खावेज्ज वा, अब्भंगावेंतं वा मक्खावेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा आत्मनः कायं तैलेन वा घृतेन वा वसया वा नवनीतेन वा अभ्यञ्जयेद् वा म्रक्षयेद् वा, अभ्यञ्जयन्तं वा म्रक्षयन्तं वा स्वदते।

२१. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के द्वारा अपने शरीर का तैल, घृत, वसा अथवा मक्खन से अभ्यंगन करवाता है अथवा म्रक्षण करवाता है और अभ्यंगन अथवा म्रक्षण करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

२२. जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा अप्पणो कायं लोद्धेण वा कक्केण वा चुण्णेण वा वण्णेण वा उल्लोलावेज्ज वा उव्वट्टावेज्ज वा, उल्लोलावेंतं वा उव्वट्टावेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा आत्मनः कायं लोध्रेण वा कल्केन वा चूर्णेन वा वर्णेन वा उल्लोलयेद् वा उद्वर्तयेद् वा, उल्लोलयन्तं वा उद्वर्तयन्तं वा स्वदते।

२२. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के द्वारा अपने शरीर पर लोध, कल्क, चूर्ण अथवा वर्ण का लेप करवाता है अथवा उद्वर्तन करवाता है और लेप अथवा उद्वर्तन करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

२३. जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा अप्पणो कायं सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलावेज्ज वा पधोवावेज्ज वा, उच्छोलावेंतं वा पधोवावेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा आत्मनः कायं शीतोदकविकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन वा उत्क्षालयेद् वा प्रधावयेद् वा, उत्क्षालयन्तं वा प्रधावयन्तं वा स्वदते।

२३. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के द्वारा अपने शरीर का प्रासुक शीतल जल अथवा प्रासुक उष्ण जल से उत्क्षालन करवाता है अथवा प्रधावन करवाता है और उत्क्षालन अथवा प्रधावन करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

२४. जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा अप्पणो कायं फुमावेज्ज वा रयावेज्ज वा, फुमावेंतं वा रयावेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा आत्मनः कायं 'फुमावेज्ज' (फूत्कारयेद्) वा रञ्जयेद् वा, 'फुमावेंतं' (फूत्कारयन्तं) वा रञ्जयन्तं वा स्वदते।

२४. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के द्वारा अपने शरीर पर फूंक दिलवाता है अथवा रंग लगवाता है और फूंक दिलवाने वाले अथवा रंग लगवाने वाले का अनुमोदन करता है।

वण-परिकम्म-पदं

व्रण-परिकर्म-पदम्

व्रणपरिकर्म-पद

२५. जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा अप्पणो कायंसि वणं आमज्जावेज्ज वा पमज्जावेज्ज वा, आमज्जावेंतं वा पमज्जावेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा आत्मनः काये व्रणम् आमार्जयेद् वा प्रमार्जयेद् वा, आमार्जयन्तं वा प्रमार्जयन्तं वा स्वदते।

२५. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के द्वारा अपने शरीर पर हुए व्रण का आमार्जन करवाता है अथवा प्रमार्जन करवाता है और आमार्जन अथवा प्रमार्जन करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

२६. जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा अप्पणो कायंसि वणं संवाहावेज्ज वा पलिमद्दावेज्ज वा, संवाहावेंतं वा पलिमद्दावेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा आत्मनः काये व्रणं संवाहयेद् वा परिमर्दयेद् वा, संवाहयन्तं वा परिमर्दयन्तं वा स्वदते।

२६. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के द्वारा अपने शरीर पर हुए व्रण का संबाधन करवाता है अथवा परिमर्दन करवाता है और संबाधन अथवा परिमर्दन करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

२७. जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा अप्पणो कायंसि वणं तेल्लेण वा घएण वा वसाए वा णवणीएण वा अब्भंगावेज्ज वा मक्खावेज्ज वा, अब्भंगावेंतं वा मक्खावेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा आत्मनः काये व्रणं तैलेन वा घृतेन वा वसया वा नवनीतेन वा अभ्यञ्जयेद् वा म्रक्षयेद् वा, अभ्यञ्जयन्तं वा म्रक्षयन्तं वा स्वदते।

२७. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के द्वारा अपने शरीर पर हुए व्रण का तैल, घृत, वसा अथवा मक्खन से अभ्यंगन करवाता है अथवा म्रक्षण करवाता है और अभ्यंगन अथवा म्रक्षण करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

२८. जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा अप्पणो कायंसि वणं लोद्धेण वा कक्केण वा चुण्णेण वा वण्णेण वा उल्लोलावेज्ज वा उव्वट्टावेज्ज वा, उल्लोलावेंतं वा उव्वट्टावेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा आत्मनः काये व्रणं लोध्रेण वा कल्केन वा चूर्णेन वा वर्णेन वा उल्लोलयेद् वा उद्वर्तयेद् वा, उल्लोलयन्तं वा उद्वर्तयन्तं वा स्वदते।

२८. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के द्वारा अपने शरीर पर हुए व्रण पर लोध, कल्क, चूर्ण अथवा वर्ण का लेप करवाता है अथवा उद्वर्तन करवाता है और लेप अथवा उद्वर्तन करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

२९. जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा अप्पणो कायंसि वणं सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलावेज्ज वा पधोवावेज्ज वा, उच्छोलावेंतं वा पधोवावेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा आत्मनः काये व्रणं शीतोदकविकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन वा उत्क्षालयेद् वा प्रधावयेद् वा, उत्क्षालयन्तं वा प्रधावयन्तं वा स्वदते।

२९. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के द्वारा अपने शरीर पर हुए व्रण का प्रासुक शीतल जल अथवा प्रासुक उष्ण जल से उत्क्षालन करवाता है अथवा प्रधावन करवाता है और उत्क्षालन अथवा प्रधावन करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

३०. जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा अप्पणो कायंसि वणं फुमावेज्ज वा रयावेज्ज वा, फुमावेंतं वा रयावेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा आत्मनः काये व्रणं 'फुमावेज्ज' (फूत्कारयेद्) वा रञ्जयेद् वा, 'फुमावेंतं' (फूत्कारयन्तं) वा रञ्जयन्तं वा स्वदते।

३०. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के द्वारा अपने शरीर पर हुए व्रण पर फूंक दिलवाता है अथवा रंग लगवाता है और फूंक दिलवाने अथवा रंग लगवाने वाले का अनुमोदन करता है।

गंडादि-परिकम्म-पदं

गंडादिपरिकर्म-पदम्

गंडादिपरिकर्म-पद

३१. जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा अप्पणो कायंसि गंडं वा पिडयं वा अरइयं वा असियं वा भगंदलं वा अण्णयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं अच्छिंदावेज्ज वा विच्छिंदावेज्ज वा, अच्छिंदावेंतं वा विच्छिंदावेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा आत्मनः काये गंडं वा पिटकं वा अरतिकां वा अर्शो वा भगन्दरं वा अन्यतरेण तीक्ष्णेन शस्त्रजातेन आच्छेदयेद् वा विच्छेदयेद् वा, आच्छेदयन्तं वा विच्छेदयन्तं वा स्वदते।

३१. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के द्वारा अपने शरीर में हुए गंडमाल, फोड़ा, फुंसी, अर्श अथवा भगन्दर का किसी तीक्ष्ण शस्त्रजात से आच्छेदन करवाता है अथवा विच्छेदन करवाता है और आच्छेदन अथवा विच्छेदन करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

३२. जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा अप्पणो कायंसि गंडं वा पिडयं वा अरइयं वा असियं वा

यो भिक्षुः अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा आत्मनः काये गंडं वा पिटकं वा अरतिकां वा अर्शो वा भगन्दरं

३२. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के द्वारा अपने शरीर में हुए गंडमाल, फोड़ा, फुंसी, अर्श अथवा भगन्दर का किसी

भगंदलं वा अण्णयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं अच्छिंदावेत्ता वा विच्छिंदावेत्ता वा पूयं वा सोणियं वा णीहरावेज्ज वा विसोहावेज्ज वा, णीहरावेंतं वा विसोहावेंतं वा सातिज्जति ।।

वा अन्यतरेण वा तीक्ष्णेन शस्त्रजातेन आच्छेद्य वा विच्छेद्य वा पूयं वा शोणितं वा निस्सारयेद् वा विशोधयेद् वा, निस्सारयन्तं वा विशोधयन्तं वा स्वदते।

तीक्ष्ण शस्त्रजात से आच्छेदन अथवा विच्छेदन करवाकर, पीव अथवा रक्त निकलवाता है अथवा साफ करवाता है और निकलवाने अथवा साफ करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

३३. जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा अप्पणो कायंसि गंडं वा पिडयं वा अरइयं वा असियं वा भगंदलं वा अण्णयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं अच्छिंदावेत्ता वा विच्छिंदावेत्ता वा पूयं वा सोणियं वा णीहरावेत्ता वा विसोहावेत्ता वा सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलावेज्ज वा पधोवावेज्ज वा, उच्छोलावेंतं वा पधोवावेंतं सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा आत्मनः काये गंडं वा पिटकं वा अरतिकां वा अर्शो वा भगन्दरं वा अन्यतरेण तीक्ष्णेन शस्त्रजातेन आच्छेद्य वा विच्छेद्य वा पूयं वा शोणितं वा निस्सार्य वा विशोध्य वा शीतोदकविकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन वा उत्क्षालयेद् वा प्रधावयेद् वा, उत्क्षालयन्तं वा प्रधावयन्तं वा स्वदते।

३३. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के द्वारा अपने शरीर में हुए गंडमाल, फोड़ा, फुंसी, अर्श अथवा भगन्दर का किसी तीक्ष्ण शस्त्रजात से आच्छेदन अथवा विच्छेदन करवाकर, पीव अथवा रक्त को निकलवाकर अथवा साफ करवाकर, उसका प्रासुक शीतल जल अथवा प्रासुक उष्ण जल से उत्क्षालन करवाता है अथवा प्रधावन करवाता है और उत्क्षालन अथवा प्रधावन करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

३४. जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा अप्पणो कायंसि गंडं वा पिडयं वा अरइयं वा असियं वा भगंदलं वा अण्णयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं अच्छिंदावेत्ता वा विच्छिंदावेत्ता वा पूयं वा सोणियं वा णीहरावेत्ता वा विसोहावेत्ता वा सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलावेत्ता वा पधोवावेत्ता वा अण्णयरेणं आलेवणजाएणं आलिंपावेज्ज वा विलिंपावेज्ज वा, आलिंपावेंतं वा विलिंपावेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा आत्मनः काये गंडं वा पिटकं वा अरतिकां वा अर्शो वा भगन्दरं वा अन्यतरेण तीक्ष्णेन शस्त्रजातेन आच्छेद्य वा विच्छेद्य पूयं वा शोणितं वा निस्सार्य वा विशोध्य वा शीतोदकविकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन वा उत्क्षाल्य वा प्रधाव्य वा अन्यतरेण आलेपनजातेन आलेपयेद् वा विलेपयेद् वा, आलेपयन्तं वा विलेपयन्तं वा स्वदते।

३४. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के द्वारा अपने शरीर में हुए गंडमाल, फोड़ा, फुंसी, अर्श अथवा भगन्दर का किसी तीक्ष्ण शस्त्रजात से आच्छेदन अथवा विच्छेदन करवाकर, पीव अथवा रक्त को निकलवाकर अथवा साफ करवाकर, उसका प्रासुक शीतल अथवा प्रासुक उष्ण जल से उत्क्षालन अथवा प्रधावन करवाकर, किसी आलेपनजात से आलेपन करवाता है अथवा विलेपन करवाता है और आलेपन अथवा विलेपन करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

३५. जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा अप्पणो कायंसि गंडं वा पिडयं वा अरइयं वा असियं वा भगंदलं वा अण्णयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं अच्छिंदावेत्ता वा विच्छिंदावेत्ता वा पूयं वा सोणियं वा

यो भिक्षुः अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा आत्मनः काये गंडं वा पिटकं वा अरतिकां वा अर्शो वा भगन्दरं वा अन्यतरेण तीक्ष्णेन शस्त्रजातेन आच्छेद्य वा विच्छेद्य वा पूयं वा शोणितं वा निस्सार्य वा विशोध्य वा

३५. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के द्वारा अपने शरीर में हुए गंडमाल, फोड़ा, फुंसी, अर्श अथवा भगन्दर का किसी तीक्ष्ण शस्त्रजात से आच्छेदन अथवा विच्छेदन करवाकर, पीव अथवा रक्त को निकलवाकर अथवा साफ करवाकर,

णीहरावेत्ता वा विसोहावेत्ता वा सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलावेत्ता वा पधोवावेत्ता वा अण्णयरेणं आलेवणजाएणं आलिंपावेत्ता वा विलिंपावेत्ता वा तेल्लेण वा घएण वा वसाए वा णवणीएण वा अब्भंगावेज्ज वा मक्खावेज्ज वा, अब्भंगावेंतं वा मक्खावेंतं वा सातिज्जति।।

शीतोदकविकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन वा उत्क्षाल्य वा प्रधाव्य वा अन्यतरेण आलेपनजातेन आलेप्य वा विलेप्य वा तैलेन वा घृतेन वा वसया वा नवनीतेन वा अभ्यञ्जयेद् वा म्रक्षयेद् वा, अभ्यञ्जयन्तं वा म्रक्षयन्तं वा स्वदते।

उसका प्रासुक शीतल जल अथवा प्रासुक उष्ण जल से उत्क्षालन अथवा प्रधावन करवाकर, उस पर किसी आलेपनजात का आलेपन अथवा विलेपन करवाकर, उसका तैल, घृत, वसा अथवा मक्खन से अभ्यंगन करवाता है अथवा म्रक्षण करवाता है और अभ्यंगन अथवा म्रक्षण करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

३६. जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा अप्पणो कायंसि गंडं वा पिडयं वा अरइयं वा असियं वा भगंदलं वा अण्णयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं अच्छिंदावेत्ता वा विच्छिंदावेत्ता वा पूयं वा सोणियं वा णीहरावेत्ता वा विसोहावेत्ता वा सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलावेत्ता वा पधोवावेत्ता वा अण्णयरेणं आलेवणजाएणं आलिंपावेत्ता वा विलिंपावेत्ता वा तेल्लेण वा घएण वा वसाए वा णवणीएण वा अब्भंगावेत्ता वा मक्खावेत्ता वा अण्णयरेणं धूवणजाएणं धूवावेज्ज वा पधूवावेज्ज वा, धूवावेंतं वा पधूवावेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा आत्मनः काये गंडं वा पिटकं वा अरतिकां वा अर्शो वा भगन्दरं वा अन्यतरेण तीक्ष्णेन शस्त्रजातेन आच्छेद्य वा विच्छेद्य वा पूयं वा शोणितं वा निस्सार्य वा विशोध्य वा शीतोदकविकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन वा उत्क्षाल्य वा प्रधाव्य वा अन्यतरेण आलेपनजातेन आलेप्य वा विलेप्य वा तैलेन वा घृतेन वा वसया वा नवनीतेन वा अभ्यज्य वा म्रक्षयित्वा वा अन्यतरेण धूपनजातेन धूपयेद् वा प्रधूपयेद् वा, धूपयन्तं वा प्रधूपयन्तं वा स्वदते।

३६. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के द्वारा अपने शरीर में हुए गंडमाल, फोड़ा, फुंसी, अर्श अथवा भगन्दर का किसी तीक्ष्ण शस्त्रजात से आच्छेदन अथवा विच्छेदन करवाकर, पीव अथवा रक्त को निकलवाकर अथवा साफ करवाकर, उसका प्रासुक शीतल अथवा प्रासुक उष्ण जल से उत्क्षालन अथवा प्रधावन करवाकर, उस पर किसी आलेपनजात का आलेपन अथवा विलेपन करवाकर, उसका तैल, घृत, वसा अथवा मक्खन से अभ्यंगन अथवा म्रक्षण करवाकर उसे किसी अन्य धूपजात से धूपित करवाता है अथवा प्रधूपित करवाता है और धूपित अथवा प्रधूपित करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

किमि-पदं

३७. जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा अप्पणो पालुकिमियं वा कुच्छिकिमियं वा अंगुलीए णिवेसाविय-णिवेसाविय णीहरावेति, णीहरावेंतं वा सातिज्जति।।

कृमि-पदम्

यो भिक्षुः अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा आत्मनः पायुकृमिकं वा कुक्षिकृमिकं वा अंगुल्या निवेश्य-निवेश्य निस्सारयति, निस्सारयन्तं वा स्वदते।

कृमि-पद

३७. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के द्वारा अपने अपान के कृमि अथवा कुक्षि के कृमि को अंगुली डलवा-डलवा कर निकलवाता है अथवा निकलवाने वाले का अनुमोदन करता है।

णह-सिहा-पदं

३८. जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा अप्पणो दीहाओ

नखशिखा-पदम्

यो भिक्षुः अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा आत्मनः दीर्घाः

नखशिखा-पद

३८. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के द्वारा अपनी दीर्घ नखशिखा को कटवाता है

णह-सिहाओ कप्पावेज्ज वा संठवावेज्ज वा, कप्पावेंतं वा संठवावेंतं वा सातिज्जति ।।

नखशिखाः कल्पयेत् वा संस्थापयेद् वा, कल्पयन्तं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते ।

अथवा व्यवस्थित करवाता है और कटवाने अथवा व्यवस्थित करवाने वाले का अनुमोदन करता है ।

दीह-रोम-पदं

दीर्घरोम-पदम्

दीर्घरोम-पद

३९. जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा अप्पणो दीहाइं जंघ-रोमाइं कप्पावेज्ज वा संठवावेज्ज वा, कप्पावेंतं वा संठवावेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा आत्मनः दीर्घाणि जंघारोमाणि कल्पयेद् वा संस्थापयेद् वा, कल्पयन्तं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते ।

३९. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के द्वारा अपनी जंघाप्रदेश की दीर्घ रोमराजि को कटवाता है अथवा व्यवस्थित करवाता है और कटवाने अथवा व्यवस्थित करवाने वाले का अनुमोदन करता है ।

४०. जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा अप्पणो दीहाइं वत्थि-रोमाइं कप्पावेज्ज वा संठवावेज्ज वा, कप्पावेंतं वा संठवावेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा आत्मनः दीर्घाणि वस्तिरोमाणि कल्पयेद् वा संस्थापयेद् वा, कल्पयन्तं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते ।

४०. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के द्वारा अपनी वस्तिप्रदेश की दीर्घ रोमराजि को कटवाता है अथवा व्यवस्थित करवाता है और कटवाने अथवा व्यवस्थित करवाने वाले का अनुमोदन करता है ।

४१. जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा अप्पणो दीह-रोमाइं कप्पावेज्ज वा संठवावेज्ज वा, कप्पावेंतं वा संठवावेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा आत्मनः दीर्घरोमाणि कल्पयेद् वा संस्थापयेद् वा, कल्पयन्तं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते ।

४१. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के द्वारा अपनी दीर्घ रोमराजि को कटवाता है अथवा व्यवस्थित करवाता है और कटवाने अथवा व्यवस्थित करवाने वाले का अनुमोदन करता है ।

४२. जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा अप्पणो दीहाइं कक्खाण-रोमाइं कप्पावेज्ज वा संठवावेज्ज वा, कप्पावेंतं वा संठवावेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा आत्मनः दीर्घाणि कक्षारोमाणि कल्पयेद् वा संस्थापयेद् वा, कल्पयन्तं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते ।

४२. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के द्वारा अपनी कक्षा की दीर्घ रोमराजि को कटवाता है अथवा व्यवस्थित करवाता है और कटवाने अथवा व्यवस्थित करवाने वाले का अनुमोदन करता है ।

४३. जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा अप्पणो दीहाइं मंसु-रोमाइं कप्पावेज्ज वा संठवावेज्ज वा, कप्पावेंतं वा संठवावेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा आत्मनः दीर्घाणि श्मश्रुरोमाणि कल्पयेद् वा संस्थापयेद् वा, कल्पयन्तं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते ।

४३. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के द्वारा अपनी श्मश्रु की दीर्घ रोमराजि को कटवाता है अथवा व्यवस्थित करवाता है और कटवाने अथवा व्यवस्थित करवाने वाले का अनुमोदन करता है ।

दंत-पदं

दंत-पदम्

दंत-पद

४४. जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा अप्पणो दंते

यो भिक्षुः अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा आत्मनः दन्तान्

४४. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के द्वारा अपने दांतों का आघर्षण करवाता है

आघंसावेज्ज वा पघंसावेज्ज वा, आघंसावेंतं वा पघंसावेंतं वा सातिज्जति ।।

आघर्षयेद् वा प्रघर्षयेद् वा, आघर्षयन्तं वा प्रघर्षयन्तं वा स्वदते।

अथवा प्रघर्षण करवाता है और आघर्षण अथवा प्रघर्षण करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

४५. जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा अप्पणो दंते उच्छोलावेज्ज वा पधोवावेज्ज वा, उच्छोलावेंतं वा पधोवावेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा आत्मनः दन्तान् उत्क्षालयेद् वा प्रधावयेद् वा, उत्क्षालयन्तं वा प्रधावयन्तं वा स्वदते।

४५. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के द्वारा अपने दांतों का उत्क्षालन करवाता है अथवा प्रधावन करवाता है और उत्क्षालन अथवा प्रधावन करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

४६. जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा अप्पणो दंते फुमावेज्ज वा रयावेज्ज वा, फुमावेंतं वा रयावेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा आत्मनः दन्तान् 'फुमावेज्ज' (फूत्कारयेद्) वा रञ्जयेद् वा, 'फुमावेंतं' (फूत्कारयन्तं) वा रञ्जयन्तं वा स्वदते।

४६. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के द्वारा अपने दांतों पर फूंक दिलवाता है अथवा रंग लगवाता है और फूंक दिलवाने अथवा रंग लगवाने वाले का अनुमोदन करता है।

उट्ठ-पदं

ओष्ठ-पदम्

ओष्ठ-पद

४७. जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा अप्पणो उट्ठे आमज्जावेज्ज वा पमज्जावेज्ज वा, आमज्जावेंतं वा पमज्जावेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा आत्मनः ओष्ठौ आमार्जयेत् वा प्रमार्जयेद् वा, आमार्जयन्तं वा प्रमार्जयन्तं वा स्वदते।

४७. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के द्वारा अपने ओष्ठ का आमार्जन करवाता है अथवा प्रमार्जन करवाता है और आमार्जन अथवा प्रमार्जन करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

४८. जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा अप्पणो उट्ठे संवाहावेज्ज वा पलिमद्दावेज्ज वा, संवाहावेंतं वा पलिमद्दावेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा आत्मनः ओष्ठौ संवाहयेद् वा परिमर्दयेद् वा, संवाहयन्तं वा परिमर्दयन्तं वा स्वदते।

४८. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के द्वारा अपने ओष्ठ का संबाधन करवाता है अथवा परिमर्दन करवाता है और संबाधन अथवा परिमर्दन करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

४९. जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा अप्पणो उट्ठे तेल्लेण वा घएण वा वसाए वा णवणीएण वा अब्भंगावेज्ज वा मक्खावेज्ज वा, अब्भंगावेंतं वा मक्खावेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा आत्मनः ओष्ठौ तैलेन वा घृतेन वा वसया वा नवनीतेन वा अभ्यञ्जयेद् वा म्रक्षयेद् वा, अभ्यञ्जयन्तं वा म्रक्षयन्तं वा स्वदते।

४९. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के द्वारा अपने ओष्ठ का तैल, घृत, वसा अथवा मक्खन से अभ्यंगन करवाता है अथवा म्रक्षण करवाता है और अभ्यंगन अथवा म्रक्षण करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

५०. जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा अप्पणो उट्ठे लोद्धेण वा कक्केण वा चुण्णेण वा वण्णेण

यो भिक्षुः अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा आत्मनः ओष्ठौ लोध्रेण वा कल्केन वा चूर्णेन वा वर्णेन वा

५०. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के द्वारा अपने ओष्ठ पर लोध, कल्क, चूर्ण अथवा वर्ण का लेप करवाता है अथवा

वा उल्लोलावेज्ज वा उव्वट्टावेज्ज वा, उल्लोलावेंतं वा उव्वट्टावेंतं वा सातिज्जति ।।

उल्लोलयेद् वा उद्वर्तयेद् वा, उल्लोलयन्तं वा उद्वर्तयन्तं वा स्वदते।

उद्वर्तन करवाता है और लेप अथवा उद्वर्तन करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

५१. जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा अप्पणो उट्ठे सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलावेज्ज वा पधोवावेज्ज वा, उच्छोलावेंतं वा पधोवावेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा आत्मनः ओष्ठौ शीतोदकविकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन वा उत्क्षालयेद् वा प्रधावयेद् वा, उत्क्षालयन्तं वा प्रधावयन्तं वा स्वदते।

५१. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के द्वारा अपने ओष्ठ का प्रासुक शीतल जल अथवा प्रासुक उष्ण जल से उत्क्षालन करवाता है अथवा प्रधावन करवाता है और उत्क्षालन अथवा प्रधावन करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

५२. जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा अप्पणो उट्ठे फुमावेज्ज वा रयावेज्ज वा, फुमावेंतं वा रयावेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा आत्मनः ओष्ठौ 'फुमावेज्ज' (फूत्कारयेद्) वा रञ्जयेद् वा, 'फुमावेंतं' (फूत्कारयन्तं) वा रञ्जयन्तं वा स्वदते।

५२. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के द्वारा अपने ओष्ठ पर फूंक दिलवाता है अथवा रंग लगवाता है और फूंक दिलवाने अथवा रंग लगवाने वाले का अनुमोदन करता है।

दीह-रोम-पदं

दीर्घरोम-पदम्

दीर्घरोम-पद

५३. जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा अप्पणो दीहाइं उत्तरोट्ठ-रोमाइं कप्पावेज्ज वा संठवावेज्ज वा, कप्पावेंतं वा संठवावेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा आत्मनः दीर्घाणि उत्तरौष्ठरोमाणि कल्पयेद् वा संस्थापयेद् वा, कल्पयन्तं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते।

५३. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के द्वारा अपनी उत्तरोष्ठ की दीर्घ रोमराजि को कटवाता है अथवा व्यवस्थित करवाता है और कटवाने अथवा व्यवस्थित करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

५४. जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा अप्पणो दीहाइं णासा-रोमाइं कप्पावेज्ज वा संठवावेज्ज वा, कप्पावेंतं वा संठवावेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा आत्मनः दीर्घाणि नासारोमाणि कल्पयेद् वा संस्थापयेद् वा, कल्पयन्तं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते।

५४. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के द्वारा अपनी नाक की दीर्घ रोमराजि को कटवाता है अथवा व्यवस्थित करवाता है और कटवाने अथवा व्यवस्थित करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

अच्छि-पत्त-पदं

अक्षिपत्र-पदम्

अक्षिपत्र-पद

५५. जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा अप्पणो दीहाइं अच्छि-पत्ताइं कप्पावेज्ज वा संठवावेज्ज वा, कप्पावेंतं वा संठवावेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा आत्मनः दीर्घाणि अक्षिपत्राणि कल्पयेद् वा संस्थापयेद् वा, कल्पयन्तं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते।

५५. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के द्वारा अपने दीर्घ अक्षिपत्रों को कटवाता है अथवा व्यवस्थित करवाता है और कटवाने अथवा व्यवस्थित करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

अच्छि-पदं

५६. जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा अप्पणो अच्छीणि आमज्जावेज्ज वा पमज्जावेज्ज वा, आमज्जावेंतं वा पमज्जावेंतं वा सातिज्जति ।।

५७. जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा अप्पणो अच्छीणि संवाहावेज्ज वा पलिमद्दावेज्ज वा, संवाहावेंतं वा पलिमद्दावेंतं वा सातिज्जति ।।

५८. जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा अप्पणो अच्छीणि तेल्लेण वा घएण वा वसाए वा णवणीएण वा अब्भंगावेज्ज वा मक्खावेज्ज वा, अब्भंगावेंतं वा मक्खावेंतं वा सातिज्जति ।।

५९. जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा अप्पणो अच्छीणि लोद्धेण वा कक्केण वा चुण्णेण वा वण्णेण वा उल्लोलावेज्ज वा उव्वट्टावेज्ज वा, उल्लोलावेंतं वा उव्वट्टावेंतं वा सातिज्जति ।।

६०. जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा अप्पणो अच्छीणि सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलावेज्ज वा पधोवावेज्ज वा, उच्छोलावेंतं वा पधोवावेंतं वा सातिज्जति ।।

६१. जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा अप्पणो अच्छीणि फुमावेज्ज वा रयावेज्ज वा, फुमावेंतं वा रयावेंतं वा सातिज्जति ।।

अक्षि-पदम्

यो भिक्षुः अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा आत्मनः अक्षिणी आमार्जयेद् वा प्रमार्जयेद् वा, आमार्जयन्तं वा प्रमार्जयन्तं वा स्वदते।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा आत्मनः अक्षिणी संवाहयेद् वा परिमर्दयेद् वा, संवाहयन्तं वा परिमर्दयन्तं वा स्वदते।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा आत्मनः अक्षिणी तैलेन वा घृतेन वा वसया वा नवनीतेन वा अभ्यञ्जयेद् वा म्रक्षयेद् वा, अभ्यञ्जयन्तं वा म्रक्षयन्तं वा स्वदते।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा आत्मनः अक्षिणी लोध्रेण वा कल्केन वा चूर्णेन वा वर्णेन वा उल्लोलयेद् वा उद्वर्तयेद् वा, उल्लोलयन्तं वा उद्वर्तयन्तं वा स्वदते।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा आत्मनः अक्षिणी शीतोदकविकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन वा उत्क्षालयेद् वा प्रधावयेद् वा, उत्क्षालयन्तं वा प्रधावयन्तं वा स्वदते।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा आत्मनः अक्षिणी 'फुमावेज्ज' (फूत्कारयेद्) वा रञ्जयेद् वा, 'फुमावेंतं' (फूत्कारयन्तं) वा रञ्जयन्तं वा स्वदते।

अक्षि-पद

५६. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के द्वारा अपनी आंखों का आमार्जन करवाता है अथवा प्रमार्जन करवाता है और आमार्जन अथवा प्रमार्जन करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

५७. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के द्वारा अपनी आंखों का संबाधन करवाता है अथवा परिमर्दन करवाता है और संबाधन अथवा परिमर्दन करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

५८. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के द्वारा अपनी आंखों का तैल, घृत, वसा अथवा मक्खन से अभ्यंगन करवाता है अथवा म्रक्षण करवाता है और अभ्यंगन अथवा म्रक्षण करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

५९. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के द्वारा अपनी आंखों पर लोध, कल्क, चूर्ण अथवा वर्ण का लेप करवाता है अथवा उद्वर्तन करवाता है और लेप अथवा उद्वर्तन करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

६०. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के द्वारा अपनी आंखों पर फूंक दिलवाता है अथवा रंग लगवाता है और फूंक दिलवाने अथवा रंग लगवाने वाले का अनुमोदन करता है।

६१. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के द्वारा अपनी आंखों का प्रासुक शीतल जल अथवा प्रासुक उष्ण जल से उत्क्षालन करवाता है अथवा प्रधावन करवाता है और उत्क्षालन अथवा प्रधावन करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

दीह-रोम-पदं

६२. जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा अप्पणो दीहाइं भमुग-रोमाइं कप्पावेज्ज वा संठवावेज्ज वा, कप्पावेंतं वा संठवावेंतं वा सातिज्जति ।।

६३. जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा अप्पणो दीहाइं पास-रोमाइं कप्पावेज्ज वा संठवावेज्ज वा, कप्पावेंतं वा संठवावेंतं वा सातिज्जति ।।

मल-णीहरण-पदं

६४. जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा अप्पणो कायाओ सेयं वा जल्लं वा पंकं वा मलं वा णीहरावेज्ज वा विसोहावेज्ज वा, णीहरावेंतं वा विसोहावेंतं वा सातिज्जति ।।

६५. जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा अप्पणो अच्छिमलं वा कण्णमलं वा दंतमलं वा णहमलं वा णीहरावेज्ज वा विसोहावेज्ज वा, णीहरावेंतं वा विसोहावेंतं वा सातिज्जति ।।

सीसदुवारिय-पदं

६६. जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा गामाणुगामं दूइज्जमाणे अप्पणो सीसदुवारियं कारवेति, कारवेंतं वा सातिज्जति ।।

उच्चार-पासवण-पदं

६७. जे भिक्खू आगंतारेसु वा आरामागारेसु वा गाहावइकुलेसु वा

दीर्घरोम-पदम्

यो भिक्षुः अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा आत्मनः दीर्घाणि भ्रूरोमाणि कल्पयेद् वा संस्थापयेद् वा, कल्पयन्तं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा आत्मनः दीर्घाणि 'पास'रोमाणि कल्पयेद् वा संस्थापयेद् वा, कल्पयन्तं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते।

मलनिस्सरण-पदम्

यो भिक्षुः अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा आत्मनः कायात् स्वेदं वा जल्लं वा पंकं वा मलं वा निस्सारयेद् वा विशोधयेद् वा, निस्सारयन्तं वा विशोधयन्तं वा स्वदते।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा आत्मनः अक्षिमलं वा कर्णमलं वा दंतमलं वा नखमलं वा निस्सारयेद् वा विशोधयेद् वा, निस्सारयन्तं वा विशोधयन्तं वा स्वदते।

शीर्षद्वारिका-पदम्

यो भिक्षुः अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा ग्रामानुग्रामं दूयमानः आत्मनः शीर्षद्वारिकां कारयति, कारयन्तं वा स्वदते।

उच्चार-प्रस्रवण-पदम्

यो भिक्षुः आगन्त्रागारेषु वा आरामागारेषु वा 'गाहा'पतिकुलेषु वा पर्यावसथेषु वा

दीर्घरोम-पद

६२. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के द्वारा अपनी भौंहों की दीर्घ रोमराजि को कटवाता है अथवा व्यवस्थित करवाता है और कटवाने अथवा व्यवस्थित करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

६३. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के द्वारा अपने पार्श्वभाग की दीर्घ रोमराजि को कटवाता है अथवा व्यवस्थित करवाता है और कटवाने अथवा व्यवस्थित करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

मलनिर्हरण-पद

६४. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के द्वारा अपने शरीर के स्वेद, जल्ल, पंक अथवा मल का निर्हरण करवाता है अथवा विशोधन करवाता है और निर्हरण अथवा विशोधन करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

६५. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के द्वारा अपनी आंख के मैल, कान के मैल, दांत के मैल अथवा नख के मैल का निर्हरण करवाता है अथवा विशोधन करवाता है और निर्हरण अथवा विशोधन करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

शीर्षद्वारिका-पद

६६. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के द्वारा ग्रामानुग्राम परिव्रजन करता हुआ अपना सिर ढंकवाता है अथवा सिर ढंकवाने वाले का अनुमोदन करता है।[1]

उच्चार-प्रस्रवण-पद

६७. जो भिक्षु यात्रीगृहों, आरामगृहों, गृहपतिकुलों अथवा आश्रमों में उच्चार-

परियावसहेसु वा उच्चार-पासवणं परिट्ठवेति, परिट्ठवेंतं वा सातिज्जति ।।

उच्चार-प्रस्रवणं परिष्ठापयति, परिष्ठापयन्तं वा स्वदते।

प्रस्रवण का परिष्ठापन करता है अथवा परिष्ठापन करने वाले का अनुमोदन करता है।

६८. जे भिक्खू उज्जाणंसि वा उज्जाणगिहंसि वा उज्जाणसालंसि वा णिज्जाणंसि वा णिज्जाणगिहंसि वा णिज्जाणसालंसि वा उच्चार-पासवणं परिट्ठवेति, परिट्ठवेंतं वा सातिज्जाति ।।

यो भिक्षुः उद्याने वा उद्यानगृहे वा उद्यानशालायां वा निर्याणे वा निर्याणगृहे वा निर्याणशालायां वा उच्चार-प्रस्रवणं परिष्ठापयति, परिष्ठापयन्तं वा स्वदते।

६८. जो भिक्षु उद्यान, उद्यानगृह, उद्यानशाला, निर्याण, निर्याणगृह अथवा निर्याणशाला में उच्चार- प्रस्रवण का परिष्ठापन करता है अथवा परिष्ठापन करने वाले का अनुमोदन करता है।

६९. जे भिक्खू अट्टंसि वा अट्टालयंसि वा पागारंसि वा चरियंसि वा दारंसि वा गोपुरंसि वा उच्चार-पासवणं परिट्ठवेति, परिट्ठवेंतं वा सातिज्जाति ।।

यो भिक्षुः अट्टे वा अट्टालके वा प्राकारे वा चरिकायां वा द्वारे वा गोपुरे वा उच्चार-प्रस्रवणं परिष्ठापयति, परिष्ठापयन्तं वा स्वदते।

६९. जो भिक्षु अट्ट, अट्टालक, प्राकार, चरिका, द्वार अथवा गोपुर में उच्चार-प्रस्रवण का परिष्ठापन करता है अथवा परिष्ठापन करने वाले का अनुमोदन करता है।

७०. जे भिक्खू दगमग्गंसि वा दगपहंसि वा दगतीरंसि वा दगठाणंसि वा उच्चार-पासवणं परिट्ठवेति, परिट्ठवेंतं वा सातिज्जाति ।।

यो भिक्षुः दकमार्गे वा दकपथे वा दकतीरे वा दकस्थाने वा उच्चार-प्रस्रवणं परिष्ठापयति, परिष्ठापयन्तं वा स्वदते।

७०. जो भिक्षु जलमार्ग, जलपथ, जलतीर अथवा जलस्थान (जलाशय) में उच्चार-प्रस्रवण का परिष्ठापन करता है अथवा परिष्ठापन करने वाले का अनुमोदन करता है।

७१. जे भिक्खू सुण्णगिहंसि वा सुण्णसालंसि वा भिण्णगिहंसि वा भिण्णसालंसि वा कूडागारंसि वा कोट्ठागारंसि वा उच्चार-पासवणं परिट्ठवेति, परिट्ठवेंतं वा सातिज्जाति ।।

यो भिक्षुः शून्यगृहे वा शून्यशालायां वा भिन्नगृहे वा भिन्नशालायां वा कूटागारे वा कोष्ठागारे वा उच्चार-प्रस्रवणं परिष्ठापयति, परिष्ठापयन्तं वा स्वदते।

७१. जो भिक्षु शून्यगृह, शून्यशाला, भिन्नगृह, भिन्नशाला, कूटागार अथवा कोष्ठागार में उच्चार-प्रस्रवण का परिष्ठापन करता है अथवा परिष्ठापन करने वाले का अनुमोदन करता है।

७२. जे भिक्खू तणसालंसि वा तणगिहंसि वा तुससालंसि वा तुसगिहंसि वा बुससालंसि वा बुसगिहंसि वा उच्चार-पासवणं परिट्ठवेति, परिट्ठवेंतं वा सातिज्जाति ।।

यो भिक्षुः तृणशालायां वा तृणगृहे वा तुषशालायां वा तुषगृहे वा बुसशालायां वा बुसगृहे वा उच्चार-प्रस्रवणं परिष्ठापयति, परिष्ठापयन्तं वा स्वदते।

७२. जो भिक्षु तृणशाला, तृणगृह, तुसशाला, तुसगृह, बुसशाला अथवा बुसगृह में उच्चार-प्रस्रवण का परिष्ठापन करता है अथवा परिष्ठापन करने वाले का अनुमोदन करता है।

७३. जे भिक्खू जाणसालंसि वा जाणगिहंसि वा जुग्गसालंसि वा जुग्गगिहंसि वा उच्चार-पासवणं

यो भिक्षुः यानशालायां वा यानगृहे वा युग्यशालायां वा युग्यगृहे वा उच्चार-प्रस्रवणं परिष्ठापयति, परिष्ठापयन्तं वा

७३. जो भिक्षु यानशाला, यानगृह, युग्यशाला अथवा युग्यगृह में उच्चार-प्रस्रवण का परिष्ठापन करता है अथवा परिष्ठापन करने

परिट्ठवेति, परिट्ठवेंतं वा सातिज्जाति।।

स्वदते।

वाले का अनुमोदन करता है।

७४. जे भिक्खू पणियसालंसि वा पणियगिहंसि वा परियागसालंसि वा परियागगिहंसि वा कुवियसालंसि वा कुवियगिहंसि वा उच्चार-पासवणं परिट्ठवेति, परिट्ठवेंतं वा सातिज्जाति।।

यो भिक्षुः पण्यशालायां वा पण्यगृहे वा 'परियाग'शालायां वा 'परियाग'गृहे वा कुप्यशालायां वा कुप्यगृहे वा उच्चार-प्रस्रवणं परिष्ठापयति, परिष्ठापयन्तं वा स्वदते।

७४. जो भिक्षु पण्यशाला, पण्यगृह, परियाग-शाला, परियागगृह, कुप्यशाला अथवा कुप्यगृह में उच्चार-प्रस्रवण का परिष्ठापन करता है अथवा परिष्ठापन करने वाले का अनुमोदन करता है।

७५. जे भिक्खू गोणसालंसि वा गोणगिहंसि वा महाकुलंसि वा महागिहंसि वा उच्चार-पासवणं परिट्ठवेति, परिट्ठवेंतं वा सातिज्जाति।।

यो भिक्षुः गोशालायां वा गोगृहे वा महाकुले वा महागृहे वा उच्चार-प्रस्रवणं परिष्ठापयति, परिष्ठापयन्तं वा स्वदते।

७५. जो भिक्षु गौशाला, गौगृह, महाकुल अथवा महाशाला में उच्चार-प्रस्रवण का परिष्ठापन करता है अथवा परिष्ठापन करने वाले का अनुमोदन करता है।[४]

अण्णउत्थिय-गारत्थिय-पदं

अन्ययूथिक-अगारस्थित-पदम्

अन्यतीर्थिक-अगारस्थित-पद

७६. जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा गारत्थियस्स वा असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा देति, देंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकाय वा अगारस्थिताय वा अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा ददाति, ददतं वा स्वदते।

७६. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ को अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य देता है अथवा देने वाले का अनुमोदन करता है।

७७. जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा गारत्थियस्स वा वत्थं वा पडिग्गहं वा कंबलं वा पायपुंछणं वा देति, देंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकाय वा अगारस्थिताय वा वस्त्रं वा प्रतिग्रहं वा कम्बलं वा पादप्रोञ्छनं वा ददाति, ददतं वा स्वदते।

७७. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ को वस्त्र, पात्र, कंबल अथवा पादप्रोञ्छन देता है अथवा देने वाले का अनुमोदन करता है।[५]

पासत्थादीणं दाण-गहण-पदं

पार्श्वस्थादीनां दान-ग्रहण-पदम्

पार्श्वस्थ आदि का दान-ग्रहण-पद

७८. जे भिक्खू पासत्थस्स असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा देति, देंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः पार्श्वस्थाय अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा ददाति, ददतं वा स्वदते।

७८. जो भिक्षु पार्श्वस्थ को अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य देता है अथवा देने वाले का अनुमोदन करता है।

७९. जे भिक्खू पासत्थस्स असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पडिच्छति, पडिच्छंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः पार्श्वस्थस्य अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा प्रतीच्छति, प्रतीच्छन्तं वा स्वदते।

७९. जो भिक्षु पार्श्वस्थ से अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

८०. जे भिक्खू पासत्थस्स वत्थं वा

यो भिक्षुः पार्श्वस्थाय वस्त्रं वा प्रतिग्रहं

८०. जो भिक्षु पार्श्वस्थ को वस्त्र, पात्र, कंबल

पडिग्गहं वा कंबलं वा पायपुंछणं वा देति, देंतं वा सातिज्जति।।

वा कम्बलं वा पादप्रोञ्छनं वा ददाति, ददतं वा स्वदते।

अथवा पादप्रोञ्छन देता है अथवा देने वाले का अनुमोदन करता है।

८१. जे भिक्खू पासत्थस्स वत्थं वा पडिग्गहं वा कंबलं वा पायपुंछणं वा पडिच्छति, पडिच्छंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः पार्श्वस्थस्य वस्त्रं वा प्रतिग्रहं वा कम्बलं वा पादप्रोञ्छनं वा प्रतीच्छति, प्रतीच्छन्तं वा स्वदते।

८१. जो भिक्षु पार्श्वस्थ से वस्त्र, पात्र, कंबल अथवा पादप्रोञ्छन ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

८२. जे भिक्खू ओसण्णस्स असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा देति, देंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः अवसन्नाय अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा ददाति, ददतं वा स्वदते।

८२. जो भिक्षु अवसन्न को अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य देता है अथवा देने वाले का अनुमोदन करता है।

७३. जे भिक्खू ओसण्णस्स असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पडिच्छति, पडिच्छंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः अवसन्नस्य अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा प्रतीच्छति, प्रतीच्छन्तं वा स्वदते।

८३. जो भिक्षु अवसन्न से अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

८४. जे भिक्खू ओसण्णस्स वत्थं वा पडिग्गहं वा कंबलं वा पायपुंछणं वा देति, देंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः अवसन्नाय वस्त्रं वा प्रतिग्रहं वा कम्बलं वा पादप्रोञ्छनं वा ददाति, ददतं वा स्वदते।

८४. जो भिक्षु अवसन्न को वस्त्र, पात्र, कंबल अथवा पादप्रोञ्छन देता है अथवा देने वाले का अनुमोदन करता है।

८५. जे भिक्खू ओसण्णस्स वत्थं वा पडिग्गहं वा कंबलं वा पायपुंछणं वा पडिच्छति, पडिच्छंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः अवसन्नस्य वस्त्रं वा प्रतिग्रहं वा कम्बलं वा पादप्रोञ्छनं वा प्रतीच्छति, प्रतीच्छन्तं वा स्वदते।

८५. जो भिक्षु अवसन्न से वस्त्र, पात्र, कंबल अथवा पादप्रोञ्छन ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

८६. जे भिक्खू कुसीलस्स असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा देति, देंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः कुशीलाय अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा ददाति, ददतं वा स्वदते।

८६. जो भिक्षु कुशील को अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य देता है अथवा देने वाले का अनुमोदन करता है।

८७. जे भिक्खू कुसीलस्स असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पडिच्छति, पडिच्छंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः कुशीलस्य अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा प्रतीच्छति, प्रतीच्छन्तं वा स्वदते।

८७. जो भिक्षु कुशील से अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

८८. जे भिक्खू कुसीलस्स वत्थं वा पडिग्गहं वा कंबलं वा पायपुंछणं वा देति, देंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः कुशीलाय वस्त्रं वा प्रतिग्रहं वा कम्बलं वा पादप्रोञ्छनं वा ददाति, ददतं वा स्वदते।

८८. जो भिक्षु कुशील को वस्त्र, पात्र, कंबल अथवा पादप्रोञ्छन देता है अथवा देने वाले का अनुमोदन करता है।

८९. जे भिक्खू कुसीलस्स वत्थं वा पडिग्गहं वा कंबलं वा पायपुंछणं वा पडिच्छति, पडिच्छंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः कुशीलस्य वस्त्रं वा प्रतिग्रहं वा कम्बलं वा पादप्रोञ्छनं वा प्रतीच्छति, प्रतीच्छन्तं वा स्वदते।

८९. जो भिक्षु कुशील से वस्त्र, पात्र, कंबल अथवा पादप्रोञ्छन ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

९०. जे भिक्खू णितियस्स असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा देति, देंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः नैत्यिकाय अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा ददाति, ददतं वा स्वदते।

९०. जो भिक्षु नैत्यिक को अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य देता है अथवा देने वाले का अनुमोदन करता है।

९१. जे भिक्खू णितियस्स असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पडिच्छति, पडिच्छंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः नैत्यिकस्य अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा प्रतीच्छति, प्रतीच्छन्तं वा स्वदते।

९१. जो भिक्षु नैत्यिक से अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

९२. जे भिक्खू णितियस्स वत्थं वा पडिग्गहं वा कंबलं वा पायपुंछणं वा देति, देंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः नैत्यिकाय वस्त्रं वा प्रतिग्रहं वा कम्बलं वा पादप्रोञ्छनं वा ददाति, ददतं वा स्वदते।

९२. जो भिक्षु नैत्यिक को वस्त्र, पात्र, कंबल अथवा पादप्रोञ्छन देता है अथवा देने वाले का अनुमोदन करता है।

९३. जे भिक्खू णितियस्स वत्थं वा पडिग्गहं वा कंबलं वा पायपुंछणं वा पडिच्छति, पडिच्छंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः नैत्यिकाय वस्त्रं वा प्रतिग्रहं वा कम्बलं वा पादप्रोञ्छनं वा प्रतीच्छति, प्रतीच्छन्तं वा स्वदते।

९३. जो भिक्षु नैत्यिक से वस्त्र, पात्र, कंबल अथवा पादप्रोञ्छन ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

९४. जे भिक्खू संसत्तस्स असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा देति, देंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः संसक्ताय अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा ददाति, ददतं वा स्वदते।

९४. जो भिक्षु संसक्त को अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य देता है अथवा देने वाले का अनुमोदन करता है।

९५. जे भिक्खू संसत्तस्स असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पडिच्छति, पडिच्छंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः संसक्तस्य अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा प्रतीच्छति, प्रतीच्छन्तं वा स्वदते।

९५. जो भिक्षु संसक्त से अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

९६. जे भिक्खू संसत्तस्स वत्थं वा पडिग्गहं वा कंबलं वा पायपुंछणं वा देति, देंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः संसक्ताय वस्त्रं वा प्रतिग्रहं वा कम्बलं वा पादप्रोञ्छनं वा ददाति, ददतं वा स्वदते।

९६. जो भिक्षु संसक्त को वस्त्र, पात्र, कंबल अथवा पादप्रोञ्छन देता है अथवा देने वाले का अनुमोदन करता है।

९७. जे भिक्खू संसत्तस्स वत्थं वा पडिग्गहं वा कंबलं वा पायपुंछणं वा पडिच्छति, पडिच्छंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः संसक्तस्य वस्त्रं वा प्रतिग्रहं वा कम्बलं वा पादप्रोञ्छनं वा प्रतीच्छति, प्रतीच्छन्तं वा स्वदते।

९७. जो भिक्षु संसक्त से वस्त्र, पात्र, कंबल अथवा पादप्रोञ्छन ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।[६]

जायणा-णिमंतणा-वत्थ-पदं

९८. जे भिक्खू जायणावत्थं वा णिमंतणावत्थं वा अजाणिय अपुच्छिय अगवेसिय पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति—
से य वत्थे चउण्हं अण्णयरे सिया, तं जहा—णिच्चणियंसणिए मज्जणिए छणूसविए रायदुवारिए।।

याचना-निमन्त्रणा-वस्त्र-पदम्

यो भिक्षुः याचनावस्त्रं वा निमन्त्रणावस्त्रं वा अज्ञात्वा अपृष्ट्वा अगवेषयित्वा प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते। तच्च वस्त्रं चतुर्णाम् अन्यतमं स्यात्, तद्यथा—नित्यनिवसनिकं, माज्जनिकं, क्षणौत्सविकं, राजद्वारिकम्।

याचना-निमंत्रणा-वस्त्र-पद

९८. जो भिक्षु याचनावस्त्र अथवा निमंत्रण-वस्त्र को जाने बिना, पूछे बिना, गवेषणा किए बिना ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।
वह वस्त्र चारों में से एक (अन्यतर) हो सकता है जैसे—नित्य-निवसनीय, मज्जनिक, क्षणौत्सविक और राजद्वारिक।[७]

पाय-परिकम्म-पदं

९९. जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो पाए आमज्जेज्ज वा पमज्जेज्ज वा, आमज्जंतं वा पमज्जंतं वा सातिज्जति।।

पादपरिकर्म-पदम्

यो भिक्षुः विभूषाप्रतिज्ञया आत्मनः पादौ *आमृज्याद् वा प्रमृज्याद् वा, आमार्जन्तं* वा प्रमार्जन्तं वा स्वदते।

पादपरिकर्म-पद

९९. जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने पैरों का आमार्जन करता है अथवा प्रमार्जन करता है और आमार्जन अथवा प्रमार्जन करने वाले का अनुमोदन करता है।

१००. जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो पाए संवाहेज्ज वा पलिमद्देज्ज वा, संवाहेंतं वा पलिमद्देंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः विभूषाप्रतिज्ञया आत्मनः पादौ संवाहयेद् वा परिमर्दयेद् वा, संवाहयन्तं वा परिमर्दयन्तं वा स्वदते।

१००. जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने पैरों का संबाधन करता है अथवा परिमर्दन करता है और संबाधन अथवा परिमर्दन करने वाले का अनुमोदन करता है।

१०१. जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो पाए तेल्लेण वा घएण वा वसाए वा णवणीएण वा अब्भंगेज्ज वा मक्खेज्ज वा, अब्भंगेंतं वा मक्खेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः विभूषाप्रतिज्ञया आत्मनः पादौ तैलेन वा घृतेन वा वसया वा नवनीतेन वा अभ्यञ्ज्याद् वा म्रक्षेद् वा, अभ्यञ्जन्तं वा म्रक्षन्तं वा स्वदते।

१०१. जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने पैरों का तेल, घृत, वसा अथवा मक्खन से अभ्यंगन करता है अथवा म्रक्षण करता है और अभ्यंगन अथवा म्रक्षण करने वाले का अनुमोदन करता है।

१०२. जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो पाए लोद्धेण वा कक्केण वा चुण्णेण वा वण्णेण वा उल्लोलेज्ज वा उव्वट्टेज्ज वा, उल्लोलेंतं वा उव्वट्टेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः विभूषाप्रतिज्ञया आत्मनः पादौ लोध्रेण वा कल्केन वा चूर्णेन वा वर्णेन वा उल्लोलयेद् वा उद्वर्तेत वा, उल्लोलयन्तं वा उद्वर्तमानं वा स्वदते।

१०२. जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने पैरों पर लोध, कल्क, चूर्ण अथवा वर्ण का लेप करता है अथवा उद्वर्तन करता है और लेप अथवा उद्वर्तन करने वाले का अनुमोदन करता है।

१०३. जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो पाए सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलेज्ज वा पधोवेज्ज वा, उच्छोलेंतं वा पधोवेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः विभूषाप्रतिज्ञया आत्मनः पादौ शीतोदकविकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन वा उत्क्षालयेद् वा प्रधावेद् वा, उत्क्षालयन्तं वा प्रधावन्तं वा स्वदते।

१०३. जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने पैरों का प्रासुक शीतल जल अथवा प्रासुक उष्ण जल से उत्क्षालन करवाता है अथवा प्रधावन करता है और उत्क्षालन अथवा प्रधावन करने वाले का अनुमोदन करता है।

१०४. जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो पाए फुमेज्ज वा रएज्ज वा, फुमेंतं वा रएंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः विभूषाप्रतिज्ञया आत्मनः पादौ 'फुमेज्ज' (फूत्कुर्याद्) वा रजेद् वा, 'फुमेंतं' (फूत्कुर्वन्तं) वा रजन्तं वा स्वदते।

१०४. जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने पैरों पर फूंक देता है अथवा रंग लगाता है और फूंक देने अथवा रंग लगाने वाले का अनुमोदन करता है।

काय-परिकम्म-पदं

कायपरिकर्म-पदम्

कायपरिकर्म-पद

१०५. जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो कायं आमज्जेज्ज वा पमज्जेज्ज वा, आमज्जंतं वा पमज्जंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः विभूषाप्रतिज्ञया आत्मनः कायम् आमृज्याद् वा प्रमृज्याद् वा, आमार्जन्तं वा प्रमार्जन्तं वा स्वदते।

१०५. जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने शरीर का आमार्जन करता है अथवा प्रमार्जन करता है और आमार्जन अथवा प्रमार्जन करने वाले का अनुमोदन करता है।

१०६. जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो कायं संवाहेज्ज वा पलिमद्देज्ज वा, संवाहेंतं वा पलिमद्देंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः विभूषाप्रतिज्ञया आत्मनः कायं संवाहयेद् वा परिमर्दयेद् वा, संवाहयन्तं वा परिमर्दयन्तं वा स्वदते।

१०६. जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने शरीर का संबाधन करता है अथवा परिमर्दन करता है और संबाधन अथवा परिमर्दन करने वाले का अनुमोदन करता है।

१०७. जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो कायं तेल्लेण वा घएण वा वसाए वा णवणीएण वा अब्भंगेज्ज वा मक्खेज्ज वा, अब्भंगेंतं वा मक्खेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः विभूषाप्रतिज्ञया आत्मनः कायं तैलेन वा घृतेन वा वसया वा नवनीतेन वा अभ्यञ्ज्याद् वा म्रक्षेद् वा, अभ्यञ्जन्तं वा म्रक्षन्तं वा स्वदते।

१०७. जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने शरीर का तैल, घृत, वसा अथवा मक्खन से अभ्यंगन करता है अथवा म्रक्षण करता है और अभ्यंगन अथवा म्रक्षण करने वाले का अनुमोदन करता है।

१०८. जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो कायं लोद्धेण वा कक्केण वा चुण्णेण वा वण्णेण वा उल्लोलेज्ज वा उव्वट्टेज्ज वा, उल्लोलेंतं वा उव्वट्टेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः विभूषाप्रतिज्ञया आत्मनः कायं लोध्रेण वा कल्केन वा चूर्णेन वा वर्णेन वा उल्लोलयेद् वा उद्वर्तेत वा, उल्लोलयन्तं वा उद्वर्तमानं वा स्वदते।

१०८. जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने शरीर पर लोध, कल्क, चूर्ण अथवा वर्ण का लेप करता है अथवा उद्वर्तन करता है और लेप अथवा उद्वर्तन करने वाले का अनुमोदन करता है।

१०९. जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो कायं सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलेज्ज वा पधोवेज्ज वा, उच्छोलेंतं वा पधोवेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः विभूषाप्रतिज्ञया आत्मनः कायं शीतोदकविकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन वा उत्क्षालयेद् वा प्रधावेद् वा, उत्क्षालयन्तं वा प्रधावन्तं वा स्वदते।

१०९. जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने शरीर का प्रासुक शीतल जल अथवा प्रासुक उष्ण जल से उत्क्षालन करता है अथवा प्रधावन करता है और उत्क्षालन अथवा प्रधावन करने वाले का अनुमोदन करता है।

११०. जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो कायं फुमेज्ज वा रएज्ज वा, फुमेंतं वा रएंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः विभूषाप्रतिज्ञया आत्मनः कायं 'फुमेज्ज' (फूत्कुर्याद्) वा रजेद् वा, 'फुमेंतं (फूत्कुर्वन्तं) वा रजन्तं वा स्वदते।

११०. जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने शरीर पर फूंक देता है अथवा रंग लगाता है और फूंक देने अथवा रंग लगाने वाले का अनुमोदन करता है।

वण-परिकम्म-पदं

व्रण-परिकर्म-पदम्

व्रणपरिकर्म-पद

१११. जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो कायंसि वणं आमज्जेज्ज वा पमज्जेज्ज वा, आमज्जंतं वा पमज्जंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः विभूषाप्रतिज्ञया आत्मनः काये व्रणम् आमृज्याद् वा प्रमृज्याद् वा, आमार्जन्तं वा प्रमार्जन्तं वा स्वदते।

१११. जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने शरीर पर हुए व्रण का आमार्जन करता है अथवा प्रमार्जन करता है और आमार्जन अथवा प्रमार्जन करने वाले का अनुमोदन करता है।

११२. जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो कायंसि वणं संवाहेज्ज वा पलिमद्देज्ज वा, संवाहेंतं वा पलिमद्देंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः विभूषाप्रतिज्ञया आत्मनः काये व्रणं संवाहयेद् वा परिमर्दयेद् वा, संवाहयन्तं वा परिमर्दयन्तं वा स्वदते।

११२. जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने शरीर पर हुए व्रण का संबाधन करता है अथवा परिमर्दन करता है और संबाधन अथवा परिमर्दन करने वाले का अनुमोदन करता है।

११३. जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो कायंसि वणं तेल्लेण वा घएण वा वसाए वा णवणीएण वा अब्भंगेज्ज वा मक्खेज्ज वा, अब्भंगेंतं वा मक्खेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः विभूषाप्रतिज्ञया आत्मनः काये व्रणं तैलेन वा घृतेन वा वसया वा नवनीतेन वा अभ्यञ्ज्याद् वा म्रक्षेद् वा, अभ्यञ्जन्तं वा म्रक्षन्तं वा स्वदते।

११३. जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने शरीर पर हुए व्रण का तैल, घृत, वसा अथवा मक्खन से अभ्यंगन करता है अथवा म्रक्षण करता है और अभ्यंगन अथवा म्रक्षण करने वाले का अनुमोदन करता है।

११४. जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो कायंसि वणं लोद्धेण वा कक्केण वा चुण्णेण वा वण्णेण वा उल्लोलेज्ज वा उव्वट्टेज्ज वा, उल्लोलेंतं वा उव्वट्टेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः विभूषाप्रतिज्ञया आत्मनः काये व्रणं लोध्रेण वा कल्केन वा चूर्णेन वा वर्णेन वा उल्लोलयेद् वा उद्वर्तेत वा, उल्लोलयन्तं वा उद्वर्तमानं वा स्वदते।

११४. जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने शरीर पर हुए व्रण पर लोध, कल्क, चूर्ण अथवा वर्ण का लेप करता है अथवा उद्वर्तन करता है और लेप अथवा उद्वर्तन करने वाले का अनुमोदन करता है।

११५. जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो कायंसि वणं सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलेज्ज वा पधोवेज्ज वा, उच्छोलेंतं वा पधोवेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः विभूषाप्रतिज्ञया आत्मनः काये व्रणं शीतोदकविकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन वा उत्क्षालयेद् वा प्रधावेद् वा, उत्क्षालयन्तं वा प्रधावन्तं वा स्वदते।

११५. जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने शरीर पर हुए व्रण का प्रासुक शीतल जल अथवा प्रासुक उष्ण जल से उत्क्षालन करता है अथवा प्रधावन करता है और उत्क्षालन अथवा प्रधावन करने वाले का अनुमोदन करता है।

११६. जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो कायंसि वणं फुमेज्ज वा रएज्ज वा, फुमेंतं वा रएंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षु विभूषाप्रतिज्ञया आत्मनः काये व्रणं 'फुमेज्ज' (फूत्कुर्याद्) वा रजेद् वा, 'फुमेंतं' (फूत्कुर्वन्तं) वा रजन्तं वा स्वदते।

११६. जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने शरीर पर हुए व्रण पर फूंक देता है अथवा रंग लगाता है और फूंक देने अथवा रंग लगाने वाले का अनुमोदन करता है।

गंडादि-परिकम्म-पदं

११७. जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो कायंसि गंडं वा पिडयं वा अरइयं वा असियं वा भगंदलं वा अण्णयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं अच्छिंदेज्ज वा विच्छिंदेज्ज वा, अच्छिंदेंतं वा विच्छिंदेंतं वा सातिज्जति।।

११८. जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो कायंसि गंडं वा पिडयं वा अरइयं वा असियं वा भगंदलं वा अण्णयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं अच्छिंदित्ता वा विच्छिंदित्ता वा पूयं वा सोणियं वा णीहरेज्ज वा विसोहेज्ज वा, णीहरेंतं वा विसोहेंतं वा सातिज्जति।।

११९. जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो कायंसि गंडं वा पिडयं वा अरइयं वा असियं वा भगंदलं वा अण्णयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं अच्छिंदित्ता वा विच्छिंदित्ता वा पूयं वा सोणियं वा णीहरित्ता वा विसोहेत्ता वा सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलेज्ज वा पधोवेज्ज वा, उच्छोलेंतं वा पधोवेंतं सातिज्जति।।

१२०. जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो कायंसि गंडं वा पिडयं वा अरइयं वा असियं वा भगंदलं वा अण्णयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं अच्छिंदित्ता वा विच्छिंदित्ता वा पूयं वा सोणियं वा णीहरित्ता वा विसोहेत्ता वा सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलेत्ता वा पधोएत्ता वा अण्णयरेणं आलेवणजाएणं आलिंपेज्ज वा

गंडादि-परिकर्म-पदम्

यो भिक्षुः विभूषाप्रतिज्ञया आत्मनः काये गण्डं वा पिटकं वा अरतिकां वा अर्शो वा भगन्दरं वा अन्यतरेण तीक्ष्णेन शस्त्रजातेन आच्छिन्द्याद् वा विच्छिन्द्याद् वा, आच्छिन्दन्तं वा विच्छिन्दन्तं वा स्वदते।

यो भिक्षुः विभूषाप्रतिज्ञया आत्मनः काये गण्डं वा पिटकं वा अरतिकां वा अर्शो वा भगन्दरं वा अन्यतरेण तीक्ष्णेन शस्त्रजातेन आच्छिद्य वा विच्छिद्य वा पूयं वा शोणितं वा निस्सरेद् वा विशोधयेद् वा, निस्सरन्तं वा विशोधयन्तं वा स्वदते।

यो भिक्षु विभूषाप्रतिज्ञया आत्मनः काये गण्डं वा पिटकं वा अरतिकां वा अर्शो वा भगन्दरं वा अन्यतरेण तीक्ष्णेन शस्त्रजातेन आच्छिद्य वा विच्छिद्य वा पूयं वा शोणितं वा निस्सृत्य वा विशोध्य वा शीतोदकविकृतेन वा उष्णोदक-विकृतेन वा उत्क्षालयेद् वा प्रधावेद् वा, उत्क्षालयन्तं वा प्रधावन्तं वा स्वदते।

यो भिक्षुः विभूषाप्रतिज्ञया आत्मनः काये गण्डं वा पिटकं वा अरतिकां वा अर्शो वा भगन्दरं वा अन्यतरेण तीक्ष्णेन शस्त्रजातेन आच्छिद्य वा विच्छिद्य वा पूयं वा शोणितं वा निस्सृत्य वा विशोध्य वा शीतोदकविकृतेन वा उष्णोदक-विकृतेन वा उत्क्षाल्य वा प्रधाव्य वा अन्यतरेण आलेपनजातेन आलिम्पेद् वा विलिम्पेद् वा, आलिम्पन्तं वा विलिम्पन्तं वा स्वदते।

गंडादिपरिकर्म-पद

११७. जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने शरीर में हुए गंडमाल, फोड़ा, फुंसी, अर्श अथवा भगन्दर का किसी तीक्ष्ण शस्त्रजात से आच्छेदन करता है अथवा विच्छेदन करता है और आच्छेदन अथवा विच्छेदन करने वाले का अनुमोदन करता है।

११८. जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने शरीर में हुए गंडमाल, फोड़ा, फुंसी, अर्श अथवा भगन्दर का किसी तीक्ष्ण शस्त्रजात से आच्छेदन अथवा विच्छेदन कर, उसके पीव अथवा रक्त निकालता है अथवा साफ करता है और निकालने अथवा साफ करने वाले का अनुमोदन करता है।

११९. जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने शरीर में हुए गंडमाल, फोड़ा, फुंसी, अर्श अथवा भगन्दर का किसी तीक्ष्ण शस्त्रजात से आच्छेदन अथवा विच्छेदन कर, उसके पीव अथवा रक्त को निकाल कर अथवा साफकर, उसका प्रासुक शीतल जल अथवा प्रासुक उष्ण जल से उत्क्षालन करता है अथवा प्रधावन करता है और उत्क्षालन अथवा प्रधावन करने वाले का अनुमोदन करता है।

१२०. जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने शरीर में हुए गंडमाल, फोड़ा, फुंसी, अर्श अथवा भगन्दर का किसी तीक्ष्ण शस्त्रजात से आच्छेदन अथवा विच्छेदन कर, उसके पीव अथवा रक्त को निकालकर अथवा साफकर, उसका प्रासुक शीतल जल अथवा प्रासुक उष्ण जल से उत्क्षालन अथवा प्रधावन कर, उस पर किसी आलेपनजात से आलेपन करता है अथवा विलेपन करता है और आलेपन

विलिंपेज्ज वा, आलिपंतं वा विलिंपंतं वा सातिज्जति ।।

अथवा विलेपन करने वाले का अनुमोदन करता है।

१२१. जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो कायंसि गंडं वा पिडयं वा अरइयं वा असियं वा भगंदलं वा अण्णयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं अच्छिंदित्ता वा विच्छिंदित्ता वा पूयं वा सोणियं वा णीहरित्ता वा विसोहेत्ता वा सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलेत्ता वा पधोएत्ता वा अण्णयरेणं आलेवणजाएणं आलिंपित्ता वा विलिंपित्ता वा तेल्लेण वा घएण वा वसाए वा णवणीएण वा अब्भंगेज्ज वा मक्खेज्ज वा, अब्भंगेंतं वा मक्खेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षु विभूषाप्रतिज्ञया आत्मनः काये गण्डं वा पिटकं वा अरतिकां वा अर्शो वा भगन्दरं वा अन्यतरेण तीक्ष्णेन शस्त्रजातेन आच्छिद्य वा विच्छिद्य वा पूयं वा शोणितं वा निस्सृत्य वा विशोध्य वा शीतोदकविकृतेन वा उष्णोदक-विकृतेन वा उत्क्षाल्य वा प्रधाव्य वा अन्यतरेण आलेपनजातेन आलिप्य वा विलिप्य वा तैलेन वा घृतेन वा वसया वा नवनीतेन वा अभ्यञ्ज्याद् वा म्रक्षेद् वा, अभ्यञ्जन्तं वा म्रक्षन्तं वा स्वदते।

१२१. जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने शरीर में हुए गंडमाल, फोड़ा, फुंसी, अर्श अथवा भगन्दर का किसी तीक्ष्ण शस्त्रजात से आच्छेदन अथवा विच्छेदन कर, उसके पीव अथवा रक्त को निकाल कर अथवा साफकर, उसका प्रासुक शीतल जल अथवा प्रासुक उष्ण जल से उत्क्षालन अथवा प्रधावन कर, उस पर किसी आलेपनजात से आलेपन अथवा विलेपन कर, उसका तैल, घृत, वसा अथवा मक्खन से अभ्यंगन करता है अथवा म्रक्षण करता है और अभ्यंगन अथवा म्रक्षण करने वाले का अनुमोदन करता है।

१२२. जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो कायंसि गंडं वा पिडयं वा अरइयं वा असियं वा भगंदलं वा अण्णयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं अच्छिंदित्ता वा विच्छिंदित्ता वा पूयं वा सोणियं वा णीहरित्ता वा विसोहेत्ता वा सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलेत्ता वा पधोएत्ता वा अण्णयरेणं आलेवणजाएणं आलिंपित्ता वा विलिंपित्ता वा तेल्लेण वा घएण वा वसाए वा णवणीएण वा अब्भंगेत्ता वा मक्खेत्ता वा अण्णयरेणं धूवणजाएणं धूवेज्ज वा पधूवेज्ज वा, धूवेंतं वा पधूवेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः विभूषाप्रतिज्ञया आत्मनः काये गण्डं वा पिटकं वा अरतिकां वा अर्शो वा भगन्दरं वा अन्यतरेण तीक्ष्णेन शस्त्रजातेन आच्छिद्य वा विच्छिद्य वा पूयं वा शोणितं वा निस्सृत्य वा विशोध्य वा शीतोदकविकृतेन वा उष्णोदक-विकृतेन वा उत्क्षाल्य वा प्रधाव्य वा अन्यतरेण आलेपनजातेन आलिप्य वा विलिप्य वा तैलेन वा घृतेन वा वसया वा नवनीतेन वा अभ्यज्य वा म्रक्षित्वा वा अन्यतरेण धूपनजातेन धूपायेद् वा प्रधूपायेद् वा, धूपायन्तं वा प्रधूपायन्तं वा स्वदते।

१२२. जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने शरीर में हुए गंडमाल, फोड़ा, फुंसी, अर्श अथवा भगन्दर का किसी तीक्ष्ण शस्त्रजात से आच्छेदन अथवा विच्छेदन कर, उसके पीव अथवा रक्त को निकालकर अथवा साफकर, उसका प्रासुक शीतल अथवा प्रासुक उष्ण जल से उत्क्षालन अथवा प्रधावन कर, उस पर किसी आलेपनजात से आलेपन अथवा विलेपन कर, उसका तैल, घृत, वसा अथवा मक्खन से अभ्यंगन अथवा म्रक्षण कर उसे किसी धूपजात से धूपित करता है अथवा प्रधूपित करता है और धूपित अथवा प्रधूपित करने वाले का अनुमोदन करता है।

किमि-पदं

कृमि-पदम्

कृमि-पद

१२३. जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो पालुकिमियं वा कुच्छिकिमियं वा अंगुलीए

यो भिक्षुः विभूषाप्रतिज्ञया आत्मनः पायुकृमिकं वा कुक्षिकृमिकं वा अंगुल्या निवेश्य-निवेश्य निस्सरति, निस्सरन्तं वा

१२३. जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने अपान की कृमि अथवा कुक्षि की कृमि को अंगुली डाल-डाल कर निकालता है

णिवेसिय-णिवेसिय णीहरति, णीहरेंतं वा सातिज्जति ।।

स्वदते ।

अथवा निकालने वाले का अनुमोदन करता है।

णह-सिहा-पदं

नखशिखा-पदम्

नखशिखा-पद

१२४. जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो दीहाओ णह-सिहाओ कप्पेज्ज वा संठवेज्ज वा, कप्पेंतं वा संठवेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः विभूषाप्रतिज्ञया आत्मनः दीर्घाः नखशिखाः कल्पेत वा संस्थापयेद् वा, कल्पमानं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते ।

१२४. जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपनी दीर्घ नखशिखा को काटता है अथवा व्यवस्थित करता है और काटने अथवा व्यवस्थित करने वाले का अनुमोदन करता है।

दीह-रोम-पदं

दीर्घरोम-पदम्

दीर्घरोम-पद

१२५. जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो दीहाइं जंघ-रोमाइं कप्पेज्ज वा संठवेज्ज वा, कप्पेंतं वा संठवेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः विभूषाप्रतिज्ञया आत्मनः दीर्घाणि जंघारोमाणि कल्पेत वा संस्थापयेद् वा, कल्पमानं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते ।

१२५. जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने जंघाप्रदेश की दीर्घ रोमराजि को काटता है अथवा व्यवस्थित करता है और काटने अथवा व्यवस्थित करने वाले का अनुमोदन करता है।

१२६. जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो दीहाइं वत्थि-रोमाइं कप्पेज्ज वा संठवेज्ज वा, कप्पेंतं वा संठवेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः विभूषाप्रतिज्ञया आत्मनः दीर्घाणि वस्तिरोमाणि कल्पेत वा संस्थापयेद् वा, कल्पमानं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते ।

१२६. जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने वस्तिप्रदेश की दीर्घ रोमराजि को काटता है अथवा व्यवस्थित करता है और काटने अथवा व्यवस्थित करने वाले का अनुमोदन करता है।

१२७. जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो दीह-रोमाइं कप्पेज्ज वा संठवेज्ज वा, कप्पेंतं वा संठवेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः विभूषाप्रतिज्ञया आत्मनः दीर्घरोमाणि कल्पेत वा संस्थापयेद् वा, कल्पमानं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते ।

१२७. जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपनी दीर्घ रोमराजि को काटता है अथवा व्यवस्थित करता है और काटने अथवा व्यवस्थित करने वाले का अनुमोदन करता है।

१२८. जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो दीहाइं कक्खाण-रोमाइं कप्पेज्ज वा संठवेज्ज वा, कप्पेंतं वा संठवेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः विभूषाप्रतिज्ञया आत्मनः दीर्घाणि कक्षारोमाणि कल्पेत वा संस्थापयेद् वा, कल्पमानं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते ।

१२८. जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपनी कक्षा की दीर्घ रोमराजि को काटता है अथवा व्यवस्थित करता है और काटने अथवा व्यवस्थित करने वाले का अनुमोदन करता है।

१२९. जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो दीहाइं मंसु-रोमाइं कप्पेज्ज वा संठवेज्ज वा, कप्पेंतं वा संठवेंतं

यो भिक्षुः विभूषाप्रतिज्ञया आत्मनः दीर्घाणि श्मश्रुरोमाणि कल्पेत वा संस्थापयेद् वा, कल्पमानं वा

१२९. जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपनी श्मश्रु की दीर्घ रोमराजि को काटता है अथवा व्यवस्थित करता है और काटने

वा सातिज्जति ।।

संस्थापयन्तं वा स्वदते।

अथवा व्यवस्थित करने वाले का अनुमोदन करता है।

दंत-पदं

१३०. जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो दंते आघंसेज्ज वा पघंसेज्ज वा, आघंसंतं वा पघंसंतं वा सातिज्जति ।।

१३१. जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो दंते उच्छोलेज्ज वा पधोवेज्ज वा, उच्छोलेंतं वा पधोवेंतं वा सातिज्जति ।।

१३२. जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो दंते फुमेज्ज वा रएज्ज वा, फुमेंतं वा रएंतं वा सातिज्जति ।।

दन्त-पदम्

यो भिक्षुः विभूषाप्रतिज्ञया आत्मनः दन्तान् आघर्षेद् वा प्रघर्षेद् वा, आघर्षन्तं वा प्रघर्षन्तं वा स्वदते।

यो भिक्षुः विभूषाप्रतिज्ञया आत्मनः दन्तान् उत्क्षालयेद् वा प्रधावेद् वा, उत्क्षालयन्तं वा प्रधावन्तं वा स्वदते।

यो भिक्षुः विभूषाप्रतिज्ञया आत्मनः दन्तान् 'फुमेज्ज' (फूत्कुर्याद्) वा रजेद् वा, 'फुमेंतं' (फूत्कुर्वन्तं) वा रजन्तं वा स्वदते।

दंत-पद

१३०. जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने दांतों का आघर्षण करता है अथवा प्रघर्षण करता है और आघर्षण अथवा प्रघर्षण करने वाले का अनुमोदन करता है।

१३१. जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने दांतों का उत्क्षालन करता है अथवा प्रधावन करता है और उत्क्षालन अथवा प्रधावन करने वाले का अनुमोदन करता है।

१३२. जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने दांतों पर फूंक देता है अथवा रंग लगाता है और फूंक देने वाले अथवा रंग लगाने वाले का अनुमोदन करता है।

उट्ठ-पदं

१३३. जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो उट्ठे आमज्जेज्ज वा पमज्जेज्ज वा, आमज्जंतं वा पमज्जंतं वा सातिज्जति ।।

१३४. जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो उट्ठे संवाहेज्ज वा पलिमद्देज्ज वा, संवाहेंतं वा पलिमद्देंतं वा सातिज्जति ।।

१३५. जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो उट्ठे तेल्लेण वा घएण वा वसाए वा णवणीएण वा अब्भंगेज्ज वा मक्खेज्ज वा, अब्भंगेंतं वा मक्खेंतं वा सातिज्जति ।।

१३६. जे भिक्खू विभूसावडियाए

ओष्ठ-पदम्

यो भिक्षुः विभूषाप्रतिज्ञया आत्मनः ओष्ठौ आमृज्याद् वा प्रमृज्याद् वा, आमार्जन्तं वा प्रमार्जन्तं वा स्वदते।

यो भिक्षुः विभूषाप्रतिज्ञया आत्मनः ओष्ठौ संवाहयेद् वा परिमर्दयेद् वा, संवाहयन्तं वा परिमर्दयन्तं वा स्वदते।

यो भिक्षुः विभूषाप्रतिज्ञया आत्मनः ओष्ठौ तैलेन वा घृतेन वा वसया वा नवनीतेन वा अभ्यञ्ज्याद् वा म्रक्षेद् वा, अभ्यञ्जन्तं वा म्रक्षन्तं वा स्वदते।

यो भिक्षुः विभूषाप्रतिज्ञया आत्मनः

ओष्ठ-पद

१३३. जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने ओष्ठ का आमार्जन करता है अथवा प्रमार्जन करता है और आमार्जन अथवा प्रमार्जन करने वाले का अनुमोदन करता है।

१३४. जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने ओष्ठ का संबाधन करता है अथवा परिमर्दन करता है और संबाधन अथवा परिमर्दन करने वाले का अनुमोदन करता है।

१३५. जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने ओष्ठ का तैल, धृत, वसा अथवा मक्खन से अभ्यंगन करता है अथवा म्रक्षण करता है और अभ्यंगन अथवा म्रक्षण करने वाले का अनुमोदन करता है।

१३६. जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने

अप्पणो उट्ठे लोद्धेण वा कक्केण वा चुण्णेण वा वण्णेण वा उल्लोलेज्ज वा उव्वट्टेज्ज वा, उल्लोलेंतं वा उव्वट्टेंतं वा सातिज्जति।।

ओष्ठौ लोध्रेण वा कल्केन वा चूर्णेन वा वर्णेन वा उल्लोलयेद् वा उद्वर्तेत वा, उल्लोलयन्तं वा उद्वर्तमानं वा स्वदते।

ओष्ठ पर लोध, कल्क, चूर्ण अथवा वर्ण का लेप करता है अथवा उद्वर्तन करता है और लेप अथवा उद्वर्तन करने वाले का अनुमोदन करता है।

१३७. जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो उट्ठे सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलेज्ज वा पधोवेज्ज वा, उच्छोलेंतं वा पधोवेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः विभूषाप्रतिज्ञया आत्मनः ओष्ठौ शीतोदकविकृतेन वा उष्णोदक-विकृतेन वा उत्क्षालयेद् वा प्रधावेद् वा, उत्क्षालयन्तं वा प्रधावन्तं वा स्वदते।

१३७. जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने ओष्ठ का प्रासुक शीतल जल अथवा प्रासुक उष्ण जल से उत्क्षालन करता है अथवा प्रधावन करता है और उत्क्षालन अथवा प्रधावन करने वाले का अनुमोदन करता है।

१३८. जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो उट्ठे फुमेज्ज वा रएज्ज वा, फुमेंतं वा रएंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः विभूषाप्रतिज्ञया आत्मनः ओष्ठौ 'फुमेज्ज' (फूत्कुर्याद्) वा रजेद् वा, 'फुमेंतं' (फूत्कुर्वन्तं) वा रजन्तं वा स्वदते।

१३८. जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने ओष्ठ पर फूंक देता है अथवा रंग लगाता है और फूंक देने अथवा रंग लगाने वाले का अनुमोदन करता है।

दीह-रोम-पदं

दीर्घरोम-पदम्

दीर्घरोम-पद

१३९. जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो दीहाइं उत्तरोट्ठ-रोमाइं कप्पेज्ज वा संठवेज्ज वा, कप्पेंतं वा संठवेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः विभूषाप्रतिज्ञया आत्मनः दीर्घाणि उत्तरौष्ठरोमाणि कल्पेत वा संस्थापयेद् वा, कल्पमानं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते।

१३९. जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से उत्तरोष्ठ की दीर्घ रोमराजि को काटता है अथवा व्यवस्थित करता है और काटने अथवा व्यवस्थित करने वाले का अनुमोदन करता है।

१४०. जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो दीहाइं णासा-रोमाइं कप्पेज्ज वा संठवेज्ज वा, कप्पेंतं वा संठवेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः विभूषाप्रतिज्ञया आत्मनः दीर्घाणि नासारोमाणि कल्पेत वा संस्थापयेद् वा, कल्पमानं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते।

१४०. जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने नाक की दीर्घ रोमराजि को काटता है अथवा व्यवस्थित करता है और काटने अथवा व्यवस्थित करने वाले का अनुमोदन करता है।

अच्छि-पत्त-पदं

अक्षिपत्र-पदम्

अक्षिपत्र-पद

१४१. जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो दीहाइं अच्छि-पत्ताइं कप्पेज्ज वा संठवेज्ज वा, कप्पेंतं वा संठवेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः विभूषाप्रतिज्ञया आत्मनः दीर्घाणि अक्षिपत्राणि कल्पेत वा संस्थापयेद् वा, कल्पमानं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते।

१४१. जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने दीर्घ अक्षिपत्रों को काटता है अथवा व्यवस्थित करता है और काटने अथवा व्यवस्थित करने वाले का अनुमोदन करता है।

अच्छि-पदं

१४२. जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो अच्छीणि आमज्जेज्ज वा पमज्जेज्ज वा, आमज्जंतं वा पमज्जंतं वा सातिज्जति।।

१४३. जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो अच्छीणि संवाहेज्ज वा पलिमद्देज्ज वा, संवाहेंतं वा पलिमद्देंतं वा सातिज्जति।।

१४४. जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो अच्छीणि तेल्लेण वा घएण वा वसाए वा णवणीएण वा अब्भंगेज्ज वा मक्खेज्ज वा, अब्भंगेंतं वा मक्खेंतं वा सातिज्जति।।

१४५. जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो अच्छीणि लोद्धेण वा कक्केण वा चुण्णेण वा वण्णेण वा उल्लोलेज्ज वा उव्वट्टेज्ज वा, उल्लोलेंतं वा उव्वट्टेंतं वा सातिज्जति।।

१४६. जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो अच्छीणि सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलेज्ज वा पधोवेज्ज वा, उच्छोलेंतं वा पधोवेंतं वा सातिज्जति।।

१४७. जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो अच्छीणि फुमेज्ज वा रएज्ज वा, फुमेंतं वा रएंतं वा सातिज्जति।।

अक्षि-पदम्

यो भिक्षुः विभूषाप्रतिज्ञया आत्मनः अक्षिणी आमृज्याद् वा प्रमृज्याद् वा, आमार्जन्तं वा प्रमार्जन्तं वा स्वदते।

यो भिक्षुः विभूषाप्रतिज्ञया आत्मनः अक्षिणी संवाहयेद् वा परिमर्दयेद् वा, संवाहयन्तं वा परिमर्दयन्तं वा स्वदते।

यो भिक्षुः विभूषाप्रतिज्ञया आत्मनः अक्षिणी तैलेन वा घृतेन वा वसया वा नवनीतेन वा अभ्यञ्ज्याद् वा म्रक्षेद् वा, अभ्यञ्जन्तं वा म्रक्षन्तं वा स्वदते।

यो भिक्षुः विभूषाप्रतिज्ञया आत्मनः अक्षिणी लोध्रेण वा कल्केन वा चूर्णेन वा वर्णेन वा उल्लोलयेद् वा उद्वर्तेत वा, उल्लोलयन्तं वा उद्वर्तमानं वा स्वदते।

यो भिक्षुः विभूषाप्रतिज्ञया आत्मनः अक्षिणी शीतोदकविकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन वा उत्क्षालयेद् वा प्रधावेद् वा, उत्क्षालयन्तं वा प्रधावन्तं वा स्वदते।

यो भिक्षुः विभूषाप्रतिज्ञया आत्मनः अक्षिणी 'फुमेज्ज' (फूत्कुर्याद्) वा रजेद् वा, 'फुमेंतं' (फूत्कुर्वन्तं) वा रजन्तं वा स्वदते।

अक्षि-पद

१४२. जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपनी आंखों का आमार्जन करता है अथवा प्रमार्जन करता है और आमार्जन अथवा प्रमार्जन करने वाले का अनुमोदन करता है।

१४३. जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपनी आंखों का संबाधन करता है अथवा परिमर्दन करता है और संबाधन अथवा परिमर्दन करने वाले का अनुमोदन करता है।

१४४. जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपनी आंखों का तेल, घृत, वसा अथवा मक्खन से अभ्यंगन करता है अथवा म्रक्षण करता है और अभ्यंगन अथवा म्रक्षण करने वाले का अनुमोदन करता है।

१४५. जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपनी आंखों पर लोध, कल्क, चूर्ण अथवा वर्ण का लेप करता है अथवा उद्वर्तन करता है और लेप अथवा उद्वर्तन करने वाले का अनुमोदन करता है।

१४६. जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपनी आंखों का प्रासुक शीतल जल अथवा प्रासुक उष्ण जल से उत्क्षालन करता है अथवा प्रधावन करता है और उत्क्षालन अथवा प्रधावन करने वाले का अनुमोदन करता है।

१४७. जो भिक्षु विभूषा के संकल्प अपनी आंखों पर फूंक देता है अथवा रंग लगाता है और फूंक देने अथवा रंग लगाने वाले का अनुमोदन करता है।

दीह-रोम-पदं

१४८. जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो दीहाइं भमुग-रोमाइं कप्पेज्ज वा संठवेज्ज वा, कप्पेंतं वा संठवेंतं वा सातिज्जति ।।

दीर्घरोम-पदम्

यो भिक्षुः विभूषाप्रतिज्ञया आत्मनः दीर्घाणि भ्रूरोमाणि कल्पेत वा संस्थापयेद् वा, कल्पमानं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते ।

दीर्घरोम-पद

१४८. जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपनी भौहों की दीर्घ रोमराजि को काटता है अथवा व्यवस्थित करता है और काटने अथवा व्यवस्थित करने वाले का अनुमोदन करता है।

१४९. जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो दीहाइं पास-रोमाइं कप्पेज्ज वा संठवेज्ज वा, कप्पेंतं वा संठवेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः विभूषाप्रतिज्ञया आत्मनः दीर्घाणि 'पास'रोमाणि कल्पेत वा संस्थापयेद् वा, कल्पमानं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते ।

१४९. जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने पार्श्वभाग की दीर्घ रोमराजि को काटता है अथवा व्यवस्थित करता है और काटने अथवा व्यवस्थित करने वाले का अनुमोदन करता है।

मल-णीहरण-पदं

१५०. जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो कायाओ सेयं वा जल्लं वा पंकं वा मलं वा णीहरेज्ज वा विसोहेज्ज वा, णीहरेंतं वा विसोहेंतं वा सातिज्जति ।।

मल-निस्सरण-पदम्

यो भिक्षुः विभूषाप्रतिज्ञया आत्मनः कायात् स्वेदं वा जल्लं वा पंकं वा मलं वा निस्सरेद् वा विशोधयेद् वा, निस्सरन्तं वा विशोधयन्तं वा स्वदते ।

मलनिर्हरण-पद

१५०. जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने शरीर के स्वेद, जल्ल, पंक अथवा मल का निर्हरण करता है अथवा विशोधन करता है और निर्हरण अथवा विशोधन करने वाले का अनुमोदन करता है।

१५१. जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो अच्छिमलं वा कण्णमलं वा दंतमलं वा णहमलं वा णीहरेज्ज वा विसोहेज्ज वा, णीहरेंतं वा विसोहेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः विभूषाप्रतिज्ञया आत्मनः अक्षिमलं वा कर्णमलं वा दंतमलं वा नखमलं वा निस्सरेद् वा विशोधयेद् वा, निस्सरन्तं वा विशोधयन्तं वा स्वदते ।

१५१. जो भिक्षु के संकल्प से अपनी आंख के मैल, कान के मैल, दांत के मैल अथवा नख के मैल का निर्हरण करता है अथवा विशोधन करता है और निर्हरण अथवा विशोधन करने वाले का अनुमोदन करता है।

सीसदुवारिय-पदं

१५२. जे भिक्खू विभूसावडियाए गामाणुगामं दूइज्जमाणे अप्पणो सीसदुवारियं करेति, करेंतं वा सातिज्जति ।।

शीर्षद्वारिका-पदम्

यो भिक्षुः विभूषाप्रतिज्ञया ग्रामानुग्रामं दूयमानः आत्मनः शीर्षद्वारिकां करोति, कुर्वन्तं वा स्वदते ।

शीर्षद्वारिका-पद

१५२. जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से ग्रामानुग्राम परिव्रजन करता हुआ अपना सिर ढंकता है अथवा सिर ढंकने वाले का अनुमोदन करता है।[८]

उवगरणजाय-धरण-पदं

१५३. जे भिक्खू विभूसावडियाए वत्थं वा पडिग्गहं वा कंबलं वा पायपुंछणं वा अण्णयरं वा उवगरणजायं धरेति,

उपकरणजातधरण-पदम्

यो भिक्षुः विभूषाप्रतिज्ञया वस्त्रं वा प्रतिग्रहं वा कम्बलं वा पादप्रोञ्छनं वा अन्यतरद् वा उपकरणजातं धरति, धरन्तं

उपकरणजात-धरण-पद

१५३. जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से वस्त्र, पात्र, कंबल, पादप्रोञ्छन अथवा अन्य किसी उपकरण- जात को धारण करता है

धरेंतं वा सातिज्जति ।।

वा स्वदते।

अथवा धारण करने वाले का अनुमोदन करता है।

उवगरणजाय-धोवण-पदं

१५४. जे भिक्खू विभूसावडियाए वत्थं वा पडिग्गहं वा कंबलं वा पायपुंछणं वा अण्णयरं वा उवगरणजायं धोवेति, धोवेंतं वा सातिज्जति–

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घातियं ।।

उपकरणजात-धावन-पदम्

यो भिक्षुः विभूषाप्रतिज्ञया वस्त्रं वा प्रतिग्रहं वा कम्बलं वा पादप्रोञ्छनं वा अन्यतरद् वा उपकरणजातं धावति, धावन्तं वा स्वदते।

तत्सेवमानः आपद्यते चातुर्मासिकं परिहारस्थानम् उद्घातिकम्।

उपकरणजात-धावन-पद

१५४. जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से वस्त्र, पात्र, कंबल, पादप्रोञ्छन अथवा अन्य किसी उपकरण- जात को धोता है अथवा धोने वाले का अनुमोदन करता है।[१]

–इनका आसेवन करने वाले भिक्षु को लघु चातुर्मासिक प्रायश्चित्त प्राप्त होता है।

टिप्पण

१. सूत्र १-४

कोई भिक्षु भदन्त (आचार्य) को आगाढ़ , परुष अथवा आगाढ़-परुष वचन कहता है, किसी प्रकार की आशातना करता है तो उसे गुरुचातुर्मासिक प्रायश्चित्त प्राप्त होता है।[1] यदि वह इस प्रकार का वचन किसी गृहस्थ, अन्यतीर्थिक अथवा अन्य भिक्षु को कहता है अथवा गृहस्थ, अन्यतीर्थिक या अन्य भिक्षु की किसी प्रकार की आशातना करता है तो उसे लघुचातुर्मासिक प्रायश्चित्त प्राप्त होता है।[2] इसलिए भिक्षु को सदैव इष्ट, शिष्ट एवं मधुर भाषा का प्रयोग करना चाहिए तथा मनसा, वाचा, कर्मणा किसी की भी आशातना नहीं करनी चाहिए।

आगाढ़, परुष आदि शब्दों के विमर्श हेतु द्रष्टव्य–निसीह. १०/१-४ का टिप्पण।

२. सूत्र ५-१२

प्रस्तुत 'अंब-पदं' नामक आलापक में सचित्त एवं सचित्त प्रतिष्ठित आम तथा आम के विविध खंडों अथवा अवयवों को खाने एवं स्वाद लेकर खाने का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है। आयारचूला के सातवें अध्ययन में भी आम एवं उसके विविध प्रकार के खण्डों के ग्रहण के विषय में विधि-निषेध सूचक अनेक सूत्र मिलते हैं।[3]

आयारचूला में कहा गया है कि आम्र अथवा आम्रखंड तिर्यक्छिन्न, व्यवच्छिन्न तथा आगन्तुक अंडे, प्राण, बीज, हरित आदि से रहित हो तो उसे प्रासुक, एषणीय मानता हुआ भिक्षु ग्रहण करे, अन्यथा ग्रहण न करे। इससे यह स्पष्ट नहीं होता कि वह आम आदि स्वयं सचित्त है अथवा अचित्त।

प्रस्तुत आगम के इस आलापक में मुख्य प्रतिपाद्य है–सचित्त अथवा सचित्त-प्रतिष्ठित (प्रलम्ब) फल को खाने अथवा स्वाद लेकर खाने का प्रायश्चित्त। आम अग्र प्रलम्ब है। अतः उसके प्रतिषेध से सारे सचित्त फलों–मूल प्रलम्ब तथा अग्र प्रलम्ब का प्रतिषेध हो जाता है। मूल और फल–इन दो का ग्रहण करने पर वनस्पति की सारी अवस्थाओं–कंद, मूल, स्कन्ध, त्वचा, शाखा आदि का भी प्रतिषेध हो जाता है–ऐसा भाष्यकार का मत है।[4]

शब्द विमर्श

१. सचित्त–निशीथभाष्यकार और चूर्णिकार के अनुसार जो अभिनवच्छिन्न–पेड़ से तत्काल काटा गया हो, अम्लान हो, वह फल सचित्त होता है।[5] वृक्ष पर स्थित गुठ्ठीयुक्त अथवा अपक्व होने से गुठ्ठी रहित हो, वह भी सचित्त फल होता है।[6]

२. सचित्त-प्रतिष्ठित–वृक्ष पर स्थित वह फल, जो दुर्वात आदि के कारण स्वयं ही म्लान हो गया हो अथवा बाहर कटाह आदि में पकाने पर भी जिसके अन्दर बीज सचेतन हो, वह फल सचित्त-प्रतिष्ठित कहलाता है।[7]

३. विदशना–छिलका उतार कर गुड़, कपूर, नमक अथवा अन्य इसी प्रकार के पदार्थ से सुस्वादु बनाकर खाना अथवा नाखून से काट-काट कर स्वाद लेकर खाना।[8]

आम–केरी। प्रस्तुत आलापक के प्रथम दो सूत्रों (सू. ५ और ६) में आम शब्द से पक्व एवं सकल आम का ग्रहण किया गया है। आम्रपेशी, आम्रभित्त आदि के साथ गृहीत 'आम' का प्रयोग कच्ची केरी के लिए हुआ है, जिसमें गुठ्ठी नहीं होती। अपक्व रस वाली होने के कारण उसे असकल माना गया है। अन्य आचार्य के मत से प्रस्तुत सूत्र में अंब शब्द का अर्थ है–किंचित् न्यून आम।[9]

अंबपेसी–आम का लम्बा टुकड़ा।[10]

अंबभित्त–आधा आम।[11] अन्य आचार्य के अभिप्राय से भित्त शब्द चौथाई भाग के लिए प्रयुक्त होता है।[12]

अंबसालग–आम का छिलका।[13]

---

१. निसीह. १०/१-४
२. वही, १३/१३-१६ तथा १५/१-४
३. आचू. ७/२६-३१
४. निभा. गा. ४७०१-४७०५ (सचूर्णि)
५. वही, भा. ३, चू.पृ. ४८०
६. वही, गा. ४६९३ (सचूर्णि)
७. वही, गा. ४६९४ (पूर्वार्द्ध) सचूर्णि।
८. वही, गा. ४६९४ (उत्तरार्द्ध)
९. (क) वही, भा. ३, चू.पृ. ४८१–इमं तु पलंबत्तणेण अपज्जत्तं अबद्धट्ठियं अविपक्वरसत्वादसकलमेवेत्यर्थः।
(ख) वही, गा. ४७००–अंबं केणत्ति ऊणं।
१०. वही, गा. ४७००–भित्तगं चतुब्भागो।
११. वही, गा. ४६९९–भित्तं तु होइ अद्धं।
१२. वही, गा. ४७००–भित्तगं चतुब्भागो।
१३. वही, गा. ४६९८–सालं पुण बाहिरा छल्ली।

अंबडगलं—आम का छोटा, विषम एवं चक्कलिकाकार खंड।[1] अथवा आम्रखंड।[2]

अंबचोयग—आम के केसर—स्नायुभाग (रुंछा)।[3]

३. सूत्र १३-६६

प्रस्तुत आगम के तृतीय उद्देशक में निरर्थक पादप्रमार्जन से शीर्षद्वारिका तक समस्त परिकर्म करने का लघुमासिक प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है।[4] प्रस्तुत आलापक में गृहस्थ अथवा अन्यतीर्थिक के द्वारा स्वयं के पादप्रमार्जन आदि परिकर्म का प्रायश्चित्त बतलाया गया है। गृहस्थ अथवा अन्यतीर्थिक से शारीरिक परिचर्या करवाने से पश्चात्कर्म, स्वेद, मल आदि के कारण गृहस्थों में अवर्णवाद, उत्प्लावना आदि के कारण संपातिम जीवों का वध आदि दोष भी संभव हैं[5]। अतः गृहस्थ अथवा अन्यतीर्थिक से पादप्रमार्जन आदि का लघु चातुर्मासिक प्रायश्चित्त आता है। आयारचूला के तेरहवें अध्ययन में भी पादपरिकर्म, कायपरिकर्म आदि क्रियाएं दूसरे से कराने तथा उसका अनुमोदन करने का निषेध प्रज्ञप्त है। वहां 'पर' शब्द से गृहस्थ और अन्यतीर्थिक दोनों का ग्रहण हो जाता है।[6]

विशेष हेतु द्रष्टव्य निसीह. ३/१६-६९ के टिप्पण एवं शब्द विमर्श।

४. सूत्र ६७-७५

प्रस्तुत आलापक के नौ सूत्रों में यात्रीगृह, आरामगृह आदि ४६ स्थानों का उल्लेख हुआ है। ये ऐसे सार्वजनिक स्थान हैं, जहां लोगों का आवागमन प्रायः चलता रहता है। बहुजन भोग्य स्थानों पर उच्चार-प्रस्रवण का विसर्जन करने पर लोगों में अपयश होता है। श्रमणों के अशुचि-समाचरण से श्रमणधर्म का अवर्णवाद, प्रवचनहानि, जुगुप्सा, अभिनवधर्मा श्रावकों का विपरिणमन आदि अनेक दोष संभव हैं।[7] अतः इन स्थानों पर उच्चार-प्रस्रवण का परिष्ठापन करने का लघुचातुर्मासिक प्रायश्चित्त बतलाया गया है। आयारचूला के दसवें अध्ययन में भी इनमें से कुछ स्थानों पर परिष्ठापन का निषेध किया गया है।[8]

शब्द विमर्श हेतु द्रष्टव्य—निसीह. ८/१-९ के टिप्पण।

५. सूत्र ७६,७७

भिक्षु को तीन करण, तीन योग से सर्व सावद्य योग का त्याग होता है। अन्यतीर्थिक और गृहस्थ को यावज्जीवन के लिए सर्व सावद्य योग का तीन करण, तीन योग से त्याग नहीं होता। सामायिक एवं पौषध की अवस्था में भी गृहस्थ के द्वारा पूर्व प्रवृत्त व्यापार, कृषि आदि सावद्य योग चलते रहते हैं, उसके साथ उसका अनुमोदन रूप सावद्य योग भी चालू रहता है।[9] अतः श्रमण के लिए गृहस्थ एवं अन्यतीर्थिक को भक्त, पान अथवा वस्त्र आदि देना तथा उनकी शारीरिक शुश्रूषा करना वर्जित है।[10]

प्रस्तुत सूत्रद्वयी में गृहस्थ एवं अन्यतीर्थिक को अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, वस्त्र, पात्र, कंबल एवं पादप्रोञ्छन देने का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है।

६. सूत्र ७८-९७

जो संयम जीवन को स्वीकार करके भी ज्ञान, दर्शन, चारित्र की आराधना में जागरूक नहीं रहते, आगमोक्त विधि-विधान तथा स्वीकृत मर्यादाओं में अतिचार अथवा अनाचार लगाते हैं, निष्कारण अपवाद का सेवन करते हैं, वे शिथिलाचारी होते हैं। शिथिलाचार के अनेक प्रकार हैं। आगमोक्त विधि-निषेधों एवं प्रायश्चित्त भिन्नता के आधार पर उनकी तीन श्रेणियां हो सकती हैं—

१. उत्कृष्ट शिथिलाचारी—जिनकी प्ररूपणा एवं आचार दोनों आगम से विरुद्ध होते हैं। इस श्रेणी में यथाच्छन्द का ग्रहण होता है। इनके साथ वन्दना-व्यवहार, आहार, वस्त्र आदि का आदान-प्रदान वाचना आदि संभोज करने से गुरु चातुर्मासिक प्रायश्चित्त प्राप्त होता है।[11]

२. मध्यम शिथिलाचारी—जो महाव्रत, समिति, गुप्ति आदि मूलगुणों में अतिचार लगाते हैं, उन पार्श्वस्थ, अवसन्न, कुशील, नैत्यिक एवं संसक्त—इन पांचों का इस श्रेणी में ग्रहण होता है। इनके साथ वन्दना, प्रशंसा करने[12], आहार, वस्त्र आदि का आदान प्रदान[13], वाचना आदि संभोज करने[14] से लघु चातुर्मासिक तथा संघाटक के आदान-प्रदान (साथ में गोचरी जाने-आने)[15] से लघुमासिक प्रायश्चित्त प्राप्त होता है।

---

१. निभा. भा. ३ चू.पृ. ४८१—अदीहं विसमं चक्कलियागारेण जं खंडं तं डगलं भण्णति।
२. वही, गा. ४६९८—डगलं तु होइ खंडं।
३. वही, ४६९९—चोयं जे जस्स केसरा होंति।
४. निसीह. ३/१३-६९
५. निभा. गा. ९५०
६. आचू. १३
७. निभा. गा. ४९५४
८. आचू. १०/२०,२१
९. वही, गा. ४९६१-४९६५
१०. वही, गा. ४९६०
११. (क) निसीह. ११/८३,८४
(ख) निभा. गा. २०९५,२९००,४३६६ (सचूर्णि)
१२. निसीह. १३/४३-५२
१३. वही, १५/७८-९७
१४. वही, १९/२८-३७
१५. वही, ४/२७-३६

३. **जघन्य शिथिलाचारी**—जो सामान्य आचार-विचार में दोष लगाते हैं, उन काथिक, प्राश्निक, मामाक एवं संप्रसारक को इस श्रेणी में लिया जा सकता है। इनके साथ वन्दना व्यवहार, आहार, वस्त्र आदि का आदान-प्रदान करने के लघु चातुर्मासिक प्रायश्चित्त प्राप्त होता है।[1] उनके साथ संघाटक, वाचना आदि संभोज करने का कोई प्रायश्चित्त नहीं बतलाया गया है।

प्रस्तुत आलापक में पार्श्वस्थ, अवसन्न आदि पांचों के साथ आहार तथा उपधि के आदान-प्रदान का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है। ये सुविहित साधुओं के करण-समनोज्ञ (समान संभोज वाले) नहीं होते। उनको आहार, वस्त्र आदि देने से राग तथा उनसे इन वस्तुओं को ग्रहण करने पर इनके प्रति प्रीति प्रकट होती है। फलतः संसर्ग वृद्धि एवं चारित्र-भेद आदि दोषों की संभावना रहती है, उद्गम आदि दोषों की अनुमोदना होती है[2] अतः इनके साथ आहार एवं उपधि का आदान-प्रदान नहीं करना चाहिए।

पार्श्वस्थ आदि शब्दों के विमर्श हेतु द्रष्टव्य निसीह. ४/२०-३६ का टिप्पण।

७. सूत्र ९८

वस्त्रोत्पादन के दो प्रकार हैं—१. याचना २. निमंत्रण।

१. जब भिक्षु को वस्त्र की अपेक्षा होती है, वह अथवा अन्य वस्त्रकल्पिक भिक्षु (जिसे वस्त्र-ग्रहण-विधि का सम्यक् ज्ञान हो) गृहस्थ के घर जाकर विधिपूर्वक वस्त्र की याचना कर वस्त्र प्राप्त करते हैं, वह याचना-वस्त्र होता है।

२. भिक्षु गोचराग्र अथवा अन्य किसी कार्य हेतु प्रस्थित हो और गृहस्थ उसे वस्त्र-ग्रहण करने हेतु निवेदन करे, वह निमंत्रणा वस्त्र होता है।

याचना-वस्त्र को ग्रहण करने से पूर्व प्रथम दो तथा निमंत्रणा वस्त्र ग्रहण करने से पूर्व तीन पृच्छा करनी चाहिए—

१. यह वस्त्र किसका है?

२. यह वस्त्र क्या था? अर्थात् पहले किस काम आ रहा था। अथवा किस रूप में उपयोग करने के लिए लाया अथवा बनाया गया था।

३. यह किस प्रयोजन से दिया जा रहा है।[3]

'यह वस्त्र किसका है'—ऐसा प्रश्न करने पर यह ज्ञात हो जाता है कि यह उद्गम-दोष से दूषित नहीं है तथा किसी दानश्राद्ध गृहस्थ ने साधु के प्रयोजन से उसका प्रक्षेप अथवा निक्षेप भी नहीं किया है।[4] इस प्रश्न से यह भी ज्ञात हो जाता है कि वस्त्र स्वयं दायक का है या नहीं? यदि दायक का नहीं है तो जिसका वस्त्र है, उसकी अनुज्ञा है या नहीं?[5]

दूसरी पृच्छा के सामान्यतः चार उत्तर हो सकते हैं—

१. नित्यनिवसनीय—हमेशा पहनने अथवा ओढ़ने में काम आता है अथवा नित्य पहनने आदि के काम में आने के लिए रखा हुआ (नया-अपरिभुक्त) है।

२. मज्जनिक—स्नान करके मंदिर में जाने के लिए पहना जाता है अथवा उस प्रयोजन से क्रीत है।

३. क्षणोत्सविक—किसी विशेष कार्यक्रम अथवा उत्सव-विशेष में पहना जाता है अथवा उस प्रयोजन से क्रीत है।

४. राजद्वारिक—राजकुल में प्रवेश के लिए पहना जाता है।[6]

इसी पृच्छा में यह भी ज्ञात किया जाता है कि उसके पास उस प्रयोजन के लिए अन्य वस्त्र है या नहीं? भिक्षु के द्वारा ग्रहण कर लिए जाने पर उसे उस अन्य वस्त्र का उपयोग करने के लिए अन्य कोई सावद्य क्रियाएं—धोना, धूप देना आदि तो नहीं करनी पड़ेगी?[7] इस प्रकार दूसरी पृच्छा का प्रयोजन है—पश्चात्कर्म-दोष से बचाव।

निमंत्रणा-वस्त्र ग्रहण करते समय तीसरी पृच्छा—यह किस प्रयोजन से दिया जा रहा है—भी करनी आवश्यक है। यदि यह पूछे बिना वस्त्र ग्रहण कर लिया जाए तो मिथ्यात्व, शंका, विराधना आदि अनेक दोष संभव हैं।[8] यदि दायक धर्मबुद्धि से वस्त्र देना चाहे तो उसे निर्दोष जानकर ग्रहण करना सम्मत है।

प्रस्तुत प्रसंग में भाष्य एवं चूर्णि में तत्कालीन परिस्थितियों, परम्पराओं, वस्त्र की प्रतिलेखना-विधि, वस्त्र को संयती-प्रायोग्य बनाने की विधि, वस्त्र की सुलक्षणता-अपलक्षणता आदि अनेक विषयों का सविस्तर निरूपण किया गया है। (विस्तार हेतु द्रष्टव्य निशीथभाष्य गा. ५००१-५०९०)

८. सूत्र ९९-१५२

प्रस्तुत आगम के तृतीय उद्देशक में निरर्थक पादपरिकर्म, कायपरिकर्म आदि प्रवृत्तियों का लघुमासिक प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है।[9] इस आलापक में विभूषा की प्रतिज्ञा से इन्हीं प्रवृत्तियों को करने का लघुचातुर्मासिक प्रायश्चित्त बतलाया गया है। विभूषा के भावों से व्यक्ति चिकने कर्मों का अर्जन करता है। फलतः वह घोर एवं दुस्तर संसार-सागर में निमग्न हो जाता है।[10] भाष्यकार के अनुसार विभूषा

१. निसीह. १३/५३-६०
२. निभा. गा. ४९७१-४९७६ सचूर्णि।
३. वही, गा. ५०२३ सचूर्णि।
४. वही, गा. ५०२५-५०३१ सचूर्णि।
५. वही, गा. ५०३९, ५०४०
६. वही, भा. ३ चू.पृ. ५६६
७. वही, गा. ५०४६ सचूर्णि।
८. वही, गा. ५०५२-५०६० सचूर्णि।
९. निसीह. ३/१६-६९
१०. दसवे. ६/६५

भाव के कारण प्रसंगवश देहप्रलोकन, साता एवं सुख की प्रतिबद्धता, उत्क्षालन-प्रधावन आदि क्रियाओं में प्रवृत्त होना आदि दोष भी संभव हैं।[१]

९. सूत्र १५३,१५४

दसवेआलियं में वस्त्र, पात्र आदि उपकरणों को धारण करने के दो प्रयोजन निर्दिष्ट हैं—१. संयम निर्वाह २. लज्जा निवारण।[२] इन प्रयोजनों से धारण किए गए उपकरण संयम में उपकारी हैं। अतः उन्हें उपकरण कहा जाता है, अन्यथा वे ही स्वाध्याय, ध्यान के पलिमंथु होने से अधिकरण की अभिधा को प्राप्त कर लेते हैं।[३]

सामान्यतः भिक्षु के लिए निरर्थक अथवा विभूषाभाव से वस्त्र का कोई भी परिकर्म निषिद्ध है। वस्त्र, पात्र आदि को धोने से उत्प्लावना, संपातिम जीवों का वध आदि के कारण संयम-विराधना, सूत्रार्थ का पलिमंथु, आत्मविराधना आदि दोषों की संभावना रहती है।[४]

१. निभा. गा. ५०९२
२. दसवे. ६/१९
३. निभा. गा. २१७६—अतिरेग उवधि अधिकरणमेव सज्झाय झाणपलिमंथो।
४. वही, गा. ५०९३

सोलसमो उद्देसो

सोलहवां उद्देशक

आमुख

प्रस्तुत उद्देशक का प्रतिपाद्य है—सदोष शय्या में अनुप्रविष्ट होने, आर्य देश में विहरण, जुगप्सित कुलों से आहार, उपधि, वसति आदि के ग्रहण एवं स्वाध्याय के उद्देश, समुद्देश आदि करने का, निह्नवों के साथ व्यवहार संबंधी सीमाओं के अतिक्रमण का, परिष्ठापनिका समिति के निषिद्ध पदों के आचरण का, गणसंक्रमण आदि का प्रायश्चित्त।

संयम की निर्मलता एवं निर्विघ्न अनुपालन के लिए आहार की विशुद्धि का जितना महत्त्व है, उपधि एवं वसति की विशुद्धि का भी उतना ही महत्त्व है। प्रस्तुत उद्देशक के प्रारम्भ में शय्या पर विचार किया गया है। आयारचूला[१] सागारिक, साग्निक एवं सोदक शय्या में स्थान, शय्या एवं निषद्या का निषेध करते हुए बताया गया है कि इस प्रकार की शय्या प्रज्ञावान मुनि के निष्क्रमण-प्रवेश, वाचना, पृच्छना, परिवर्तना, अनुप्रेक्षा एवं धर्मानुयोगचिन्ता के योग्य नहीं होती। कप्पो[२] (बृहत्कल्पसूत्र) में साग्निक (दीपकयुक्त एवं ज्योतियुक्त) तथा सोदक शय्या का निषेध किया गया है। वहां पहले सामान्यतः सागारिक शय्या का निषेध[३] करके बाद में निर्ग्रन्थ के लिए स्त्रीसागारिक एवं निर्ग्रन्थी के लिए पुरुषसागारिक उपाश्रय का निषेध तथा निर्ग्रन्थ के लिए पुरुषसागारिक एवं निर्ग्रन्थी के लिए स्त्रीसागारिक उपाश्रय में रहना सम्मत माना गया है।[४] प्रस्तुत उद्देशक में निर्विशेष रूप में भिक्षु मात्र के लिए सागारिक, सोदक एवं साग्निक शय्या का प्रायश्चित्त कथन किया गया है।

प्राचीन भारतीय भूगोल के आधार पर आगमों एवं व्याख्यासाहित्य में पूर्वदिशा में मगध, दक्षिण में कौशाम्बी, पश्चिम में थूणा एवं उत्तर में कुणाला—इनका मध्यवर्ती क्षेत्र आर्य क्षेत्र कहलाता था। यहां के निवासी आर्य कहलाते थे। इन साढ़े पच्चीस क्षेत्रों में रहने वाले लोग सुसंज्ञाप्य, सुप्रज्ञापनीय, कालप्रतिबोधी (यथासमय उठने वाले) तथा कालपरिभोजी होते थे। अतः मुनि के लिए निर्देश दिया गया कि उचित विधि से निर्वाह योग्य क्षेत्र हो तो मुनि विविध प्रकार के प्रात्यंतिक दस्युओं के स्थानों, म्लेच्छ एवं अनार्य देशों में विहार की प्रतिज्ञा से विहार न करे और न अनेक दिनों में पार करने योग्य अटवी में विहार करे।[५] वहां बताया गया है कि म्लेच्छ अनार्य लोग धर्म के विषय में अज्ञ होते हैं। वे भिक्षु के विषय में 'यह चोर है, यह गुप्तचर है, यह वहां से आया है'—इत्यादि भ्रामक बातों का प्रचार करते हुए भिक्षु पर आक्रोश पर सकते है, बांध अथवा पीट सकते हैं। उसके वस्त्र, पात्र, कम्बल और पादप्रोञ्छन को छीन सकते हैं, चुरा सकते हैं अथवा उसका तिरस्कार कर सकते हैं।[६] भाष्यकार ने मुनि सुव्रतस्वामी के समय हुए पालक एवं स्कन्दक के सम्पूर्ण घटनाक्रम के द्वारा यह बताया है कि अनार्य देश में जाने पर किस प्रकार उपसर्ग सहन करना पड़ सकता है।

प्रस्तुत उद्देशक में जुगुप्सित कुल में भिक्षाग्रहण, वस्त्र, पात्र, कम्बल और पादप्रोञ्छन के ग्रहण, वसतिग्रहण तथा स्वाध्याय के उद्देश, वाचना एवं प्रतिच्छना (ग्रहण करना) के प्रायश्चित्त का निर्देश प्राप्त होता है। निशीथभाष्यकार ने जुगुप्सित कुलों में अशन, वस्त्रादि ग्रहण के निषेध के पीछे अपयश, प्रवचनहानि, विपरिणाम, कुत्सा एवं शंका—इन पांच कारणों का निर्देश दिया है।[७]

जो व्यक्ति जिनशासन को स्वीकार करके भी कलह करके गण से अलग हो जाते हैं, उनके साथ आहार, उपधि, वसति,

---

१. आचू. २/४९
२. कप्पो २/५-७
३. वही, १/२५
४. वही, १/२६-२९
५. आचू. ३/८,१२
६. वही, ३/९
७. निभा. गा. ५७६२

एवं स्वाध्याय के आदान-प्रदान से अनेक दोषों की संभावना रहती है। अतः प्रस्तुत उद्देशक में उसका भी प्रायश्चित्त बताया गया है।

आयारचूला में 'उच्चार-पासवण-सत्तिक्कयं' में परिष्ठापनिका समिति के विषय में अनेक सूत्र उपलब्ध होते हैं, जिनमें उत्सर्गसमिति के सम्बन्ध में अनेक विधि-निषेधों का कथन किया गया है। प्रस्तुत आगम में तीन उद्देशकों में 'उच्चार-प्रस्रवण-पद' में उनमें से कुछ के उल्लंघन का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है। पूर्ववर्ती उद्देशक में जनभोग्य स्थानों पर परिष्ठापन का चातुर्मासिक प्रायश्चित्त बताया गया है। प्रस्तुत उद्देशक में कुछ ऐसे स्थानों का उल्लेख है, जहां परिष्ठापन करने से संयमविराधना होती है तो कुछ ऐसे अन्तरिक्षजात स्थानों—अधर, अनिष्कम्प, चलाचल स्थानों का उल्लेख है, जहां परिष्ठापन करने से संयमविराधना के साथ-साथ गिरने की संभावना के कारण आत्मविराधना भी संभव है।

'वृषिराजिन्-पद' की व्याख्या के अन्तर्गत भाष्यकार ने वसुरात्निक (संविग्न) और अवसुरात्निक की व्याख्या करते हुए वसुरात्निक को अवसुरात्निक और अवसुरात्निक को वसुरात्निक कहने के हेतुओं, दोषों एवं अपवादों की चर्चा के पश्चात् वसुरात्निक गण से अवसुरात्निक गण में संक्रमण के विषय में अनेक प्राचीन विधियों की, धार्मिक स्थितियों एवं सामाजिक, राजनैतिक परिस्थितियों की विस्तार से चर्चा की है।

सोलसमो उद्देसो : सोलहवां उद्देशक

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
सेज्जा-पदं	**शय्या-पदम्**	**शय्या-पद**
१. जे भिक्खू सागारियं सेज्जं अणुपविसति, अणुपविसंतं वा सातिज्जति।।	यो भिक्षुः सागारिकां शय्याम् अनुप्रविशति, अनुप्रविशन्तं वा स्वदते।	१. जो भिक्षु सागारिक शय्या में अनुप्रविष्ट होता है अथवा अनुप्रविष्ट होने वाले का अनुमोदन करता है।[1]
२. जे भिक्खू सोदगं सेज्जं उवागच्छति, उवागच्छंतं वा सातिज्जति।।	यो भिक्षुः सोदकां शय्याम् उपागच्छति, उपागच्छन्तं वा स्वदते।	२. जो भिक्षु सोदक शय्या के समीप जाता है अथवा समीप जाने वाले का अनुमोदन करता है।[2]
३. जे भिक्खू सागणियं सेज्जं अणुपविसति, अणुपविसंतं वा सातिज्जति।।	यो भिक्षुः साग्निकां शय्याम् अनुप्रविशति, अनुप्रविशन्तं वा स्वदते।	३. जो भिक्षु साग्निक शय्या में अनुप्रविष्ट होता है अथवा अनुप्रविष्ट होने वाले का अनुमोदन करता है।[3]
उच्छु-पदं	**इक्षु-पदम्**	**इक्षु-पद**
४. जे भिक्खू सचित्तं उच्छुं भुंजंति, भुंजंतं वा सातिज्जति।।	यो भिक्षुः सचित्तम् इक्षुं भुङ्क्ते, भुञ्जानं वा स्वदते।	४. जो भिक्षु सचित्त इक्षु खाता है अथवा खाने वाले का अनुमोदन करता है।
५. जे भिक्खू सचित्तं उच्छुं विडसति, विडसंतं वा सातिज्जति।।	यो भिक्षुः सचित्तम् इक्षुं 'विडसति' (विदशति), 'विडसंतं' (विदशन्तं) वा स्वदते।	५. जो भिक्षु सचित्त इक्षु को स्वाद लेकर खाता है अथवा स्वाद लेकर खाने वाले का अनुमोदन करता है।
६. जे भिक्खू सचित्तं अंतरुच्छुयं वा उच्छुखंडिय वा उच्छुचोयगं वा उच्छुमेरगं वा उच्छुसालगं वा उच्छुडगलं वा भुंजति, भुंजंतं वा सातिज्जति।।	यो भिक्षुः सचित्तम् अन्तरिक्षुकम् वा इक्षुखंडिकां वा इक्षु'चोयगं' वा इक्षु'मेरगं' वा इक्षु'सालकं' वा इक्षु'डगलं' वा भुङ्क्ते, भुञ्जानं वा स्वदते।	६. जो भिक्षु सचित्त अन्तरेक्षु, इक्षुखण्ड, इक्षुचोयग, इक्षुमेरक, इक्षुशालक अथवा इक्षुडगल को खाता है अथवा खाने वाले का अनुमोदन करता है।
७. जे भिक्खू सचित्तं अंतरुच्छुयं वा उच्छुखंडिय वा उच्छुचोयगं वा उच्छुमेरगं वा उच्छुसालगं वा	यो भिक्षु सचित्तम् अन्तरिक्षुकं वा इक्षुखंडिकां वा इक्षु'चोयगं' वा इक्षु'मेरगं' वा इक्षु'सालगं' वा इक्षु'डगलं' वा	७. जो भिक्षु सचित्त अन्तरेक्षु, इक्षुखण्ड, इक्षुचोयग, इक्षुमेरक, इक्षुशालक अथवा इक्षुडगल को स्वाद लेकर खाता है अथवा

उच्छुडगलं वा विडसति, विडसंतं वा सातिज्जति ।।

'विडसति' (विदशति), 'विडसंतं (विदशन्तं) वा स्वदते।

स्वाद लेकर खाने वाले का अनुमोदन करता है।

८. जे भिक्खू सचित्तपइट्ठियं उच्छुं भुंजति, भुंजंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः सचित्तप्रतिष्ठितम् इक्षुं भुङ्क्ते, भुञ्जानं वा स्वदते।

८. जो भिक्षु सचित्तप्रतिष्ठित इक्षु खाता है अथवा खाने वाले का अनुमोदन करता है।

९. जे भिक्खू सचित्तपइट्ठियं उच्छुं विडसति, विडसंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः सचित्तप्रतिष्ठितम् इक्षुं 'विडसति' (विदशति), 'विडसंतं' (विदशन्तं) वा स्वदते।

९. जो भिक्षु सचित्तप्रतिष्ठित इक्षु को स्वाद लेकर खाता है अथवा स्वाद लेकर खाने वाले का अनुमोदन करता है।

१०. जे भिक्खू सचित्तपइट्ठियं अंतरुच्छुयं वा उच्छुखंडियं वा उच्छुचोयगं वा उच्छुमेरगं वा उच्छुसालगं वा उच्छुडगलं वा भुंजति, भुंजंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः सचित्तप्रतिष्ठितम् अन्तरिक्षुकं वा इक्षुखंडिकां वा इक्षु'चोयगं' वा इक्षु'मेरगं' वा इक्षु'सालगं' वा इक्षु'डगलं' वा भुङ्क्ते, भुञ्जानं वा स्वदते।

१०. जो भिक्षु सचित्तप्रतिष्ठित अन्तरेक्षु, इक्षुखंड, इक्षुचोयग, इक्षुमेरक, इक्षुशालक अथवा इक्षुडगल को खाता है अथवा खाने वाले का अनुमोदन करता है।

११. जे भिक्खू सचित्तपइट्ठियं अंतरुच्छुयं वा उच्छुखंडियं वा उच्छुचोयगं वा उच्छुमेरगं वा उच्छुसालगं वा उच्छुडगलं वा विडसति, विडसंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः सचित्तप्रतिष्ठितम् अन्तरिक्षुकं वा इक्षुखंडिकां इक्षु'चोयगं' वा इक्षु'मेरगं' वा इक्षु'सालगं' वा इक्षु'डगलं' वा 'विडसति' (विदशति), 'विडसंतं' (विदशन्तं) वा स्वदते।

११. जो भिक्षु सचित्तप्रतिष्ठित अन्तरेक्षु, इक्षुखंड, इक्षुचोयग, इक्षुमेरक, इक्षुशालक अथवा इक्षुडगल को स्वाद लेकर खाता है अथवा स्वाद लेकर खाने वाले का अनुमोदन करता है।[४]

अडवीजत्तागहणेसणा-पदं

अटवीयात्राग्रहणैषणा-पदम्

अटवीयात्रा-ग्रहणैषणा-पद

१२. जे भिक्खू आरण्णयाणं वणंधयाणं अडवीजत्तापट्ठियाणं असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः आरण्यकानां वनन्धयानाम् अटवीयात्राप्रस्थितानाम् अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते।

१२. जो भिक्षु वनस्पति, काष्ठ आदि लाने के लिए वन में जाने वाले, अटवीयात्रा के लिए प्रस्थित आरण्यक लोगों से अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

१३. जे भिक्खू आरण्णयाणं वणंधयाणं अडवीजत्तापडिणियत्ताणं असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः आरण्यकानां वनन्धयानाम् अटवीयात्राप्रतिनिवृत्तानाम् अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते।

१३. जो भिक्षु वनस्पति, काष्ठ आदि लाने के लिए वन में जाने वाले अटवीयात्रा से प्रतिनिवृत्त आरण्यक लोगों से अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।[५]

वुसिरातिय-पदं

वृषिराजिन्-पदम्

वसुरात्निक-पद

१४. जे भिक्खू वुसिरातियं अवुसिरातियं वदति, वदंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः वृषिराजिनम् अवृषिराजिनं वदति, वदन्तं वा स्वदते।

१४. जो भिक्षु वसुरात्निक (संविग्न) को अवसुरात्निक (असंविग्न) कहता है अथवा कहने वाले का अनुमोदन करता है।

१५. जे भिक्खू अवुसिरातियं वुसिरातियं वदति, वदंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अवृषिराजिनं वृषिराजिनं वदति, वदन्तं वा स्वदते।

१५. जो भिक्षु अवसुरात्निक को वसुरात्निक कहता है अथवा कहने वाले का अनुमोदन करता है।[६]

१६. जे भिक्खू वुसिराइयाओ गणाओ अवुसिराइयं गणं संकमति, संकमंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः वृषिराजिनः गणात् अवृषिराजिनं गणं संक्रामति, संक्रामन्तं वा स्वदते।

१६. जो भिक्षु वसुरात्निक गण से अवसुरात्निक गण में संक्रमण करता है अथवा संक्रमण करने वाले का अनुमोदन करता है।[७]

वुग्गहवक्कंत-पदं

व्युद्ग्रहावक्रान्त-पदम्

व्युद्ग्रहव्युत्क्रान्त-पद

१७. जे भिक्खू वुग्गहवक्कंताणं असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा देति, देंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः व्युद्ग्रहावक्रान्तेभ्यः अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा ददाति, ददतं वा स्वदते।

१७. जो भिक्षु व्युद्ग्रह-व्युत्क्रान्त (कलह कर गण से अपक्रमण करने वाले) को अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य देता है अथवा देने वाले का अनुमोदन करता है।

१८. जे भिक्खू वुग्गहवक्कंताणं असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पडिच्छति, पडिच्छंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः व्युद्ग्रहावक्रान्तानाम् अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा प्रतीच्छति, प्रतीच्छन्तं वा स्वदते।

१८. जो भिक्षु व्युद्ग्रह-व्युत्क्रान्त से अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

१९. जे भिक्खू वुग्गहवक्कंताणं वत्थं वा पडिग्गहं वा कंबलं वा पायपुंछणं वा देति, देंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः व्युद्ग्रहावक्रान्तेभ्यः वस्त्रं वा प्रतिग्रह वा कम्बलं वा पादप्रोञ्छनं वा ददाति, ददतं वा स्वदते।

१९. जो भिक्षु व्युद्ग्रह-व्युत्क्रान्त को वस्त्र, पात्र, कंबल अथवा पादप्रोञ्छन देता है अथवा देने वाले का अनुमोदन करता है।

२०. जे भिक्खू वुग्गहवक्कंताणं वत्थं वा पडिग्गहं वा कंबलं वा पायपुंछणं वा पडिच्छति, पडिच्छंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः व्युद्ग्रहावक्रान्तानां वस्त्रं वा प्रतिग्रहं वा कम्बलं वा पादप्रोञ्छनं वा प्रतीच्छति, प्रतीच्छन्तं वा स्वदते।

२०. जो भिक्षु व्युद्ग्रह-व्युत्क्रान्त से वस्त्र, पात्र, कम्बल अथवा पादप्रोञ्छन ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

२१. जे भिक्खू वुग्गहवक्कंताणं वसहिं देति, देंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः व्युद्ग्रहावक्रान्तेभ्यः वसतिं ददाति, ददतं वा स्वदते।

२१. जो भिक्षु व्युद्ग्रह-व्युत्क्रान्त को वसति (उपाश्रय) देता है अथवा देने वाले का अनुमोदन करता है।

२२. जे भिक्खू वुग्गहवक्कंताणं वसहिं पडिच्छति, पडिच्छंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः व्युद्ग्रहावक्रान्तानां वसतिं प्रतीच्छति, प्रतीच्छन्तं वा स्वदते।

२२. जो भिक्षु व्युद्ग्रह-व्युत्क्रान्त से वसति ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

२३. जे भिक्खू वुग्गहवक्कंताणं वसहिं अणुपविसति, अणुपविसंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः व्युद्ग्रहावक्रान्तानां वसतिम् अनुप्रविशति, अनुप्रविशन्तं वा स्वदते।

२३. जो भिक्षु व्युद्ग्रह-व्युत्क्रान्त की वसति में अनुप्रविष्ट होता है अथवा अनुप्रविष्ट होने वाले का अनुमोदन करता है।

२४. जे भिक्खू वुग्गहवक्कंताणं सज्झायं देति, देंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः व्युद्ग्रहावक्रान्तेभ्यः स्वाध्यायं ददाति, ददतं वा स्वदते।

२४. जो भिक्षु व्युद्ग्रह-व्युत्क्रान्त को स्वाध्याय—सूत्रार्थ विषयक ज्ञान देता है अथवा देने वाले का अनुमोदन करता है।

२५. जे भिक्खू वुग्गहवक्कंताणं सज्झायं पडिच्छति, पडिच्छंतं वा सातिज्जति।

यो भिक्षुः व्युद्ग्रहावक्रान्तानां स्वाध्यायं प्रतीच्छति, प्रतीच्छन्तं वा स्वदते।

२५. जो भिक्षु व्युद्ग्रह-व्युत्क्रान्त से स्वाध्याय ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।[८]

विहारपडिया-पदं

विहार-प्रतिज्ञा-पदम्

विहारप्रतिज्ञा-पद

२६. जे भिक्खू विहं अणेगाहगमणिज्जं सति लाढे विहाराए संथरमाणेसु जणवएसु विहारपडियाए अभिसंधारेति, अभिसंधारेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः 'विहं' अनेकाहगमनीयं सति लाढे विहाराय संस्तृण्वत्सु जनपदेषु विहारप्रतिज्ञया अभिसंधारयति, अभिसंधारयन्तं वा स्वदते।

२६. जो भिक्षु उचित विधि से निर्वाह योग्य जनपदों के होने पर भी अनेक दिनों में गमनीय (उत्तीर्ण होने वाली) अटवी में विहार की प्रतिज्ञा से जाने का संकल्प करता है अथवा संकल्प करने वाले का अनुमोदन करता है।

२७. जे भिक्खू विरूवरूवाइं दसुयाययणाइं अणारियाइं मिलक्खूइं पच्चंतियाइं सति लाढे विहाराए संथरमाणेसु जणवएसु विहारपडियाए अभिसंधारेति, अभिसंधारेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः विरूपरूपाणि दस्यु-आयतनानि अनार्याणि म्लेच्छानि प्रात्यन्तिकानि सति लाढे विहाराय संस्तृण्वत्सु जनपदेषु विहारप्रतिज्ञया अभिसंधारयति, अभिसंधारयन्तं वा स्वदते।

२७. जो भिक्षु उचित विधि से निर्वाह योग्य जनपदों के होने पर भी विभिन्न वेशभूषा वाले दस्युओं के स्थानों तथा अनार्य म्लेच्छों वाले प्रत्यंत भागों में विहार की प्रतिज्ञा से जाने का संकल्प करता है अथवा संकल्प करने वाले का अनुमोदन करता है।[९]

दुगुंछिय-पदं

जुगुप्सित-पदम्

जुगुप्सित-पद

२८. जे भिक्खू दुगुंछियकुलेसु असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः जुगुप्सितकुलेषु अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते।

२८. जो भिक्षु जुगुप्सित कुलों में अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

२९. जे भिक्खू दुगुंछियकुलेसु वत्थं वा पडिग्गहं वा कंबलं वा पायपुंछणं वा पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः जुगुप्सितकुलेषु वस्त्रं वा प्रतिग्रहं वा कम्बलं वा पादप्रोञ्छनं वा प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते।

२९. जो भिक्षु जुगुप्सित कुलों में वस्त्र, पात्र, कम्बल अथवा पादप्रोञ्छन ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

३०. जे भिक्खू दुगुंछियकुलेसु वसहिं पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः जुगुप्सितकुलेषु वसतिं प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते।

३०. जो भिक्षु जुगुप्सित कुलों में वसति ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

३१. जे भिक्खू दुगुंछियकुलेसु सज्झायं उद्दिसति, उद्दिसंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः जुगुप्सितकुलेषु स्वाध्यायम् उद्दिशति, उद्दिशन्तं वा स्वदते।

३१. जो भिक्षु जुगुप्सित कुलों में स्वाध्याय का उद्देश देता है अथवा उद्देश देने वाले का अनुमोदन करता है।

३२. जे भिक्खू दुगुंछियकुलेसु सज्झायं वाएति, वाएंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः जुगुप्सितकुलेषु स्वाध्यायं वाचयति, वाचयन्तं वा स्वदते।

३२. जो भिक्षु जुगुप्सित कुलों में स्वाध्याय की वाचना देता है अथवा वाचना देने वाले का अनुमोदन करता है।

३३. जे भिक्खू दुगुंछियकुलेसु सज्झायं पडिच्छति, पडिच्छंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः जुगुप्सितकुलेषु स्वाध्यायं प्रतीच्छति, प्रतीच्छन्तं वा स्वदते।

३३. जो भिक्षु जुगुप्सित कुलों में स्वाध्याय ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।[१०]

असणाइणिक्खेवण-पदं

अशनादि-निक्षेपण-पदम्

अशनादि-निक्षेपण-पद

३४. जे भिक्खू असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पुढवीए णिक्खिवति, णिक्खिवंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा पृथिव्यां निक्षिपति, निक्षिपन्तं वा स्वदते।

३४. जो भिक्षु अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य को पृथिवी पर रखता है अथवा रखने वाले का अनुमोदन करता है।

३५. जे भिक्खू असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा संथारए णिक्खिवति, णिक्खिवंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा संस्तारके निक्षिपति, निक्षिपन्तं वा स्वदते।

३५. जो भिक्षु अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य को संस्तारक पर रखता है अथवा रखने वाले का अनुमोदन करता है।

३६. जे भिक्खू असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा वेहासे णिक्खिवति, णिक्खिवंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा विहायसि निक्षिपति, निक्षिपन्तं वा स्वदते।

३६. जो भिक्षु अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य को आकाश (खूंटी आदि पर/अधर) में रखता है अथवा रखने वाले का अनुमोदन करता है।[११]

अण्णउत्थिय-गारत्थियसद्धिं भोयण-पद

अन्ययूथिक-अगारस्थितैः सार्द्धं भोजन-पदम्

अन्यतीर्थिक-अगारस्थित के साथ भोजन-पद

३७. जे भिक्खू अण्णउत्थिएहिं वा गारत्थिएहिं वा सद्धिं भुंजति, भुंजंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकैः वा अगारस्थितैः वा सार्द्धं भुङ्क्ते, भुञ्जानं वा स्वदते।

३७. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के साथ आहार करता है अथवा आहार करने वाले का अनुमोदन करता है।

३८. जे भिक्खू अण्णउत्थिएहिं वा गारत्थिएहिं वा सद्धिं आवेढिय-परिवेढिए भुंजति, भुंजंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकैः वा अगारस्थितैः वा सार्द्धम् आवेष्टित-परिवेष्टितः भुङ्क्ते, भुञ्जानं वा स्वदते।

३८. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के साथ आवेष्टित-परिवेष्टित होकर आहार करता है अथवा आहार करने वाले का अनुमोदन करता है।[१२]

आसायणा-पदं

३९. जे भिक्खू आयरिय-उवज्झायाणं सेज्जा-संथारयं पाएणं संघट्टेत्ता हत्थेणं अणणुण्णवेत्ता धारयमाणो गच्छति, गच्छंतं वा सातिज्जति ।।

आशातना-पदम्

यो भिक्षुः आचार्योपाध्यायानां शय्यासंस्तारकं पादेन संघट्य हस्तेन अननुज्ञाप्य ध्रियमाणः गच्छति, गच्छन्तं वा स्वदते।

आशातना-पद

३९. जो भिक्षु आचार्य-उपाध्याय के शय्या-संस्तारक का पैरों से संघट्टन कर, हाथ से स्पर्श कर नमस्कार किए बिना, मिच्छामि दुक्कडं किए बिना जाता है अथवा जाने वाले का अनुमोदन करता है।[१३]

अतिरित्तउवहि-पदं

४०. जे भिक्खू पमाणातिरित्तं वा गणणातिरित्तं वा उवहिं धरेति, धरेंतं वा सातिज्जति ।।

अतिरिक्तोपधि-पदम्

यो भिक्षुः प्रमाणातिरिक्तं वा गणनातिरिक्तं वा उपधिं धरति, धरन्तं वा स्वदते।

अतिरिक्त-उपधि-पद

४०. जो भिक्षु प्रमाणातिरिक्त अथवा गणनातिरिक्त उपधि को धारण करता है अथवा धारण करने वाले का अनुमोदन करता है।

उच्चार-पासवण-पदं

४१. जे भिक्खू अणंतरहियाए पुढवीए उच्चार-पासवणं परिट्ठवेति, परिट्ठवेंतं वा सातिज्जति ।।

४२. जे भिक्खू ससिणिद्धाए पुढवीए उच्चार-पासवणं परिट्ठवेति, परिट्ठवेंतं वा सातिज्जति ।।

४३. जे भिक्खू ससरक्खाए पुढवीए उच्चार-पासवणं परिट्ठवेति, परिट्ठवेंतं वा सातिज्जति ।।

४४. जे भिक्खू मट्टियाकडाए पुढवीए उच्चार-पासवणं परिट्ठवेति, परिट्ठवेंतं वा सातिज्जति ।।

४५. जे भिक्खू चित्तमंताए पुढवीए उच्चार-पासवणं परिट्ठवेति, परिट्ठवेंतं वा सातिज्जति ।।

उच्चारप्रस्रवण-पदम्

यो भिक्षुः अनन्तर्हितायां पृथिव्याम् उच्चारप्रस्रवणं परिष्ठापयति, परिष्ठापयन्तं वा स्वदते।

यो भिक्षुः सस्निग्धायां पृथिव्याम् उच्चारप्रस्रवणं परिष्ठापयति, परिष्ठापयन्तं वा स्वदते।

यो भिक्षुः ससरक्षायां पृथिव्याम् उच्चारप्रस्रवणं परिष्ठापयति, परिष्ठापयन्तं वा स्वदते।

यो भिक्षुः मृत्तिकाकृतायां पृथिव्याम् उच्चारप्रस्रवणं परिष्ठापयति, परिष्ठापयन्तं वा स्वदते।

यो भिक्षुः चित्तवत्यां पृथिव्याम् उच्चारप्रस्रवणं परिष्ठापयति, परिष्ठापयन्तं वा स्वदते।

उच्चार-प्रस्रवण-पद

४१. जो भिक्षु अव्यवहित पृथिवी पर उच्चार-प्रस्रवण का परिष्ठापन करता है अथवा परिष्ठापन करने वाले का अनुमोदन करता है।

४२. जो भिक्षु सस्निग्ध पृथिवी पर उच्चार-प्रस्रवण का परिष्ठापन करता है अथवा परिष्ठापन करने वाले का अनुमोदन करता है।

४३. जो भिक्षु सरजस्क पृथिवी पर उच्चार-प्रस्रवण का परिष्ठापन करता है अथवा परिष्ठापन करने वाले का अनुमोदन करता है।

४४. जो भिक्षु सचित्त मिट्टी युक्त पृथिवी पर उच्चार-प्रस्रवण का परिष्ठापन करता है अथवा परिष्ठापन करने वाले का अनुमोदन करता है।

४५. जो भिक्षु सचित्त पृथिवी पर उच्चार-प्रस्रवण का परिष्ठापन करता है अथवा परिष्ठापन करने वाले का अनुमोदन करता है।

४६. जे भिक्खू चित्तमंताए सिलाए उच्चार-पासवणं परिट्ठवेति, परिट्ठवेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः चित्तवत्यां शिलायाम् उच्चारप्रस्रवणं परिष्ठापयति, परिष्ठापयन्तं वा स्वदते।

४६. जो भिक्षु सचित्त शिला पर उच्चार-प्रस्रवण का परिष्ठापन करता है अथवा परिष्ठापन करने वाले का अनुमोदन करता है।

४७. जे भिक्खू चित्तमंताए लेलूए उच्चार-पासवणं परिट्ठवेति, परिट्ठवेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः चित्तवति 'लेलुए' उच्चारप्रस्रवणं परिष्ठापयति, परिष्ठापयन्तं वा स्वदते।

४७. जो भिक्षु सचित्त ढेले पर उच्चार-प्रस्रवण का परिष्ठापन करता है अथवा परिष्ठापन करने वाले का अनुमोदन करता है।

४८. जे भिक्खू कोलावासंसि वा दारुए जीवपइट्ठिए सअंडे सपाणे सबीए सहरिए सओस्से सउत्तिंग-पणग-दग-मट्टिय-मक्कडा-संताणए उच्चार-पासवणं परिट्ठवेति, परिट्ठवेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः 'कोला'वासे वा दारुके जीवप्रतिष्ठिते साण्डे सप्राणे सबीजे सहरिते 'सओस्से' सोत्तिंग-पनक-दक-मृत्तिका-मर्कटक-सन्तानके उच्चार-प्रस्रवणं परिष्ठापयति, परिष्ठापयन्तं वा स्वदते।

४८. जो भिक्षु घुणयुक्त लकड़ी, जीवप्रतिष्ठित लकड़ी, अंडे सहित, प्राणसहित, बीज-सहित, हरितसहित, ओस-सहित (उदकसहित) और कीटिकानगर, पनक, कीचड़ अथवा मकड़ी के जाले से युक्त लकड़ी पर उच्चार-प्रस्रवण का परिष्ठापन करता है अथवा परिष्ठापन करने वाले का अनुमोदन करता है।

४९. जे भिक्खू थूणंसि वा गिहेलुयंसि वा उसुयालंसि वा कामजलंसि वा अण्णयरंसि वा तहप्पगारंसि अंतरिक्खजायंसि दुब्बद्धे दुण्णिक्खित्ते अणिकंपे चलाचले उच्चार-पासवणं परिट्ठवेति, परिट्ठवेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः स्थूणायां वा गृहैलुके वा 'उसुकाले' वा कामजले वा अन्यतरस्मिन् वा तथाप्रकारे अन्तरिक्षजाते दुर्बद्धे दुर्निक्षिप्ते अनिष्कम्पे चलाचले उच्चारप्रस्रवणं परिष्ठापयति, परिष्ठापयन्तं वा स्वदते।

४९. जो भिक्षु खंभे, देहली, ऊखल, स्नानपीठ अथवा अन्य उसी प्रकार के अन्तरिक्षजात, जो दुर्बद्ध हों, दुर्निक्षिप्त हों, अनिष्कम्प हों एवं चलाचल हों, उन पर उच्चार-प्रस्रवण का परिष्ठापन करता है अथवा परिष्ठापन करने वाले का अनुमोदन करता है।

५०. जे भिक्खू कुलियंसि वा भित्तिंसि वा सिलंसि वा लेलुंसि वा अण्णयरंसि वा तहप्पगारंसि अंतरिक्खजायंसि दुब्बद्धे दुण्णिक्खित्ते अणिकंपे चलाचले उच्चार-पासवणं परिट्ठवेति, परिट्ठवेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः कुड्ये वा भित्तौ वा शिलायां वा 'लेलुंसि' वा अन्यतरस्मिन् वा तथाप्रकारे अन्तरिक्षजाते दुर्बद्धे दुर्निक्षिप्ते अनिष्कम्पे चलाचले उच्चारप्रस्रवणं परिष्ठापयति, परिष्ठापयन्तं वा स्वदते।

५०. जो भिक्षु कुड्य, भित्ति, शिला, ढेला अथवा अन्य उसी प्रकार के अन्तरिक्षजात, जो दुर्बद्ध हों, दुर्निक्षिप्त हों, अनिष्कम्प हों एवं चलाचल हों, उन पर उच्चार-प्रस्रवण का परिष्ठापन करता है अथवा परिष्ठापन करने वाले का अनुमोदन करता है।

५१. जे भिक्खू खंधंसि वा फलिहंसि वा मंचंसि वा मंडवंसि वा मालंसि वा पासायंसि वा हम्मतलंसि वा अण्णयरंसि वा तहप्पगारंसि अंतरिक्खजायंसि दुब्बद्धे

यो भिक्षुः स्कन्धे वा परिघे वा मंचे वा मण्डपे वा 'माले' वा प्रासादे वा हर्म्यतले वा अन्यतरस्मिन् वा तथाप्रकारे अन्तरिक्षजाते दुर्बद्धे दुर्निक्षिप्ते अनिष्कम्पे चलाचले उच्चारप्रस्रवणं

५१. जो भिक्षु प्राकार, अर्गला, मचान, मंडप, माल (मंजिल), प्रासाद, हर्म्यतल अथवा अन्य उसी प्रकार के अन्तरिक्षजात, जो दुर्बद्ध हों, दुनिर्क्षिप्त हों, अनिष्कम्प हों एवं चलाचल हों, उन पर उच्चार-प्रस्रवण का

दुण्णिक्खित्ते अणिकंपे चलाचले उच्चार-पासवणं परिट्ठवेति, परिट्ठवेंतं वा सातिज्जति–

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घातियं ।।

परिष्ठापयति, परिष्ठापयन्तं वा स्वदते।

तत्सेवमानः आपद्यते चातुर्मासिकं परिहारस्थानम् उद्घातिकम्।

परिष्ठापन करता है अथवा परिष्ठापन करने वाले का अनुमोदन करता है।[१५]

इनका आसेवन करने वाले भिक्षु को लघु चातुर्मासिक प्रायश्चित्त प्राप्त होता है।

टिप्पण

१. सूत्र १

जहां गृहस्थ–स्त्री पुरुष रहते हैं, वह स्थान सागारिक शय्या है। अथवा जहां रहने पर मैथुनोद्भव–काम का उद्दीपन हो, वह सागारिक शय्या है।[१] 'सागारिक' सामयिकी संज्ञा है। भाष्य एवं चूर्णि में विविध निक्षेपों के द्वारा इसकी विस्तृत व्याख्या उपलब्ध होती है।[२]

सागारिक शय्या में रहने से विस्रोतसिका की संभावना रहती है। भुक्तभोगी के लिए स्मृति तथा अन्य के लिए कुतूहल का विषय होने के कारण भिक्षु का मन संयम-योगों से विचलित हो सकता है, स्वाध्याय, ध्यान में विक्षेप उत्पन्न हो सकता है। अतः भिक्षु को स्त्री, पशु एवं नपुंसक से विविक्त शय्या में रहने का निर्देश प्राप्त होता है।[३]

प्रस्तुत संदर्भ में सागारिक शब्द की विस्तृत व्याख्या एवं निक्षेप पद्धति से सविस्तर निरूपण करते हुए भाष्यकार ने रूप, आभरणविधि, वस्त्र, अलंकार, भोजन, गन्ध, आतोद्य आदि के प्रकार, उनसे होने वाले दोष, भावसागारिक में दिव्य, मानुषिक एवं तिर्यंच की प्रतिमा, उनसे होने वाले दोषों की तरतमता, कहां, कौन से दोषों की संभावना, दोषों से बचने के लिए प्रयोक्तव्य यतना तथा अन्य अनेक अपवादों की विस्तृत विवेचना की है।

२. सूत्र २

जहां पानी के घड़े आदि हों, वह प्याऊ आदि अथवा जिसके निकट कोई जलाशय हो, वह स्थान सोदक शय्या है।[४] जहां बहुत प्रकार के जल से भरे घड़े हो, वहां रहने से अगीतार्थ भिक्षु प्यास बुझाने अथवा कुतूहल शान्त करने के लिए जल पी ले अथवा अन्य कोई गृहस्थ जलकुम्भ को चुरा ले, पशु घड़े को फोड़ दे तो जल के स्वामी को अप्रीति हो सकती है, वह भिक्षु को कष्ट दे सकता है। इसी प्रकार जलाशय आदि के अतिनिकट जाने अथवा रहने पर वहां आने वाले जलाभिलाषी प्राणियों के अन्तराय, भय, अप्रीति आदि दोष उत्पन्न होते हैं।[५] अतः आयारचूला[६] एवं कप्पो (बृहत्कल्प सूत्र)[७] में सोदक शय्या का निषेध किया गया है। प्रस्तुत सूत्र में उसी के अतिक्रमण का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है।

३. सूत्र ३

जहां रातभर दीपक जलता हो अथवा हवन-कुंड आदि में आग जलती हो, वह साग्निक शय्या है।[८] साग्निक शय्या में प्रवेश, निष्क्रमण, प्रमार्जन तथा आवश्यक, सूत्रपौरुषी आदि में उठते-बैठते समय अग्निकायिक जीवों की विराधना संभव है, असावधानी से उपधि आदि जलने की भी संभावना हो सकती है।[९] अतः कप्पो (बृहत्कल्पसूत्र) में ज्योतिसहित एवं दीपसहित शय्या में रहने का निषेध किया गया है।[१०] आयारचूला में भी साग्निक शय्या में प्रवेश, निष्क्रमण, स्थान, निषीदन आदि क्रियाओं का निषेध किया गया है।[११] प्रस्तुत आगम में उसके अतिक्रमण का लघु चातुर्मासिक प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है।

४. सूत्र ४-११

प्रस्तुत आलापक में भी पूर्वोक्त आम्र-पद[१२] के समान आठ सूत्र हैं। सचित्त एवं सचित्त प्रतिष्ठित आम को खाने का निषेध करने से सारे सचित्त एवं सचित्त-प्रतिष्ठित फलों का निषेध प्राप्त होता है। फिर भी आयारचूला[१३] में इक्षु का पृथक् निषेध तथा प्रस्तुत आगम में उसका पृथक् प्रायश्चित्त कथन किया गया है क्योंकि इक्षु फल नहीं है, स्कन्ध है। बहुउज्झितधर्मा होने के कारण भी इसका निषेध आवश्यक है।[१४] इनमें सचित्त एवं सचित्त-प्रतिष्ठित इक्षु तथा

---

१. निभा. ४ चू.पृ. १–सागारियं ति एसा सामायिकी संज्ञा। जत्थ वसहीए ठियाणं मेहुणोब्भवो भवति, सा सागारिया।....जत्थ इत्थीपुरिसा वसंति, सा सागारिका।
२. वही, गा. ५०९७-५१०१
३. वही, गा. ५१०३-५११२
४. वही, भा. ४ चू.पृ. २९–जत्थ दगं ति पाणियधरं प्रपादि, जाए वा सेज्जाए उदगं समीवे वप्पादि।
५. वही, पृ. ३७, ४७-५२
६. आचू. २।४९
७. कप्पो. २/५
८. निभा. ४ चू.पृ. ५७
९. वही, गा. ५३८०-५३८४
१०. कप्पो. २/६,७
११. आचू. २/४९
१२. निसीह. १५/५-१२
१३. आचू. १/१३३
१४. वही, टी.प. २५४–अन्तरिक्ष्वादिकेऽल्पमशनीयं बहुपरित्यजन-धर्मकमिति मत्वा न प्रतिगृणहीयात्।

उसके विविध अवयवों को खाने तथा स्वाद लेकर खाने का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है।

शब्द-विमर्श

अंतरुच्छुय—पर्व रहित इक्षु खंड।[1]

उच्छुखंडिय—दोनों पर्व सहित इक्षुखंड।[2]

उच्छुचोयग—वंश के अन्तभाग सहित इक्षु का रुंछा।[3]

उच्छुमेरग—इक्षुमोय अर्थात् इक्षु की आभ्यन्तर गिरी।[4]

उच्छुसालग—इक्षु की बाह्य छाल।[5]

उच्छुडगल—इक्षु का चक्राकार छोटा टुकड़ा।[6]

शेष सचित्त-प्रतिष्ठित, विडसति आदि पदों के विमर्श हेतु द्रष्टव्य निसीह. १५/५-१२ के शब्द विमर्श।

५. सूत्र १२,१३

अरण्यवासी अथवा घास, लकड़ी, फल आदि लेने के लिए वन में जाने वाले लोगों का समुदाय दो प्रकार का होता है—

१. अटवी-यात्रा के लिए संप्रस्थित।

२. अटवी-यात्रा से प्रतिनिवृत्त।

सुदीर्घ अटवी में प्रवेश करने से पूर्व वे अपनी यात्रा के लिए पाथेय लेते हैं। यदि उस पाथेय में से भिक्षु ग्रहण कर लेता है तो उन आरण्यकों आदि को परेशानी हो सकती है, वे अपनी भूख को शान्त करने के लिए तीतर, बटेर आदि को मारते हैं अथवा अन्य संबल लेते हैं।[7] अतः उनसे भिक्षा ग्रहण करना दोषयुक्त है।

अटवी से लौटते समय वे अपना बचा हुआ संबल तथा अन्य कुछ आवश्यक खाद्य सामग्री—खैर का गोंद, चूर्ण अथवा फल अपने परिवार एवं बच्चों के लिए लाते हैं। भिक्षु के द्वारा ग्रहण कर लिए जाने पर उनके पत्नी, बच्चों आदि के अन्तराय, पारस्परिक कलह, अप्रीति आदि दोष संभव हैं।[8] अतः प्रस्तुत सूत्रद्वयी में अटवी हेतु प्रस्थित एवं अटवी से प्रतिनिवृत्त आरण्यकों से भिक्षा-ग्रहण का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है।

शब्द विमर्श

वणंधय—वनस्पति, काष्ठ आदि के लिए वन में जाने वाले।[9]

६. सूत्र १४,१५

जो निरन्तर ज्ञान, दर्शन, चारित्र में रत रहता है, चारित्र रूपी रत्नों से युक्त होता है अथवा इन्द्रिय-निग्रह में रत है, वह वसुरात्निक कहलाता है।[10] अथवा वसुरात्निक का अर्थ है संविग्न।[11]

संविग्न को असंविग्न कहने के चार कारण हो सकते हैं—

१. रोष	२. प्रतिनिवेश
३. अकृतज्ञता	४. मिथ्यात्वोदय।[12]

संविग्न और विशुद्धचारित्री को उपर्युक्त किसी भी कारण से असंविग्न कहने वाला अथवा उनके चारित्र की हीलना करने वाला दुर्लभबोधि होता है।[13] वह प्रवचन का परिभव करता है तथा अलीक वचन एवं साधुओं के प्रति विद्वेष के कारण दीर्घसंसारी होता है।[14]

जो व्यक्ति स्वयं अवसन्नचारित्री होता है, वह स्वयं के दोषों का आवृत करने के लिए पार्श्वस्थ, अवसन्न आदि शिथिलाचारियों की प्रशंसा करता है। वह मंदधर्मा असंयम का स्थिरीकरण करता हुआ स्वयं उन्मार्ग में प्रस्थित होता है तथा अन्य मन्दधर्मा व्यक्तियों को प्रशंसा के द्वारा उन्मार्ग में प्रेरित करता है। इस प्रकार वह प्रकारान्तर से तीर्थ का अवर्णवाद करता है।[15] असंविग्न की प्रशंसा करने वाला दीर्घसंसारी होता है।[16]

७. सूत्र १६

वसुरात्निक गण एवं अवसुरात्निक गण के परस्पर संक्रमण के विषय में चार भंग बनते हैं—

१. वसुरात्निक गण से वसुरात्निक गण में संक्रमण।

२. वसुरात्निक गण से अवसुरात्निक गण में संक्रमण।

३. अवसुरात्निक गण से वसुरात्निक गण में संक्रमण।

४. अवसुरात्निक गण से अवसुरात्निक गण में संक्रमण।[17]

इनमें तृतीय भंग अनुज्ञात है। ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि विशुद्ध आलम्बनों से विधिपूर्वक गुरु-अनुज्ञा से एक वसुरात्निक गण से दूसरे वसुरात्निक गण में संक्रमण करना उपसंपदा है, वह भी अनुज्ञात है।[18] विशुद्ध आलम्बनों के अभाव में स्वेच्छापूर्वक प्रथम भंग से भी संक्रमण करना सबलदोष है।[19] उत्तरज्झयणाणि

---

१. निभा. गा. ५४११—तव्वज्जियं अंतरुच्छुयं होइ।
२. वही—पव्वसहितं तु खंडं।
३. वही, गा. ५४१२—चोयं तु होति हीरो।
४. वही, गा. ५४११—मोयं पुण छल्लिपरिहीणं।
५. वही, गा. ५४१२—सालगं पुण तस्स बाहिरा छल्ली
६. वही, गा. ५४११—डगलं चक्कलिछेदो।
७. वही, गा. ५४१६, ५४१७
८. वही, गा. ५४१८
९. वही, भा. ४ चू.पृ. १६—वणं धावंतीति वणंधा, आरण्यं वणार्थाय धावंतीत्यर्थः।
१०. वही, गा. ५४२०
११. वही, गा. ५४२१—वुसि संविग्गो भणितो।
१२. वही, गा. ५४२२
१३. वही, गा. ५४२९
१४. वही, गा. ५४३७
१५. वही, गा. ५४४५
१६. वही, गा. ५४४९
१७. वही, ४ चू.पृ. ७३
१८. वही, पृ. ७३—कारणे पुणो पढमभंगे उवसंपदं करेति।
१९. दसाओ २/३ (८)

में निष्कारण गण-संक्रमण करने वाले को पापश्रमण कहा गया है।[1]

प्रस्तुत सूत्र में द्वितीय भंग से गण-संक्रमण करने वाले के लिए लघु चातुर्मासिक प्रायश्चित्त का विधान है। जो निरन्तर संविग्न गण में रहते हैं, वे आचार्य, उपाध्याय आदि के भय अथवा संकोच से अकरणीय दोषों का प्रतिसेवन नहीं करते, आचार्य आदि के वैयावृत्य, स्वाध्याय आदि में रत रहते हैं, क्रोध आदि कषायों का निग्रह करते हैं। अतः धन्य होते हैं।[2]

प्रस्तुत सन्दर्भ में भाष्य एवं चूर्णि में गण-संक्रमण के विविध प्रकारों, उपसंपदा के विविध प्रयोजनों तथा विविध प्रकार की उपसंपदाओं, गण-संक्रमण की विधि तथा सूत्रार्थ उपसंपदा, सुखदुःखोपसंपदा, क्षेत्रोपसंपदा तथा मार्गोपसंपदा का ज्ञानवर्धक विवरण उपलब्ध होता है।[3]

८. सूत्र १७-२५

व्युद्ग्रह का अर्थ है—कलह।[4] जो कलह करके गण से अपक्रमण करते हैं, वे व्युद्ग्रह-अपक्रान्त कहलाते हैं।[5] उत्तराध्ययन निर्युक्ति[6] में उल्लिखित सात निह्नवों को निशीथभाष्य में व्युद्ग्रह-अपक्रान्त कहा गया है।

प्रस्तुत आलापक में निह्नवों के साथ अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, उपधि और वसति के आदान-प्रदान का तथा परस्पर स्वाध्याय एवं वसति में अनुप्रवेश का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है। इनको आहार, उपधि आदि प्रदान किए जाएं तो ये गर्व के कारण प्रलाप कर सकते हैं अन्य व्यक्ति यह सोच सकता है कि 'निश्चित ही ये इनसे श्रेष्ठ हैं, तभी ये श्रमण इन्हें आहार आदि देते हैं।' श्रमण से प्राप्त आहार आदि को खाकर यदि ये बीमार हो जाएं तो शंका, कलंक एवं शासन की अप्रभावना का प्रसंग आ सकता है।[7] यदि इनसे आहार आदि ग्रहण किए जाएं तो उद्गम आदि से अशुद्ध भिक्षा का ग्रहण संभव है। ये अर्हत्-धर्म के प्रत्यनीक होते हैं। अतः शत्रुतावश वशीकरण, विष आदि का प्रयोग भी कर सकते हैं। जिस प्रकार नकली सोने को सामान्य व्यक्ति भ्रान्तिवश असली सोना समझ लेता है, उसी प्रकार आचार, वेश आदि की समानता के कारण शैक्ष भ्रान्त हो सकते हैं। संवास, बारम्बार परिचय से संसर्गज दोष भी पैदा हो सकते हैं।[8] अतः प्रस्तुत आलापक में निह्नवों के साथ व्यवहार सम्बन्धी सीमाओं का निरूपण किया गया है। भाष्य एवं चूर्णि में एतद्विषयक अपवादों की चर्चा की गई है।[9]

९. सूत्र २६,२७

सामान्यतः भिक्षु को उसी मार्ग से तथा उन्हीं क्षेत्रों में विहार करना चाहिए, जहां आर्य एवं धार्मिक वृत्ति वाले लोग रहते हों।

जहां सुदीर्घ अटवी हो अथवा जहां म्लेच्छ और अनार्य लोग रहते हों, वहां जाने से आत्मविराधना एवं संयमविराधना की संभावना रहती है।[10] उनके खाने और सोने का समय संयमानुकूल नहीं होता—अकालभोजी एवं अकालप्रतिबोधि होते हैं। वे धर्म, कर्म के विषय में अज्ञ होते हैं। वे भिक्षु एवं भिक्षुचर्या से अनभिज्ञ होते हैं। अतः भिक्षु को चोर, लुटेरा, गुप्तचर आदि समझ कर उस पर आक्रोश कर सकते हैं, उसे तर्जना, ताड़ना दे सकते हैं, उस पर प्रहार कर सकते हैं।[11] अतः आयारचूला में इस प्रकार के स्थानों में विहरण करने का निषेध किया गया है।[12] प्रस्तुत सूत्रद्वयी में उसी के अतिक्रमण का प्रायश्चित्त बताया गया है।

शब्द विमर्श

१. **विह**—अटवी[13]

२. **अणेगाह-गमणिज्जं**—अनेक दिनों से पार करने योग्य।[14]

३. **लाढ**—निर्दोष आहारादि से संयम यात्रा का निर्वाह करने वाला भिक्षु।[15]

४. **संथरमाण**—जहां आहार, उपधि आदि सुलभ हों।[16]

५. **म्लेच्छ**—जो अव्यक्त एवं अस्पष्ट भाषा बोलते हैं, वे म्लेच्छ कहलाते हैं।[17]

६. **विरूप**—आर्यों से भिन्न वेश, भाषा एवं दृष्टि वाले लोग जैसे—शक, यवन आदि।[18]

७. **प्रात्यंतिक**—मगध आदि साढ़े पच्चीस देशों से बाहर रहने वाले।[19]

---

१. उत्तर. १७/१७
२. निभा. गा. ५४५४,५४५७
३. वही, गा. ५४५८-५५९३
४. वही, भा. ४ चू.पृ. १०१—वुग्गहो त्ति कलहो ति वा भंडणं ति वा विवादो त्ति वा एगट्ठं।
५. वही
६. उनि. १६७
७. निभा. गा. ५६२७, ५६२८
८. वही, गा. ५६२९
९. वही, गा. ५६३०-५६३३ सचूर्णि
१०. वही, गा. ५६३७-५६४२
११. वही, गा. ५६४३
१२. आचू. ३/८,९
१३. निभा. ४ चू.पृ. १०५—विहं अद्धाणं।
१४. वही—अणेगेहिं अहेहिं गमणिज्जं अणेगाहगमणिज्जं।
१५. वही—लाढे ति साहू, जम्हा उग्गमुप्पादणेसणासुद्धेण आहारोवधिणा संजमभारवहणट्ठयाए अप्पणो सरीरगं लाढेतीति लाढो।
१६. वही—आहारोवहिवसहिमादिएहिं सुलभेहिं जणवए।
१७. वही, पृ. १२४—मिलक्खू जे अव्वत्तं अफुडं भासंति ते मिलक्खू।
१८. वही—सग-जवणादि अण्णण्णवेसादिट्ठिता विविधरूवा विरूवा।
१९. वही—मगहादियाणं अद्धछव्वीसाए आयरियजणवयाणं, तेसिं अण्णतरं ठिया जे अणारिया ते पच्चंतिया।

८. दस्य—दांत से काटने वाले।[1]

९. अनाय—हिंसा आदि अकरणीय काम करने वाले।[2]

१०. सूत्र २८-३३

जिन कुलों में लोग भिक्षु एवं भिक्षुचर्या के विषय में जानते हैं, धर्म एवं पात्रदान के प्रति श्रद्धा रखते हैं, उन कुलों में आहार-पानी, वस्त्र-पात्र, स्थान आदि ग्रहण करने से एषणा सम्बन्धी दोषों की संभावना कम रहती है। नट, चर्मकार, लोहकार, रंगरेज आदि की जीवनचर्या सामान्य शिष्ट कुलों से भिन्न होती है। इनकी बस्तियां प्रायः धार्मिक समाज से बाहर होती हैं। साधु-संतों का सम्पर्क न होने के कारण इन्हें धर्म, पात्र-दान आदि का ज्ञान नहीं होता। समाज से बहिर्भूत लोगों के कुलों में आहार, उपधि अथवा वसति ग्रहण करने से लोगों में अपयश होता है, अभोज्य लोगों के घर का आहार लेते देख अन्य व्यक्ति जुगुप्सा एवं विपरिणाम को प्राप्त होते हैं, फलतः कोई दीक्षा नहीं लेना चाहता। प्रवचन की हानि होती है।[3] अतः मुनि के लिए विधान है कि वह अजुगुप्सित एवं अगर्हित कुलों में ही भिक्षार्थ प्रवेश-निष्क्रमण करे।[4]

प्रस्तुत आलापक में जुगुप्सित कुलों में आहार, उपधि एवं वसति के ग्रहण के समान वहां स्वाध्याय का उद्देश देना, वाचना देना तथा वाचना ग्रहण करना—इन कार्यों को भी प्रायश्चित्तार्ह माना गया है। भाष्यकार के अनुसार वहां स्वाध्याय, वाचना से भी आज्ञाभंग, अनवस्था आदि दोष आते हैं।[5]

जुगुप्सित कुल के विषय में सविस्तर तुलना हेतु द्रष्टव्य दसवे. ५/१/१७ का टिप्पण।

११. सूत्र ३४-३६

अशन, पान आदि को भूमि, संस्तारक आदि पर रखने तथा डोरा बांध कर खूंटी आदि पर लटकाने से आत्मविराधना एवं संयमविराधना की संभावना रहती है।[6] भक्तपान को खाने के इच्छुक चूहे, बिल्ली आदि प्राणियों की लार उसमें गिर सकती है। सर्प, गिलहरी, छिपकली आदि के संसर्ग से वह विषैला हो सकता है। संस्तारक अथवा अन्य वस्त्र पर आहार रखने से आहार के लेप के कारण उनमें चींटियां आदि जीव आ सकते हैं। डोरे से खूंटी आदि पर आहार-पानी को लटकाने से पात्र गिरने पर पात्र-विराधना तथा मिट्टी आदि में मिलने से आहार-विनाश संभव है[7]। अतः अशन आदि को भूमि, संस्तारक आदि पर रखना उचित नहीं।

१२. सूत्र ३७,३८

भिक्षु अपने समान समाचारी वाले साम्भोजिक भिक्षुओं के साथ बैठ कर अथवा उनसे आवेष्टित-परिवेष्टित होकर आहार कर सकता है। अन्यतीर्थिक एवं गृहस्थ के साथ आहार करने से यदि वे आहार से पूर्व हाथ-पैर आदि को साफ करें, 'भिक्षु हमारे साथ भोजन करेगा'—ऐसा सोचकर अधिक परिमाण में भोजन बनवाएं तो पुरःकर्म, मिश्र आदि दोष लगते हैं। शौचवादी गृहस्थ अथवा अन्यतीर्थिक बाद में उस निमित्त से स्नान आदि करें तो पश्चात्कर्म दोष लगता है। परस्पर एक दूसरे के प्रति जुगुप्सा, रोग-संक्रमण, अप्रियता आदि दोष भी संभव हैं।[8]

गृहस्थ अथवा अन्यतीर्थिक के समक्ष बैठकर मात्रक आदि में साथ-साथ खाने, कांजी आदि से पात्र साफ करने पर उड्डाह आदि दोष होते हैं। लोग देख रहे हैं—इसलिए बहुत जल से पात्र धोने, कुल्ला करने आदि से उत्प्लावना, जीववध आदि दोष संभव हैं।[9] अतः सूत्रकार ने इन दोनों को प्रायश्चित्तार्ह माना है।

१. आवेढिय—आवेष्टित, एक अथवा एकाधिक दिशा में बैठे हों, कुछ लोग बैठे हों अथवा एक पंक्ति में सब तरफ बैठे हों।[10]

२. परिवेढिय—परिवेष्टित, सब दिशाओं में बैठे हों, दिशा-विदिशा में विस्तीर्ण बैठे हों, दो-तीन पंक्तियों में सब तरफ बैठे हों।[11]

१३. सूत्र ३९

किसी भी वस्तु का पैर से स्पर्श करना अविनय है।[12] आचार्य-उपाध्याय संघ में सर्वाधिक सम्मान्य व्यक्ति हैं। गुरु के उपकरणों के हमारे पैरों अथवा पैरों की धूलि लगने पर अविनय एवं उनके प्रति अबहुमान प्रदर्शित होता है। गुरु की अवमानना से ज्ञान, दर्शन एवं चारित्र की विराधना होती है क्योंकि हमारे ज्ञान, दर्शन एवं चारित्र गुरु के अधीन हैं। दसाओ में भी आचार्य आदि के पैर लगने पर बिना विनय किए चले जाने को आशातना माना गया है।[13] अतः प्रवेश, निष्क्रमण, विश्रामणा आदि किसी भी प्रवृत्ति में यदि आचार्य, उपाध्याय के शय्यासंस्तारक आदि के पैर का स्पर्श हो जाए, भूल से अथवा प्रमादवश पैर लग जाए तो हाथ से स्पर्श कर उसे नमस्कार करे तथा 'मिच्छामि दुक्कडं' का उच्चारण करते हुए अपनी भूल की

---

१. निभा. भा. ४ चू.पृ. १२४—आरुट्ठा दंतेहिं दसंति तेण दसू।
२. वही—हिंसादिअकज्जकम्मकारिणो अणारिया।
३. वही, गा. ५७६२
४. आचू. १।२३
५. निभा. गा. ५७६१
६. वही, गा. ५७६६
७. वही, भा. ४ चू.पृ. १३३
८. वही, गा. ५७७७
९. वही, गा. ५७७९
१०. वही, चू.पृ. १३४—एगदुतिदिसिट्ठितेसु आवेढिउं.....एगपंतीए समंता ठिएसु आवेष्टितः।
११. वही—सव्वदिसिट्ठितेसु परिवेढिउं.....दिसिविदिसासु विच्छिन्नट्ठितेसु परिवेष्टितः.....दुगातिसु पंतीसु समंता परिट्ठियासु परिवेष्टितः।
१२. वही, भा. ४ चू.पृ. १३७—पातो सव्वाऽफरिसि त्ति अविणतो।
१३. दसाओ ३/३ (३१)

आलोचना करे—यह विधि है।[1] निशीथभाष्य एवं चूर्णि के अनुसार शय्या-संस्तारक के साथ आहार, उपधि एवं गुरु के शरीर का भी ग्रहण हो जाता है। अतः उनका भी पैर से संघट्टा होने पर इसी प्रकार क्षमायाचना करनी चाहिए।[2]

जिस प्रकार इक्षुवन की रक्षा के लिए वन की बाड़ की रक्षा भी आवश्यक है, उसी प्रकार गुरु की उपधि एवं देह का विनय करने वाले को गुरु के शय्या-संस्तारक आदि का भी बहुमान करना चाहिए।[3]

शब्द विमर्श

हत्थेण अणणुण्णवेत्ता धारयमाणो—हाथ से स्पर्श कर नमस्कार किए बिना, 'मिच्छामि दुक्कडं' किए बिना।[4]

१४. सूत्र ४०

भिक्षु के दो प्रकार की उपधि होती है—औधिक और औपग्रहिक। स्थविरकल्प में साधु की औधिक उपधि के चौदह एवं साध्वियों की औधिक उपधि के पच्चीस प्रकार होते हैं।[5] इन सब का संख्या तथा परिमाण की दृष्टि से जितना प्रमाण शास्त्रों में वर्णित है, उससे अधिक संख्या में अथवा अधिक बड़े कल्प (पछेवड़ी), चोलपट्ट आदि रखने पर चातुर्मासिक प्रायश्चित्त प्राप्त होता है। अतिरिक्त संख्या अथवा परिमाण में उपधि रखने पर उसकी प्रतिलेखना से सूत्रार्थ में व्याघात होता है। अतिरिक्त उपधि अनुपयोगी होने से अधिकरण की संज्ञा को प्राप्त हो जाती है।[6] भार की अधिकता से संयमविराधना एवं आत्मविराधना भी संभव है। यदि उपधि हीन प्रमाणवाली हो तो कार्य में बाधा आती है। अतः उचित संख्या में प्रमाणोपेत उपधि को संयम-साधना में हितकर माना गया है।

१५. सूत्र ४१-५१

प्रस्तुत आलापक में परिष्ठापनिका समिति के अतिक्रमण का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है। पृथिवीकाय आदि जीव-विराधना वाले स्थानों पर तथा अन्तरिक्षजात स्थानों पर उच्चार-प्रस्रवण के परिष्ठापन से पृथिवीकायिक आदि जीवों तथा पृथिवी आदि पर स्थित अथवा तन्निश्रित अन्य जीवों की विराधना होती है। अन्तरिक्षजात स्थान जो दुर्बद्ध एवं दुर्निक्षिप्त होने से चलाचल होते हैं, निष्कम्प नहीं होते, उन पर चढ़कर उच्चार-प्रस्रवण का परिष्ठापन करते हुए यदि भिक्षु गिर जाए तो आत्मविराधना और भाजनविराधना भी संभव है।[7] आयारचूला में भी इनमें से कुछ स्थानों पर परिष्ठापन का निषेध किया गया है।[8]

ज्ञातव्य है कि कुछ आदर्शों में अणंतरहियाए पुढवीए आदि सात सूत्रों में भी जीवपइट्ठिए सअंडे.... आदि पाठ प्रयुक्त है।

शब्दविमर्श हेतु द्रष्टव्य निसीह. १४/२०-३०

१. निभा. भा. ४ चू.पृ. १३७
२. वही, गा. ५७८१
३. वही, गा. ५७८३
४. वही, भा. ४ चू.पृ. १३७—हत्थेण अणणुण्णवति—न हस्तेन स्पृष्ट्वा नमस्कारयति, मिथ्यादुष्कृतं च न भाषते।
५. वही, गा. ५९०१
६. वही, गा. २१७६—अतिरेग उवधि अधिकरणमेव, सज्झाय—झाण पलिमंथो।
७. वही, गा. ५९०२ (सचूर्णि)
८. आचू. १०/१४

सत्तरसमो उद्देसो

सत्रहवां उद्देशक

आमुख

पूर्ववर्ती उद्देशक के समान प्रस्तुत उद्देशक में भी उन विषयों का संग्रहण हुआ है, जिनका सम्बन्ध लघुचातुर्मासिक प्रायश्चित्त से है। इस उद्देशक में मुख्यतः चार विषयों का प्रायश्चित्त है--

१. कुतूहल के कारण किए गए कार्य।

२. निर्ग्रन्थ अथवा निर्ग्रन्थी के द्वारा अन्ययूथिक अथवा गृहस्थ से परस्पर एक-दूसरे के पैर, शरीर आदि का परिकर्म करवाना।

३. पिण्डैषणा विषयक स्खलनाएं।

४. श्रवणोत्सुकता से होने वाली प्रतिसेवनाएं।

प्रस्तुत आगम के बारहवें उद्देशक में लौकिक अनुकम्पा के कारण त्रसप्राणियों को विविध प्रकार के बन्धनों से बांधने एवं उन बन्धनों से बद्ध प्राणियों को छुड़ाने--बन्धनमुक्त करने का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है। प्रस्तुत उद्देशक में कुतूहलवश प्राणियों को बद्ध, मुक्त करने का भी वही प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है। इसी प्रकार इसी आगम के सातवें उद्देशक में विविध प्रकार की मालाओं, विविध धातुओं, नानाविध आभरणों एवं बहुमूल्य वस्त्रों के निर्माण, धारण एवं परिभोग का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है। वहां इन कुप्रवृत्तियों का हेतु है--मातृग्राम के साथ मैथुन-सेवन का संकल्प। अतः वहां इसका प्रायश्चित्त है गुरुचातुर्मासिक। प्रस्तुत उद्देशक में कुतूहलवश विविध मालाओं, धातुओं, आभरणों एवं वस्त्रों के निर्माण आदि का प्रायश्चित्त लघुचातुर्मासिक है।

प्रस्तुत आगम में पादपरिकर्म, कायपरिकर्म, व्रणपरिकर्म, गंडादिपरिकर्म, कृमि तथा मैल आदि का निष्कासन, नखशिखा एवं दीर्घरोमराजि का कर्त्तन-संस्थापन आदि से सम्बद्ध आलापकों का अनेक उद्देशकों में भिन्न-भिन्न हेतुओं के साथ उल्लेख हुआ है तथा उन-उन हेतुओं के आधार पर उनका उद्घातिक अथवा अनुद्घातिक प्रायश्चित्त बतलाया गया है। प्रस्तुत उद्देशक में इस चौवनसूत्रीय आलापक का दो बार उल्लेख हुआ है। निर्ग्रन्थ अथवा निर्ग्रन्थी स्वयं स्वयं के शरीर का परिकर्म करती है, परस्पर एक दूसरे के शरीर का परिकर्म करते हैं, उससे भी अधिक दोषावह है--अन्ययूथिक अथवा गृहस्थ के द्वारा एक दूसरे के शरीर का परिकर्म करवाना। अन्यमतावलम्बी संन्यासी आदि तथा सामान्य गृहस्थों को सावद्य योगों का सर्वथा प्रत्याख्यान नहीं होता। वे सुतप्त लोहपिण्ड के समान समन्ततः जीवोपघाती होते हैं, निर्ग्रन्थ अथवा निर्ग्रन्थी की शारीरिक परिचर्या या परिकर्म के पश्चात् पश्चात्कर्म कर सकते हैं। शंका एवं सन्देह के कारण निर्ग्रन्थ एवं निर्ग्रन्थ-प्रवचन का अवर्णवाद कर सकते हैं। अतः इनका प्रायश्चित्त है लघुचातुर्मासिक।

प्रस्तुत उद्देशक में मालापहृत, उद्भिन्न एवं निक्षिप्त--पिण्डैषणा के इन तीन दोषों का तथा अत्युष्ण अशन आदि एवं अपरिणत पानक को ग्रहण करने का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है।

आयारचूला में स्तम्भ, मचान, माल आदि अन्तरिक्षजात स्थानों पर उपनिक्षिप्त एवं कोष्ठिका आदि में रखे हुए अशन, पान, खाद्य एवं स्वाद्य को टेढ़ा होकर, झुककर, निकाल कर दिया जाए तो उसे मालापहृत जानकर ग्रहण करने का निषेध किया है।[1] वहां कहा गया कि अधर स्थानों पर स्थित (ऊर्ध्व मालापहृत) भिक्षा को देने के लिए गृहस्थ पीठ, फलक, निश्रेणी आदि स्थानों पर चढ़ता है। उस समय वह स्खलित हो जाए, गिर जाए तो उसके हाथ, पैर, बाहु, ऊरु आदि अंग भंग हो सकते हैं,

१. आचू. १/८७,८९

उसके नीचे दब जाने से छोटे-मोटे जीवों का अभिहनन हो सकता है, उनका संघट्टन, संघर्षण हो सकता है।[१] दसवेआलियं में भी प्रायः इसी भाव का प्रतिपादन है।[२] प्रस्तुत उद्देशक में ऊर्ध्व मालापहृत एवं तिर्यक् मालापहृत दोनों दोषों के प्रतिसेवन का प्रायश्चित्त बतलाया गया है।

आयारचूला के पिण्डैषणा अध्ययन में मृत्तिका आदि से उपलिप्त अशन, पान आदि को लेने का निषेध किया गया है क्योंकि उसमें षड्जीवनिकाय का समारम्भ तथा पश्चात्कर्म–इन दो दोषों की संभावना रहती है। वहां क्रमशः पृथिवीकाय-प्रतिष्ठित, अप्काय-प्रतिष्ठित, अग्निकाय-प्रतिष्ठित, बीजन कर दिए जाने वाले अत्युष्ण अशनादि तथा वनस्पतिकाय एवं त्रसकाय पर प्रतिष्ठित अशन, पान आदि को अप्रासुक, अनेषणीय मानते हुए ग्रहण करने का निषेध किया गया है। प्रस्तुत उद्देशक में इन पृथिवीकाय-प्रतिष्ठित अशन आदि के ग्रहण का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है।

प्रस्तुत उद्देशक में ग्यारह प्रकार के पानक का उल्लेख करते हुए बताया गया है कि ये पानक यदि अधुनाधौत हों, अनाम्ल, अव्युत्क्रान्त, अपरिणत, अविध्वस्त हों तो जो भिक्षु उसे ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है, वह प्रायश्चित्तभाक् होता है। आयारचूला में उत्स्वेदिम, संस्वेदिम एवं चावलोदक–इन तीन के लिए अधुनाधौत आदि विशेषणों का प्रयोग किया गया है,[३] पर तिलोदक, तुषोदक, जवोदक आदि के लिए अधुनाधौत अथवा चिरधौत जैसा कोई विशेषण नहीं लगाया गया[४], ऐसा क्यों? दसवेआलियं में भी अधुनाधौत वारधोवण, संस्वेदिम एवं चावलोदक के विवर्जन का निर्देश देते हुए कहा गया कि यदि भिक्षु निःशंकित रूप से इन्हें चिरधौत जाने तो परिणत एवं अचित्त जानकर इनका ग्रहण करे।[५] प्रश्न होता है कि तिलोदक, तुषोदक आदि को क्या अचिरधौत अवस्था में जबकि उनके वर्ण, गंध आदि परिणत न हुए हों, तब भी उन्हें लिया जा सकता है? ध्यातव्य है आयारचूला की निर्युक्ति एवं वृत्ति में तथा निसीहज्झयणं के भाष्य एवं चूर्णि में इस विषय कोई हेतु अथवा चालना-प्रत्यवस्थान उपलब्ध नहीं होता।

कोई साधर्मिक निर्ग्रन्थ अथवा निर्ग्रन्थी क्रमशः अपने सदृश (साधर्मिक सांभोजिक) निर्ग्रन्थ अथवा निर्ग्रन्थी के पास आए और उसके उपाश्रय में अवकाश होने पर भी उसे अवकाश न दे, कोई भिक्षु गाए, नाचे, अभिनय करे अथवा अपने आचार्यत्व के लक्षणों का कथन करे–इन सब का भी प्रस्तुत उद्देशक में प्रायश्चित्त कथन किया गया है। प्रस्तुत प्रसंग में भाष्य में आचार्य के गुणों, साधर्मिकता के लक्षणों आदि का भी अच्छा रोचक एवं ज्ञानवर्धक विवरण मिलता है।

---

१. आचू. १/८८
२. दसवे. ५/१/६७-६९
३. आचू. १/९९
४. वही, १/१०१
५. दसवे. ५/१/७५-७७

सत्तरसमो उद्देसो : सत्रहवां उद्देशक

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
कोउहल्लपडिया-पदं	**कुतूहलप्रतिज्ञा-पदम्**	**कुतूहल-प्रतिज्ञा-पद**
१. जे भिक्खू कोउहल्लपडियाए अण्णयरं तसपाणजातिं तणपासएण वा मुंजपासएण वा कट्ठपासएण वा चम्मपासएण वा वेत्तपासएण वा रज्जुपासएण वा सुत्तपासएण वा बंधति, बंधंतं वा सातिज्जति।।	यो भिक्षुः कुतूहलप्रतिज्ञया अन्यतरां त्रसप्राणजातिं तृणपाशकेन वा मुञ्जपाशकेन वा काष्ठपाशकेन वा चर्मपाशकेन वा वेत्रपाशकेन वा रज्जुपाशकेन वा सूत्रपाशकेन वा बध्नाति, बध्नन्तं वा स्वदते।	१. जो भिक्षु कुतूहल की प्रतिज्ञा से किसी त्रसप्राणजाति (प्राणी) को तृण के बन्धन, मूंज के बन्धन, काठ के बन्धन, चर्म के बन्धन, बेंत के बन्धन, रज्जु के बन्धन अथवा सूत के बन्धन से बांधता है अथवा बांधने वाले का अनुमोदन करता है।
२. जे भिक्खू कोउहल्लपडियाए अण्णयरं तसपाणजातिं तणपासएण वा मुंजपासएण वा कट्ठपासएण वा चम्मपासाएण वा वेत्तपासएण वा रज्जुपासएण वा सुत्तपासएण वा बद्धेल्लयं मुयति, मुयंतं वा सातिज्जति।।	यो भिक्षुः कुतूहलप्रतिज्ञया अन्यतरां त्रसप्राणजातिं तृणपाशकेन वा मुञ्जपाशकेन वा काष्ठपाशकेन वा चर्मपाशकेन वा वेत्रपाशकेन वा रज्जुपाशकेन वा सूत्रपाशकेन वा बद्धं मुञ्चति, मुञ्चन्तं वा स्वदते।	२. जो भिक्षु कुतूहल की प्रतिज्ञा से तृण के बन्धन, मूंज के बन्धन, काठ के बन्धन, चर्म के बन्धन, बेंत के बन्धन, रज्जु के बन्धन अथवा सूत के बन्धन से बद्ध किसी त्रसप्राणजाति को मुक्त करता है अथवा मुक्त करने वाले का अनुमोदन करता है।[1]
३. जे भिक्खू कोउहल्लपडियाए तणमालियं वा मुंजमालियं वा वेत्तमालियं वा भिंडमालियं वा मयणमालियं वा पिच्छमालियं वा दंतमालियं वा सिंगमालियं वा संखमालियं वा हड्डमालियं वा कट्ठमालियं वा पत्तमालियं वा पुप्फमालियं वा फलमालियं वा बीजमालियं वा हरियमालियं वा करेति, करेंतं वा सातिज्जति।।	यो भिक्षुः कुतूहलप्रतिज्ञया तृणमालिकां वा मुञ्जमालिकां वा वेत्रमालिकां वा 'भिंड'मालिकां वा मदनमालिकां वा पिच्छमालिकां वा दंतमालिकां वा शृंगमालिकां वा शंखमालिकां वा 'हड्ड'मालिकां वा काष्ठमालिकां वा पत्रमालिकां वा पुष्पमालिकां वा फलमालिकां वा बीजमालिकां वा हरितमालिकां वा करोति, कुर्वन्तं वा स्वदते।	३. जो भिक्षु कुतूहल की प्रतिज्ञा से तृणमालिका, मूंजमालिका, वेत्रमालिका, भेंडमालिका, मदनमालिका, पिच्छमालिका, दंतमालिका, शृंगमालिका, शंखमालिका, अस्थिमालिका, काष्ठमालिका, पत्रमालिका, पुष्पमालिका, फलमालिका, बीजमालिका अथवा हरितमालिका बनाता है अथवा बनाने वाले का अनुमोदन करता है।
४. जे भिक्खू कोउहल्लपडियाए तणमालियं वा मुंजमालियं वा वेत्तमालियं वा भिंडमालियं वा मयणमालियं वा पिच्छमालियं वा	यो भिक्षुः कुतूहलप्रतिज्ञया तृणमालिकां वा मुञ्जमालिकां वा वेत्रमालिकां वा 'भिंड'मालिकां वा मदनमालिकां वा पिच्छमालिकां वा दन्तमालिकां वा	४. जो भिक्षु कुतूहल की प्रतिज्ञा से तृणमालिका, मूंजमालिका, वेत्रमालिका, भेंडमालिका, मदनमालिका, पिच्छमालिका, दंतमालिका, शृंगमालिका,

दंतमालियं वा सिंगमालियं वा संखमालियं वा हड्डमालियं वा कट्ठमालियं वा पत्तमालियं वा पुप्फमालियं वा फलमालियं वा बीजमालियं वा हरियमालियं वा धरेति, धरेंतं वा सातिज्जति ।।

शृंगमालिकां वा शंखमालिकां वा 'हड्डु'मालिकां वा काष्ठमालिकां वा पत्रमालिकां वा पुष्पमालिकां वा फलमालिकां वा बीजमालिकां वा हरितमालिकां वा धरति, धरन्तं वा स्वदते।

शंखमालिका, अस्थिमालिका, काष्ठमालिका, पत्रमालिका, पुष्पमालिका, फलमालिका, बीजमालिका अथवा हरितमालिका को धारण करता है अथवा धारण करने वाले का अनुमोदन करता है।

५. **जे भिक्खू कोउहल्लपडियाए तणमालियं वा मुंजमालियं वा वेत्तमालियं वा भिंडमालियं वा मयणमालियं वा पिच्छमालियं वा दंतमालियं वा सिंगमालियं वा संखमालियं वा हड्डमालियं वा कट्ठमालियं वा पत्तमालियं वा पुप्फमालियं वा फलमालियं वा बीजमालियं वा हरियमालियं वा पिणद्धति, पिणद्धंतं वा सातिज्जति ।।**

यो भिक्षुः कुतूहलप्रतिज्ञया तृणमालिकां वा मुञ्जमालिकां वा वेत्रमालिकां वा 'भिंड'मालिकां वा मदनमालिकां वा पिच्छमालिकां वा दन्तमालिकां वा शृंगमालिकां वा शंखमालिकां वा 'हड्डु'मालिकां वा काष्ठमालिकां वा पत्रमालिकां वा पुष्पमालिकां वा फलमालिकां वा बीजमालिकां वा हरितमालिकां वा पिनह्यति, पिनह्यन्तं वा स्वदते।

५. जो भिक्षु कुतूहल की प्रतिज्ञा से तृणमालिका, मूंजमालिका, वेत्रमालिका, भेंडमालिका, मदनमालिका, पिच्छमालिका, दंतमालिका, शृंगमालिका, शंखमालिका, अस्थिमालिका, काष्ठमालिका, पत्रमालिका, पुष्पमालिका, फलमालिका, बीजमालिका अथवा हरितमालिका को पहनता है अथवा पहनने वाले का अनुमोदन करता है।

६. **जे भिक्खू कोउहल्लपडियाए अयलोहाणि वा तंबलोहाणि वा तउयलोहाणि वा सीसगलोहाणि वा रुप्पलोहाणि वा सुवण्णलोहाणि वा करेति, करेंतं वा सातिज्जति ।।**

यो भिक्षुः कुतूहलप्रतिज्ञया अयोलोहान् वा ताम्रलोहान् वा त्रपुकलोहान् वा सीसकलोहान् वा रूप्यलोहान् वा सुवर्णलोहान् वा करोति, कुर्वन्तं वा स्वदते।

६. जो भिक्षु कुतूहल की प्रतिज्ञा से लोहाधातु, तांबाधातु, त्रपुधातु, शीशाधातु, रूप्यधातु अथवा स्वर्णधातु बनाता है अथवा बनाने वाले का अनुमोदन करता है।

७. **जे भिक्खू कोउहल्लपडियाए अयलोहाणि वा तंबलोहाणि वा तउयलोहाणि वा सीसगलोहाणि वा रुप्पलोहाणि वा सुवण्णलोहाणि वा धरेति, धरेंतं वा सातिज्जति ।।**

यो भिक्षुः कुतूहलप्रतिज्ञया अयोलोहान् वा ताम्रलोहान् वा त्रपुकलोहान् वा सीसकलोहान् वा रूप्यलोहान् वा सुवर्णलोहान् वा धरति, धरन्तं वा स्वदते।

७. जो भिक्षु कुतूहल की प्रतिज्ञा से लोहाधातु, तांबाधातु, त्रपुधातु, शीशाधातु, रूप्यधातु अथवा स्वर्णधातु धारण करता है अथवा धारण करने वाले का अनुमोदन करता है।

८. **जे भिक्खू कोउहल्लपडियाए अयलोहाणि वा तंबलोहाणि वा तउयलोहाणि वा सीसगलोहाणि वा रुप्पलोहाणि वा सुवण्णलोहाणि वा परिभुंजति, परिभुंजंतं वा सातिज्जति ।।**

यो भिक्षुः कुतूहलप्रतिज्ञया अयोलोहान् वा ताम्रलोहान् वा त्रपुकलोहान् वा सीसकलोहान् वा रूप्यलोहान् वा सुवर्णलोहान् वा परिभुङ्क्ते, परिभुञ्जानं वा स्वदते।

८. जो भिक्षु कुतूहल की प्रतिज्ञा से लोहाधातु, तांबाधातु, त्रपुधातु, शीशाधातु, रूप्यधातु अथवा स्वर्णधातु का परिभोग करता है अथवा परिभोग करने वाले का अनुमोदन करता है।

९. **जे भिक्खू कोउहल्लपडियाए हाराणि वा अद्धहाराणि वा एगावली वा**

यो भिक्षुः कुतूहलप्रतिज्ञया हारान् वा अर्धहारान् वा एकावलीः वा मुक्तावलीः

९. जो भिक्षु कुतूहल की प्रतिज्ञा से हार, अर्धहार, एकावलि, मुक्तावलि,

मुत्तावली वा कणगावली वा रयणावली वा कडगाणि वा तुडियाणि वा केऊराणि वा कुंडलाणि वा पट्टाणि वा मउडाणि वा पलंबसुत्ताणि वा सुवण्णसुत्ताणि वा करेति, करेंतं वा सातिज्जति ।।

वा कनकावलीः वा रत्नावलीः वा कटकान् वा त्रुटिकानि वा केयूराणि वा कुण्डलानि वा पट्टानि वा मुकुटानि वा प्रलम्बसूत्राणि वा सुवर्णसूत्राणि वा करोति, कुर्वन्तं वा स्वदते ।

कनकावलि, रत्नावलि, वलय, तुडिय, केयूर, कुंडल, पट्ट, प्रलम्बसूत्र अथवा स्वर्णसूत्र बनाता है अथवा बनाने वाले का अनुमोदन करता है।

१०. जे भिक्खू कोउहल्लपडियाए हाराणि वा अद्धहाराणि वा एगावली वा मुत्तावली वा कणगावली वा रयणावली वा कडगाणि वा तुडियाणि वा केऊराणि वा कुंडलाणि वा पट्टाणि वा मउडाणि वा पलंबसुत्ताणि वा सुवण्णसुत्ताणि वा धरेति, धरेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः कुतूहलप्रतिज्ञया हारान् वा अर्द्धहारान् वा एकावलीः वा मुक्तावलीः वा कनकावलीः वा रत्नावलीः वा कटकान् वा त्रुटिकानि वा केयूराणि वा कुण्डलानि वा पट्टानि वा मुकुटानि वा प्रलम्बसूत्राणि वा सुवर्णसूत्राणि वा धरति, धरन्तं वा स्वदते ।

१०. जो भिक्षु कुतूहल की प्रतिज्ञा से हार, अर्धहार, एकावलि, मुक्तावलि, कनकावलि, रत्नावलि, वलय, तुडिय, केयूर, कुंडल, पट्ट, प्रलम्बसूत्र अथवा स्वर्णसूत्र को धारण करता है अथवा धारण करने वाले का अनुमोदन करता है।

११. जे भिक्खू कोउहल्लपडियाए हाराणि वा अद्धहाराणि वा एगावली वा मुत्तावली वा कणगावली वा रयणावली वा कडगाणि वा तुडियाणि वा केऊराणि वा कुंडलाणि वा पट्टाणि वा मउडाणि वा पलंबसुत्ताणि वा सुवण्णसुत्ताणि वा पिणद्धति, पिणद्धंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः कुतूहलप्रतिज्ञया हारान् वा अर्धहारान् वा एकावलीः वा मुक्तावलीः वा कनकावलीः वा रत्नावलीः वा कटकान् वा त्रुटिकानि वा केयूराणि वा कुण्डलानि वा पट्टानि वा मुकुटानि वा प्रलम्बसूत्राणि वा सुवर्णसूत्राणि वा परिभुङ्क्ते, परिभुञ्जानं वा स्वदते ।

११. जो भिक्षु कुतूहल की प्रतिज्ञा से हार, अर्धहार, एकावलि, मुक्तावलि, कनकावलि, रत्नावलि, वलय, तुडिय, केयूर, कुंडल, पट्ट, प्रलम्बसूत्र अथवा स्वर्णसूत्र का परिभोग करता है अथवा परिभोग करने वाले का अनुमोदन करता है।

१२. जे भिक्खू कोउहल्लपडियाए आईणाणि वा सहिणाणि वा कल्लाणि वा सहिणकल्लाणाणि वा आयाणि वा कायाणि वा खोमाणि वा दुगुल्लाणि वा तिरीडपट्टाणि वा मलयाणि वा पत्तुण्णाणि वा अंसुयाणि वा चीणंसुयाणि वा देसरागाणि वा अमिलाणि वा गज्जलाणि वा फाडिगाणि वा कोतवाणि वा कंबलाणि वा पावारगाणि वा कणगाणि वा कणगकताणि वा कणगपट्टाणि वा कणगखचियाणि वा कणगफुल्लियाणि वा वग्घाणि वा

यो भिक्षुः कुतूहलप्रतिज्ञया आजिनानि वा श्लक्ष्णानि वा कल्यानि वा श्लक्ष्णकल्याणानि वा आजानि वा कायानि वा क्षौमानि वा दुकूलानि वा तिरीटपट्टानि वा मलयानि वा 'पत्तुण्णाणि' वा अंशुकानि वा चीनांशुकानि वा 'देसरागाणि' वा अमिलानि वा गर्जलानि वा स्फटिकानि वा कौतवानि वा कम्बलानि वा प्रावारकाणि वा कनकानि वा कनककृतानि वा कनकपट्टानि वा कनकखचितानि वा कनक'फुल्लिताणि' वा वैयाघ्राणि वा विवैयाघ्राणि वा आभरणानि वा आभरणविचित्राणि वा

१२. जो भिक्षु कुतूहल की प्रतिज्ञा से अजिन-वस्त्र, 'सहिण'-वस्त्र, कल्य-वस्त्र, 'सहिण'-कल्याण वस्त्र, आज-वस्त्र, काय-वस्त्र, क्षौम, दुकूल, तिरीटपट्ट, मालय, पत्रोर्ण, अंशुक, चीनांशुक, देशराग, अमिल, गर्जल, स्फटिक, कौतव, कम्बल, प्रावारक, कनक, कनककृत, कनकपट्ट, कनकखचित, कनकपुष्पित, व्याघ्रचर्मनिर्मितवस्त्र, विव्याघ्र चर्म से निर्मित वस्त्र, आभरण वस्त्र, आभरण-विचित्र वस्त्र, उद्रवस्त्र, गौरमृगाजिन, कृष्णमृगाजिन, नीलमृगाजिन, पैश अथवा पैशलेश वस्त्र बनाता है अथवा बनाने वाले का अनुमोदन करता है।

विवग्घाणि वा आभरणाणि वा आभरणविचित्ताणि वा उद्दाणि वा गोरमिगाईणगाणि वा किण्हमिगाईणगाणि वा नीलमिगाईणगाणि वा पेसाणि वा पेसलेसाणि वा करेति, करेंतं वा सातिज्जति ।।

'उद्दाणि' वा गौरमृगाजिनकानि वा कृष्णमृगाजिनकानि वा नीलमृगाजिनकानि वा 'पेसाणि' वा 'पेसलेसाणि' वा करोति, कुर्वन्तं वा स्वदते ।

१३. जे भिक्खू कोउहल्लपडियाए आईणाणि वा सहिणाणि वा कल्लाणि वा सहिणकल्लाणाणि वा आयाणि वा कायाणि वा खोमाणि वा दुगुल्लाणि वा तिरीडपट्टाणि वा मलयाणि वा पत्तुण्णाणि वा अंसुयाणि वा चीणंसुयाणि वा देसरागाणि वा अमिलाणि वा गज्जलाणि वा फाडिगाणि वा कोतवाणि वा कंबलाणि वा पावारगाणि वा कणगाणि वा कणगकताणि वा कणगपट्टाणि वा कणगखचियाणि वा कणगफुल्लियाणि वा वग्घाणि वा विवग्घाणि वा आभरणाणि वा आभरणविचित्ताणि वा उद्दाणि वा गोरमिगाईणगाणि वा किण्हमिगाईणगाणि वा नीलमिगाईणगाणि वा पेसाणि वा पेसलेसाणि वा धरेति, धरेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः कुतूहलप्रतिज्ञया आजिनानि वा श्लक्ष्णानि वा कल्यानि वा श्लक्ष्णकल्याणानि वा आजानि वा कायानि वा क्षौमानि वा दुकूलानि वा तिरीटपट्टानि वा मलयानि वा 'पत्तुण्णाणि' वा अंशुकानि वा चीनांशुकानि वा 'देसरागाणि' वा अमिलानि वा गर्जलानि वा स्फटिकानि वा कौतवानि वा कम्बलानि वा प्रावारकाणि वा कनकानि वा कनककृतानि वा कनकपट्टानि वा कनकखचितानि वा कनक'फुल्लिताणि' वा वैयाघ्राणि वा विवैयाघ्राणि वा आभरणानि वा आभरणविचित्राणि वा 'उद्दाणि' वा गौरमृगाजिनकानि वा कृष्णमृगाजिनकानि वा नीलमृगाजिनकानि वा 'पेसाणि' वा 'पेसलेसाणि' वा धरति, धरन्तं वा स्वदते ।

१३. जो भिक्षु कुतूहल की प्रतिज्ञा से अजिन-वस्त्र, 'सहिण'-वस्त्र, कल्य-वस्त्र, 'सहिण'-कल्याण वस्त्र, आज-वस्त्र, काय-वस्त्र, क्षौम, दुकूल, तिरीटपट्ट, मालय, पत्रोर्ण, अंशुक, चीनांशुक, देशराग, अमिल, गर्जल, स्फटिक, कौतव, कम्बल, प्रावारक, कनक, कनककृत, कनकपट्ट, कनकखचित, कनकपुष्पित, व्याघ्रचर्मनिर्मित वस्त्र, विव्याघ्र के चर्म से निर्मित वस्त्र, आभरण वस्त्र, आभरण-विचित्र वस्त्र, उद्रवस्त्र, गौरमृगाजिन, कृष्णमृगाजिन, नीलमृगाजिन, पैश अथवा पैशलेश वस्त्र धारण करता है अथवा धारण करने वाले का अनुमोदन करता है ।

१४. जे भिक्खू कोउहल्लपडियाए आईणाणि वा सहिणाणि वा कल्लाणि वा सहिणकल्लाणाणि वा आयाणि वा कायाणि वा खोमाणि वा दुगुल्लाणि वा तिरीडपट्टाणि वा मलयाणि वा पत्तुण्णाणि वा अंसुयाणि वा चीणंसुयाणि वा देसरागाणि वा अमिलाणि वा गज्जलाणि वा फाडिगाणि वा कोतवाणि वा कंबलाणि वा पावारगाणि वा कणगाणि वा

यो भिक्षुः कुतूहलप्रतिज्ञया आजिनानि वा श्लक्ष्णानि वा कल्यानि वा श्लक्ष्णकल्याणानि वा आजानि वा कायानि वा क्षौमाणि वा दुकूलानि वा तिरीटपट्टानि वा मलयानि वा 'पत्तुण्णाणि' वा अंशुकानि वा चीनांशुकानि वा 'देसरागाणि' वा अमिलानि वा गर्जलानि वा स्फटिकानि वा कौतवानि वा कम्बलानि वा प्रावारकाणि वा कनकानि वा कनककृतानि वा कनकपट्टानि वा

१४. जो भिक्षु कुतूहल की प्रतिज्ञा से अजिन-वस्त्र, 'सहिण'-वस्त्र, कल्य-वस्त्र, 'सहिण'-कल्याण वस्त्र, आज-वस्त्र, काय-वस्त्र, क्षौम, दुकूल, तिरीटपट्ट, मालय, पत्रोर्ण, अंशुक, चीनांशुक, देशराग, अमिल, गर्जल, स्फटिक, कौतव, कम्बल, प्रावारक, कनक, कनककृत, कनकपट्ट, कनकखचित, कनकपुष्पित, व्याघ्रचर्मनिर्मित वस्त्र, विव्याघ्र के चर्म से निर्मित वस्त्र, आभरण वस्त्र, आभरण-विचित्र वस्त्र, उद्रवस्त्र, गौरमृगाजिन,

कणगकताणि वा कणगपट्टाणि वा कणगखचियाणि वा कणगफुल्लियाणि वा वग्घाणि वा विवग्घाणि वा आभरणाणि वा आभरणविचित्ताणि वा उद्दाणि वा गोरमिगाईणगाणि वा किण्हमिगाईणगाणि वा नीलमिगाईणगाणि वा पेसाणि वा पेसलेसाणि वा परिभुंजति, परिभुंजंतं वा सातिज्जति ।।

कनकखचितानि वा कनक'फुल्लितानि' वा वैयाघ्राणि वा विवैयाघ्राणि वा आभरणानि वा आभरणविचित्राणि वा 'उद्दाणि' वा गौरमृगाजिनकानि वा कृष्णमृगाजिनकानि वा नीलमृगाजिनकानि वा 'पेसाणि' वा 'पेसलेसाणि' वा परिभुङ्क्ते, परिभुञ्जानं वा स्वदते।

कृष्णमृगाजिन, नीलमृगाजिन, पैश अथवा पैशलेश वस्त्र का परिभोग करता है अथवा परिभोग करने वाले का अनुमोदन करता है।[१]

पाय-परिकम्म-पदं

पादपरिकर्म-पदम्

पादपरिकर्म-पद

१५. जा निग्गंथी निग्गंथस्स पाए अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा आमज्जावेज्ज वा पमज्जावेज्ज वा, आमज्जावेंतं वा पमज्जावेंतं वा सातिज्जति ।।

या निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थस्य पादौ अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा आमार्जयेद् वा प्रमार्जयेद्, आमार्जयन्तं वा प्रमार्जयन्तं वा स्वदते।

१५. जो निर्ग्रन्थी अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थ के पैरों का आमार्जन करवाती है अथवा प्रमार्जन करवाती है और आमार्जन अथवा प्रमार्जन करवाने वाली का अनुमोदन करती है।

१६. जा निग्गंथी निग्गंथस्स पाए अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा संवाहावेज्ज वा पलिमद्दावेज्ज वा, संवाहावेंतं वा पलिमद्दावेंतं वा सातिज्जति ।।

या निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थस्य पादौ अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा संवाहयेद् वा परिमर्दयेद् वा, संवाहयन्तं वा परिमर्दयन्तं वा स्वदते।

१६. जो निर्ग्रन्थी अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थ के पैरों का संबाधन करवाती है अथवा परिमर्दन करवाती है और संबाधन अथवा परिमर्दन करवाने वाली का अनुमोदन करती है।

१७. जा निग्गंथी निग्गंथस्स पाए अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा तेल्लेण वा घएण वा वसाए वा णवणीएण वा अब्भंगावेज्ज वा मक्खावेज्ज वा, अब्भंगावेंतं वा मक्खावेंतं वा सातिज्जति ।।

या निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थस्य पादौ अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा तैलेन वा घृतेन वा वसया वा नवनीतेन वा अभ्यञ्जयेद् वा म्रक्षयेद् वा, अभ्यञ्जयन्तं वा म्रक्षयन्तं वा स्वदते।

१७. जो निर्ग्रन्थी अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थ के पैरों का तैल, घृत, वसा अथवा मक्खन से अभ्यंगन करवाती है अथवा म्रक्षण करवाती है और अभ्यंगन अथवा म्रक्षण करवाने वाली का अनुमोदन करती है।

१८. जा निग्गंथी निग्गंथस्स पाए अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा लोद्धेण वा कक्केण वा चुण्णेण वा वण्णेण वा उल्लोलावेज्ज वा उव्वट्टावेज्ज वा, उल्लोलावेंतं वा उव्वट्टावेंतं वा सातिज्जति ।।

या निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थस्य पादौ अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा लोध्रेण वा कल्केन वा चूर्णेन वा वर्णेन वा उल्लोलयेद् वा उद्वर्तयेद् वा, उल्लोलयन्तं वा उद्वर्तयन्तं वा स्वदते।

१८. जो निर्ग्रन्थी अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थ के पैरों पर लोध, कल्क, चूर्ण अथवा वर्ण का लेप करवाती है अथवा उद्वर्तन करवाती है और लेप अथवा उद्वर्तन करवाने वाली का अनुमोदन करती है।

१९. जा निग्गंथी निग्गंथस्स पाए अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा

या निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थस्य पादौ अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा

१९. जो निर्ग्रन्थी अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थ के पैरों का प्रासुक शीतल जल

सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलावेज्ज वा पधोवावेज्ज वा, उच्छोलावेंतं वा पधोवावेंतं वा सातिज्जति ।।

शीतोदकविकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन वा उत्क्षालयेद् वा प्रधावयेद् वा, उत्क्षालयन्तं वा प्रधावयन्तं वा स्वदते ।

अथवा प्रासुक उष्ण जल से उत्क्षालन करवाती है अथवा प्रधावन करवाती है और उत्क्षालन अथवा प्रधावन करवाने वाली का अनुमोदन करती है ।

२०. **जा निग्गंथी निग्गंथस्स पाए अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा फुमावेज्ज वा रयावेज्ज वा, फुमावेंतं वा रयावेंतं वा सातिज्जति ।।**

या निर्ग्रन्थी निग्रन्थस्य पादौ अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा 'फुमावेज्ज' (फूत्कारयेद्) वा रञ्जयेद् वा, 'फुमावेंत' (फूत्कारयन्तं) वा रञ्जयन्तं वा स्वदते ।

२०. जो निर्ग्रन्थी अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थ के पैरों पर फूंक दिलवाती है अथवा रंग लगवाती है और फूंक दिलवाने अथवा रंग लगवाने वाली का अनुमोदन करती है ।

काय-परिकम्म-पदं

कायपरिकर्म-पदम्

कायपरिकर्म-पद

२१. **जा निग्गंथी निग्गंथस्स कायं अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा आमज्जावेज्ज वा पमज्जावेज्ज वा, आमज्जावेंतं वा पमज्जावेंतं वा सातिज्जति ।।**

या निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थस्य कायम् अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा आमार्जयेद् वा प्रमार्जयेद् वा, आमार्जयन्तं वा प्रमार्जयन्तं वा स्वदते ।

२१. जो निर्ग्रन्थी अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थ के शरीर का आमार्जन करवाती है अथवा प्रमार्जन करवाती है और आमार्जन अथवा प्रमार्जन करवाने वाली का अनुमोदन करती है ।

२२. **जा निग्गंथी निग्गंथस्स कायं अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा संवाहावेज्ज वा पलिमद्दावेज्ज वा, संवाहावेंतं वा पलिमद्दावेंतं वा सातिज्जति ।।**

या निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थस्य कायम् अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा संवाहयेद् वा परिमर्दयेद् वा, संवाहयन्तं वा परिमर्दयन्तं वा स्वदते ।

२२. जो निर्ग्रन्थी अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थ के शरीर का संबाधन करवाती है अथवा परिमर्दन करवाती है और संबाधन अथवा परिमर्दन करवाने वाली का अनुमोदन करती है ।

२३. **जा निग्गंथी निग्गंथस्स कायं अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा तेल्लेण वा घएण वा वसाए वा णवणीएण वा अब्भंगावेज्ज वा मक्खावेज्ज वा, अब्भंगावेंतं वा मक्खावेंतं वा सातिज्जति ।।**

या निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थस्य कायम् अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा तैलेन वा घृतेन वा वसया का नवनीतेन वा अभ्यञ्जयेद् वा म्रक्षयेद् वा, अभ्यञ्जयन्तं वा म्रक्षयन्तं वा स्वदते ।

२३. जो निर्ग्रन्थी अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थ के शरीर का तैल, घृत, वसा अथवा मक्खन से अभ्यंगन करवाती है अथवा म्रक्षण करवाती है और अभ्यंगन अथवा म्रक्षण करवाने वाली का अनुमोदन करती है ।

२४. **जा निग्गंथी निग्गंथस्स कायं अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा लोद्धेण वा कक्केण वा चुण्णेण वा वण्णेण वा उल्लोलावेज्ज वा उव्वट्टावेज्ज वा, उल्लोलावेंतं वा उव्वट्टावेंतं वा सातिज्जति ।।**

या निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थस्य कायम् अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा लोध्रेण वा कल्केन वा चूर्णेन वा वर्णेन वा उल्लोलयेद् वा उद्वर्तयेद् वा, उल्लोलयन्तं वा उद्वर्तयन्तं वा स्वदते ।

२४. जो निर्ग्रन्थी अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थ के शरीर पर लोध, कल्क, चूर्ण अथवा वर्ण का लेप करवाती है अथवा उद्वर्तन करवाती है और लेप अथवा उद्वर्तन करवाने वाली का अनुमोदन करती है ।

२५. जा निग्गंथी निग्गंथस्स कायं अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलावेज्ज वा पधोवावेज्ज वा, उच्छोलावेंतं वा पधोवावेंतं वा सातिज्जति।।

या निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थस्य कायम् अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा शीतोदकविकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन वा उत्क्षालयेद् वा प्रधावयेद् वा, उत्क्षालयन्तं वा प्रधावयन्तं वा स्वदते।

२५. जो निर्ग्रन्थी अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थ के शरीर का प्रासुक शीतल जल अथवा प्रासुक उष्ण जल से उत्क्षालन करवाती है अथवा प्रधावन करवाती है और उत्क्षालन अथवा प्रधावन करवाने वाली का अनुमोदन करती है।

२६. जा निग्गंथी निग्गंथस्स कायं अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा फुमावेज्ज वा रयावेज्ज वा, फुमावेंतं वा रयावेंतं वा सातिज्जति।।

या निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थस्य कायम् अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा 'फुमावेज्ज' (फूत्कारयेद्) वा रञ्जयेद् वा, 'फुमावेंतं' (फूत्कारयन्तं) वा रञ्जयन्तं वा स्वदते।

२६. जो निर्ग्रन्थी अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थ के शरीर पर फूंक दिलवाती है *अथवा रंग लगवाती* है और फूंक दिलवाने अथवा रंग लगवाने वाली का अनुमोदन करती है।

वण-परिकम्म-पदं

व्रणपरिकर्म-पदम्

व्रणपरिकर्म-पद

२७. जा निग्गंथी निग्गंथस्स कायंसि वणं अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा आमज्जावेज्ज वा पमज्जावेज्ज वा, आमज्जावेंतं वा पमज्जावेंतं वा सातिज्जति।।

या निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थस्य काये व्रणम् अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा आमार्जयेद् वा प्रमार्जयेद् वा, आमार्जयन्तं वा प्रमार्जयन्तं वा स्वदते।

२७. जो निर्ग्रन्थी अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थ के शरीर पर हुए व्रण का आमार्जन करवाती है अथवा प्रमार्जन करवाती है और आमार्जन अथवा प्रमार्जन करवाने वाली का अनुमोदन करती है।

२८. जा निग्गंथी निग्गंथस्स कायंसि वणं अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा संवाहावेज्ज वा पलिमद्दावेज्ज वा, संवाहावेंतं वा पलिमद्दावेंतं वा सातिज्जति।।

या निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थस्य काये व्रणम् अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा संवाहयेद् वा परिमर्दयेद् वा, संवाहयन्तं वा परिमर्दयन्तं वा स्वदते।

२८. जो निर्ग्रन्थी अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थ के शरीर पर हुए व्रण का संबाधन करवाती है अथवा परिमर्दन करवाती है और संबाधन अथवा परिमर्दन करवाने वाली का अनुमोदन करती है।

२९. जा निग्गंथी निग्गंथस्स कायंसि वणं अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा तेल्लेण वा घएण वा वसाए वा णवणीएण वा अब्भंगावेज्ज वा मक्खावेज्ज वा, अब्भंगावेंतं वा मक्खावेंतं वा सातिज्जति।।

या निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थस्य काये व्रणम् अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा तैलेन वा घृतेन वा वसया वा नवनीतेन वा अभ्यञ्जयेद् वा म्रक्षयेद् वा, अभ्यञ्जयन्तं वा म्रक्षयन्तं वा स्वदते।

२९. जो निर्ग्रन्थी अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थ के शरीर पर हुए व्रण का तैल, घृत, वसा अथवा मक्खन से अभ्यंगन करवाती है अथवा म्रक्षण करवाती है और अभ्यंगन अथवा म्रक्षण करवाने वाली का अनुमोदन करती है।

३०. जा निग्गंथी निग्गंथस्स कायंसि वणं अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा लोद्धेण वा कक्केण वा चुण्णेण वा वण्णेण वा उल्लोलावेज्ज वा उव्वट्टावेज्ज वा, उल्लोलावेंतं वा उव्वट्टावेंतं वा सातिज्जति।।

या निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थस्य काये व्रणम् अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा लोध्रेण वा कल्केन वा चूर्णेन वा वर्णेन वा उल्लोलयेद् वा उद्वर्तयेद् वा, उल्लोलयन्तं वा उद्वर्तयन्तं वा स्वदते।

३०. जो निर्ग्रन्थी अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थ के शरीर पर हुए व्रण पर लोध, कल्क, चूर्ण अथवा वर्ण का लेप करवाती है अथवा उद्वर्तन करवाती है और लेप अथवा उद्वर्तन करवाने वाली का अनुमोदन करती है।

३१. जा निग्गंथी निग्गंथस्स कायंसि वणं अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलावेज्ज वा पधोवावेज्ज वा, उच्छोलावेंतं वा पधोवावेंतं वा सातिज्जति।।

या निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थस्य काये व्रणम् अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा शीतोदकविकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन वा उत्क्षालयेद् वा प्रधावयेद् वा, उत्क्षालयन्तं वा प्रधावयन्तं वा स्वदते।

३१. जो निर्ग्रन्थी अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थ के शरीर पर हुए व्रण का प्रासुक शीतल जल अथवा प्रासुक उष्ण जल से उत्क्षालन करवाती है अथवा प्रधावन करवाती है और उत्क्षालन अथवा प्रधावन करवाने वाली का अनुमोदन करती है।

३२. जा निग्गंथी निग्गंथस्स कायंसि वणं अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा फुमावेज्ज वा रयावेज्ज वा, फुमावेंतं वा रयावेंतं वा सातिज्जति।।

या निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थस्य काये व्रणम् अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा 'फुमावेज्ज' (फूत्कारयेद्) वा रञ्जयेद् वा, 'फुमावेंतं' (फूत्कारयन्तं) वा रञ्जयन्तं वा स्वदते।

३२. जो निर्ग्रन्थी अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थ के शरीर पर हुए व्रण पर फूंक दिलवाती है अथवा रंग लगवाती है और फूंक दिलवाने अथवा रंग लगवाने वाला का अनुमोदन करती है।

गंडादि-परिकम्म-पदं

गंडादिपरिकर्म-पदम्

गंडादिपरिकर्म-पद

३३. जा निग्गंथी निग्गंथस्स कायंसि गंडं वा पिडयं वा अरइयं वा असियं वा भगंदलं वा अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा अण्णयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं अच्छिंदावेज्ज वा विच्छिंदावेज्ज वा, अच्छिंदावेंतं वा विच्छिंदावेंतं वा सातिज्जति।।

या निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थस्य काये गण्डं वा पिटकं वा अरतिकां वा अर्शो वा भगन्दरं वा अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा अन्यतरेण तीक्ष्णेन शस्त्रजातेन आच्छेदयेद् वा विच्छेदयेद् वा, आच्छेदयन्तं वा विच्छेदयन्तं वा स्वदते।

३३. जो निर्ग्रन्थी अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थ के शरीर में हुए गंडमाल, फोड़ा, फुंसी, अर्श अथवा भगन्दर का किसी तीक्ष्ण शस्त्रजात से आच्छेदन करवाती है अथवा विच्छेदन करवाती है और आच्छेदन अथवा विच्छेदन करवाने वाली का अनुमोदन करती है।

३४. जा निग्गंथी निग्गंथस्स कायंसि गंडं वा पिडयं वा अरइयं वा असियं वा भगंदलं वा अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा अण्णयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं अच्छिंदावेत्ता वा विच्छिंदावेत्ता वा पूयं वा सोणियं वा णीहरावेज्ज वा विसोहावेज्ज वा, णीहरावेंतं वा विसोहावेंतं वा सातिज्जति।।

या निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थस्य काये गण्डं वा पिटकं वा अरतिकां वा अर्शो वा भगन्दरं वा अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा अन्यतरेण तीक्ष्णेन शस्त्रजातेन आच्छेद्य वा विच्छेद्य वा पूयं वा शोणितं वा निस्सारयेद् वा विशोधयेद् वा, निस्सारयन्तं वा विशोधयन्तं वा स्वदते।

३४. जो निर्ग्रन्थी अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थ के शरीर में हुए गंडमाल, फोड़ा, फुंसी, अर्श अथवा भगन्दर का किसी तीक्ष्ण शस्त्रजात से आच्छेदन अथवा विच्छेदन करवाकर पीव अथवा रक्त को निकलवाती है अथवा साफ करवाती है और निकलवाने अथवा साफ करवाने वाली का अनुमोदन करती है।

३५. जा निग्गंथी निग्गंथस्स कायंसि गंडं वा पिडयं वा अरइयं वा असियं वा भगंदलं वा अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा अण्णयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं अच्छिंदावेत्ता वा विच्छिंदावेत्ता वा पूयं वा सोणियं वा

या निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थस्य काये गण्डं वा पिटकं वा अरतिकां वा अर्शो वा भगन्दरं वा अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा अन्यतरेण तीक्ष्णेन शस्त्रजातेन आच्छेद्य वा विच्छेद्य वा पूयं वा शोणितं वा निस्सार्य वा विशोध्य वा

३५. जो निर्ग्रन्थी अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थ के शरीर में हुए गंडमाल, फोड़ा, फुंसी, अर्श अथवा भगन्दर का किसी तीक्ष्ण शस्त्रजात से आच्छेदन अथवा विच्छेदन करवाकर, उसकी पीव अथवा रक्त को निकलवाकर अथवा साफ

णीहरावेत्ता वा विसोहावेत्ता वा सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलावेज्ज वा पधोवावेज्ज वा, उच्छोलावेंतं वा पधोवावेंतं सातिज्जति ।।

शीतोदकविकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन वा उत्क्षालयेद् वा प्रधावयेद् वा, उत्क्षालयन्तं वा प्रधावयन्तं वा स्वदते।

करवाकर, उसका प्रासुक शीतल जल अथवा प्रासुक उष्ण जल से उत्क्षालन करवाती है अथवा प्रधावन करवाती है और उत्क्षालन अथवा प्रधावन करवाने वाली का अनुमोदन करती है।

३६. जा निग्गंथी निग्गंथस्स कायंसि गंडं वा पिडयं वा अरइयं वा असियं वा भगंदलं वा अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा अण्णयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं अच्छिंदावेत्ता वा विच्छिंदावेत्ता वा पूयं वा सोणियं वा णीहरावेत्ता वा विसोहावेत्ता वा सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलावेत्ता वा पधोवावेत्ता वा अण्णयरेणं आलेवणजाएणं आलिंपावेज्ज वा विलिंपावेज्ज वा, आलिंपावेंतं वा विलिंपावेंतं वा सातिज्जति ।।

या निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थस्य काये गण्डं वा पिटकं वा अरतिकां वा अर्शो वा भगन्दरं वा अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा अन्यतरेण तीक्ष्णेन शस्त्रजातेन आच्छेद्य वा विच्छेद्य वा पूयं वा शोणितं वा निस्सार्य वा विशोध्य वा शीतोदक-विकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन वा उत्क्षाल्य वा प्रधाव्य वा अन्यतरेण आलेपनजातेन आलेपयेद् वा विलेपयेद् वा, आलेपयन्तं वा विलेपयन्तं वा स्वदते।

३६. जो निर्ग्रन्थी अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थ के शरीर में हुए गंडमाल, फोड़ा, फुंसी, अर्श अथवा भगन्दर का किसी तीक्ष्ण शस्त्रजात से आच्छेदन अथवा विच्छेदन करवाकर, उसकी पीव अथवा रक्त को निकलवाकर अथवा साफ करवाकर, उसका प्रासुक शीतल जल अथवा प्रासुक उष्ण जल से उत्क्षालन अथवा प्रधावन करवाकर, उस पर किसी आलेपनजात से आलेपन करवाती है अथवा विलेपन करवाती है और आलेपन अथवा विलेपन करवाने वाली का अनुमोदन करती है।

३७. जा निग्गंथी निग्गंथस्स कायंसि गंडं वा पिडयं वा अरइयं वा असियं वा भगंदलं वा अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा अण्णयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं अच्छिंदावेत्ता वा विच्छिंदावेत्ता वा पूयं वा सोणियं वा णीहरावेत्ता वा विसोहावेत्ता वा सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलावेत्ता वा पधोवावेत्ता वा अण्णयरेणं आलेवणजाएणं आलिंपावेत्ता वा विलिंपावेत्ता वा तेल्लेण वा घएण वा वसाए वा णवणीएण वा अब्भंगावेज्ज वा मक्खावेज्ज वा, अब्भंगावेंतं वा मक्खावेंतं वा सातिज्जति ।।

या निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थस्य काये गंडं वा पिटकं वा अरतिकां वा अर्शो वा भगन्दरं वा अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा अन्यतरेण तीक्ष्णेन शस्त्रजातेन आच्छेद्य वा विच्छेद्य वा पूयं वा शोणितं वा निस्सार्य वा विशोध्य वा शीतोदक-विकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन वा उत्क्षाल्य वा प्रधाव्य वा अन्यतरेण आलेपनजातेन आलेप्य वा विलेप्य वा तैलेन वा घृतेन वा वसया वा नवनीतेन वा अभ्यञ्जयेद् वा म्रक्षयेद् वा, अभ्यञ्जयन्तं वा म्रक्षयन्तं वा स्वदते।

३७. जो निर्ग्रन्थी अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थ के शरीर में हुए गंडमाल, फोड़ा, फुंसी, अर्श अथवा भगन्दर का किसी तीक्ष्ण शस्त्रजात से आच्छेदन अथवा विच्छेदन करवाकर, उसके पीव अथवा रक्त को निकलवाकर अथवा साफ करवाकर, उसका प्रासुक शीतल जल अथवा प्रासुक उष्ण जल से उत्क्षालन अथवा प्रधावन करवाकर, उस पर किसी आलेपनजात से आलेपन अथवा विलेपन करवाकर, उसका तैल, घृत, वसा अथवा मक्खन से अभ्यंगन करवाती है अथवा म्रक्षण करवाती है और अभ्यंगन अथवा म्रक्षण करवाने वाली का अनुमोदन करती है।

३८. जा निग्गंथी निग्गंथस्स कायंसि गंडं वा पिडयं वा अरइयं वा असियं वा

या निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थस्य काये गंडं वा पिटकं वा अरतिकां वा अर्शो वा भगन्दरं

३८. जो निर्ग्रन्थी अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थ के शरीर में हुए गंडमाल, फोड़ा,

भगंदलं वा अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा अण्णयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं अच्छिंदावेत्ता वा विच्छिंदावेत्ता वा पूयं वा सोणियं वा णीहरावेत्ता वा विसोहावेत्ता वा सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलावेत्ता वा पधोवावेत्ता वा अण्णयरेणं आलेवणजाएणं आलिंपावेत्ता वा विलिंपावेत्ता वा तेल्लेण वा घएण वा वसाए वा णवणीएण वा अब्भंगावेत्ता वा मक्खावेत्ता वा अण्णयरेणं धूवणजाएणं धूवावेज्ज वा पधूवावेज्ज वा, धूवावेंतं वा पधूवावेंतं वा सातिज्जति ।।

वा अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा अन्यतरेण तीक्ष्णेन शस्त्रजातेन आच्छेद्य वा विच्छेद्य वा पूयं वा शोणितं वा निस्सार्य वा विशोध्य वा शीतोदकविकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन वा उत्क्षाल्य वा प्रधाव्य वा अन्यतरेण आलेपनजातेन आलेप्य वा विलेप्य वा तैलेन वा घृतेन वा वसया वा नवनीतेन वा अभ्यज्य वा म्रक्षयित्वा वा अन्यतरेण धूपनजातेन धूपयेद् वा प्रधूपयेद् वा, धूपयन्तं वा प्रधूपयन्तं वा स्वदते।

फुंसी, अर्श अथवा भगन्दर का किसी तीक्ष्ण शस्त्रजात से आच्छेदन अथवा विच्छेदन करवाकर, उसके पीव अथवा रक्त को निकलवाकर अथवा साफ करवाकर, उसका प्रासुक शीतल जल अथवा प्रासुक उष्ण जल से उत्क्षालन अथवा प्रधावन करवाकर, उस पर किसी आलेपनजात से आलेपन अथवा विलेपन करवाकर, उसका तैल, घृत, वसा अथवा मक्खन से अभ्यंगन अथवा म्रक्षण करवाकर उसे किसी धूपजात से धूपित करवाती है अथवा प्रधूपित करवाती है और धूपित अथवा प्रधूपित करवाने वाली का अनुमोदन करती है।

किमि-पदं

३९. जा णिग्गंथी णिग्गंथस्स पालुकिमियं वा कुच्छिकिमियं अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा अंगुलीए णिवेसाविय-णिवेसाविय णीहरावेति, णीहरावेंतं वा सातिज्जति ।।

कृमि-पदम्

या निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थस्य पायुकृमिकं वा कुक्षिकृमिकं वा अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा अंगुल्या निवेश्य-निवेश्य निस्सारयति, निस्सारयन्तं वा स्वदते।

कृमि-पद

३९. जो निर्ग्रन्थी अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थ के अपान की कृमि अथवा कुक्षि की कृमि को अंगुली डाल-डाल कर निकलवाती है अथवा निकलवाने वाली का अनुमोदन करती है।

णह-सिहा-पदं

४०. जा णिग्गंथी णिग्गंथस्स दीहाओ णह-सिहाओ अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा कप्पावेज्ज वा संठवावेज्ज वा, कप्पावेंतं वा संठवावेंतं वा सातिज्जति ।।

नखशिखा-पदम्

या निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थस्य दीर्घाः नखशिखाः अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा कल्पयेद् वा संस्थापयेद् वा, कल्पयन्तं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते।

नखशिखा-पद

४०. जो निर्ग्रन्थी अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थ की दीर्घ नखशिखा को कटवाती है अथवा व्यवस्थित करवाती है और कटवाने अथवा व्यवस्थित करवाने वाली का अनुमोदन करती है।

दीह-रोम-पदं

४१. जा णिग्गंथी णिग्गंथस्स दीहाइं जंघ-रोमाइं अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा कप्पावेज्ज वा संठवावेज्ज वा, कप्पावेंतं वा संठवावेंतं वा सातिज्जति ।।

दीर्घरोम-पदम्

या निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थस्य दीर्घाणि जंघारोमाणि अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा कल्पयेद् वा संस्थापयेद् वा, कल्पयन्तं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते।

दीर्घरोम-पद

४१. जो निर्ग्रन्थी अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थ की जंघाप्रदेश की दीर्घ रोमराजि को कटवाती है अथवा व्यवस्थित करवाती है और कटवाने अथवा व्यवस्थित करवाने वाली का अनुमोदन करती है।

४२. जा णिग्गंथी णिग्गंथस्स दीहाइं

या निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थस्य दीर्घाणि

४२. जो निर्ग्रन्थी अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ

वत्थि-रोमाइं अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा कप्पावेज्ज वा संठवावेज्ज वा, कप्पावेंतं वा संठवावेंतं वा सातिज्जति ।।

वस्तिरोमाणि अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा कल्पयेद् वा संस्थापयेद् वा, कल्पयन्तं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते।

से निर्ग्रन्थ की वस्तिप्रदेश की दीर्घ रोमराजि को कटवाती है अथवा व्यवस्थित करवाती है और कटवाने अथवा व्यवस्थित करवाने वाली का अनुमोदन करती है।

४३.जा निग्गंथी निग्गंथस्स दीह-रोमाइं अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा कप्पावेज्ज वा संठवावेज्ज वा, कप्पावेंतं वा संठवावेंतं वा सातिज्जति ।।

या निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थस्य दीर्घरोमाणि अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा कल्पयेद् वा संस्थापयेद् वा, कल्पयन्तं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते।

४३. जो निर्ग्रन्थी अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थ की दीर्घ रोमराजि को कटवाती है अथवा व्यवस्थित करवाती है और कटवाने अथवा व्यवस्थित करवाने वाली का अनुमोदन करती है।

४४.जा निग्गंथी निग्गंथस्स दीहाइं कक्खाण-रोमाइं अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा कप्पावेज्ज वा संठवावेज्ज वा, कप्पावेंतं वा संठवावेंतं वा सातिज्जति ।।

या निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थस्य दीर्घाणि कक्षारोमाणि अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा कल्पयेद् वा संस्थापयेद् वा, कल्पयन्तं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते।

४४. जो निर्ग्रन्थी अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थ की कक्षाप्रदेश की दीर्घ रोमराजि को कटवाती है अथवा व्यवस्थित करवाती है और कटवाने अथवा व्यवस्थित करवाने वाली का अनुमोदन करती है।

४५. जा निग्गंथी निग्गंथस्स दीहाइं मंसु-रोमाइं अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा कप्पावेज्ज वा संठवावेज्ज वा, कप्पावेंतं वा संठवावेंतं वा सातिज्जति ।।

या निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थस्य दीर्घाणि श्मश्रुरोमाणि अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा कल्पयेद् वा संस्थापयेद् वा, कल्पयन्तं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते।

४५. जो निर्ग्रन्थी अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थ की श्मश्रु की दीर्घ रोमराजि को कटवाती है अथवा व्यवस्थित करवाती है और कटवाने अथवा व्यवस्थित करवाने वाली का अनुमोदन करती है।

दंत-पदं

दंत-पदम्

दंत-पद

४६. जा निग्गंथी निग्गंथस्स दंते अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा आघंसावेज्ज वा पघंसावेज्ज वा, आघंसावेंतं वा पघंसावेंतं वा सातिज्जति ।।

या निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थस्य दन्तान् अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा आघर्षयेद् वा प्रघर्षयेद् वा, आघर्षयन्तं वा प्रघर्षयन्तं वा स्वदते।

४६. जो निर्ग्रन्थी अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थ के दांतों का आघर्षण करवाती है अथवा प्रघर्षण करवाती है और आघर्षण अथवा प्रघर्षण करवाने वाली का अनुमोदन करती है।

४७. जा निग्गंथी निग्गंथस्स दंते अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा उच्छोलावेज्ज वा पधोवावेज्ज वा, उच्छोलावेंतं वा पधोवावेंतं वा सातिज्जति ।।

या निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थस्य दन्तान् अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा उत्क्षालयेद् वा प्रधावयेद् वा, उत्क्षालयन्तं वा प्रधावयन्तं वा स्वदते।

४७. जो निर्ग्रन्थी अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थ के दांतों का उत्क्षालन करवाती है अथवा प्रधावन करवाती है और उत्क्षालन अथवा प्रधावन करवाने वाली का अनुमोदन करती है।

४८. जा निग्गंथी निग्गंथस्स दंते अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा फुमावेज्ज वा रयावेज्ज वा, फुमावेंतं

या निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थस्य दन्तान् अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा 'फुमावेज्ज' (फूत्कारयेद्) वा रञ्जयेद्

४८. जो निर्ग्रन्थी अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थ के दांतों पर फूंक दिलवाती है अथवा रंग लगवाती है और फूंक दिलवाने

वा रयावेंतं वा सातिज्जति।।

वा, 'फुमावेंतं' (फूत्कारयन्तं) वा रञ्जयन्तं वा स्वदते।

अथवा रंग लगवाने वाली का अनुमोदन करती है।

उट्ठ-पदं

४९. जा णिग्गंथी णिग्गंथस्स उट्ठे अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा आमज्जावेज्ज वा पमज्जावेज्ज वा, आमज्जावेंतं वा पमज्जावेंतं वा सातिज्जति।।

५०. जा णिग्गंथी णिग्गंथस्स उट्ठे अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा संवाहावेज्ज वा पलिमद्दावेज्ज वा, संवाहावेंतं वा पलिमद्दावेंतं वा सातिज्जति।।

५१. जा णिग्गंथी णिग्गंथस्स उट्ठे अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा तेल्लेण वा घएण वा वसाए वा णवणीएण वा अब्भंगावेज्ज वा मक्खावेज्ज वा, अब्भंगावेंतं वा मक्खावेंतं वा सातिज्जति।।

५२. जा णिग्गंथी णिग्गंथस्स उट्ठे अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा लोद्धेण वा कक्केण वा चुण्णेण वा वण्णेण वा उल्लोलावेज्ज वा उव्वट्टावेज्ज वा, उल्लोलावेंतं वा उव्वट्टावेंतं वा सातिज्जति।।

५३. जा णिग्गंथी णिग्गंथस्स उट्ठे अण्णाउत्थिएण वा गारत्थिएण वा सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलावेज्ज वा पधोवावेज्ज वा, उच्छोलावेंतं वा पधोवावेंतं वा सातिज्जति।।

५४. जा णिग्गंथी णिग्गंथस्स उट्ठे अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा

ओष्ठ-पदम्

या निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थस्य ओष्ठौ अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा आमार्जयेद् वा प्रमार्जयेद् वा, आमार्जयन्तं वा प्रमार्जयन्तं वा स्वदते।

या निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थस्य ओष्ठौ अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा संवाहयेद् वा परिमर्दयेद् वा, संवाहयन्तं वा परिमर्दयन्तं वा स्वदते।

या निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थस्य ओष्ठौ अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा तैलेन वा घृतेन वा वसया वा नवनीतेन वा अभ्यञ्जयेद् वा म्रक्षयेद् वा, अभ्यञ्जयन्तं वा म्रक्षयन्तं वा स्वदते।

या निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थस्य ओष्ठौ अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा लोध्रेण वा कल्केन वा चूर्णेन वा वर्णेन वा उल्लोलयेद् वा उद्वर्तयेद् वा, उल्लोलयन्तं वा उद्वतर्यन्तं वा स्वदते।

या निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थस्य ओष्ठौ अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा शीतोदकविकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन वा उत्क्षालयेद् वा प्रधावयेद् वा, उत्क्षालयन्तं वा प्रधावयन्तं वा स्वदते।

या निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थस्य ओष्ठौ अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा

ओष्ठ-पद

४९. जो निर्ग्रन्थी अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थ के ओष्ठ का आमार्जन करवाती है अथवा प्रमार्जन करवाती है और आमार्जन अथवा प्रमार्जन करवाने वाली का अनुमोदन करती है।

५०. जो निर्ग्रन्थी अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थ के ओष्ठ का संबाधन करवाती है अथवा परिमर्दन करवाती है और संबाधन अथवा परिमर्दन करवाने वाली का अनुमोदन करती है।

५१. जो निर्ग्रन्थी अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थ के ओष्ठ का तैल, घृत, वसा अथवा मक्खन से अभ्यंगन करवाती है अथवा म्रक्षण करवाती है और अभ्यंगन अथवा म्रक्षण करवाने वाली का अनुमोदन करती है।

५२. जो निर्ग्रन्थी अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थ के ओष्ठ पर लोध, कल्क, चूर्ण अथवा वर्ण का लेप करवाती है अथवा उद्वर्तन करवाती है और लेप अथवा उद्वर्तन करवाने वाली का अनुमोदन करती है।

५३. जो निर्ग्रन्थी अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थ के ओष्ठ का प्रासुक शीतल जल अथवा प्रासुक उष्ण जल से उत्क्षालन करवाती है अथवा प्रधावन करवाती है और उत्क्षालन अथवा प्रधावन करवाने वाली का अनुमोदन करती है।

५४. जो निर्ग्रन्थी अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थ के ओष्ठ पर फूंक दिलवाती है

फुमावेज्ज वा रयावेज्ज वा, फुमावेंतं वा रयावेंतं वा सातिज्जति ।।

'फुमावेज्ज' (फूत्कारयेद्) वा रञ्जयेद् वा, 'फुमावेंतं' (फूत्कारयन्तं) वा रञ्जयन्तं वा स्वदते।

अथवा रंग लगवाती है और फूंक दिलवाने अथवा रंग लगवाने वाली का अनुमोदन करती है।

दीह-रोम-पदं

दीर्घरोम-पदम्

दीर्घरोम-पद

५५. जा निग्गंथी निग्गंथस्स दीहाइं उत्तरोट्ठ-रोमाइं अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा कप्पावेज्ज वा संठवावेज्ज वा, कप्पावेंतं वा संठवावेंतं वा सातिज्जति ।।

या निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थस्य दीर्घाणि उत्तरौष्ठरोमाणि अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा कल्पयेद् वा संस्थापयेद् वा, कल्पयन्तं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते।

५५. जो निर्ग्रन्थी अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थ के उत्तरोष्ठ की दीर्घ रोमराजि को कटवाती है अथवा व्यवस्थित करवाती है और कटवाने अथवा व्यवस्थित करवाने वाली का अनुमोदन करती है।

५६. जा निग्गंथी निग्गंथस्स दीहाइं अच्छि-पत्ताइं अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा कप्पावेज्ज वा संठवावेज्ज वा, कप्पावेंतं वा संठवावेंतं वा सातिज्जति ।।

या निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थस्य दीर्घाणि नासारोमाणि अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा कल्पयेद् वा संस्थापयेद् वा, कल्पयन्तं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते।

५६. जो निर्ग्रन्थी अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थ की नाक की दीर्घ रोमराजि को कटवाती है अथवा व्यवस्थित करवाती है और कटवाने अथवा व्यवस्थित करवाने वाली का अनुमोदन करती है।

अच्छि-पत्त-पदं

अक्षिपत्र-पदम्

अक्षिपत्र-पद

५७. जा निग्गंथी निग्गंथस्स दीहाइं अच्छि-पत्ताइं अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा कप्पावेज्ज वा संठवावेज्ज वा, कप्पावेंतं वा संठवावेंतं वा सातिज्जति ।।

या निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थस्य दीर्घाणि अक्षिपत्राणि अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा कल्पयेद् वा संस्थापयेद् वा, कल्पयन्तं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते।

५७. जो निर्ग्रन्थी अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थ के दीर्घ अक्षिपत्रों को कटवाती है अथवा व्यवस्थित करवाती है और कटवाने अथवा व्यवस्थित करवाने वाली का अनुमोदन करती है।

अच्छि-पदं

अक्षि-पदम्

अक्षि-पद

५८. जा निग्गंथी निग्गंथस्स अच्छीणि अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा आमज्जावेज्ज वा पमज्जावेज्ज वा, आमज्जावेंतं वा पमज्जावेंतं वा सातिज्जति ।।

या निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थस्य अक्षिणी अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा आमार्जयेद् वा प्रमार्जयेद् वा, आमार्जयन्तं वा प्रमार्जयन्तं वा स्वदते।

५८. जो निर्ग्रन्थी अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थ की आंखों का आमार्जन करवाती है अथवा प्रमार्जन करवाती है और आमार्जन अथवा प्रमार्जन करवाने वाली का अनुमोदन करती है।

५९. जा निग्गंथी निग्गंथस्स अच्छीणि अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा संवाहावेज्ज वा पलिमद्दावेज्ज वा, संवाहावेंतं वा पलिमद्दावेंतं वा सातिज्जति ।।

या निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थस्य अक्षिणी अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा संवाहयेद् वा परिमर्दयेद् वा, संवाहयन्तं वा परिमर्दयन्तं वा स्वदते।

५९. जो निर्ग्रन्थी अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थ की आंखों का संबाधन करवाती है अथवा परिमर्दन करवाती है और संबाधन अथवा परिमर्दन करने वाली का अनुमोदन करती है।

६०. जा निग्गंथी निग्गंथस्स अच्छीणि

या निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थस्य अक्षिणी

६०. जो निर्ग्रन्था अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ

अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा तेल्लेण वा घएण वा वसाए वा णवणीएण वा अब्भंगावेज्ज वा मक्खावेज्ज वा, अब्भंगावेंतं वा मक्खावेंतं वा सातिज्जति ।।

अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा तैलेन वा घृतेन वा वसया वा नवनीतेन वा अभ्यञ्जयेद् वा म्रक्षयेद् वा, अभ्यञ्जयन्तं वा म्रक्षयन्तं वा स्वदते।

से निर्ग्रन्थ की आंखों का तैल, धृत, वसा अथवा मक्खन से अभ्यंगन करवाती है अथवा म्रक्षण करवाती है और अभ्यंगन अथवा म्रक्षण करवाने वाली का अनुमोदन करती है।

६१. जा णिग्गंथी णिग्गंथस्स अच्छीणि अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा लोद्धेण वा कक्केण वा चुण्णेण वा वण्णेण वा उल्लोलावेज्ज वा उव्वट्टावेज्ज वा, उल्लोलावेंतं वा उव्वट्टावेंतं वा सातिज्जति ।।

या निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थस्य अक्षिणी अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा लोध्रेण वा कल्केन वा चूर्णेन वा वर्णेन वा उल्लोलयेद् वा उद्वर्तयेद् वा, उल्लोलयन्तं वा उद्वर्तयन्तं वा स्वदते।

६१. जो निर्ग्रन्थी अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थ की आंखों पर लोध, कल्क, चूर्ण अथवा वर्ण का लेप करवाती है अथवा उद्वर्तन करवाती है और लेप अथवा उद्वर्तन करवाने वाली का अनुमोदन करती है।

६२. जा णिग्गंथी णिग्गंथस्स अच्छीणि अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलावेज्ज वा पधोवावेज्ज वा, उच्छोलावेंतं वा पधोवावेंतं वा सातिज्जति ।।

या निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थस्य अक्षिणी अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा शीतोदकविकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन वा उत्क्षालयेद् वा प्रधावयेद् वा, उत्क्षालयन्तं वा प्रधावयन्तं वा स्वदते।

६२. जो निर्ग्रन्थी अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थ की आंखों का प्रासुक शीतल जल अथवा प्रासुक उष्ण जल से उत्क्षालन करवाती है अथवा प्रधावन करवाती है और उत्क्षालन अथवा प्रधावन करवाने वाली का अनुमोदन करती है।

६३. जा णिग्गंथी णिग्गंथस्स अच्छीणि अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा फुमावेज्ज वा रयावेज्ज वा, फुमावेंतं वा रयावेंतं वा सातिज्जति ।।

या निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थस्य अक्षिणी अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा 'फुमावेज्ज' (फूत्कारयेद्) वा रञ्जयेद् वा, 'फुमावेंतं' (फूत्कारयन्तं) वा रञ्जयन्तं वा स्वदते।

६३. जो निर्ग्रन्थी अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थ की आंखों पर फूंक दिलवाती है अथवा रंग लगवाती है और फूंक दिलवाने अथवा रंग लगवाने वाली का अनुमोदन करती है।

दीह-रोम-पदं

दीर्घरोम-पदम्

दीर्घरोम-पद

६४. जा णिग्गंथी णिग्गंथस्स दीहाइं भमुग-रोमाइं अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा कप्पावेज्ज वा संठवावेज्ज वा, कप्पावेंतं वा संठवावेंतं वा सातिज्जति ।।

या निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थस्य दीर्घाणि भ्रूरोमाणि अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा कल्पयेद् वा संस्थापयेद् वा, कल्पयन्तं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते।

६४. जो निर्ग्रन्थी अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थ की भौहों की दीर्घ रोमराजि को कटवाती है अथवा व्यवस्थित करवाती है और कटवाने अथवा व्यवस्थित करवाने वाली का अनुमोदन करती है।

६५. जा णिग्गंथी णिग्गंथस्स दीहाइं पास-रोमाइं अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा कप्पावेज्ज वा संठवावेज्ज वा, कप्पावेंतं वा संठवावेंतं वा सातिज्जति ।।

या निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थस्य दीर्घाणि 'पास'रोमाणि अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा कल्पयेद् वा संस्थापयेद् वा, कल्पयन्तं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते।

६५. जो निर्ग्रन्थी अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थ के पार्श्वभाग की दीर्घ रोमराजि को कटवाती है अथवा व्यवस्थित करवाती है और कटवाने अथवा व्यवस्थित करवाने वाली का अनुमोदन करती है।

मल-णीहरण-पदं

६६. जा निग्गंथी निग्गंथस्स कायाओ सेयं वा जल्लं वा पंकं वा मलं वा अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा णीहरावेज्ज वा विसोहावेज्ज वा, णीहरावेंतं वा विसोहावेंतं वा सातिज्जति।।

मल-निस्सरण-पदम्

या निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थस्य कायात् स्वेदं वा जल्लं वा पंकं वा मलं वा अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा निस्सारयेद् वा विशोधयेद् वा, निस्सारयन्तं वा विशोधयन्तं वा स्वदते।

मलनिर्हरण-पद

६६. जो निर्ग्रन्थी अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थ के शरीर के स्वेद, जल्ल, पंक अथवा मल का निर्हरण करवाती है अथवा विशोधन करवाती है और निर्हरण अथवा विशोधन करवाने वाली का अनुमोदन करती है।

६७. जा निग्गंथी निग्गंथस्स अच्छिमलं वा कण्णमलं वा दंतमलं वा णहमलं वा अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा णीहरावेज्ज वा विसोहावेज्ज वा, णीहरावेंतं वा विसोहावेंतं वा सातिज्जति।।

या निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थस्य अक्षिमलं वा कर्णमलं वा दंतमलं वा नखमलं वा अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा निस्सारयेद् वा विशोधयेद् वा, निस्सारयन्तं वा विशोधयन्तं वा स्वदते।

६७. जो निर्ग्रन्थी अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थ की आंख के मैल, कान के मैल, दांत के मैल अथवा नख के मैल का निर्हरण करवाती है अथवा विशोधन करवाती है और निर्हरण अथवा विशोधन करवाने वाली का अनुमोदन करती है।

सीसदुवारिय-पदं

६८. जा निग्गंथी निग्गंथस्स गामाणुगामं दूइज्जमाणस्स अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा सीसदुवारियं कारवेति, कारवेंतं वा सातिज्जति।।

शीर्षद्वारिका-पदम्

या निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थस्य ग्रामानुग्रामं दूयमानस्य अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा शीर्षद्वारिकां कारयति, कारयन्तं वा स्वदते।

शीर्षद्वारिका-पद

६८. जो निर्ग्रन्थी अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से ग्रामानुग्राम परिव्रजन करते हुए निर्ग्रन्थ का सिर ढंकवाती है अथवा ढंकवाने वाली का अनुमोदन करती है।

पाय-परिकम्म-पदं

६९. जे निग्गंथे निग्गंथीए पाए अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा आमज्जावेज्ज वा पमज्जावेज्ज वा, आमज्जावेंतं वा पमज्जावेंतं वा सातिज्जति।।

पादपरिकर्म-पदम्

यो निर्ग्रन्थः निर्ग्रन्थ्याः पादौ अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा आमार्जयेद् वा प्रमार्जयेद् वा, आमार्जयन्तं वा प्रमार्जयन्तं वा स्वदते।

पादपरिकर्म-पद

६९. जो निर्ग्रन्थ अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थी के पैरों का आमार्जन करवाता है अथवा प्रमार्जन करवाता है और आमार्जन अथवा प्रमार्जन करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

७०. जे निग्गंथे निग्गंथीए पाए अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा संवाहावेज्ज वा पलिमद्दावेज्ज वा, संवाहावेंतं वा पलिमद्दावेंतं वा सातिज्जति।।

यो निर्ग्रन्थः निर्ग्रन्थ्याः पादौ अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा संवाहयेद् वा परिमर्दयेद् वा, संवाहयन्तं वा परिमर्दयन्तं वा स्वदते।

७०. जो निर्ग्रन्थ अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थी के पैरों का संबाधन करवाता है अथवा परिमर्दन करवाता है और संबाधन अथवा परिमर्दन करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

७१. जे निग्गंथे निग्गंथीए पाए अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा तेल्लेण वा घएण वा वसाए वा णवणीएण वा अब्भंगावेज्ज वा

यो निर्ग्रन्थः निर्ग्रन्थ्याः पादौ अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा तैलेन वा घृतेन वा वसया वा नवनीतेन वा अभ्यञ्जयेद् वा म्रक्षयेद् वा,

७१. जो निर्ग्रन्थ अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थी के पैरों का तैल, घृत, वसा अथवा मक्खन से अभ्यंगन करवाता है अथवा म्रक्षण करवाता है और अभ्यंगन

मक्खावेज्ज वा, अब्भंगावेंतं वा मक्खावेंतं वा सातिज्जति ।।

अभ्यञ्जयन्तं वा म्रक्षयन्तं वा स्वदते ।

अथवा म्रक्षण करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

७२. जे निग्गंथे निग्गंथीए पाए अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा लोद्धेण वा कक्केण वा चुण्णेण वा वण्णेण वा उल्लोलावेज्ज वा उव्वट्टावेज्ज वा, उल्लोलावेंतं वा उव्वट्टावेंतं वा सातिज्जति ।।

यो निर्ग्रन्थः निर्ग्रन्थ्याः पादौ अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा लोध्रेण वा कल्केन वा वर्णेन वा चूर्णेन वा उल्लोलयेद् वा उद्वर्तयेद् वा, उल्लोलयन्तं वा उद्वर्तयन्तं वा स्वदते।

७२. जो निर्ग्रन्थ अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थी के पैरों पर लोध, कल्क, चूर्ण अथवा वर्ण का लेप करवाता है अथवा उद्वर्तन करवाता है और लेप अथवा उद्वर्तन करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

७३. जे निग्गंथे निग्गंथीए पाए अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलावेज्ज वा पधोवावेज्ज वा, उच्छोलावेंतं वा पधोवावेंतं वा सातिज्जति ।।

यो निर्ग्रन्थः निर्ग्रन्थ्याः पादौ अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा शीतोदकविकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन वा उत्क्षालयेद् वा प्रधावयेद् वा, उत्क्षालयन्तं वा प्रधावयन्तं वा स्वदते।

७३. जो निर्ग्रन्थ अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थी के पैरों का प्रासुक शीतल जल अथवा प्रासुक उष्ण जल से उत्क्षालन करवाता है अथवा प्रधावन करवाता है और उत्क्षालन अथवा प्रधावन करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

७४. जे निग्गंथे निग्गंथीए पाए अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा फुमावेज्ज वा रयावेज्ज वा, फुमावेंतं वा रयावेंतं वा सातिज्जति ।।

यो निर्ग्रन्थः निर्ग्रन्थ्याः पादौ अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा 'फुमावेज्ज' (फूत्कारयेद्) वा रञ्जयेद् वा, 'फुमावेंतं' (फूत्कारयन्तं) वा रञ्जयन्तं वा स्वदते।

७४. जो निर्ग्रन्थ अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थी के पैरों पर फूंक दिलवाता है अथवा रंग लगवाता है और फूंक दिलवाने अथवा रंग लगवाने वाले का अनुमोदन करता है।

काय-परिकम्म-पदं

कायपरिकर्म-पदम्

कायपरिकर्म-पद

७५. जे निग्गंथे निग्गंथीए कायं अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा आमज्जावेज्ज वा पमज्जावेज्ज वा, आमज्जावेंतं वा पमज्जावेंतं वा सातिज्जति ।।

यो निर्ग्रन्थः निर्ग्रन्थ्याः कायम् अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा आमार्जयेद् वा प्रमार्जयेद् वा, आमार्जयन्तं वा प्रमार्जयन्तं वा स्वदते।

७५. जो निर्ग्रन्थ अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थी के शरीर का आमार्जन करवाता है अथवा प्रमार्जन करवाता है और आमार्जन अथवा प्रमार्जन करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

७६. जे निग्गंथे निग्गंथीए कायं अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा संवाहावेज्ज वा पलिमद्दावेज्ज वा, संवाहावेंतं वा पलिमद्दावेंतं वा सातिज्जति ।।

यो निर्ग्रन्थः निर्ग्रन्थ्याः कायम् अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा संवाहयेद् वा परिमर्दयेद् वा, संवाहयन्तं वा परिमर्दयन्तं वा स्वदते।

७६. जो निर्ग्रन्थ अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थी के शरीर का संबाधन करवाता है अथवा परिमर्दन करवाता है और संबाधन अथवा परिमर्दन करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

७७. जे निग्गंथे निग्गंथीए कायं अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा तेल्लेण वा घएण वा वसाए वा

यो निर्ग्रन्थः निर्ग्रन्थ्याः कायम् अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा तैलेन वा घृतेन वा वसया वा नवनीतेन वा

७७. जो निर्ग्रन्थ अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थी के शरीर का तैल, घृत, वसा अथवा मक्खन से अभ्यंगन करवाता है

णवणीएण वा अब्भंगावेज्ज वा मक्खावेज्ज वा, अब्भंगावेंतं वा मक्खावेंतं वा सातिज्जति ।।

अभ्यञ्जयेद् वा म्रक्षयेद् वा, अभ्यञ्जयन्तं वा म्रक्षयन्तं वा स्वदते ।

अथवा म्रक्षण करवाता है और अभ्यंगन अथवा म्रक्षण करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

७८. जे निग्गंथे निग्गंथीए कायं अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा लोद्धेण वा कक्केण वा चुण्णेण वा वण्णेण वा उल्लोलावेज्ज वा उव्वट्टावेज्ज वा, उल्लोलावेंतं वा उव्वट्टावेंतं वा सातिज्जति ।।

यो निर्ग्रन्थः निर्ग्रन्थ्याः कायम् अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा लोध्रेण वा कल्केन वा चूर्णेन वा वर्णेन वा उल्लोलयेद् वा उद्वर्तयेद् वा, उल्लोलयन्तं वा उद्वर्तयन्तं वा स्वदते ।

७८. जो निर्ग्रन्थ अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थी के शरीर पर लोध, कल्क, चूर्ण अथवा वर्ण का लेप करवाता है अथवा उद्वर्तन करवाता है और लेप अथवा उद्वर्तन करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

७९. जे निग्गंथे निग्गंथीए कायं अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलावेज्ज वा पधोवावेज्ज वा, उच्छोलावेंतं वा पधोवावेंतं वा सातिज्जति ।।

यो निर्ग्रन्थः निर्ग्रन्थ्याः कायम् अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा शीतोदकविकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन वा उत्क्षालयेद् वा प्रधावयेद् वा, उत्क्षालयन्तं वा प्रधावयन्तं वा स्वदते ।

७९. जो निर्ग्रन्थ अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थी के शरीर का प्रासुक शीतल जल अथवा प्रासुक उष्ण जल से उत्क्षालन करवाता है अथवा प्रधावन करवाता है और उत्क्षालन अथवा प्रधावन करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

८०. जे निग्गंथे निग्गंथीए कायं अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा फुमावेज्ज वा रयावेज्ज वा, फुमावेंतं वा रयावेंतं वा सातिज्जति ।।

यो निर्ग्रन्थः निर्ग्रन्थ्याः कायम् अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा 'फुमावेज्ज' (फूत्कारयेद्) वा रञ्जयेद् वा, 'फुमावेंतं' (फूत्कारयन्तं) वा रञ्जयन्तं वा स्वदते ।

८०. जो निर्ग्रन्थ अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थी के शरीर पर फूंक दिलवाता है अथवा रंग लगवाता है और फूंक दिलवाने अथवा रंग लगवाने वाले का अनुमोदन करता है।

वण-परिकम्म-पदं

व्रणपरिकर्म-पदम्

व्रणपरिकर्म-पद

८१. जे निग्गंथे निग्गंथीए कायंसि वणं अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा आमज्जावेज्ज वा पमज्जावेज्ज वा, आमज्जावेंतं वा पमज्जावेंतं वा सातिज्जति ।।

यो निर्ग्रन्थः निर्ग्रन्थ्याः काये व्रणम् अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा आमार्जयेद् वा प्रमार्जयेद् वा, आमार्जयन्तं वा प्रमार्जयन्तं वा स्वदते ।

८१. जो निर्ग्रन्थ अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थी के शरीर पर हुए व्रण का आमार्जन करवाता है अथवा प्रमार्जन करवाता है और आमार्जन अथवा प्रमार्जन करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

८२. जे निग्गंथे निग्गंथीए कायंसि वणं अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा संवाहावेज्ज वा पलिमद्दावेज्ज वा, संवाहावेंतं वा पलिमद्दावेंतं वा सातिज्जति ।।

यो निर्ग्रन्थः निर्ग्रन्थ्याः काये व्रणम् अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा संवाहयेद् वा परिमर्दयेद् वा, संवाहयन्तं वा परिमर्दयन्तं वा स्वदते ।

८२. जो निर्ग्रन्थ अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थी के शरीर पर हुए व्रण का संबाधन करवाता है अथवा परिमर्दन करवाता है और संबाधन अथवा परिमर्दन करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

८३. जे निग्गंथे निग्गंथीए कायंसि वणं अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा

यो निर्ग्रन्थः निर्ग्रन्थ्याः काये व्रणम् अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा तैलेन

८३. जो निर्ग्रन्थ अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थी के शरीर पर हुए व्रण का घृत,

तेल्लेण वा घएण वा वसाए वा णवणीएण वा अब्भंगावेज्ज वा मक्खावेज्ज वा, अब्भंगावेंतं वा मक्खावेंतं वा सातिज्जति ।।

वा घृतेन वा वसया वा नवनीतेन वा अभ्यञ्जयेद् वा म्रक्षयेद् वा, अभ्यञ्जयन्तं वा म्रक्षयन्तं वा स्वदते ।

तैल, वसा अथवा मक्खन से अभ्यंगन करवाता है अथवा म्रक्षण करवाता है और अभ्यंगन अथवा म्रक्षण करवाने वाले का अनुमोदन करता है ।

८४. जे निग्गंथे निग्गंथीए कायंसि वणं अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा लोद्धेण वा कक्केण वा चुण्णेण वा वण्णेण वा उल्लोलावेज्ज वा उव्वट्टावेज्ज वा, उल्लोलावेंतं वा उव्वट्टावेंतं वा सातिज्जति ।।

यो निर्ग्रन्थः निर्ग्रन्थ्याः काये व्रणम् अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा लोध्रेण वा कल्केन वा चूर्णेन वा वर्णेन वा उल्लोलयेद् वा उद्वर्तयेद् वा, उल्लोलयन्तं वा उद्वर्तयन्तं वा स्वदते ।

८४. जो निर्ग्रन्थ अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थी के शरीर पर हुए व्रण पर लोध, कल्क, चूर्ण अथवा वर्ण का लेप करवाता है अथवा उद्वर्तन करवाता है और लेप करवाने अथवा उद्वर्तन करवाने वाले का अनुमोदन करता है ।

८५. जे निग्गंथे निग्गंथीए कायंसि वणं अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलावेज्ज वा पधोवावेज्ज वा, उच्छोलावेंतं वा पधोवावेंतं वा सातिज्जति ।।

यो निर्ग्रन्थः निर्ग्रन्थ्याः काये व्रणम् अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा शीतोदकविकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन वा उत्क्षालयेद् वा प्रधावयेद् वा, उत्क्षालयन्तं वा प्रधावयन्तं वा स्वदते ।

८५. जो निर्ग्रन्थ अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थी के शरीर पर हुए व्रण का प्रासुक शीतल जल अथवा प्रासुक उष्ण जल से उत्क्षालन करवाता है अथवा प्रधावन करवाता है और उत्क्षालन अथवा प्रधावन करवाने वाले का अनुमोदन करता है ।

८६. जे निग्गंथे निग्गंथीए कायंसि वणं अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा फुमावेज्ज वा रयावेज्ज वा, फुमावेंतं वा रयावेंतं वा सातिज्जति ।।

यो निर्ग्रन्थः निर्ग्रन्थ्याः काये व्रणम् अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा 'फुमावेज्ज' (फूत्कारयेद्) वा रञ्जयेद् वा, 'फुमावेंतं' (फूत्कारयन्तं) वा रञ्जयन्तं वा स्वदते ।

८६. जो निर्ग्रन्थ अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थी के शरीर पर हुए व्रण पर फूंक दिलवाता है अथवा रंग लगवाता है और फूंक दिलवाने अथवा रंग लगवाने वाले का अनुमोदन करता है ।

गंडादि-परिकम्म-पदं

गंडादि-परिकर्म-पदम्

गंडादिपरिकर्म-पद

८७. जे निग्गंथे निग्गंथीए कायंसि गंडं वा पिडयं वा अरइयं वा असियं वा भगंदलं वा अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा अण्णयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं अच्छिंदावेज्ज वा विच्छिंदावेज्ज वा, अच्छिंदावेंतं वा विच्छिंदावेंतं वा सातिज्जति ।।

यो निर्ग्रन्थः निर्ग्रन्थ्याः काये गण्डं वा पिटकं वा अरतिकां वा अर्शो वा भगन्दरं वा अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा अन्यतरेण तीक्ष्णेन शस्त्रजातेन आच्छेदयेद् वा विच्छेदयेद् वा, आच्छेदयन्तं वा विच्छेदयन्तं वा स्वदते ।

८७. जो निर्ग्रन्थ अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थी के शरीर में हुए गंडमाल, फोड़ा, फुंसी, अर्श अथवा भगन्दर का किसी तीक्ष्ण शस्त्रजात से आच्छेदन करवाता है अथवा विच्छेदन करवाता है और आच्छेदन अथवा विच्छेदन करवाने वाले का अनुमोदन करता है ।

८८. जे निग्गंथे निग्गंथीए कायंसि गंडं वा पिडयं वा अरइयं वा असियं वा भगंदलं वा अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा अण्णयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं अच्छिंदावेत्ता वा

यो निर्ग्रन्थः निर्ग्रन्थ्याः काये गण्डं वा पिटकं वा अरतिकां वा अर्शो वा भगन्दरं वा अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा अन्यतरेण तीक्ष्णेन शस्त्रजातेन आच्छेद्य वा विच्छेद्य वा पूयं वा शोणितं वा

८८. जो निर्ग्रन्थ अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थी के शरीर में हुए गंडमाल, फोड़ा, फुंसी, अर्श अथवा भगन्दर का किसी तीक्ष्ण शस्त्रजात से आच्छेदन अथवा विच्छेदन करवाकर, पीव अथवा रक्त

विच्छिंदावेत्ता वा पूयं वा सोणियं वा णीहरावेज्ज वा विसोहावेज्ज वा, णीहरावेंतं वा विसोहावेंतं वा सातिज्जति ।।

निस्सारयेद् वा विशोधयेद् वा, निस्सारयन्तं वा विशोधयन्तं वा स्वदते ।

निकलवाता है अथवा साफ करवाता है और निकलवाने अथवा साफ करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

८९. जे निग्गंथे निग्गंथीए कायंसि गंडं वा पिडयं वा अरइयं वा असियं वा भगंदलं वा अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा अण्णयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं अच्छिंदावेत्ता वा विच्छिंदावेत्ता वा पूयं वा सोणियं वा णीहरावेत्ता वा विसोहावेत्ता वा सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलावेज्ज वा पधोवावेज्ज वा, उच्छोलावेंतं वा पधोवावेंतं सातिज्जति ।।

यो निर्ग्रन्थः निर्ग्रन्थ्याः काये गण्डं वा पिटकं वा अरतिकां वा अर्शो वा भगन्दरं वा अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा अन्यतरेण तीक्ष्णेन शस्त्रजातेन आच्छेद्य वा विच्छेद्य वा पूयं वा शोणितं वा निस्सार्य वा विशोध्य वा शीतोदक-विकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन वा उत्क्षालयेद् वा प्रधावयेद् वा, उत्क्षालयन्तं वा प्रधावयन्तं वा स्वदते ।

८९. जो निर्ग्रन्थ अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थी के शरीर में हुए गंडमाल, फोड़ा, फुंसी, अर्श अथवा भगन्दर का किसी तीक्ष्ण शस्त्रजात से आच्छेदन अथवा विच्छेदन करवाकर, उसका पीव अथवा रक्त निकलवाकर अथवा साफ करवाकर, उसका प्रासुक शीतल जल अथवा प्रासुक उष्ण जल से उत्क्षालन करवाता है अथवा प्रधावन करवाता है और उत्क्षालन अथवा प्रधावन करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

९०. जे निग्गंथे निग्गंथीए कायंसि गंडं वा पिडयं वा अरइयं वा असियं वा भगंदलं वा अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा अण्णयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं अच्छिंदावेत्ता वा विच्छिंदावेत्ता वा पूयं वा सोणियं वा णीहरावेत्ता वा विसोहावेत्ता वा सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलावेत्ता वा पधोवावेत्ता वा अण्णयरेणं आलेवणजाएणं आलिंपावेज्ज वा विलिंपावेज्ज वा, आलिंपावेंतं वा विलिंपावेंतं वा सातिज्जति ।।

यो निर्ग्रन्थः निर्ग्रन्थ्याः काये गण्डं वा पिटकं वा अरतिकां वा अर्शो वा भगन्दरं वा अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा अन्यतरेण तीक्ष्णेन शस्त्रजातेन आच्छेद्य वा विच्छेद्य वा पूयं वा शोणितं वा निस्सार्य वा विशोध्य वा शीतोदक-विकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन वा उत्क्षाल्य वा प्रधाव्य वा अन्यतरेण आलेपनजातेन आलेपयेद् वा विलेपयेद् वा, आलेपयन्तं वा विलेपयन्तं वा स्वदते ।

९०. जो निर्ग्रन्थ अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थी के शरीर में हुए गंडमाल, फोड़ा, फुंसी, अर्श अथवा भगन्दर का किसी तीक्ष्ण शस्त्रजात से आच्छेदन अथवा विच्छेदन करवाकर, उसका पीव अथवा रक्त निकलवाकर अथवा साफ करवाकर, उसका प्रासुक शीतल जल अथवा प्रासुक उष्ण जल से उत्क्षालन अथवा प्रधावन करवाकर, उस पर किसी आलेपनजात से आलेपन करवाता है अथवा विलेपन करवाता है और आलेपन अथवा विलेपन करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

९१. जे निग्गंथे निग्गंथीए कायंसि गंडं वा पिडयं वा अरइयं वा असियं वा भगंदलं वा अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा अण्णयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं अच्छिंदावेत्ता वा विच्छिंदावेत्ता वा पूयं वा सोणियं वा णीहरावेत्ता वा विसोहावेत्ता वा सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-

यो निर्ग्रन्थः निर्ग्रन्थ्याः काये गण्डं वा पिटकं वा अरतिकां वा अर्शो वा भगन्दरं वा अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा अन्यतरेण तीक्ष्णेन शस्त्रजातेन आच्छेद्य वा विच्छेद्य वा पूयं वा शोणितं वा निस्सार्य वा विशोध्य वा शीतोदक-विकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन वा उत्क्षाल्य वा प्रधाव्य वा अन्यतरेण

९१. जो निर्ग्रन्थ अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थी के शरीर में हुए गंडमाल, फोड़ा, फुंसी, अर्श अथवा भगन्दर का किसी तीक्ष्ण शस्त्रजात से आच्छेदन अथवा विच्छेदन करवाकर, उसका पीव अथवा रक्त निकलवाकर अथवा साफ करवाकर, उसका प्रासुक शीतल जल अथवा प्रासुक उष्ण जल से उत्क्षालन अथवा प्रधावन

वियडेण वा उच्छोलावेत्ता वा पधोवावेत्ता वा अण्णयरेणं आलेवणजाएणं आलिंपावेत्ता वा विलिंपावेत्ता वा तेल्लेण वा घएण वा वसाए वा णवणीएण वा अब्भंगावेज्ज वा मक्खावेज्ज वा, अब्भंगावेंतं वा मक्खावेंतं वा सातिज्जति।।

आलेपनजातेन आलेप्य वा विलेप्य वा तैलेन वा घृतेन वा वसया वा नवनीतेन वा अभ्यञ्जयेद् वा म्रक्षयेद् वा, अभ्यञ्जयन्तं वा म्रक्षयन्तं वा स्वदते।

करवाकर, उस पर किसी आलेपनजात से आलेपन अथवा विलेपन करवाकर, उसका तैल, घृत, वसा अथवा मक्खन से अभ्यंगन करवाता है अथवा म्रक्षण करवाता है और अभ्यंगन अथवा म्रक्षण करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

९२. जे निग्गंथे निग्गंथीए कायंसि गंडं वा पिडयं वा अरइयं वा असियं वा भगंदलं वा अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा अण्णयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं अच्छिंदावेत्ता वा विच्छिंदावेत्ता वा पूयं वा सोणियं वा णीहरावेत्ता वा विसोहावेत्ता वा सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलावेत्ता वा पधोवावेत्ता वा अण्णयरेणं आलेवणजाएणं आलिंपावेत्ता वा विलिंपावेत्ता वा तेल्लेण वा घएण वा वसाए वा णवणीएण वा अब्भंगावेत्ता वा मक्खावेत्ता वा अण्णयरेणं धूवणजाएणं धूवावेज्ज वा पधूवावेज्ज वा, धूवावेंतं वा पधूवावेंतं वा सातिज्जति।।

यो निर्ग्रन्थः निर्ग्रन्थ्याः काये गण्डं वा पिटकं वा अरतिकां वा अर्शो वा भगन्दरं वा अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा अन्यतरेण तीक्ष्णेन शस्त्रजातेन आच्छेद्य वा विच्छेद्य वा पूयं वा शोणितं वा निस्सार्य वा विशोध्य वा शीतोदक-विकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन वा उत्क्षाल्य वा प्रधाव्य अन्यतरेण आलेपनजातेन आलेप्य वा विलेप्य वा तैलेन वा घृतेन वा वसया वा नवनीतेन वा अभ्यज्य वा म्रक्षयित्वा वा अन्यतरेण धूपनजातेन धूपयेद् वा प्रधूपयेद् वा, धूपयन्तं वा प्रधूपयन्तं वा स्वदते।

९२. जो निर्ग्रन्थ अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थी के शरीर में हुए गंडमाल, फोड़ा, फुंसी, अर्श अथवा भगन्दर का किसी तीक्ष्ण शस्त्रजात से आच्छेदन अथवा विच्छेदन करवाकर, उसका पीव अथवा रक्त निकलवाकर अथवा साफ करवाकर, उसका प्रासुक शीतल जल अथवा प्रासुक उष्ण जल से उत्क्षालन अथवा प्रधावन करवाकर, उस पर किसी आलेपनजात से आलेपन अथवा विलेपन करवाकर, उसका तैल, घृत, वसा अथवा मक्खन से अभ्यंगन अथवा म्रक्षण करवाकर, उसे किसी धूपजात से धूपित करवाता है अथवा प्रधूपित करवाता है और धूपित अथवा प्रधूपित करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

किमि-पदं

९३. जो निग्गंथे निग्गंथीए पालुकिमियं वा कुच्छिकिमियं अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा अंगुलीए णिवेसाविय-णिवेसाविय णीहरावेति, णीहरावेंतं वा सातिज्जति।।

कृमि-पदम्

यो निर्ग्रन्थः निर्ग्रन्थ्याः पायुकृमिकं वा कुक्षिकृमिकं वा अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा अंगुल्या निवेश्य-निवेश्य निस्सारयति, निस्सारयन्तं वा स्वदते।

कृमि-पद

९३. जो निर्ग्रन्थ अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थी के अपान की कृमि अथवा कुक्षि की कृमि को अंगुली डाल डाल कर निकलवाता है अथवा निकलवाने वाले का अनुमोदन करता है।

णह-सिहा-पदं

९४. जे निग्गंथी निग्गंथस्स दीहाओ णह-सिहाओ अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा कप्पावेज्ज वा

नखशिखा-पदम्

यो निर्ग्रन्थः निर्ग्रन्थ्याः दीर्घाः नखशिखाः अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा कल्पयेद् वा

नखशिखा-पद

९४. जो निर्ग्रन्थ अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थी की दीर्घ नखशिखा को कटवाता है अथवा व्यवस्थित करवाता है

संठवावेज्ज वा, कप्पावेंतं वा संठवावेंतं वा सातिज्जति ।।

संस्थापयेद् वा, कल्पयन्तं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते ।

और कटवाने अथवा व्यवस्थित करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

दीह-रोम-पदं

९५. जे निग्गंथे निग्गंथीए दीहाइं जंघ-रोमाइं अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा कप्पावेज्ज वा संठवावेज्ज वा, कप्पावेंतं वा संठवावेंतं वा सातिज्जति ।।

दीर्घरोम-पदम्

यो निर्ग्रन्थः निर्ग्रन्थ्याः दीर्घाणि जंघारोमाणि अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा कल्पयेद् वा संस्थापयेद् वा, कल्पयन्तं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते ।

दीर्घरोम-पद

९५. जो निर्ग्रन्थ अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थी की जंघाप्रदेश की दीर्घ रोमराजि को कटवाता है अथवा व्यवस्थित करवाता है और कटवाने अथवा व्यवस्थित करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

९६. जे निग्गंथे निग्गंथीए दीहाइं वत्थि-रोमाइं अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा कप्पावेज्ज वा संठवावेज्ज वा, कप्पावेंतं वा संठवावेंतं वा सातिज्जति ।।

यो निर्ग्रन्थः निर्ग्रन्थ्याः दीर्घाणि वस्तिरोमाणि अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा कल्पयेद् वा संस्थापयेद् वा, कल्पयन्तं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते ।

९६. जो निर्ग्रन्थ अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थी की वस्तिप्रदेश की दीर्घ रोमराजि को कटवाता है अथवा व्यवस्थित करवाता है और कटवाने अथवा व्यवस्थित करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

९७.जे निग्गंथे निग्गंथीए दीह-रोमाइं अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा कप्पावेज्ज वा संठवावेज्ज वा, कप्पावेंतं वा संठवावेंतं वा सातिज्जति ।।

यो निर्ग्रन्था निर्ग्रन्थ्याः दीर्घरोमाणि अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा कल्पयेद् वा संस्थापयेद् वा, कल्पयन्तं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते ।

९७. जो निर्ग्रन्थ अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थी की दीर्घ रोमराजि को कटवाता है अथवा व्यवस्थित करवाता है और कटवाने अथवा व्यवस्थित करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

९८.जे निग्गंथे निग्गंथीए दीहाइं कक्खाण-रोमाइं अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा कप्पावेज्ज वा संठवावेज्ज वा, कप्पावेंतं वा संठवावेंतं वा सातिज्जति ।।

यो निर्ग्रन्थः निर्ग्रन्थ्याः दीर्घाणि कक्षारोमाणि अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा कल्पयेद् वा संस्थापयेद् वा, कल्पयन्तं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते ।

९८. जो निर्ग्रन्थ अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थी की कक्षाप्रदेश की दीर्घ रोमराजि को कटवाता है अथवा व्यवस्थित करवाता है और कटवाने अथवा व्यवस्थित करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

९९. जे निग्गंथे निग्गंथीए दीहाइं मंसु-रोमाइं अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा कप्पावेज्ज वा संठवावेज्ज वा, कप्पावेंतं वा संठवावेंतं वा सातिज्जति ।।

यो निर्ग्रन्थः निर्ग्रन्थ्याः दीर्घाणि श्मश्रुरोमाणि अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा कल्पयेद् वा संस्थापयेद् वा, कल्पयन्तं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते ।

९९. जो निर्ग्रन्थ अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थी की श्मश्रु की दीर्घ रोमराजि को कटवाता है अथवा व्यवस्थित करवाता है और कटवाने अथवा व्यवस्थित करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

दंत-पदं

१००. जे निग्गंथे निग्गंथीए दंते अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा आघंसावेज्ज वा पघंसावेज्ज वा,

दन्त-पदम्

यो निर्ग्रन्थः निर्ग्रन्थ्याः दन्तान् अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा आघर्षयेद् वा प्रघर्षयेद् वा, आघर्षयन्तं

दंत-पद

१००. जो निर्ग्रन्थ अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थी के दांतों का आघर्षण करवाता है अथवा प्रघर्षण करवाता है और आघर्षण

आघंसावेंतं वा पघंसावेंतं वा सातिज्जति।।

वा प्रघर्षयन्तं वा स्वदते।

अथवा प्रघर्षण करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

१०१. जे निग्गंथे निग्गंथीए दंते अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा उच्छोलावेज्ज वा पधोवावेज्ज वा, उच्छोलावेंतं वा पधोवावेंतं वा सातिज्जति।।

यो निर्ग्रन्थः निर्ग्रन्थ्याः दन्तान् अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा उत्क्षालयेद् वा प्रधावयेद् वा, उत्क्षालयन्तं वा प्रधावयन्तं वा स्वदते।

१०१. जो निर्ग्रन्थ अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थी के दांतों का उत्क्षालन करवाता है अथवा प्रधावन करवाता है और उत्क्षालन अथवा प्रधावन करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

१०२. जे निग्गंथे निग्गंथीए दंते अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा फुमावेज्ज वा रयावेज्ज वा, फुमावेंतं वा रयावेंतं वा सातिज्जति।।

यो निर्ग्रन्थः निर्ग्रन्थ्याः दन्तान् अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा 'फुमावेज्ज' (फूत्कारयेद्) वा रञ्जयेद् वा, 'फुमावेंतं' (फूत्कारयन्तं) वा रञ्जयन्तं वा स्वदते।

१०२. जो निर्ग्रन्थ अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थी के दांतों पर फूंक दिलवाता है अथवा रंग लगवाता है और फूंक दिलवाने अथवा रंग लगवाने वाले का अनुमोदन करता है।

उट्ठ-पदं

ओष्ठ-पदम्

ओष्ठ-पद

१०३. जे निग्गंथे निग्गंथीए उट्ठे अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा आमज्जावेज्ज वा पमज्जावेज्ज वा, आमज्जावेंतं वा पमज्जावेंतं वा सातिज्जति।।

यो निर्ग्रन्थः निर्ग्रन्थ्याः ओष्ठौ अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा आमार्जयेद् वा प्रमार्जयेद् वा, आमार्जयन्तं वा प्रमार्जयन्तं वा स्वदते।

१०३. जो निर्ग्रन्थ अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थी के ओष्ठ का आमार्जन करवाता है अथवा प्रमार्जन करवाता है और आमार्जन अथवा प्रमार्जन करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

१०४. जे निग्गंथे निग्गंथीए उट्ठे अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा संवाहावेज्ज वा पलिमद्दावेज्ज वा, संवाहावेंतं वा पलिमद्दावेंतं वा सातिज्जति।।

यो निर्ग्रन्थः निर्ग्रन्थ्याः ओष्ठौ अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा संवाहयेद् वा परिमर्दयेद् वा, संवाहयन्तं वा परिमर्दयन्तं वा स्वदते।

१०४. जो निर्ग्रन्थ अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थी के ओष्ठ का संबाधन करवाता है अथवा परिमर्दन करवाता है और संबाधन अथवा परिमर्दन करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

१०५. जे निग्गंथे निग्गंथीए उट्ठे अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा तेल्लेण वा घएण वा वसाए वा णवणीएण वा अब्भंगावेज्ज वा मक्खावेज्ज वा, अब्भंगावेंतं वा मक्खावेंतं वा सातिज्जति।।

यो निर्ग्रन्थः निर्ग्रन्थ्याः ओष्ठौ अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा तैलेन वा घृतेन वा वसया वा नवनीतेन वा अभ्यञ्जयेद् वा म्रक्षयेद् वा, अभ्यञ्जयन्तं वा म्रक्षयन्तं वा स्वदते।

१०५. जो निर्ग्रन्थ अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थी के ओष्ठ का तैल, घृत, वसा अथवा मक्खन से अभ्यंगन करवाता है अथवा म्रक्षण करवाता है और अभ्यंगन अथवा म्रक्षण करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

१०६. जे निग्गंथे निग्गंथीए उट्ठे अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा लोद्धेण वा कक्केण वा चुण्णेण वा वण्णेण वा उल्लोलावेज्ज वा

यो निर्ग्रन्थः निर्ग्रन्थ्याः ओष्ठौ अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा लोध्रेण वा कल्केन वा चूर्णेन वा वर्णेन वा उल्लोलयेद् वा उद्वर्तयेद् वा,

१०६. जो निर्ग्रन्थ अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थी के ओष्ठ पर लोध, कल्क, चूर्ण अथवा वर्ण का लेप करवाता है अथवा उद्वर्तन करवाता है और लेप करवाने

उव्वट्टावेज्ज वा, उल्लोलावेंतं वा उव्वट्टावेंतं वा सातिज्जति ।।

उल्लोलयन्तं वा उद्वर्तयन्तं वा स्वदते।

अथवा उद्वर्तन करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

१०७. जे निग्गंथे निग्गंथीए उट्ठे अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलावेज्ज वा पधोवावेज्ज वा, उच्छोलावेंतं वा पधोवावेंतं वा सातिज्जति ।।

यो निर्ग्रन्थः निर्ग्रन्थ्याः ओष्ठौ अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा शीतोदकविकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन वा उत्क्षालयेद् वा प्रधावयेद् वा, उत्क्षालयन्तं वा प्रधावयन्तं वा स्वदते।

१०७. जो निर्ग्रन्थ अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थी के ओष्ठ का प्रासुक शीतल जल अथवा प्रासुक उष्ण जल से उत्क्षालन करवाता है अथवा प्रधावन करवाता है और उत्क्षालन अथवा प्रधावन करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

१०८. जे निग्गंथे निग्गंथीए उट्ठे अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा फुमावेज्ज वा रयावेज्ज वा, फुमावेंतं वा रयावेंतं वा सातिज्जति ।।

यो निर्ग्रन्थः निर्ग्रन्थ्याः ओष्ठौ अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा 'फुमावेज्ज' (फूत्कारयेद्) वा रञ्जयेद् वा, 'फुमावेंतं' (फूत्कारयन्तं) वा रञ्जयन्तं वा स्वदते।

१०८. जो निर्ग्रन्थ अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थी के ओष्ठ पर फूंक दिलवाता है अथवा रंग लगवाता है और फूंक दिलवाने अथवा रंग लगवाने वाले का अनुमोदन करता है।

दीह-रोम-पदं

दीर्घरोम-पदम्

दीर्घरोम-पद

१०९. जे निग्गंथे निग्गंथीए दीहाइं उत्तरोट्ठ-रोमाइं अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा कप्पावेज्ज वा संठवावेज्ज वा, कप्पावेंतं वा संठवावेंतं वा सातिज्जति ।।

यो निर्ग्रन्थः निर्ग्रन्थ्याः दीर्घाणि उत्तरौष्ठरोमाणि अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा कल्पयेद् वा संस्थापयेद् वा, कल्पयन्तं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते।

१०९. जो निर्ग्रन्थ अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थी के उत्तरोष्ठ की दीर्घ रोमराजि को कटवाता है अथवा व्यवस्थित करवाता है और कटवाने अथवा व्यवस्थित करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

११०. जे निग्गंथे निग्गंथीए दीहाइं णासा-रोमाइं अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा कप्पावेज्ज वा संठवावेज्ज वा, कप्पावेंतं वा संठवावेंतं वा सातिज्जति ।।

यो निर्ग्रन्थः निर्ग्रन्थ्याः दीर्घाणि नासारोमाणि अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा कल्पयेद् वा संस्थापयेद् वा, कल्पयन्तं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते।

११०. जो निर्ग्रन्थ अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थी के नाक की दीर्घ रोमराजि को कटवाता है अथवा व्यवस्थित करवाता है और कटवाने अथवा व्यवस्थित करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

अच्छि-पत्त-पदं

अक्षिपत्र-पदम्

अक्षिपत्र-पद

१११. जे निग्गंथे निग्गंथीए दीहाइं अच्छि-पत्ताइं अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा कप्पावेज्ज वा संठवावेज्ज वा, कप्पावेंतं वा संठवावेंतं वा सातिज्जति ।।

यो निर्ग्रन्थः निर्ग्रन्थ्याः दीर्घाणि अक्षिपत्राणि अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा कल्पयेद् वा संस्थापयेद् वा, कल्पयन्तं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते।

१११. जो निर्ग्रन्थ अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थी के दीर्घ अक्षिपत्रों को कटवाता है अथवा व्यवस्थित करवाता है और कटवाने अथवा व्यवस्थित करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

अच्छि-पदं

अक्षि-पदम्

अक्षि-पद

११२. जे निग्गंथे निग्गंथीए अच्छीणि

यो निर्ग्रन्थः निर्ग्रन्थ्याः अक्षिणी

११२. जो निर्ग्रन्थ अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ

अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा आमज्जावेज्ज वा पमज्जावेज्ज वा, आमज्जावेंतं वा पमज्जावेंतं वा सातिज्जति।।

अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा आमार्जयेद् वा प्रमार्जयेद् वा, आमार्जयन्तं वा प्रमार्जयन्तं वा स्वदते।

से निर्ग्रन्थी की आंखों का आमार्जन करवाता है अथवा प्रमार्जन करवाता है और आमार्जन अथवा प्रमार्जन करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

११३. जे निग्गंथे निग्गंथीए अच्छीणि अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा संवाहावेज्ज वा पलिमद्दावेज्ज वा, संवाहावेंतं वा पलिमद्दावेंतं वा सातिज्जति।।

यो निर्ग्रन्थः निर्ग्रन्थ्याः अक्षिणी अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा संवाहयेद् वा परिमर्दयेद् वा, संवाहयन्तं वा परिमर्दयन्तं वा स्वदते।

११३. जो निर्ग्रन्थ अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थी की आंखों का संबाधन करवाता है अथवा परिमर्दन करवाता है और संबाधन अथवा परिमर्दन करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

११४. जे निग्गंथे निग्गंथीए अच्छीणि अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा तेल्लेण वा घएण वा वसाए वा णवणीएण वा अब्भंगावेज्ज वा मक्खावेज्ज वा, अब्भंगावेंतं वा मक्खावेंतं वा सातिज्जति।।

यो निर्ग्रन्थः निर्ग्रन्थ्याः अक्षिणी अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा तैलेन वा घृतेन वा वसया वा नवनीतेन वा अभ्यञ्जयेद् वा म्रक्षयेद् वा, अभ्यञ्जयन्तं वा म्रक्षयन्तं वा स्वदते।

११४. जो निर्ग्रन्थ अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थी की आंखों का तैल, घृत, वसा अथवा मक्खन से अभ्यंगन करवाता है अथवा म्रक्षण करवाता है और अभ्यंगन अथवा म्रक्षण करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

११५.जे निग्गंथे निग्गंथीए अच्छीणि अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा लोद्धेण वा कक्केण वा चुण्णेण वा वण्णेण वा उल्लोलावेज्ज वा उव्वट्टावेज्ज वा, उल्लोलावेंतं वा उव्वट्टावेंतं वा सातिज्जति।।

यो निर्ग्रन्थः निर्ग्रन्थ्याः अक्षिणी अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा लोध्रेण वा कल्केन वा चूर्णेन वा वर्णेन वा उल्लोलयेद् वा उद्वर्तयेद् वा, उल्लोलयन्तं वा उद्वर्तयन्तं वा स्वदते।

११५. जो निर्ग्रन्थ अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थी की आंखों पर लोध, कल्क, चूर्ण अथवा वर्ण का लेप करवाता है अथवा उद्वर्तन करवाता है और लेप करवाने वाले अथवा उद्वर्तन करने वाले का अनुमोदन करता है।

११६. जे निग्गंथे निग्गंथीए अच्छीणि अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलावेज्ज वा पधोवावेज्ज वा, उच्छोलावेंतं वा पधोवावेंतं वा सातिज्जति।।

यो निर्ग्रन्थः निर्ग्रन्थ्याः अक्षिणी अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा शीतोदकविकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन वा उत्क्षालयेद् वा प्रधावयेद् वा, उत्क्षालयन्तं वा प्रधावयन्तं वा स्वदते।

११६. जो निर्ग्रन्थ अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थी की आंखों का प्रासुक शीतल जल अथवा प्रासुक उष्ण जल से उत्क्षालन करवाता है अथवा प्रधावन करवाता है और उत्क्षालन अथवा प्रधावन करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

११७. जे निग्गंथे निग्गंथीए अच्छीणि अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा फुमावेज्ज वा रयावेज्ज वा, फुमावेंतं वा रयावेंतं वा सातिज्जति।।

यो निर्ग्रन्थः निर्ग्रन्थ्याः अक्षिणी अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन का 'फुमावेज्ज' (फूत्कारयेद्) वा रञ्जयेद् वा, 'फुमावेंतं' (फूत्कारयन्तं) वा रञ्जयन्तं वा स्वदते।

११७. जो निर्ग्रन्थ अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थी की आंखों पर फूंक दिलवाता है अथवा रंग लगवाता है और फूंक दिलवाने अथवा रंग लगवाने वाले का अनुमोदन करता है।

दीह-रोम-पदं

११८. जे निग्गंथे निग्गंथीए दीहाइं भमुग-रोमाइं अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा कप्पावेज्ज वा संठवावेज्ज वा, कप्पावेंतं वा संठवावेंतं वा सातिज्जति ।।

दीर्घरोम-पदम्

यो निर्ग्रन्थः निर्ग्रन्थ्याः दीर्घाणि भ्रूरोमाणि अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा कल्पयेद् वा संस्थापयेद् वा, कल्पयन्तं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते।

दीर्घरोम-पद

११८. जो निर्ग्रन्थ अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थी की भौहों की दीर्घ रोमराजि को कटवाता है अथवा व्यवस्थित करवाता है और कटवाने अथवा व्यवस्थित करने वाले का अनुमोदन करता है।

११९. जे निग्गंथे निग्गंथीए दीहाइं पास-रोमाइं अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा कप्पावेज्ज वा संठवावेज्ज वा, कप्पावेंतं वा संठवावेंतं वा सातिज्जति ।।

यो निर्ग्रन्थः निर्ग्रन्थ्याः दीर्घाणि 'पास'रोमाणि अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा कल्पयेद् वा संस्थापयेद् वा, कल्पयन्तं वा संस्थापयन्तं वा स्वदते।

११९. जो निर्ग्रन्थ अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थी के पार्श्वभाग की दीर्घ रोमराजि को कटवाता है अथवा व्यवस्थित करवाता है और कटवाने अथवा व्यवस्थित करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

मल-णीहरण-पदं

१२०. जे निग्गंथे निग्गंथीए कायाओ सेयं वा जल्लं वा पंकं वा मलं वा अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा णीहरावेज्ज वा विसोहावेज्ज वा, णीहरावेंतं वा विसोहावेंतं वा सातिज्जति ।।

मलनिस्सरण-पदम्

यो निर्ग्रन्थः निर्ग्रन्थ्याः कायात् स्वेदं वा जल्लं वा पंक वा मलं वा अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा निस्सारयेद् वा विशोधयेद् वा, निस्सारयन्तं वा विशोधयन्तं वा स्वदते।

मलनिर्हरण-पद

१२०. जो निर्ग्रन्थ अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थी के शरीर के स्वेद, जल्ल, पंक अथवा मल का निर्हरण करवाता है अथवा विशोधन करवाता है और निर्हरण अथवा विशोधन करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

१२१. जे निग्गंथे निग्गंथीए अच्छिमलं वा कण्णमलं वा दंतमलं वा णहमलं वा अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा णीहरावेज्ज वा विसोहावेज्ज वा, णीहरावेंतं वा विसोहावेंतं वा सातिज्जति ।।

यो निर्ग्रन्थः निर्ग्रन्थ्याः अक्षिमलं वा कर्णमलं वा दन्तमलं वा नखमलं वा अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन निस्सारयेद् वा विशोधयेद् वा, निस्सारयन्तं वा विशोधयन्तं वा स्वदते।

१२१. जो निर्ग्रन्थ अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से निर्ग्रन्थी की आंख के मैल, कान के मैल, दांत के मैल अथवा नख के मैल का निर्हरण करवाता है अथवा विशोधन करवाता है और निर्हरण अथवा विशोधन करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

सीसदुवारिय-पदं

१२२. जे निग्गंथे निग्गंथीए गामाणुगामं दूइज्जमाणीए अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा सीसदुवारियं कारवेति, कारवेंतं वा सातिज्जति ।।

शीर्षद्वारिका-पदम्

यो निर्ग्रन्थः निर्ग्रन्थ्याः ग्रामानुग्रामं दूयमानायाः अन्ययूथिकेन वा अगारस्थितेन वा शीर्षद्वारिकां कारयन्ति, कारयन्तं वा स्वदते।

शीर्षद्वारिका-पद

१२२. जो निर्ग्रन्थ अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से ग्रामानुग्राम परिव्रजन करती हुई निर्ग्रन्थी का सिर ढंकवाता है अथवा सिर ढंकवाने वाले का अनुमोदन करता है।[1]

अंतेओवास-पदं

१२३. जे णिग्गंथे णिग्गंथस्स सरिसगस्स अंते ओवासे संते ओवासं ण देति, ण

अन्तरवकाश-पदम्

यो निर्ग्रन्थः निर्ग्रन्थाय सदृशकाय अन्तःअवकाशे सति अवकाशं न

अन्तःअवकाश-पद

१२३. जो निर्ग्रन्थ उपाश्रय के अन्दर अवकाश (स्थान) होने पर भी अपने सदृश निर्ग्रन्थ

देंतं वा सातिज्जति ।।

ददाति, न ददतं वा स्वदते।

को अवकाश नहीं देता अथवा नहीं देने वाले का अनुमोदन करता है।

१२४. जा णिग्गंथी णिग्गथीए सरिसियाए अंते ओवासे संते ओवासं ण देति, ण देंतं वा सातिज्जति ।।

या निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थ्यै सदृशकार्यै अन्तः अवकाशे सति अवकाशं न ददाति, न ददतं वा स्वदते।

१२४. जो निर्ग्रन्थी उपाश्रय के अन्दर अवकाश होने पर भी अपने सदृश निर्ग्रन्थी को अवकाश नहीं देती अथवा नहीं देने वाली का अनुमोदन करती है।[४]

मालोहड-पदं

मालापहृत-पदम्

मालापहृत-पद

१२५. जे भिक्खू मालोहडं असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा देज्जमाणं पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षु मालापहृतम् अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा दीयमानं प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते।

१२५. जो भिक्षु मालापहृत—ऊपर से उतार कर दिए जाते हुए अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य को ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

१२६. जे भिक्खू कोट्ठियाउत्तं असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा उक्कुज्जिय अवकुज्जिय ओहरिय देज्जमाणं पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः कोष्ठिकागुप्तम् अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा उत्कुब्ज्य अवकुब्ज्य अपहृत्य दीयमानं प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते।

१२६. जो भिक्षु ऊपर होकर, तिरछा होकर अथवा पीठिका आदि पर चढ़कर, उतारकर दिए जाने वाले कोष्ठिका (मिट्टी के कोठे) में रखे हुए अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य को ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।[५]

मट्टियाओलित्त-पदं

मृत्तिकावलिप्त-पदम्

मृत्तिकोपलिप्त-पद

१२७. जे भिक्खू मट्टियाओलित्तं असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा उब्भिंदिय देज्जमाणं पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः मृतिकावलिप्तम् अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा उद्भिद्य दीयमानं प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते।

१२७. जो भिक्षु उद्भिन्न करके दिए जाते हुए मृत्तिकोपलिप्त अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य को ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।[६]

पुढविआदिपतिट्ठिय-पदं

पृथिव्यादि-प्रतिष्ठित-पदम्

पृथिव्यादि-प्रतिष्ठित-पद

१२८. जे भिक्खू असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पुढविपतिट्ठियं पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा पृथिवीप्रतिष्ठितं प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते।

१२८. जो भिक्षु पृथिवीप्रतिष्ठित (सचित्त पृथ्वीकाय पर रखे हुए) अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य को ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

१२९. जे भिक्खू असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा आउपतिट्ठियं पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा अप्प्रतिष्ठितं प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते।

१२९. जो भिक्षु अप्प्रतिष्ठित (सचित्त अप्काय पर रखे हुए) अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य को ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

१३०. जे भिक्खू असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा तेउपतिट्ठियं पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा तेजःप्रतिष्ठितं प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते ।

१३०. जो भिक्षु तेजः प्रतिष्ठित (सचित्त तेजस्काय पर रखे हुए) अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य को ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है ।

१३१. जे भिक्खू असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा वणप्फतिकायपतिट्ठियं पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा वनस्पतिकायप्रतिष्ठितं प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते ।

१३१. जो भिक्षु वनस्पतिप्रतिष्ठित (सचित्त वनस्पतिकाय पर रखे हुए) अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य को ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है ।[७]

अच्चुसिण-पदं

अत्युष्ण-पदम्

अत्युष्ण-पद

१३२. जे भिक्खू अच्चुसिणं असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा सुप्पेण वा विहुवणेण वा तालियंटेण वा पत्तेण वा साहाए वा साहाभंगेण वा पिहुणेण वा पिहुणहत्थेण वा चेलेण वा चेलकण्णेण वा हत्थेण वा मुहेण वा फुमित्ता वीइत्ता आहट्टु देज्जमाणं पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अत्युष्णम् अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा शूर्पेण वा विधुवनेन वा तालवृन्तेन वा पत्रेण वा शाखाए वा शाखाभंगेन वा 'पिहुणेण' वा 'पिहुण'-हस्तेन वा चेलेन वा चेलकर्णेन वा हस्तेन वा मुखेन वा 'फुमित्ता' (फूत्कृत्य) वीजयित्वा आहृत्य दीयमानं प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते ।

१३२. जो भिक्षु सूर्प, पंखे, तालवृन्त, पत्र, शाखा, शाखाखंड, मोरपंख, मोरपिच्छी, वस्त्र, वस्त्र के किनारे, हाथ अथवा मुंह से फूंक देकर, विजन कर लाकर दिए जाने वाले अत्युष्ण अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य को ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है ।[८]

अपरिणयपाणग-पदं

अपरिणतपानक-पदम्

अपरिणतपानक-पद

१३३. जे भिक्खू उस्सेइमं वा संसेइमं वा चाउलोदगं वा वारोदगं वा तिलोदगं वा तुसोदगं वा जवोदगं वा आयामं वा सोवीरं वा अंबकंजियं वा सुद्धवियडं वा अहुणाधोयं अणंबिलं अवक्कंतं अपरिणयं अविद्धत्थं पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः उत्स्वेद्यं वा संस्वेद्यं 'चाउल'उदकं वा वारोदकं वा तिलोदकं वा तुषोदकं वा यवोदकं वा आचामं वा सौवीरं वा आम्लकांजिकं वा शुद्धविकृतम् (शुद्धविकटम्) वा अधुनाधौतम् अनाम्लम् अपक्रान्तम् अपरिणतम् अविध्वस्तं प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते ।

१३३. जो भिक्षु उत्स्वेदिम, संस्वेदिम, चावलोदक, वारोदक, तिलोदक, तुषोदक, यवोदक, ओसावण, सौवीर, आम्लकांजिक अथवा शुद्ध प्रासुक जल जो अधुनाधौत है, जिसका रस परिवर्तित न हुआ हो, जिसकी गन्ध न बदली हो, जिसका रंग न बदला हो, विरोधी शस्त्र से जिसके जीव ध्वस्त न हुए हों, उसे ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है ।[९]

अत्तसलाहा-पदं

आत्मश्लाघा-पदम्

आत्मश्लाघा-पद

१३४. जे भिक्खू अप्पणो आयरियत्ताए लक्खणाइं वागरेति, वागरेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः आत्मनः आचार्यत्वाय लक्षणानि व्याकरोति, व्याकुर्वन्तं वा स्वदते ।

१३४. जो भिक्षु स्वयं के आचार्यत्व के लक्षणों का कथन करता है अथवा कथन करने वाले का अनुमोदन करता है ।[१०]

गानादि-पदं

१३५. जे भिक्खू गाएज्ज वा हसेज्ज वा वाएज्ज वा णच्चेज्ज वा अभिणएज्ज वा हयहेसियं वा हत्थिगुलगुलाइयं वा उक्कुट्ठसीहणायं वा करेति, करेंतं वा सातिज्जति ।।

गानादि-पदम्

यो भिक्षुः गायेद् वा हसेद् वा वादयेद् वा नृत्येद् वा अभिनयेद् वा हयहेषितं वा हस्तिगुलगुलायितं वा उत्कृष्टसिंहनादं वा करोति, कुर्वन्तं वा स्वदते।

गानादि-पद

१३५. जो भिक्षु गाता है, हंसता है, वाद्य बजाता है, नृत्य करता है, अभिनय करता है, घोड़े के समान ध्वनि (हयहेषा) करता है, हाथी के समान चिंघाड़ता (हाथियों की गर्ज ध्वनि करता) है अथवा उत्कृष्ट सिंहनाद करता है अथवा करने वाले का अनुमोदन करता है।[११]

विततसद्द-कण्णसोयपडिया-पदं

१३६. जे भिक्खू भेरिसद्दाणि वा पडहसद्दाणि वा मुरवसद्दाणि वा मुइंगसद्दाणि वा णंदिसद्दाणि वा झल्लरिसद्दाणि वा डमरुयसद्दाणि वा मड्डुयसद्दाणि वा सदुयसद्दाणि वा पएससद्दाणि वा गोलुकिसद्दाणि वा अण्णयराणि वा तहप्पगाराणि विततणि सद्दाणि कण्णसोयपडियाए अभिसंधारेति, अभिसंधारेंतं वा सातिज्जति ।।

विततशब्दकर्णश्रोतःप्रतिज्ञा-पदम्

यो भिक्षुः भेरीशब्दान् वा पटहशब्दान् वा मुरजशब्दान् वा मृदंगशब्दान् वा नन्दिशब्दान् वा झल्लरीशब्दान् वा डमरूकशब्दान् वा 'मड्डुय' शब्दान् वा 'सदुय'शब्दान् वा 'पएस'शब्दान् वा 'गोलुकि'शब्दान् वा अन्यतरान् वा तथाप्रकारान् विततानि शब्दान् कर्णश्रोतःप्रतिज्ञया अभिसंधारयति, अभिसंधारयन्तं वा धारयति।

विततशब्द-कर्णश्रोतप्रतिज्ञा-पद

१३६. जो भिक्षु भेरी के शब्द, पटह के शब्द, मुरज के शब्द, मृदंग के शब्द, नन्दी के शब्द, झालर के शब्द, डमरु के शब्द, मड्डुय के शब्द, सदुय के शब्द, प्रदेश के शब्द, गोलुकी के शब्द अथवा अन्य उसी प्रकार के वितत (वाद्य) शब्दों को कान से सुनने की प्रतिज्ञा से जाने का संकल्प करता है अथवा संकल्प करने वाले का अनुमोदन करता है।

ततसद्द-कण्णसोयपडिया-पदं

१३७. जे भिक्खू वीणासद्दाणि वा विपंचिसद्दाणि वा तुणसद्दाणि वा बद्धीसगसद्दाणि वा पणवसद्दाणि वा तुंबवीणासद्दाणि वा झोडयसद्दाणि वा ढंकुणसद्दाणि वा अण्णयराणि वा तहप्पगाराणि तताणि सद्दाणि कण्णसोयपडियाए अभिसंधारेति, अभिसंधारेंतं वा सातिज्जति ।।

ततशब्दकर्णश्रोतःप्रतिज्ञा-पदम्

यो भिक्षुः वीणाशब्दान् वा विपंचिशब्दान् वा 'तुण'शब्दान् वा 'बद्धीसग'शब्दान् वा पणवशब्दान् वा तुम्बवीणाशब्दान् वा 'झोडय'शब्दान् वा 'ढंकुण'शब्दान् वा अन्यतरान् वा तथाप्रकारान् ततानि शब्दान् कर्णश्रोतःप्रतिज्ञया अभिसंधारयति, अभिसंधारयन्तं वा स्वदते।

ततशब्द-कर्णश्रोतप्रतिज्ञा-पद

१३७. जो भिक्षु वीणा के शब्द, विपंची के शब्द, तूण के शब्द, बद्धीसक के शब्द, प्रणव के शब्द, तुंबवीणा के शब्द, झोटक के शब्द, ढंकुण के शब्द अथवा अन्य उसी प्रकार के तत (वाद्य) शब्दों को कान से सुनने की प्रतिज्ञा से जाने का संकल्प करता है अथवा संकल्प करने वाले का अनुमोदन करता है।

घणसद्द-कण्णसोयपडिया-पदं

१३८. जे भिक्खू तालसद्दाणि वा कंसतालसद्दाणि वा लत्तियसद्दाणि वा गोहियसद्दाणि वा मकरियसद्दाणि वा कच्छभिसद्दाणि वा महतिसद्दाणि वा सणालियासद्दाणि वा

घनशब्दकर्णश्रोतःप्रतिज्ञा-पदम्

यो भिक्षुः तालशब्दान् वा कांस्यतालशब्दान् वा 'लत्तिया'शब्दान् वा गोधिकाशब्दान् वा मकरिकाशब्दान् वा कच्छपीशब्दान् वा महतीशब्दान् वा 'सणालिया'शब्दान् वा 'वालिया'शब्दान्

घनशब्द-कर्णश्रोतप्रतिज्ञा-पद

१३८. जो भिक्षु ताल के शब्द, कंसताल के शब्द, लत्तिक के शब्द, गोहिक के शब्द, मकर्य के शब्द, कच्छपी के शब्द, महती के शब्द, सनालिका के शब्द, वलीका के शब्द अथवा अन्य उसी प्रकार के घन

वालियासद्दाणि वा अण्णयराणि वा तहप्पगाराणि घणाणि सद्दाणि कण्णसोयपडियाए अभिसंधारेति, अभिसंधारेंतं वा सातिज्जति ।।

वा अन्यतरान् वा तथाप्रकारान् घनानि शब्दान् कर्णश्रोतःप्रतिज्ञया अभिसंधारयति, अभिसंधारयन्तं वा स्वदते।

(वाद्य) शब्दों को कान से सुनने की प्रतिज्ञा से जाने का संकल्प करता है अथवा संकल्प करने वाले का अनुमोदन करता है।

झुसिरसद्द-कण्णसोयपडिया-पदं

१३९. जे भिक्खू संखसद्दाणि वा वंससद्दाणि वा वेणुसद्दाणि वा खरमुहिसद्दाणि वा परिपरिसद्दाणि वा वेवासद्दाणि वा अण्णयराणि तहप्पगाराणि झुसिराणि सद्दाणि कण्णसोयपडियाए अभिसंधारेति, अभिसंधारेंतं वा सातिज्जति ।।

शुषिरशब्दकर्णश्रोतःप्रतिज्ञा-पदम्

यो भिक्षुः शंखशब्दान् वा वंशशब्दान् वा वेणुशब्दान् वा खरमुखीशब्दान् वा 'परिपरि'शब्दान् वा 'वेवा'शब्दान् वा अन्यतरान् तथाप्रकारान् शुषिराणि शब्दान् कर्णश्रोतःप्रतिज्ञया अभिसंधारयति, अभिसंधारयन्तं वा स्वदते।

शुषिरशब्द-कर्णश्रोतप्रतिज्ञा-पद

१३९. जो भिक्षु शंख के शब्द, बांस के शब्द, वेणु के शब्द, खरमुखी (फौजी ढोल) के शब्द, परिपरि (सितार जैसा वाद्य) के शब्द, वेवा के शब्द अथवा अन्य उसी प्रकार के शुषिर (वाद्य) शब्दों को कान से सुनने की प्रतिज्ञा से जाने का संकल्प करता है अथवा संकल्प करने वाले का अनुमोदन करता है।[१२]

विविहसद्द-कण्णसोयपडिया-पदं

१४०. जे भिक्खू वप्पाणि वा फलिहाणि वा उप्पलाणि वा पल्ललाणि वा उज्झराणि वा णिज्झराणि वा वावीणि वा पोक्खराणि वा दीहियाणि वा गुंजालियाणि वा सराणि वा सरपंतियाणि वा सरसरपंतियाणि वा कण्णसोय-पडियाए अभिसंधारेति, अभिसंधारेंतं वा सातिज्जति ।।

विविधशब्दकर्णश्रोतःप्रतिज्ञा-पदम्

यो भिक्षुः वप्रान् वा परिखाः वा उत्पलानि वा पल्वलानि वा उज्झरान् वा निर्झरान् वा वापीः वा पुष्कराणि वा दीर्घिकाः वा गुञ्जालिकाः वा सरांसि वा सरःपंक्तीः वा सरःसरःपंक्तीः वा कर्णश्रोतःप्रतिज्ञया अभिसंधारयति, अभिसंधारयन्तं वा स्वदते।

विविधशब्द-कर्णश्रोतप्रतिज्ञा-पद

१४०. जो भिक्षु केदार, परिखा, उत्पल, पल्वल, उज्झर, निर्झर, वापी, पुष्कर, दीर्घिका, गुंजालिका, सर, सरपंक्ति अथवा सरसरपंक्ति को कान से सुनने की प्रतिज्ञा से जाने का संकल्प करता है अथवा संकल्प करने वाले का अनुमोदन करता है।

१४१. जे भिक्खू कच्छाणि वा गहणाणि वा णूमाणि वा वणाणि वा वण-विदुग्गाणि वा पव्वयाणि वा पव्वय-विदुग्गाणि वा कण्णसोय-पडियाए अभिसंधारेति, अभिसंधारेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः कच्छान् वा गहनानि वा नूमानि वा वनानि वा वनविदुर्गाणि वा पर्वतानि वा पर्वतविदुर्गाणि वा कर्णश्रोतःप्रतिज्ञया अभिसंधारयति, अभिसंधारयन्तं वा स्वदते।

१४१. जो भिक्षु कच्छ, गहन, नूम, वन, वनविदुर्ग, पर्वत अथवा पर्वतविदुर्ग को कान से सुनने की प्रतिज्ञा से जाने का संकल्प करता है अथवा संकल्प करने वाले का अनुमोदन करता है।

१४२. जे भिक्खू गामाणि वा णगराणि वा खेडाणि वा कब्बडाणि वा मडंबाणि वा दोणमुहाणि वा पट्टणाणि वा आगराणि वा संबाहाणि वा सण्णिवेसाणि वा कण्णसोय-

यो भिक्षुः ग्रामान् वा नगराणि वा खेटानि वा कर्बटानि वा मडम्बानि वा द्रोणमुखानि वा पत्तनानि वा आकरान् वा सम्बाधान् वा सन्निवेशान् वा कर्णश्रोतःप्रतिज्ञया अभिसंधारयति,

१४२. जो भिक्षु ग्राम, नगर, खेट, कर्बट, मडंब, द्रोणमुख, पत्तन, आकर, संबाध अथवा सन्निवेश को कान से सुनने की प्रतिज्ञा से जाने का संकल्प करता है अथवा संकल्प करने वाले का अनुमोदन करता है।

पडियाए अभिसंधारेति, अभिसंधारेंतं वा सातिज्जति ।।

अभिसंधारयन्तं वा स्वदते।

१४३. जे भिक्खू गाममहाणि वा णगरमहाणि वा खेडमहाणि वा कब्बडमहाणि वा मडंबमहाणि वा दोणमुहमहाणि वा पट्टणमहाणि वा आगरमहाणि वा संबाहमहाणि वा सण्णिवेसमहाणि वा कण्णसोय-पडियाए अभिसंधारेति, अभिसंधारेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः ग्राममहान् वा नगरमहान् वा खेटमहान् वा कर्बटमहान् वा मडम्बमहान् वा द्रोणमुखमहान् वा पत्तनमहान् वा आकरमहान् वा सम्बाधमहान् वा सन्निवेशमहान् वा कर्णश्रोतःप्रतिज्ञया अभिसंधारयति, अभिसंधारयन्तं वा स्वदते।

१४३. जो भिक्षु ग्राममहोत्सव, नगरमहोत्सव, खेटमहोत्सव, कर्बटमहोत्सव, मडंब-महोत्सव, द्रोणमुखमहोत्सव, पत्तन-महोत्सव, आकरमहोत्सव, संबाधमहोत्सव अथवा सन्निवेशमहोत्सव को कान से सुनने की प्रतिज्ञा से जाने का संकल्प करता है अथवा संकल्प करने वाले का अनुमोदन करता है।

१४४. जे भिक्खू गामवहाणि वा णगरवहाणि वा खेडवहाणि वा कब्बडवहाणि वा मडंबवहाणि वा दोणमुहवहाणि वा पट्टणवहाणि वा आगरवहाणि वा संबाहवहाणि वा सण्णिवेसवहाणि वा कण्णसोय-पडियाए अभिसंधारेति, अभिसंधारेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः ग्रामवधान् वा नगरवधान् वा खेटवधान् वा कर्बटवधान् वा मडम्बवधान् वा द्रोणमुखवधान् वा पत्तनवधान् वा आकरवधान् वा सम्बाधवधान् वा सन्निवेशवधान् वा कर्णश्रोतःप्रतिज्ञया अभिसंधारयति, अभिसंधारयन्तं वा स्वदते।

१४४. जो भिक्षु ग्रामवध, नगरवध, खेटवध, कर्बटवध, मडंबवध, द्रोणमुखवध, पत्तनवध, आकरवध, संबाधवध अथवा सन्निवेशवध को कान से सुनने की प्रतिज्ञा से जाने का संकल्प करता है अथवा संकल्प करने वाले का अनुमोदन करता है।

१४५. जे भिक्खू गामपहाणि वा णगरपहाणि वा खेडपहाणि वा कब्बडपहाणि वा मडंबपहाणि वा दोणमुहपहाणि वा पट्टणपहाणि वा आगरपहाणि वा संबाहपहाणि वा सण्णिवेसपहाणि वा कण्णसोय-पडियाए अभिसंधारेति, अभिसंधारेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः ग्रामपथान् नगरपथान् वा खेटपथान् वा कर्बटपथान् वा मडम्बपथान् वा द्रोणमुखपथान् वा पत्तनपथान् वा आकरपथान् वा सम्बाधपथान् वा सन्निवेशपथान् वा कर्णश्रोतःप्रतिज्ञया अभिसंधारयति, अभिसंधारयन्तं वा स्वदते।

१४५. जो भिक्षु ग्रामपथ, नगरपथ, खेटपथ, कर्बटपथ, मडंबपथ, द्रोणमुखपथ, पत्तनपथ, आकरपथ, संबाधपथ अथवा सन्निवेशपथ को कान से सुनने की प्रतिज्ञा से जाने का संकल्प करता है अथवा संकल्प करने वाले का अनुमोदन करता है।

१४६. जे भिक्खू आसकरणाणि वा हत्थिकरणाणि वा उट्टकरणाणि वा गोणकरणाणि वा महिसकरणाणि वा सूकरकरणाणि वा कण्णसोय-पडियाए अभिसंधारेति, अभिसंधारेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अश्वकरणानि वा हस्तिकरणानि वा उष्ट्रकरणानि वा गोकरणानि वा महिषकरणानि वा शूकरकरणानि वा कर्णश्रोतःप्रतिज्ञया अभिसंधारयति, अभिसंधारयन्तं वा स्वदते।

१४६. जो भिक्षु अश्वकरण, हस्तिकरण, उष्ट्रकरण, गौकरण, महिषकरण अथवा शूकरकरण को कान से सुनने की प्रतिज्ञा से जाने का संकल्प करता है अथवा संकल्प करने वाले का अनुमोदन करता है।

१४७. जे भिक्खू आसजुद्धाणि वा हत्थिजुद्धाणि वा उट्टजुद्धाणि वा

यो भिक्षुः अश्वयुद्धानि वा हस्तियुद्धानि वा उष्ट्रयुद्धानि वा गोयुद्धानि वा

१४७. जो भिक्षु अश्वयुद्ध, हस्तियुद्ध, उष्ट्रयुद्ध, गौयुद्ध, महिषयुद्ध अथवा

गोणजुद्धाणि वा महिसजुद्धाणि वा सूकरजुद्धाणि वा कण्णसोयपडियाए अभिसंधारेति, अभिसंधारेंतं वा सातिज्जति ।।

महिषयुद्धानि वा शूकरयुद्धानि वा कर्णश्रोतःप्रतिज्ञया अभिसंधारयति, अभिसंधारयन्तं वा स्वदते।

शूकरयुद्ध को कान से सुनने की प्रतिज्ञा से जाने का संकल्प करता है अथवा संकल्प करने वाले का अनुमोदन करता है।

१४८. जे भिक्खू उज्जूहियाठाणाणि वा हयजूहियाठाणाणि वा गयजूहिया-ठाणाणि वा कण्णसोयपडियाए अभिसंधारेति, अभिसंधारेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः 'उज्जूहिया'स्थानानि वा हययूथिकास्थानानि वा गजयूथिका-स्थानानि वा कर्णश्रोतःप्रतिज्ञया अभिसंधारयति, अभिसंधारयन्तं वा स्वदते।

१४८. जो भिक्षु उज्जूहिया स्थान, हययूथिका स्थान अथवा गजयूथिका स्थान को कान से सुनने की प्रतिज्ञा से जाने का संकल्प करता है अथवा संकल्प करने वाले का अनुमोदन करता है।

१४९. जे भिक्खू अभिसेयट्ठाणाणि वा अक्खाइयट्ठाणाणि वा माणुम्माणियट्ठाणाणि वा महयाहय-णट्ट-गीय - वादिय - तंती - तल-ताल-तुडिय-पडुप्पवाइयट्ठाणाणि वा कण्णसोयपडियाए अभिसंधारेति, अभिसंधारेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अभिषेकस्थानानि वा आख्यायिकास्थानानि वा मानोन्मानिकस्थानानि वा महदाहत-नृत्य-गीत-वादित्र-तन्त्री-तल-ताल-त्रुटित-पटुप्रवादित-स्थानानि वा कर्णश्रोतःप्रतिज्ञया अभिसंधारयति, अभिसंधारयन्तं वा स्वदते।

१४९. जो भिक्षु अभिषेक स्थान, आख्यायिका स्थान, मानोन्मान स्थान अथवा आहत नाट्यों, गीतों तथा कुशल वादक द्वारा बजाए हुए वादित्र, तंत्र, तल, ताल और त्रुटित की महान् ध्वनि वाले स्थान को कान से सुनने की प्रतिज्ञा से जाने का संकल्प करता है अथवा संकल्प करने वाले का अनुमोदन करता है।

१५०. जे भिक्खू डिंबाणि वा डमराणि वा खाराणि वा वेराणि वा महाजुद्धाणि वा महासंगामाणि वा कलहाणि वा बोलाणि वा कण्णसोयपडियाए अभिसंधारेति, अभिसंधारेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः डिम्बानि वा डमराणि वा क्षाराणि वा वैराणि वा महायुद्धानि वा महासंग्रामान् वा कलहान् वा बोलान् वा कर्णश्रोतःप्रतिज्ञया अभिसंधारयति, अभिसंधारयन्तं वा स्वदते।

१५०. जो भिक्षु डिंब, डमर, खार, वैर, महायुद्ध, महासंग्राम, कलह अथवा कोलाहल को कान से सुनने की प्रतिज्ञा से जाने का संकल्प करता है अथवा संकल्प करने वाले का अनुमोदन करता है।

१५१. जे भिक्खू विरूवरूवेसु महुस्सवेसु इत्थीणि वा पुरिसाणि वा थेराणि वा मज्झिमाणि वा डहराणि वा–अणलंकियाणि वा सुअलंकियाणि वा गायंताणि वा वायंताणि वा णच्चंताणि वा हसंताणि वा रमंताणि वा मोहंताणि वा विउलं असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा परिभाएंताणि वा परिभुंजंताणि वा कण्णसोयपडियाए अभिसंधारेति, अभिसंधारेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षु विरूपरूपेषु महोत्सवेषु स्त्रीः वा पुरुषान् वा स्थविरान् वा मध्यमान् वा डहरान् वा–अनलंकृतान् वा स्वलंकृतान् वा गायतः वा वादयतः वा नृत्यतः वा हसतः वा रममाणान् वा मोहयतः वा विपुलम् अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा परिभाजयतः वा परिभुञ्जानान् वा कर्णश्रोतःप्रतिज्ञया अभिसंधारयति, अभिसंधारयन्तं वा स्वदते।

१५१. जो भिक्षु विविध प्रकार के महोत्सवों में, जहां अलंकाररहित अथवा सुअलंकृत, स्थविर, मध्यमवय वाले अथवा छोटीवय वाले, स्त्री अथवा पुरुष, गाते हुए, बजाते हुए, नाचते हुए, हंसते हुए, क्रीड़ा करते हुए, मोहित करते हुए, विपुल अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य को बांट रहे हों अथवा खा रहे हों, उन्हें कान से सुनने की प्रतिज्ञा से जाने का संकल्प करता है अथवा संकल्प करने वाले का अनुमोदन करता है।

सद्दासत्ति-पदं

१५२. जे भिक्खू इहलोइएसु वा सद्देसु वा परलोइएसु वा सद्देसु दिट्ठेसु वा सद्देसु अदिट्ठेसु वा सद्देसु सुएसु वा सद्देसु असुएसु वा सद्देसु विण्णाएसु वा सद्देसु अविण्णाएसु वा सद्देसु सज्जति रज्जति गिज्झति अज्झोववज्जति, सज्जमाणं वा रज्जमाणं वा गिज्झमाणं वा अज्झोववज्जमाणं वा सातिज्जति–

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घातियं।।

शब्दासक्ति-पदम्

यो भिक्षुः ऐहलौकिकेषु वा शब्देषु पारलौकिकेषु वा शब्देषु दृष्टेषु वा शब्देषु अदृष्टेषु वा शब्देषु श्रुतेषु वा शब्देषु अश्रुतेषु वा शब्देषु विज्ञातेषु वा शब्देषु अविज्ञातेषु वा शब्देषु सजति रज्यति गृध्यति अध्युपपद्यते सजन्तं वा रज्यन्तं वा गृध्यन्तं वा अध्युपपद्यमानं वा स्वदते।

तत्सेवमानः आपद्यते चातुर्मासिकं परिहारस्थानम् उद्घातिकम्।

शब्दासक्ति-पद

१५२. जो भिक्षु ऐहलौकिक शब्दों अथवा पारलौकिक शब्दों में, दृष्ट शब्दों अथवा अदृष्ट शब्दों में, श्रुत शब्दों अथवा अश्रुत शब्दों में, विज्ञात शब्दों अथवा अविज्ञात शब्दों में आसक्त होता है, अनुरक्त होता है, गृद्ध होता है, अध्युपपन्न होता है और आसक्त, अनुरक्त, गृद्ध अथवा अध्युपपन्न होने वाले का अनुमोदन करता है।[13]

–इन स्थानों का आसेवन करने वाले भिक्षु को उद्घातिक चातुर्मासिक परिहारस्थान प्राप्त होता है।

टिप्पण

१. सूत्र १,२

प्रस्तुत आगम के बारहवें उद्देशक में कारुण्य की प्रतिज्ञा से किसी त्रस प्राणी को घास, मूंज, काठ आदि के बन्धन से बांधने तथा बंधे हुए प्राणी को खोलने का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है।[१] प्रस्तुत उद्देशक में कुतूहलवृत्ति से त्रस प्राणियों को बांधने एवं खोलने का प्रायश्चित्त बतलाया गया है। कुतूहलवृत्ति चंचलता का प्रतीक है। इससे समिति एवं गुप्ति में दोष लगता है। बंधन से तड़फड़ाते प्राणी और खोलने के बाद मुक्त हुए बछड़े आदि प्राणी भिक्षु को चोट पहुंचा सकते हैं, अन्य प्राणियों की घात कर सकते हैं।[२] अतः भिक्षु के लिए त्रस प्राणियों को बांधने एवं खोलने का निषेध है।

२. सूत्र ३-१४

प्रस्तुत आगम के सातवें उद्देशक में स्त्री के साथ अब्रह्म के संकल्प से विविध प्रकार की मालाओं के निर्माण करने, धारण करने एवं उन्हें शरीर पर धारण करने का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है तथा इसी प्रकार विविध धातुओं, विविध आभूषणों तथा विविध प्रकार के वस्त्रों के निर्माण, धारण एवं परिभोग का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है। प्रस्तुत उद्देशक में कुतूहल वृत्ति से उन्हीं मालाओं, धातुओं, आभूषणों एवं वस्त्रों के निर्माण, धारण एवं परिभोग का प्रायश्चित्त बतलाया गया है। कामवासना से की जाने वाली प्रवृत्तियां जघन्यतर मनोवृत्ति की परिचायक होती हैं तथा अधिक दोष की हेतु बनती हैं। अतः वहां इसका प्रायश्चित्त गुरु चातुर्मासिक बताया गया है। यहां उनकी पृष्ठभूमि में कुतूहलवृत्ति है। अतः इनका प्रायश्चित्त लघुचातुर्मासिक बताया गया है।

३. सूत्र १५-१२२

भिक्षु रोगप्रतिकर्म, मार्गश्रान्ति का निवारण आदि प्रयोजनों से यतनापूर्वक पादपरिकर्म, कायपरिकर्म, व्रणप्रतिकर्म आदि कार्य स्वयं कर सकता है। अपेक्षा होने पर साधर्मिक भिक्षुओं के वैयावृत्य के रूप में पारस्परिक पादपरिकर्म भी विधिसम्मत है। किन्तु गृहस्थ अथवा अन्यतीर्थिक से स्वयं का वैयावृत्य करवाना अनुज्ञात नहीं है।

प्रस्तुत उद्देशक में पादपरिकर्म से लेकर शीर्षद्वारिका पर्यन्त सम्पूर्ण आलापक का दो रूपों में प्ररूपण हुआ है–

- निर्ग्रन्थी गृहस्थ अथवा अन्यतीर्थिक से निर्ग्रन्थ के पादप्रमार्जन आदि कार्य करवाती है।
- निर्ग्रन्थ गृहस्थ अथवा अन्यतीर्थिक से निर्ग्रन्थी के पादप्रमार्जन आदि कार्य करवाता है।

इन दोनों ही स्थितियों में मिथ्यात्व, जनापवाद, स्पर्श से भावात्मक संबंध एवं रागोत्पत्ति, स्वयं एवं पर के मोह की उदीरणा, सूत्रार्थ-हानि, संपातिम जीवों की हिंसा, पश्चात्कर्म, बाकुशत्व आदि अनेक दोष संभव हैं।[३] भाष्यकार के अनुसार यदि निर्ग्रन्थ के पादप्रमार्जन आदि कार्य निर्ग्रन्थी करे तो गुरुचातुर्मासिक, गृहस्थस्त्रियां करे तो गुरुचातुर्मासिक तथा गृहस्थपुरुष करे तो लघुचातुर्मासिक प्रायश्चित्त प्राप्त होता है।[४] इसी भाष्यगाथा के आधार पर यह भी ज्ञातव्य है कि निर्ग्रन्थी के पादप्रमार्जन आदि कार्य यदि निर्ग्रन्थ, अन्यतीर्थिकपुरुष अथवा गृहस्थ करे तो गुरुचातुर्मासिक एवं अन्यतीर्थिकस्त्रियां अथवा गृहस्थस्त्रियां करे तो लघुचातुर्मासिक प्रायश्चित्त प्राप्त होता है। निशीथचूर्णि के अनुसार सामान्यतः निर्ग्रन्थी के उत्तरोष्ठ के रोम नहीं होते। अतः तत्सम्बन्धी सूत्र संभव नहीं है। अथवा किसी अलक्षणा स्त्री की अपेक्षा से यह सूत्र भी संभव है।[५]

४. सूत्र १२३,१२४

जो व्रत, संयम आदि गुणों से समान हों अथवा जो दस प्रकार के स्थितकल्प, दो प्रकार के स्थापनाकल्प तथा उत्तरगुण कल्प में समान सामाचारी वाले होते हैं, वे सदृश कहलाते हैं।[६]

दसविध स्थितकल्प–१. अचेलकता २. औद्देशिक ३. शय्यातरपिंड ४. राजपिंड ५. कृतिकर्म ६. व्रत ७. ज्येष्ठ ८. प्रतिक्रमण ९. मासकल्प और १०. पर्युषणाकल्प।[७]

द्विविध स्थापनाकल्प–१. अकल्प स्थापना कल्प–अकल्पनीय

---

१. निसीह. १२/१,२
२. निभा. गा. ३९८१,३९८२ सचूर्णि
३. वही, गा. ५९२०-५९२४
४. वही, गा. ५९१९
५. वही, भा. ४ चू.पृ. १८७–उत्तरोट्ठरोमसुत्तं ण संभवति, अलक्खणाए वा संभवति।
६. वही, गा. ५९३२
७. वही, गा. ५९३३

आहार, उपधि और शय्या का ग्रहण न करना। २. शैक्षस्थापनाकल्प--अयोग्य स्त्री, पुरुष एवं नपुंसक को दीक्षित न करना।[१]

उत्तरगुणकल्प--उद्गम, उत्पादन एवं एषणा से विशुद्ध आहार आदि का ग्रहण, समिति, गुप्ति, भावना आदि का यथोक्त रूप में समान परिपालन आदि।[२]

इन विविध मूलगुणों एवं उत्तरगुणों से समानधर्मा निर्ग्रन्थ एवं निर्ग्रन्थी साम्भोजिक कहलाते हैं। उन समानधर्मा साधुओं को साधु एवं साध्वियों को साध्वियां अपने साथ रहने का स्थान दे, उनके आने अथवा मिलने पर साधर्मिक वात्सल्य का परिचय दे। सौहार्द एवं साधर्मिक वात्सल्य से तीर्थ की प्रभावना होती है।[३]

साधर्मिक साधु-साध्वियों के उपाश्रय में स्थान होने पर भी यदि साधु अथवा साध्वी उपाश्रय से बाहर प्रवास करते हैं और उन्हें श्वापद, स्तेन, प्रत्यनीक आदि के उपद्रव से उपद्रुत होना पड़े तो उन बहिर्निवासी साधु अथवा साध्वी को जो दोष लगते हैं, उन सबका प्रायश्चित्त स्थान न देने वाले को प्राप्त होता है।[४]

५. सूत्र १२५,१२६

मालापहृत उद्गम का तेरहवां दोष हैं। साधु के लिए माल--मंच आदि से जो भोजन आदि लाया जाता है, वह मालापहृत होता हैं।[५]

निशीथभाष्य के अनुसार मालापहृत भिक्षा के तीन प्रकार होते हैं--

१. ऊर्ध्वमालापहृत--द्वितीय मंजिल, छींके आदि जहां से वस्तु का उतारने के लिए नसैनी, फलक, पीठ आदि की आवश्यकता हो।

२. अधोमालापहृत--तलघर आदि में उतर कर जो वस्तु लाई जाए।

३. उभयतः मालापहृत--बहुत ऊंचे अथवा बहुत गहरे कोठे आदि में रखी हुई वस्तु, जिसे निकालने के लिए बहुत ऊंचा होना अथवा झुकना पड़े।[६]

आयारचूला[७] तथा दसवेआलियं[८] में साधु के लिए मालापहृत भिक्षा का निषेध किया गया है।

प्रस्तुत सूत्रद्वयी में मालापहृत तथा कोष्ठिकागुप्त अशन, पान आदि को ग्रहण करने का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है। नसैनी, पीढे आदि पर चढ़कर वस्तु उतारते हुए गृहस्थ गिर जाए अथवा उसके हाथ से बर्तन या वस्तु गिर जाए तो संयमविराधना, आत्मविराधना तथा भाजनविराधना संभव है। चूर्णिकार के अनुसार एक बौद्ध भिक्षु के लिए ऊपर से वस्तु उतारती हुई स्त्री को सर्प ने डस लिया और उसकी मृत्यु हो गई। इस प्रकार की घटनाओं से लोकनिन्दा, साधुओं के प्रति प्रद्वेष तथा भिक्षा के व्यवच्छेद आदि दोष भी उत्पन्न होते हैं।[९]

शब्द विमर्श

१. कोट्ठिया--पुरुष-प्रमाण अथवा उससे कुछ हीन-अधिक प्रमाण वाला मिट्टी से बना कोठा, जिसमें खाद्य वस्तुएं रखी जाती थीं।[१०]

२. उक्कुज्जिय--ऊपर होकर[११]।

३. अवकुज्जिय--ऊपर से तिरछा होकर।[१२]

४. ओहरिय--पीठिका आदि पर चढ़ कर उतारकर।[१३]

६. सूत्र १२७

उद्गम का एक दोष है उद्भिन्न। उसके दो प्रकार हैं--

पिहित-उद्भिन्न--चपड़ी, चर्म अथवा मिट्टी के लेप से बंद पात्र का मुंह खोलना।

कपाट-उद्भिन्न--बन्द किवाड़ को खोलना।[१४]

बर्तन आदि पर ढक्कन लगाकर, वस्त्र, चर्म अथवा मिट्टी से उपलिप्त कर पूरी तरह बन्द की हुई वस्तु को निकालने में जीवविराधना की संभावना रहती है। साधु को देने के निमित्त मिट्टी के लेप को उतारे और देने के बाद पुनः लेप लगाए, तब पृथिवीकाय, अप्काय एवं अग्निकाय के जीवों की विराधना होती है। किवाड़ को तोड़ कर, ताला तोड़कर अथवा चूलिया उतार कर साधु को भिक्षा दी जाए, तब भी जीवविराधना, गृहस्थों में अप्रीति अथवा अप्रतीति आदि दोष संभव हैं। अतः 'मृत्तिकोपलिप्त' पद से उपलक्षण से सभी प्रकार की पिहित-उद्भिन्न भिक्षा का निषेध ज्ञातव्य है।[१५] आयारचूला[१६] तथा दसवेआलियं[१७]

---

१. निभा. ४ चू.पृ. १८८--ठवणाकप्पो दुविहो--अकप्पठवणाकप्पो सेहठवणाकप्पो य।
२. वही, गा. ५९३५
३. वही, गा. ५९४०
४. वही, गा. ५९३९
५. पि.नि. म. वृ. ३५--मालात् मंचादेरपहृतं--साध्वर्थमानीतं यद्भक्तादि तन्मालापहृतम्।
६. निभा. गा. ५९४९ सचूर्णि।
७. आचू. १/८७-८९
८. दसवे. ५/१/६७-६९
९. निभा. गा. ५९५०, ५९५१ सचूर्णि।
१०. वही, भा. ४ चू.पृ. १९२--पुरिसप्पमाणा हीणाधिया वा चिक्खल्लमती कोट्ठिया भवति।
११. वही--उड्डिया उवरिहुत्तिकरणं।
१२. वही--उड्डाए तिरियहुत्तिकरणं।
१३. वही--पेढियमादिसु आरुभिउं ओआरेति।
१४. वही, पृ. १९२--उब्भिण्णं दुविधं--पिहुब्भिण्णं कवाडुब्भिण्णं च।
१५. वही--साहुणिमित्तं उब्भिण्णे कयविक्कतेसु अधिकरणं कवाड-पिहितुब्भिण्णे कुंचियवेधे तालए वा आवत्तणपेढियाए वा तसमादिविराहणा।
१६. आचू. १/९०,९१
१७. दसवे. ५/१/४५,४६

में भी उद्भिन्न भिक्षा का निषेध किया गया है।

७. सूत्र १२८-१३१

प्रासुक एवं एषणीय खाद्य पदार्थ अथवा उपधि यदि सचित्त अथवा मिश्र पृथिवीकाय, अप्काय, तेजस्काय अथवा वनस्पतिकाय पर रखी हुई हो तो साधु के लिए अग्राह्य है। स्थावर जीव अत्यन्त सूक्ष्म एवं अल्पसंहनन वाले होते हैं। उन्हें संघट्टन मात्र से भयंकर वेदना की अनुभूति होती है। अतः उन पर अनन्तर अथवा परम्पर निक्षिप्त वस्तु को ग्रहण करने से निक्षिप्त दोष लगता है।[१] आयारचूला में भी पृथिवीकाय, अप्काय आदि पर निक्षिप्त वस्तु को ग्रहण करने का निषेध किया गया है।[२] प्रस्तुत आलापक में निक्षिप्त भिक्षा को ग्रहण करने का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है।

८. सूत्र १३२

अत्यधिक उष्ण अशन, पान आदि को ग्रहण करने से दाता एवं ग्राहक के हाथ आदि जलने की संभावना रहती है। ग्रहण करते समय अशन आदि नीचे गिर जाएं तो भूमि पर चलने वाले प्राणियों की हिंसा, पात्र के लेप का विनाश, भाजन-भेद आदि दोष संभव हैं।[३] अत्युष्ण आहार आदि को मुंह से फूंक देकर अथवा सूर्प, पंखे, वस्त्र आदि से वीजन कर दिया जाए तो साधु के निमित्त वायुकाय की विराधना होती है।[४] अतः आयारचूला में फूंक देकर अथवा वीजन कर दिए जाने वाले अत्यधिक उष्ण अशन, पान आदि को ग्रहण करने का निषेध किया गया है।[५] प्रस्तुत सूत्र में उस निषेध का अतिक्रमण कर अशन, पान आदि के ग्रहण को प्रायश्चित्तार्ह माना गया है।

शब्द विमर्श

१. **सुप्प**—शूर्प

२. **विहुवण**—पंखे

३. **तालियंट**—ताड़पत्र का वीजन

४. **पत्त**—पद्मिनीपत्र आदि

५. **साहा**—वृक्ष की डाल

६. **साहाभंग**—शाखा का टुकड़ा

७. **पिहुण**—मोरपंख

८. **पिहुणहत्थ**—मोरपिच्छी (मोरपंखों का एक साथ बंधा हुआ गुच्छा)।

९. **चेलकण्ण**—वस्त्र का एक देश।

तुलना हेतु द्रष्टव्य दसवे. ४/२१ (टिप्पण एवं शब्द विमर्श)

९. सूत्र १३३

कुएं, तालाब अथवा वर्षा आदि का जल जब तक शस्त्रपरिणत न हो जाए, तब तक मुनि के लिए अग्राह्य होता है।

आयारचूला में कुल इक्कीस प्रकार के पानक का उल्लेख हुआ है, जो प्रासुक, एषणीय हों तो ग्रहण किए जा सकते हैं।[६] यदि ये अधुनाधौत, अनाम्ल, अव्युत्क्रान्त, अपरिणत, अविध्वस्त हों तो अप्रासुक अनेषणीय होते हैं अतः भिक्षु के लिए अग्राह्य हैं।

प्रस्तुत सूत्र में ग्यारह प्रकार के ऐसे धोवण—पानी का उल्लेख है जो चिरकाल के बाद वर्ण, गंध, रस आदि से परिणत हो जाने पर ग्राह्य होते हैं।

१. **उस्सेइम**—आटे से मिश्रित जल, आटा धोया हुआ जल।[७] उष्ण वस्तु डाला हुआ शीतल (अप्रासुक) जल।[८]

२. **संसेइम**—आटे का धोवन। (विस्तार हेतु द्रष्टव्य दसवे. ५/१/७५ का टिप्पण) उष्ण वस्तु तिल आदि को धोया हुआ अथवा उन पर डाला हुआ शीतोदक।[९]

३. **चाउलोदग**—चावल धोया हुआ पानी।[१०]

४. **वारोदग**—वार का अर्थ है घड़ा। गुड़ आदि के घड़े को धोया हुआ पानी (विस्तार हेतु द्रष्टव्य दसवे. ५/१/७५ का टिप्पण)। चूर्णिकार ने इसके स्थान पर 'वालधोवन' शब्द की व्याख्या की है।[११]

५. **तिलोदग**—तिल धोया हुआ पानी।

६. **तुसोदग**—दाल आदि धोया हुआ, तुषयुक्त जल। व्रीहि आदि को धोया हुआ जल।[१२]

७. **जवोदग**—यव (जौ) धोया हुआ जल।

८. **आयाम**—अवस्रावण।[१३]

९. **सोवीर**—आरनाल।[१४]

१०. **अंबकंजिय**—आम्ल कंजिका।

११. **सुद्धवियड**—प्रासुक जल।[१५]

प्रस्तुत सूत्र में गृहीत आटे, तिल, चावल, जौ आदि के धोवन के आधार पर यह भी ज्ञातव्य है कि इसी प्रकार के अन्य खाद्य पदार्थ से लिप्त हाथ या पात्र को धोने पर यदि पानी के

१. निभा. ५९५९-५९६१
२. आचू. १/९२-९७
३. निभा. गा. ५९६६
४. वही, भा. ४ चू.पृ. १९४
५. आचू. १/९६
६. वही, १/९८, १/१०४, १/१५१
७. पाइय.
८. निभा. भा.. ४, चू.पृ. १९५—उसिणं सीतोदगे छुब्भति तं उस्सेइमं पाणियं।
९. वही—जं पुण उसिणं चेव उवरि सीतोदगेण चेव सिंचियं.....तिला उण्हपाणिएण सिण्णा जति सीतोदगा धोवंति तो संसेतिमं भण्णति।
१०. आचू. वृ.प. ३४५—तन्दुलधावनोदकं।
११. निभा. ४ चू.पृ. १९६,१९७
१२. पाइय.
१३. वही,
१४. आचू. टी.प. ३४६
१५. वही

वर्ण, गंध, रस आदि परिणत हो जाएं तो अपेक्षित कालसीमा के पश्चात् उसे ग्रहण किया जा सकता है।

एषणा का आठवां दोष है अपरिणत। जो जल आम्ल, व्युत्क्रान्त, परिणत और विध्वस्त होने के कारण प्रासुक हो, वह चिरकाल धौत जल मुनि के लिए एषणीय (ग्राह्य) होता है।

शब्द विमर्श

१. अधुनाधौत–परम्परा के अनुसार जिस धोवन को एक मुहूर्त्त न हुआ हो, वह अधुनाधौत होता है। शास्त्रीय परिभाषा के अनुसार जिसका वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श न बदला हो, वह अधुनाधौत है।[1]

२. अनाम्ल–जिसका स्वाद न बदला हो।[2]

३. अव्युत्क्रान्त–जिसकी गन्ध न बदली हो।[3]

४. अपरिणत–जिसका रंग न बदला हो।[4]

५. अविध्वस्त–विरोधी शस्त्र के द्वारा जिसके जीव ध्वस्त न हुए हों।[5]

१०. सूत्र १३४

स्वयं की विशिष्ट शारीरसम्पदा, चक्र, चंद्र, अंकुश आदि विशेष लक्षणसम्पन्नता एवं सत्त्व, तेज आदि गुणसम्पदा का कथन करना, स्वयं को आचार्य की अर्हता से सम्पन्न बताना आत्मश्लाघा एवं पदलिप्सा की वृत्ति का परिचायक है। अधिक आत्मश्लाघा करने वाला कदाचित् गौरव के कारण क्षिप्तचित्त हो जाता है। अतः आत्मश्लाघा नहीं करनी चाहिए। प्रस्तुत संदर्भ में भाष्यकार ने आत्मश्लाघा से होने वाले अनेक दोषों के साथ-साथ प्रयोजनविशेष, प्रभावना आदि अनेक अपवादों का भी कथन किया है।

विस्तार हेतु द्रष्टव्य निभा. गा. ५९८३-५९८६

११. सूत्र १३५

भिक्षु की प्रत्येक प्रवृत्ति संयत, संयम में उपयोगी एवं संयम में वृद्धि करने वाली होनी चाहिए। निरर्थक, स्वयं या दूसरे के मोह की उदीरणा करने वाली कुतूहलपूर्ण प्रवृत्तियां इन्द्रियजय के लिए घातक हैं। मात्र जनरंजन के लिए की गई स्वर-साधना, मुंह विस्फारित कर विकारपूर्ण हास्य, शंख, शृंग आदि वाद्य बजाना, नृत्य और अभिनय करना, सिंहनाद, चिंघाड़ना आदि विविध प्रकार की ध्वनियों को उत्पन्न करना–ये सब प्रवृत्तियां संयम की विराधक हैं। भाष्यकार के अनुसार कदाचित् इन प्रवृत्तियों से पूर्वोपशान्त रोग प्रकुपित हो सकता है, अभिनव शूल आदि रोग पैदा हो सकता है, वात, श्लेष्म आदि के प्रकोप से कदाचित् मुंह असंपुटित रह जाए–इत्यादि प्रकार से आत्मविराधना संभव है।[6] धर्मकथा आदि के प्रसंग में गायन, अतिशय ज्ञानोत्पत्ति के समय हर्षवशात् की जाने वाली हर्षध्वनि, विपत्ति, अटवी आदि में संकेत के लिए किया जाने वाला सिंहनाद–इसके अपवाद हैं।[7]

शब्द विमर्श

१. अभिणय–अभिनय करना।

२. हयहेसिय–घोड़े के समान ध्वनि करना।[8]

३. हत्थिगुलगुलाइय–हाथी के समान चिंघाड़ना।

४. उक्कुट्ठसीहणाय–हर्ष अथवा रोष के कारण भूमि का आस्फालन करते हुए उच्चस्वर में सिंहगर्जना करना।[9]

१२. सूत्र १३६-१३९

ठाणं में वाद्य के चार प्रकार बतलाए गए हैं।

१. वितत–चर्म से आनद्ध ढोल आदि वाद्यों को वितत कहा जाता है। गीत और वाद्य के साथ ताल और लय के प्रदर्शनार्थ इन चर्मावनद्ध वाद्यों का प्रयोग किया जाता है। प्रस्तुत उद्देशक के समान आयारचूला में भी भेरी, पटह, मुरव, मृदंग, नंदी, झल्लरी, डमरूक, मड्डय, सदुय, प्रदेश और गोलुकी को वितत वाद्यों के अन्तर्गत परिगणित किया गया है।[10] इनके अतिरिक्त ढक्का, विश्वक, दर्पवाद्य, कुंडली, स्तुंग, दुंदुभी, मर्छल, अणीकस्थ आदि वितत वाद्यों के नाम प्राचीन ग्रन्थों में उपलब्ध होते हैं।[11]

ये वाद्य कोमल भावनाओं का उद्दीपन करने के साथ-साथ वीरोचित उत्साह बढ़ाने में भी कार्यकर होते हैं। अतः इनका उपयोग धार्मिक समारोहों तथा युद्धों में भी होता रहा है।

२. तत–इसका अर्थ है तंत्रीयुक्त वाद्य। आयारचूला और निसीहज्झयणं में वीणा, विपंची, बद्धीसग, तुणय, पणव तुंबवीणिया, ढंकुण और झोडय–ये वाद्य 'तत' के अंतर्गत गिनाए गए हैं।[12]

भरतनाट्य, संगीत-रत्नाकर तथा संगीत-दामोदर आदि ग्रन्थों

१. निभा. भा. ४ चू.पृ. १९५–अधुणा धोतं अचिरकालधोतं।
२. वही–रसतो अणंबीभूतं।
३. वही
४. वही–न परिणयं अपरिणतं स्वभाववर्णस्थमित्यर्थः।
५. वही–जे वण्णगंधरसफासेहिं सव्वेहिं ध्वस्तं न विद्धत्थं अविद्धत्थं सर्वथा स्वभावस्थमित्यर्थः
६. वही, गा. ५९८८,५९८९ (सचूर्णि)
७. वही, गा. ५९९० (सचूर्णि)
८. वही, भा. ४ पृ. १९९–हयस्स सरिसं णायं करेइ।
९. वही–उक्किट्ठसंघयणसत्तिसंपन्नो रुट्ठो वा तुट्ठो वा भूमी अप्फालेत्ता सीहस्सेव णायं करेति।
१०. (क) निसीह. १७/१३६
(ख) आचू. ११/१
११. प्राचीन भारत के वाद्य यंत्र (कल्याण/हिन्दु संस्कृति अंक, पृ. ७२१,७२२
१२. (क) निसीह. १७/१३७
(ख) आचू. ११/२

में प्राचीन भारत के वाद्य यंत्रों के विषय में अनेक प्रकार की जानकारियां उपलब्ध होती हैं।

३. घन—कांस्य आदि धातुओं से निर्मित वाद्य घन कहलाते हैं। प्रस्तुत आगम में कंस, कंसताल, लत्तिय, गोहिय, मकरिय आदि नौ वाद्यों का उल्लेख हुआ है।[1] आयारचूला में इनके अतिरिक्त किरिकिरिया का नाम भी आया है।[2] करताल, कांस्यवन, नयघटा, शुक्तिका, कण्ठिका, घर्घर, झंझताल आदि वाद्य भी इसी वर्ग में आते हैं।

४. शुषिर—फूंक से बजाए जाने वाले बांसुरी आदि वाद्य शुषिर कहलाते हैं। प्रस्तुत आगम में इस वर्ग में शंख, वंश, वेणु आदि छह वाद्यों का उल्लेख हुआ है।[3] आयारचूला में इस वर्ग में पांच वाद्यों का उल्लेख हुआ है।[4] भरत मुनि ने इस वर्ग के अंतर्गत वंश को अंगभूत तथा शंख और डिक्किनी आदि वाद्यों को प्रत्यंग माना है। ऐसा माना जाता है कि जिसमें प्राण शक्ति की न्यूनता होती है, वह शुषिर वाद्यों को बजाने में सफल नहीं होता।

ज्ञातव्य है कि ठाणं, भगवई, णिसीहज्झयणं एवं आयारचूला में अनेक वाद्यों के नाम आए हैं किन्तु उनके स्वरूप आदि के विषय में भाष्य, टीका एवं चूर्णि में भिन्न-भिन्न जानकारियां उपलब्ध होती हैं तथा कई शब्दों के विषय में व्याख्याकार मौन हैं अतः सबका यथोचित स्वरूप तत्सम्बन्धी साहित्य से ज्ञातव्य है।

शब्द विमर्श

१. **तुणय**—तुनतुना।

२. **बब्बीसग**—तूण वाद्य।

३. **तुंबवीणिया**—तम्बूरा।

४. **गोहिय**—भांडों द्वारा कांख एवं हाथ में रखकर बजाया जाने वाला वाद्य।

५. **वालिया**—वाली देशी शब्द है—इसका अर्थ है मुंह के पवन से बजाया जाने वाला तृण-वाद्य।[5]

६. **खरमुही**—काहला (गर्दभमुखाकार काष्ठमय मुखवाला वाद्य)।

७. **पिरिपिरि**—पिपुड़ी (बांस आदि की नाली से बजने वाला वाद्य)।

इस प्रकार कुछ वाद्यों के विषय में यत्किंचित व्याख्या उपलब्ध होती है। शेष तत्कालीन साहित्य में अन्वेषणीय हैं।

विशेष हेतु द्रष्टव्य—ठाणं ४।६३२ का टिप्पण, भगवई ५।६४ का भाष्य, आयारचूला (वृ. पृ. ४१२), निशीथभाष्य ४, चूर्णि पृ. २०१

१३. सूत्र १४०-१५२

प्रस्तुत सम्पूर्ण आलापक बारहवें उद्देशक में चक्षुदर्शन की प्रतिज्ञा के साथ आया हुआ है। यहां वही सम्पूर्ण आलापक कर्णश्रवण की प्रतिज्ञा के साथ आया है। इन केदार, परिखा, उत्पल, पल्वल आदि स्थानों में जो शब्द होते हैं, जल, पशु, पक्षी आदि की ध्वनियां होती है, उन्हें सुनने के संकल्प से जाने पर भी वे ही राग, द्वेष और आसक्तिमूलक दोष आते हैं। अतः इन्द्रिय-विजय की साधना में निरत भिक्षु को वहां संकल्पपूर्वक नहीं जाना चाहिए। आयारचूला के ग्यारहवें उद्देशक में भी इनमें से कतिपय स्थानों पर शब्दश्रवण के संकल्प से जाने का निषेध किया गया है।

शब्द विमर्श हेतु द्रष्टव्य—निसीह. १२/१८-३० का टिप्पण।

---

१. निसीह. १७/१३८
२. आचू. ११/३
३. निसीह. १७/१३९
४. आचू. ११/४
५. दे.श.को.

अट्ठारसमो उद्देसो

अठारहवां उद्देशक

आमुख

प्रस्तुत उद्देशक दो विभागों (पदों) में विभक्त है–

१. नौकाविहार-पद २. वस्त्र-पद

नौकाविहार पद की तुलना आयारचूला के तृतीय अध्ययन–'इरिया' के 'णावाविहार पदं' से की जा सकती है। वहां कहा गया है–ग्रामानुग्राम परिव्रजन करते हुए कदाचित् भिक्षु अथवा भिक्षुणी ऐसे स्थान पर पहुंच जाए, जहां नौसंतार्य जल हो। उस समय यदि कोई असंयत भिक्षु की प्रतिज्ञा से नौका खरीदे, नौका उधार ले, अपनी नौका के बदले दूसरे की नौका ले, थल से जल में नौका को अवगाहित करे, नौका को जल से थल में खींचे, नौका से पानी का उत्सिंचन करे, कीचड़ में फंसी नौका को निकाले, उस पर आरोहण न करे तथा इसी प्रकार की अन्य ऊर्ध्वगामिनी, अधोगामिनी, तिर्यक्गामिनी नौका पर और एक योजन अथवा आधा योजन से अधिक प्रवाह में चलने वाली नौका में अल्पतर अथवा भूयस्तर गमन के लिए आरोहण न करे।[१] प्रस्तुत उद्देशक के नौ सूत्रों में इन सबके अतिक्रमण का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है।[२]

प्रस्तुत उद्देशक में आच्छेद्य, अनिसृष्ट एवं अभिहृत नौका पर आरोहण तथा प्रतिनाविक (आधी दूर के लिए निर्णीत नाविक) करके नौका पर आरोहण का प्रायश्चित्त बतलाया गया है। कोई नौकागत गृहस्थ यदि नौकागत भिक्षु से किसी प्रकार से नौका-संचालन में सहयोग के लिए निवेदन करे, उसके छिद्र से पानी आ रहा हो तो उसे छिद्र बन्द करने अथवा उस पानी को निकालने के लिए कहे तो भिक्षु के लिए क्या करणीय है और क्या अकरणीय–इसका सविस्तार निर्देश आयारचूला के 'णावाविहार पदं' में उपलब्ध होता है।[३] प्रस्तुत आगम में उनमें से कतिपय निषिद्ध पदों का प्रायश्चित्त बतलाया गया है।

आयारचूला के अनुसार नौका में बैठते समय भिक्षु अपने सारे उपकरणों की प्रतिलेखना कर उन्हें एक साथ बांध ले तथा मस्तक पर्यन्त सारे शरीर का प्रमार्जन कर साकार भक्त-प्रत्याख्यान करे। उसके पश्चात् एक पैर जल में, एक पैर स्थल (आकाश) में रखते हुए संयतभाव से नौका में आरोहण करे।[४] प्रस्तुत उद्देशक में दायक और ग्राहक के सोलह सांयोगिक विकल्पों का ग्रहण हुआ है, जिनमें अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य को ग्रहण करने से प्रायश्चित्त प्राप्त होता है। यहां प्रश्न होता है कि जब नौका में आरोहण करते समय साकार भक्तप्रत्याख्यान की विधि है, तब नौगत भिक्षु स्थलगत, जलगत अथवा पंकगत दायक से अशन, पान आदि ग्रहण करे तो वह प्रायश्चित्तार्ह है, इस विधि का क्या अभिप्राय? तथा आयारचूला में उपर्युक्त निर्दिष्ट सोलह भंगों का निषेध नहीं किया गया, क्यों? प्रस्तुत संदर्भ में यह भी प्रश्न होता है कि विधिसूत्र (आयारचूला) में प्रज्ञप्त सभी निषिद्ध पदों का प्रस्तुत आगम में प्रायश्चित्तकथन नहीं किया गया, ऐसा क्यों?–प्रस्तुत संदर्भ में व्याख्याकारों ने कोई जिज्ञासा-समाधान नहीं किया। अतः यह विषय अन्वेषण की अपेक्षा रखता है।

प्रस्तुत उद्देशक का दूसरा मुख्य प्रतिपाद्य है–वस्त्र। आयारचूला में पाएसणा के समान वत्थेसणा पर भी सम्पूर्ण अध्ययन उपलब्ध है। जिस प्रकार विभिन्न दृष्टिकोणों से पाएसणा में पात्र विषयक विधि-निषेधों पर विचार किया गया है, कुछ अतिरिक्त विचारणीय बिन्दुओं को छोड़कर प्रायः उन सभी दृष्टियों से वत्थेसणा में वस्त्र सम्बन्धी विधि-निषेधों पर विचार किया गया है। यही तथ्य प्रस्तुत आगम पर भी समान रूप से लागू होता है। ज्ञातव्य है कि 'पडिग्गह पदं' (१४/१-४१) में पात्र सम्बन्धी जिन-जिन अतिक्रमणों का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है। प्रस्तुत 'वत्थपदं' में वस्त्र-सम्बन्धी उन्हीं सारे अतिक्रमणों का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है।

---

१. आचू. ३/१४
२. निसीह. १८/२-४, ६-९, ११, १२
३. आचू. ३/१७-२२
४. वही, ३/१५

अट्ठारसमो उद्देसो : अठारहवां उद्देशक

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
णावाविहार-पदं	**नौविहार-पदम्**	**नौकाविहार-पद**
१. जे भिक्खू अणट्ठाए णावं दुरुहति, दुरुहंतं वा सातिज्जति ।।	यो भिक्षुः अनर्थाय नावम् 'दुरुहति' (आरोहति), 'दुरुहंतं' (आरोहन्तं) वा स्वदते ।	१. जो भिक्षु बिना प्रयोजन नौका पर आरोहण करता है अथवा आरोहण करने वाले का अनुमोदन करता है।[१]
२. जे भिक्खू णावं किणति, किणावेति, कीयमाहट्टु दिज्जमाणं दुरुहति, दुरुहंतं वा सातिज्जति ।।	यो भिक्षुः नावं क्रीणाति, क्रापयति, क्रीताम् आहृत्य दीयमानां 'दुरुहति' (आरोहति), 'दुरुहंतं' (आरोहन्तं) वा स्वदते ।	२. जो भिक्षु नौका का क्रय करता है, क्रय करवाता है, क्रीत लाकर दी जाने वाली नौका पर आरोहण करता है अथवा आरोहण करने वाले का अनुमोदन करता है।
३. जे भिक्खू णावं पामिच्चति, पामिच्चावेति, पामिच्चमाहट्टु दिज्जमाणं दुरुहति, दुरुहंतं वा सातिज्जति ।।	यो भिक्षुः नावं प्रामित्यति, प्रामित्ययति, प्रामित्याम् आहृत्य दीयमानां 'दुरुहति' (आरोहति), 'दुरुहंतं' (आरोहन्तं) वा स्वदते ।	३. जो भिक्षु नौका उधार लेता है, उधार लिवाता है, उधार ली हुई लाकर दी जाने वाली नौका पर आरोहण करता है अथवा आरोहण करने वाले का अनुमोदन करता है।
४. जे भिक्खू णावं परियट्टेति, परियट्टावेति, परियट्टमाहट्टु दिज्जमाणं दुरुहति, दुरुहंतं वा सातिज्जति ।।	यो भिक्षुः नावं परिवर्तते, परिवर्तयति, परिवर्तिताम् आहृत्य दीयमानां 'दुरुहति' (आरोहति), 'दुरुहंतं' (आरोहन्तं) वा स्वदते ।	४. जो भिक्षु नौका का परिवर्तन करता है, परिवर्तन करवाता है, परिवर्तित की हुई लाकर दी जाने वाली नौका पर आरोहण करता है अथवा आरोहण करने वाले का अनुमोदन करता है।
५. जे भिक्खू णावं अच्छेज्जं अणिसिट्ठं अभिहडमाहट्टु दिज्जमाणं दुरुहति, दुरुहंतं वा सातिज्जति ।।	यो भिक्षुः नावम् आच्छेद्याम् अनिसृष्टाम् अभिहृताम् आहृत्य दीयमानां 'दुरुहति' (आरोहति), 'दुरुहंतं' (आरोहन्तं) वा स्वदते ।	५. जो भिक्षु छीनकर लाई हुई, अननुज्ञात अथवा सामने लाकर दी जाने वाली नौका पर आरोहण करता है अथवा आरोहण करने वाले का अनुमोदन करता है।[२]
६. जे भिक्खू थलाओ णावं जले ओकसावेति, ओकसावेंतं वा सातिज्जति ।।	यो भिक्षुः स्थलात् नावं जले अवकर्षयति, अवकर्षयन्तं वा स्वदते ।	६. जो भिक्षु नौका को थल से जल में करवाता है अथवा जल में करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

७. जे भिक्खू जलाओ णावं थले उक्कसावेति, उक्कसावेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः जलात् नावं स्थले उत्कर्षयति, उत्कर्षयन्तं वा स्वदते।

७. जो भिक्षु नौका को जल से थल में करवाता है अथवा थल में करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

८. जे भिक्खू पुण्णं णावं उस्सिंचति, उस्सिंचंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः पूर्णां नावम् उत्सिञ्चति, उत्सिञ्चन्तं वा स्वदते।

८. जो भिक्षु जल से भरी हुई नौका का उत्सिंचन करता है (खाली करता है) अथवा उत्सिंचन करने वाले का अनुमोदन करता है।

९. जे भिक्खू सण्णं णावं उप्पिलावेति, उप्पिलावेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः सन्नां नावम् उत्प्लावयति, उत्प्लावयन्तं वा स्वदते।

९. जो भिक्षु कीचड़ में फंसी नौका को उससे बाहर निकालता है अथवा बाहर निकालने वाले का अनुमोदन करता है।[३]

१०. जे भिक्खू पडिणावियं कट्टु णावाए दुरुहति, दुरुहंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः प्रतिनाविकं कृत्वा नावं 'दुरुहति' (आरोहति), 'दुरुहंतं' (आरोहन्तं) वा स्वदते।

१०. जो भिक्षु प्रतिनाविक कर नौका पर आरोहण करता है अथवा आरोहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

११. जे भिक्खू उड्डगामिणिं वा णावं अहोगामिणिं वा णावं दुरुहति, दुरुहंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः ऊर्ध्वगामिनीं वा नावं 'दुरुहति' (आरोहति), 'दुरुहंतं' (आरोहन्तं) वा स्वदते।

११. जो भिक्षु ऊर्ध्वगामिनी नौका अथवा अधोगामिनी नौका पर आरोहण करता है अथवा आरोहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

१२. जे भिक्खू जोयणवेलागामिणिं वा अद्धजोयणवेलागामिणिं वा णावं दुरुहति, दुरुहंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः योजनवेलागामिनीं वा अर्धयोजनवेलागामिनीं वा नावं 'दुरुहति' (आरोहति), 'दुरुहंतं' (आरोहन्तं) वा स्वदते।

१२. जो भिक्षु एक योजन से अधिक प्रवाह में चलने वाली अथवा आधे योजन से अधिक प्रवाह में चलने वाली नौका पर आरोहण करता है अथवा आरोहण करने वाले का अनुमोदन करता है।[४]

१३. जे भिक्खू णावं आकसावेति, ओकसावेति, खेवावेति, रज्जुणा वा कड्ढति, कड्ढंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः नावम् आकर्षयति, अवकर्षयति 'खेवावेति', रज्ज्वा वा कर्षति, कर्षन्तं वा स्वदते।

१३. जो भिक्षु नौका को ऊपर की ओर खिंचवाता है, नीचे की ओर खिंचवाता है, खेवाता है अथवा रज्जु के द्वारा खींचता है अथवा खींचने वाले का अनुमोदन करता है।

१४. जे भिक्खू णावं अलित्तएण वा फिहएण वा वंसेण वा वलेण वा वाहेति, वाहेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः नावम् अरित्रकेन वा 'फिहएण' वा वंशेन वा 'वलेण' वा वाहयति, वाहयन्तं वा स्वदते।

१४. जो भिक्षु अलित्र, प्रस्पिटक, बांस अथवा वलक (बल्ले) से नौका को चलाता है अथवा चलाने वाले का अनुमोदन करता है।

१५. जे भिक्खू णावाओ उदगं भायणेण वा पडिग्गहेण वा मत्तेण वा णावा-उस्सिंचणेण वा उस्सिंचति, उस्सिंचंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः नावः उदकं भाजनेन वा प्रतिग्रहेण वा अमत्रेण वा नौ-उत्सेचनेन वा उत्सिञ्चति, उत्सिञ्चन्तं वा स्वदते।

१५. जो भिक्षु भाजन, प्रतिग्रह (पात्र), मात्रक और नौका-उत्सेचनक के द्वारा नौका के जल का उत्सिंचन करता है अथवा उत्सिंचन करने वाले का अनुमोदन करता है।

१६. जे भिक्खू णावं उत्तिंगेण उदगं आसमणिं उवरुवरिं कज्जलमाणिं पेहाय हत्थेण वा पाएण वा आसत्थपत्तेण वा कुसपत्तेण वा मट्टियाए वा चेलकण्णेण वा पडिपिहेति, पडिपिहेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः नावम् उत्तिंगेन उदकम् आश्रवन्तीम् उपर्युपरि 'कज्जलमाणिं' प्रेक्ष्य हस्तेन वा पादेन वा अश्वत्थपत्रेण वा कुशपत्रेण वा मृत्तिकया वा चेलकर्णेन वा प्रतिपिदधाति, प्रतिपिदधन्तं वा स्वदते।

१६. जो भिक्षु छिद्र से आश्रवित जल से ऊपर-ऊपर भरती हुई नौका को देखकर उसे हाथ से, पैर से, पीपल के पत्ते से, कुस के पत्ते से, मिट्टी से अथवा वस्त्र के किनारे से (नौका के) छिद्र को ढंकता है अथवा ढंकने वाले का अनुमोदन करता है।[1]

१७. जे भिक्खू णावागओ णावागयस्स असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षु नौगतः नौगतस्य अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते।

१७. जो भिक्षु नौका-गत (नौका में स्थित) होकर नौका में स्थित दाता से अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य को ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

१८. जे भिक्खू णावागओ जलगयस्स असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः नौगतः जलगतस्य अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते।

१८. जो भिक्षु नौका में स्थित होकर जलगत (जल में स्थित) दाता से अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य को ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

१९. जे भिक्खू णावागओ पंकगयस्स असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः नौगतः पंकगतस्य अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते।

१९. जो भिक्षु नौका में स्थित होकर पंकगत (पंक में स्थित) दाता से अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य को ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

२०. जे भिक्खू णावागओ थलगयस्स असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः नौगतः स्थलगतस्य अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते।

२०. जो भिक्षु नौका में स्थित होकर स्थलगत (स्थल में स्थित) दाता से अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य को ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

२१. जे भिक्खू जलगओ णावागयस्स

यो भिक्षुः जलगतः नौगतस्य अशनं वा

२१. जो भिक्षु जल में स्थित होकर नौका में

असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति ।।

पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते।

स्थित दाता से अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य को ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

२२. जे भिक्खू जलगओ जलगयस्स असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः जलगतः जलगतस्य अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते।

२२. जो भिक्षु जल में स्थित होकर जल में स्थित दाता से अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य को ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

२३. जे भिक्खू जलगओ पंकगयस्स असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः जलगतः पंकगतस्य अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते।

२३. जो भिक्षु जल में स्थित होकर पंक में स्थित दाता से अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य को ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

२४. जे भिक्खू जलगओ थलगयस्स असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः जलगतः स्थलगतस्य अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते।

२४. जो भिक्षु जल में स्थित होकर स्थल में स्थित से अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य को ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

२५. जे भिक्खू पंकगओ णावागयस्स असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः पंकगतः नौगतस्य अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते।

२५. जो भिक्षु पंक में स्थित होकर नौका में स्थित दाता से अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य को ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

२६. जे भिक्खू पंकगओ जलगयस्स असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः पंकगतः जलगतस्य अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते।

२६. जो भिक्षु पंक में स्थित होकर जल में स्थित दाता से अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य को ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

२७. जे भिक्खू पंकगओ पंकगयस्स असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः पंकगतः पंकगतस्य अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते।

२७. जो भिक्षु पंक में स्थित होकर पंक में स्थित दाता से अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य को ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

२८. जे भिक्खू पंकगओ थलगयस्स असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः पंकगतः स्थलगतस्य अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते।

२८. जो भिक्षु पंक में स्थित होकर स्थल में स्थित दाता से अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य को ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

२९. जे भिक्खू थलगओ णावागयस्स असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः स्थलगतः नौकागतस्य अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते।

२९. जो भिक्षु स्थल में स्थित होकर नौका में स्थित दाता से अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य को ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

३०. जे भिक्खू थलगओ जलगयस्स असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः स्थलगतः जलगतस्य अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते।

३०. जो भिक्षु स्थल में स्थित होकर जल में स्थित दाता से अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य को ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

३१. जे भिक्खू थलगओ पंकगयस्स असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः स्थलगतः पंकगतस्य अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते।

३१. जो भिक्षु स्थल में स्थित होकर पंक में स्थित दाता से अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य को ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

३२. जे भिक्खू थलगओ थलगयस्स असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः स्थलगतः स्थलगतस्य अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते।

३२. जो भिक्षु स्थल में स्थित होकर स्थल में स्थित दाता से अशन, पान, खाद्य अथवा स्वाद्य को ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।[६]

वत्थ-पदं

वस्त्र-पदम्

वस्त्र-पद

३३. जे भिक्खू वत्थं किणति, किणावेति, कीयमाहट्टु दिज्जमाणं पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः वस्त्रं क्रीणाति, क्रापयति, क्रीतम् आहृत्य दीयमानं प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते।

३३. जो भिक्षु वस्त्र का क्रय करता है, क्रय करवाता है अथवा क्रीत लाकर दिए जाने वाले वस्त्र को ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

३४. जे भिक्खू वत्थं पामिच्चेति, पामिच्चावेति, पामिच्चमाहट्टु दिज्जमाणं पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः वस्त्रं प्रामित्यति, प्रामित्ययति, प्रामित्यम् आहृत्य दीयमानं प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते।

३४. जो भिक्षु वस्त्र उधार लेता है, उधार लिवाता है और उधार लिए हुए लाकर दिए जाने वाले वस्त्र को ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

३५. जे भिक्खू वत्थं परियट्टेति, परियट्टावेति, परियट्टियमाहट्टु दिज्जमाणं पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः वस्त्रं परिवर्तते, परिवर्तयति, परिवर्तितम् आहृत्य दीयमानं प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते।

३५. जो भिक्षु वस्त्र का परिवर्तन करता है, परिवर्तन करवाता है अथवा परिवर्तित किए हुए लाकर दिए जाने वाले वस्त्र को ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

३६. जे भिक्खू वत्थं अच्छेज्जं अणिसट्ठं अभिहडमाहट्टु दिज्जमाणं

यो भिक्षुः वस्त्रम् आच्छेद्यम् अनिसृष्टम् अभिहृतम् आहृत्य दीयमानं प्रतिगृह्णाति,

३६. जो भिक्षु छीन कर लाए हुए, अननुज्ञात अथवा सामने लाकर दिए जाने वाले वस्त्र

पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति ।।

प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते।

को ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

३७. जे भिक्खू अइरेगं वत्थं गणिं उद्दिसिय गणिं समुद्दिसिय तं गणिं अणापुच्छिय अणामंतिय अण्णमण्णस्स वियरति, वियरंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अतिरेकं वस्त्रं गणिनम् उद्दिश्य गणिनं समुद्दिश्य तं गणिनम् अनापृच्छ्य अनामन्त्र्य अन्योन्यस्मै वितरति, वितरन्तं वा स्वदते।

३७. जो भिक्षु गणि को उद्दिष्ट कर, गणि को समुद्दिष्ट कर, उस गणि को पूछे बिना, आमंत्रित किए बिना अतिरेक वस्त्र को परस्पर एक दूसरे को देता है अथवा देने वाले का अनुमोदन करता है।

३८. जे भिक्खू अइरेगं वत्थं खुड्डगस्स वा खुड्डियाए वा थेरस्स वा थेरियाए वा—अहत्थच्छिण्णस्स अपायच्छिण्णस्स अकण्णच्छिण्णस्स अणासच्छिण्णस्स अणोट्ठच्छिण्णस्स सक्कस्स—देति, देंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अतिरेकं वस्त्रं क्षुद्रकाय वा क्षुद्रिकायै वा स्थविराय वा स्थविरायै वा—अहस्तच्छिन्नाय अपादच्छिन्नाय अकर्णच्छिन्नाय अनासाच्छिन्नाय अनोष्ठच्छिन्नाय शक्ताय ददाति, ददतं वा स्वदते।

३८. क्षुल्लक अथवा क्षुल्लिका, स्थविर अथवा स्थविरा—जो अहस्तछिन्न नहीं है, अपादछिन्न है, अकर्णछिन्न है, अनासिकाछिन्न है, अनोष्ठछिन्न है, सशक्त है—उसे जो भिक्षु अतिरिक्त वस्त्र देता है अथवा देने वाले का अनुमोदन करता है।

३९. जे भिक्खू अइरेगं वत्थं खुड्डगस्स वा खुड्डियाए वा थेरस्स वा थेरियाए वा—हत्थच्छिण्णस्स पायच्छिण्णस्स कण्णच्छिण्णस्स णासच्छिण्णस्स ओट्ठच्छिण्णस्स असक्कस्स—न देति, न देंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अतिरेकं वस्त्रं क्षुद्रकाय वा क्षुद्रिकायै वा स्थविराय वा स्थविरायै वा—हस्तच्छिन्नाय पादच्छिन्नाय कर्णच्छिन्नाय नासाच्छिन्नाय ओष्ठच्छिन्नाय अशक्ताय न ददाति, न ददतं वा स्वदते।

३९. क्षुल्लक अथवा क्षुल्लिका, स्थविर अथवा स्थविरा—जो हस्तछिन्न है, अपादछिन्न है, कर्णछिन्न है, नासिकाछिन्न है, ओष्ठछिन्न है, अशक्त है—उसे जो भिक्षु अतिरिक्त वस्त्र नहीं देता अथवा नहीं देने वाले का अनुमोदन करता है।

४०. जे भिक्खू वत्थं अणलं अथिरं अधुवं अधारणिज्जं धरेति, धरेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः वस्त्रम् अनलम् अस्थिरम् अध्रुवम् अधारणीयं धरति, धरन्तं वा स्वदते।

४०. जो भिक्षु अनल (अपर्याप्त), अस्थिर, अध्रुव, अधारणीय (रखने के अयोग्य) वस्त्र को धारण करता है अथवा धारण करने वाले का अनुमोदन करता है।

४१. जे भिक्खू वत्थं अलं थिरं धुवं धारणिज्जं न धरेति, न धरेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षु वस्त्रम् अलम् स्थिरं ध्रुवं धारणीयं न धरति, न धरन्तं वा स्वदते।

४१. जो भिक्षु पर्याप्त, स्थिर, ध्रुव, धारणीय वस्त्र को धारण नहीं करता अथवा धारण न करने वाले का अनुमोदन करता है।

४२. जे भिक्खू वण्णमंतं वत्थं विवण्णं करेति, करेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः वर्णवत् वस्त्रं विवर्णं करोति, कुर्वन्तं वा स्वदते।

४२. जो भिक्षु वर्णवान वस्त्र को विवर्ण बनाता है अथवा बनाने वाले का अनुमोदन करता है।

४३. जे भिक्खू विवण्णं वत्थं वण्णमंतं

यो भिक्षुः विवर्णं वस्त्रं वर्णवत् करोति,

४३. जो भिक्षु विवर्ण वस्त्र को वर्णवान बनाता

करेति, करेंतं वा सातिज्जति ।।

कुर्वन्तं वा स्वदते।

है अथवा बनाने वाले का अनुमोदन करता है।

४४. जे भिक्खू 'णो णवए मे वत्थे लद्धे' त्ति कट्टु सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलेज्ज वा पधोवेज्ज वा, उच्छोलेंतं वा पधोवेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः 'नो नवकं मया वस्त्रं लब्ध'मिति कृत्वा शीतोदकविकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन वा उत्क्षालयेद् वा प्रधावेद् वा, उत्क्षालयन्तं वा प्रधावन्तं वा स्वदते।

४४. 'मुझे नवीन वस्त्र प्राप्त नहीं हुआ'—ऐसा सोचकर जो भिक्षु प्रासुक शीतल जल अथवा प्रासुक उष्ण जल से वस्त्र का उत्क्षालन करता है अथवा प्रधावन करता है और उत्क्षालन अथवा प्रधावन करने वाले का अनुमोदन करता है।

४५. जे भिक्खू 'णो णवए मे वत्थे लद्धे' त्ति कट्टु बहुदेवसिएण सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलेज्ज वा पधोवेज्ज वा, उच्छोलेंतं वा पधोवेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः 'नो नवकं मया वस्त्रं लब्ध'मिति कृत्वा बहुदैवसिकेन शीतोदकविकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन वा उत्क्षालयेद् वा प्रधावेद् वा, उत्क्षालयन्तं वा प्रधावन्तं वा स्वदते।

४५. 'मुझे नवीन वस्त्र प्राप्त नहीं हुआ'—ऐसा सोचकर जो भिक्षु बहुदैवसिक प्रासुक शीतल जल अथवा प्रासुक उष्ण जल से वस्त्र का उत्क्षालन करता है अथवा प्रधावन करता है और उत्क्षालन अथवा प्रधावन करने वाले का अनुमोदन करता है।

४६. जे भिक्खू 'णो णवए मे वत्थे लद्धे' त्ति कट्टु कक्केण वा लोद्धेण वा चुण्णेण वा वण्णेण वा आघंसेज्ज वा पघंसेज्ज वा, आसंघंतं वा पघंसंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः 'नो नवकं मया वस्त्रं लब्ध'मिति कृत्वा कल्केन वा लोध्रेण वा चूर्णेन वा वर्णेन वा आघर्षेद् वा प्रघर्षेद् वा, आघर्षन्तं वा प्रघर्षन्तं वा स्वदते।

४६. 'मुझे नवीन वस्त्र प्राप्त नहीं हुआ'—ऐसा सोचकर जो भिक्षु कल्क, लोध, चूर्ण अथवा वर्ण से वस्त्र का आघर्षण करता है अथवा प्रघर्षण करता है और आघर्षण अथवा प्रघर्षण करने वाले का अनुमोदन करता है।

४७. जे भिक्खू 'णो णवए मे वत्थे लद्धे' त्ति कट्टु बहुदेवसिएण कक्केण वा लोद्धेण वा चुण्णेण वा वण्णेण वा आघंसेज्ज वा पघंसेज्ज वा, आसंघंतं वा पघंसंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः 'नो नवकं मया वस्त्रं लब्ध'मिति कृत्वा बहुदैवसिकेन कल्केन वा लोध्रेण वा चूर्णेन वा वर्णेन वा आघर्षेद् वा प्रघर्षेद् वा, आघर्षन्तं वा प्रघर्षन्तं वा स्वदते।

४७. 'मुझे नवीन वस्त्र प्राप्त नहीं हुआ'—ऐसा सोचकर जो भिक्षु बहुदैवसिक कल्क, लोध, चूर्ण अथवा वर्ण से वस्त्र का आघर्षण करता है अथवा प्रघर्षण करता है और आघर्षण अथवा प्रघर्षण करने वाले का अनुमोदन करता है।

४८. जे भिक्खू 'दुब्भिगंधे मे वत्थे लद्धे' त्ति कट्टु सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलेज्ज वा पधोवेज्ज वा, उच्छोलेंतं वा पधोवेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः 'दुब्भि'गंधं मया वस्त्रं लब्ध'मिति कृत्वा शीतोदकविकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन वा उत्क्षालयेद् वा प्रधावेद् वा, उत्क्षालयन्तं वा प्रधावन्तं वा स्वदते।

४८. 'मुझे दुर्गन्धयुक्त वस्त्र प्राप्त हुआ है'—ऐसा सोचकर जो भिक्षु प्रासुक शीतल जल अथवा प्रासुक उष्ण जल से वस्त्र का उत्क्षालन करता है अथवा प्रधावन करता है और उत्क्षालन अथवा प्रधावन करने वाले का अनुमोदन करता है।

४९. जे भिक्खू 'दुब्भिगंधे मे वत्थे लद्धे'

यो भिक्षुः 'दुब्भि'गंधं मया वस्त्रं

४९. 'मुझे दुर्गन्धयुक्त वस्त्र प्राप्त हुआ

त्ति कट्टु बहुदेवसिएण सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलेज्ज वा पधोवेज्ज वा, उच्छोलेंतं वा पधोवेंतं वा सातिज्जति।।

लब्ध'मिति कृत्वा बहुदैवसिकेन शीतोदकविकृतेन वा उष्णोदकविकृतेन वा उत्क्षालयेद् वा प्रधावेद् वा, उत्क्षालयन्तं वा प्रधावन्तं वा स्वदते।

है'—ऐसा सोचकर जो भिक्षु बहुदैवसिक प्रासुक शीतल जल अथवा प्रासुक उष्ण जल से वस्त्र का उत्क्षालन करता है अथवा प्रधावन करता है और उत्क्षालन अथवा प्रधावन करने वाले का अनुमोदन करता है।

५०. जे भिक्खू 'दुब्भिगंधे मे वत्थे लद्धे' त्ति कट्टु कक्केण वा लोद्धेण वा चुण्णेण वा वण्णेण वा आघंसेज्ज वा पघंसेज्ज वा, आघंसंतं वा पघंसंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः 'दुब्भि'गंधं मया वस्त्रं लब्ध'मिति कृत्वा कल्केन वा लोध्रेण वा चूर्णेन वा वर्णेन वा आघर्षेद् वा प्रघर्षेद् वा, आघर्षन्तं वा प्रघर्षन्तं वा स्वदते।

५०. 'मुझे दुर्गन्धयुक्त वस्त्र प्राप्त हुआ है'—ऐसा सोचकर जो भिक्षु कल्क, लोध, चूर्ण अथवा वर्ण से वस्त्र का आघर्षण करता है अथवा प्रघर्षण करता है और आघर्षण अथवा प्रघर्षण करने वाले का अनुमोदन करता है।

५१. जे भिक्खू 'दुब्भिगंधे मे वत्थे लद्धे' त्ति कट्टु बहुदेसिएण कक्केण वा लोद्धेण वा चुण्णेण वा वण्णेण वा आघंसेज्ज वा पघंसेज्ज वा, आघंसंतं वा पघंसंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः 'दुब्भि'गंधं मया वस्त्रं लब्ध'मिति कृत्वा बहुदेवसिकेन कल्केन वा लोध्रेण वा चूर्णेन वा वर्णेन वा आघर्षेद् वा प्रघर्षेद् वा, आघर्षन्तं वा प्रघर्षन्तं वा स्वदते।

५१. 'मुझे दुर्गन्धयुक्त वस्त्र प्राप्त हुआ है'—ऐसा सोचकर जो भिक्षु बहुदेवसिक कल्क, लोध, चूर्ण अथवा वर्ण से वस्त्र का आघर्षण करता है अथवा प्रघर्षण करता है और आघर्षण अथवा प्रघर्षण करने वाले का अनुमोदन करता है।

५२. जे भिक्खू अणंतरहियाए पुढवीए वत्थं आयावेज्ज वा पयावेज्ज वा, आयावेंतं वा पयावेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः अनन्तर्हितायां पृथिव्यां वस्त्रम् आतापयेद् वा प्रतापयेद् वा, आतापयन्तं वा प्रतापयन्तं वा स्वदते।

५२. जो भिक्षु अव्यवहित पृथिवी पर वस्त्र का आतापन करता है अथवा प्रतापन करता है और आतापन अथवा प्रतापन करने वाले का अनुमोदन करता है।

५३. जे भिक्खू ससिणिद्धाए पुढवीए वत्थं आयावेज्ज वा पयावेज्ज वा, आयावेंतं वा पयावेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः सस्निग्धायां पृथिव्यां वस्त्रम् आतापयेद् वा प्रतापयेद् वा, आतापयन्तं वा प्रतापयन्तं वा स्वदते।

५३. जो भिक्षु सस्निग्ध पृथिवी पर वस्त्र का आतापन करता है अथवा प्रतापन करता है और आतापन अथवा प्रतापन करने वाले का अनुमोदन करता है।

५४. जे भिक्खू ससरक्खाए पुढवीए वत्थं आयावेज्ज वा पयावेज्ज वा, आयावेंतं वा पयावेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः ससरक्षायां पृथिव्यां वस्त्रम् आतापयेद् वा प्रतापयेद् वा, आतापयन्तं वा प्रतापयन्तं वा स्वदते।

५४. जो भिक्षु सरजस्क पृथिवी पर वस्त्र का आतापन करता है अथवा प्रतापन करता है और आतापन अथवा प्रतापन करने वाले का अनुमोदन करता है।

५५. जे भिक्खू मट्टियाकडाए पुढवीए वत्थं आयावेज्ज वा पयावेज्ज वा, आयावेंतं वा पयावेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः मृत्तिकाकृतायां पृथिव्यां वस्त्रम् आतापयेद् वा प्रतापयेद् वा, आतापयन्तं वा प्रतापयन्तं वा स्वदते।

५५. जो भिक्षु सचित्त मिट्टी युक्त पृथिवी पर वस्त्र का आतापन करता है अथवा प्रतापन करता है और आतापन अथवा प्रतापन करने वाले का अनुमोदन करता है।

५६. जे भिक्खू चित्तमंताए पुढवीए वत्थं आयावेज्ज वा पयावेज्ज वा, आयावेंतं वा पयावेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः चित्तवत्यां पृथिव्यां वस्त्रम् आतापयेद् वा प्रतापयेद् वा, आतापयन्तं वा प्रतापयन्तं वा स्वदते।

५६. जो भिक्षु सचित्त पृथिवी पर वस्त्र का आतापन करता है अथवा प्रतापन करता है और आतापन अथवा प्रतापन करने वाले का अनुमोदन करता है।

५७. जे भिक्खू चित्तमंताए सिलाए वत्थं आयावेज्ज वा पयावेज्ज वा, आयावेंतं वा पयावेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः चित्तवत्यां शिलायां वस्त्रम् आतापयेद् वा प्रतापयेद् वा, आतापयन्तं वा प्रतापयन्तं वा स्वदते।

५७. जो भिक्षु सचित्त शिला पर वस्त्र का आतापन करता है अथवा प्रतापन करता है और आतापन अथवा प्रतापन करने वाले का अनुमोदन करता है।

५८. जे भिक्खू चित्तमंताए लेलूए वत्थं आयावेज्ज वा पयावेज्ज वा, आयावेंतं वा पयावेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः चित्तवति 'लेलुए' वस्त्रम् आतापयेद् वा प्रतापयेद् वा, आतापयन्तं वा प्रतापयन्तं वा स्वदते।

५८. जो भिक्षु सचित्त ढेले पर वस्त्र का आतापन करता है अथवा प्रतापन करता है और आतापन अथवा प्रतापन करने वाले का अनुमोदन करता है।

५९. जे भिक्खू कोलावासंसि वा दारुए जीवपइट्ठिए सअंडे सपाणे सबीए सहरिए सओस्से सउदए सउत्तिंग-पणग - दग - मट्टिय - मक्कडा - संताणगंसि वत्थं आयावेज्ज वा पयावेज्ज वा, आयावेंतं वा पयावेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः 'कोला'वासे वा दारुके जीवप्रतिष्ठिते साण्डे सप्राणे सबीजे सावश्याये सोदके सोत्तिंग-पनक-दक-मृत्तिका-मर्कटक-सन्तानके वस्त्रम् आतापयेद् वा प्रतापयेद् वा, आतापयन्तं वा प्रतापयन्तं वा स्वदते।

५९. जो भिक्षु घुणयुक्त लकड़ी, जीवप्रतिष्ठित लकड़ी, अंडेसहित, प्राणसहित, बीजसहित, हरितसहित, ओससहित और उदकसहित लकड़ी, सर्पच्छत्र, पनक, कीचड़ अथवा मकड़ी के जाले से युक्त लकड़ी पर वस्त्र का आतापन करता है अथवा प्रतापन करता है और आतापन अथवा प्रतापन करने वाले का अनुमोदन करता है।

६०. जे भिक्खू थूणंसि वा गिहेलुयंसि वा उसुकालंसि वा कामजलंसि वा अण्णयरंसि वा तहप्पगारंसि अंतरिक्खजायंसि दुब्बद्धे दुण्णिक्खित्ते अणिकंपे चलाचले वत्थं आयावेज्ज वा पयावेज्ज वा, आयावेंतं वा पयावेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः स्थूणायां वा गृहैलुके वा 'उसुकाले' वा कामजले वा अन्यतरस्मिन् वा तथाप्रकारे अन्तरिक्षजाते दुर्बद्धे दुर्निक्षिप्ते अनिष्कम्पे चलाचले वस्त्रम् आतापयेद् वा प्रतापयेद् वा, आतापयन्तं वा प्रतापयन्तं वा स्वदते।

६०. जो भिक्षु खंभे, देहली, ऊखल, स्नानपीठ अथवा अन्य उसी प्रकार के अन्तरिक्षजात जो दुर्बद्ध हों, दुर्निक्षिप्त हों, अनिष्कम्प हों एवं चलाचल हों, उन पर वस्त्र का आतापन करता है अथवा प्रतापन करता है और आतापन अथवा प्रतापन करने वाले का अनुमोदन करता है।

६१. जे भिक्खू कुलियंसि वा भित्तिंसि वा सिलंसि वा लेलुंसि वा अण्णयरंसि वा तहप्पगारंसि अंतरिक्खजायंसि दुब्बद्धे दुण्णिक्खित्ते अणिकंपे चलाचले

यो भिक्षु कुड्ये वा भित्तौ वा शिलायां वा 'लेलुंसि' वा अन्यतरस्मिन् वा तथाप्रकारे अन्तरिक्षजाते दुर्बद्धे दुर्निक्षिप्ते अनिष्कम्पे चलाचले वस्त्रम् आतापयेद् वा प्रतापयेद् वा, आतापयन्तं वा

६१. जो भिक्षु कुड्य, भित्ति, शिला, ढेला अथवा अन्य उसी प्रकार के अन्तरिक्षजात जो दुर्बद्ध हों, दुर्निक्षिप्त हों, अनिष्कम्प हों एवं चलाचल हों, उन पर वस्त्र का आतापन करता है अथवा प्रतापन करता है

वत्थं आयावेज्ज वा पयावेज्ज वा, आयावेंतं वा पयावेंतं वा सातिज्जति ।।

प्रतापयन्तं वा स्वदते।

और आतापन अथवा प्रतापन करने वाले का अनुमोदन करता है।

६२. जे भिक्खू खंधंसि वा फलिहंसि वा मंचंसि वा मंडबंसि वा मालंसि वा पासायंसि वा हम्मतलंसि वा अण्णयरंसि वा तहप्पगारंसि अंतरिक्खजायंसि दुब्बद्धे दुण्णिक्खित्ते अणिकंपे चलाचले वत्थं आयावेज्ज वा पयावेज्ज वा, आयावेंतं वा पयावेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः स्कन्धे वा परिघे वा मञ्चे वा मण्डपे वा 'माले' वा प्रासादे वा हर्म्यतले वा अन्यतरस्मिन् वा तथाप्रकारे अन्तरिक्षजाते दुर्बद्धे दुर्निक्षिप्ते अनिष्कम्पे चलाचले वस्त्रम् आतापयेद् वा प्रतापयेद् वा, आतापयन्तं वा प्रतापयन्तं वा स्वदते।

६२. जो भिक्षु प्राकार, अर्गला, मचान, मंडप, माल (मंजिल), प्रासाद, हर्म्यतल अथवा अन्य उसी प्रकार के अन्तरिक्षजात जो दुर्बद्ध हों, दुर्निक्षिप्त हों, अनिष्कम्प हों एवं चलाचल हों, उन पर वस्त्र का आतापन करता है अथवा प्रतापन करता है और आतापन अथवा प्रतापन करने वाले का अनुमोदन करता है।

६३. जे भिक्खू वत्थाओ पुढवीकायं णीहरति, णीहरावेति, णीहरियं आहट्टु देज्जमाणं पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः वस्त्रात् पृथिवीकायं निस्सरति, निस्सारयति, निस्सृतम् आहृत्य दीयमानं प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते।

६३. जो भिक्षु वस्त्र से पृथिवीकाय को निकालता है, निकलवाता है, निकाले हुए लाकर दिए जाते हुए वस्त्र को ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

६४. जे भिक्खू वत्थाओ आउकायं णीहरति, णीहरावेति, णीहरियं आहट्टु देज्जमाणं पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः वस्त्रात् अप्कायं निस्सरति, निस्सारयति, निस्सृतम् आहृत्य दीयमानं प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते।

६४. जो भिक्षु वस्त्र से अप्काय को निकालता है, निकलवाता है, निकाले हुए लाकर दिए जाते हुए वस्त्र को ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

६५. जे भिक्खू वत्थाओ तेउक्कायं णीहरति, णीहरावेति, णीहरियं आहट्टु देज्जमाणं पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः वस्त्रात् तेजस्कायं निस्सरति, निस्सारयति, निस्सृतम् आहृत्य दीयमानं प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते।

६५. जो भिक्षु वस्त्र से तेजस्काय को निकालता है, निकलवाता है, निकाले हुए लाकर दिए जाते हुए वस्त्र को ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

६६. जे भिक्खू वत्थाओ कंदाणि वा मूलाणि वा पत्ताणि वा पुप्फाणि वा फलाणि वा बीजाणि वा णीहरति, णीहरावेति, णीहरियं आहट्टु देज्जमाणं पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः वस्त्रात् कन्दानि वा मूलानि वा पत्राणि वा पुष्पाणि वा फलानि वा बीजानि वा निस्सरति, निस्सारयति, निस्सृतम् आहृत्य दीयमानं प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते।

६६. जो भिक्षु वस्त्र से कंद, मूल, पत्र, पुष्प, फल अथवा बीज को निकालता है, निकलवाता है, निकाले हुए लाकर दिए जाते हुए वस्त्र को ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

६७. जे भिक्खू वत्थाओ ओसहिबीयाइं

यो भिक्षुः वस्त्रात् ओषधिबीजानि

६७. जो भिक्षु वस्त्र से औषधि बीजों (धान्य

णीहरति, णीहरावेति, णीहरियं आहट्टु देज्जमाणं पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति।।

निस्सरति, निस्सारयति, निस्सृतम् आहृत्य दीयमानं प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते।

बीजों) को निकालता है, निकलवाता है, निकाले हुए लाकर दिए जाते हुए वस्त्र को ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

६८. जे भिक्खू वत्थाओ तसपाणजातिं णीहरति, णीहरावेति, णीहरियं आहट्टु देज्जमाणं पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः वस्त्रात् त्रसप्राणजातिं निस्सरति, निस्सारयति, निस्सृतम् आहृत्य दीयमानं प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते।

६८. जो भिक्षु वस्त्र से त्रस प्राणजाति को निकालता है, निकलवाता है, निकाले हुए लाकर दिए जाते हुए वस्त्र को ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

६९. जे भिक्खू वत्थं निक्कोरेति, निक्कोरावेति, निक्कोरियं आहट्टु देज्जमाणं पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः वस्त्रं 'निक्कोरेति', 'निक्कोरावेति', 'निक्कोरियं' आहृत्य दीयमानं प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते।

६९. जो भिक्षु वस्त्र का निक्कोरण करता है, निक्कोरण करवाता है अथवा निक्कोरण किए हुए लाकर दिए जाते हुए वस्त्र को ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

७०. जे भिक्खू णायगं वा अणायगं वा उवासगं वा अणुवासगं वा—गामंतरंसि वा गामपहंतरंसि वा वत्थं ओभासिय-ओभासिय जायति, जायंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः ज्ञातकं वा अज्ञातकं वा उपासकं वा अनुपासकं वा—ग्रामान्तरे वा ग्रामपथान्तरे वा वस्त्रम् अवभाष्य-अवभाष्य याचते, याचमानं वा स्वदते।

७०. जो भिक्षु ज्ञाति अथवा अज्ञाति, उपासक अथवा अनुपासक से—ग्रामान्तर अथवा ग्रामपथान्तर में वस्त्र की मांग-मांग कर याचना करता है अथवा याचना करने वाले का अनुमोदन करता है।

७१. जे भिक्खू णायगं वा अणायगं वा उवासगं वा अणुवासगं वा परिसामज्झाओ उट्ठवेत्ता वत्थं ओभासिय-ओभासिय जायति, जायंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः ज्ञातकं वा अज्ञातकं वा उपासकं वा अनुपासकं वा परिषन्मध्यात् उत्थाप्य वस्त्रम् अवभाष्य-अवभाष्य याचते, याचमानं वा स्वदते।

७१. जो भिक्षु ज्ञाति अथवा अज्ञाति, उपासक अथवा अनुपासक को परिषद्-मध्य से उठाकर वस्त्र की मांग-मांग कर याचना करता है अथवा याचना करने वाले का अनुमोदन करता है।

७२. जे भिक्खू वत्थणीसाए उडुबद्धं वसति, वसंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः वस्त्रनिश्रया ऋतुबद्धं वसति, वसन्तं वा स्वदते।

७२. जो भिक्षु वस्त्र की निश्रा में ऋतुबद्धकाल में रहता है अथवा रहने वाले का अनुमोदन करता है।

७३. जे भिक्खू वत्थणीसाए वासावासं वसति, वसंतं वा सातिज्जति—

यो भिक्षुः वस्त्रनिश्रया वर्षावासं वसति, वसन्तं वा स्वदते।

७३. जो भिक्षु वस्त्र की निश्रा में वर्षावास में रहता है अथवा रहने वाले का अनुमोदन करता है।[९]

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घातियं।।

तत्सेवमानः आपद्यते चातुर्मासिकं परिहारस्थानम् उद्घातिकम्।

—इनका आसेवन करने वाले को उद्घातिक चातुर्मासिक परिहारस्थान प्राप्त होता है।

टिप्पण

१. सूत्र १

प्रस्तुत सूत्र में नौका पर अनर्थ (निष्प्रयोजन) आरोहण करने का प्रायश्चित्त बतलाया गया है। भाष्यकार ने अनर्थ पद की व्याख्या तीन प्रकार से की है–

१. देखते हैं, अन्दर से नाव कैसी लगती है–इत्यादि चक्षुदर्शन के संकल्प से।

२. नौका में आरूढ़ होकर कैसे गमन किया जाता है–इस गमनकुतूहल से।

३. ज्ञान, दर्शन आदि पुष्ट आलम्बनों के अभाव में।[1]

यदि मासकल्प अथवा वर्षावास के पूर्ण होने के बाद ऐसा कोई क्षेत्र न बचा हो, जहां मासकल्प बिताया जा सके अथवा कहीं भी स्थल-पथ न हो अथवा स्थल-पथ में स्तेन या श्वापद का भय, भिक्षा अथवा वसति का अभाव हो, कोई अति त्वरित कार्य अथवा आगाढ़ ग्लान्य आदि प्रयोजन हों तो अपवादरूप में नौका द्वारा जलसंतरण विधिसम्मत माना गया है।[2]

२. सूत्र २-५

सामान्यतः भिक्षु पादचारी होते हैं, स्थलमार्ग से चलते हैं। दो योजन का चक्कर लेने पर भी यदि स्थलमार्ग न हो तो भिक्षु अर्धजंघा (संघट्ट) प्रमाण जलमार्ग से जा सकता है। इसी प्रकार डेढ़ योजन चक्कर लेने पर भी अर्धजंघा प्रमाण जलमार्ग न हो, एक योजन चक्कर लेने पर नाभिप्रमाण और आधायोजन चक्कर लेने पर नाभि से अधिक थाह वाला जलमार्ग न हो तो अथाह जल (नासिका डूबे उतने अथवा उससे अधिक जल) में कुम्भ, दृति अथवा नाव से गन्तव्य की ओर जाना विधिसम्मत माना गया है।[3]

उपर्युक्त परिस्थिति में जब नौका का प्रयोग करना अनिवार्य हो, तब भी भिक्षु क्रीत, प्रामित्य, परिवर्त्य आदि दोषों से रहित नौका पर आरोहण करे। आयारचूला में भिक्षु को क्रीत, प्रामित्य, परिवर्त्य आदि दोषों से युक्त नौका पर आरोहण कर ग्रामानुग्राम विहार करने का निषेध किया गया है।[4] भाष्यकार के अनुसार पिण्डैषणा के बयालीस दोषों में जो दोष नौका के विषय में संगत हों, उन सब के वर्जन की सूचना इन सूत्रों से होती है–ऐसा ज्ञातव्य है।[5]

३. सूत्र ६-९

प्रस्तुत सूत्र चतुष्टयी में भिक्षु के लिए नौका सम्बन्धी चार प्रतिषिद्ध कार्यों का प्रायश्चित्त बतलाया गया है–

१. **अवकर्षण**–थल में स्थित नौका को जल में करना।

२. **उत्कर्षण**–जल में स्थित नौका को थल में करना।

३. **उत्सेचन**–जल से पूर्ण नौका का उत्सेचन–खाली करना।

४. **उत्प्लावन**–कीचड़ में फंसी नौका को उससे बाहर निकालना।

उपर्युक्त चारों ही कार्यों में वे ही दोष संभव हैं, जो महानदी उतरने के प्रसंग में बताए गए हैं। विशेष आपवादिक कारणों में यदि कुम्भ, दृति, नौका आदि का प्रयोग करना आवश्यक हो तो भिक्षु अद्रष्टा अश्रोता बनकर नमस्कारपरायण होकर बैठे–यही काम्य है।[6] आयारचूला में इन कार्यों को न करते हुए भिक्षु को किस प्रकार नौका में स्थित होना चाहिए'–उस विधि का निर्देश दिया गया है।[7]

४. सूत्र १०-१२

प्रस्तुत सूत्रद्वयी में प्रतिनौका अथवा प्रतिनाविक करके नौका पर आरोहण करने तथा ऊर्ध्वगामिनी, अधोगामिनी, योजनवेलागामिनी और अर्धयोजनवेलागामिनी नौका पर आरोहण का प्रायश्चित्त बतलाया गया है। आयारचूला में भी उपर्युक्त नौकाओं में आरोहण का निषेध किया गया है।[8]

ज्ञातव्य है कि भाष्यकार एवं चूर्णिकार ने इन सूत्रों के विषय में कोई मन्तव्य, निषेध का हेतु अथवा अपवाद का कोई कारण नहीं बताया है। अग्रिम सूत्रों पर निबद्ध भाष्य की चूर्णि में ऊर्ध्व, अधः और तिर्यक् शब्द का अर्थ इस प्रकार मिलता है–

ऊर्ध्व–नदी अथवा समुद्री ज्वार के पानी के प्रतिकूल।

अधः–नदी अथवा समुद्री ज्वार के पानी के अनुकूल।

तिर्यक्–पानी के स्रोत के न अनुकूल और न प्रतिकूल।[9]

---

१. निभा. गा. ५९९९
२. वही, गा. ६०००
३. वही, गा. ४२४६, ४२४७
४. आचू. ३/१४-१६
५. निभा. गा. ६००४
६. निभा. भा. ३ चू.पृ. ३७४
७. आचू. ३/१४-१६
८. वही, ३।१४
९. निभा. भा. ४, चू.पृ. २०९

प्रतिनाविक—इस तट पर स्थित साधु नाविक को कहे—नदी आदि के आधे भाग में अन्य नाविक आकर मुझे ले जाएगा—ऐसा कहकर आधे या अपूर्ण मार्ग के लिए निर्णीत नाविक प्रतिनाविक होता है।[१]

५. सूत्र १३-१६

जहां स्थलमार्ग से गमन संभव न हो, वहां भिक्षु विशेष परिस्थिति में नौका से गमन करता है। नौकारूढ़ भिक्षु को यदि कोई नाविक नौसंचालन में सहयोग देने की प्रार्थना करे तो उसका सहयोग करना अथवा नौका में छिद्र के कारण पानी भर रहा हो तो नौका का उत्सेचन करना, उसके छिद्र को किसी प्रकार से ढकना आदि कार्य सावद्य हैं, गृहस्थ-प्रायोग्य कार्य हैं। अतः भिक्षु के लिए करणीय नहीं।

किस प्रकार नौका में स्थित गृहस्थ भिक्षु को इन सब कार्यों के लिए निवेदन करता है और उसे अक्षम पाकर स्वयं करने का कहता है, इसका सुन्दर चित्रण आयारचूला में उपलब्ध होता है।[२]

प्रस्तुत सूत्रचतुष्टयी में इन प्रतिषिद्ध कार्यों के लिए लघु चातुर्मासिक प्रायश्चित्त का विधान है।

णिसीहज्झयणं में नौका-वहन के चार साधनों का उल्लेख हुआ है, आयारचूला में प्रस्तुत सन्दर्भ में पांच साधन आए हैं।[३] प्रस्तुत आगम में नौका-उत्सेचन के भी चार साधनों—भाजन, प्रतिग्रह, मात्रक और नावा-उत्सेचनक का उल्लेख हुआ है, जबकि आयारचूला में भाजन के स्थान पर हस्त और पाद का उल्लेख हुआ है।[४] प्रस्तुत आलापक में छिद्र-पिधान के लिए भी छह साधनों—हाथ, पैर, पीपल का पत्ता, कुश का पत्ता, मृत्तिका और वस्त्र का कोना का उल्लेख हुआ है जबकि आयारचूला में इस प्रसंग में ऊरु, उदर, बाहु, सिर आदि का उल्लेख होने से ये बारह हो जाते हैं।[५] दोनों आगमों में इस प्रकार का पाठ विषयक भेद सकारण है अथवा आगम-संपादन एवं आगम-वाचना में सहज ही हो गया है—यह अन्वेषण का विषय है।

शब्द-विमर्श

- **आकसाव**—खिंचवाना।
- **ओकसाव**—निमग्न करवाना, खिंचवाना, बहा देना।
- **खेवाव**—नौका खेवाना। यह देशी धातु है।[६]
- **कड्ढ**—बाहर निकालना।
- **अलित्त**—जहाज को चलाने का काष्ठ, जो पतला, लम्बा एवं अग्रभाग में पीपल के पत्ते के समान आकृति वाला होता है, वह अलित्र कहलाता है। इसे नौका-दण्ड भी कहा जाता है।[७]
- **फिहय**—फिहय का अर्थ है—नाव चलाने अथवा खेने का साधन, काष्ठ विशेष[८], 'फिहय' देशी शब्द है।
- **वंस**—बांस या चप्पू, जिससे पानी का थाह जाना जाए।[९]
- **वल**—जिसके द्वारा नौका को बाएं, दाएं मोड़ जाए, वह बल्ला। इसे वलय, चलग अथवा रण्ण भी कहा गया है।[१०]
- **उत्तिंग**—उत्तिंग का अर्थ है छिद्र।[११]
- **कज्जलमाणि**—पानी से भरती[१२] हुई।

६. सूत्र १७-३२

भिक्षु गृहस्थ से अशन, पान आदि ग्रहण करता है, उस समय उसके लिए यह ज्ञातव्य होता है कि दायक गृहस्थ कहां, किस प्रकार खड़ा है और स्वयं भिक्षु किस रूप में, कहां खड़ा है? प्रस्तुत आलापक में दाता और ग्राहक के सोलह सांयोगिक विकल्पों का ग्रहण हुआ है, जिनमें भिक्षा ग्रहण करने से प्रायश्चित्त प्राप्त होता है—

दाता	भिक्षु
नौकागत	नौकागत
नौकागत	जलगत
नौकागत	पंकगत
नौकागत	स्थलगत

इसी प्रकार जलगत, पंकगत और स्थलगत दाता के साथ भिक्षु के पुनः चार-चार भंग होने से कुल सोलह भंग बन जाते हैं।

नौकागत भिक्षु अथवा दाता अप्काय पर परम्परस्थित है, पंक, जल एवं स्थल सचित्त अथवा मिश्र होता है, समुद्र के अंतर्द्वीप की पृथिवी सचित्त, मिश्र अथवा सस्निग्ध होती है[१३] अतः स्वयं वहां पर स्थित होकर अशन, पान आदि का ग्रहण अथवा वहां

१. निशी. (सं.व्या.) पृ. ४०५ एकं नाविकं प्रति अन्यो नाविकः प्रतिनाविकः।
२. आचू. ३/१७-२१
३. वही
४. वही
५. वही
६. दे.श.को
७. (क) पाइय. परि (अलित्त)।
(ख) निभा. भा. ४ चू.पृ. २०९
८. दे. श. को.
९. निभा. गा. ६०१५—वंसेण थाहि गम्मति।
१०. वही—चलएण वलिज्जति णावा।
११. वही, भा. ४ चू.पृ. २०९—उत्तिंगं णाम छिद्दं।
१२. (क) दे. श. को.
(ख) निभा. भा. ४ चू.पृ. २१०—कज्जलमाणिं ति भरिज्जमाणं।
१३. वही, पृ. २१२—थलगतस्स समुद्दस्स अंतरदीवे संभवति, सा पुढवी सचित्ता मीसा वा ससिणिद्धा वा तेण पडिसिज्झति।

स्थित गृहस्थ से अशन, पान आदि का ग्रहण निषिद्ध है। आयारचूला के अनुसार नौका में आरोहण करते समय मुनि के लिए साकार भक्तप्रत्याख्यान की विधि है।[1] यहां प्रश्न होता है कि जब नौका में आरोहण करते समय भक्तप्रत्याख्यान करने की विधि है तब नौगत भिक्षु से सम्बद्ध चारों विकल्पों के प्रायश्चित्तकथन का क्या अभिप्राय? तथा शेष विकल्पों का आयारचूला में निषेध न करने का क्या कारण? इसी प्रकार आयारचूला में निषिद्ध अन्य पदों के विषय में प्रस्तुत आगम में प्रायश्चित्तकथन न करने का क्या कारण हो सकता है?—इत्यादि जिज्ञासाएं अन्वेषण की अपेक्षा रखती हैं।

७. सूत्र ३३-७३

प्रस्तुत 'वस्त्र-पद' आलापक में वस्त्र से संबद्ध अनेक विषयों का संस्पर्श हुआ है—

● भिक्षु क्रीत, प्रामित्य, परिवर्त्य, आच्छेद्य, अनिसृष्ट, आहृत आदि एषणा-दोषों से दुष्ट वस्त्र ग्रहण न करे।[2]

● वस्त्रकल्पिक भिक्षु वस्त्र लाए, वह किसे दे और किसे न दे।[3]

● उपयोगी वस्त्र का परिष्ठापन न करे और अनुपयोगी को धारण न करे।[4]

● वस्त्र के वर्ण का राग-द्वेष के कारण अथवा निष्कारण विपर्यास न करे।[5]

● पुराने वस्त्र के नवीनीकरण और दुर्गन्धयुक्त वस्त्र को सुगन्धित बनाने हेतु उसका प्रक्षालन अथवा आघर्षण-प्रघर्षण न करे।[6]

● यदि पात्र का आतापन करना अपेक्षित हो तो उसे कहां रखकर आतापन-प्रतापन न करे।[7]

● वस्त्र में यदि पृथिवीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वनस्पतिकाय, त्रसकाय आदि हों तो उसे निकाल कर अथवा निकलवा कर वस्त्र का ग्रहण न करे।[8]

● यदि याचना-वस्त्र ग्रहण करना हो तो उसका अवभाषण किस परिस्थिति में और कहां न किया जाए।[9]

● भिक्षु वस्त्र की निश्रा से वर्षावास एवं ऋतुबद्धवास न करे।[10]

प्रस्तुत प्रकरण में निशीथभाष्यकार एवं चूर्णिकार ने विशेष कुछ स्पष्टीकरण किए बिना केवल चौदहवें उद्देशक के पात्र-पद की भुलावण दी है।[11] चूर्णिकार ने यहां पच्चीस सूत्रों का उल्लेख किया है[12] जबकि मुनिद्वय (उपाध्याय अमरमुनि और मुनि कन्हैयालाल 'कमल') के द्वारा सम्पादित निशीथसूत्रम् के अनुसार इस पद में पैंतालीस एवं हमारे द्वारा गृहीत पाठ में इकतालीस सूत्र होते हैं। संभव है, नवीनीकरण, सुरभिकरण (सुगन्धित करने) एवं आतापना के सूत्रों का एकत्व करने से यह संख्याभेद हुआ है।

प्रस्तुत सन्दर्भ में दूसरा विमर्शनीय बिन्दु है—निक्कोरण—मुखापनयन का। क्या पात्र के समान वस्त्र में भी मुखापनयन संभव है? क्या अनुपयोगी दशा का अपनयन अथवा कसीदे आदि के द्वारा वस्त्रदशा का परिकर्म उसका निक्कोरण कहला सकता है? अथवा पात्र-परिकर्म की समानता के कारण यह पाठ आया है—इस विषय में निश्चयपूर्वक कहना शक्य नहीं। निशीथ की हुंडी में समग्र आलापक के लिए पात्र-आलापक की भुलावण देते हुए कहा है—'तिण में एतलो विशेष—पात्रा नै अधिकारै कोरणो कह्यो, ते वस्त्र अधिकारे कोरणो नथी।'[13]

ध्यातव्य है कि प्राचीन काल में पुराने अथवा अमनोज्ञ गन्ध वाले वस्त्र को नवीन बनाने के लिए कल्क, लोध्र आदि से आघर्षण एवं जल से प्रक्षालन की विधि प्रचलित थी। इसीलिए आयारचूला में इन परिकर्मों का निषेध[14] तथा प्रस्तुत उद्देशक में इनका प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है। इसी प्रकार वस्त्रैषणा-पद में प्रज्ञप्त सदोष वस्त्र का ग्रहण, वस्त्र का विभिन्न सचित्त अथवा दुर्बद्ध आदि स्थानों पर आतापन आदि आयारचूला में निषिद्ध पदों का प्रस्तुत आलापक में प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है अतः दोनों आगमों का तुलनात्मक अध्ययन विशिष्ट ज्ञानवर्धक हो सकता है।

शब्द-विमर्श हेतु द्रष्टव्य—निसीहज्झयणं १४/१-४१ और उसके टिप्पण।

---

१. आचू. ३/१७,२२
२. निसीह. १८/३३-३६
३. वही, १८/३७-३९
४. वही, १८/४०,४१
५. वही, १८/४२,४३
६. वही, १८/४४-५१
७. वही, १८/५२-६२
८. वही, १८/६३-६८
९. वही, १८/७०,७१
१०. वही, १८/७२,७३
११. निभा. गा. ६०२७
१२. वही, भा. ४ चू.पृ. २१८—सुत्ताणि पणवीसं उच्चारेयव्वाणि जाव समत्तो उद्देसगो।
१३. नि. हुंडी (अप्रकाशित)
१४. आचू. ५/३१-३४

एगूणवीसमो उद्देसो

उन्नीसवां उद्देशक

आमुख

प्रस्तुत उद्देशक तीन पदों (विभागों) में विभक्त है—१. वियड २. स्वाध्याय एवं ३. वाचना।

'वियड' शब्द से कस्तूरी आदि बहुमूल्य वस्तु, द्राक्षासव, अफीम, अम्बर आदि बहुमूल्य और मादक औषधीय पदार्थों का ग्रहण किया जा सकता है। इस दृष्टि से संक्षेप में यह सम्पूर्ण पद एवं उसका भाष्य औषध-प्रयोग के विषय में अनेक महत्त्वपूर्ण निर्देश प्रदान करता है—

१. औषध भी क्रीत, प्रामित्य आदि एषणा-दोषों से मुक्त ग्रहण करना चाहिए।

२. औषध की मात्रा के विषय में सावधानी रखनी चाहिए।

३. विशिष्ट औषध को ग्रहण करते समय अनेक प्रकार की सावधानियां अपेक्षित हैं।

४. औषध के नयन-आनयन के विषय में यतना अपेक्षित है।

स्वाध्याय से ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय होता है।[१] अतः स्वाध्याय महान् आभ्यन्तर तप एवं निर्जरा का सर्वोत्कृष्ट साधन है। आगमवाङ्मय में आगमस्वाध्याय के सम्बन्ध में प्रकीर्ण रूप में अनेक निर्देश उपलब्ध होते हैं। पर समग्रता की दृष्टि से यह उद्देशक अपना वैशिष्ट्य रखता है—ऐसा कहना अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं है। किन तिथियों में, कब, किस प्रकार की प्राकृतिक एवं शारीरिक परिस्थितियों में स्वाध्याय नहीं करना चाहिए। निषिद्ध अवस्थाओं में स्वाध्याय करने से किन-किन दोषों की संभावना रहती है, उन विषयों में क्या अपवाद संभव हैं—आदि सम्पूर्ण जानकारी के लिए प्रस्तुत विषय में ओघनिर्युक्ति, आवश्यकनिर्युक्ति, व्यवहारभाष्य, निशीथभाष्य एवं स्थानांग टीका के साथ कुछ वैदिक ग्रन्थों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाए तो खगोल, भूगोल के साथ-साथ अनेक वैज्ञानिक एवं मनोवैज्ञानिक विषयों का भी ज्ञान संभव है।

'वाचना पद' में शास्त्र-वाचना (अध्यापन) के विषय में अनेक महत्त्वपूर्ण निर्देश उपलब्ध होते हैं। आगम अर्हतों की वाणी है। जिस प्रकार महा मूल्यवान कौस्तुभ मणि भास पक्षी के गले में नहीं पहनाया जा सकता, उसी प्रकार आगम-वाङ्मय का ज्ञान योग्यता की परीक्षा किए बिना जिस तिस को नहीं दिया जा सकता।

प्रस्तुत आलापक में व्युत्क्रम से आगमों का वाचन करने, अयोग्य को वाचना देने, योग्य को वाचना न देने, गृहस्थ अथवा अन्यतीर्थिक से वाचना ग्रहण करने अथवा उन्हें वाचना देने आदि वाचना सम्बन्धी अनेक अतिक्रमणों का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है। इस प्रसंग में निशीथभाष्य एवं चूर्णि में पात्र, प्राप्त एवं व्यक्त को आगमोक्त क्रम से वाचना देना, अपात्र, अप्राप्त (प्राथमिक ज्ञान की दृष्टि से अयोग्य) और अव्यक्त को वाचना न देना, समान योग्यता वाले शिष्यों के अध्यापन में निष्पक्षता रखना, आचार्य-उपाध्याय आदि से प्राप्त वाचना को ग्रहण करना एवं पार्श्वस्थ, अवसन्न आदि शिथिलाचारियों से अध्ययन-अध्यापन का निषेध इत्यादि अनेक विषयों का सम्यक् निरूपण हुआ है।

इस प्रकार औषध सम्बन्धी समस्त विवरण तथा स्वाध्याय एवं वाचना सम्बन्धी अनेक उक्त-अनुक्त विषयों की दृष्टि से यह उद्देशक विशिष्ट है।

---

१. उत्तरा. २९/१९

एगूणवीसमो उद्देसो : उन्नीसवां उद्देशक

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
वियड-पदं	**वियड-पदम्**	**विकट-पद**
१. जे भिक्खू वियडं किणति, किणावेति, कीयमाहट्टु दिज्जमाणं पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति ।।	यो भिक्षुः 'वियडं' क्रीणाति, क्रापयति, क्रीतम् आहृत्य दीयमानं प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते।	१. जो भिक्षु 'विकट'[1] (अचित्त बहुमूल्य वस्तु) का क्रय करता है, क्रय करवाता है अथवा क्रीत लाकर दी जाने वाली 'विकट' को ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।
२. जे भिक्खू वियडं पामिच्चेति, पामिच्चावेति, पामिच्चमाहट्टु दिज्जमाणं पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति ।।	यो भिक्षुः 'वियडं' प्रामित्यति, प्रामित्ययति, प्रामित्यम् आहृत्य दीयमानं प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते।	२. जो भिक्षु 'विकट' उधार लेता है, उधार लिवाता है अथवा उधार लाकर दी जाने वाली 'विकट' को ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।
३. जे भिक्खू वियडं परियट्टेति, परियट्टावेति, परियट्टियमाहट्टु दिज्जमाणं पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति ।।	यो भिक्षुः 'वियडं' परिवर्तते, परिवर्तयति, परिवर्तितम् आहृत्य दीयमानं प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते।	३. जो भिक्षु 'विकट' का परिवर्तन करता है, परिवर्तन करवाता है अथवा परिवर्तित करके लाकर दी जाने वाली 'विकट' को ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।
४. जे भिक्खू वियडं अच्छेज्जं अणिसिट्ठं अभिहडमाहट्टु दिज्जमाणं पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति ।।	यो भिक्षुः 'वियडं' आच्छेद्यम् अनिसृष्टम् अभिहृतम् आहृत्य दीयमानं प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते।	४. जो भिक्षु छीनकर लाई हुई, अननुज्ञात अथवा सामने लाकर दी जाने वाली 'विकट' को ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।
५. जे भिक्खू गिलाणस्सट्ठाए परं तिण्हं वियडदत्तीणं पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति ।।	यो भिक्षुः ग्लानस्य अर्थाय परं तिसृणां 'वियड'दत्तीनां प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते।	५. जो भिक्षु ग्लान के प्रयोजन से तीन दत्ती से अधिक 'विकट' ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।
६. जे भिक्खू वियडं गहाय गामाणुगामं दूइज्जति, दूइज्जंतं वा सातिज्जति ।।	यो भिक्षुः 'वियडं' गृहीत्वा ग्रामानुग्रामं दूयते, दूयमानं वा स्वदते।	६. जो भिक्षु 'विकट' को ग्रहण कर ग्रामानुग्राम परिव्रजन करता है अथवा परिव्रजन करने वाले का अनुमोदन करता है।

७. जे भिक्खू वियडं गालेति, गालावेति, गालियमाहट्टु दिज्जमाणं पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः 'वियडं' गालयति, गालयति, गालितमाहृत्य दीयमानं प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्णन्तं वा स्वदते।

७. जो भिक्षु 'विकट' को छानता है, छनवाता है, छानकर के लाकर दी जाने वाली 'विकट' को ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।[२]

सज्झाय-पदं

स्वाध्याय-पदम्

स्वाध्याय-पद

८. जे भिक्खू चउहिं संझाहिं सज्झायं करेति, करेंतं वा सातिज्जति, तं जहा—पुव्वाए संझाए, पच्छिमाए संझाए, अवरण्हे, अड्ढरत्ते।।

यो भिक्षुः चतसृषु सन्ध्यासु स्वाध्यायं करोति, कुर्वन्तं वा स्वदते, तद्यथा—पूर्वस्यां सन्ध्यायां, पश्चिमायां संध्यायां, अपराह्ने, अर्धरात्रे।

८. जो भिक्षु चार संध्याओं में स्वाध्याय करता है अथवा करने वाले का अनुमोदन करता है, जैसे—पूर्व संध्या में, पश्चिम संध्या में, अपराह्न में और अर्धरात्रि में।[३]

९. जे भिक्खू कालियसुयस्स परं तिण्हं पुच्छाणं पुच्छति, पुच्छंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः कालिकश्रुतस्य परं तिसृणां पृच्छानां पृच्छति, पृच्छन्तं वा स्वदते।

९. जो भिक्षु कालिकश्रुत की तीन पृच्छा से अधिक पृच्छा करता है अथवा पृच्छा करने वाले का अनुमोदन करता है।

१०. जे भिक्खू दिट्ठिवायस्स परं सत्तण्हं पुच्छाणं पुच्छति, पुच्छंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः दृष्टिवादस्य परं सप्तानां पृच्छानां पृच्छति, पृच्छन्तं वा स्वदते।

१०. जो भिक्षु दृष्टिवाद की सात पृच्छा से अधिक पृच्छा करता है अथवा पृच्छा करने वाले का अनुमोदन करता है।[४]

११. जे भिक्खू चउसु महामहेसु सज्झायं करेति, करेंतं वा सातिज्जति, तं जहा—इंदमहे खंदमहे जक्खमहे भूतमहे।।

यो भिक्षुः चतुर्षु महामहेषु स्वाध्यायं करोति, कुर्वन्तं वा स्वदते, तद्यथा—इन्द्रमहे, स्कन्दमहे, यक्षमहे, भूतमहे।

११. जो भिक्षु चार महामहोत्सवों में स्वाध्याय करता है अथवा करने वाले का अनुमोदन करता है, जैसे—इन्द्रमहोत्सव, स्कन्द-महोत्सव, यक्षमहोत्सव, भूतमहोत्सव।

१२. जे भिक्खू चउसु महापाडिवएसु सज्झायं करेति, करेंतं वा सातिज्जति, तं जहा—सुगिम्हय-पाडिवए आसाढीपाडिवए आसोय-पाडिवए कत्तियपाडिवए।।

यो भिक्षुः चतसृषु महाप्रतिपत्सु स्वाध्यायं करोति, कुर्वन्तं वा स्वदते, तद्यथा—सुग्रीष्मकप्रतिपदि, आषाढी-प्रतिपदि, अश्वयुज्प्रतिपदि कार्त्तिक-प्रतिपदि।

१२. जो भिक्षु चार महाप्रतिपदाओं—पक्ष की प्रथम तिथियों में स्वाध्याय करता है अथवा करने वाले का अनुमोदन करता है, जैसे—सुग्रीष्म प्रतिपदा, आषाढ़ी प्रतिपदा, आश्विन प्रतिपदा, कार्तिक प्रतिपदा।[५]

१३. जे भिक्खू चाउकालपोरिसिं सज्झायं उवातिणावेति, उवातिणावेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः चतुष्कालपौरुषीषु स्वाध्यायम् उपातिक्रामति, उपातिक्रामन्तं वा स्वदते।

१३. जो भिक्षु चार कालपौरुषी (कालिक प्रहर) में स्वाध्याय का अतिक्रमण करता है अथवा अतिक्रमण करने वाले का अनुमोदन करता है।[६]

१४. जे भिक्खू असज्झाइए सज्झायं करेति, करेंतं वा सातिज्जति।।

यो भिक्षुः अस्वाध्यायिके स्वाध्यायं करोति, कुर्वन्तं वा स्वदते।

१४. जो भिक्षु अस्वाध्यायी में स्वाध्याय करता है अथवा करने वाले का अनुमोदन करता है।

१५. जे भिक्खू अप्पणो असज्झाइयंसि सज्झायं करेति, करेंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः आत्मनः अस्वाध्यायिके स्वाध्यायं करोति, कुर्वन्तं वा स्वदते।

१५. जो भिक्षु अपनी अस्वाध्यायी में स्वाध्याय करता है अथवा करने वाले का अनुमोदन करता है।[७]

वायणा-पदं

वाचना-पदम्

वाचना-पद

१६. जे भिक्खू हेट्ठिल्लाइं समोसरणाइं अवाएत्ता उवरिमसुयं वाएति, वाएंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अधस्तनानि समवसरणानि अवाचयित्वा उपरितनश्रुतं वाचयति, वाचयन्तं वा स्वदते।

१६. जो भिक्षु अधस्तन (पूर्ववर्ती) समवसरणों (सूत्रार्थ) की वाचना दिए बिना उपरितन (पश्चाद्वर्ती) श्रुत की वाचना देता है अथवा वाचना देने वाले का अनुमोदन करता है।

१७. जे भिक्खू णव बंभचेराइं अवाएत्ता उत्तमसुयं वाएति, वाएंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः नवब्रह्मचर्याणि अवाचयित्वा उत्तमश्रुतं वाचयति, वाचयन्तं वा स्वदते।

१७. जो भिक्षु नव ब्रह्मचर्य (आचारांग) की वाचना दिए बिना उत्तमश्रुत (छेदसूत्रों) की वाचना देता है अथवा वाचना देने वाले का अनुमोदन करता है।[८]

१८. जे भिक्खू अपत्तं वाएति, वाएंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अपात्रं वाचयति, वाचयन्तं वा स्वदते।

१८. जो भिक्षु अपात्र को वाचना देता है अथवा वाचना देने वाले का अनुमोदन करता है।

१९. जे भिक्खू पत्तं ण वाएति, ण वाएंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः पात्रं न वाचयति, न वाचयन्तं वा स्वदते।

१९. जो भिक्ष पात्र को वाचना नहीं देता अथवा वाचना न देने वाले का अनुमोदन करता है।

२०. जे भिक्खू अपत्तं वाएति, वाएंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अप्राप्तं वाचयति, वाचयन्तं वा स्वदते।

२०. जो भिक्षु अप्राप्त को वाचना देता है अथवा वाचना देने वाले का अनुमोदन करता है।

२१. जे भिक्खू पत्तं ण वाएति, ण वाएंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः प्राप्तं न वाचयति, न वाचयन्तं वा स्वदते।

२१. जो भिक्षु प्राप्त को वाचना नहीं देता अथवा वाचना न देने वाले का अनुमोदन करता है।

२२. जे भिक्खू अव्वत्तं वाएति, वाएंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अव्यक्तं वाचयति, वाचयन्तं वा स्वदते।

२२. जो भिक्षु अव्यक्त को वाचना देता है अथवा वाचना देने वाले का अनुमोदन करता है।

२३. जे भिक्खू वत्तं ण वाएति, ण वाएंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः व्यक्तं न वाचयति, न वाचयन्तं वा स्वदते।

२३. जो भिक्षु व्यक्त को वाचना नहीं देता अथवा वाचना न देने वाले का अनुमोदन करता है।[९]

२४. जे भिक्खू दोण्हं सरिसयाणं एक्कं संचिक्खावेति, एक्कं वाएति, वाएंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः द्वयोः सदृशयोः एकं 'संचिक्खावेति' (संशिक्षयति), एकं वाचयति, वाचयन्तं वा स्वदते।

२४. जो भिक्षु दो समान योग्यता वाले शिष्यों में से एक को शिक्षा देता है, एक को वाचना देता है अथवा वाचना देने वाले का अनुमोदन करता है।[१०]

२५. जे भिक्खू आयरिय-उवज्झाएहिं अविदिण्णं गिरं आतियति, आतियंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः आचार्योपाध्यायैः अविदत्तां गिरम् आददाति, आददतं वा स्वदते।

२५. जो भिक्षु आचार्य और उपाध्याय के द्वारा अप्रदत्त वाणी को ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।[११]

२६. जे भिक्खू अण्णउत्थियं वा गारत्थियं वा वाएति, वाएंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकं वा अगारस्थितं वा वाचयति, वाचयन्तं वा स्वदते।

२६. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ को वाचना देता है अथवा वाचना देने वाले का अनुमोदन करता है।

२७. जे भिक्खू अण्णउत्थियं वा गारत्थियं वा पडिच्छति, पडिच्छंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अन्ययूथिकाद् वा अगारस्थिताद् वा प्रतीच्छति, प्रतीच्छन्तं वा स्वदते।

२७. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से वाचना ग्रहण करता है अथवा वाचना ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

२८. जे भिक्खू पासत्थं वाएति, वाएंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः पार्श्वस्थं वाचयति, वाचयन्तं वा स्वदते।

२८. जो भिक्षु पार्श्वस्थ को वाचना देता है अथवा वाचना देने वाले का अनुमोदन करता है।

२९. जे भिक्खू पासत्थं पडिच्छति, पडिच्छंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः पार्श्वस्थाद् प्रतीच्छति, प्रतीच्छन्तं वा स्वदते।

२९. जो भिक्षु पार्श्वस्थ से वाचना ग्रहण करता है अथवा वाचना ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

३०. जे भिक्खू ओसण्णं वाएति, वाएंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अवसन्नं वाचयति, वाचयन्तं वा स्वदते।

३०. जो भिक्षु अवसन्न को वाचना देता है अथवा वाचना देने वाले का अनुमोदन करता है।

३१. जे भिक्खू ओसण्णं पडिच्छति, पडिच्छंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः अवसन्नाद् प्रतीच्छति, प्रतीच्छन्तं वा स्वदते।

३१. जो भिक्षु अवसन्न से वाचना ग्रहण करता है अथवा वाचना ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

३२. जे भिक्खू कुसीलं वाएति, वाएंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः कुशीलं वाचयति, वाचयन्तं वा स्वदते।

३२. जो भिक्षु कुशील को वाचना देता है अथवा वाचना देने वाले का अनुमोदन करता है।

३३. जे भिक्खू कुसीलं पडिच्छति, पडिच्छंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः कुशीलाद् प्रतीच्छति, प्रतीच्छन्तं वा स्वदत।

३३. जो भिक्षु कुशील से वाचना ग्रहण करता है अथवा वाचना ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

३४. जे भिक्खू णितियं वाएति, वाएंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः नैत्यिकं वाचयति, वाचयन्तं वा स्वदते।

३४. जो भिक्षु नैत्यिक को वाचना देता है अथवा वाचना देने वाले को अनुमोदन करता है।

३५. जे भिक्खू णितियं पडिच्छति, पडिच्छंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः नैत्यिकाद् प्रतीच्छति, प्रतीच्छन्तं वा स्वदते।

३५. जो भिक्षु नैत्यिक से वाचना ग्रहण करता है अथवा वाचना ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

३६. जे भिक्खू संसत्तं वाएति, वाएंतं वा सातिज्जति ।।

यो भिक्षुः संसक्तं वाचयति, वाचयन्तं वा स्वदते।

३६. जो भिक्षु संसक्त को वाचना देता है अथवा वाचना देने वाले का अनुमोदन करता है।

३७. जे भिक्खू संसत्तं पडिच्छति, पडिच्छंतं वा सातिज्जति—

यो भिक्षुः संसक्ताद् प्रतीच्छति, प्रतीच्छन्तं वा स्वदते।

३७. जो भिक्षु संसक्त से वाचना ग्रहण करता है अथवा वाचना ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।[१२]

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घातियं ।।

तत्सेवमानः आपद्यते चातुर्मासिकं परिहारस्थानम् उद्घातिकम्।

—इन स्थानों का आसेवन करने वाले को उद्घातिक चातुर्मासिक परिहारस्थान प्राप्त होता है।

टिप्पण

१. विकट (वियडं)

वियड शब्द का प्रयोग अनेक आगमों में स्वतंत्र पद एवं समस्त पद के रूप में हुआ है। स्वतंत्र 'वियड' शब्द प्रायः प्रासुक जल[१], पानक[२] तथा आहार[३] के अर्थ में प्रयुक्त है। समस्त पद में यह प्रायः स्पष्ट, प्रकट अर्थ में योनि[४], भाव[५] आदि के साथ प्रयुक्त हुआ है। कप्पो (बृहत्कल्पसूत्र) में सीओदग, उसिणोदग के समान सुरा और सौवीर के साथ भी 'वियड' पद प्रयुक्त है।[६] निसीहज्झयणं तथा आयारचूला में अन्यत्र शीतोदक और उष्णोदक के साथ वियड शब्द तथा पानक के प्रसंग में शुद्ध शब्द के साथ वियड शब्द का प्रयोग हुआ है।[७] प्रस्तुत उद्देशक के 'वियड पद' में प्रयुक्त सातों सूत्रों के सन्दर्भ से इसका स्पष्ट, प्रासुक जल या आहार अर्थ प्रतीत नहीं होता।

पाइयसद्दमहण्णवो में प्रासुक जल, प्रासुक आहार तथा मद्य के अर्थ में वियड शब्द को देशी माना गया है।[८] पिण्डनिर्युक्ति की वृत्ति में मलयगिरि ने वियड का अर्थ देशविशेष में प्रसिद्ध मदिरा किया है।[९] निशीथभाष्य एवं चूर्णि में दस प्रकार की विगय के सन्दर्भ में विगड/वियड शब्द का अर्थ मद्य किया गया है।[१०] निशीथभाष्य एवं चूर्णि में मधु, मद्य एवं मांस—तीनों को गर्हित विगय माना गया है तथा ग्लानार्थ ग्रहण करते समय इन्हें ग्रहण करने की विधि एवं परिमाण का सम्यक् निर्देश दिया गया है।[११] निशीथ चूर्णिकार ने 'वालधोवण' के प्रसंग में भी सुरा के गालन (छानने) का तथा तक्र एवं मद्य के 'वारक' (घट) के प्रक्षालन से तद्भावित जल का उल्लेख किया है।[१२]

उपर्युक्त तथ्यों से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि चूर्णिकाल तक मद्य को छानने का प्रचलन था। जैनश्रमण तक्र घट के समान सुराघट को धोये हुए अचित्त जल को 'पानक' के रूप में ग्रहण करते थे तथा अपवादरूप में ग्लान आदि के लिए मद्य भी ग्रहण किया जाता था।

दसवेआलियं में स्वसाक्ष्य से सुरा, मेरक तथा अन्य किसी प्रकार के मादक रस को पीने का निषेध[१३] तथा एकान्त में स्तेनवृत्ति से इनको पीने वाले के दोषों का वर्णन किया है।[१४] वहां व्याख्याकारों ने स्वसाक्ष्य का एक अर्थ जनसाक्ष्य[१५] करते हुए ग्लान आदि अपवादों में अल्पसागारिक (प्रायः एकान्त) क्षेत्र में यतनापूर्वक उसके प्रयोग की परम्परा (मतान्तर) का उल्लेख किया है।[१६]

ठाणं में ग्लान के लिए तीन वियडदत्ती ग्रहण करने का उल्लेख मिलता है।[१७] वहां अभयदेवसूरि ने वियड का अर्थ 'पानकाहार' किया है। उसी आधार पर हमने वहां उत्कृष्ट दत्ती में कलमी चावल की कांजी या पर्याप्त जल, मध्यम में साठी चावलों की कांजी या अपर्याप्त जल तथा जघन्य में तृणधान्य की कांजी या गर्म जल—यह अर्थ किया है।

प्रस्तुत संदर्भ में निसीहज्झयणं के भाष्यकार एवं चूर्णिकार वियड शब्द के अर्थ के विषय में मौन है। किन्तु उनकी संपूर्ण व्याख्या मद्य अर्थ को केन्द्र में रखकर की गई है।[१८] वियड ग्रहण के प्रसंग में पानागार—शराब की दुकान[१९] का तथा 'गालन सूत्र' की चूर्णि में स्पष्टतः मद्य एवं सुरा शब्द का प्रयोग हुआ है।[२०] मद्य

---

१. दसवे. ६/६१
२. वही, ५/२/२२ व उसका टिप्पण
३. आयारो ९/१/१८ वियडं भुंजित्था।
४. पण्ण. ९/२९।
५. दसवे. ८/३२ सुई सया वियडभावे।
६. कप्पो २/५,४
७. (क) आचू. तथा १/१५१
   (ख) निसीह. १/६, २/२१, ३/२०,२६ आदि तथा १७/१३३
८. पाइय.
९. पि. नि. गा. १०३ वृ. प. ८१—वियडं मद्यविशेषं।
१०. निभा. भा. २, पृ. २३८
११. वही, भा. ३, चू.पृ. १३६ (गा. ३१७० की चू.)
१२. वही, भा. ४, पृ. १९६,१९७—सुरा गालिज्जति......तक्क-वियडादिभावितो धोव्वति।
१३. दसवे. ५/२/३६
१४. वही, ५/२/३७,३८
१५. दसवे. अ. चू.पृ. १३४—ससक्खो ण पिबे जणसक्खिगमित्यर्थः।
१६. दसवे. हा. टी. पृ. १८८—अन्ये तु ग्लानापवादविषयमेतत् सूत्रमल्पसागारिकविधानेन व्याचक्षते।
१७. ठाणं ३/३४९
१८. निभा. गा. ६०३२-६०३९
१९. वही, भा. ४ चू. पृ. २२३ (गा. ६०४० की चू.)
२०. वही, पृ. २२३—मज्जस्स हेट्ठा....सुराए किण्णिमादिकिट्टिसं पक्कसं।

मादक एवं गर्हणीय होने से अग्राह्य है। स्थानकवासी परम्परा के युवाचार्य मधुकरमुनि ने इस संदर्भ में वियड शब्द का अर्थ अफीम आदि औषध[1] तथा मुनि घासीलालजी ने द्राक्षासव आदि बहुमूल्य द्रव्य किया है।[2] तेरापंथ के चतुर्थ आचार्य श्रीमज्जयाचार्य ने वियड का अर्थ कस्तूरी आदि बहुमूल्य वस्तु किया है।[3]

बहुमूल्य विशिष्ट पानक द्रव्यों के विषय में भी प्रस्तुत आलापक के सूत्र समान रूप से घटित होते हैं। मात्रातिक्रान्त ग्रहण करने से अप्रत्यय, गृद्धि, उड्डाह तथा छानने से जीव-हिंसा आदि अयतना संभव है। अतः प्रस्तुत वियड-पद में 'वियड' का 'बहुमूल्य पानक द्रव्य' यही अर्थ सुसंगत प्रतीत होता है। प्रस्तुत अर्थ में इसे देशी शब्द माना गया है।

२. सूत्र १-७

प्रथम चार सूत्रों में 'वियड' प्राप्त करने के लिए प्रतिषेवित एषणा-दोषों का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है। अग्रिम तीन सूत्र आपवादिक हैं। इनमें ग्लान्य आदि अपवादों में 'वियड' ग्रहण करने आदि में होने वाली अयतना का प्रायश्चित्त है। दत्ती-सूत्र से वियड की मात्रा का ज्ञान होता है। चूर्णिकार के अनुसार ग्लान के लिए गर्हित विगय (मद्य-मांस) ग्रहण करते समय भिक्षु कहे—अहो! अकज्जमिणं किं कुणिमो, अण्णहा गिलाणो न पणप्पइ'।[4]

गर्हित विगय को प्रमाणोपेत ग्रहण करने के मुख्यतः तीन लाभ हैं—१. दाता का विश्वास २. स्वयं की गर्हित अभिलाषा का प्रतिघात तथा ३. पापदृष्टि (विरोधी) लोगों का प्रतिघात—वे सोचते हैं, निश्चित ही ये ग्लान के लिए अनिवार्यता के कारण ले जा रहे हैं, लोलुपता से नहीं।[5]

निशीथभाष्य एवं चूर्णि के अनुसार वियड का ग्रहण शय्यातर अथवा उसके सन्निकटवर्ती प्राचीन, विवेकशील एवं कुलीन श्रावकों के घर से किया जाए ताकि ग्रामानुग्राम परिव्रजन से सम्बद्ध परिगलन, प्रपतन, उड्डाह आदि[6] दोषों का प्रसंग ही उपस्थित न हो। अपवाद में भी पूर्व परिगालित वियड ही प्रथमतः ग्राह्य है ताकि उसे छानने के बाद किट्टिस आदि को गिराने से होने वाली अयतना[7] का परिहार हो सके। इस प्रकार भाष्य एवं चूर्णि के अनुसार प्रथम सूत्रचतुष्टयी में दर्पतः कृत अनेषणा का प्रायश्चित्त है तथा शेष तीनों में अपवाद में यथायोग्य प्रयत्न (तीन बार शुद्ध एवं एषणीय द्रव्य की खोज, पनक-परिहाणो से यतना) न करने तथा अयतना करने का प्रायश्चित्त प्रज्ञप्त है।

शब्द विमर्श

दत्ती—चुल्लुभर।[8]

३. सूत्र ८

लौकिक, वैदिक एवं सामयिक तीनों दृष्टियों से पूर्व संध्या (रात्रि एवं दिन का मध्य भाग), पश्चिमसंध्या (दिन के अन्तिम एवं रात्रि के प्रथम प्रहर का मध्य भाग) मध्याह्न (दिन के द्वितीय एवं तृतीय प्रहर का मध्य भाग) तथा मध्यरात्रि (रात्रि का मध्यवर्ती एक मुहूर्त्त)—इन चारों संध्याओं में स्वाध्याय करना, सूत्रपाठ करना उचित नहीं माना जाता। यह गुह्यक देवताओं के विचरण का काल होता है। वे प्रमत्त भिक्षु को छलित कर सकते हैं। पूर्वसंध्या और पश्चिम-संध्या में श्रमण एवं श्रमणोपासक को 'आवश्यक' करना होता है। यदि वह अन्य स्वाध्याय करता रहेगा तो आवश्यक में उपयुक्त नहीं हो सकता। अकाल में स्वाध्याय करने से ज्ञानाचार की विराधना होती है।[9] अतः सामान्यतः भिक्षु को चतुःसंध्या में सूत्र-स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

ध्यातव्य है कि निसीहज्झयणं के प्रस्तुत सूत्र में पूर्वसंध्या, पश्चिमसंध्या, अपराह्न एवं अर्धरात्र में स्वाध्याय करने वाले को प्रायश्चित्तार्ह कहा गया है। इस संदर्भ में ठाणं का निम्नोक्त पाठ मननीय है—

● णो कप्पइ निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा चउहिं संझाहिं सज्झायं करेत्तए, तं जहा—पढमाए, पच्छिमाए, मज्झण्हे, अड्ढरत्ते।

● कप्पइ णिग्गथाणं वा णिग्गंथीणं वा चउक्कालं सज्झायं करेत्तए, तं जहा—पुव्वण्हे, अवरण्हे, पओसे, पच्चूसे।[10]

चूंकि उपर्युक्त पाठ में अपराह्न को सूत्रपौरुषी माना गया है तथा मध्याह्न को सूत्रपाठ के लिए वर्जित माना गया है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि प्रस्तुत सूत्र में अपराह्न पद का प्रयोग मध्याह्न के अर्थ में हुआ है।

भाष्यकार के अनुसार शब्दप्रतिबद्ध शय्या में प्रविचार आदि के शब्दों को न सुनने के लिए, रात्रि जागरण के लिए, अभिनवगृहीत सूत्र की अव्यवच्छित्ति आदि के लिए यतनापूर्वक स्वाध्याय करना प्रस्तुतसूत्र का अपवाद है।[11]

तुलना हेतु द्रष्टव्य—ठाणं ४।२५७

---

१. निशी. (हि.) पृ. ४०४,४०५
२. निशी. (सं. व्या.) पृ. ४१४—विकृत्या संपाद्यमानं व्यपगत-जीवमचित्तं प्रपाणकादि वस्तु विकृतं अचित्तं द्राक्षासवादि प्रपाणकं बहुमूल्यम् (द्रवद्रव्यम्)
३. नि. हुंडी (अप्रकाशित)—अचित्त बहुमोली वस्तु कस्तुरीयादि।
४. निभा. भा. ३ चू.पृ. १३६
५. वही (गा. ३१७० की चूर्णि)
६. वही, गा. ६०४३
७. वही, गा. ६०५०
८. वही, भा. ४ चू.पृ. २२१—दत्तीए पमाणं पसती।
९. वही, गा. ६०५५ सचूर्णि
१०. ठाणं ४/२५७,२५८
११. निभा. गा. ६०५६-६०५८ सचूर्णि

४. सूत्र ९,१०

स्वाध्यायकाल के आधार पर जैनागमों के दो विभाग हैं—

१. कालिकश्रुत—जिनका स्वाध्याय केवल चार सूत्रपौरुषी में ही किया जा सकता है।

२. उत्कालिकश्रुत—चतुःसंध्या के अतिरिक्त दिन एवं रात में कभी भी जिनका स्वाध्याय किया जा सकता है।[1]

वर्तमान में उपलब्ध किसी भी आगम में कालिक एवं उत्कालिक श्रुत का कोई विभेदक लक्षण अथवा परिभाषा प्राप्त नहीं होती, केवल नंदी में कालिक एवं उत्कालिक आगमों की तालिका उपलब्ध होती है।[2] तत्त्वार्थवार्तिक के अनुसार स्वाध्यायकाल में जिसका काल नियत है वह कालिक है, अनियतकाल वाला उत्कालिक है।[3] उसके आधार पर सारे ही अंग आगम कालिकश्रुत हैं। जो भिक्षु उत्काल, संध्या-काल अथवा अस्वाध्यायी के समय श्रुत का स्वाध्याय करता है, उद्देश, समुद्देश, वाचना, पृच्छना अथवा परिवर्तना करता है, वह प्रायश्चित्तार्ह होता है।

अंग साहित्य में सबसे विशाल आगम है दृष्टिवाद। उसमें सप्तविध नय के सात सौ उत्तर भेदों के अनुसार द्रव्य की प्ररूपणा की गई है। परिकर्म सूत्र में परमाणु आदि के वर्ण, गन्ध आदि का विविध विकल्पों से वर्णन किया गया है। इसी प्रकार अष्टांग निमित्त आदि का विस्तरतः निरूपण हुआ है।[4] अतः उसके लिए सात पृच्छाओं का तथा शेष कालिक श्रुत के लिए तीन पृच्छा का परिमाण निर्धारित है।

पृच्छा का परिमाण चार प्रकार से निर्धारित किया गया है—

१. जितना अंश अपुनरुक्त अवस्था में बोलकर पूछा जा सके।

२. तीन श्लोक जितना अंश।

३. जितने अंश में प्रकरण (प्रसंग) सम्पन्न हो जाए।

४. आचार्य के द्वारा उच्चारित जितना अंश शिष्य आसानी से ग्रहण कर सके।[5]

५. सूत्र ११,१२

महोत्सव के बाद जो प्रतिपदाएं आती हैं, उनको महाप्रतिपदा कहा जाता है। ठाणं में केवल चार महाप्रतिपदाओं में स्वाध्याय का निषेध किया गया है।[6] प्रस्तुत आगम में महामहों और महाप्रतिपदाओं में स्वाध्याय करने वाले के लिए प्रायश्चित्त का कथन किया गया है। इन्द्रमह आषाढ़ी पूर्णिमा, स्कन्दमह आश्विनी पूर्णिमा, यक्षमह कार्तिकी पूर्णिमा तथा भूतमह चैत्री पूर्णिमा को मनाया जाता है।[7] निशीथ-चूर्णि के अनुसार लाटदेश में इन्द्रमह श्रावण पूर्णिमा तथा स्थानांग-वृत्ति के अनुसार इन्द्रमह आश्विन पूर्णिमा को मनाया जाता है।[8]

आषाढ़पूर्णिमा, श्रावणपूर्णिमा आदि महोत्सव के अन्तिम दिवस होते थे। जिस दिन महोत्सव प्रारम्भ होता, उसी दिन स्वाध्याय बन्द कर दिया जाता था। महोत्सव की समाप्ति पूर्णिमा को हो जाती, फिर भी प्रतिपदा के दिन स्वाध्याय नहीं किया जाता। निशीथभाष्यकार के अनुसार प्रतिपदा के दिन महोत्सव अनुवृत्त (चालू) रहता है। महोत्सव के निमित्त एकत्र की हुई मदिरा का पान उस दिन भी चलता है। महोत्सव के दिनों में मद्यपान से बावले बने हुए लोग प्रतिपदा को अपने मित्रों को बुलाते हैं, उन्हें मद्यपान कराते हैं। इस प्रकार प्रतिपदा का दिन महोत्सव के परिशेष के रूप में उसी शृंखला से जुड़ जाता है।[9]

महोत्सव के दिनों में स्वाध्याय के निषेध का मुख्य कारण है—लोकविरुद्धता। महोत्सव के समय आगमस्वाध्याय को लोग पसन्द क्यों नहीं करते—यह अन्वेषण का विषय है।

अस्वाध्यायी की परम्परा के मूल कारण का अनुसंधान वैदिक साहित्य एवं आयुर्वेद के ग्रन्थों के गंभीर अध्ययन से संभव है।

विस्तार हेतु द्रष्टव्य ठाणं ४/२५६-२५८ का टिप्पण

६. सूत्र १३

निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियों को चार कालों में आगम का स्वाध्याय करना चाहिए—१. पूर्वाह्न में २. अपराह्न में ३. प्रदोष में और ४. प्रत्यूष में।[10]

दिन एवं रात्रि की प्रथम और अन्तिम प्रहर कालिक सूत्रों का स्वाध्यायकाल है। जो भिक्षु इन चार प्रहरों में कालिकश्रुत का अध्ययन नहीं करता, देशकथा, भक्तकथा आदि में प्रमत्त रहता है, उसके लिए अपूर्व श्रुत का ग्रहण संभव नहीं। पूर्वगृहीत श्रुत भी

---

१. (क) निभा. भा. ४ चू. पृ. २२८—दिवसस्स पढमचरिमासु णिसीए य पढमचरिमासु य—एयासु चउसु वि कालियसुयस्स गहणं गुणणं च करेज्ज। सेसासु त्ति दिवसस्स बितियाए उक्कालियसुयस्स गहणं करेति, अत्थं वा सुणेति।
   (ख) वही, भा. १ चू.पृ. ७
   कालियं काले एव ण उग्घाड़पोरुसिए।
   उक्कालियं सव्वासु पोरुसीसु कालवेलं मोत्तुं।।

२. नंदी सू. ७७,७८

३. तवा. १/२०/१४—स्वाध्यायकाले नियतकालं कालिकम्, अनियतकालमुत्कालिकम्।

४. निभा. ४ चू.पृ. २२६

५. वही, गा. ६०६०, ६०६१

६. ठाणं ४/२५६

७. निभा. गा. ६०६५

८. (क) वही, भा. ४ चू.पृ. २२६—इह लाडेसु सावणपोण्णिमाए भवति इंदमहो।
   (ख) स्था. वृ. प. २०३

९. निभा. गा. ६०६८

१०. ठाणं ४।२५८

परिवर्तना, मनन आदि के अभाव में नष्ट हो जाता है। दिन एवं रात्रि की दूसरी एवं तीसरी प्रहर के विषय में भजना है। भिक्षाटन, शयन आदि के अतिरिक्त जितना संभव हो, उत्कालिक श्रुत के सूत्रार्थ का ग्रहण एवं मनन करे—ऐसा भाष्यकार का मत है।[1] अशिव, अवमौदर्य आदि आगाढ़ कारण इसके अपवाद हैं।[2]

७. सूत्र १४,१५

ववहारो में बतलाया गया है—मुनि अस्वाध्यायिक वातावरण में स्वाध्याय न करे, स्वाध्यायिक वातावरण में ही स्वाध्याय करे।[3]

अस्वाध्यायी के दो प्रकार हैं—आन्तरिक्ष और औदारिक। ठाणं में इन दोनों के ही दस-दस प्रकार बतलाये गए हैं।[4]

अस्वाध्यायी के अन्य भी दो भेद होते हैं—आत्मसमुत्थ और परसमुत्थ। स्वयं के शरीर में व्रण आदि से रक्त झरना, शरीर का अशुचि से खरंटित होना—यह आत्मसमुत्थित अस्वाध्यायी है।[5]

परसमुत्थ अस्वाध्यायी के पांच प्रकार हैं—

१. संयमघाती—महिका, सचित्त रज, वर्षा आदि।

२. औत्पातिक—पांशुवृष्टि, मांसवृष्टि, रुधिरवृष्टि आदि।

३. देवप्रयुक्त—गन्धर्वनगर, उल्कापात आदि।

४. व्युद्ग्रह—राजविग्रह, विप्लव, युद्ध आदि।

५. शरीरसंबंधी—मनुष्य अथवा तिर्यंच के कलेवर, रक्त आदि।[6]

प्रस्तुत आगम में अस्वाध्यायी के अन्तर्गत समस्त परसमुत्थ एवं आन्तरिक्ष अस्वाध्यायी को ग्रहण किया गया है।

अस्वाध्यायी में स्वाध्यायनिषेध के मुख्य कारण हैं—१. श्रुतज्ञान की अभक्ति २. लोकविरुद्ध व्यवहार ३. प्रमत्त-छलना ४. विद्या-साधना का वैगुण्य ५. श्रुतज्ञान के आचार की विराधना ६. वैधर्म्यता (श्रुतधर्म के विपरीत आचरण) ७. उड्डाह और ८. अप्रीति।[7]

विस्तार हेतु द्रष्टव्य—ठाणं १०/२०,२१ का टिप्पण। निभा. ६०७४-६१७९, व्यव. भा. उ. ७ पृ. २६६-३२०, आव. नि. गा. १३६५-१३७५।

८. सूत्र १६,१७

प्रस्तुत सूत्रद्वयी का सम्बन्ध सूत्र-वाचना के क्रम से है। ववहारो में आगम-वाचना के क्रम का निरूपण मिलता है।[8] जो क्रम एवं विधि आगम में प्रज्ञप्त है, उसका उल्लंघन विधि का अतिक्रमण होने से प्रतिषिद्ध है, अतः प्रायश्चित्तार्ह माना गया है। जो साधक उत्सर्ग-प्रतिपादक सूत्रों से पूर्व अपवाद-प्रतिपादक अथवा अपवादबहुल सूत्रों को पढ़ता है, उसकी बुद्धि उत्सर्ग-मार्ग से भावित नहीं हो पाती, फलतः वह उत्सर्ग एवं अपवाद पर सम्यक् श्रद्धा नहीं कर सकता। वह न उत्सर्गश्रुत पर श्रद्धा कर पाता है और न अपवादश्रुत को सम्यक् ग्रहण कर पाता है। पूर्वपाठ्य श्रुत को बिना पढ़े ही वह अपवादश्रुत के अध्ययन से बहुश्रुत कहलाने लगता है।[9] जब उसे सामान्य बात पूछी जाती है, तब वह उसका सम्यग् उत्तर नहीं दे पाता, फलतः उसका एवं उसके गण का अवर्णवाद होता है।[10] अतः व्युत्क्रम से श्रुत का वाचन करने वाला आज्ञाभंग, अनवस्था आदि दोषों को प्राप्त होता है।[11]

जिस प्रकार पूर्ववर्ती अंगों, अध्ययनों आदि से पूर्व उत्तरवर्ती अंगों, अध्ययनों आदि का वाचन नहीं करना चाहिए, उसी प्रकार आचारांग से पूर्व छेदसूत्रों का वाचन तथा चरणकरणानुयोग से पूर्व धर्मकथानुयोग, गणितानुयोग एवं द्रव्यानुयोग का व्याख्यान करने का निषेध है।[12]

शब्द-विमर्श

१. हेठिल्ल—अधस्तनवर्ती अर्थात् पूर्ववर्ती।[13]

२. समवसरण—मिलन, जहां सूत्रागम एवं अर्थागम का मिलन होता है, जीव आदि नौ पदार्थों का अथवा द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव का जहां मिलन हो, वह समवसरण कहलाता है। यहां समवसरण शब्द से अंग, श्रुतस्कन्ध, अध्ययन, उद्देशक एवं सूत्र सबका ग्रहण हो जाता है।[14]

३. उवरिल्ल—उपरितनवर्ती अर्थात् पश्चाद्वर्ती (अग्रिम)।

४. नौ ब्रह्मचर्य—आचारांग सूत्र अथवा सम्पूर्ण आचार।[15]

५. उत्तमश्रुत—छेदसूत्र अथवा दृष्टिवाद।[16]

९. सूत्र १८-२३

आगमों के सूत्र एवं अर्थ की वाचना देने से पूर्व शिष्य की योग्यता का ज्ञान करना आवश्यक है। जिस प्रकार कच्चे अथवा अधपक्के घड़े में यदि पानी डाला जाता है तो वह पानी स्वयं के तथा घड़े के विनाश का कारण बनता है उसी प्रकार अल्प अर्हता वाले व्यक्ति को दिया गया ज्ञान स्वयं (ज्ञान) एवं उस व्यक्ति दोनों के लिए अहितकर होता है।[17]

योग्यता के तीन मापक बनते हैं—१. अवस्था २. प्राथमिक

---

१. निभा. गा. ६०७१
२. वही, गा० ६०७२
३. वव. ७/१७,१८
४. ठाणं १०/२०,२१
५. निभा. गा. ६०७४ तथा भा. ४ चू.पृ. २४९
६. वही, गा. ६०७५
७. वही, गा. ६१७०, ६१७१ सचूर्णि
८. वव. १०/२५-३९
९. निभा. भा. ४ चू.पृ. २५२
१०. वही, गा. ६१८२
११. वही, गा. ६१८०
१२. वही, भा. ४ चू.पृ. २५२,२५३
१३. वही, पृ. २५२—जं जस्स आदीए तं तस्स हिट्ठिल्लं।
१४. वही, पृ. २५२
१५. वही, पृ. २५३—णवबंभचेरगहणेण सव्वो आयारो गहितो।
१६. वही, गा. ६१८४
१७. वही, गा. ६२४३

ज्ञान एवं ३. भावात्मक (गुणात्मक) योग्यता।

इन सूत्रों में वत्त और पत्त शब्द से इन तीनों का ग्रहण हो जाता है।

१. अवस्था–अवस्था के दो प्रकार हैं–जन्म पर्याय एवं दीक्षा पर्याय। जन्म पर्याय की अपेक्षा से सोलह वर्षों से पूर्व अथवा जब तक कांख आदि में रोम उत्पन्न न हों, तब तक अव्यक्त होता है। उसके बाद व्यक्त होता है।[१]

दीक्षा पर्याय से जितने वर्ष के बाद जिस सूत्र को पढ़ने का विधान है, उससे पूर्व उस सूत्र के लिए वह अव्यक्त होता है, जैसे–तीन वर्ष से कम दीक्षा पर्याय वाला निसीहज्झयणं के लिए अव्यक्त है।[२]

२. प्राथमिक ज्ञान–पूर्ववर्ती सूत्रों के अध्ययन से पूर्व अग्रिम सूत्रों की दृष्टि से भिक्षु अव्यक्त अथवा अप्राप्त होता है, जैसे–जिसने आवश्यक सूत्र नहीं पढ़ा, वह दशवैकालिक सूत्र के लिए तथा दशवैकालिक सूत्र पढ़ने से पूर्व उत्तराध्ययन सूत्र के लिए अव्यक्त होता है।[३] अपत्तं शब्द की संस्कृत छाया 'अप्राप्त' भी की जा सकती है। चूर्णिकार ने इसकी व्याख्या–अप्राप्तकं क्रमानधीतश्रुतमित्यर्थः' की है।[४]

३. भावात्मक (गुणात्मक) योग्यता–प्राचीन काल में विद्यादान से पूर्व पात्र एवं अपात्र का बहुत विचार होता था। भाष्यकार के अनुसार आहार, उपकरण आदि के प्रति आसक्त होने के कारण तिनतिनाहट करने वाला, चंचलवृत्ति एवं असभ्य, असमीक्षित प्रलाप करने वाला, व्यवस्थित अध्ययन न कर केवल पल्लवग्राही पाण्डित्य को धारण करने वाला, निष्कारण गण बदलने वाला, दुर्बल चरित्रवाला, सुविधावादी, आचार्य का परिभव करने वाला, गुरु के प्रतिकूल वर्तन करने वाला, चुगलखोर, अभिमानी, धर्म के विषय में अपरिपक्व बुद्धि, सामाचारी का यथावत् पालन न करने वाला एवं गुरु का अपलाप करने वाला व्यक्ति आगमों के अध्ययन के लिए अयोग्य होता है। इसी प्रकार पूर्ववर्ती सूत्रों आवश्यकसूत्र आदि का वाचन करने से पूर्व उत्तरवर्ती–छेदसूत्रों का अध्ययन करने के लिए अयोग्य होता है।[५]

निशीथभाष्य एवं चूर्णि में इन सब अर्हताओं का विशद वर्णन मिलता है। अपात्र को दिया गया ज्ञान उसी प्रकार गर्हित होता है, जैसे–भास पक्षी के गले में पहनाया हुआ कौस्तुभ मणी। इसलिए भाष्यकार कहते हैं कि विद्वान् चाहे अपनी विद्या को साथ लेकर मृत्यु का वरण कर ले, परन्तु किसी भी अवस्था में अयोग्य को वाचना न दे और न योग्य की अवमानना करे।[६]

कप्पो (बृहत्कल्पसूत्र) में अविनीत, विकृति-प्रतिबद्ध एवं कलहकारी को वाचना देने का निषेध एवं विनीत, विकृति वर्जन करने वाले तथा उपशान्त कलह को वाचना देने का विधान किया गया है।[७] ववहारो में व्यक्त को निशीथसूत्र की वाचना देने का विधान और अव्यक्त को उसकी वाचना देने का निषेध किया गया है।[८]

१०. सूत्र २४

आगम-वाचना प्राप्त करने की दृष्टि से दो या दो से अधिक शिष्यों के सादृश्य के मुख्यतः चार मानक हैं–

१. संविग्नता
२. सांभोजिकता
३. परिणामकता
४. भूमिप्राप्तता (वय एवं सूत्र से व्यक्त)[९]

यदि दो शिष्य समान रूप से उद्यतविहारी हों, दोनों स्वयं वाचकभिक्षु अथवा वाचनाचार्य के समान संभोज वाले हों, दोनों परिणामक बुद्धि से सम्पन्न, वय एवं सूत्र से व्यक्त हों और फिर भी एक को वाचना दी जाए, अन्य को न दी जाए तो उनमें पक्षपात होता है, राग-द्वेष के कारण पारस्परिक सामंजस्य एवं शान्ति का भंग होता है। जिसे वाचना नहीं दी जाती, वह परायापन महसूस करता है फलतः वाचनाचार्य एवं अन्य भिक्षुओं के प्रति आवश्यक कर्त्तव्यों का निर्वाह करते हुए भी वात्सल्य एवं भक्तिप्रत्ययिक निर्जरा का लाभ प्राप्त नहीं कर पाता।[१०]

यदि अपेक्षित उपधान के अभाव, रोग अथवा अन्य किसी असामर्थ्य के कारण दो समान गुणवाले भिक्षुओं में से एक को वाचना देनी हो और दूसरे को न देनी हो तो उसे उस स्थिति को समझाते हुए आश्वस्त करना चाहिए, ताकि परायापन (बाह्यभाव) आदि पूर्वोक्त दोष न आएं।[११]

शब्द विमर्श

संचिक्खावेति–शिक्षा देता है। इसे इसी अर्थ में देशी धातु के रूप में स्वीकार किया गया है। चूर्णिकार ने इसे किंचित् भिन्न अर्थ

१. निभा. गा. ६३३७
२. वही, भा. ४ चू.पृ. २६३–पव्वज्जाए तिण्हं वरिसाणं पकप्पस्स अव्वत्तो।
३. वही, गा. ६२४०
४. वही, भा. ४ चू.पृ. २२५
५. वही, गा. ६१९८-६२२५
६. वही, गा. ६२२९,६२३०
७. कप्पो ४/६,७
८. वव. १०/२३,२४
९. निभा. गा. ६२४५
१०. वही, भा. ४ चू.पृ. २६४
११. वही, गा. ४२४९

में प्रयोग किया है, ऐसा प्रतीत होता है।[१]

११. सूत्र २५

कोई भिक्षु पर्यायज्येष्ठ होता है किन्तु बहुश्रुत नहीं होता अथवा कोई रात्निक और बहुश्रुत दोनों ही नहीं होता, किन्तु बहुश्रुतमानी होता है, वह गर्व के कारण अवमरात्निक आचार्य अथवा उपाध्याय के पास वाचना के लिए नहीं जाता। वाचनाचार्य जब वाचना देते है, तब वह किसी बहाने से इधर-उधर आते जाते अथवा पर्दे, दीवार आदि की ओट से सूत्र अथवा अर्थ का ग्रहण करता है, वह अदत्तवाणी कहलाती है।[२]

भाष्यकार के अनुसार अदत्तवाणी के दो प्रकार हैं—१. श्रुतविषयक और २. चारित्रविषयक।[३]

गौरव आदि के कारण अवमरात्निक अथवा रात्निक के पास सूत्र अथवा अर्थ को ग्रहण नहीं करना, इधर-उधर जाते-आते सुनकर सूत्रार्थ का ग्रहण करना क्रमशः सूत्र एवं अर्थविषयक अदत्त वाणी है।[४]

सावद्य भाषा बोलना, गृहस्थ प्रायोग्य भाषा बोलना, उच्च स्वर में बोलना अथवा मायापूर्वक आलोचना करना चारित्रविषयक अदत्तवाणी है। अथवा तपस्तेन, वचस्तेन, रूपस्तेन, आचारस्तेन एवं भावस्तेन—इन पदों का आचरण अदत्तवाणी है।[५] तपस्वी, धर्मकथी, उच्चजातीय और विशिष्ट आचारसम्पन्न न होते हुए भी स्वयं को उस-उस रूप में प्रस्तुत करने वाला क्रमशः तपस्तेन, वचस्तेन, रूपस्तेन और आचारस्तेन होता है। अदत्त सूत्र अथवा अर्थ को ग्रहण कर 'यह तो मुझे ज्ञात ही था'—ऐसा भाव प्रदर्शित करने वाला भावस्तेन कहलाता है।

विस्तार हेतु द्रष्टव्य दसवे. ५/२/४६ का टिप्पण

१२. सूत्र २६-३७

भिक्षु को गृहस्थ, अन्यतीर्थिक, पार्श्वस्थ, अवसन्न, कुशील, नैत्यिक एवं संसक्त को सूत्र एवं अर्थ की वाचना नहीं देनी चाहिए। जो मिथ्यात्व से भावित मतिवाले होते हैं, वे गृहस्थ आदि सूत्र एवं अर्थ में अपनी बुद्धि से भिन्न अर्थ की कल्पना कर लेते हैं, तथा अपने ऐकान्तिक दृष्टिकोण के कारण शास्त्र-वाक्यों का आक्षेप, प्रवंचना आदि में प्रयोग कर सकते हैं।[६] गृहस्थ, अन्यतीर्थिक एवं सुविधावादी श्रमणों से सूत्रार्थ की वाचना ग्रहण की जाए तो मिथ्यात्व का स्थिरीकरण होता है, तीर्थ की अप्रभावना होती है कि 'इनके मत में कोई ग्रंथ नहीं है, कोई वाचना देने वाला नहीं है, तभी ये दूसरों से वाचना लेते हैं।' अतः गृहस्थ आदि से वाचना लेने तथा इन्हें वाचना देने वाले को प्रायश्चित्तार्ह माना गया है।[७]

भाष्यकार के अनुसार दीक्षा लेने के इच्छुक गृहस्थ एवं पार्श्वस्थता, अवसन्नता आदि से उद्यतविहार में आने के इच्छुक श्रमण आदि को वाचना देना अपवाद है। अतः प्रायश्चित्तार्ह नहीं।[८] अपवाद में कदाचित् गण में कोई वाचना देने वाला न हो और इनमें से किसी से आचारप्रकल्प की वाचना लेनी हो तो उसे अपने पूर्व जीवन की आलोचना, प्रतिक्रमण करवाकर द्रव्यलिंग देना चाहिए। वाचना ग्रहण करने की अवधि में उसका यथोचित विनय-वैयावृत्य भी करना चाहिए।[९]

---

१. निभा. भा. ४ चू. पृ. २६४—गिलाणं संचिक्खावेति।.......ताव संचिक्खविज्जति।
२. वही, गा. ६२५१
३. वही, गा. ६२५०
४. वही, भा. ४ चू. पृ. २६५
५. निभा. ६२५२, ६२५३ एवं उनकी चूर्णि।
६. वही गा. ६२६० व उसकी चूर्णि
७. वही भा. ४ चू. पृ. २६७
८. वही, गा. ६२६४
९. वही, गा. ६२६६-६२७१ (सचूर्णि)

वीसइमो उद्देसो

बीसवां उद्देशक

आमुख

प्रस्तुत आगम के पूर्ववर्ती उन्नीस उद्देशकों की अपेक्षा से प्रस्तुत उद्देशक कुछ भिन्न एवं विशिष्ट है। पूर्ववर्ती सभी उद्देशकों के प्रत्येक सूत्र का अन्त 'सातिज्जति' क्रियापद से होता है अर्थात् जो भिक्षु सूत्रोक्त निषिद्ध पदों में से किसी का समाचरण करता है, करवाता है अथवा उसकी अनुमोदना करता है, उसके लिए प्रायश्चित्त का विधान किया गया है—'आपन्न प्रायश्चित्त' का कथन किया गया है। प्रस्तुत उद्देशक में 'दान प्रायश्चित्त' का निरूपण है अर्थात् आचार्य-उपाध्याय-भिक्षु, कृतकरण-अकृतकरण, गीतार्थ-अगीतार्थ आदि को विभिन्न दृष्टियों से किस प्रकार, किसको, कितना और कौनसा प्रायश्चित्त दिया जाए—इस प्रकार इसमें प्रायश्चित्त देने की प्रक्रिया का वर्णन है।[1]

निशीथचूर्णिकार के अनुसार प्रस्तुत उद्देशक में तीन प्रकार के सूत्र हैं—

१. आपत्ति-सूत्र

२. आलोचना-सूत्र और

३. आरोपणा-सूत्र।

प्रत्येक प्रकार के सूत्रों में पुनः दस-दस प्रकार के सूत्र आते हैं—

१. सकृत् प्रतिसेवना सूत्र

२. बहुशः प्रतिसेवना सूत्र

३. सकृत् प्रतिसेवना संयोग सूत्र

४. बहुशः प्रतिसेवना संयोग सूत्र

५. सातिरेक सूत्र

६. बहुशः सातिरेक सूत्र

७. सातिरेक संयोग सूत्र

८. बहुशः सातिरेक संयोग सूत्र

९. सकृत् सातिरेक संयोग सूत्र

१०. बहुशः सातिरेक संयोग सूत्र।

आपत्ति-सूत्रों में प्रथम चार प्रकार के सूत्रों का सूत्रतः कथन हुआ है जिनमें प्रथम और द्वितीय प्रकार के सूत्रों के पांच-पांच सूत्र सूत्रतः कथित हैं। तृतीय और चतुर्थ प्रकार के सूत्रों के २६-२६ सूत्र होते हैं, उनमें से अंतिम पंच-संयोगी सूत्र का सूत्रतः कथन है। शेष छह प्रकार के सूत्रों का अर्थतः कथन किया गया है।

आलोचना एवं आरोपणा सूत्रों में आठ-आठ सूत्रों के विभिन्न विकल्पों का अर्थतः कथन है। दोनों ही प्रकार के सूत्रों में केवल नवमें तथा दसवें प्रकार के एक-एक चतुष्कसंयोगी भंग वाले सूत्र का कथन सूत्रतः किया गया है। निशीथचूर्णिकार के अनुसार इनके सांयोगिक भंगों से बनने वाले सूत्रों की संख्या करोड़ों तक पहुंच जाती है।[2]

प्रस्तुत आगम में सूत्रतः तपःप्रायश्चित्त का वर्णन है। तपःप्रायश्चित्त के दो प्रकार हैं—शुद्धतप और परिहारतप। साध्वियों को तथा अगीतार्थ, दुर्बलदेह तथा अन्तिम तीन संहनन वाले मुनियों को केवल शुद्धतप ही दिया जाता है। धृति बल से सम्पन्न, प्रथम तीन संहनन वाले गीतार्थ मुनियों को परिहारतप दिया जाता है।

प्रस्तुत उद्देशक के चार सूत्रों[3] में परिहारतपःसाधना की विधि, अनुपारिहारिक आदि की स्थापना, अनुशिष्टि, उपग्रह आदि का संक्षिप्त निरूपण हुआ है।

---

१. निभा. भा. ४ चू. पृ. २७१

२. विस्तार हेतु द्रष्टव्य—वही चू. पृ. ३६४-३६७

३. निसीह. २०/१५-१८

आरोपणा के पांच प्रकार होते हैं—

१. प्रस्थापिता—प्रायश्चित्त वहन करते समय अन्य प्रायश्चित्त के दिनों को जोड़ कर दी जाने वाली आरोपणा।

२. स्थापिता—वहन किए जाने वाले प्रायश्चित्त से अन्य प्रायश्चित्त को किसी कारण से अलग रख कर दी जाने वाली आरोपणा।

३. कृत्स्ना—जितनी प्रतिसेवना की, उतने दिनों की आरोपणा।

४. अकृत्स्ना—प्राप्त प्रायश्चित्त में कुछ दिनों को कम कर दी जाने वाली आरोपणा।

५. हाडहडा—तत्काल वहन कराई जानेवाली आरोपणा।

प्रस्तुत उद्देशक में प्रस्थापिता, स्थापिता, कृत्स्ना और कृत्स्ना—इन चार आरोपणाओं से सम्बन्धित विषय का कथन करते हुए विस्तार से बताया गया है कि किस प्रकार प्रायश्चित्त-वहनकाल में लगे दोषों की सानुग्रह एवं निरनुग्रह आरोपणा दी जाती है। इस प्रकार स्थापिता एवं प्रस्थापिता आरोपणा के विविध निदर्शनों की दृष्टि से यह उद्देशक सम्पूर्ण आगमवाङ्मय में अपना वैशिष्ट्य रखता है।

वीसइमो उद्देसो : बीसवां उद्देशक

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
सइं पडिसेवणा-पदं	**सकृत् प्रतिसेवन-पदम्**	**सकृत् प्रतिसेवना-पद**
१. जे भिक्खू मासियं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा, अपलिउंचियं आलोएमाणस्स मासियं, पलिउंचियं आलोएमाणस्स दोमासियं ।।	यो भिक्षुः मासिकं परिहारस्थानं प्रतिसेव्य आलोचयेत्, अपरिकुञ्चितम् आलोचयतः मासिकम्, परिकुञ्चितम् आलोचयतः द्वैमासिकम् ।	१. जो भिक्षु मासिक परिहारस्थान की प्रतिसेवना कर आलोचना करता है, निश्छल भाव से आलोचना करने वाले को मासिक और छलपूर्वक आलोचना करने वाले को द्वैमासिक प्रायश्चित्त प्राप्त होता है।
२. जे भिक्खू दोमासियं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा, अपलिउंचियं आलोएमाणस्स दोमासियं, पलिउंचियं आलोएमाणस्स तेमासियं ।।	यो भिक्षुः द्वैमासिकं परिहारस्थानं प्रतिसेव्य आलोचयेत्, अपरिकुञ्चितम् आलोचयतः द्वैमासिकम्, परिकुञ्चितम् आलोचयतः त्रैमासिकम् ।	२. जो भिक्षु द्वैमासिक परिहारस्थान की प्रतिसेवना कर आलोचना करता है, निश्छल भाव से आलोचना करने वाले को द्वैमासिक और छलपूर्वक आलोचना करने वाले को त्रैमासिक प्रायश्चित्त प्राप्त होता है।
३. जे भिक्खू तेमासियं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा, अपलिउंचियं आलोएमाणस्स तेमासियं, पलिउंचियं आलोएमाणस्स चाउम्मासियं ।।	यो भिक्षुः त्रैमासिकं परिहारस्थानं प्रतिसेव्य आलोचयेत्, अपरिकुञ्चितम् आलोचयतः त्रैमासिकम्, परिकुञ्चितम् आलोचयतः चातुर्मासिकम् ।	३. जो भिक्षु त्रैमासिक परिहारस्थान की प्रतिसेवना कर आलोचना करता है, निश्छल भाव से आलोचना करने वाले को त्रैमासिक और छलपूर्वक आलोचना करने वाले को चातुर्मासिक प्रायश्चित्त प्राप्त होता है।
४. जे भिक्खू चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा, अपलिउंचियं आलोएमाणस्स चाउम्मासियं, पलिउंचियं आलोएमाणस्स पंचमासियं ।।	यो भिक्षुः चातुर्मासिकं परिहारस्थानं प्रतिसेव्य आलोचयेत्, अपरिकुञ्चितम् आलोचयतः चातुर्मासिकम्, परिकुञ्चितम् आलोचयतः पाञ्चमासिकम् ।	४. जो भिक्षु चातुर्मासिक परिहारस्थान की प्रतिसेवना कर आलोचना करता है, निश्छल भाव से आलोचना करने वाले को चातुर्मासिक और छलपूर्वक आलोचना करने वाले को पाञ्चमासिक प्रायश्चित्त प्राप्त होता है।
५. जे भिक्खू पंचमासियं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा,	यो भिक्षुः पाञ्चमासिकं परिहारस्थानं प्रतिसेव्य आलोचयेत्, अपरिकुञ्चितम्	५. जो भिक्षु पाञ्चमासिक परिहारस्थान की प्रतिसेवना कर आलोचना करता है,

अपलिउंचियं आलोएमाणस्स पंचमासियं, पलिउंचियं आलोएमाणस्स छम्मासियं ।। तेण परं पलिउंचिए वा अपलिउंचिए वा ते चेव छम्मासा ।।

आलोचयतः पाञ्चमासिकम्, परिकुञ्चितम् आलोचयतः षाण्मासिकम्। तस्मात् परं परिकुञ्चिते वा अपरिकुञ्चिते वा ते एव षण्मासाः।

निश्छल भाव से आलोचना करने वाले को पाञ्चमासिक और छलपूर्वक आलोचना करने वाले को षाण्मासिक प्रायश्चित्त प्राप्त होता है।
उससे आगे (पाञ्चमासिक से अधिक प्रतिसेवना करने वाले को) छलपूर्वक अथवा निश्छल भाव से आलोचना करने पर वे ही छह मास (वही षाण्मासिक प्रायश्चित्त) प्राप्त होते हैं।[1]

बहुसो पडिसेवणा-पदं

बहुशः प्रतिसेवन-पदम्

बहुशः प्रतिसेवना-पद

६. जे भिक्खू बहुसोवि मासियं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा, अपलिउंचियं आलोएमाणस्स मासियं, पलिउंचियं आलोएमाणस्स दोमासियं ।।

यो भिक्षुः बहुशः अपि मासिकं परिहारस्थानं प्रतिसेव्य आलोचयेत्, अपरिकुञ्चितम् आलोचयतः मासिकम्, परिकुञ्चितम् आलोचयतः द्वैमासिकम्।

६. जो भिक्षु बहुत बार मासिक परिहारस्थान की प्रतिसेवना कर आलोचना करता है, निश्छल भाव से आलोचना करने वाले को मासिक और छलपूर्वक आलोचना करने वाले को द्वैमासिक प्रायश्चित्त प्राप्त होता है।

७. जे भिक्खू बहुसोवि दोमासियं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा, अपलिउंचियं आलोएमाणस्स दोमासियं, पलिउंचियं आलोएमाणस्स तेमासियं ।।

यो भिक्षुः बहुशः अपि द्वैमासिकं परिहारस्थानं प्रतिसेव्य आलोचयेत्, अपरिकुञ्चितम् आलोचयतः द्वैमासिकम्, परिकुञ्चितम् आलोचयतः त्रैमासिकम्।

७. जो भिक्षु बहुत बार द्वैमासिक परिहारस्थान की प्रतिसेवना कर आलोचना करता है, निश्छल भाव से आलोचना करने वाले को द्वैमासिक और छलपूर्वक आलोचना करने वाले को त्रैमासिक प्रायश्चित्त प्राप्त होता है।

८. जे भिक्खू बहुसोवि तेमासियं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा, अपलिउंचियं आलोएमाणस्स तेमासियं, पलिउंचियं आलोएमाणस्स चाउम्मासियं ।।

यो भिक्षुः बहुशः अपि त्रैमासिकं परिहारस्थानं प्रतिसेव्य आलोचयेत्, अपरिकुञ्चितम् आलोचयतः त्रैमासिकम्, परिकुञ्चितम् आलोचयतः चातुर्मासिकम्।

८. जो भिक्षु बहुत बार त्रैमासिक परिहारस्थान की प्रतिसेवना कर आलोचना करता है, निश्छल भाव से आलोचना करने वाले को त्रैमासिक और छलपूर्वक आलोचना करने वाले को चातुर्मासिक प्रायश्चित्त प्राप्त होता है।

९. जे भिक्खू बहुसोवि चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा, अपलिउंचियं आलोएमाणस्स चाउम्मासियं, पलिउंचियं आलोएमाणस्स पंचमासियं ।।

यो भिक्षुः बहुशः अपि चातुर्मासिकं परिहारस्थानं प्रतिसेव्य आलोचयेत्, अपरिकुञ्चितम् आलोचयतः चातुर्मासिकम्, परिकुञ्चितम् आलोचयतः पाञ्चमासिकम्।

९. जो भिक्षु बहुत बार चातुर्मासिक परिहारस्थान की प्रतिसेवना कर आलोचना करता है, निश्छल भाव से आलोचना करने वाले को चातुर्मासिक और छलपूर्वक आलोचना करने वाले को पाञ्चमासिक प्रायश्चित्त प्राप्त होता है।

१०. जे भिक्खू बहुसोवि पंचमासियं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा, अपलिउंचियं आलोएमाणस्स पंचमासियं, पलिउंचियं आलोएमाणस्स छम्मासियं ।।
तेण परं पलिउंचिए वा अपलिउंचिए वा ते चेव छम्मासा ।।

यो भिक्षुः बहुशः अपि पाञ्चमासिकं परिहारस्थानं प्रतिसेव्य आलोचयेत्, अपरिकुञ्चितम् आलोचयतः पाञ्चमासिकम्, परिकुञ्चितम् आलोचयतः षाण्मासिकम्।
तस्मात् परं परिकुञ्चिते वा अपरिकुञ्चिते वा ते एव षण्मासाः।

१०. जो भिक्षु बहुत बार पाञ्चमासिक परिहारस्थान की प्रतिसेवना कर आलोचना करता है, निश्छल भाव से आलोचना करने वाले को पाञ्चमासिक और छलपूर्वक आलोचना करने वाले को षाण्मासिक प्रायश्चित्त प्राप्त होता है।
उससे आगे छलपूर्वक अथवा निश्छल भाव से आलोचना करने पर वे ही छह मास प्राप्त होते हैं।[२]

सइं पडिसेवणा-संजोगसुत्त-पदं

११. जे भिक्खू मासियं वा दोमासियं वा तेमासियं वा चाउम्मासियं वा पंचमासियं वा एएसिं परिहारट्ठाणाणं अण्णयरं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा, अपलिउंचियं आलोएमाणस्स मासियं वा दोमासियं वा तेमासियं वा चाउम्मासियं वा पंचमासियं वा, पलिउंचियं आलोएमाणस्स दोमासियं वा तेमासियं वा चाउम्मासियं वा पंचमासियं वा छम्मासियं वा।
तेण परं पलिउंचिए वा अपलिउंचिए वा ते चेव छम्मासा ।।

सकृत् प्रतिसेवन-संयोगसूत्र-पदम्

यो भिक्षु मासिकं वा द्वैमासिकं वा त्रैमासिकं वा चातुर्मासिकं वा पाञ्चमासिकं वा एतेषां परिहार-स्थानानाम् अन्यतरं परिहारस्थानं प्रतिसेव्य आलोचयेत्, अपरिकुञ्चितम् आलोचयतः मासिकं वा द्वैमासिकं वा त्रैमासिकं वा चातुर्मासिकं वा पाञ्चमासिकं वा, परिकुञ्चितम् आलोचयतः द्वैमासिकं वा त्रैमासिकं वा चातुर्मासिकं वा पाञ्चमासिकं वा षाण्मासिकं वा।
तस्मात् परं परिकुञ्चिते वा अपरिकुञ्चिते वा ते एव षण्मासाः।

सकृत् प्रतिसेवना-संयोगसूत्र-पद

११. जो भिक्षु मासिक, द्वैमासिक, त्रैमासिक, चातुर्मासिक और पाञ्चमासिक—इन परिहारस्थानों में से किसी परिहारस्थान की प्रतिसेवना कर आलोचना करता है, निश्छल भाव से आलोचना करने वाले को (प्रतिसेवना के अनुरूप क्रमशः) मासिक, द्वैमासिक, त्रैमासिक, चातुर्मासिक और पाञ्चमासिक तथा छलपूर्वक आलोचना करने वाले को (प्रतिसेवना के अनुरूप क्रमशः) द्वैमासिक, त्रैमासिक, चातुर्मासिक, पाञ्चमासिक और षाण्मासिक प्रायश्चित्त प्राप्त होता है।
उससे आगे छलपूर्वक अथवा निश्छल भाव से आलोचना करने पर वे ही छह मास प्राप्त होते हैं।

बहुसो पडिसेवणा-संजोगसुत्त-पदं

१२. जे भिक्खू बहुसोवि मासियं वा बहुसोवि दोमासियं वा बहुसोवि तेमासियं वा बहुसोवि चाउम्मासियं वा बहुसोवि पंचमासियं वा एएसिं परिहारट्ठाणाणं अण्णयरं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा, अपलिउंचियं आलोएमाणस्स मासियं वा दोमासियं वा तेमासियं वा चाउम्मासियं वा पंचमासियं वा, पलिउंचियं आलोएमाणस्स

बहुशः प्रतिसेवन-संयोगसूत्र-पदम्

यो भिक्षुः बहुशः अपि मासिकं वा बहुशः अपि द्वैमासिकं वा बहुशः अपि त्रैमासिकं वा बहुशः अपि चातुर्मासिकं वा बहुशः अपि पाञ्चमासिकं वा एतेषां परिहारस्थानानाम् अन्यतरं परिहारस्थानं प्रतिसेव्य आलोचयेत्, अपरिकुञ्चितम् आलोचयतः मासिकं वा द्वैमासिकं वा त्रैमासिकं वा चातुर्मासिकं वा पाञ्चमासिकं वा, परिकुञ्चितम् आलोचयतः द्वैमासिकं वा त्रैमासिकं वा

बहुशः प्रतिसेवना-संयोगसूत्र-पद

१२. जो भिक्षु बहुत बार मासिक, बहुत बार द्वैमासिक, बहुत बार त्रैमासिक, बहुत बार चातुर्मासिक और बहुत बार पाञ्चमासिक— इन परिहारस्थानों में से किसी परिहारस्थान की प्रतिसेवना कर आलोचना करता है, निश्छल भाव से आलोचना करने वाले को (प्रतिसेवना के अनुरूप क्रमशः) मासिक, द्वैमासिक, त्रैमासिक, चातुर्मासिक और पाञ्चमासिक तथा छलपूर्वक आलोचना करने वाले को (प्रतिसेवना के अनुरूप

दोमासियं वा तेमासियं वा चाउम्मासियं वा पंचमासियं वा छम्मासियं वा।
तेण परं पलिउंचिए वा अपलिउंचिए वा ते चेव छम्मासा ।।

चातुर्मासिकं वा पाञ्चमासिकं वा षाण्मासिकं वा।

तस्मात् परं परिकुञ्चिते वा अपरिकुञ्चिते वा ते एव षण्मासाः ।

क्रमशः) द्वैमासिक, त्रैमासिक, चातुर्मासिक, पाञ्चमासिक और षाण्मासिक प्रायश्चित्त प्राप्त होता है।
उससे आगे छलपूर्वक अथवा निश्छल भाव से आलोचना करने पर वे ही छह मास प्राप्त होते हैं।[१]

सइं साइरेगपडिसेवणा-पदं

१३. जे भिक्खू चाउम्मासियं वा साइरेगचाउम्मासियं वा पंचमासियं वा साइरेगपंचमासियं वा एएसिं परिहारट्ठाणाणं अण्णयरं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा, अपलिउंचियं आलोएमाणस्स चाउम्मासियं वा साइरेगचाउम्मासियं वा पंचमासियं वा साइरेगपंचमासियं वा, पलिउंचियं आलोएमाणस्स पंचमासियं वा साइरेगपंचमासियं वा छम्मासियं वा।

तेण परं पलिउंचिए वा अपलिउंचिए वा ते चेव छम्मासा ।।

सकृत् सातिरेकप्रतिसेवन-पदम्

यो भिक्षुः चातुर्मासिकं वा सातिरेकचातुर्मासिकं वा पाञ्चमासिकं वा सातिरेकपाञ्चमासिकं वा एतेषां परिहारस्थानानाम् अन्यतरं परिहारस्थानं प्रतिसेव्य आलोचयेत्, अपरिकुञ्चितम् आलोचयतः चातुर्मासिकं वा सातिरेक चातुर्मासिकं वा पाञ्चमासिकं वा सातिरेक पाञ्चमासिकं वा, परिकुञ्चितम् आलोचयतः पाञ्चमासिकं वा सातिरेक पाञ्चमासिकं वा षाण्मासिकं वा।

तस्मात् परं परिकुञ्चिते वा अपरिकुञ्चिते वा ते एव षण्मासाः ।

सकृत् सातिरेकप्रतिसेवना-पद

१३. जो भिक्षु चातुर्मासिक, सातिरेक चातुर्मासिक, पाञ्चमासिक और सातिरेक पाञ्चमासिक—इन परिहारस्थानों में से किसी परिहारस्थान की प्रतिसेवना कर आलोचना करता है, निश्छल भाव से आलोचना करने वाले को (प्रतिसेवना के अनुरूप क्रमशः) चातुर्मासिक, सातिरेक चातुर्मासिक, पाञ्चमासिक और सातिरेक पाञ्चमासिक तथा छलपूर्वक आलोचना करने वाले को (प्रतिसेवना के अनुरूप क्रमशः) पाञ्चमासिक, सातिरेक पाञ्चमासिक और षाण्मासिक प्रायश्चित्त प्राप्त होता है।
उससे आगे छलपूर्वक अथवा निश्छल भाव से आलोचना करने पर वे ही छह मास प्राप्त होते हैं।

बहुसो साइरेगपडिसेवणा-पदं

१४. जे भिक्खू बहुसोवि चाउम्मासियं वा बहुसोवि साइरेगचाउम्मासियं वा बहुसोवि पंचमासियं वा बहुसोवि साइरेगपंचमासियं वा एएसिं परिहारट्ठाणाणं अण्णयरं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा, अपलिउंचियं आलोएमाणस्स चाउम्मासियं वा साइरेगचाउम्मासियं वा पंचमासियं वा साइरेगपंचमासियं वा, पलिउंचियं आलोएमाणस्स पंचमासियं वा साइरेगपंचमासियं वा छम्मासियं वा।

बहुशः सातिरेकप्रतिसेवन-पदम्

यो भिक्षुः बहुशः अपि चातुर्मासिकं वा बहुशः अपि सातिरेकचातुर्मासिकं वा बहुशः अपि पाञ्चमासिकं वा बहुशः अपि सातिरेकपाञ्चमासिकं वा एतेषां परिहारस्थानानाम् अन्यतरं परिहारस्थानं प्रतिसेव्य आलोचयेत्, अपरिकुञ्चितम् आलोचयतः चातुर्मासिकं वा सातिरेकचातुर्मासिकं वा पाञ्चमासिकं वा सातिरेकपाञ्चमासिकं वा, परिकुञ्चितम् आलोचयतः पाञ्चमासिकं वा सातिरेकपाञ्चमासिकं वा षाण्मासिकं वा।

बहुशः सातिरेकप्रतिसेवना-पद

१४. जो भिक्षु बहुत बार चातुर्मासिक, बहुत बार सातिरेक चातुर्मासिक, बहुत बार पाञ्चमासिक और बहुत बार सातिरेक पाञ्चमासिक—इन परिहारस्थानों में से किसी परिहारस्थान की प्रतिसेवना कर आलोचना करता है, निश्छल भाव से आलोचना करने वाले को (प्रतिसेवना के अनुरूप क्रमशः) चातुर्मासिक, सातिरेक चातुर्मासिक, पाञ्चमासिक और सातिरेक पाञ्चमासिक तथा छलपूर्वक आलोचना करने वाले को (प्रतिसेवना के अनुरूप क्रमशः) पाञ्चमासिक, सातिरेक

पाञ्चमासिक और षाण्मासिक प्रायश्चित्त प्राप्त होता है।

तेण परं पलिउंचिए वा अपलिउंचिए वा ते चेव छम्मासा।।

तस्मात् परं परिकुञ्चिते वा अपरिकुञ्चिते वा ते एव षण्मासाः।

उससे आगे छलपूर्वक अथवा निश्छल भाव से आलोचना करने पर वे ही छह मास प्राप्त होते हैं।[४]

परिहारट्ठाण-पडिसेवणा-पदं

१५. जे भिक्खू चाउम्मासियं वा साइरेगचाउम्मासियं वा पंचमासियं वा साइरेगपंचमासियं वा एएसिं परिहारट्ठाणाणं अण्णयरं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा, अपलिउंचियं आलोएमाणे ठवणिज्जं ठवइत्ता करणिज्जं वेयावडियं। ठविए वि पडिसेवित्ता, से वि कसिणे तत्थेव आरुहेयव्वे सिया।

पुव्विं पडिसेवियं पुव्विं आलोइयं, पुव्विं पडिसेवियं पच्छा आलोइयं। पच्छा पडिसेवियं पुव्विं आलोइयं, पच्छा पडिसेवियं पच्छा आलोइयं। अपलिउंचिए अपलिउंचियं, अपलिउंचिए पलिउंचियं। पलिउंचिए अपलिउंचियं, पलिउंचिए पलिउंचियं।

अपलिउंचिए अपलिउंचियं आलोएमाणस्स सव्वमेयं सकयं साहणिय जे एयाए पट्ठवणाए पट्ठविए णिव्विसमाणे पडिसेवेइ, से वि कसिणे तत्थेव आरुहेयव्वे सिया।।

परिहारस्थान-प्रतिसेवन-पदम्

यो भिक्षुः चातुर्मासिकं वा सातिरेकचातुर्मासिकं वा पाञ्चमासिकं वा सातिरेकपाञ्चमासिकं वा एतेषां परिहारस्थानानाम् अन्यतरं परिहारस्थानं प्रतिसेव्य आलोचयेत्, अपरिकुञ्चितम् आलोचयतः स्थापनीयं स्थापयित्वा करणीयं वैयावृत्यम्। स्थापिते अपि प्रतिसेव्य, तदपि कृत्स्नं तत्रैव आरोपयितव्यं स्यात्।

पूर्वं प्रतिसेवितं पूर्वम् आलोचितम्, पूर्वं प्रतिसेवितं पश्चाद् आलोचितम्। पश्चात् प्रतिसेवितं पूर्वम् आलोचितम्, पश्चात् प्रतिसेवितं पश्चाद् आलोचितम्। अपरिकुञ्चिते अपरिकुञ्चितम्, अपरिकुञ्चिते परिकुञ्चितम्। परिकुञ्चिते अपरिकुञ्चितं, परिकुञ्चिते परिकुञ्चितम्।

अपरिकुञ्चिते अपरिकुञ्चितम् आलोचयतः सर्वमेतत् स्वकृतं संहृत्य यत् एतस्यां प्रस्थापनायां प्रस्थापितः निर्विशमानः प्रतिसेवते, तदपि कृत्स्नं तत्रैव आरोपयितव्यं स्यात्।

परिहारस्थानप्रतिसेवना-पद

१५. जो भिक्षु चातुर्मासिक, सातिरेक चातुर्मासिक, पाञ्चमासिक और सातिरेक पाञ्चमासिक—इन परिहारस्थानों में से किसी एक परिहारस्थान की प्रतिसेवना कर आलोचना करता है, निश्छल भाव से आलोचना करने पर स्थापनीय (परिहारतप की समग्र सामाचारी) की स्थापना (प्ररूपणा) करके उसका वैयावृत्य करना चाहिए। प्रायश्चित्त में स्थापित करने के बाद भी प्रतिसेवना करे तो उसका सम्पूर्ण प्रायश्चित्त उसी (पूर्वप्रदत्त प्रायश्चित्त) में आरोपित कर देना चाहिए।

१. पूर्वानुपूर्वी से प्रतिसेवित दोष की पूर्वानुपूर्वी से आलोचना।

२. पूर्वानुपूर्वी से प्रतिसेवित दोष की पश्चानुपूर्वी से आलोचना।

३. पश्चानुपूर्वी से प्रतिसेवित दोष की पूर्वानुपूर्वी से आलोचना।

४. पश्चानुपूर्वी से प्रतिसेवित दोष की पश्चानुपूर्वी से आलोचना।

- निश्छल भाव से आलोचना का संकल्प कर निश्छल भाव से आलोचना।
- निश्छल भाव से आलोचना का संकल्प कर छलपूर्वक आलोचना।
- छलपूर्वक आलोचना का संकल्प कर निश्छल भाव से आलोचना।
- छलपूर्वक आलोचना का संकल्प कर छलपूर्वक आलोचना।

निश्छल संकल्प की स्थिति में निश्छल भाव से आलोचना करने वाले के इस सारे स्वकृत को एकत्र करके उस सम्पूर्ण प्रायश्चित्त को भी उसी प्रायश्चित्त में

आरोपित कर देना चाहिए, जो उसने इस प्रस्थापना में प्रस्थापित होने पर निर्विशमान अवस्था (प्रायश्चित्त-वहनकाल) में प्रतिसेवन किया है।

१६. जे भिक्खू बहुसोवि चाउम्मासियं वा बहुसोवि साइरेगचाउम्मासियं वा बहुसोवि पंचमासियं वा बहुसोवि साइरेगपंचमासियं वा एएसिं परिहारट्ठाणाणं अण्णयरं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा, अपलिउंचियं आलोएमाणे ठवणिज्जं ठवइत्ता करणिज्जं वेयावडियं। ठविए वि पडिसेवित्ता, से वि कसिणे तत्थेव आरुहेयव्वे सिया।

पुव्विं पडिसेवियं पुव्विं आलोइयं, पुव्विं पडिसेवियं पच्छा आलोइयं। पच्छा पडिसेवियं पुव्विं आलोइयं, पच्छा पडिसेवियं पच्छा आलोइयं।

अपलिउंचिए अपलिउंचियं, अपलिउंचिए पलिउंचियं। पलिउंचिए अपलिउंचियं, पलिउंचिए पलिउंचियं।

अपलिउंचिए अपलिउंचियं आलोएमाणस्स सव्वमेयं सकयं साहणिय जे एयाए पट्ठवणाए पट्ठविए णिव्विसमाणे पडिसेवेइ, से वि कसिणे तत्थेव आरुहेयव्वे सिया।।

यो भिक्षुः बहुशः अपि चातुर्मासिकं वा बहुशः अपि सातिरेकचातुर्मासिकं वा बहुशः अपि पाञ्चमासिकं वा बहुशः अपि सातिरेकपाञ्चमासिकं वा एतेषां परिहारस्थानानाम् अन्यतरं परिहारस्थानं प्रतिसेव्य आलोचयेत्, अपरिकुञ्चितम् आलोचयतः स्थापनीयं स्थापयित्वा करणीयं वैयावृत्यम्। स्थापिते अपि प्रतिसेव्य, तदपि कृत्स्नं तत्रैव आरोपयितव्यं स्यात्।

पूर्वं प्रतिसेवितं पूर्वम् आलोचितम्, पूर्वं प्रतिसेवितं पश्चाद् आलोचितम्। पश्चात् प्रतिसेवितं पूर्वम् आलोचितम्, पश्चात् प्रतिसेवितं पश्चाद् आलोचितम्।

अपरिकुञ्चिते अपरिकुञ्चितम्, अपरिकुञ्चिते परिकुञ्चितम्। परिकुञ्चिते अपरिकुञ्चितम्, परिकुञ्चिते परिकुञ्चितम्।

अपरिकुञ्चिते अपरिकुञ्चितम् आलोचयतः सर्वमेतत् स्वकृतं संहत्य यत् एतस्यां प्रस्थापनायां प्रस्थापितः निर्विशमानः प्रतिसेवते, तदपि कृत्स्नं तत्रैव आरोपयितव्यं स्यात्।

१६. जो भिक्षु बहुत बार चातुर्मासिक, बहुत बार सातिरेक चातुर्मासिक, बहुत बार पाञ्चमासिक और बहुत बार सातिरेक पाञ्चमासिक—इन परिहारस्थानों में से किसी परिहारस्थान की प्रतिसेवना कर आलोचना करता है, निश्छल भाव से आलोचना करने पर स्थापनीय (परिहारतप की समग्र सामाचारी) की स्थापना (प्ररूपणा) करके (उसका) वैयावृत्य करना चाहिए। प्रायश्चित्त में स्थापित करने के बाद भी प्रतिसेवना करे तो उसका सम्पूर्ण प्रायश्चित्त उसी (पूर्वप्रदत्त प्रायश्चित्त) में आरोपित कर देना चाहिए।

१. पूर्वानुपूर्वी से प्रतिसेवित दोष की पूर्वानुपूर्वी से आलोचना।

२. पूर्वानुपूर्वी से प्रतिसेवित दोष की पश्चानुपूर्वी से आलोचना।

३. पश्चानुपूर्वी से प्रतिसेवित दोष की पूर्वानुपूर्वी से आलोचना।

४. पश्चानुपूर्वी से प्रतिसेवित दोष की पश्चानुपूर्वी से आलोचना।

- निश्छल भाव से आलोचना का संकल्प कर निश्छल भाव से आलोचना।
- निश्छल भाव से आलोचना का संकल्प कर छलपूर्वक आलोचना।
- छलपूर्वक आलोचना का संकल्प कर निश्छल भाव से आलोचना।
- छलपूर्वक आलोचना का संकल्प कर छलपूर्वक आलोचना।

निश्छल संकल्प की स्थिति में निश्छल भाव से आलोचना करने वाले के इस सारे स्वकृत को एकत्र कर उस सम्पूर्ण प्रायश्चित्त को भी उसी प्रायश्चित्त में आरोपित कर देना चाहिए, जो उसने इस

प्रस्थापना में प्रस्थापित होने पर निर्विशमान अवस्था (प्रायश्चित्त-वहनकाल) में प्रतिसेवन किया है।

१७. जे भिक्खू चाउम्मासियं वा साइरेगचाउम्मासियं वा पंचमासियं वा साइरेगपंचमासियं वा एएसिं परिहारट्ठाणाणं अण्णयरं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा, पलिउंचियं आलोएमाणे ठवणिज्जं ठवइत्ता करणिज्जं वेयावडियं। ठविए वि पडिसेवित्ता, से वि कसिणे तत्थेव आरुहेयव्वे सिया।

पुव्विं पडिसेवियं पुव्विं आलोइयं, पुव्विं पडिसेवियं पच्छा आलोइयं। पच्छा पडिसेवियं पुव्विं आलोइयं, पच्छा पडिसेवियं पच्छा आलोइयं।

अपलिउंचिए अपलिउंचियं, अपलिउंचिए पलिउंचियं। पलिउंचिए अपलिउंचियं, पलिउंचिए पलिउंचियं।

पलिउंचिए पलिउंचियं आलोए-माणस्स सव्वमेयं सकयं साहणिय जे एयाए पट्ठवणाए पट्ठविए णिव्विसमाणे पडिसेवेइ, से वि कसिणे तत्थेव आरुहेयव्वे सिया।।

यो भिक्षुः चातुर्मासिकं वा सातिरेकचातुर्मासिकं वा पाञ्चमासिकं वा सातिरेकपाञ्चमासिकं वा एतेषां परिहारस्थानानाम् अन्यतरं परिहारस्थानं प्रतिसेव्य आलोचयेत्, परिकुञ्चितम् आलोचयतः स्थापनीयं स्थापयित्वा करणीयं वैयावृत्यम्। स्थापितेऽपि प्रतिसेव्य, तदपि कृत्स्नं तत्रैव आरोपयितव्यं स्यात्।

पूर्वं प्रतिसेवितं, पूर्वम् आलोचितम्, पूर्वं प्रतिसेवितं पश्चाद् आलोचितम्। पश्चात् प्रतिसेवितं, पूर्वम् आलोचितम्, पश्चात् प्रतिसेवितं पश्चाद् आलोचितम्।

अपरिकुञ्चिते अपरिकुञ्चितम्, अपरिकुञ्चिते परिकुञ्चितम्। परिकुञ्चिते अपरिकुञ्चितम्, परिकुञ्चिते परिकुञ्चितम्।

परिकुञ्चिते परिकुञ्चितम् आलोचयतः सर्वमेतत् स्वकृतं संहृत्य यत् एतस्यां प्रस्थापनायां प्रस्थापितः निर्विशमानः प्रतिसेवते, तदपि कृत्स्नं तत्रैव आरोपयितव्यं स्यात्।

१७. जो भिक्षु चातुर्मासिक, सातिरेक चातुर्मासिक, पाञ्चमासिक और सातिरेक पाञ्चमासिक—इन परिहारस्थानों में से किसी परिहारस्थान की प्रतिसेवना कर आलोचना करता है, छलपूर्वक आलोचना करने पर स्थापनीय (परिहार तप की समग्र सामाचारी) की स्थापना (प्ररूपणा) करके (उसका) वैयावृत्य करना चाहिए। प्रायश्चित्त में स्थापित करने के बाद भी प्रतिसेवना करे तो उसका सम्पूर्ण प्रायश्चित्त उसी (पूर्वप्रदत्त प्रायश्चित्त) में आरोपित कर देना चाहिए।

१. पूर्वानुपूर्वी से प्रतिसेवित दोष की पूर्वानुपूर्वी से आलोचना।

२. पूर्वानुपूर्वी से प्रतिसेवित दोष की पश्चानुपूर्वी से आलोचना।

३. पश्चानुपूर्वी से प्रतिसेवित दोष की पूर्वानुपूर्वी से आलोचना।

४. पश्चानुपूर्वी से प्रतिसेवित दोष की पश्चानुपूर्वी से आलोचना।

- निश्छल भाव से आलोचना का संकल्प कर निश्छल भाव से आलोचना।
- निश्छल भाव से आलोचना का संकल्प कर छलपूर्वक आलोचना।
- छलपूर्वक आलोचना का संकल्प कर निश्छल भाव से आलोचना।
- छलपूर्वक आलोचना का संकल्प कर छलपूर्वक आलोचना।

छलयुक्त संकल्प की स्थिति में छलपूर्वक आलोचना करने वाले के इस सारे स्वकृत को एकत्र कर उस सम्पूर्ण प्रायश्चित्त को भी उसी प्रायश्चित्त में आरोपित कर देना चाहिए, जो उसने इस प्रस्थापना में प्रस्थापित होने पर निर्विशमान अवस्था (प्रायश्चित्त-वहनकाल) में प्रतिसेवन किया है।

१८. जे भिक्खू बहुसोवि चाउम्मासियं वा बहुसोवि साइरेगचाउम्मासियं वा बहुसोवि पंचमासियं वा बहुसोवि साइरेगपंचमासियं वा एएसिं परिहार-ट्ठाणाणं अण्णयरं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा, पलिउंचियं आलोएमाणे ठवणिज्जं ठवइत्ता करणिज्जं वेयावडियं। ठविए वि पडिसेवित्ता, से वि कसिणे तत्थेव आरुहेयव्वे सिया।

पुव्विं पडिसेवियं पुव्विं आलोइयं, पुव्विं पडिसेवियं पच्छा आलोइयं। पच्छा पडिसेवियं पुव्विं आलोइयं, पच्छा पडिसेवियं पच्छा आलोइयं।

अपलिउंचिए अपलिउंचियं, अपलिउंचिए पलिउंचियं। पलिउंचिए अपलिउंचियं, पलिउंचिए पलिउंचियं।

पलिउंचिए पलिउंचियं आलोए-माणस्स सव्वमेयं सकयं साहणिय जे एयाए पट्ठवणाए पट्ठविए णिव्विसमाणे पडिसेवेइ, से वि कसिणे तत्थेव आरुहेयव्वे सिया।।

यो भिक्षुः बहुशः अपि चातुर्मासिकं वा बहुशः अपि सातिरेकचातुर्मासिकं वा बहुशः अपि पाञ्चमासिकं वा बहुशः अपि सातिरेकपाञ्चमासिकं वा एतेषां परिहारस्थानानाम् अन्यतरं परिहारस्थानं प्रतिसेव्य आलोचयेत्, परिकुञ्चितम् आलोचयतः स्थापनीयं स्थापयित्वा करणीयं वैयावृत्यम्। स्थापिते अपि प्रतिसेव्य, तदपि कृत्स्नं तत्रैव आरोपयितव्यं स्यात्।

पूर्वं प्रतिसेवितं पूर्वम् आलोचितम्, पूर्वं प्रतिसेवितं पश्चाद् आलोचितम्। पश्चात् प्रतिसेवितं पूर्वम् आलोचितम्, पश्चात् प्रतिसेवितं पश्चाद् आलोचितम्।

अपरिकुञ्चिते अपरिकुञ्चितम्, अपरिकुञ्चिते परिकुञ्चितम्। परिकुञ्चिते अपरिकुञ्चितम्, परिकुञ्चिते परिकुञ्चितम्।

परिकुञ्चिते परिकुञ्चितम् आलोचयतः सर्वमेतत् स्वकृतं संहत्य यत् एतस्यां प्रस्थापनायां प्रस्थापितः निर्विशमानः प्रतिसेवते, तदपि कृत्स्नं तत्रैव आरोपयितव्यं स्यात्।

१८. जो भिक्षु बहुत बार चातुर्मासिक, बहुत बार सातिरेक चातुर्मासिक, बहुत बार पाञ्चमासिक बहुत बार सातिरेक पाञ्चमासिक—इन परिहारस्थानों में से किसी परिहारस्थान की प्रतिसेवना कर आलोचना करे, उसे छलपूर्वक आलोचना करने पर स्थापनीय (परिहार तप की समग्र सामाचारी) की स्थापना (प्ररूपणा) करके (उसका) वैयावृत्य करना चाहिए। प्रायश्चित्त में स्थापित करने के बाद भी प्रतिसेवना करे तो उसका सम्पूर्ण प्रायश्चित्त उसी (पूर्वप्रदत्त प्रायश्चित्त) में आरोपित कर देना चाहिए।

१. पूर्वानुपूर्वी से प्रतिसेवित दोष की पूर्वानुपूर्वी से आलोचना।

२. पूर्वानुपूर्वी से प्रतिसेवित दोष की पश्चानुपूर्वी से आलोचना।

३. पश्चानुपूर्वी से प्रतिसेवित दोष की पूर्वानुपूर्वी से आलोचना।

४. पश्चानुपूर्वी से प्रतिसेवित दोष की पश्चानुपूर्वी से आलोचना।

- निश्छल भाव से आलोचना का संकल्प कर निश्छल भाव से आलोचना।
- निश्छल भाव से आलोचना का संकल्प कर छलपूर्वक आलोचना।
- छलपूर्वक आलोचना का संकल्प कर निश्छल भाव से आलोचना।
- छलपूर्वक आलोचना का संकल्प कर छलपूर्वक आलोचना।

छलयुक्त संकल्प की स्थिति में छलयुक्त आलोचना करने वाले के इस सारे स्वकृत को एकत्र कर उस सम्पूर्ण प्रायश्चित्त को भी उसी प्रायश्चित्त में आरोपित कर देना चाहिए, जो उसने इस प्रस्थापना में प्रस्थापित होने पर निर्विशमान अवस्था (प्रायश्चित्तवहनकाल) में प्रतिसेवन किया है।[१]

वीसतिराइयारोवणा-पदं

१९. छम्मासियं परिहारट्ठाणं पट्ठविए अणगारे अंतरा दोमासियं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा अहावरा वीसतिरातिया आरोवणा आदी मज्झेवसाणे सअट्ठं सहेउं सकारणं अहीणमतिरित्तं, तेण परं सवीसतिरातिया दो मासा ।।

२०. पंचमासियं परिहारट्ठाणं पट्ठविए अणगारे अंतरा दोमासियं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा अहावरा वीसतिरातिया आरोवणा आदी मज्झेवसाणे सअट्ठं सहेउं सकारणं अहीणमतिरित्तं, तेण परं सवीसतिरातिया दो मासा ।।

२१. चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं पट्ठविए अणगारे अंतरा दोमासियं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा अहावरा वीसतिरातिया आरोवणा आदी मज्झेवसाणे सअट्ठं सहेउं सकारणं अहीणमतिरित्तं, तेण परं सवीसतिरातिया दो मासा ।।

२२. तेमासियं परिहारट्ठाणं पट्ठविए अणगारे अंतरा दोमासियं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा अहावरा वीसतिरातिया आरोवणा आदी मज्झेवसाणे सअट्ठं सहेउं सकारणं

विंशतिरात्रिक्यारोपणा-पदम्

षाण्मासिकं परिहारस्थानं प्रस्थापितः अनगारः अन्तरा द्वैमासिकं परिहारस्थानं प्रतिसेव्य आलोचयेत् अथापरा विंशतिरात्रिकी आरोपणा आदिमध्याव-सानेसार्थं सहेतु सकारणम् अहीनातिरिक्तम्, तस्मात् परं सविंशतिरात्रिकौ द्वौ मासौ।

पाञ्चमासिकं परिहारस्थानं प्रस्थापितः अनगारः अन्तरा द्वैमासिकं परिहारस्थानं प्रतिसेव्य आलोचयेत् अथापरा विंशतिरात्रिकी आरोपणा आदिमध्याव-साने सार्थं सहेतु सकारणम् अहीनातिरिक्तम्, तस्मात् परं सविंशतिरात्रिकौ द्वौ मासौ।

चातुर्मासिकं परिहारस्थानं प्रस्थापितः अनगारः अन्तरा द्वैमासिकं परिहारस्थानं प्रतिसेव्य आलोचयेत् अथापरा विंशतिरात्रिकी आरोपणा आदिमध्याव-साने सार्थं सहेतु सकारणम् अहीनातिरिक्तम्, तस्मात् परं सविंशतिरात्रिकौ द्वौ मासौ।

त्रैमासिकं परिहारस्थानं प्रस्थापितः अनगारः अन्तरा द्वैमासिकं परिहारस्थानं प्रतिसेव्य आलोचयेत् अथापरा विंशतिरात्रिकी आरोपणा आदिमध्यावसाने सार्थं सहेतु सकारणम्

बीसरात्रिकी आरोपणा-पद

१९. षाण्मासिक परिहारस्थान में प्रस्थापित अनगार यदि प्रायश्चित्त के मध्य द्वैमासिक परिहारस्थान की प्रतिसेवना कर आलोचना करता है, उसे उस काल के आदि, मध्य अथवा अवसान में अर्थसहित, हेतु सहित, कारणसहित बीसरात्रिकी आरोपणा दी जाए। न्यून-अधिक आरोपणा न दी जाए। उसके बाद पुनः द्वैमासिक परिहारस्थान की प्रतिसेवना करने पर बीस रात दो मास की आरोपणा प्राप्त होती है।

२०. पाञ्चमासिक परिहारस्थान में प्रस्थापित अनगार यदि प्रायश्चित्त के मध्य द्वैमासिक परिहारस्थान की प्रतिसेवना कर आलोचना करता है, उसे उस काल के आदि, मध्य अथवा अवसान में अर्थसहित, हेतुसहित, कारणसहित बीसरात्रिकी आरोपणा दी जाए। न्यून-अधिक आरोपणा न दी जाए। उसके बाद पुनः द्वैमासिक परिहारस्थान की प्रतिसेवना करने पर बीस रात दो मास की आरोपणा प्राप्त होती है।

२१. चातुर्मासिक परिहारस्थान में प्रस्थापित अनगार यदि प्रायश्चित्त के मध्य द्वैमासिक परिहारस्थान की प्रतिसेवना कर आलोचना करता है, उसे उस काल के आदि, मध्य अथवा अवसान में अर्थसहित, हेतुसहित, कारणसहित बीसरात्रिकी आरोपणा दी जाए। न्यून-अधिक आरोपणा न दी जाए। उसके बाद पुनः द्वैमासिक परिहारस्थान की प्रतिसेवना करने पर बीस रात दो मास की आरोपणा प्राप्त होती है।

२२. त्रैमासिक परिहारस्थान में प्रस्थापित अनगार यदि प्रायश्चित्त के मध्य द्वैमासिक परिहारस्थान की प्रतिसेवना कर आलोचना करता है, उसे उस काल के आदि, मध्य अथवा अवसान में अर्थसहित, हेतुसहित,

अहीणमतिरित्तं, तेण परं सवीसतिरातिया दो मासा ।।

अहीनातिरिक्तम्, तस्मात् परं सविंशतिरात्रिकौ द्वौ मासौ ।

कारणसहित बीसरात्रिकी आरोपणा दी जाए। न्यून-अधिक आरोपणा न दी जाए। उसके बाद पुनः द्वैमासिक परिहारस्थान की प्रतिसेवना करने पर बीस रात दो मास की आरोपणा प्राप्त होती है।

२३. **दोमासियं परिहारट्ठाणं पट्ठविए अणगारे अंतरा दोमासियं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा अहावरा वीसतिरातिया आरोवणा आदी मज्झेवसाणे सअट्ठं सहेउं सकारणं अहीणमतिरित्तं, तेण परं सवीसतिरातिया दो मासा ।।**

द्वैमासिकं परिहारस्थानं प्रस्थापितः अनगारः अन्तरा द्वैमासिकं परिहारस्थानं प्रतिसेव्य आलोचयेत् अथापरा विंशतिरात्रिकी आरोपणा आदिमध्यावसाने सार्थं सहेतु सकारणम् अहीनातिरिक्तम्, तस्मात् परं सविंशतिरात्रिकौ द्वौ मासौ ।

२३. द्वैमासिक परिहारस्थान में प्रस्थापित अनगार यदि प्रायश्चित्त के मध्य द्वैमासिक परिहारस्थान की प्रतिसेवना कर आलोचना करता है, उसे उस काल के आदि, मध्य अथवा अवसान में अर्थसहित, हेतुसहित, कारणसहित बीसरात्रिकी आरोपणा दी जाए। न्यून-अधिक आरोपणा न दी जाए। उसके बाद पुनः द्वैमासिक परिहारस्थान की प्रतिसेवना करने पर बीस रात दो मास की आरोपणा प्राप्त होती है।

२४. **मासियं परिहारट्ठाणं पट्ठविए अणगारे अंतरा दोमासियं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा अहावरा वीसतिरातिया आरोवणा आदी मज्झेवसाणे सअट्ठं सहेउं सकारणं अहीणमतिरित्तं, तेण परं सवीसतिरातिया दो मासा ।।**

मासिकं परिहारस्थानं प्रस्थापितः अनगारः अन्तरा द्वैमासिकं परिहारस्थानं प्रतिसेव्य आलोचयेत् अथापरा विंशतिरात्रिकी आरोपणा आदिमध्यावसाने सार्थं सहेतु सकारणम् अहीनातिरिक्तम्, तस्मात् परं सविंशतिरात्रिकौ द्वौ मासौ ।

२४. मासिक परिहारस्थान में प्रस्थापित अनगार यदि प्रायश्चित्त के मध्य द्वैमासिक परिहारस्थान की प्रतिसेवना कर आलोचना करता है, उसे उस काल के आदि, मध्य अथवा अवसान में अर्थसहित, हेतुसहित, कारणसहित बीसरात्रिकी आरोपणा दी जाए। न्यून-अधिक आरोपणा न दी जाए। उसके बाद पुनः द्वैमासिक परिहारस्थान की प्रतिसेवना करने पर बीस रात दो मास की आरोपणा प्राप्त होती है।[६]

२५. **सवीसतिरातियं दोमासियं परिहारट्ठाणं पट्ठविए अणगारे अंतरा दोमासियं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा अहावरा वीसतिरातिया आरोवणा आदी मज्झेवसाणे सअट्ठं सहेउं सकारणं अहीणमतिरित्तं, तेण परं सदसराया तिण्णि मासा ।।**

सविंशतिरात्रिकं द्वैमासिकं परिहारस्थानं प्रस्थापितः अनगारः अन्तरा द्वैमासिकं परिहारस्थानं प्रतिसेव्य आलोचयेत् अथापरा विंशतिरात्रिकी आरोपणा आदिमध्यावसाने सार्थं सहेतु सकारणम् अहीनातिरिक्तम्, तस्मात् परं सदशरात्राः त्रयः मासाः ।

२५. दो मास बीस रात के परिहारस्थान में प्रस्थापित अनगार यदि प्रायश्चित्त के मध्य द्वैमासिक परिहारस्थान की प्रतिसेवना कर आलोचना करता है, उसे उस काल के आदि, मध्य अथवा अवसान में अर्थसहित, हेतुसहित, कारणसहित बीसरात्रिकी आरोपणा दी जाए। न्यून-अधिक आरोपणा न दी जाए। जिसे संयुक्त करने पर तीन मास दस रात की प्रस्थापना होती है।

२६. सदसरायं तेमासियं परिहारट्ठाणं पट्ठविए अणगारे अंतरा दोमासियं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा अहावरा वीसतिरातिया आरोवणा आदी मज्झेवसाणे सअट्ठं सहेउं सकारणं अहीणमतिरित्तं, तेण परं चत्तारि मासा।।

सदशरात्रं त्रैमासिकं परिहारस्थानं प्रस्थापितः अनगारः अन्तरा द्वैमासिकं परिहारस्थानं प्रतिसेव्य आलोचयेत् अथापरा विंशतिरात्रिकी आरोपणा आदिमध्यावसाने सार्थं सहेतु सकारणम् अहीनातिरिक्तम्, तस्मात् परं चत्वारो मासाः।

२६. तीन मास दस रात के परिहारस्थान में प्रस्थापित अनगार यदि प्रायश्चित्त के मध्य द्वैमासिक परिहारस्थान की प्रतिसेवना कर आलोचना करता है, उसे उस काल के आदि, मध्य अथवा अवसान में अर्थसहित हेतुसहित कारणसहित बीसरात्रिकी आरोपणा दी जाए। न्यून-अधिक आरोपणा न दी जाए। जिसे संयुक्त करने पर चार मास की प्रस्थापना होती है।

२७. चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं पट्ठविए अणगारे अंतरा दोमासियं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा अहावरा वीसतिरातिया आरोवणा आदी मज्झेवसाणे सअट्ठं सहेउं सकारणं अहीणमतिरित्तं, तेण परं सवीसतिराया चत्तारि मासा।।

चातुर्मासिकं परिहारस्थानं प्रस्थापितः अनगारः अन्तरा द्वैमासिक परिहारस्थानं प्रतिसेव्य आलोचयेत् अथापरा विंशतिरात्रिकी आरोपणा आदिमध्यावसाने सार्थं सहेतु सकारणम् अहीनातिरिक्तम्, तस्मात् परं सविंशतिरात्राः चत्वारो मासाः।

२७. चातुर्मासिक परिहारस्थान में प्रस्थापित अनगार यदि प्रायश्चित्त के मध्य द्वैमासिक परिहारस्थान की प्रतिसेवना कर आलोचना करता है उसे उस काल के आदि, मध्य अथवा अवसान में अर्थसहित, हेतुसहित, कारणसहित बीसरात्रिकी आरोपणा दी जाए। न्यून-अधिक आरोपणा न दी जाए। जिसे संयुक्त करने पर चार मास बीस रात की प्रस्थापना होती है।

२८. सवीसतिरायं चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं पट्ठविए अणगारे अंतरा दोमासियं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा अहावरा वीसतिरातिया आरोवणा आदी मज्झेवसाणे सअट्ठं सहेउं सकारणं अहीणमतिरित्तं, तेण परं सदसराया पंच मासा।।

सविंशतिरात्रं चातुर्मासिकं परिहारस्थानं प्रस्थापितः अनगारः अन्तरा द्वैमासिकं परिहारस्थानं प्रतिसेव्य आलोचयेत् अथापरा विंशतिरात्रिकी आरोपणा आदिमध्यावसाने सार्थं सहेतु सकारणम् अहीनातिरिक्तम्, तस्मात् परं सदशरात्राः पंचमासाः।

२८. चार मास बीस रात के परिहारस्थान में प्रस्थापित अनगार यदि प्रायश्चित्त के मध्य द्वैमासिक परिहारस्थान की प्रतिसेवना कर आलोचना करता है, उसे उस काल के आदि, मध्य अथवा अवसान में अर्थसहित, हेतुसहित, कारणसहित बीसरात्रिकी आरोपणा दी जाए। न्यून-अधिक आरोपणा न दी जाए। जिसे संयुक्त करने पर पांच मास दस रात की प्रस्थापना होती है।

२९. सदसरायं पंचमासियं परिहारट्ठाणं पट्ठविए अणगारे अंतरा दोमासियं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा अहावरा वीसतिरातिया आरोवणा आदी मज्झेवसाणे सअट्ठं सहेउं सकारणं अहीणमतिरित्तं, तेण परं छम्मासा।।

सदशरात्रं पाञ्चमासिकं परिहारस्थानं प्रस्थापितः अनगारः अन्तरा द्वैमासिकं परिहारस्थानं प्रतिसेव्य आलोचयेत् अथापरा विंशतिरात्रिकी आरोपणा आदिमध्यावसाने सार्थं सहेतु सकारणम् अहीनातिरिक्तम्, तस्मात् परं षण्मासाः।

२९. पांच मास दस रात के परिहारस्थान में प्रस्थापित अनगार यदि प्रायश्चित्त के मध्य द्वैमासिक परिहारस्थान की प्रतिसेवना कर आलोचना करता है, उसे उस काल के आदि, मध्य अथवा अवसान में अर्थसहित, हेतुसहित, कारणसहित बीसरात्रिकी आरोपणा दी जाए। न्यून-अधिक आरोपणा न दी जाए। जिसे संयुक्त करने पर छह मास की प्रस्थापना होती है।[७]

पक्खियारोवणा-पदं

३०. छम्मासियं परिहारट्ठाणं पट्ठविए अणगारे अंतरा मासियं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा अहावरा पक्खिया आरोवणा आदी मज्झेवसाणे सअट्ठं सहेउं सकारणं अहीणमतिरित्तं, तेणं परं दिवड्ढो मासो।।

पाक्षिक्यारोपणा-पदम्

षाण्मासिकं परिहारस्थानं प्रस्थापितः अनगारः अन्तरा मासिकं परिहारस्थानं प्रतिसेव्य आलोचयेत् अथापरा पाक्षिकी आरोपणा आदिमध्यावसाने सार्थं सहेतु सकारणम् अहीनातिरिक्तम्, तस्मात् परं द्व्यर्धौ (अर्धद्वितीयौ) मासौ।

पाक्षिकी आरोपणा-पद

३०. षाण्मासिक परिहारस्थान में प्रस्थापित अनगार यदि प्रायश्चित्त के मध्य मासिक परिहारस्थान की प्रतिसेवना कर आलोचना करता है, उसे उस काल के आदि, मध्य अथवा अवसान में अर्थसहित, हेतुसहित, कारणसहित पाक्षिकी आरोपणा दी जाए। न्यून-अधिक आरोपणा न दी जाए। उसके बाद पुनः मासिक परिहारस्थान की प्रतिसेवना करने पर डेढ़ मास की आरोपणा प्राप्त होती है।

३१. पंचमासियं परिहारट्ठाणं पट्ठविए अणगारे अंतरा मासियं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा अहावरा पक्खिया आरोवणा आदी मज्झेवसाणे सअट्ठं सहेउं सकारणं अहीणमतिरित्तं, तेणं परं दिवड्ढो मासो।।

पाञ्चमासिकं परिहारस्थानं प्रस्थापितः अनगारः अन्तरा मासिकं परिहारस्थानं प्रतिसेव्य आलोचयेत् अथापरा पाक्षिकी आरोपणा आदिमध्यावसाने सार्थं सहेतु सकारणम् अहीनातिरिक्तम्, तस्मात् परं द्व्यर्धौ (अर्धद्वितीयौ) मासौ।

३१. पाञ्चमासिक परिहारस्थान में प्रस्थापित अनगार यदि प्रायश्चित्त के मध्य मासिक परिहारस्थान की प्रतिसेवना कर आलोचना करता है, उसे उस काल के आदि, मध्य अथवा अवसान में अर्थसहित, हेतुसहित, कारणसहित पाक्षिकी आरोपणा दी जाए। न्यून-अधिक आरोपणा न दी जाए। उसके बाद पुनः मासिक परिहारस्थान की प्रतिसेवना करने पर डेढ़ मास की आरोपणा प्राप्त होती है।

३२. चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं पट्ठविए अणगारे अंतरा मासियं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा अहावरा पक्खिया आरोवणा आदी मज्झेवसाणे सअट्ठं सहेउं सकारणं अहीणमतिरित्तं, तेणं परं दिवड्ढो मासो।।

चातुर्मासिकं परिहारस्थानं प्रस्थापितः अनगारः अन्तरा मासिकं परिहारस्थानं प्रतिसेव्य आलोचयेत् अथापरा पाक्षिकी आरोपणा आदिमध्यावसाने सार्थं सहेतु सकारणम् अहीनातिरिक्तम्, तस्मात् परं द्व्यर्धौ (अर्धद्वितीयौ) मासौ।

३२. चातुर्मासिक परिहारस्थान में प्रस्थापित अनगार यदि प्रायश्चित्त के मध्य मासिक परिहारस्थान की प्रतिसेवना कर आलोचना करता है, उसे उस काल के आदि, मध्य अथवा अवसान में अर्थसहित, हेतुसहित, कारणसहित पाक्षिकी आरोपणा दी जाए। न्यून-अधिक आरोपणा न दी जाए। उसके बाद पुनः मासिक परिहारस्थान की प्रतिसेवना करने पर डेढ़ मास की आरोपणा प्राप्त होती है।

३३. तेमासियं परिहारट्ठाणं पट्ठविए अणगारे अंतरा मासियं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा अहावरा पक्खिया आरोवणा आदी मज्झेवसाणे सअट्ठं सहेउं सकारणं

त्रैमासिकं परिहारस्थानं प्रस्थापितः अनगारः अन्तरा मासिकं परिहारस्थानं प्रतिसेव्य आलोचयेत् अथापरा पाक्षिकी आरोपणा आदिमध्यावसाने सार्थं सहेतु सकारणम् अहीनातिरिक्तम्, तस्मात् परं

३३. त्रैमासिक परिहारस्थान में प्रस्थापित अनगार यदि प्रायश्चित्त के मध्य मासिक परिहारस्थान की प्रतिसेवना कर आलोचना करता है, उसे उस काल के आदि, मध्य अथवा अवसान में अर्थसहित, हेतुसहित,

अहीणमतिरित्तं, तेणं परं दिवड्ढो मासो।।

द्व्यर्धौ (अर्धद्वितीयौ) मासौ।

कारणसहित पाक्षिकी आरोपणा दी जाए। न्यून-अधिक आरोपणा न दी जाए। उसके बाद पुनः मासिक परिहारस्थान की प्रतिसेवना करने पर डेढ़ मास की आरोपणा प्राप्त होती है।

३४. दोमासियं परिहारट्ठाणं पट्ठविए अणगारे अंतरा मासियं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा अहावरा पक्खिया आरोवणा आदी मज्झेवसाणे सअट्ठं सहेउं सकारणं अहीणमतिरित्तं, तेणं परं दिवड्ढो मासो।।

द्वैमासिकं परिहारस्थानं प्रस्थापितः अनगारः अन्तरा मासिकं परिहारस्थानं प्रतिसेव्य आलोचयेत् अथापरा पाक्षिकी आरोपणा, आदिमध्यावसाने सार्थं सहेतु सकारणम् अहीनातिरिक्तम्, तस्मात् परं द्व्यर्धौ (अर्धद्वितीयौ) मासौ।

३४. द्वैमासिक परिहारस्थान में प्रस्थापित अनगार यदि प्रायश्चित्त के मध्य मासिक परिहारस्थान की प्रतिसेवना कर आलोचना करता है, उसे उस काल के आदि, मध्य अथवा अवसान में अर्थसहित, हेतुसहित कारणसहित पाक्षिकी आरोपणा दी जाए। न्यून-अधिक आरोपणा न दी जाए। उसके बाद पुनः मासिक परिहारस्थान की प्रतिसेवना करने पर डेढ़ मास की आरोपणा प्राप्त होती है।

३५. मासियं परिहारट्ठाणं पट्ठविए अणगारे अंतरा मासियं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा अहावरा पक्खिया आरोवणा आदी मज्झेवसाणे सअट्ठं सहेउं सकारणं अहीणमतिरित्तं, तेणं परं दिवड्ढो मासो।।

मासिकं परिहारस्थानं प्रस्थापितः अनगारः अन्तरा मासिकं परिहारस्थानं प्रतिसेव्य आलोचयेत् अथापरा पाक्षिकी आरोपणा आदिमध्यावसाने सार्थं सहेतु सकारणम् अहीनातिरिक्तम्, तस्मात् परं द्व्यर्धौ (अर्धद्वितीयौ) मासौ।

३५. मासिक परिहारस्थान में प्रस्थापित अनगार यदि प्रायश्चित्त के मध्य मासिक परिहारस्थान की प्रतिसेवना कर आलोचना करता है, उसे उस काल के आदि, मध्य अथवा अवसान में अर्थसहित, हेतुसहित, कारणसहित पाक्षिकी आरोपणा दी जाए। न्यून-अधिक आरोपणा न दी जाए। उसके बाद पुनः मासिक परिहारस्थान की प्रतिसेवना करने पर डेढ़ मास की आरोपणा प्राप्त होती है।[८]

३६. दिवड्ढमासियं परिहारट्ठाणं पट्ठविए अणगारे अंतरा मासियं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा अहावरा पक्खिया आरोवणा आदी मज्झेवसाणे सअट्ठं सहेउं सकारणं अहीणमतिरित्तं, तेणं परं दो मासा।।

द्व्यर्ध(अर्धद्वितीय)मासिकं परिहारस्थानं प्रस्थापितः अनगारः अन्तरा मासिकं परिहारस्थानं प्रतिसेव्य आलोचयेत् अथापरा पाक्षिकी आरोपणा आदिमध्यावसाने सार्थं सहेतु सकारणम् अहीनातिरिक्तम्, तस्मात् परं द्वौ मासौ।

३६. द्व्यर्धमासिक परिहारस्थान में प्रस्थापित अनगार यदि प्रायश्चित्त के मध्य मासिक परिहारस्थान की प्रतिसेवना कर आलोचना करता है, उसे उस काल के आदि, मध्य अथवा अवसान में अर्थसहित, हेतुसहित, कारणसहित पाक्षिकी आरोपणा दी जाए। न्यून-अधिक आरोपणा न दी जाए। जिसे संयुक्त करने पर दो मास की प्रस्थापना होती है।

३७. दोमासियं परिहारट्ठाणं पट्ठविए

द्वैमासिकं परिहारस्थानं प्रस्थापितः

३७. द्वैमासिक परिहारस्थान में प्रस्थापित

अणगारे अंतरा मासियं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा अहावरा पक्खिया आरोवणा आदी मज्झेवसाणे सअट्ठं सहेउं सकारणं अहीणमतिरित्तं, तेणं परं अड्ढाइज्जा मासा।।

अनगारः अन्तरा मासिकं परिहारस्थानं प्रतिसेव्य आलोचयेत् अथापरा पाक्षिकी आरोपणा आदिमध्यावसाने सार्थं सहेतु सकारणम् अहीनातिरिक्तम्, तस्मात् परम् अर्धतृतीयाः मासाः।

अनगार यदि प्रायश्चित्त के मध्य मासिक परिहारस्थान की प्रतिसेवना कर आलोचना करता है, उसे उस काल के आदि, मध्य अथवा अवसान में अर्थसहित, हेतुसहित, कारणसहित पाक्षिकी आरोपणा दी जाए। न्यून-अधिक आरोपणा न दी जाए। जिसे संयुक्त करने पर अढाई मास की प्रस्थापना होती है।

३८. अड्ढाइज्जमासियं परिहारट्ठाणं पट्ठविए अणगारे अंतरा मासियं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा अहावरा पक्खिया आरोवणा आदी मज्झेवसाणे सअट्ठं सहेउं सकारणं अहीणमतिरित्तं, तेण परं तिण्णि मासा।।

अर्धतृतीयमासिकं परिहारस्थानं प्रस्थापितः अनगारः अन्तरा मासिकं परिहारस्थानं प्रतिसेव्य आलोचयेत् अथापरा पाक्षिकी आरोपणा आदिमध्यावसाने सार्थं सहेतु सकारणम् अहीनातिरिक्तम्, तस्मात् परं त्रयः मासाः।

३८. सार्द्धद्वैमासिक (अढ़ाई मास के) परिहारस्थान में प्रस्थापित अनगार यदि प्रायश्चित्त के मध्य मासिक परिहारस्थान की प्रतिसेवना कर आलोचना करता है, उसे उस काल के आदि, मध्य अथवा अवसान में अर्थसहित, हेतुसहित, कारणसहित पाक्षिकी आरोपणा दी जाए। न्यून-अधिक आरोपणा न दी जाए। जिसे संयुक्त करने पर तीन मास की प्रस्थापना होती है।

३९. तेमासियं परिहारट्ठाणं पट्ठविए अणगारे अंतरा मासियं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा अहावरा पक्खिया आरोवणा आदी मज्झेवसाणे सअट्ठं सहेउं सकारणं अहीणमतिरित्तं, तेण परं अद्धुट्ठा मासा।।

त्रैमासिकं परिहारस्थानं प्रस्थापितः अनगारः अन्तरा मासिकं परिहारस्थानं प्रतिसेव्य आलोचयेत् अथापरा पाक्षिकी आरोपणा आदिमध्यावसाने सार्थं सहेतु सकारणं अहीनातिरिक्तम्, तस्मात् परम् अर्धतुर्याः मासाः।

३९. त्रैमासिक परिहारस्थान में प्रस्थापित अनगार यदि प्रायश्चित्त के मध्य मासिक परिहारस्थान की प्रतिसेवना कर आलोचना करता है, उसे उस काल के आदि, मध्य अथवा अवसान में अर्थसहित, हेतुसहित, कारणसहित पाक्षिकी आरोपणा दी जाए। न्यून-अधिक आरोपणा न दी जाए। जिसे संयुक्त करने पर साढ़े तीन मास की प्रस्थापना होती है।

४०. अद्धुट्ठमासियं परिहारट्ठाणं पट्ठविए अणगारे अंतरा मासियं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा अहावरा पक्खिया आरोवणा आदी मज्झेवसाणे सअट्ठं सहेउं सकारणं अहीणमतिरित्तं, तेण परं चत्तारि मासा।।

अर्धचतुर्थमासिकं परिहारस्थानं प्रस्थापितः अनगारः अन्तरा मासिकं परिहारस्थानं प्रतिसेव्य आलोचयेत् अथापरा पाक्षिकी आरोपणा आदिमध्यावसाने सार्थं सहेतु सकारणम् अहीनातिरिक्तम्, तस्मात् परं चत्वारः मासाः।

४०. सार्द्ध-त्रैमासिक (साढ़े तीन मास के) परिहारस्थान में प्रस्थापित अनगार यदि प्रायश्चित्त के मध्य मासिक परिहारस्थान की प्रतिसेवना कर आलोचना करता है, उसे उस काल के आदि, मध्य अथवा अवसान में अर्थसहित, हेतुसहित, कारणसहित पाक्षिकी आरोपणा दी जाए। न्यून-अधिक आरोपणा न दी जाए। जिसे संयुक्त करने पर चार मास की प्रस्थापना होती है।

४१. चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं पट्ठविए अणगारे अंतरा मासियं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा अहावरा पक्खिया आरोवणा आदी मज्झेवसाणे सअट्ठं सहेउं सकारणं अहीणमतिरित्तं, तेण परं अड्ढपंचमा मासा ।।

चातुर्मासिकं परिहारस्थानं प्रस्थापितः अनगारः अन्तरा मासिकं परिहारस्थानं प्रतिसेव्य आलोचयेत् अथापरा पाक्षिकी आरोपणा आदिमध्यावसाने सार्थं सहेतु सकारणम् अहीनातिरिक्तम्, तस्मात् परम् अर्धपंचमाः मासाः ।

४१. चातुर्मासिक परिहारस्थान में प्रस्थापित अनगार यदि प्रायश्चित्त के मध्य मासिक परिहारस्थान की प्रतिसेवना कर आलोचना करता है, उसे उस काल के आदि, मध्य अथवा अवसान में अर्थसहित, हेतुसहित, कारणसहित पाक्षिकी आरोपणा दी जाए। न्यून-अधिक आरोपणा न दी जाए। जिसे संयुक्त करने पर साढ़े चार मास की प्रस्थापना होती है।

४२. अड्ढपंचमासियं परिहारट्ठाणं पट्ठविए अणगारे अंतरा मासियं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा अहावरा पक्खिया आरोवणा आदी मज्झेवसाणे सअट्ठं सहेउं सकारणं अहीणमतिरित्तं, तेण परं पंच मासा ।।

अर्धपंचममासिकं परिहारस्थानं प्रस्थापितः अनगारः अन्तरा मासिकं परिहारस्थानं प्रतिसेव्य आलोचयेत् अथापरा पाक्षिकी आरोपणा आदिमध्यावसाने सार्थं सहेतु सकारणम् अहीनातिरिक्तम्, तस्मात् परं पंच मासाः ।

४२. सार्द्ध-चातुर्मासिक परिहारस्थान में प्रस्थापित अनगार यदि प्रायश्चित्त के मध्य मासिक परिहारस्थान की प्रतिसेवना कर आलोचना करता है, उसे उस काल के आदि, मध्य अथवा अवसान में अर्थ-सहित, हेतुसहित, कारणसहित पाक्षिकी आरोपणा दी जाए। न्यून-अधिक आरोपणा न दी जाए। जिसे संयुक्त करने पर पांच मास की प्रस्थापना होती है।

४३. पंचमासियं परिहारट्ठाणं पट्ठविए अणगारे अंतरा मासियं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा अहावरा पक्खिया आरोवणा आदी मज्झेवसाणे सअट्ठं सहेउं सकारणं अहीणमतिरित्तं, तेण परं अद्धछट्ठा मासा ।।

पाञ्चमासिकं परिहारस्थानं प्रस्थापितः अनगारः अन्तरा मासिकं परिहारस्थानं प्रतिसेव्य आलोचयेत् अथापरा पाक्षिकी आरोपणा आदिमध्यावसाने सार्थं सहेतुं सकारणम् अहीनातिरिक्तम्, तस्मात् परम् अर्धषष्ठाः मासाः ।

४३. पाञ्चमासिक परिहारस्थान में प्रस्थापित अनगार यदि प्रायश्चित्त के मध्य मासिक परिहारस्थान की प्रतिसेवना कर आलोचना करता है, उसे उस काल के आदि, मध्य अथवा अवसान में अर्थसहित, हेतुसहित, कारणसहित पाक्षिकी आरोपणा दी जाए। न्यून-अधिक आरोपणा न दी जाए। जिसे संयुक्त करने पर साढ़े पांच मास की प्रस्थापना होती है।

४४. अद्धछट्ठमासियं परिहारट्ठाणं पट्ठविए अणगारे अंतरा मासियं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा अहावरा पक्खिया आरोवणा आदी मज्झेवसाणे सअट्ठं सहेउं सकारणं अहीणमतिरित्तं, तेण परं छम्मासा ।।

अर्धषष्ठमासिकं परिहारस्थानं प्रस्थापितः अनगारः अन्तरा मासिकं परिहारस्थानं प्रतिसेव्य आलोचयेत् अथापरा पाक्षिकी आरोपणा आदिमध्यावसाने सार्थं सहेतु सकारणम् अहीनातिरिक्तम्, तस्मात् परं षण्मासाः ।

४४. सार्द्धपाञ्चमासिक परिहारस्थान में प्रस्थापित अनगार यदि प्रायश्चित्त के मध्य मासिक परिहारस्थान की प्रतिसेवना कर आलोचना करता है, उसे उस काल के आदि, मध्य अथवा अवसान में अर्थ-सहित, हेतुसहित, कारणसहित पाक्षिकी आरोपणा दी जाए। न्यून-अधिक आरोपणा न दी जाए। जिसे संयुक्त करने पर छह मास की प्रस्थापना होती है।[१]

पक्खियावीसतिराइयारोवणा-पदं

४५. दोमासियं परिहारट्ठाणं पट्ठविए अणगारे अंतरा मासियं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा अहावरा पक्खिया आरोवणा आदी मज्झेवसाणे सअट्ठं सहेउं सकारणं अहीणमतिरित्तं, तेण परं अड्ढाइज्जा मासा ।।

४६. अड्ढाइज्जमासियं परिहारट्ठाणं पट्ठविए अणगारे अंतरा दोमासियं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा अहावरा वीसतिराया आरोवणा आदी मज्झेवसाणे सअट्ठं सहेउं सकारणं अहीणमतिरित्तं, तेण परं सपंचरातिया तिण्णि मासा ।।

४७. सपंचरायतेमासियं परिहारट्ठाणं पट्ठविए अणगारे अंतरा मासियं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा अहावरा पक्खिया आरोवणा आदी मज्झेवसाणे सअट्ठं सहेउं सकारणं अहीणमतिरित्तं, तेण परं सवीसतिराया तिण्णि मासा ।।

४८. सवीसतिरायतेमासियं परिहारट्ठाणं पट्ठविए अणगारे अंतरा दोमासियं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा अहावरा वीसतिरातिया आरोवणा आदी मज्झेवसाणे सअट्ठं सहेउं सकारणं अहीणमतिरित्तं, तेण परं सदसराया चत्तारि मासा ।।

पाक्षिकी-विंशतिरात्रिक्यारोपणा-पदम्

द्वैमासिकं परिहारस्थानं प्रस्थापितः अनगारः अन्तरा मासिकं परिहारस्थानं प्रतिसेव्य आलोचयेत् अथापरा पाक्षिकी आरोपणा आदिमध्यावसाने सार्थं सहेतु सकारणम् अहीनातिरिक्तम्, तस्मात् परम् अर्धतृतीयाः मासाः ।

अर्धतृतीयमासिकं परिहारस्थानं प्रस्थापितः अनगारः अन्तरा द्वैमासिकं परिहारस्थानं प्रतिसेव्य आलोचयेत् अथापरा विंशतिरात्रिकी आरोपणा आदिमध्यावसाने सार्थं सहेतु सकारणम् अहीनातिरिक्तम्, तस्मात् परं सपञ्चरात्रिकाः त्रयः मासाः ।

सपंचरात्रत्रैमासिकं परिहारस्थानं प्रस्थापितः अनगारः अन्तरा मासिकं परिहारस्थानं प्रतिसेव्य आलोचयेत् अथापरा पाक्षिकी आरोपणा आदिमध्यावसाने सार्थं सहेतु सकारणम् अहीनातिरिक्तम्, तस्मात् परं सविंशतिरात्राः त्रयः मासाः ।

सविंशतिरात्रत्रैमासिकं परिहारस्थानं प्रस्थापितः अनगारः अन्तरा द्वैमासिकं परिहारस्थानं प्रतिसेव्य आलोचयेत् अथापरा विंशतिरात्रिकी आरोपणा आदिमध्यावसाने सार्थं सहेतु सकारणम् अहीनातिरिक्तम्, तस्मात् परं सदशरात्राः चत्वारः मासाः ।

पाक्षिकी-विंशतिरात्रिकी-आरोपणा-पद

४५. द्वैमासिक परिहारस्थान में प्रस्थापित अनगार यदि प्रायश्चित्त के मध्य मासिक परिहारस्थान की प्रतिसेवना कर आलोचना करता है, उसे उस काल के आदि, मध्य अथवा अवसान में अर्थसहित, हेतुसहित, कारणसहित पाक्षिकी आरोपणा दी जाए। न्यून-अधिक आरोपणा न दी जाए। जिसे संयुक्त करने पर अढ़ाई मास की प्रस्थापना होती है।

४६. अर्द्धतृतीयमासिक (अढ़ाई मास के) परिहारस्थान में प्रस्थापित अनगार यदि प्रायश्चित्त के मध्य द्वैमासिक परिहारस्थान की प्रतिसेवना कर आलोचना करता है, उसे उस काल के आदि, मध्य अथवा अवसान में अर्थसहित, हेतुसहित, कारणसहित बीसरात्रिकी आरोपणा दी जाए। न्यून-अधिक आरोपणा न दी जाए। जिसे संयुक्त करने पर तीन मास पांच रात की प्रस्थापना होती है।

४७. सपंचरात्र-त्रैमासिक परिहारस्थान में प्रस्थापित अनगार यदि प्रायश्चित्त के मध्य मासिक परिहारस्थान की प्रतिसेवना कर आलोचना करता है, उसे उस काल के आदि, मध्य अथवा अवसान में अर्थ-सहित, हेतुसहित, कारणसहित पाक्षिकी आरोपणा दी जाए। न्यून-अधिक आरोपणा न दी जाए। जिसे संयुक्त करने पर तीन मास बीस रात की प्रस्थापना होती है।

४८. सविंशतिरात्र-त्रैमासिक परिहारस्थान में प्रस्थापित अनगार यदि प्रायश्चित्त के मध्य द्वैमासिक परिहारस्थान की प्रतिसेवना कर आलोचना करता है उसे उस काल के आदि, मध्य अथवा अवसान में अर्थ-सहित, हेतुसहित, कारणसहित पाक्षिकी आरोपणा दी जाए। न्यून-अधिक आरोपणा

न दी जाए। जिसे संयुक्त करने पर चार मास दस रात की प्रस्थापना होती है।

४९. सदसरायचाउम्मासियं परिहारट्ठाणं पट्ठविए अणगारे अंतरा मासियं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा अहावरा पक्खिया आरोवणा आदी मज्झेवसाणे सअट्ठं सहेउं सकारणं अहीणमतिरित्तं, तेण परं पंचूणा पंच मासा।।

सदशरात्रचातुर्मासिकं परिहारस्थानं प्रस्थापितः अनगारः अन्तरा मासिकं परिहारस्थानं प्रतिसेव्य आलोचयेत् अथापरा पाक्षिकी आरोपणा आदिमध्यावसाने सार्थं सहेतु सकारणम् अहीनातिरिक्तम्, तस्मात् परं पंचोनाः पंचमासाः।

४९. सपंचरात्र-चातुर्मासिक परिहारस्थान में प्रस्थापित अनगार यदि प्रायश्चित्त के मध्य मासिक परिहारस्थान की प्रतिसेवना कर आलोचना करता है, उसे उस काल के आदि, मध्य अथवा अवसान में अर्थ-सहित, हेतुसहित, कारणसहित पाक्षिकी आरोपणा दी जाए। न्यून-अधिक आरोपणा न दी जाए। जिसे संयुक्त करने पर पांच रात कम पांच मास की प्रस्थापना होती है।

५०. पंचूणपंचमासियं परिहारट्ठाणं पट्ठविए अणगारे अंतरा दोमासियं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा अहावरा वीसतिरातिया आरोवणा आदी मज्झेवसाणे सअट्ठं सहेउं सकारणं अहीणमतिरित्तं, तेण परं अद्धछट्ठा मासा।।

पंचोनपाञ्चमासिकं परिहारस्थानं प्रस्थापितः अनगारः अन्तरा द्वैमासिकं परिहारस्थानं प्रतिसेव्य आलोचयेत् अथापरा विंशतिरात्रिकी आरोपणा आदिमध्यावसाने सार्थं सहेतु सकारणम् अहीनातिरिक्तम्, तस्मात् परम् अर्धषष्ठाः मासाः।

५०. पंचरात्रन्यून-पाञ्चमासिक परिहारस्थान में प्रस्थापित अनगार यदि प्रायश्चित्त के मध्य द्वैमासिक परिहारस्थान की प्रतिसेवना कर आलोचना करता है, उसे उस काल के आदि, मध्य अथवा अवसान में अर्थ-सहित, हेतुसहित, कारणसहित बीसरात्रिकी आरोपणा दी जाए। न्यून-अधिक आरोपणा न दी जाए। जिसे संयुक्त करने पर साढ़े पांच मास की प्रस्थापना होती है।

५१. अद्धछट्ठमासियं परिहारट्ठाणं पट्ठविए अणगारे अंतरा मासियं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा अहावरा पक्खिया आरोवणा आदी मज्झेवसाणे सअट्ठं सहेउं सकारणं अहीणमतिरित्तं, तेण परं छम्मासा।।

अर्धषष्ठमासिकं परिहारस्थानं प्रस्थापितः अनगारः अन्तरा मासिकं परिहारस्थानं प्रतिसेव्य आलोचयेत् अथापरा पाक्षिकी आरोपणा आदिमध्यावसाने सार्थं सहेतु सकारणम् अहीनातिरिक्तम्, तस्मात् परं षण्मासाः।

५१. अर्द्धषष्ठमासिक (साढ़े पांच मास के) परिहारस्थान में प्रस्थापित अनगार यदि प्रायश्चित्त के मध्य मासिक परिहारस्थान की प्रतिसेवना कर आलोचना करता है, उसे उस काल के आदि, मध्य अथवा अवसान में अर्थसहित, हेतुसहित, कारणसहित पाक्षिकी आरोपणा दी जाए। न्यून-अधिक आरोपणा न दी जाए। जिसे संयुक्त करने पर छह मास की प्रस्थापना होती है।[१०]

ग्रन्थ-परिमाण

अक्षर-परिमाण : ७६०२१

अनुष्टुप् श्लोक परिमाण : २३७५, अक्षर : २१

टिप्पण

१. सूत्र १-५

प्रस्तुत आगम के पूर्ववर्ती उन्नीस उद्देशकों में चतुर्विध प्रायश्चित्त का कथन हुआ है—

१. उद्घातिक मासिक[1]   २. अनुद्घातिक मासिक[2]

३. उद्घातिक चातुर्मासिक[3] ४. अनुद्घातिक चातुर्मासिक।[4]

प्रस्तुत उद्देशक में उद्घातिक एवं अनुद्घातिक प्रायश्चित्त का उल्लेख नहीं हुआ है। इसमें मुख्यतः मासिक, द्वैमासिक आदि छह परिहारस्थानों का उल्लेख हुआ है।

प्रस्तुत आलापक में एक परिहारस्थान की एक बार प्रतिसेवना कर आलोचना करने के प्रायश्चित्तदान का निरूपण है। आलोचक की मनःस्थिति के दो प्रकार होते हैं—

१. मायारहित और २. मायासहित।

यदि आलोचक अपनी आत्मा को निःशल्य बनाना एवं अतिचार-पंक की शोधि करना चाहता है, पूर्ण ऋजुता के साथ गुरु के समक्ष आलोचना करता है तो उसे उसके अतिचार के अनुरूप मासिक, द्वैमासिक यावत् षाण्मासिक प्रायश्चित्त प्राप्त होता है। यदि वह कपटपूर्ण आलोचना करता है तथा आलोचना सुनने वाले गुरु को उसकी माया ज्ञात हो जाती है तो उसे मायाहेतुक एक मास का प्रायश्चित्त अधिक मिलता है अर्थात् एकमासिक अतिचार का प्रतिसेवन करने से मायापूर्वक आलोचना करने वाले को द्वैमासिक प्रायश्चित्त प्राप्त होता है। निशीथचूर्णिकार के अनुसार यह मायाहेतुक प्रायश्चित्त गुरुमास दिया जाता है।[5]

आलोचनार्ह आचार्य के दो प्रकार हैं—

१. आगम व्यवहारी—केवलज्ञानी, मनःपर्यवज्ञानी, अवधिज्ञानी, चतुर्दशपूर्वी, अभिन्न दसपूर्वी और नौपूर्वी।[6] ये अपने ज्ञानातिशय से आलोचक की ऋजुता अथवा माया को जान लेते हैं। यदि आलोचक आलोचना के समय अतिचारों को भूल जाता है तो वे उसे स्मृति दिला देते हैं और उसके सम्यक्तया स्वीकार करने पर उसे प्रायश्चित्त प्रदान करते हैं।[7]

२. श्रुतव्यवहारी—छेदसूत्रों के ज्ञाता आचार्य श्रुतव्यवहारी होते हैं। वे परोक्षज्ञानी होने से प्रत्यक्षतः आलोचक के भाव नहीं जानते। वे तीन बार आलोचना करवाते हैं।[8] तीनों बार अतिचार का कथन करते समय वे आलोचक के आकार, स्वर एवं वाणी के द्वारा उसके भावों को जान लेते हैं। यदि उन्हें आकार आदि से उसका भाव मायापूर्ण लगता है तो उसे ऋजुतापूर्वक निःशल्य होने की प्रेरणा देते हैं।[9] प्रेरणा देने पर भी वह ऋजुतापूर्वक आलोचना नहीं करता तो मायाशल्य के निवारण हेतु एक गुरुमास प्रायश्चित्त अधिक दे दिया जाता है।

प्रस्तुत आलापक के अन्त में प्रयुक्त 'तेण परं' वाक्यांश का अर्थ है—उससे आगे अर्थात् पाञ्चमासिक से अधिक प्रतिसेवना करने वाले को। यदि किसी ने षाण्मासिक प्रायश्चित्त-योग्य अतिचार का प्रतिसेवन किया तो वह चाहे मायापूर्वक आलोचना करे अथवा ऋजुतापूर्वक, उसे षाण्मासिक प्रायश्चित्त ही प्राप्त होता है। यह जीतकल्प है कि जिस तीर्थंकर के शासन में उत्कृष्टतः जितना तप होता है, उतना ही उत्कृष्ट प्रायश्चित्त दिया जा सकता है। श्रमण भगवान महावीर की उत्कृष्ट तपोभूमि छह मास है। अतः उनके शासनकाल में उत्कृष्टतः उतना ही तप किया जाता है और उतना ही तपःप्रायश्चित्त दिया जाता है।[10]

२. सूत्र ६-१०

किसी ने तीन, चार, पांच बार मासिक परिहारस्थान की प्रतिसेवना कर उन सबकी एक साथ आलोचना की, उसे एकमासिक प्रायश्चित्त प्राप्त होता है और किसी ने एक बार मासिक परिहारस्थान

---

१. उद्दे. २-५
२. उद्दे. १
३. उद्दे. १२-१९
४. उद्दे. ६-११
५. निभा. भा. ४ चू.पृ. २७१—जो पुण पलिकुंचियं आलोएइ तस्स जं दिज्जति पलिउंचणमासो य मायाणिप्फण्णो गुरुगो दिज्जति।
६. वही, पृ. ३०३—आगमववहारी सो छव्विहो इमो—केवलणाणी ओहिणाणी मणपज्जवनाणी चोद्दसपुव्वी अभिण्णदसपुव्वी णवपुव्वी य।
७. वही गा. ६२९४
८. वही, गा. ६३९५ (सचूर्णि)
९. वही, भा. ४ चू.पृ. ३०४,३०५
१०. वही, पृ. ३०७—जम्हा जियकप्पो इमो। जस्स तित्थकरस्स जं उक्कोसं तवकरणं तस्स तित्थे तमेव उक्कोसं पच्छित्तदाणं सेससाधूणं भवति।

की प्रतिसेवना कर आलोचना की, उसे भी एकमासिक प्रायश्चित्त दिया जाता है। प्रश्न होता है इस प्रकार विषम प्रतिसेवना का समान प्रायश्चित्त दिया जाए तो क्या आलोचनार्ह के प्रति रागद्वेष की आपत्ति नहीं आती?

आचार्य कहते हैं—विषम प्रतिसेवना में समान प्रायश्चित्त का आधार है—सर्वज्ञप्रणीत सूत्र।[१] सर्वज्ञ वीतराग होते हैं, अतः राग-द्वेष की आपत्ति संभव नहीं।

जिस प्रकार वैद्य उतनी औषध देते हैं, जितने से रोग शान्त हो, उसी प्रकार आचार्य उतना ही प्रायश्चित्त देते हैं, जितने से अतिचार की विशुद्धि हो।[२] विषम अतिचारों की भी समान विशुद्धि संभव है। इस विषय में आचार्य विषम मूल्य वाले गधों एवं पांच वणिकों का दृष्टान्त देते हैं। जिस प्रकार पांच वणिकों को क्रमशः एक, दो, तीन, चार और पांच गधों का वितरण करने वाला व्यक्ति उन्हें समान मूल्य की वस्तु देने के कारण रागी अथवा द्वेषी नहीं और न उससे वणिकों की कोई हानि होती, उसी प्रकार राग और द्वेष की वृद्धि अथवा हानि के आधार पर प्रायश्चित्त में वृद्धि अथवा हानि करने वाले आचार्य भी रागी अथवा द्वेषी नहीं होते। किसी ने बहुत से लघुमासिक प्रायश्चित्त जितनी प्रतिसेवनाएं मंद अनुभावों से की है, उन सबकी आलोचना एक साथ, एक समय में करता है, ऋजुभावों से आलोचना करता है तो उसे उन सब एकजातीय प्रतिसेवनाओं का एक लघुमासिक प्रायश्चित्त दिया जाता है।[३]

प्रश्न होता है कि यदि कारण में अयतना से प्रतिसेवना कर गीतार्थ एक साथ आलोचना करता है तो उसे अनेक प्रतिसेवनाओं का एक प्रायश्चित्त प्राप्त होता है तो हम भी अनेक प्रतिसेवनाओं की एक साथ ही आलोचना करें तो कम प्रायश्चित्त वहन करना पड़ेगा? आचार्य कहते हैं—अनेक बार प्रतिसेवनाओं का एक बार तुम्हें एक दंड मिलेगा, पर यदि बार-बार जानबूझ कर ऐसा करोगे तो कालान्तर में छेद अथवा मूल प्रायश्चित्त भी मिल सकता है। प्रस्तुत प्रसंग में आचार्य खल्वाट तंबोली एवं सिपाहीपुत्र का दृष्टान्त देते हैं। सिर में टकोरा मारने पर जब सिपाहीपुत्र को अधिक तंबोल प्राप्त हुआ तो उसने उसी लोभ में ठाकुर के सिर पर टकोरा मार दिया, फलतः उसे जीवन से हाथ धोना पड़ा।[४]

प्रायश्चित्त स्वरूप प्राप्त होने वाला दंड विशोधिकारक होता है। उसे सम्यक् प्रकार से वहन करने वाला संसार-सागर से अपना उद्धार करता है। साधु के लिए प्रायश्चित्त विशोधिकारक होने से सुख का हेतु है। अतः जितने प्रायश्चित्त से आत्म-विशोधि हो, उतना दंड देना चाहिए।[५]

३. सूत्र ११,१२

प्रथम पांच सूत्रों में कृत्स्न आरोपणा का वर्णन है—जितनी प्रतिसवेना, उतना प्रायश्चित्त। अग्रिम पांच सूत्रों में बहुशः प्रतिसेवना का एक प्रायश्चित्त है, शेष का उसी में अन्तर्भाव हो जाता है। इस प्रकार इन दस सूत्रों का दो सूत्रों में समाहार हो जाता है। प्रस्तुत सूत्रद्वयी इन दोनों के सांयोगिक विकल्पों का निदर्शन है। वस्तुतः सकलसूत्रों एवं बहुशः सूत्रों के सांयोगिक विकल्प छब्बीस-छब्बीस होते हैं—द्विकसंयोगी दस, त्रिकसंयोगी दस, चतुष्कसंयोगी पांच और पंचसंयोगी एक।[६] सूत्रकार ने अंतिम पंचसंयोगी भंग का ग्रहण किया है। भाष्यकार एवं चूर्णिकार का मत है कि जिस प्रकार अग्रभाग को पकड़ कर खींची गई वल्ली मूलसहित खींच ली जाती है, उसी प्रकार अंतिम विकल्प से शेष सभी सांयोगिक विकल्पों को अर्थतः ग्रहण कर लेना चाहिए, यही इन दोनों सूत्रों का प्रयोजन है।[७]

प्रस्तुत प्रसंग में भाष्यकार ने अनेक दोषों के एकत्व—अनेक प्रतिसेवनाओं का एक प्रायश्चित्त देने का अनेक दृष्टांतों से निरूपण किया है। उदाहरणार्थ—एक रोगी के वात, पित्त आदि में से एक दोष इतना अधिक कुपित होता है कि एक औषध से शांत नहीं होता जबकि किसी रोगी के तीनों दोष सामान्य रूप से कुपित होते हैं और वे सारे एक ही औषध से शांत हो सकते हैं।[८]

जैसे अत्यन्त गहरे कीचड़ को दूर करने के लिए जिस खार का प्रयोग किया जाता है, वह अन्य मलों का भी शोधन कर देता है उसी प्रकार एक गुरुतर दंड से अनेक छोटे-छोटे दोषों का शोधन संभव है।[९]

प्रस्तुत संदर्भ में भाष्य एवं चूर्णि में आलोचक, आलोचनार्ह, कर्मबन्ध, आलोचनाविधि आदि अनेक विषयों का संस्पर्श किया गया है।[१०]

४. सूत्र १३,१४

चूर्णिकार के अनुसार निशीथ के अन्तिम उद्देशक में तीन प्रकार के सूत्र प्रज्ञप्त हैं—१. आपत्ति-सूत्र २. आलोचनाविधि-सूत्र और ३. आरोपणा-सूत्र।[११] इनमें प्रत्येक में दस-दस सूत्र हैं—

१. सकल प्रतिसेवना सूत्र

---

१. निभा. गा. ६४०३ (सचूर्णि)
२. वही, गा. ६४०२ (सचूर्णि)
३. वही, गा. ६४०४-६४०६ (सचूर्णि)
४. वही, गा. ६४१२-६४१४
५. वही, गा. ६४१५, ६४१६
६. वही, गा. ६४१८, ६४१९ (सचूर्णि)
७. वही, भा. ४ चू.पृ. ३१४, ३१५
८. वही, गा. ६५०५-६५०७ (सचूर्णि)
९. वही, भा. ४ चू.पृ. ३४१
१०. वही, गा. ६४२७-६५७४
११. वही, भा. ४ चू.पृ. ३६०—णिसीहस्स पच्छिमे उद्देसगे तिविहभेदा सुत्ता, तं जहा—आवत्तिसुत्ता, आलोयणविधिसुत्ता आरोवणासुत्ता य।

२. बहुशः प्रतिसेवना सूत्र
३. सकल-प्रतिसेवना संयोग-सूत्र
४. बहुशः प्रतिसेवना-संयोग-सूत्र
५. सातिरेक-सूत्र
६. बहुशः सातिरेक-सूत्र
७. सातिरेक-संयोग-सूत्र
८. बहुशः सातिरेक-संयोग-सूत्र
९. सकल सातिरेक-संयोग-सूत्र
१०. बहुशः बहुशः सातिरेक-संयोग-सूत्र

इनमें से प्रथम चार आपत्ति सूत्रों का सूत्रतः कथन किया गया है, शेष छह सूत्र अर्थतः वक्तव्य हैं।

आलोचना सूत्रों में प्रथम आठ की अर्थतः वक्तव्यता है और प्रस्तुत सूत्रद्वयी को उसका नवां तथा दसवां सूत्र माना गया है।[1]

प्रश्न होता है कि सूत्र में मासिक, चातुर्मासिक प्रायश्चित्तों का कथन हुआ है फिर सातिरेकमासिक, सातिरेकचातुर्मासिक प्रायश्चित्तों का क्या कारण? आचार्य कहते है--सस्निग्ध हाथ अथवा पात्र से भिक्षा-ग्रहण, बीज, हरित आदि के संघट्टन, परित्तकाय पर परम्परनिक्षिप्त भिक्षा-ग्रहण आदि कारणों से पनक प्रायश्चित्त प्राप्त होता है। अतः यदि किसी ने सस्निग्ध हाथ से शय्यातरपिण्ड का ग्रहण किया तो उसे सातिरेक मासिक प्रायश्चित्त प्राप्त होगा। इसी प्रकार अनेक भिन्न-भिन्न प्रतिसेवनाओं के संयोग से सातिरेक मासिक, सातिरेक द्वैमासिक, सातिरेक त्रैमासिक आदि प्रायश्चित्त निष्पन्न होते हैं। सातिरेक मासिक, सातिरेक द्वैमासिक आदि प्रायश्चित्तों के द्विकसंयोगी, त्रिकसंयोगी आदि सांयोगिक विकल्प करने पर इन सूत्रों की संख्या हजारों तक पहुंच जाती है। यहां केवल सूचनामात्र के लिए दो चतुष्कसंयोगी सूत्रों का ग्रहण किया गया है।[2]

५. सूत्र १५-१८

प्रस्तुत आलापक में चार सूत्र हैं। प्रथम दो सूत्र मायारहित आलोचना तथा शेष दो सूत्र मायायुक्त आलोचना से संबद्ध हैं। निशीथचूर्णिकार के अनुसार ये आरोपणा सूत्र हैं। इनमें भी आलोचनाविधिसूत्रों के समान चतुष्कसंयोगी सूत्रों का सूत्रतः ग्रहण किया गया है। प्रश्न होता है कि यदि ये आलोचनाविधि-सूत्रों के समान ही व्याख्येय हैं तो इनमें उनसे भेद क्या है? आचार्य कहते हैं--यहां परिहारतप का कथन किया जाएगा, पूर्वोक्त सूत्रों में उसका कथन नहीं किया गया था।[3]

प्रस्तुत संदर्भ में एक प्रश्न होता है कि एक ही दोष के प्रायश्चित्त में एक को शुद्धतप और दूसरे को परिहारतप, ऐसी विषमता क्यों? यदि परिहारतप से शोधि होती है तो शुद्ध तप से शोधि कैसे होगी? और यदि शुद्ध तप से शोधि संभव है तो परिहारतप जैसा कर्कश तप करना निरर्थक है? आचार्य प्रस्तुत प्रश्न का समाधान बच्चे की गाड़ी एवं बड़ी गाड़ी के दृष्टांत से करते हैं। बच्चे अपनी छोटी सी गाड़ी पर अपने छोटे-छोटे खिलौने रखकर खेलते हैं और अपना सारा काम आसानी से निष्पन्न कर लेते हैं पर उसी गाड़ी पर यदि वयस्क व्यक्ति अपना सामान लादकर यात्रा करना चाहें तो गाड़ी टूट जाएगी और वे असफल हो जाएंगे। इसी प्रकार बच्चे भी बड़ी गाड़ी से अपना खेल नहीं खेल सकते। ठीक इसी प्रकार उत्तम संहननवाले गीतार्थ पुरुषपुंगव जो परिहारतप कर सकते, वह सामान्य धृति और संहनन वाले अगीतार्थ व्यक्ति करना चाहेंगे तो न वे उसे पूर्ण कर पाएंगे और न उनकी शोधि होगी। अतः अपने वीर्य का गोपन न करते हुए यथोचित तप के द्वारा ही शोधि संभव है, अन्यथा नहीं।

अतिचारप्राप्त भिक्षु के आलोचना करने पर उससे पूछा जाता--भंते! आपका पर्याय कितना है? आप गीतार्थ हैं या अगीतार्थ? आप क्या वस्तु हैं अर्थात् आचार्य, उपाध्याय आदि क्या हैं? किस तप के योग्य हैं? इत्यादि प्रश्नों के उत्तर में वह जिस तप के योग्य सिद्ध होता, वही तप उसे दिया जाता।[4] जिसे शुद्ध तपःप्रायश्चित्त दिया जाता, उसके लिए किसी विशिष्ट अनुष्ठान अथवा सामाचारी निरूपण की अपेक्षा नहीं रहती। जिसे परिहार तप दिया जाता, उसकी निरुपसर्ग परिसम्पन्नता एवं गच्छ के अन्य समस्त साधुओं को ज्ञापित करने के लिए कायोत्सर्ग करवाया जाता। फिर उसे विशिष्ट सामाचारी में स्थापित किया जाता।[5]

परिहार तपःप्रायश्चित्त वहन करते हुए यदि कोई भिक्षु पुनः किसी दोष का सेवन करता है तो उसका प्रायश्चित्त भी उसी पूर्व तप में आरोपित कर दिया जाता है।

भाष्य साहित्य में परिहार तपःप्रायश्चित्त के ग्रहण एवं परिपालन की विधि आदि का विशद विवेचन उपलब्ध होता है।[6] वर्तमान में पूर्वगत ज्ञान तथा दृढ़ संहनन का व्यवच्छेद हो जाने से इसका अभाव है।

प्रस्तुत आलापक के प्रत्येक सूत्र में एक सूत्रांश है--'ठवणिज्जं ठवइत्ता'--स्थापनीय की स्थापना--प्ररूपणा करके। स्थापनीय के दो अर्थ हैं--परिहार-तप की समस्त सामाचारी अथवा वे कार्य, जिनका

---

१. निभा. भा. ४ चू. पृ. ३१५
२. वही, गा. ६५७८-६५८३ (सचूर्णि)
३. वही, भा. ४ चू.पृ. ३६९--यदि सा एव व्याख्या, को विशेषः? अत उच्यते--हेट्ठिमसुत्तेसु परिहारतवो ण भणिओ।
४. वही, गा. ६५८४, ६५८५ (सचूर्णि)
५. वही, गा. ६५९२, ६५९३ (सचूर्णि)
६. (क) वही, गा. ६५८४-६६०७ (सचूर्णि)
(ख) व्यभा. गा. ५३६-५६२

शेष साधुओं को उसके साथ समाचरण नहीं करना होता है।[1]

संघ दस पदों से परिहार-तपस्वी का परिहार करता है—१. आलाप २. प्रतिपृच्छा ३. सूत्रार्थ-परावर्तन ४. स्वाध्याय काल में उठाना ५. वंदना ६. उच्चार आदि के मात्रक देना अथवा लेना ७. उपकरण-प्रतिलेखना ८. संघाटक का आदान-प्रदान ९. भक्तपान का आदान-प्रदान और १०. संभोज।[2]

विवक्षित प्रायश्चित्त-काल में उसका केवल दो व्यक्तियों से संबंध होता है—

१. कल्पस्थित—आचार्य, जो प्रायश्चित्त-वहन काल में वंदना, वाचना आदि की दृष्टि से अपरिहार्य होता है। परिहारतपस्वी कल्पस्थित को वंदना करता है, आलोचना, प्रायश्चित्त करता है, प्रत्याख्यान करता है, सूत्रार्थ की प्रतिपृच्छा करता है और कल्पस्थित के पूछने पर उन्हें अपनी शारीरिक स्थिति का निवेदन करता है।[3]

२. अनुपारिहारिक—जिसने पहले परिहार तप किया हो अथवा उसकी विधि को जानने वाला गीतार्थ, दृढ़संहनन भिक्षु जो परिहारतपस्वी के भिक्षाटन आदि में पीछे-पीछे रहता है, अत्यंत अपेक्षा होने पर कुपित प्रियबंधु के समान मौन-मौन उसकी सहायता करता है, अनुपारिहारिक कहलाता है।[4] यदि उठने में असमर्थ तपस्वी कहे—'उठता हूं' तो वह उसे उठाता है, 'बैठता हूं' कहने पर बिठाता है। इसी प्रकार भिक्षा लाकर देना, प्रतिलेखना करना आदि कार्यों में मौन-मौन सहायता करता है।[5]

परिहार तपःप्रायश्चित्त-वहन काल में कल्पस्थित एवं अनुपारिहारिक को तपस्वी का वैयावृत्य करना चाहिए। वैयावृत्य के तीन प्रकार हैं—

१. अनुशिष्टि—उपदेश देना अथवा प्रोत्साहित करना।

२. उपालंभ—अकरणीय में प्रवृत्त होने पर उपालंभ देना।

३. उपग्रह—द्रव्यतः और भावतः सहायता करना।[6]

प्रायश्चित्त के प्रसंग में आनुपूर्वी के दो प्रकार हैं—

१. प्रतिसेवनानुपूर्वी—कारण उपस्थित होने पर लघु, गुरु, पांच दिन रात, दस दिन रात आदि प्रायश्चित्त योग्य दोषों का यतनापूर्वक आसेवन।[7]

२. आलोचनानुपूर्वी—जिस क्रम से प्रतिसेवना की, उस क्रम से आलोचना करना।[8]

कोई भिक्षु मासिक, चातुर्मासिक प्रायश्चित्तार्ह दोषों की पहले प्रतिसेवना कर लेता है और बाद में पांच दिनरात, दस दिनरात प्रायश्चित्तार्ह दोषों की। किंतु आलोचना के समय पहले छोटे दोषों की और बाद में बड़े दोषों की आलोचना इसलिए करता है ताकि गुरु उसे अयतनानिष्पन्न एवं अतिचारनिष्पन्न—इस प्रकार दुगुना प्रायश्चित्त न दें। पूर्व प्रतिसेवित, पश्चात् आलोचित तथा पश्चात् प्रतिसेवित, पूर्व आलोचित इन दोनों भंगों में आलोचक में ऋजुता का अभाव है। अतः उसे मायाहेतुक प्रायश्चित्त भी प्राप्त होता है।[9]

प्रश्न होता है—प्रतिसेवना बाद में और आलोचना पहले—यह विकल्प कैसे संभव है? आचार्य कहते हैं—कोई भिक्षु आचार्य आदि के काम से अन्यत्र जा रहा है। वह जाते समय निवेदन करता है—'मैं अमुक काल तक इतनी विगय खाने की अनुज्ञा चाहता हूं।' यह पश्चात् प्रतिसेवना, पूर्व आलोचना नामक तृतीय भंग है। यह भाष्यकार एवं चूर्णिकार का अभिमत है।[10]

अपलिउंचिए अपलिउंचियं—इत्यादि चतुर्भंगी में आलोचक की संकल्पकाल एवं आलोचनाकाल की मनःस्थिति का चित्रण है। एक भिक्षु ऋजुतापूर्वक आलोचना के संकल्प के साथ गुरु के पास आता है किंतु उसे तदनुकूल परिस्थिति उपलब्ध नहीं होती। गुरु की खरंटना, अनादर आदि से उसकी मनःस्थिति बदल जाती है और वह आलोचनाकाल में माया का प्रयोग करता है। दूसरा भिक्षु डर, आशंका आदि से युक्त अधूरी मानसिकता से गुरु के समक्ष उपस्थित होता है। गुरु उसे आश्वस्त करते हैं, उसका आदर करते हुए कहते हैं—'तुम धन्य हो, पुण्यवान हो, जो ऋजुतापूर्वक आलोचना करने आए हो। प्रतिसेवना दुष्कर नहीं, आलोचना दुष्कर है।' इस प्रकार प्रोत्साहित करने पर उसकी वह मायावी मानसिकता बदल जाती है और वह सम्यक् आलोचना करता है।[11]

इस प्रकार प्रस्तुत चतुर्भंगी में आलोचनार्ह एवं आलोचक दोनों की मनःस्थिति का मनोवैज्ञानिक चित्रण हुआ है।

शब्द-विमर्श

१. सव्वमेयं सकयं—सारा प्रायश्चित्त, जो अतिचार के कारण, आलोचना में माया के कारण अथवा असमाचारी के कारण प्राप्त होता है।[12]

२. साहणिय—एकत्र करके अथवा छहमास से अतिरिक्त

---

१. निभा. भा. ४ चू.पृ. ३७१—**ठवणिज्जं......जं तेण सह णायरिज्जति ठवणिज्जं....अहवा-सव्वा चेव तस्स सामायारी।**
२. वही, गा. ६५९६
३. वही, गा. ६५९४ (सचूर्णि), गा. ६५९९ (सचूर्णि)
४. वही, गा. ६४८४, ६५९९ (सचूर्णि)
५. वही, गा. ६६०० (सचूर्णि)
६. वही, गा. ६६०५-६६११
७. वही, गा. ६६२१
८. वही, भा. ४ चू.पृ. ३७९—**जं जहा पडिसेवितं तहा चेव आलोएति।**
९. वही
१०. वही—**इच्छामि भंते! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाओ.....।**
११. वही, पृ. ३८०—**धण्णो सपुण्णो आसि। तं न दुक्करं.....सुद्धो य।**
१२. वही, पृ. ३८५—**जं अवराहावण्णं जं च पलिउंचणाणिप्फण्णं अण्णं व ज किंचि आलोयणकाले असामायारणिप्फण्णं सव्वमेतं स्वकृतं।**

प्रायश्चित्त का झोस (परिशाटन) करके।[1]

३. पट्ठवणाए पट्ठविए—आलोचना-विधि एवं प्रायश्चित्त-दान-विधि के अनुसार जिसने यथायोग्य प्रायश्चित्त को वहन करना प्रारंभ कर दिया है वह भिक्षु।[2]

४. णिव्विसमाणो—प्रायश्चित्त-वहन करता हुआ।[3]

६. सूत्र १९-२४

आरोपणा के पांच प्रकार होते हैं—

१. प्रस्थापिता—षाण्मासिक, पाञ्चमासिक आदि प्रायश्चित्तों को वहन करते हुए जो अन्य उद्घात अथवा अनुद्घात प्रायश्चित्त प्राप्त हो, उसका उसी प्रारब्ध तप में आरोपण करना प्रस्थापिता आरोपणा है।[4] प्रायश्चित्त-वहन करते समय अन्य प्रायश्चित्त के दिनों को जोड़ कर दी जाने वाली आरोपणा प्रस्थापिता कहलाती है।

२. स्थापिता—जब तक भिक्षु आचार्य आदि के वैयावृत्य में व्यापृत है, तब तक वैयावृत्य एवं तपस्या दो योगों का एक साथ वहन नहीं किया जा सकता। अतः उतने काल तक उसका प्रायश्चित्त स्थापित कर दिया जाता है, वह स्थापिता आरोपणा है।[5] वहन किए जाने वाले प्रायश्चित्त से अन्य प्रायश्चित्त को किसी कारण से अलग कर रखी जाने वाली आरोपणा स्थापिता कहलाती है।

३. कृत्स्ना—झोषविरहित आरोपणा, जिसमें संपूर्ण प्रायश्चित्त वहन करना होता है, कृत्स्ना आरोपणा कहलाती है।[6] इसका दूसरा नाम है—निरनुग्रह आरोपणा।

४. अकृत्स्ना—जिस आरोपणा में झोस (न्यूनता) किया जाए, वह अकृत्स्ना आरोपणा होती है।[7] इसका दूसरा नाम सानुग्रह आरोपणा है।

५. हाडहडा—तत्काल वहन कराई जाने वाली आरोपणा हाडहडा आरोपणा है।[8] इसमें अनुद्घात प्रायश्चित्त प्रदान किया जाता है।

प्रस्तुत सूत्रषट्क में प्रस्थापिता आरोपणा के छह निदर्शन प्रज्ञप्त हैं। कोई भिक्षु षाण्मासिक, पाञ्चमासिक यावत् एकमासिक प्रायश्चित्त वहन कर रहा है। इसी बीच उसने सकारण अथवा निष्कारण किसी मूलगुण अथवा उत्तरगुण में दोष लगा दिया, फलतः उसे द्वैमासिक प्रायश्चित्त प्राप्त हुआ। उस प्रथम प्रतिसेवना में उसे सानुग्रह आरोपणा दी जाती है अर्थात् दो मास के स्थान पर बीस दिनरात का प्रायश्चित्त प्राप्त होता है। पुनः यदि वह उसी प्रकार के द्वैमासिक प्रायश्चित्त स्थान का सेवन कर ले तो उसे दूसरी बार निरनुग्रह आरोपणा—सम्पूर्ण दो मास का प्रायश्चित्त दिया जाता है। इस प्रकार उसकी कुल आरोपणा दो मास बीस दिनरात की हो जाती है।[9]

कितने मास के प्रायश्चित्त की सानुग्रह आरोपणा कितने दिन की होती है अथवा कितने दिन की सानुग्रह आरोपणा से निरनुग्रह प्रायश्चित्त के कितने मास आते हैं, इनकी लक्षण गाथा इस प्रकार है—

दिवसा पंचहिं भतिता, दुरूवहीणा हवंति मासाओ।
मासा दुरूवसहिता, पंचगुणा ते भवे दिवसा॥[10]

अर्थात् जितने दिन की सानुग्रह आरोपणा प्राप्त हो, उसमें पांच का भाग देकर उसमें से दो घटा दें तो निरनुग्रह प्रायश्चित्त के मास आ जाएंगे, जैसे—

२० दिन/५=४-२=२ मास

जितने मास की सानुग्रह आरोपणा ज्ञात करनी हो, उसमें दो मिला कर पांच से गुणा करें, जैसे—दो मास की सानुग्रह आरोपणा २+२=४×५=२० दिन होगी।

प्रायश्चित्त-वहन के प्रारम्भ, मध्य अथवा अंत जिस काल में प्रतिसेवना करे, वहीं उस प्रायश्चित्त का आरोपण किया जाता है अतः सूत्रकार ने 'आदी मज्झेवसाणे' पद का प्रयोग किया है।

स-अर्थ, सहेतु और सकारण—ये तीनों शब्द एकार्थक हैं। इनका अर्थ है निष्पत्ति सहित, जैसे—तंतुओं से पट की निष्पत्ति होती है अतः तंतु पट के अर्थ, हेतु अथवा कारण हैं। विंशिका आरोपणा का हेतु है—द्वैमासिक आरोपणा। अतः स-अर्थ, सहेतु और सकारण विंशिका आरोपणा का परिमाण है दो मास बीस दिन।[11]

७. सूत्र २५-२९

प्रस्तुत सूत्रपंचक में स्थापिता आरोपणा के छह निदर्शन प्रज्ञप्त हैं। वैयावृत्य-लब्धिसंपन्न भिक्षु के वैयावृत्य-काल में प्राप्त प्रायश्चित्त को स्थापित कर दिया जाता है, वैयावृत्य सम्पन्न होने (उस कारण की संपन्नता) पर उससे वह प्रायश्चित्त वहन करवाया जाता है। पूर्वोक्त सूत्रों में उसका दो मास बीस रात का प्रायश्चित्त स्थापित था। उसे वहन करते हुए उसने पुनः द्वैमासिक परिहारस्थान का सेवन किया, फलतः उसे बीस दिनरात की सानुग्रह आरोपणा प्राप्त होगी। स्थापिता आरोपणा के साथ सानुग्रह आरोपणा को मिलाने पर कुल

---

१. निभा. भा. ४ चू. पृ. ३८५—साहणिय त्ति एक्कतो काउं—अहवा—साहणिय त्ति जं छम्मासातिरित्तं तं परिसाडेऊणं झोसेत्ता छम्मासादित्यर्थः।
२. वही—पट्ठवणाए त्ति प्रारम्भः......प्रायश्चित्तकरणत्वेन स्थापितः।
३. वही—णिव्विसमाणो तं पच्छित्तं वहंतो कुव्वमाणेत्यर्थः।
४. वही, गा. ६६४४—पट्ठविया य वहंते।
५. वही—वेयावच्चट्ठिता ठवितगा उ।
६. वही—कसिणा झोसविरहिता।
७. वही—जहि झोसो सा अकसिणा तू।
८. वही, गा. ६६४५, ६६४६ (सचूर्णि)
९. वही, भा. ४ चू.पृ. ३८८
१०. वही, गा. ६४४२
११. वही, पृ. ३८८—तस्स जतो णिप्फत्तिः प्रभवः प्रसूतिः तं तस्स अत्थो त्ति वा हेउत्ति वा कारणं त्ति वा एगट्ठं।

प्रायश्चित्त होगा—दो मास, बीस दिनरात + बीस दिनरात = तीन मास दस दिनरात। पुनः यदि द्वैमासिक प्रायश्चित्तस्थान का सेवन करे तो कुल सानुग्रह आरोपणा होगी—तीन मास दस दिनरात + बीस दिनरात = चार मास।

तात्पर्य यह है कि एक बार स्थापिता आरोपणा को वहन करते हुए अनेक बार सानुग्रह प्रायश्चित्त भी दिया जाता है[1] और द्वैमासिक परिहारस्थान के उपर्युक्त क्रम से वृद्धि होने पर वह पांचवीं बार में षाण्मासिक प्रायश्चित्त तक पहुंच जाता है। वर्तमान में तपःप्रायश्चित्त की उत्कृष्ट कालावधि भी इतनी ही है।

ज्ञातव्य है कि प्रस्तुत 'बीसरात्रिकी आरोपणा पद' आलापक के पूर्ववर्ती छह सूत्रों में 'तेण परं' वाक्यांश 'उसके बाद' अर्थ में प्रयुक्त है, जबकि इन पांच सूत्रों में इसी वाक्यांश का अर्थ है—जिसे संयुक्त करने पर।[2]

८. सूत्र ३०-३५

पूर्वोक्त सूत्रों के समान इन सूत्रों में भी प्रस्थापिता आरोपणा के छह निदर्शन प्रस्तुत हैं। षाण्मासिक यावत् एकमासिक प्रायश्चित्त वहन करने वाला भिक्षु यदि मासिक परिहारस्थान की प्रतिसेवना कर आलोचना करे तो उसे सानुग्रह आरोपणा के रूप में पाक्षिक प्रायश्चित्त आता है। उसके पश्चात् पुनः उसी प्रकार के परिहारस्थान की प्रतिसेवना करने पर निरनुग्रह आरोपणा प्राप्त होती है—अन्यूनातिरिक्त डेढ़ मास का प्रायश्चित्त प्राप्त होता है।

९. सूत्र ३६-४४

पूर्वोक्त सूत्रों में मासिक परिहारस्थान से प्राप्त डेढ़ मासिक प्रायश्चित्त स्थापित था। उसे वहन करते हुए जो भिक्षु पुनः-पुनः मासिक परिहारस्थान का आसेवन करता है, उसे सानुग्रह आरोपणा के रूप में पन्द्रह दिन का प्रायश्चित्त प्राप्त होता है। इस प्रकार आगे से आगे पाक्षिक आरोपणा को संयुक्त करने पर उसे किस प्रकार उत्कृष्ट षाण्मासिक आरोपणा प्राप्त होती है, प्रस्तुत आलापक में इसका सविस्तर निरूपण किया गया है।

१०. सूत्र ४५-५१

कोई भिक्षु द्वैमासिक प्रायश्चित्त वहन करते हुए एकमासिकी प्रतिसेवना करे तो उसे सानुग्रह पाक्षिकी आरोपणा प्राप्त होती है। उस ढाई मासिक प्रायश्चित्त वहन के अंतराल में द्वैमासिकी प्रतिसेवना करे तो उसे बीसरात्रिकी आरोपणा प्राप्त होती है। इस प्रकार प्रायश्चित्त-वहन का काल तीन मास पांच दिन हो जाता है। इसी क्रम से दोनों स्थानों की आरोपणा वृद्धि करते हुए उसे कितनी बार में षाण्मासिक प्रायश्चित्त प्राप्त होता है। इस संयुक्त प्रस्थापिता आरोपणा की प्ररूपणा इस अंतिम आलापक का वाच्यार्थ है।

---

१. निभा. भा. ४ चू.पृ. ३८९,३९०

२. वही, पृ. ३९०—एवं पुणो बीसतिरातिया छुब्भंतेहिं जाव ते परं छम्मासा अणुग्गहट्ठवणा चेव।

परिशिष्ट

१. शब्द : अनुक्रम

२. विशेषनामानुक्रम

३. विशेषनामवर्गानुक्रम

४. प्रयुक्त ग्रन्थसूची

प्रमाण विधि

- अव्यय, सर्वनाम, क्त्वा, तुम्, यप् प्रत्यय के रूप और धातु रूप के साक्ष्य-स्थल का निर्देश प्रायः एक बार दिया गया है।
- रूट (✓) अंकित शब्द धातुएं है।
- शब्द के बाद साक्ष्य-स्थल का प्रथम अंक उद्देशक का द्योतक है।
- सामान्यतः शब्दों की संस्कृत छाया नहीं दी गई है पर जहां एक ही शब्द अनेक संस्कृत रूपान्तरण अथवा अर्थ के साथ प्रयुक्त हुआ है, वहां संस्कृत छाया, अर्थ भी दे दिया गया है।
- देशी शब्दों एवं धातुओं के आगे (दे.) संकेत दिया गया है।

परिशिष्ट : १
शब्द : अनुक्रम

✓अइक्कम १०/२५

अइरेग १/५४;१४/५-७; १८/३७-३९

अंक ७/७६, ७७

अंकपाय ११/१-३

अंकबंधन ११/४-६

अंगादाण १/२-९; ६/३-१०

अंगुलिया १/२; ४/११३; ६/३; ७/८४

अंगुली ३/४०; ४/७८; ६/४९; ७/३८; ११/३५; १५/३७,१२३; १७/३९,९३

अंड ७/७५; १३/८; १४/२७; १६/४८; १८/५९

अंतद्धाणपिंड १३/७५

अंतर ३/१५

अंतरा २०/१९-५१

अंतरिक्खजाय १३/९-११; १४/२८-३०; १६/४९-५१; १८/६०-६२

अंतरुच्छुय १६/६,७,१०,११

अंते १७/१२३,१२४

अंतो ८/१२-१४

अंतोमास ९/२०; १२/४३

अंतोसल्लमरण ११/९३

अंब १५/५-१२

अंबकंजिय १७/१३३

अंबचोयग १५/७,८,११,१२

अंबडगल १५/७,८,११,१२

अंबपेसि १५/७,८,११,१२

अंबभित्त १५/७,८,११,१२

अंबसालय १५/७,८,११,१२

अंसुय ७/१०-१२; १७/१२-१४

अकड १०/१४

अकण्णच्छिण्ण १४/६; १८/३८

अक्ख ७/१३

अक्खाइयट्ठाण १२/२७; १७/१४९

अगडमह ८/१४

अगवेसिय २/४७

अग्गपिंड २/३१

अचित्त १/९; २/९; ६/१०

अचेल ११/९०,९१

अचेलय १०/८९,९१

अच्चासाएंत १०/४;१३/१६; १५/४

✓अच्चासाय १०/४

अच्चासायणा १०/४; १३/१६; १५/४

✓अच्चीकर ४/७

अच्चीकरेंत ४/७-१२, ४४-४८

अच्चुसिण १७/१३२

अच्छि ३/५९-६४; ४/९७-१०२; ६/६८-७३; ७/५७-६२; ११/५४-५९; १५/५६-६१; १४२-१४७; १७/५८-६३, ११२-११७

✓अच्छिंद ३/३४

अच्छिंदावित्ता १५/३२

अच्छिंदित्ता ३/३५

अच्छिंदेंत ३/३४; ४/७२; ६/४३; ७/३२; ११/२९; १५/३१; ११७; १७/३३,८७

अच्छिपत्त ३/५८; ४/९६; ६/६७; ७/५६; ११/५३; १५/५५, १४१; १७/५७,१११

अच्छिमल–३/६८; ४/१०६; ६/७७; ७/६६; ११/६३, १५/६५, १५१; १७/६७,१२१

अच्छेज्ज १४/४; १८/५, ३६; १९/४

अजाणित्ता ९/७

अजाणिय २/४७; ४/२१; १५/९८

अज्ज (आर्य) ४/११८;

अज्ज (अद्य) ९/१२
✓अज्झोववज्ज १२/३०
अज्झोववज्जमाण १२/३०; १७/१५२
अट्ट ८/३; १५/६९
अट्टज्झाण ८/११
अट्टालय ८/३; १५/६९
अट्ठ १/३१-३४; १९/५; २०/१९-५१
अट्ठापय १३/१२
अडविजत्ता १६/१२,१३
अड्डपंचम २०/४१
अड्डपंचमासिय २०/४२
अड्डरत्त १९/८
अड्डाइज्ज २०/३७,४५
अड्डाइज्जमासिय २०/३८,४६
अणंतकाय १०/५
अणंतग (दे.) १/१३; २/१२
अणंतरहिय ७/६८; १३/१; १४/२०; १६/४१; १८/५२
अणंबिल १७/१३३
अणगार २०/१९-५१
अणट्ठ १/१९-२२; १८/१
अणणुण्णविय ५/२३
अणणुण्णवेत्ता २/५२
अणत्थमिय १०/२५-२८
अणप्पिणित्ता २/५४
अणल ११/८५-८७; १४/८; १८/४०
अणलंकिय १२/२९; १७/१५१
अणागय १०/८
अणागाढ ११/७९
अणापुच्छित्ता २/४४
अणापुच्छिय १४/५; १८/३७
अणामंतिय १४/५; १८/३७
अणायग ८/१२-१४; ११/८५,८६; १४/३८,३९; १८/७०,७१
अणारिय ८/१-९,११; ९/१२; १६/२७
अणासच्छिण्ण १४/६; १८/३८
अणाहपिंड ८/१८
अणिकंप १३/९-११, १४/२८-३०; १६/४९-५१; १८/६०-६२
अणिमंतिय २/४४
अणिसट्ठ ५/७४; १४/४; १८/३६
अणिसिट्ठ १८/५; १९/४
अणुग्गय ३/८०; १०/२५-२८
अणुग्घातिय १/५६; ६/७८; ७/९२; ८/१८; ९/२९; १०/१५-१८,२२-२४,४१; ११/९३
✓अणुग्घास ७/७७
अणुग्घासेंत ७/७७,७९
✓अणुजाण ५/८
अणुजाणंत ५/८
अणुट्ठिय ९/११
अणुदिण्ण ५/६०
अणुपविट्ठ ३/१५
✓अणुपविस २/३८
अणुपविसंत २/३८,३९; ५/६१-६३; १६/१,३,२३
अणुपवेसेत्ता ६/१०
अणुपाएंत ७/७७,७९
✓अणुपाय ७/७७
अणुप्पण्ण ४/२४
✓अणुप्पदा १/३१
अनुप्पदेंत १/३१-३४
✓अणुप्पविस २/४७
अणुप्पविसंत २/४७; ३/१३३; ४/१८,१९
अणुप्पविसित्ता ५/३४
अणुप्पवेसेत्ता १/९
अणुवत्तिय ३/९-१२
अणुवासय ८/१२,१३; ११/८५,८६
अणेग १६/२६
अणोट्टच्छिण्ण १४/६; १८/३८
अण्णउत्थिणी ३/३,४,७,८,११
अण्णउत्थिय १/११-१८,३९,४०,५५; २/३९-४१; ३/१,२,५,६,९,१०; ५/१२; १०/४०; ११/११-६४; १२/७,१६,४१; १३/१२-३०; १५/३३-६६,७६,७७; १६/३७,३८; १७/१५-१२२; १९/२६,२७
अण्णत्थ ११/८१
अण्णमण्ण १/३१-३४; ४/५४-१०७; ७/१४-६७; १४/५; १८/३७

अण्णयर १/९; २/४२,४३; ३/३४-३९; ४/२३,७२-७७; ५/६०; ६/१०,१६,१८,४३-४८,७९; ७/३२-३७,८०,८३,८४,९२; ८/१-९,११,१४; ९/११,१२; ११/२९-३४,८१,९३; १३/९-११;१४/२८-३०; १५/३१-३६,९८,११७-१२२,१५३,१५४; १६/४९-५१; १७/१,२,३३-३८,८७-९२,१३६-१३९; १८/६०-६२; २०/११-५१

अण्णयरी १०/४; १२/१,२; १३/१६; १५/४

अतज्जाय १/५३

अतिदूर ४/११६

अतिरित्त १६/४०; २०/१९-५१

अतिरेग १/४६; ५/६८

✓अत्तीकर ४/१

अत्तीकरेंत ४/१-६,३९-४३

अत्थमिय १०/२५-२८

✓अत्थीकर ४/१३

अत्थीकरेंत ४/१३-१९,४९-५३

अथिर १४/८; १८/४०

अदत्त २/२०

अदिट्ठ १२/३०; १७/१५२

अदूर २/४४

अद्दाय (दे.) १३/३२

अद्ध ८/१२,१४

अद्धछट्ठ २०/४३,५०

अद्धछट्ठमासिय २०/४४,५१

अद्धजोयण ११/७,८; १२/३२; १८/१२

अद्धहार ७/७-९; १७/९-११

अद्धुट्ठ २०/३९

अद्धुट्ठमासिय २०/४०

अधम्म ११/१०

अधारणिज्ज १४/८; १८/४०

अधुव १४/८; १८/४०

अपज्जोसणा १०/३७

अपडिहट्टु २/५३

अपत्त (अप्राप्त) १९/२०

अपत्त (अपात्र) १९/१८

अपरिणय १७/१३३

अपरिभुज्जमाण ३/७४

अपरिमाण ८/१०

अपरिहारिय २/३९-४१,४४; ४/११८

अपलिउंचिय २०/१-१८

अपायच्छिण्ण १४/६; १८/३८

अपुच्छिय २/४७

अप्प १/३१-३४,३९,४०; ३/१६-६९; ५/१२,१३; ६/२५-७८; १०/२५-२८; ११/६५,६७,६९; १३/३१-३८; १५/१३-६६,६९-१५२; १७/१३४; १९/१५

अब्भंग ९/२७

✓अब्भंग १/४

✓अब्भंगाव १५/३५

अब्भंगावेत्ता १५/३६

अब्भंगावेंत १५/३५,४९,५८; १७/१७,२३,२९,३७,५१,६०,७१,७७,८३,९१,१०५,११४

अब्भंगेंत १/४; ३/१८,२४,३०, ३८,५२,६१; ४/५६,६२,६८,७६,९०,९९; ६/५,१७,२७,३३,३९,४७,६१,७०;७/१६,२२,२८,३६,५०,५९; ११/१३,१९,२५,३३,४७,५६; १५/१५,२१,२७,१०१,१०७,११३,१२१,१३५,१४४

अब्भंगेत्ता ३/३९

अब्भुट्ठिय १०/३२,३३

अभिक्खणं १२/३

✓अभिणय १७/१३५

अभिण्ण ९/११

✓अभिसंघार ९/८

अभिसंधारेंत ९/८,९; १२/१७-२९; १६/२६,२७; १७/१३६-१५१

अभिसेय ९/२०

अभिसेयठाण १२/२७; १७/१४९

अभिहड ३/९-१२,१५; ११/८; १४/४; १८/५,३६;१९/४

अमिला (दे.) ३/७०; ५/२४; ७/१०-१२; १७/१२-१४

अयपाय ११/१-३

अयपोसय ९/२३

अयबंधण ११/४-६

अयलोह ७/४-६; १७/६-८

अयागर ५/३५

अरइय ३/३४-३९;४/७२-७७; ६/४३-४८; ७/३२-३७; ११/२९-३४; १५/३१-३६,११७-१२२; १७/३३-३८,८७-९२

अरोग १३/४२
अलं १/३९
अलंकार ९/९
अलब्भमाण १०/३३
अलित्तय १८/१४
अवकुज्जिय १७/१२६
अवक्कंत १७/१३३
अवड्डभाग २/३५
अवण्ण ११/९,७३
अवर २०/१९-५१
अवरण्ह १९/८
अवलंबण १/११
अवलेहणिया १/४०; २/२५; ५/१९-२२,६७
अवसाण २०/१९-५१
✓अवहर ७/८१
अवहरंत ७/८१; १०/९,११
अवाउड ६/११
अवाएत्ता १९/१६
अवि १/३९
अविओसविय १०/१४
अविगरण २/५४
अविण्णाय १२/३०; १७/१५२
अविदिण्ण ४/२०; १९/२५
अविद्धत्थ १७/१३३
अविप्फालिय (दे.) १०/१४
अविफालेत्ता (दे.) १०/१३
अविहि १/२३-२६,३५-३८,४३,४९; ४/२२,१११; ५/७१
अवुसिराइय १६/१६
अवुसिरातिय १६/१४,१५
अव्वत्त १९/२२
अव्वोच्छिण्ण ९/११
✓अस ५/६४
असंथडिय १०/२७,२८
असंथरमाण १०/३२
असक्क १४/७; १८/३९
असज्झाइय १९/१४,१५
असण २/४८; ३/१-१२,१४,१५; ४/३७,११८; ५/३,३४, ३५; ७/७७,७९,८६,८७; ८/१-९,११,१४-१६; ९/४,५, १०,१२-१८,२१-२९; १०/२५-२८; ११/७५-८०; १२/ १५,१६,२९,३१,३२,४२; १५/७६,७८,७९,८२,८३,८६, ८७,९०,९१,९४,९५; १६/१२; १७/१८,२८,३४-३६, १२५-१३२,१५१; १८/१७-३२
असमणपाओग्ग ८/१-९,११; ९/१२
असि १३/३३
असिग्गह ९/२७
असिय ३/३४-३९; ४/७२-७७; ६/४३-४८; ७/३२-३७; ११/२९-३४; १५/३१-३६,११७-१२२; १७/३३-३८, ८७-९२
असुय १२/३०; १७/१५२
असोगवण ३/७९
अह (अथ) ९/१२
अह (अहन्) १६/२६
अहत्थच्छिण्ण १४/६; १८/३८
अहय ६/२०
अहाच्छंद ११/८३,८४
अहिगरण ४/२४,२५
✓अहिट्ठा ५/२३
अहिट्ठेंत ५/२३,७६; १२/६
अहीण २०/१९-५१
अहोगामि १८/११
आईण ७/१०-१२; १७/१२-१४
आईणपावरण ७/१०-१२; १७/१२-१४
आउ १७/१२९
आउक्काय १२/९; १४/३२; १८/६४
✓आउट्ट ७/८०
आउट्टंत ७/८०
आउसंत ९/५
आकार ७/९२
आगंतार ३/१-१२; ७/७८,७९; ८/१; १५/६७
आगमण ११/७२
आगमणपह ४/२३
आगर १२/२०; १७/१४२
आगरपह १२/२३; १७/१४५
आगरमह ८/१४; १२/२१; १७/१४३

आगरवह १२/२२; १७/१४४
आगाढ १०/१,३; १३/१३,१५; १५/१,३
✓आघंस ३/४७
✓आघंसाव १५/४४
आघंसावेंतं १५/४४; १७/४६,१००
आघंसेंत ३/४७; ४/८२; ६/५६; ७/४५; ११/४२; १४/ १४,१५,१८,१९; १५/१३०;१८/४६,४७,५०,५१
आजीवयपिंड १३/६४
✓आतिय १९/२५
आतियंत १९/२५
आदि २०/१९-५१
आदिय २/२०
आदियंत २/२०
आदेस १०/१३
आभरण ७/१०-१२; १७/१२-१४
आभरणविचित्त ७/१०-१२; १७/१२-१४
✓आमज्ज ३/१६
आमज्जंत ३/१६,२२,२८,५०,५९; ४/५४,६०,६६,८८,९७; ६/२५,३१,३७,५९,६८; ७/१४,२०,२६,४८,५७; ११/ ११,१७,२३,४५,५४; १५/९९,१०५,१११,१३३,१४२
✓आमज्जाव १५/१३
आमज्जावेंत १५/१३,१९,२५,४७,५६; १७/१५,२१,२७,४९, ५८,६९,७५,८१,१०३,११२
आय ७/१०-१२; १७/१२-१४
✓आयम ४/११४
आयमंत ४/११४-११७
आयरिय ४/२०; १६/३९; १९/२५
आयरियत्त १७/१३४
आयाए २/५३
आयाम १७/१३३
✓आयाव १४/२०
आयावेंत १४/२०-३०; १८/५२-६२
आरण्णय १६/१२
आरबी ९/२९
आरामागार ३/१-१२; ७/७८,७९; ८/१; १५/६७
आरुहेयव्व २०/१५-१८
आरोवणा २०/१९-५१
आलंबण २/२०
✓आलिंग ७/८५
आलिंगेंत ७/८५
✓आलिंप ३/३७
आलिंपंत ३/३७; ४/७५; ६/१६,४६; ७/३५; ११/३२; १२/ ३३-४०; १५/१२०
✓आलिंपाव १५/३४
आलिंपावेंत १५/३४; १७/३६,९०
आलिंपावेत्ता १५/३५
आलिंपित्ता ३/३८
आलिंपेत्ता ६/१७
आलेवणजाय ३/३७-३९; ४/७५-७७; ६/१६,४६-४८; ७/ ३५-३७; ११/३२-३४; १२/३७-४०; १५/३४-३६,१२० से १२२; १७/३६-३८,९०-९२
आलोइय २०/१५
आलोएंत ५/१
आलोएमाण २०/१-१८
✓आलोय ५/१
✓आवज्ज १/५६
आवेढिय १६/३८
आसकरण १२/२४; १७/१४६
आसजुद्ध १२/२५; १७/१४७
आसत्थपत्त १८/१६
आसदमग ९/२४
आसपोसय ९/२३
आसम ५/३४
आसमण १८/१६
आसमिंठ (दे.) ९/२५
आसा ११/८१
आसाढीपाडिवय १९/१२
आसारोह ९/२६
आसोयपाडिवय १९/१२
आहट्टु ३/९
आहय १२/२७; १७/१४९
आहाकम्म १०/६
आहार ६/७९; १०/५,३९; ११/८०; १२/४
✓आहार ९/५

आहारेंत ४/१९,२०; ५/३,१४; ६/७९; १०/५,३९; ११/८०, ९२; १२/४
आहेण (दे.) ११/८१
✓इ ४/११८
इंगालदाह ३/३७
इंदमह ८/१४; १९/११
इंदिय ७/९२
इक्खुवण ३/७८
इत्तरिय २/५६; १०/३९
इत्ति ७/८५
इत्थ ७/८५
इत्थी ८/१-१०; ९/९; १२/२९; १७/१५१
इम ७/८५
इह ९/१२
इहलोय १२/३०; १७/१५२
ईसिणी ९/२९
उंबरवच्च ३/७६
✓उक्कस १८/७
उक्कासावेंत १८/७
उक्कुज्जिय १७/१२६
उक्कुट्ठ १७/१३५
उग्गयवित्तीय १०/२५-२८
उग्गाल १०/२९
उग्गिलित्ता १०/२९
उग्घातिय २/५६; ३-८०; ४/११८; ५/७८; ६/७९; ७/९२; १०/१५-२१; १२/४३; १३/७५; १४/४१; १५/१५४; १६/५१; १७/१५२; १८/७३; १९/३७
उच्चार ३/७१-७९; ४/११०-११७; ५/४; ८/१-९,११; ९/१२; १५/६७-७५; १६/४०-५१
उच्चारपासवणभूमि ४/१०८,१०९
उच्छु १६/४,५,८,९
उच्छुखंडिया १६/६,७,१०,११
उच्छुचोयग १६/६,७,१०,११
उच्छुडगल १६/६,७,१०,११
उच्छुमेरग १६/६,७,१०,११
उच्छुसालग १६/६,७,१०,११
✓उच्छोल १/६
उच्छोलाव १७/१९
उच्छोलावेंत १७/१९,२५,३१,३५,५३,६२,७३,७९,८५,८९, १०१,१०७,११७
उच्छोलावेत्ता १७/३६
उच्छोलेंत १/१६; २/२१; ३/२०,२६,३२,३६,४८,५४,६३; ४/५८,६४,७०,७४,८६,९२,१०१;६/७,१५,२९,३५,४१, ४५,५७,६३,७२; ७/१८,२४,३०,३४,४६,५२,६१; ११/ १५,२१,२७,३१,४३,४९,५८; १४/१२,१३,१६,१७; १५/ १०३,१०९,११५,११९,१३१,१३७,१४६; १८/४४,४५, ४८,४९
उच्छोलेत्ता ३/३७
उज्जाण ८/२; १५/६८
उज्जाणगिह ८/२; १५/६८
उज्जाणसाला ८/२; १५/६८
उज्जूहियाठाण (दे.) १२/२६; १७/१४९
उज्झर १२/१८; १७/१४०
उट्टकरण १२/२४; १७/१४६
उट्टजुद्ध १२/२५; १७/१४७
उट्टु ३/५०-५५; ४/८८-९३; ५/३८,५०; ६/५९-६४; ७/४८-५३; ११/४५-५०; १५/४७-५२,१३३-१३८; १७/४९-५४,१०३-१०८
उट्ठवीणिया ५/३८
उट्ठवेत्ता १४/३९
उड्डबद्ध १४/४०; १८/७२
उड्डबद्धिय २/५९,५१
उड्डपाण १३/३५
उड्डगामि १८/११
उण्ण ३/७०; ५/२४
उत्तमसुय १९/१७
✓उत्तर १२/४३
उत्तरंत १२/४३
उत्तरकरण १/१५-१८; २/१४-१७
उत्तरगिह ८/१५
उत्तरसाला ८/१५
उत्तरोट्ठरोम ३/५६; ४/९४; ६/६५; ७/५४; ११/५१; १५/५३, १३९; १७/५५,१०९
उत्तिंग ७/७५; १३/८; १४/२७; १६/४८; १८/१६,५९

उदउल्ल ४/३७
उदग १८/१५,१६
उदय ७/७५; १३/८; १४/२७; १६/४८; १८/५९
उदर ७/१३
उदीरेंत ४/२५; ५/६०
उद्द ७/१०-१२; १७/१२-१४
उद्दिट्ठ ४/२५; ९/२०; १२/४३
✓उद्दिस ५/६
उद्दिसंत ५/६; १६/३१
उद्दिसिय १४/५
उद्देस १०/४१
उद्देसिय ५/६१
उद्धरण १/२९
उत्पल १२/१८; १७/१४०
उप्पाएंत ४/२४; ६/१४
उप्पाएत्ता ६/१५
✓उप्पाय ४/२४
✓उप्पिलाव १८/९
उप्पिलावेंत १८/९
उब्बाहिज्जमाण ३/८०
उब्भिंदिय १७/१२७
उम्मग्ग १०/३१
✓उल्लोल ३/१९
✓उल्लोलाव १५/१६
उल्लोलावेंत १५/१६
उल्लोलेंत ३/१९,२५,३१,५३,६२; ४/५७,६३,६९,९१,१००; ६/२८,३४,४०,६२,७१; ७/१७,२३,२९,५१,६०; ११/१४,२०,२६,४८,५७; १५/१०२,१०८,११४,१३६,१४५
उवगरणजाय ४/२३; १५/१५३,१५४
उवज्झाय ४/२०; १६/३९; १९/२५
✓उवट्ठाव ११/८६
उवट्ठावेंत ११/८६
उवरि २/५१
उवरिमसुय १९/१६
उवरुवरि १८/१६
उववूहणिय ९/११
✓उवस्सय ४/२२; ८/१२-१४
उवहि २/५६; १२/४१; १६/४०
✓उवाइणाव १०/३८
उवाइणावेंत १०/३८; ११/८१
✓उवागच्छ १६/२
उवागच्छंत १६/२
✓उवातिण २/४९
उवातिणंत २/४९,५०
✓उवातिणाव १२/३१
उवातिणावेंत १२/३१,३२
उवासंतर ९/१२
उवासग १४/३८,३९; १८/७०,७१
उवासय ८/१२-१४; ११/८५,८६
✓उव्वट्ट १/५
उव्वट्ट ९/२७
✓उव्वट्टाव १५/२२
उव्वट्टावेंत १५/२२,२८,५०,५९; १७/१८,२४,३०,५२,६१,७२,७८,८४,१०६,११५
उव्वट्टेंत १/५; ३/२५, ३१,५३,६२; ४/५७,६३,६९,९१,१००; ६/६,२८,३४,४०,६२,७१; ७/१७,२३,२९,५१,६०; ११/१४,२०,२६,४८,५७; १५/१०२,१०८,११४,१३६,१४५
✓उव्विह ७/८३
उव्विहंत ७/८३
उसिणोदग १/६; २/२१; ३/२०,२६,३२,३६-३९,५४,६३; ४/५८,६४,७०,७४-७७,९२,१०१; ५/१४; ६/७,१५,२९,३५,४१,४५-४८,६३,७२; ७/१८,२४,३०,३४-३७,५२,६१;११/१५,२१,२७,३१-३४,४९,५८; १४/१२,१३,१६,१७; १५/१७,२३,२९,३३-३६,५१,६०,१०३,१०९,११५,११९-१२२,१३७,१४६;१७/१९,२५,३१,३५-३८,५३,६२,७३,७९,८५,८९-९२,१०७,११६;१८/४४,४५,४८,४९
उसुकाल (दे.) १३/९; १४/२८; १६/४९; १८/६०
उस्स (दे.) ७/७५
उस्सट्ठपिंड ८/१८
✓उस्सिंच १८/८
उस्सिंचंत १८/८,१५
उस्सिंचण १८/१५
उस्सीस ५/७७

उस्सेइम १७/१३३
ऊण २०/४९,५०
ऊरु ७/१३
एक्क १/३१
एक्कवीस ४/४८
एग १/४१
एगओ ४/११८
एगावली ७/७-९; १७/९-११
✓एड (दे.) ३/८०
एडेंत (दे.) ३/८०
एय २०/१५
एरावई १२/४३
एवं ४/३८
ओकसमाण १८/१३
✓ओकसाव १८/६
ओच्छण्ण १२/६
ओटुच्छिण्ण १४/७; १८/३९
✓ओभास ३/१
ओभासंत ३/१-१२
ओभासिय २/४८
ओलित्त १७/१२७
ओवास १७/१२३,१२४
ओसण्ण ४/२९,३०; १३/४५,४६; १५/८२-८५; १९/३०,३१
ओसहि ४/१९
ओसहिबीय १४/३५; १८/६७
✓ओसार २/५१
ओसारेंत २/५१
ओस्स १३/८; १४/२७; १६/४८; १८/५९
ओहय ८/११
ओहरिय १७/१२६
कंचुइज्ज ९/२८
कंडूसग (दे.) ५/७०
कंतारभत्त ९/६
कंद १४/३४; १८/६६
कंपिल्ल ९/२०
कंबल ५/६५; ७/१०-१२,८८,८९; १५/७७,८०,८१,८४,८५, ८८,८९,९२,९३,९६,९७,१५३,१५४; १६/१९,२०,२१; १७/१२-१४
कंसताल १७/१३८
कंसपाय ११/१-३
कंसबंधण ११/४-६
कक्क १/५; ३/१९,२५,३१,५३,६२; ४/५७,६३,६९,९१, १००; ६/६,२८,३४,४०,६२,७१; ७/१७,२३,२९,५१,६०; ११/१४,२०,२६,४८,५७; १४/१४,१५,१८,१९; १५/ १६,२२,२८,५०,५९,१०२,१०८,११४,१३६,१४५; १७/ १८,२४,३०,५२,६१,७२,७८,८४,१०४,११५;१८/ ४६,४७,५०,५१
कक्कडग १३/१२
कक्ख ३/४५; ४/८३; ६/५४; ७/४३; ११/४०; १५/४२, १२८; १७/४४,९८
कक्खवीणिया ५/४०,५२
कच्छ १२/१९; १७/१४१
कच्छभी १७/१३८
कज्जलमाणी (दे.) १८/१६
कट्ठ २/५४
कटु १/२; ४/१३३; ६/३; ७/८४
कट्ठकम्म १२/१७
कट्ठपासय १२/१,२; १७/१,२
कट्ठपीढग १२/६
कट्ठमालिया ७/१-३; १७/३-५
कडग ७/७-९; १७/९-११
✓कड्ढ १८/१३
कड्ढंत १८/१३
कणग ७/१०-१२; १७/१२-१४
कणगकत ७/१०-१२; १७/१२-१४
कणगखचिय ७/१०-१२; १७/१२-१४
कणगपट्ट ७/१०-१२; १७/१२-१४
कणगफुल्लिय ७/१०-१२; १७/१२-१४
कणगावलि ७/७-९; १७/९-११
कण्णच्छिण्ण १४/७; १८/३९
कण्णमल १/३०; ३/६८; ४/१०६; ६/७७; ७/६६; ११/६३; १५/६५,१५१; १७/६७,१२१
कण्णसोय १७/१३६-१३९
कण्णसोहणग १/१८,२२,३०,३४,४८

कण्णसोहणय १/२६; २/१७
कत्तियपाडिवय १९/१२
✓कप्प १/३९
कप्प २/५०
✓कप्पाव १५/६२
कप्पावेंत १५/३८-४३,५३-५५,६२,६३;१७/४०-४५,५५-५७,६४,६५,९४-९९,१०९-१११,११८,११९
कप्पास ३/७०; ५/२४
कप्पासवण ३/७८
कप्पेंत ३/४१-४६,५६-५८,६५,६६; ४/७६-८१,९१-९३,१००,१०१;६/५०-५५,६५-६७,७४,७५; ७/३९-४४,५४-५६,६३,६४; ११/३६-४१,५१-५३,६०,६१; १५/३८-४३,५३-५५,१२४-१२९,१३९-१४१,१४८,१४९
कब्बड ५/३४; १२/२०; १७/१४२
कब्बडपह १२/२३; १७/१४५
कब्बडमह १२/२१; १७/१४३
कब्बडवह १२/२२; १७/१४४
कयगभत्त ९/६
✓कर १/१
करणया १/३९,४०
करणिज्ज २०/१५-१८
करतल ८/११
करेंत १/१,२९,५०,५१; २/१,१०-१७,३७; ३/६९,७०; ४/१०७; ५/३,५,१३,२४,२५,२८,३१,३६-४७,६९; ६/२,११,७८;७/१,४,७,१०,६७,९२; ११/१,४,६४,७१; १२/१४; १३/१७,१८,३९-४२; १४/१०,११; १५/१५२; १७/३,६,९,१२,१३५; १८/४२,४३; १९/११
कलमाय १२/८,९
कलह ६/१२; १२/२८; १७/१५०
कलिंच १/२; ४/११३; ६/३; ७/८४
कल्ल ७/१०-१२; १७/१२-१४
कल्लाण ७/१०-१२; १७/१२-१४
कसाय (दे.) २/४३
कसिण २/२२,२३; ४/१९; ६/१९; ८/१२-१४; २०/१५-१८
✓कह ८/१
कहग ९/२२
कहा ८/१-११; ९/१२
कहेंत ८/१-११; ९/१२
कामजल १३/९; १४/२८; १६/४९; १८/६०
काय ३/२२-३९,६८; ४/६०-७७,१०६; ६/३१-४८,७६; ७/२०-३७,६५; ११/१७-३४,६२; १२/३३-४०; १५/१९-३६,६४,१०५-१२२,१५०; १७/२१-३८,६६,७५-९२,१२०
काय (वस्त्र) ७/१०-१२; १७/१२-१४
कायपाय ११/१-३
कायबंधण ११/४-६
✓कार १/११
कारवेंत १५/६६; १७/१२२
कारेंत १/११-१८; ११/८७
कालियसुय १९/९
काहिय १३/५३,५४
✓किण १४/१
✓किणाव १४/१
किण्हमिगाईणग ७/१०-१२; १७/१२-१४
किरिया ५/६४
किविणपिंड ८/१८
कीय १४/१; १८/२,३३; १९/१
कुंडल ७/७-९; १७/९-११
कुक्कुडपोसय ९/२३
कुच्छिकिमिय ३/४०; ४/७८; ६/४९; ७/३८; ११/३५; १५/३७,१२३; १७/३९,९३
कुराइ (दे.) ९/२१
कुल २/३८,३९
कुलिय १३/१०; १४/२९; १६/५०; १८/६१
कुवियगिह ८/८; १५/७४
कुवियसाला ८/८; १५/७४
कुसपत्त १८/१६
कुसील ४/३१,३२; १३/४७,४८; १५/८६-८९; १९/३२,३३
कुसुंभवण ३/७८
कूडागार ८/५; १५/७१
केऊर ७/७-९; १७/९-११
कोउगकम्म १३/१७
कोउहल्ल ३/५-८; १७/१-१४
कोंतग्गह ९/२७

कोट्ठागार ८/५; १५/७१
कोट्ठागारसाला ९/७
कोट्टियाउत्त १७/१२६
कोतव ७/१०-१२; १७/१२-१४
कोत्थुंभरिवच्च ३/७७
कोलावास ७/७५; १३/८; १४/२७; १६/४८; १८/५९
कोलुणपडिया १२/१,२
कोसंबी ९/२०
कोहपिंड १३/६७
खंड ६/७९; ८/१७
खंदमह ८/१४; १९/११
खंध १३/११; १४/३०; १६/५१; १८/६२
खत्तिय ८/१४-१९; ९/६-२९
खरमुही १७/१३९
खलु ९/४
खाइम २/४८; ३/१-१२,१४,१५; ४/३७,११८; ५/३,३४,३५; ७/७७,७९,८६,८७; ८/१-९,११,१४-१६; ९/४,५,१०, १२-१८,२१-२९; १०/२५-२८; ११/७५-८०; १२/१५, १६,२९,३१,३२,४२; १५/७६,७८,७९,८२,८३,८६,८७, ९०,९१,९४,९५; १६/१२,१७,१८,२८,३४-३६;१७/ १२५-१३२,१५१;१८/१७-३२
खामिय ४/२५
खाया ९/१०
खारदाह ३/७३
खारवच्च ३/७७
खीर ६/७९; ८/१७
खीरसाला ९/७
खुज्जा ९/२९
खुड्डग १४/६,७; १८/३८,३९
खुड्डाग ४/११०
खुड्डिया १४/६,७; १८/३८,३९
खेड ५/३४; १२/२०; १७/१४२
खेडपह १२/२३; १७/१४५
खेडमह १२/२१; १७/१४३
खेडवह १२/२२; १७/१४४
✓खेवाव (दे.) १८/१३
खोम ७/१०-१२; १७/१२-१४
गंगा १२/४३
गंजसाला ९/७
गंट्ठि १/५२
गंठिय १/५०,५१
गंथिम १२/१७
गंध १/१०; २/२९
✓गच्छ ६/१२
गच्छंत ६/१२,१३; १०/३१; ११/७; १६/३९
गच्छमाण ८/११
गज्जल ७/१०-१२; १७/१२-१४
गण १६/१५
गणणा १६/४०
गणि १४/५; १८/३७
गणिय ९/२०; १२/४३
गत ८/१०
गमण ११/७२
गमणागमण ११/७२
गमणिज्ज १६/२६
गयसाला ८/१६
✓गवेस २/५५
गवेसंत २/५५; १०/३०
गवेसिय २/२६-२९
✓गह १/५३
गहण १२/१९; १७/१४१
गहाय ७/१३
गहिय १/५४
गहेंत १/५४
✓गा १७/१३५
गातदाह ३/७३
गाम ५/३४; १२/२०; १७/१४२
गामंतर १४/३८; १८/७०
गामपह १२/२३; १७/१४५
गामपहंतर १४/३८; १८/७०
गाममह १२/२१; १७/१४३
गामवह १२/२२; १७/१४४
गामाणुगाम २/३८,४१; ३/६९;४/१०७;६/७८;७/६७; ८/११; १०/३४;११/६४;१५/६६, १५२; १७/६८,१२२; १९/६

गामारक्खिय ४/३९,४४,४९
गायंत १२/२९; १७/१५१
गारत्थिणी ३/३,४,७,८,११,१२
गारत्थिय १/११-१८,३९,४०,५५; २/३९-४१; ३/१,२,५,६, ९,१०; ५/१२; १०/४०; ११/११-६४; १२/७,४१; १३/ १२-३०; १५/१३-६६,७६,७७; १६/३७,३८; १७/१५- १२२; १९/२६,२७
✓गाल १९/७
✓गालाव १९/७
गालिय १९/७
गाहावइ २/३९; ३/१-१३,१५; ७/७८,७९; ८/१; ९/७; १५/ ६७
✓गिज्झ १२/३०
गिज्झमाण १२/३०;१७/१५२
✓गिण्ह २/४५
गिण्हंत २/४५
गिद्धपिट्ठमरण ११/९३
गिरा १९/२५
गिरिजत्ता ९/१७,१८
गिरिपक्खंदण ११/९३
गिरिपडण ११/९३
गिरिमह ८/१४
गिलाण १०/३०-३३; १९/५
गिलाणभत्त ९/६
गिह १/१५५; ३/७१; ९/१२
गिहंगण ३/७१
गिहत्थ १२/१६
गिहदुवार ३/७१
गिहपडिदुवार ३/७१
गिहमुह ३/७१
गिहवच्च ३/७१
गिहिणिसेज्जा १२/१३
गिहितिगिच्छा १२/१४
गिहिमत्त १२/११
गिहिवत्थ १२/१२
गिहेलुय ३/७१; १३/९; १४/२८; १६/४९; १८/६०
गीयट्ठाण १२/२७; १७/१४९
गुंजालिया १२/१८; १७/१४०
गुल ६/७९; ८/१७
✓गेण्ह २/२
गेण्हंत २/२; ९/१
गोणकरण १२/२४; १७/१४६
गोणगिह ८/९; १५/७५
गोणजुद्ध १२/२५; १७/१४७
गोणसाला ८/९; १५/७५
गोपुर ८/३; १५/६९
गोमय १२/३३-३६
गोरमिगाईणग ७/१०-१२; १७/१२-१४
गोलुकि (दे.) १७/१३६
गोलेहणिया ३/७४
गोलोम १०/३८
घण १७/१३८
घय १/४; ३/१८,२४,३०,३८,३९,५२,६१; ४/४६,६२,६८, ७६,७७,९०,९९; ६/५,१७,२७,३३,३९,४७,४८,६१,७०; ७/१६,२२,२८,३६,३७,५०,५९; ११/१३,१९,२५,३३, ३४,४७,५६; १५/१५,२१,२७,३५,३६,४९,५८,१०१, १०७,११३,१२१,१२२,१३५,१४४; १७/१७,२३,२९, ३७,३८,५१,६०,७१,७७,८३,९१,९२,१०५,११४
घर ३/१५
चउ ९/७
चंपगवण ३/७९
चंपा ९/२०
चक्खुदंसण ९/८,९; १२/१७-२९
चम्मपाय ११/१-३
चम्मपासय १२/१,२; १७/१,२
चम्मबंधण ११/४-६
चरिया ८/३; १५/६९
चलाचल १३/९-११; १४/२८-३०; १६/४९-५२; १८/६०- ६२
चउकाल १९/१३
चाउमासिया ११/९३; १२/४३; १३/७५; १४/४१; १५/१५४; १६/५१; १७/१५२; १८/७३; १९/३७; २०/३,४,८,९, ११-१८,२७,२८,३२,४१,४९
चाउम्मासिय ८/१८; ९/२९; १०/४१

चाउलोदग १३/१३३
चामरग्गह ९/२७
चिंता ८/११
चित्तकम्म १२/१६
चित्तमंत ७/७२-७४; १३/५-७; १४/२४-२६; १६/४५-४७; १८/५६-५८
चिलाइया ९/२९
चीणंसुय ७/१०-१२; १७/१२-१४
चीरल्लपोसय ९/२३
चीवर १०/४१
चुण्ण १/५; ३/१९,२५,३१,५३,६२; ४/५७,६३,६९,९१, १००; ६/६, २८,३४,४०,६२,७१; ७/१७,२३,२९,५१, ६०;११/१४,२०,२६,४८,५७; १४/१४,१५,१८,१९; १५/ १६,२२,२८,५०,५९,१०२,१०८,११४,१३६,१४५; १७/ १८,२४,३०,५२,६१,७२,७८,८४,१०६,११५;१८/ ४६,४७,५०,५१
चुण्णपिंड १३/७४
चूयवण ३/७९
चेएंत ५/२; १३/१-११
चेतियमह ८/१४
✓चेय ५/२
चेल १७/१३२
चेलकण्ण १७/१३३; १८/१६
चेलपाय ११/१-३
चेलबंधण ११/४-६
छ ९/७
छगणपीढग १२/६
छण्णूसविय १५/९८
छत्तग्गह ९/२७
छम्मासिय २०/५,१०-१४,१९,३०
छविखाय ९/१०
छाओवय ३/७९
✓छिंद १/२८
छिंदंत १/२८
ज १/१
जउणा १२/४३
जंघारोम ३/४२; ४/८०; ६/५१,५७; ७/४०; ११/३७; १५/ ३९, १५५; १७/४१,९५
जक्खमह ८/१४; १९/११
जणवय १६/२६,२७
✓जमाव (दे.) १/३९
जमावेंत (दे.) २/२४,२५
जल १८/६,७
जलगय १८/१८,२१-२४,२६-३०
जलणपक्खंदण ११/९३
जलणपवेस ११/९३
जलपक्खंदण ११/९३
जलपवेस ११/९३
जल्ल ३/६७; ४/१०५; ६/७६; ७/६५; ९/२२; ११/६२; १५/६४,१५०; १७/६६,१२०
जवोदग १७/१३३
जाइत्ता १/२७
✓जाण ९/१२
जाणगिह ८/७; १५/७३
जाणमाण १/३९,४०
जाणसाला ८/७; १५/७३
जात ९/५
✓जाय १/१९
जायंत १/१९-२६; २/४८; १४/३८,३९; १८/७०,७१
जायणावत्थ १५/९८
जायरूवपाय ११/१-३
जायरूवबंधण ११/४-६
✓जिंघ १/८
जिंघंत १/८,१०;२/९;६/९
जीरयवच्च ३/७७
जीव ७/७५; १३/८; १४/२७; १६/४८; १८/५९
जुग्गगिह ८/७; १५/७३
जुग्गसाला ८/७; १५/७३
जोग १३/२७
जोगपिंड १३/७३
जोणिया ९/२९
जोयण १८/१२
झल्लरी १७/१३६
झोडय (दे.) १७/१३७

✓ठव ४/२३
ठवइत्ता २०/१५-१८
ठवणाकुल ४/२१
ठवणिज्ज २०/१५-१८
ठविय २०/१५-१८
ठवेंत ४/२३; ५/७७
ठाण ५/२; १३/१-११
ठिच्चा ५/१
डमर १२/२८; १७/१५०
डमरूय १७/१३६
डहर १२/२९; १७/१५१
डागवच्च ३/७७
डिंब १२/२८; १७/१५०
ढंकुण (दे.) १७/१३७
णंदि १७/१३६
णखच्छेयणग १/१७,२१,२५
णखच्छेयणय १/२९,३३,३७
णखमल १/३०
णगर १२/२०; १७/१४२
णगरपह १२/२३; १७/१४५
णगरमह १२/२१; १७/१४३
णगरवह १२/२२; १७/१४४
णगरारक्खिय ४/३,९,१५
णग्गोहवच्च ३/७६
✓णच्च १७/१३५
णच्चंत १२/२९; १७/१५१
णच्चा १०/१९
णट्ट १२/२७; १७/१४९
णड ९/२२
णदिजत्ता ९/१५,१६
णदीमह ८/१४
णव ४/२४; १९/१७
णवग ५/३४,३५
णवणीय १/४; ३/१८,२४,३०,३८,३९,५२,६१; ४/५६,६२, ६८,७६,७७,९०,९९; ६/५,१७,२७,३३,३९,४७,६१,७०, ७९; ७/१६,२२,२८,३६,३७,५०,५९; ८/१७; ११/१३, १९,२५,३३,३४,४७,५६; १५/१५,२१,२७,३५,३६,४९, ५८,१०१,१०७,११३,१२१,१२२,१३५,१४४; १७/१७, २३,२९,३७, ३८,५१,६०,७१,७७,८३,९१,९२,१०५, ११४
णवय १४/१२-१५; १८/४४-४७
णविय ३/७४
णह १/२९; ५/४२,५४
णहच्छेयणग २/१६
णहमल ३/६८; ४/१०६; ६/७७; ७/६६; ११/६३; १५/६५, १५१; १७/६७,१२१
णहवीणिया ५/४२,५४
णहसिहा ३/४१; ४/७९; ६/५०; ७/३९; ११/३६; १५/ ३८,१२४; १७/४०,९४
णागमह ८/१४
णायग ८/१२-१४; ११/८५,८६; १४/३८,३९; १८/७०,७१
णावा १८/१-१६
णावागय १८/१७-२१,२५,२९
णावापूर (दे.) ४/११७
णासाच्छिण्ण १४/७; १८/३९
णासारोम ३/५७; ४/३९; ६/६७; ७/५५; ११/५२; १५/५४, १४०; १७/५६
णासावीणिया ५/३९,५१
✓णिक्खम २/३९
णिक्खमंत २/३९,४०; ९/७,१९,२०
णिक्खमित्तए ९/४
✓णिक्खिव १६/३४
णिक्खिवंत १६/३४-३६
णिगम ५/३४
णिगमारक्खिय ४/४,१०,१६
णिग्गंथी ४/२२,२३; ८/११; १२/७
णिग्गच्छमाण ९/८
णिग्गय ९/१०
✓णिग्घाय १/९
णिग्घायंत १/९; ६/१०
णिच्चणियंसणिय १५/९८
✓णिच्छल (दे.) १/७
णिच्छलेंत १/७; ६/८
णिज्जाण ८/२; १५/६८

णिज्जाणगिह ८/२; १५/६८
णिज्जाणसाला ८/२; १५/६८
णिज्झर १२/१८; १७/१४०
णिट्ठुर ८/१-९,११; ९/१२
णितिय १५/९०-९३; १९/३४,३५
णिमंतणावत्थ १५/९८
णिमित्तपिंड १३/६३
णियग २/२६
णिवेयणपिंड ११/८२
णिवेस ५/३४,३५
णिवेसण ५/३४
णिवेसाविय १५/३७
णिवेसिय ३/४०
णिव्वितिगिच्छा १०/२५,२७
णिव्विसमाण २०/१५-१८
✓णिसीयाव ७/६८
णिसीयावेंत ७/६८,७६,७८
णिसीयावेत्ता ७/७७
णिसीहिया ५/२; १३/१-११
णिसेज्जा १३/१-११
णिहि १३/३०
✓णीण २/५२
णीणेंत २/५२
णीसा १२/४२; १४/४०,४१; १८/७२,७३
णीहड ९/२१-२९
✓णीहर १/३०
णीहरंत ३/४०; ४/७८; ६/४९; ७/३८,८१; ११/३५; १५/३७, १२३; १७/३९,९३
✓णीहराव १४/३१
णीहरावेंत १५/३२,६४,६५; १७/३४,६६,६७,८८,१२०,१२१
णीहरावेत्ता १५/३३
णीहरित्ता ३/३६
णीहरिय ९/४,५; १४/३१-३६; १८/६३-६८
णीहरेंत १/३०; ३/३५,६७,६८; ४/७३,१०५,१०६; ६/४४, ७६,७७; ७/३३,६५,६६; ११/३०,६२,६३; १५/११८, १५०,१५१
णूम (दे.) १२/१९; १७/१४१
णो १४/१५
ण्हाण १/५; ६/६
तउआगर ५/३५
तउयपाय ११/१-३
तउयबंधण ११/४-६
तउयलोह ७/४-६; १७/६-८
तओ ४/११८
तंती १२/१७; १७/१४९
तंबपाय ११/१-३
तंबबंधण ११/४-६
तंबलोह ७/४-६; १७/६-८
तंबागर ५/३५
तडागमह ८/१४
✓तड्ड (दे.) १/४१
तड्डेंत (दे.) १/४१,४२
तणगिह ८/६; १५/७२
तणपासय १२/१,२; १७/१,२
तणपीढग १२/६
तणमालिया ७/१-३; १७/३-५
तण्णीसा १२/४२
तत १७/१३७
तत्थ २/४४
तब्भवमरण ११/९३
तयप्पमाण ११/८०
तरुपक्खंदण ११/९३
तरुपडण ११/९३
तल १२/२७; १७/१४९
तसपाणजाति १२/१,२; १४/३६; १७/१,२; १८/६८
तहप्पगार ३/७९; ५/६०; ८/१४; ११/८१,९३; १३/९-११; १४/२८-३०; १६/४९-५१; १७/१३७-१४०; १८/६०-६२
ताल (ठाण) १२/२७; १७/१४९
तालियंट १७/१३२
ति १/४२
तिक्ख ३/३४-३९; ४/७२-७७; ६/४३-४८; ७/३२-३७; ११/२९-३४; १५/३१-३६; ११७-१२२; १७/३३-३८,८७-९२

तिक्खुत्तो ९/२०; १२/४३
तिगिच्छपिंड १३/६६
तित्तिरपोसय ९/२३
तिरीडपट्ट ७/१०-१२; १७/१२-१४
तिलोदग १७/१३३
तीत १३/२१
तुंबवीणा १७/१३७
तुडिय (दे.) १/४१,४२
तुडिय (त्रुटिक) ७/७-९; १७/९-११
तुडिय (त्रुटित) १२/२७; १७/१४९
तुण (दे.) १७/१३७
✓तुयट्ट ५/७८
✓तुयट्टाव ७/६८
तुयट्टावेंत ७/६८-७६,७८
तुयट्टावेत्ता ७/७७
तुयट्टेंत ५/७८
तुसगिह ८/६; १५/७२
तुसदाहठाण ३/७३
तुससाला ८/६; १५/७२
तुसोदय १७/१३३
तेइच्छा ७/८०
तेउ १७/१३०
तेउकाय १२/९
तेउक्काय १४/३३; १८/६५
तेमासिय २०/२,३,७,८,११,१२,२२,२६,३३,३९
थण ७/१३
थल १८/६,७
थलगय १८/२०,२४,२८-३२
थारुगिणी ९/२९
थिर ५/६५-६७; १४/९; १८/४१
थूण १३/९; १४/२८; १६/४९; १८/६०
थूभमह ८/१४
थेर १२/२९; १७/१५१
थेरग १४/६,७; १८/३८,३९
थेरिया १४/६,७; १८/३८,३९
दंडय १/४०; ५/१९-२२
दंडारक्खिय ९/२८
दंत ३/४७-४९; ४/८५-८७; ६/५६-५८; ७/४५-४७; ११/४२-४४; १५/१३०-१३२; १७/४६-४८,१००-१०२
दंतपाय ११/१-३
दंतबंधण ११/४-६
दंतमल १/३०; ३/६८; ४/१०६; ६/७७; ७/६६; ११/६३; १५/६५,१५१;१७/६७,१२१
दंतमालिया ७/१-३; १७/३-५
दंतवीणिया ५/३७,४९
दगट्ठाण ८/४; १५/७०
दगतीर ८/४; १५/७०
दगपह ८/४; १५/७०
दगमग्ग ८/४; १५/७०
दगमट्टिया ७/३५; १३/८; १४/२७; १६/४८; १८/५९
दगवीणिया १/१२; २/११
दत्ति १९/५
दमगभत्त ९/६
दमणवच्च ३/७७
दमिली ९/२९
दरिमह ८/१४
✓दलय ९/४
दव्वजाय १३/३३
दव्वी ४/३७; १२/१५,१६
दस ९/२०
दसरायकप्प २/५०
दसुयाययण १६/२७
दहमह ८/१४
दहि ६/७९; ८/१७
✓दा १/४७
दार ८/३; १५/६९
दारुदंड ५/२५-३३
दारुदंडय २/१-८
दारुपाय १/३९; २/२४; ५/६५
दारुय ७/७५; १३/८; १४/२७; १६/४८; १८/५९
दिज्जमाण ३/९-१२,१५; ११/८; १४/१-४; १८/३४-३६
दिट्ठ १२/३०; १७/१५२
दिट्ठिवाय १९/१०
दिया ११/७५-७८

दियाभोयण ११/७३

दिवड्ढ १/४६,५४; २/७; २०/३०-३५

दिवड्ढमासिय २०/३६

दिसा १०/११,१२

दीवियग्गह ९/२७

दीह ३/४१-४६,५६-५८,६५,६६; ४/७९-८४,९४-९६,१०३, १०४; ५/१३,२४; ६/५०-५५,६५-६७,७४,७५; ७/३९-४४,५४-५६,६३,६४; ११/३६-४१,५१-५३,६०,६१; १५/३८-४३,५३-५५,६२,६३,१२४-१२९,१३९-१४१,१४८,१४९; १७/४०-४५,५५-५७,६४,६५,९४-९९,१०९-१११,११८,११९

दीहिया १२/१८; १७/१४०

दुक्खुत्तो ९/२०; १२/४३

दुगुंछियकुल १६/२८-३३

दुगुल्ल ७/१०-१२; १७/१२-१४

दुण्णिक्खित्त १३/९-११; १४/२८-३०; १६/४८-५१; १८/६०-६२

दुब्बद्ध १३/९-११; १४/२८-३०; १६/४९-५१; १८/६०-६२

दुब्भि (दे.) २/४२

दुब्भिक्खभत्त ९/६

दुब्भिगंध १४/१६-१९; १८/४८-५१

✓दुरुह १२/१०

दुरुहंत १२/१०; १८/१-५,१०-१२

✓दूइज्ज २/११

दूइज्जंत २/४१; १०/३४,३५; १९/६

दूइज्जमाण २/३८; ३/६९; ४/१०७; ६/७८; ७/६७; ८/११; ११/६४; १५/६६,१५२; १७/६८,१२२

दूतिपिंड १६/६२

देंत १/४७,४८; ४/२७,२९,३१,३३,३५; ५/७२,७३; ७/८६,८८; १०/१७,१८; १२/४२; १४/६,७; १५/७६-७८,८०,८४, ८६,८८,९०,९२,९४,९६; १६/१७,१९, २१,२४; १७/१२३,१२४; १८/३८,३९

देज्जमाण १४/३१-३७; १७/१२५-१२७,१३२; १८/२-५,३३,६३-६९; १९/१-४,७

देसराग (दे.) ७/१०-१२; १७/१२-१४

देसारक्खिय ४/५,११,१७,४०,४५,५०

✓देह १३/३१

देहंत १३/३१-३८

दो १९/२४

दोच्च २/५२; ३/१३; ५/२३

दोणमुह ५/३४; १२/२०; १८/१४२

दोणमुहपह १२/२३; १७/१४५

दोणमुहमह १२/२१; १७/१४३

दोणमुहवह १२/२२; १७/१४४

दोमासिय २०/१,२,६,७,११,१२,१९-२९,३४,३७,४५,५६

दोवारिय ९/२८

दोवारियभत्त ९/६

दोसाययण ९/७

धणुग्गह ९/२७

धम्म ११/९

✓धर १/४६

धरेंत १/४६,५४; २/३,७,२२,२३,२६-३०;५/२६,२९,३२, ६८,७४,७५;६/१९-२४;७/२,५,८,११; ११/२,५; १४/८,९,१५/१५३; १६/४०; १७/४,७,१०,१३;१८/४०,४१

धाइपिंड १३/६१

धाउ १३/२९

धारणिज्ज ५/६५-६७; १४/९; १८/४१

धारयमाण १६/३९

धुव ५/६५-६७; १४/९; १८/४१

✓धूव ३/३९

धूवणजाय ३/३९; ४/७७; ६/१८,४८; ७/३७; ११/३४; १५/३६,१२२; १७/३८,९२

✓धूवाव १५/३६

धूवावेंत १५/३६; १७/३८,९२

धूवेंत ३/३९; ४/७७; ६/१८,४८; ७/३७; ११/३४; १५/१२२

धोय ६/२१

✓धोव १५/१५४

धोवेंत १५/१५४

नगर ५/३४

नट्ट ९/२२

नट्ठ १३/२८

✓निक्कोर (दे.) १४/३७

निक्कोरिय१४/३७; १८/६९

✓निक्खम ८/१४

निक्खमंत ८/१४
निग्गंथ १७/१५-१२३
निग्गंथी १२/७; १७/१५-१२२,१२४
नितिय (नित्य) २/३१-३६
नितिय (नैत्यिक) ४/३३,३४; १३/४९,५०
निमित्त १०/७,८; १३/२१
निसीहिया ५/२
नीलमिगाईणग ७/१०-१२; १७/१२-१४
नीसा २/४८
✓पउंज १३/२५
पउंजंत १३/२५-२७
पउमचुण्ण १/५; ६/६
पउसी ९/२९
पएस (प्रदेश) ९/१२
पएस (दे.) १७/१३६
पंक ३/६७
पंकगय १८/१९,२३,२५-२८,३१
पंकायतण ३/७५
पंच ९/७
पंचमासिय २०/४,५,९-१८,२०,२९,३१,४३,५०
पक्कणी ९/२९
पक्ख ७/८३
पक्खिजाति ७/८३-८५
पक्खिवय २०/३०-४५,४७,४९,५१
✓पघंस ३/४७
पघंसंत—३/४७; ४/८५; ६/५६; ७/४५; ११/४२; १४/१४,
१५,१८,१९; १५/१३०; १८/४६,४७,५०,५१
✓पघंसाव १५/४४
पघंसावेंत १५/४४; १७/४६,१००
पच्चंतिय १६/२७
✓पच्चप्पिण ५/१५
पच्चप्पिणंत १/३५-३८; ५/१५-२२
पच्चप्पिणित्ता ५/२३
✓पच्चोगिल १०/२९
पच्चोगिलंत १०/२९
पच्छा २/३८
पच्छासंथव २/३७
पच्छासंथुय २/३८
पच्छिम १२/३१; १९/८
✓पज्जोसव १०/३६
पज्जोसवणा २/४९; १०/३६,३८,३९
पज्जोसविय १०/३५
पज्जोसवेंत १०/३६,३७,४०
पट्ट ७/७-९; १७/९-११
पट्टण ५/३४; १२/२०; १७/१४२
पट्टणपह १२/२३; १७/१४५
पट्टणमह १२/२१; १७/१४३
पट्टणवह १२/२२; १७/१४४
पट्ठवणा २०/१५-१८
पट्ठविय २०/१५-१८
पट्ठिय ९/१५,१७; १६/१२
पडह १७/१३६
पडिगाहेत्ता २/४२
पडिग्गह ७/८८,८९; १०/२५-२८; १४/१-२६,३१-३७,
४०,४१; १५/७७,८०,८१,८४,८५,८८,८९,९२, ९३,९६,
९७,१५३,१५४; १६/१९,२०,२९;१८/१५
पडिग्गहग २/२६-३०; ९/४,५; १४/३७-३९
✓पडिग्गाह ३/१४
पडिग्गाहेंत ३/१४,१५; ४/३७; ५/३४,३५; ८/१४-१८; ९/
६,१०,११,१३-१८,२१-२९; १०/४१; ११/८; १२/
१५,१६; १४/१-४,३१-३७; १५/९८; १६/१२,२८-३०;
१७/१२५-१३४; १८/१८-३६,६३-६९; १९/१-५,७
पडिग्गाहेत्ता ४/११८
✓पडिच्छ ४/२८
पडिच्छंत ४/२८,३०,३२,३४,३६; ५/१०; ७/८७,८९,९१;
१५/७९,८१,८३,८५,८७,८९,९१,९३,९५,९७; १६/१८,
२०,२२,२५,३३; १९/२७,२९,३१,३३,३५,३७
पडिणाविय १८/१०
पडिणियत्त ९/१४,१६,१८
✓पडितप्प १०/३२
पडितप्पंत १०/३२
पडिपह १०/३१
✓पडिपिहा १८/१६
पडिपिहेंत १८/१६

पडिया २/३९,४७; ३/५-८,१३,१५; ४/२१; ९/७-९; १२/१७-२९; १६/२६,२७;१७/१-४४,१३७,१५१
पडियाइक्खंत १०/३३
पडियाइक्खिय ३/१३
पडियागय ३/५-८
पडियाणिय (दे.) १/४७,४८
✓पडिलेह २/५६
✓पडिसुण ९/५
पडिसुणेंत ९/५
✓पडिसेव २०/१५
पडिसेवित्ता २०/१
पडिसेविय २०/१५-१८
पडिसेहेत्ता ३/९
पडुच्च ८/१४
पडुप्पण्ण १०/७
पडुप्पवाइय १२/२७
पडुप्पवाइयट्ठाण १७/१४९
पडोल ५/१४
पढम १२/३१
पढमपाउस १०/३४
पढमसमोसरण १०/४१
पणग ७/७५; १३/८; १४/२७; १६/४८; १८/५९
पणगायतण ३/७५
पणव १७/१३७
पणियगिह ८/८; १५/७४
पणियशाला ८/८; १५/७४
पणीय ६/७९
पतिट्ठिय २/९; १८/१२८-१३१
पत्त (पत्र) १४/३४; १७/१३२; १८/६६
पत्त (प्राप्त) १०/४१; १९/२१
पत्त (पात्र) १९/१९
पत्तच्छेज्ज १२/१७
पत्तमालिया ७/१-३; १७/३-५
पत्तवीणिया ५/४३,५५
पत्तुण्ण (दे.) ७/१०-१२; १७/१२-१४
पत्तेय ४/११८
पत्तोवय ३/७९
पद ९/८,९
पदमग्ग १/११; २/१०
✓पधूव ३/३९
✓पधूवाव १५/३६
पधूवावेंत १५/३६; १७/३८,९२
पधूवेंत ३/३९; ४/७७; ६/१८,४८; ७/३७; ११/३४; १५/१२२
पधोएत्ता ३/३७
✓पधोव १/६
✓पधोवाव १५/१७
पधोवावेंत १५/१७,२३,२९,३३,४५,५१,६०; १७/१९,२५,३१,३५,४७,५३,६२,७३, ७९,८५,८९,१०१,१०७,११६
पधोवेंत १/६; २/२१; ३/२०,२६,३२,३६,४८,५४, ६३; ४/५८,६४,७०,७४,८६,९२,१०१; ६/७,१५,२९, ३५,४१,४५,५७,६३,७२;७/१८,२४,३०,३४,४६,५२,६१; ११/१५, २१,२७,३१,४३,४९,५८; १४/१२,१३,१६,१७; १५/१०३,१०९,११५,११९,१३१,१३७,१४६; १८/४४,४५,४८,४९
✓पमज्ज ३/१६
✓पमज्जाव १५/१३
पमज्जावेंत १५/१३,१९, २५,४७,५६; १७/१५,२१,२७,४९,५८,६९, ७५,८१,१०३,११२
पमज्जेंत ३/१६,२२,२८,५०,५९; ४/५४,६०,६६,८८,९७; ६/२५,३१,३७,५९,६८; ७/१४,२०,२६,४८,५७; ११/११,१७,२३,४५,५४; १५/९९,१०५,१११,१३३,१४२
पमाण ५/६८; १६/४०
✓पयाव १४/२०
पयावेंत १४/२०-३०; १८/५२-६२
पर २/२७,४९,५०; ३/१५,८०; ४/११७; ५/७३; ९/२१-२९; ११/६६,६८,७०; १२/६,३२; १९/५,९,१०; २०/१९-५१
परं १/४२
परगणिच्चिया ८/११
परलोइय १२/३०; १७/१५२
✓परिघट्ट २/२४
✓परिघट्टाव १/३९
परिघट्टेंत २/२४-२६
✓परिचुंब ७/८५

परिचुंबेंत ७/८५
परिजविय ३/९-१२
✓परिट्ठुव २/४२
परिट्ठुवेंत २/४२-४४; ३/७१-७९; ४/११०,१११; ५/४,६५-६७; ९/१२; १५/६७-७५; १६/४१-५१
परिट्ठुवेत्ता ३/८०
परित्तकाय १२/४
परिपरि (दे.) १७/१३९
परिभाएंत २/५; १२/३९; १७/१५१
✓परिभाय २/५
परिभिंदिय ५/६५
✓परिभुंज २/६
परिभुंजंत २/६; ५/२७,३०,३३; ७/६,९,१२; १२/२९; १७/८,१४,१५१
परिभुज्जमाण ३/७४
परिभोइ १२/१६
✓परियट्ट ५/११
परियट्टग्गह ९/२७
✓परियट्टाव १४/३
परियट्टिय १४/३; १८/४,३५; १९/३
परियट्टेंत ५/११
परियागगिह (दे.) ८/८; १५/७४
परियागसाला (दे.) ८/८; १५/७४
परियावण्ण २/४४
परियावसह ३/१-१२; ७/७८,७९; ८/१; १५/६७
✓परिवट्ट १/५
परिवट्टेंत १/५; ६/६
✓परिवस २/४४
✓परिवास ११/७९
परिवासिय ११/८०
परिवासेंत ११/७९
परिवुड ८/१०
परिवुसिय ९/१२
परिवेढिय ३/९
✓परिसाड १/५५
परिसाडावेंत १/५५
✓परिस्सय ७/८५
परिस्सयंत ७/८५
परिहा १२/१२
परिहारट्ठाण १/५६; २/५६; ३/८०; ४/११८; ५/७८; ६/७९; ७/९२; ८/१८; ९/२९; १०/४१; ११/९३; १२/४३; १३/७५; १४/४१; १५/१५४; १६/५१; १७/१५२; १८/७३; १९/३७; २०/१-५१
परिहारिय २/३९-४१; ४/११८
परिहेंत १२/१२
पलंबसुत्त ७/७-९; १७/९-११
पलालपीढग १२/६
पलासय ५/१४
पलिउंचिय २०/१-१८
पलिछिंदिय ५/६६
पलिभंजिय ५/६७
✓पलिमद्द १/३
✓पलिमद्दाव १५/१४
पलिमद्दावेंत १५/१४,२०,२६,४८,५७; १७/१६,२२,२८,५०,५९,७०,७६,८२,१०४,११३
पलिमद्देंत १/३; ३/१७,२३,२९,५१,६०;४/५५,६१,६७,८९,९८; ६/४,२६,३२,३८,६०,६९; ७/१५,२१,२७,४९,५८; ११/१२,१८,२४,४६,५५;१५/१००,१०६,११२,१३४,१४३
पलियंक ७/७६,७७
पलोएंत ५/१
✓पलोय ५/१
पलोयणा ३/१४
पल्लल १२/१८; १७/१४०
पल्हत्थ ८/११
पल्हविया ९/२९
पवग ९/२२
पविट्ठु ३/१३
✓पविस २/४०
पविसंत २/४०; ८/१४; ९/३,७,१९,२०
पविसित्तए ९/४
✓पवेद १३/२८
पवेदेंत १३/२८-३०
पव्वय १२/१९; १७/१४१

पव्वयविदुग्ग १२/१९; १७/१४१

✓पव्वाव ११/८५

पव्वावेंत ११/८५

✓पव्विह ७/८३

पव्विहंत ७/८३

✓पसंस ११/८३

पसंसंत ११/८३,९३; १३/४४,४६,४८,५०,५२,५४,५६,५८, ६०

पसिण १३/१९

पसिणापसिण १३/२०

पसुजाति ७/८३-८५

पसुभत्त ९/६

पहिय ७/२६

पहेण (दे.) ११/८१

✓पा ४/११८

पागार ८/३; १५/६९

पाडिहारिय १/२७-३०; २/५२,५३,५५; ५/१५,१६,१९,२०, २३

पाण (प्राण) ७/७५; १३/८; १४/२७; १६/४८; १८/५९

पाण (पान) २/४८; ३/१-१२,१४,१५; ४/३७,११८; ५/३, ३४,३५; ७/७७,७९,८६,८७; ८/१-९,११,१४-१६; ९/ ४,५,१०, १२-१८,२१-२९; १०/२५-२९; ११/७५-८०; १२/१५,१६,२९,३१,३२,४२; १५/७६,७८,७९,८२,८३, ८६,८७,९०,९१,९४,९५; १६/१२,१७,१८,२८,३४-३६; १७/१२५-१३२,१५१;१८/१७-३२

पाणगजाय २/४३

पाणसाला ९/७

पाणि १०/२५-२९

✓पामिच्च १४/२

पामिच्च १४/२; १८/३,३४; १९/२

पाय (पाद) २/२१; ३/१६-२१; ४/५४-५९; ६/२५-३०; ७/ १४-१९,८३; ११/११-१६; १५/१३-१८,९९-१०४; १६/३९; १७/१५-२०,६९-७४; १८/१६

पाय (पात्र) १/२७,२८,४१-४६; ३/८०; ११/७,८

पायच्छिण्ण १४/७; १८/३९

पायच्छित्त १०/१४

पायपुंछण २/१-८; ७/८८,८९; १५/७७,८०,८१,८४,८५,८८, ८९,९२,९३,९६,९७,१५३,१५४; १६/१९,२०,२९

पायपुंछणय ५/१५-१८,६५

पारसी ९/२९

पारियासिय ११/९२

पालुकिमिय ३/४०; ४/७८; ६/४९; ७/३८; ११/३५; १५/३७, १२३; १७/३९,९३

पावारग ७/१०-१२; १७/१२-१४

पासणिय १३/५५,५६

पासत्थ ४/२७,२८; १३/४३,४४; १५/७८-८१; १९/२८,२९

पासरोम ३/६६; ४/१०४; ६/७५; ७/६४; ११/६१; १५/६३, १४९; १७/६५,११९

पासवण ३/७१-८०; ४/११०-११७; ५/४; ८/१-९,११; ९/ १२; १५/६७-७५; १६/४१

पासाय १३/११; १४/३०; १६/५१; १८/६२

पाहुड १०/१४

पाहुणभत्त ९/६

पिउमंद ५/१४

पिंड २/३२

पिंडणियर ८/१४

पिंडवाय २/३९, ४७; ३/१३,१५; ४/२१; ९/७

पिच्छमालिया ७/१-३; १७/३-५

पिट्ठुओ ८/११

पिट्टंत ६/१४-१८

पिडय ३/३४-३९; ४/७२-७७; ६/४३-४८; ७/३२-३७; ११/२९-३४; १५/३१-३६,११७-१२२; १७/३३-३८, ८७-९२

✓पिणद्ध ७/३

पिणद्धंत ७/३; १७/५,११

पिप्पलग (दे.) १/१६,२०,२४,२८,३२,३६

पिप्पलय (दे.) २/१५

पिप्पलि ११/९२

पिप्पलिचुण्ण ११/९२

पिलक्खुवच्च ३/७६

पिवासा ११/८१

पिहुण (दे.) १७/१३२

पिहुणत्थ १७/१३२

पुंछ ७/८३

✓पुंछ ४/११२
पुंछंत ४/११२,११३
✓पुच्छ १९/९
पुच्छंत १९/९,१०
पुच्छा १९/९,१०
पुढवि ७/६८-७२; १३/१-५; १४/२०-२४; १६/३४,४१-४५;१७/१२८;१८/५२-६६
पुढवीकाय १२/८; १४/३१; १८/६३
पुण ९/१२
पुणो ४/२२
पुण्ण १८/८
पुप्फ १४/३४; १८/६६
पुप्फमालिया ७/१-३; १७/३-५
पुप्फय (दे.) २/४३
पुप्फवीणिया ५/४४,५६
पुप्फोवय ३/७९
पुरओ ८/११
पुरिस १२/२९; १७/१५१
पुरेकम्मकड १२/१५
पुरेसंथव २/३७
पुरेसंथुय २/३८
पुलिंदी ९/२९
पुव्व १९/८
पुव्वामेव २/३८,४७; ४/२१
पुव्विं २०/१५
पूय ३/३५-३९; ४/७३-७७; ६/४४-४८; ७/३३-३७; ११/३०-३४; १५/३२-३६,११८-१२२; १७/३४-३८,८८-९२
पूरिम १२/१७
पेस (दे.) ७/१०-१२; १७/१२-१४
पेसलेस (दे.) ७/१०-१२; १७/१२-१४
पेहाए २/५१
पेहाय १८/१६
पोंड ३/७०; ५/२४
पोग्गल ७/८१,८२
पोत्थकम्म १२/१७
पोयपोसय ९/२३
पोराण ४/२५
पोरिसी १२/३१,१९,१३
पोसंत (दे.) ६/१४-१८
फरुस २/१८; १०/२,३; १३/१४,१५; १५/२,३
फल १४/३४; १८/६६
फलमालिया ७/१-३; १७/३-५
फलवीणिया ५/४५,५७
फलिहा १२/१८; १३/११; १४/३०; १६/५१; १७/१४०; १८/६२
फलोवय ३/७९
फाडिग ७/१०-१२; १७/१२-१४
फाणिय १३/३७
फालिय १/५०-५२
फिहय (दे.) १८/१४
✓फुम (दे.) ३/२१
✓फुमाव (दे.) १५/१८
फुमावेंत (दे.) १५/१८,२४,३०,४६,५२,६१; १७/२०,२६,३२,४८,५४,६३,७४,८०,८६,१०२,१०८,११७
फुमित्ता (दे.) १७/१३२
फुमेंत (दे.) ३/२१,२७,३३,४९,५५,६४; ५/५९,६५,७१,८७,९३,१०२; ६/३०,३६,४२,५८,६४,७३; ७/१९,२५,३१,४७,५३,६२; ११/१६,२२,२८,४४,५०,५९; १५/१०४,११०,११६,१३२,१३८,१४७
बंधण १/४६
बंभचेर १९/१७
बद्दलियाभत्त ९/६
बद्धीसग (दे.) १७/१३७
बद्धेल्लय १२/२; १७/२
बब्बरी ९/२९
बल २/२९
बलभत्त ९/६
बहली ९/२९
बहिया २/४०; ९/१०,१३,१४
बहियावासिय १०/१३
बहु २/४४
बहुदेवसिय १४/१३,१५,१७,१९;१८/४५,४७,४९,५१
बहुसो २०/६-१०,१२,१४-१८
बालमरण ११/९३

बाहिं २/५२
बिंदुप्पमाण ११/८०
बिल ११/९२
बिल्ल ५/१४
बीज १४/३४; १८/६६
बीजमालिया ७/१-३; १७/३-५
✓बीभाव ११/६५
बीभावेंत ११/६५,६६
बीय ७/७५; १३/८; १४/२७; १६/४८; १८/५९
बीयवीणिया ५/४६,५८
बुसगिह ८/६; १५/७२
बुससाला ८/६; १५/७२
✓बू ४/११८
बोल १२/२८; १७/१५०
✓भंज १२/३
भंजंत १२/३
भंडागारसाला ९/७
भगंदल ३/३४-३९; ४/७२-७७; ६/४३-४८; ७/३२-३७; ११/२९-३४; १५/३१-३६,११७-१२२; १७/३३-३८,८७-९२
भदंत १०/१-४
भमुगरोम ३/६५; ४/१०३; ६/७४; ७/६३; ११/६०; १५/६२,१४८; १७/६४,११८
भयगभत्त ९/६
भल्लायय ६/१४-१८
भाग २/३४
भाणियव्व ४/३८
भायण ४/३७; १२/१५,१६; १८/१५
भिंडमालिय (दे.) ७/१-३; १७/३-५
भिक्खायरिया २/३८
भिक्खु १/१-५६; २/१-५६; ३/१-८०; ४/१-११८; ५/१-७९; ६/१-७९; ७/१-९२; ८/१-१८; ९/१-४,६-२९; १०/१-४१; ११/१-९३; १२/१-४३; १३/१-७५; १४/१-४१; १५-१-१५४; १६/१-५१; १७/१-१४,१२५-१५२; १८/१-७३; १९/१-३७; २०/१-१८
भिक्खुय ९/५
भिगुपक्खंदण ११/९३
भिगुपडण ११/९३
भिण्णगिह ८/५; १५/७१
भिण्णसाला ८/५; १५/७१
भित्ति १३/१०; १४/२९; १६/५०; १८/६१
✓भुंज १/५६
भुंजंत १/५६; २/३१-३५,४२,४६; ९/२; १०/६,२५-२८; ११/७५-७८,८२; १२/११; १३/६१-७५; १५/५,७,९,११; १६/४,६,८,१०,३७,३८
भुसदाहठाण ३/७३
भूतमह ८/१४; ९/११
भूतिप्पमाण ११/८०
भेरी १७/१३६
भोयण १०/२९
भोयणजाय २/४२,४४; ८/१७
मउड ७/७-९; १७/९-११
मऊरपोसय ९/२३
मंच १३/११; १४/३०; १६/५१; १८/६२
मंडव १३/११; १४/३०; १६/५१; १८/६२
मंडावय ९/२७
मंत १३/२६
मंतपिंड १३/७२
मंतसाला ८/१६
मंसखल ११/८१
मंसखाय ९/१०
मंसादीय ११/८१
मंसुरोम ३/४६; ४/८४; ६/५५; ७/४४; ११/४१; १५/४३; १२९; १७/४५,९९
मकरिया १३/१३८
मक्कडगसंताणग ७/७५
मक्कडासंताणग १३/८; १४/२७; १८/५९
मक्कडासंताणय १६/४८
✓मक्ख १/४
✓मक्खाव १५/१५
मक्खावेंत १५/१५,२१,२७,३५,४९,५८; १७/१७,२३,२९,३७,५१,६०, ७१,७७,८३,९१,१०५,११४
मक्खावेत्ता १५/३६
मक्खेंत १/४; ३/१८,२४,३०,३८,५२,६१; ४/५६,६२,६८,

७६,९०,९९; ६/५,१७,२७,३३,३९,४७,६१,७०; ७/१६,२२,२८,३६,५०,५९; ११/१३,१९,२५,३३,४७,५६; १५/१५,२१,२७,१०१,१०७,११३,१२१,१३५,१४४
मक्खेत्ता ३/३९
मग्ग १३/२८
मच्छंडिया ६/७९; ८/१७
मच्छखल ११/८१
मच्छखाय ९/१०
मच्छादीय ११/८१
मज्जणिय १५/९८
मज्जावय ९/२७
मज्झ ८/१०; ११/८९-९१; १४/३९; १८/७१; २०/१९-५१
मज्झिम २/२९; १७/१५१
मट्टिया १७/१२७; १८/१६
मट्टियाकड ७/७१; १३/४; १४/२३; १६/४४; १८/५५
मट्टियाखाणि ३/७४
मट्टियापाय १/२९; २/२४; ५/६५
मडंब ५/३४; १२/२०; १७/१४२
मडंबपह १२/२३; १७/१४५
मडंबमह १२/२१; १७/१४३
मडंबवह १२/२२; १७/१४४
मडगगिह ३/७२
मडगछारिया ३/७२
मडगथंडिल ३/७२
मडगथूभिया ३/७२
मडगलेण ३/७२
मडगवच्च ३/७२
मडगासय ३/७२
मड्डय (दे.) १७/१३६
मण ८/११; १०/२५-२८
मणि १३/३४
मणिकम्म १२/१७
मणिपाय ११/१-३
मणिबंधण ११/४-६
मणुण्ण २/४४; ७/८२
मत्त ४/३७; १२/१५,१६; १८/१५
मत्तय १३/३१
मयणमालिया ७/१-३; १७/३-५
मरुंडी ९/२९
मरुगवच्च ३/७७
मरुपक्खंदण ११/९३
मरुपडग ११/९३
मल ३/६७; ४/१०५; ६/७६; ७/६५; ११/६२; १५/६६,१५०; १७/६६,१२०
मलय ७/१०-१२; १७/१२-१४
मलिण ६/२२
मल्ल ९/२२
मह १२/२७; १७/१४९
महण्णव १२/४३
महती १७/१३८
महाकुल ८/९; १५/७५
महागिह ८/९; १५/७५
महाजुद्ध १२/२८; १७/१५०
महाणई १२/४३
महापाडिवय १९/१२
महाभिसेय ९/१९
महामह ८/१४; १९/११
महासंगाम १२/२८; १७/१५०
महिसकरण १२/२४; १७/१४६
महिसजुद्ध १२/२५; १७/१४७
महिसपोसय ९/२३
मही १२/४३
महुरा ९/२०
महुस्सव १२/२९; १७/१५१
माइ १०/३८
माउग्गाम ६/१-७९; ७/१-९२
माणपिंड १३/६८
माणुम्माणियट्ठाण १२/२७; १७/१४९
मामाय १३/५७,५८
माय १२/८,९
मायापिंड १३/६९
माल (दे.) १३/११; १४/३०; १६/५१; १८/६२
मालोहड १७/१२५
मास १/४६,५४; २/७; २०/५,१०-१४,१९/५१

मासिय १/५६; २/५६; ३/८०; ४/११८; ५/७८; ६/७९; ७/९२; २०/१,६,११,१२,२४,३०-५१
मिगपोसय ९/२३
मिलक्खु १६/२७
मिहिला ९/२०
मुइंग १७/१३६
मुंजपास १२/१,२; १७/१,२
मुंजमालिया ७/१-३; १७/३-५
मुगुंदमह ८/१४
मुट्ठिय ९/२२
मुत्तापाय ११/१-३
मुत्ताबंधण ११/४-६
मुत्तावली ७/७-९; १७/९-११
मुदिय ८/१४-१८; ९/६-२९
मुद्धाभिसित्त ८/१४-१८; ९/६-२९
✓मुय १२/२
मुयंत १२/२; १७/२
मुरव १७/१३६
मुसा २/१९
मुह २/२१; ४/२६; ८/११; १०/२५-२८; १७/१३२
मुहपोत्तिया ४/२३
मुहवण्ण ११/७१
मुहवीणिया ५/३६,४८
मूढ १३/२८
मूल ५/७७; १४/३४; १८/६६
मूलयवच्च ३/७७
मेंढपोसय ९/२३
मेरा (दे.) ११/७,८; १२/३२
मेहुण ६/१-७९; ७/१-९२
मेहुणसाला ८/१६
मोहंत १२/२९; १७/१५१
रएंत ३/२१,२७,३३,४९,५५,६४; ४/५९,६५,७१,८७,९३,१०२; ६/३०,३६,४२,५८,६४,७३; ७/१९,२५,३१,४७,५३,६२; ११/१६,२२,२८,४४,५०,५९; १५/१०४,११०,११६,१३२,१३८,१४७
रज्ज ११/७२
✓रज्ज १२/३०
रज्जमाण १२/३०; १७/१५२
रज्जु १८/१३
रज्जुपासय १२/१,२; १७/१,२
रज्जुय १/१४; २/१३
रण्णारक्खिय ४/४२,४७,५२
रत्त ६/२१
रत्ति ११/७६-७८; १२/३४-३६,३८-४०
रमंत १२/२९; १७/१५१
✓रय ३/२१
रयणावलि ७/७-९; १७/९-१२
रयणी ५/१५-१८; ११/८१
रयहरण ४/२३
✓रयाव १५/१८
रयावेंत १५/१८,२४,३०,४६,५२,६१; १७/२०,२६,३२,४८,५४,६३,७४,८०,८६,१०२,१०८,११७
राइ ९/२१
राइभोयण ११/७४
राओ ३/८०; ८/१०; १०/२९
राति ८/१२-१४
राय (राजन्) ४/१,७,१३; ८/१४-१८; ९/६-२९
राय (रात्र) २/५०; ९/७; १०/१३,१४
रायंतेपुर ९/३-५
रायंतेपुरिया ९/४,५
रायगिह ९/२०
रायदुवारिय १५/९८
रायपिंड ९/१,२
रायपेसिय ९/२१
रायहाणी ५/३४; ९/२०
रायारक्खिय ४/२,६,१४
रीयमाण ८/११,१५
रुक्ख १२/१०
रुक्खमह ८/१४
रुक्खमूल ५/१-११
रुद्दमह ८/१४
रुप्पपाय ११/१-३
रुप्पबंधण ११/४-६
रुप्पलोह ७/४-६; १७/६-८

रूव १२/३०; १७/१५२
रोम ३/४४,४५; ४/८२,८३; ६/५३,५४; ७/४२,४३; ११/३९,४०; १५/४१,४२,१२७,१२८; १७/४३,४४,९७,९८
लक्खण १३/२२; १७/१३४
लट्ठिया १/४०; २/२५; ४/२३; ५/१९-२२,६५
लत्तिया (दे.) १७/१३८
लद्ध १४/१२-१९; १८/४४-५१
लवगवेसिय २/३०
लहुसग २/१८-२०
लहुसय २/२१
लाउपाय १/३९
लाउयपाय २/२४; ५/६४
लाढ (दे.) १६/२६,२७
लाभ १०/३२
लावयपोसय ९/२३
लासग ९/२२
लासी ९/२९
✓लिह ६/१३
✓लिहाव ६/१३
लेलु (दे.) ७/७४; १३/१०; १४/२९; १६/५०; १८/६१
लेलुय (दे.) १३/७; १४/२६; १६/४७; १८/५८
लेह ६/१३
लोण ११/९२
लोद्द १/५
लोद्ध ३/१९,२५,३१,५३,६२; ४/५७,६३,६९,९१,१००; ६/६, २८,३४,४०,६२,७१; ७/१७,२३,२९,५१,६०; ११/१४,२०,२६,४८,५७; १४/१४,१५,१८,१९; १५/१६,२२,२८,५०,५९,१०२,१०८,११४,१३६,१४५; १७/१८,२४,३०,५२,६१,७२,७८,८४,१०६,११५; १८/४६,४७,५०,५१
लोभपिंड १३/७०
लोम १२/५
लोह ७/४-६; १७/६-८
वइरपाय ११/१-३
वइरबंधण ११/४-६
वइरागर ५/३५
वंजण १३/२३
वंजिय ९/२०; १२/४३
✓वंद ११/८४
वंदंत ११/८४; १३/४३,४५,४७,४९,५१,५३,५५,५७,५९
वंस १७/१३९; १८/१४
वक्कंत १६/१६-२४
वग्घ ७/१०-१२; १७/१२-१४
वग्घपोसय ९/२३
वट्टमाण ९/१९
वट्टयपोसय ९/२३
वडभी ९/२९
वडिया ६/१-७९; ७/१-९२; ११/७; १५/९९-१५४
वण (वन) १२/१९; १७/१४१
वण (व्रण) ३/२८-३३; ४/६६-७१; ६/३७-४२; ७/२६-३१; ११/२३-२८; १२/३३-४०; १५/२५-३०,१११-११६; १७/२७-३२,८१-८६
वणंधय १६/१२,१३
वणप्फइकाय १२/९
वणप्फतिकाय १७/१३१
वणविदुग्ग १२/१९; १७/१४१
वणीमगपिंड ८/१८; १३/६५
वण्ण १/५; ३/१९,२५,३१,५३,६२; ४/५७, ६३,६९,९१,१००; ६/६,२८,३४,४०,६२,७१; ७/१७,२३,२९,५१,६०;११/१०,१४,२०,२६,४८,५७,७४; १४/१४,१५,१८,१९; १५/१६,२२,२८,५०,५९,१०२,१०८,११४,१३६,१४५; १७/१८,२४,३०,५२,६१,७२,७८,८४,१०६,११५; १८/४६,४७,५०,५१
वण्णमंत १४/१०,११; १८/४२,४३
वत्त १९/२३
वत्थ १/२७,२८,४७-५२,५४; २/२३; ५/६५; ६/१९-२४; ७/८८,८९;१२/६; १५/७७,८०,८१,८४,८५,८८,८९,९२,९३,९६-९८,१५३,१५४; १६/१९,२०,२९; १८/३३-७३
वत्थिरोम ३/४३; ४/८१; ६/५२; ७/४१; ११/३८; १५/४०,१२६; १७/४२,९६
✓वद ४/११८
वदंत ४/११८; ५/६४; ९/४; १०/१-३,१५,१६; ११/९,१०; १३/१३-१५; १५/१-३; १६/१३,१४

वप्प १२/१९; १७/१४०
वमण १३/३९,४१
✓वय २/१८
वयंत २/१८,१९; ६/११; ११/७३,७४
वर २/२८
वरिसधर ९/२८
वल (दे.) १८/१४
वलयमरण ११/९३
✓वस २/३६
वसंत २/३६; १४/४०,४१; १८/७२,७३
वसट्टमरण ११/९३
वसमाण २/३८
वसहपोसय ९/२३
वसहि १६/२,२२,३०
वसा १/४; ३/१८,२४,३०,३८,३९,५२,६१; ४/५६,६२,६६,७६,७७,९०,९९; ६/५,१७,२७,३३,३९,४७,४८,६१,७०; ७/१६,२२,२८,३६,३७,५०,५९; ११/१३,१९,२५,३३,३४,४७,५६; १३/३८; १५/१५,२१,२७,३५,३६,४९,५८,१०१,१०७,११३,१२१,१२२,१३५,१४४; १७/१७,२३,२९,३७,३८,५१,६०,७१,७७,८३,९१,९२,१०५
वसीकरणसुत्तय ३/७०
✓वहाव १२/४१
वहावेंत १२/४१
वा १/१
वाउकाय १२/९
वाएंत ५/४८-५९; ७/९०; १६/३२; १९/१६-२२,२४,२६,२८,३०,३२,३४,३६
✓वागर १०/७,८
वागरेंत १०/७,८; १३/१९-२४; १७/१३४
वाणारसी ९/२०
वादिय १२/२७; १७/१४९
वामणी ९/२९
✓वाय (वादय) ५/४८
✓वाय (वाचय) ५/९
वायंत (वाचयत्) ५/९
वायंत (वादयत्) १२/२९; १७/१५१
वारोदक १७/१३३
वाल १०/३८
वावी १२/१८; १७/१४०
वास २/३६
वासावास १०/३५; १४/४१; १८/७३
वासावासिय २/५०,५१
✓वाह १२/१३
वाहेंत १२/१३; १८/१४
विगति ४/२०
विगिंचेमाण १०/२५-२८
विचित्त ५/३१-३३; ६/२४
✓विच्छिंद ७/८५
विच्छिंदावित्ता १५/३२
विच्छिंदित्ता ३/३५
विच्छिंदेंत ३/३४; ४/७२; ६/४३; ७/३२; ११/२९; १५/३१,११७; १७/३३,८७
विच्छेदेंत ७/८५
विज्जा १३/२५
विज्जापिंड १३/७१
✓विडस (दे.) १५/६
विडसंत (दे.) १५/६,८,१०,१२; १६/५,७,९,११
✓विण्णव ६/१
विण्णवेंत ६/१
विण्णय १२/३०; १७/१५२
वितत १७/१३६
✓वितर २/४
वितरंत २/४
वितिगिच्छा १०/२६,२८
विपंचि १७/१३७
विपुल १२/२९; १७/१५१
विप्पणट्ठ २/५५
✓विप्परिणाम १०/१०
विप्परिणामेंत १०/१०,१२
✓विप्परियास ११/६९
विप्परियासिय १३/२८
विप्परियासेंत ११/६९,७०
विप्फालिय ४/२६
विप्फालिय (दे.) १०/१४

विभूसा १५/९९-१५४
विभूसिय ९/९
वियड १/६; २/२१; ३/२०,२६,३२,३६-३९,५४,६३; ४/५८,६४,७०,७४-७७,९२,१०१; ५/१४; ६/७,१५,२९,३५,४१,४५-४८,६३,७२; ७/१८,२४,३०,३४-३७,५२,६१; ११/१५,२१,२७,३१-३४,४९,५८; १४/१२,१३,१६,१७; १५/१७,२३,२९,३३-३६,५१,६०,१०३,१०९,११५,११९-१२२,१३७,१४६; १७/१९,२५,३१,३५-३८,५३,६२,७३,७९,८५,८९-९२,१०७,११६; १८/४४,४५,४८,४९
वियड (दे.) १९/१-७
✓वियर १/३९
वियरंत १/३९,४०; १४/५; १८/३७
वियारभूमि २/४०
वियाल ३/८०; ८/१०; १०/२९
विरुद्धरज्ज ११/७२
विरूवरूव ८/१४; ११/८१; १२/२९; १६/२७; १७/१५१
विरेयण १३/४०,४१
✓विलिंप ३/३७
✓विलिंपाव १५/३४
विलिंपावेंत १५/३४
विलिंपावेत्ता १५/३५
विलिंपित्ता ३/३८
विलिंपेंत ३/३७; ४/७५; ६/१६,४६; ७/३५; ११/३२; १२/३३-४०; १५/३४,१२०; १७/३६,९०
विलिंपेत्ता ६/१७
विवग्घ ७/१०-१२; १७/१२-१४
विवण्ण १४/१०,११; १८/४२,४३
विसभक्खण ११/९३
✓विसुयाव (दे.) २/८
विसुयावेंत (दे.) २/८
✓विसोह ३/३५
✓विसोहाव १५/३२
विसोहावेंत १५/३२,६४,६५; १७/३४,६६,६७,८८,१२०,१२१
विसोहावेत्ता १५/३३
विसोहेंत ३/३५,६७,६८; ४/७३,१०५,१०६; ६/४४,७६,७७; ७/३३,६५,६६; ११/३०,६२,६३; १५/११८,१५०,१५१
विसोहेत्ता ३/३६
विसोहेमाण १०/२५-२८
विह (कला) (दे.) १२/१७
विह (अटवी) (दे.) १६/२६
विहार ८/१-९,११; ९/१२; १६/२६,२७
विहारभूमि २/४०
विहुवण १७/१३२
वीइत्ता १७/१३२
वीणा १७/१३७
वीसतिरातिया २०/१९-२९,४६,४८,५०
वुग्गह १३/१२; १६/१६-२४
वुसिराइय १६/१६
वुसिरातिय १६/१४,१५
वेढिम १२/१७
वेणु १७/१३९
वेणुदंड ५/२५-३३
वेणुसूइया १/४०; २/२५
वेणुसूई ५/१९-२२
वेत्तदंड ५/२५-३३
वेत्तपासय १२/१,२; १७/१,२
वेत्तपीढग १२/६
वेयावच्च १०/३२,३३; ११/८७
वेयावडिय २०/१५-१८
वेर १२/२८; १७/१५०
वेरज्ज ११/७२
वेलंबग ९/२२
वेलागामिणी १८/१२
वेवा (दे.) १७/१३९
वेहास १६/३६
वेहासमरण ११/९३
वेहिम १२/१७
वोसट्ठ ५/७५
स (स) ७/७५
स (स्व) ३/८०
स (सत्) १६/२६,२७
संकप्प ८/११; १०/२१,२४-२८
संकम १/११; २/१०; १६/१५

✓संकम १६/१५
संकमंत १६/१५
संख १७/१४०
संखडि ३/१४
संखपाय ११/१-३
संखबंधण ११/४-६
संखमालिया ७/१-३; १७/३-५
संघट्टेत्ता १६/३८
संघाडय ४/२७-३६
संघाडी ५/१२,१३; १२/७
संघातिम १२/१७
✓संचाल १/२
संचालेंत १/२; ६/३; ७/१३,८३,८४
✓संचिक्ख (दे.) १९/२४
संचिक्खावेंत (दे.) १९/२४
संजुत्त १०/५; १२/४
संज्झा १९/८
✓संठव १/३९
संठवेंत २/२४,२५; ३/४१-४६,५६-५८,६५,६६; ४/७९-८४, ९४-९६,१०३,१०४; ६/५०-५५,६५-६७,७४,७५; ७/३९-४४,५४-५६,६३,६४; ११/३६-४१,५१-५३,६०,६१; १५/३८-४३,५३-५५,६२,६३,१२४-१२९,१३९-१४१, १४८,१४९; १७/४०-४५,५५-५७,६४,६५,९४-९९,१०९-१११,११८,११९
संठिय ९/१३
संत २/४४; १७/१२३,१२४
✓संतर १२/४३
संतरंत १२/४३
संताणग ७/७५; १३/८; १४/२७; १६/४८; १८/५९
संतिय २/५४,५५; ५/१७,१८,२१-२३
संथडिय (दे.) १०/२५,२६
संथरमाण १६/२६,२७
संथारग २/५१
संथारय २/४९,५०,५२-५५; ५/२३; १६/३५,३९
संधि १३/२८
संनिचय ८/१७
संपविट्ठ ८/११
✓संपव्वय २/५३
संपव्वयंत २/५३,५४
संपसारय १३/५९,६०
संफाणिय ५/१४
संबाह ५/३४; १२/२०; १७/१४२
संबाहपह १२/२३; १७/१४५
संबाहमह १२/२१; १७/१४३
संबाहवह १२/२२; १७/१४४
✓संभुंज १०/१४
संभुंजंत १०/१४,१९-२४
संभोइ २/४४
संभोगवत्तिय ५/६४
संमेल (दे.) ११/८१
✓संवस ११/८८
संवसंत ११/८८-९१
✓संवसाव ८/१२
संवसावेंत ८/१२-१४; १०/१३
✓संवाह १/३
संवाह ९/२७
✓संवाहाव १५/१४
संवाहावेंत १५/१४,२०,२६,४८,५७; १७/१६,२२,२८,५०, ५९,७०,७६,८२,१०४,११३
संवाहेंत १/३; ३/१७,२३,२९,५१,६०; ४/५५,६१,६७,८९, ९८; ६/४,२६,३२,३८,६०,६९; ७/१५,२१,२७,४९,५८; ११/१२,१८,२४,३६,५५; १५/१००,१०६,११२,१३४, १४३
संसट्ठपिंड ८/१८
संसत्त ४/३५,३६; ८/१०; १३/५१,५२; १५/९४-९७; १९/३६,३७
✓संसिव्व १/५३
संसिव्वेंत १/५३
संसेइम १७/१३३
सकय २०/१५-१८
सक्क १४/६; १८/३८
सक्करा ६/७९; ८/१७
सगणिच्चिया ८/११
सचित्त १/१०; ५/१-११, २५-२७; १२/१०; १५/५-१२;

१६/४-११
सचेल ११/८८,८९
सचेलय ११/८८,९०
✓सज्ज १२/३०
सज्जं ११/७२
सज्जमाण १२/३०; १७/१५२
सज्झाय ५/५-११; ७/९०,९१; ८/१-९,११; ९/१२;१६/२४,२५,३१-३३;१९/८,११-१५
सण ३/७०; ५/२४
सणालिय (दे.) १७/१३८
सण्ण १८/९
सण्णिवेस ५/३४; १२/२०; १७/१४२
सण्णिवेसपह १२/२३; १७/१४५
सण्णिवेसमह १२/२१; १७/१४३
सण्णिवेसवह १२/२२; १७/१४४
सत्त १९/१०
सत्तिग्गह ९/२७
सत्तिवण्णवण ३/७९
सत्थजाय ३/३४-३९; ४/७२-७७; ६/४३-४८; ७/३२-३७; ११/२९-३४; १५/३१-३६,११७-१२२; १७/३३-३८, ८७-९२
सत्थाह ९/२७
सत्थोपाडण ११/९३
सदसराय २०/२५,२६,२८,२९,४८,४९
सदुय (दे.) १७/१३६
सद्धिं २/३९
सन्निहि ८/१७
सपंचरातिय २०/४६
सपंचराय २०/४७
सपच्चवाय ११/८
सपरिक्कम ५/६३
सपाहुडिया ५/६२
सप्पि ६/७९; ८/१७
सबरी ९/२९
समण ९/५
समणुण्ण २/४४
समवाय ८/१४
समाण २/३८; ३/५-८; १३/१५
✓समारंभ १२/८
समारंभंत १२/८,९
समावण्ण १०/२५-२८
समीहिय ९/११
✓समुद्दिस्स ५/७
समुद्दिसंत ५/७
समुद्दिसिय १४/५; १८/३७
समोसरण १९/१६
सय १०/३२
सयं २/१-१७,२४,२५; ६/११
सर १२/१८; १७/१४०
सरऊ १२/४३
सरपंतिय १२/१८; १७/१४०
सरमह ८/१४
सरमाण १/३९,४०
सरसरपंतिय १२/१८; १७/१४०
सरिसग १७/१२३
सरिसय १७/१२४; १९/२४
सलागा १/२; ४/११३; ६/३; ८/८४
सलाहकहत्थय १३/१२
सलाहा १३/१२
सल्ल १/२९
सवीसतिरातिय २०/२०
सवीसतिराय २०/२७,२८,४७,४८
सव्व २०/१५-१८
सव्वारक्खिय ४/६,१२,१८,४३,४८,५३
ससरक्ख ७/७०; १३/३; १४/२२; १६/४३; १८/५४
ससिणिद्ध ७/६९; १३/२; १४/२१; १६/४२; १८/५३
सहिण ७/१०-१२; १७/१२-१४
सहिणकल्लाण ७/१०-१२; १७/१२-१४
साइम २/४८; ३/१-१२,१४,१५; ४/३७,११८; ५/३,३४,३५; ७/७७,७९,८६,८७; ८/१-९,११,१४-१६; ९/४,५,१०, १२-१८,२१-२९ १०/२५-२८; ११/७५-८०; १२/१५,१६,२९,३१,३२,४२;१५/७६,७८,७९,८२,८३,८६, ८७,९०,९१,९४,९५; १६/१२,१७,१८,२८,३४,३५,३६; १७/१२५-१३२,१५१;१८/१७-३२

साइरेग २०/१३-१८
साएय ९/२०
सागणिय १६/३
सागर ८/११
सागरमह ८/१४
सागवच्च ३/७७
सागारिय २/४८,५४,५५; ५/१७,१८,२१-२३; १६/१
सागारियकुल २/४७
सागारियपिंड २/४५,४६
साणुप्पाय ४/१०८
✓सातिज्ज १/१
सालवण ३/७८
साहणिय २०/१५-१८
साहम्मिय २/४४
साहा १७/१३२
साहाभंग १७/१३२
साहिगरण १०/१४
सिंगपाय ११/१-३
सिंगबंधण ११/४-६
सिंगबेर ११/९९
सिंगबेरचुण्ण ११/९२
सिंगमालिया ७/१-३; १७/३-५
सिंहली ९/२९
सिक्कग १/१३; २/१२
✓सिक्खाव १३/१२
सिक्खावेंत १३/१२
सिज्जमाण २/५१
सिणाण १/५; ६/६
सिप्प १३/१२
सिला ७/७३; १३/६, १०; १४/२५,२९; १६/४६,५०; १८/५७,६१
सिलोग १३/१२
✓सिव्व १/२७
सिव्वंत १/२७,४९
✓सिव्वाव ५/१२
सिव्वावेंत ५/१२; १२/७
सीओदग २/२१; ३/२०,२६,३२,३६-३९,५४,६३;४/५८,६४, ७०,७४-७७,९२,१०१; ५/१४; ६/७,१५,२९,३५,४१, ४५-४८,६३,७२; ७/१८,२४,३०,३४-३७,५२,६१; ११/ १५,२१,२७,३१-३४,४९,५८; १२/१६; १४/१२,१३,१६, १७; १५/१७,२३,२९,३३-३६,५१,६०,१०३,१०९,११५, ११९-१२२,१३७,१४६; १७/१९,२५,३१,३५-३८,५३, ६२,७३,७९,८५,८९-९२,१०७,११६;१८/४४,४५,४८,४९
सीतोदक १/६
सीमारक्खिय ४/४१,४६,५१
सीस ५/६९; ७/८३
सीसगलोह ७/४-६; १७/६-८
सीसदुवारिया ३/६९; ४/१०७; ६/७८; ७/६७; ११/६४; १५/६६,१५२; १७/६८,१२२
सीसागर ५/३५
सीहणाय १७/१३५
सीहपोसय ९/२३
सुअलंकिय १२/२९; १७/१५१
सुक्कपोग्गल १/९; ६/१०
सुगिम्हपाडिवय १९/२२
सुणहपोसय ९/२३
सुण्णगिह ८/५; १५/७१
सुण्णसाला ८/५; १५/७१
सुत्त ५/१३,२४
सुत्तपासय १२/१,२; १७/१,२
सुत्तय ३/७०
सुद्धवियड १७/१३३
सुप्प १७/१३२
सुब्भि (दे.) २/४२
सुमिण १३/२४
सुय १२/३०; १७/१५२
सुयपोसय ९/२३
सुवण्णपाय ११/१-३
सुवण्णबंधण ११/४-६
सुवण्णलोह ७/४-६; १७/६-८
सुवण्णसुत्त ७/७-९; १७/९-११
सुवण्णागर ५/३५
सुहुम १/३९,४०; ५/६९
सूइ १/१९,२३,२७,३१,३५

सूई १/१५;२/१४
सूकरकरण १२/२४; १७/१४६
सूकरजुद्ध १२/१५; १७/१४७
सूयरपोसय ९/२३
सूरिय ३/८०; १०/२५-२८
सेज्जा २/४९-५५; ५/२,२३,६१-६३; १३/१-११; १६/१-३,३९
सेय (स्वेद) ३/६७; ४/१०५; ६/७६; ७/६५; ११/६२; १५/६४,१५०; १७/६६,१२०
सेयायण ३/७५
सेलकम्म १२/१७
सेलपाय ११/१-३
सेलबंधन ११/४-६
सेवमाण १/५६; २/५६; ३/८०; ४/११८; ५/७८; ६/७९; ७/९२; ८/१८; ९/२९; १०/४१; ११/९३; १२/४३; १३/७५; १४/४१; १५/१५४; १६/५१; १७/१५२; १८/७३; १९/३७
सेह १०/९,१०
सोच्चा १०/१९
सोणिय ३/३५-३९; ४/७३-७७; ६/४४-४८; ७/३३-३७; ११/३०-३४; १५/३२-३६,११८-१२२; १७/३४-३८, ८८-९२
सोत्तिय १/१४; २/१३
सोदग १६/२
सोय (शोक) ८/११
सोय (स्रोतस्) १/९; ६/१०; ७/८४
सोवीर १७/१३३
हंसपोसय ९/२३
हडप्पगह ९/२७
हड्डमालिया ७/१-३; १७/३-५
हत्थ २/२१; ४/३७; १२/१५,१६; १६/३९; १७/१३२; १८/१६
हत्थकम्म १/१; ६/२
हत्थच्छिण्ण १४/७; १८/३९
हत्थवीणिया ५/४१,५३
हत्थिआरोह ९/२६
हत्थिकरण १२/२४; १७/१४६
हत्थिगुलगुलाइय १७/१३५
हत्थिजुद्ध १२/२५; १७/१४७
हत्थिणापुर ९/२०
हत्थिदमग ९/२४
हत्थिपोसय ९/२३
हत्थिमिंठ ९/२५
हम्मतल १३/११; १४/३०; १६/५१; १८/६२
हयजूहियाठाण १२/२६; १७/१४८
हयसाला ८/१६
हयहेसिय १७/१३५
हरिय ७/७५; १३/८; १४/२७; १६/४८; १८/५९
हरियमालिया ७/१-३; १७/३-५
हरियवीणिया ५/४७,५९
✓हस ४/२६
हसंत ४/२६; १२/२९; १७/१५१
हार ७/७-९; १७/९-११
हारपुडपाय ११/१-३
हारपुडबंधण ११/४-६
हिंगोल (दे.) ११/८१
हिरण्णागर ५/३५
हीरमाण ११/८१
हेउ १०/२०,२३; २०/१९-५१
हेट्ठिल्ल १९/१६

परिशिष्ट : २

विशेषनामानुक्रम

शब्द	वर्ग	सन्दर्भ
अंकपाय	पात्रवर्ग	११/१-३
अंकबंधण	बंधनवर्ग	११/४-६
अंतद्धाणपिंड	पिंडवर्ग	१३/७५
अंतरुच्छुय	वनस्पतिवर्ग	१६/६,७,१०,११
अंतोसल्लमरण	मरण	११/९३
अंब	वनस्पतिवर्ग	१५/७,८,११,१२
अंबकंजिय	पानकवर्ग	१७/१३४
अंबचोयग	वनस्पतिवर्ग	१५/७,८,११,१२
अंबडगल	वनस्पतिवर्ग	१५/७,८,११,१२
अंबपेसि	वनस्पतिवर्ग	१५/७,८,११,१२
अबभित्तग	वनस्पतिवर्ग	१५/७,८,११,१२
अंबसालग	वनस्पतिवर्ग	१५/७,८,११,१२
अंसुय	वस्त्रवर्ग	७/१०-१२; १७/१२-१४
अकण्णच्छिण्ण	अविकलांग	१४/६; १८/३८
अक्खाइयट्ठाण	स्थान	१२/१७; १७/१५०
अगडमह	महोत्सववर्ग	८/१४
अग्गपिंड	पिंडवर्ग	२/३१
अट्ट	गृहवर्ग	८/३; १५/६९
अट्टालय	गृहवर्ग	८/३; १५/६९
अट्ठापद	कलावर्ग	१३/१२
अडविजत्ता	यात्रा	१६/१२,१३
अणासच्छिण्ण	अविकलांग	१४/६; १८/३८
अणाहपिंड	पिंडवर्ग	८/१८
अणोट्ठच्छिन्न	अविकलांग	१४/६; १८/२८
अद्दाय	गृह उपकरण	१३/३२
अद्धहार	आभूषणवर्ग	७/७-९; १७/९-११
अपायच्छिण्ण	अविकलांग	१४/६; १८/३८
अब्भंग	राजकर्मकर	९/२७
अभिसेयठाण	स्थान	१२/२७; १७/१५०

अमिल	वस्त्रवर्ग	७/१०-१२; १७/१२-१४
अमिल कप्पास	कपास	३/७०; ५/२४
अयपाय	पात्रवर्ग	९/२३
अयपोसय	पशुपोषक	९/२३
अयबंधण	बन्धनवर्ग	११/४-६
अयलोह	धातुवर्ग	७/४-६; १७/६-८
अयागर	खानवर्ग	५/३५
अवलेहणिया	साधु के उपकरण	१/४०; २/२५; ५/९-२२,६५
असण	खाद्यवर्ग	२/४८ ३/१-१२,१४,१५; ४/३७,११८; ५/३,३४,३५; ७/७७, ७९,८६,८७; ८/१-९,११,१४-१८; ९/४,५,१०,१२-१८,२१-२९,१०/२५-२८;११/७५-८०; १२/१५,१६,२९,३१,३२,४२; १५/७६,७८,७९,८२,८३,८६,८७,९०,९१,९४,९५; १६/१२, १३,१७,१८,२८,३४-३६; १७/१२५-१३३; १८/१७-३२
असि	शस्त्रवर्ग	१३/१३
असिग्गह	राजकर्मकर	९/२७
असोगवण	वनवर्ग	३/७९
असोत्थवच्च	वनस्पति सुखाने का स्थान	३/७६
अहत्थच्छिण्ण	अविकलांग	१४/६; १८/३८
अहाछंद	शिथिल साधु	११/८३,८४
आईण	वस्त्रवर्ग	७/१०-१२; १७/१२-१४
आगंतार	गृहवर्ग	३/१-१२; ७/७८,७९; ८/१;१५/६७
आगर	वसति के प्रकार	१२/२०; १७/१४३
आगरपह	पथवर्ग	१२/२३; १७/१४५
आगरमह	महोत्सववर्ग	८/१४; १२/२१; १७/१४४
आगरवह	वधस्थान	१२/२२; १७/१४४
आजीवयपिंड	पिंडवर्ग	१३/६४
आभरणविचित्त	वस्त्रवर्ग	७/१०-१२; १७/१२-१४
आय	वस्त्रवर्ग	७/१०-१२; १७/१२-१४
आयरिय	पद	४/१७; १६/३८; १९/२३
आयाम	पानकवर्ग	१७/१३३
आरबी	दासीवर्ग	९/२९
आरामागार	गृहवर्ग	३/१-१२; ७/७८,७९; ८/१; १५/६७
आसकरण	पशु-शिक्षण	१२/२४; १७/१४६
आसजुद्ध	युद्धवर्ग	१२/२५; १७/१४७
आसत्थपत्त	वनस्पतिवर्ग	१८/१६
आसदमग	पशुशिक्षण	२/२४
आसपोसय	पशु पोषक	९/२३
आसमिंठ	पशुशिक्षण	९/२५

आसम	वसति के प्रकार	५/३४
आसारोह	पशु शिक्षण	९/२६
इंगालदाह	भूमि	३/७३
इंदमह	महोत्सववर्ग	८/१५; १९/११
इक्खुवण	वनवर्ग	३/७८
ईसिणी	दासीवर्ग	९/२९
उंबरवच्च	वनस्पति सुखाने का स्थान	३/७६
उच्चारपासवणभूमि	भूमि	४/१०८,१०९
उच्छु	वनस्पतिवर्ग	१६/४,५,८,९
उच्छुखंडिय	वनस्पतिवर्ग	१६/६,७,१०,११
उच्छुचोयग	वनस्पतिवर्ग	१६/६,७,१०,११
उच्छुडगल	वनस्पतिवर्ग	१६/६,७,१०,११
उच्छुमेरग	वनस्पतिवर्ग	१६/६,७,१०,११
उच्छुसालग	वनस्पतिवर्ग	१६/६,७,१०,११
उज्जाण	उद्यान	८/२; १५/६८
उज्जाणगिह	गृहवर्ग	८/२; १५/६८
उज्जाणसाला	गृहवर्ग	८/२; १५/६८
उज्जुहियाठाण	स्थान	१२/२६; १७/१४०
उज्झर	जलाशयवर्ग	१२/१८; १७/१४७
उट्टजुद्ध	युद्धवर्ग	१२/२५; १७/१४८
उण्णकप्पास	कपास	३/७०; ५/२४
उत्तरगिह	गृहवर्ग	८/१६
उत्तरसाला	गृहवर्ग	८/१६
उद्द	वस्त्रवर्ग	७/१०-१२; १७/१२-१४
उप्पल	जलाशयवर्ग	१२/१८; १७/१४०
उब्भिय	खाद्य (लवण)	११/९२
उवज्झाय	पद	४/१७; १६/३८; १९/२३
उवट्ट	राजकर्मकर	९/२७
उवस्सय	गृहवर्ग	४/२२; ८/१२,१३
उसुकाल	गृह उपकरण	१३/९; १४/२८; १८/६०
उस्सट्ठपिंड	पिंडवर्ग	८/१८
उस्सेइम	पानकवर्ग	१७/१३३
एगावली	आभूषणवर्ग	७/७-९; १७/९-११
एरावती	जलाशयवर्ग	१२/४३
ओट्ठच्छिण्ण	विकलांग वर्ग	१४/७; १८/३९
ओसण्ण	शिथिल साधु	४/२९,३०; १३/४५,४६; १५/८२,८५; १९/३०,३१
ओसहि	खाद्य वर्ग	४/१९
ओसहिबीय	वनस्पतिवर्ग	१४/३५; १८/६७

कंचुइज्ज	राजकर्मकर	९/२८
कंतारभत्त	पिंडवर्ग	९/६
कंद	वनस्पतिवर्ग	१४/३४; १८/६६
कंपिल्ल	राजधानी	९/२०
कंबल	वस्त्रवर्ग	५/६६; ७/१०-१२,८८,८९; १५/७७,८०,८१,८४,८५,८८,८९, ९२,९३,९६,९७,१५३,१५४; १६/९,२८; १७/१२-१४
कंसताल	वाद्यवर्ग	१७/१३९
कंसपाय	पात्रवर्ग	११/१-३
कंसबंधण	बंधनवर्ग	११/४-६
कक्क	प्रसाधन सामग्री	१/५; ३/१९,२५,३१,३५, ५३,६२; ४/५७,६३,६९,९१,१००; ६/६,२८,३४,४०,६२,७१; ७/१७,२३,२९,५१,६०; ११/१४, २०,२६,४८,५७; १४/१४,१५,१८,१९; १५/१६,२२, २८,५०, ५९,१०२,१०८,११४,१३६,१४५; १७/१८,२४,३०,५२, ६१,६९, ७५,८१,१०३,११२; १७/४६,४७,५०,५१
कक्कडग	कलावर्ग	१३/१२
कच्छ	भूमि	१२/१९; १७/१४२
कच्छभि	वाद्यवर्ग	१७/१३८
कट्ठकम्म	कलावर्ग	१२/१७
कट्ठपासय	प्राणि-बंधन	१२/१,२; १७/१,२
कट्ठपीढग	निषीदन-आसन	१२/६
कट्ठमालिया	मालावर्ग	७/१-३, १७/३-५
कडग	आभूषणवर्ग	७/७-९; १७/९-११
कणग	वस्त्रवर्ग	७/१०-१२; १७/१२-१४
कणगकत	वस्त्रवर्ग	७/१०-१२; १७/१२-१४
कणगखचित	वस्त्रवर्ग	७/१०-१२; १७/१२-१४
कणगपट्ट	वस्त्रवर्ग	७/१०-१२; १७/१२-१४
कणगफुल्लिय	वस्त्रवर्ग	७/१०-१२; १७/१२-१४
कणगावली	आभूषणवर्ग	७/७-९; १७/९-११
कण्णच्छिण्ण	विकलांगवर्ग	१४/७; १८/३९
कण्णसोहणग	साधु के उपकरण	१/१८,२२,२६,३०,३४,३८; २/१७
कप्पासवण	वनवर्ग	३/७८
कयगभत्त	पिण्डवर्ग	९/६
कब्बड	वसति के प्रकार	५/३४; १२/२०; १७/१४२
कल्ल	वस्त्रवर्ग	७/१०-१२; १७/१२-१४
कहग	राजकर्मकर	९/१२
कामजल	गृहउपकरण	१३/९; १४/२८; १६/१८; १८/६०
काय	वस्त्रवर्ग	७/१०-१२; १७/१२-१४
कायपाय	पात्रवर्ग	११/१-३

कायबंधण	बन्धनवर्ग	११/४-६
काहिय	शिथिल साधु	१३/५३,५४
किण्हमिगाईणग	वस्त्रवर्ग	७/१०-१२; १७/१२-१४
किविणपिंड	पिण्डवर्ग	८/१८
कुंडल	आभूषणवर्ग	७/७-९; १७/९-११
कुक्कुडपोसय	पक्षीपोषक	९/२३
कुराइ	राजकर्मकर	९/२१
कुवियगिह	गृहवर्ग	८/८; १५/७४
कुवियसाला	गृहवर्ग	८/८; १५/७४
कुसपत्त	वनस्पतिवर्ग	१८/१६
कुसील	शिथिल साधु	४/३१,३२; १३/४७,४८; १५/८६-८९; १९/३२,३३
कूडागार	गृहवर्ग	८/५; १५/७१
केऊर	आभूषणवर्ग	७/७-९; १७/९-११
कोउगकम्म	निमित्तशास्त्र	१३/१७
कोंतग्गह	राजकर्मकर	९/२७
कोट्ठागार	गृहवर्ग	८/५; १५/७१
कोट्ठागारसाला	गृहवर्ग	७/७
कोट्ठिया	गृहोपकरण	१७/१२६
कोतव	वस्त्रवर्ग	७/१०-१२; १७/१२-१४
कोत्थुंभरिवच्च	वनस्पति सुखाने का स्थान	३/७७
कोसंबी	राजधानी	९/२०
कोहपिंड	पिंडवर्ग	१३/६७
खंड	खाद्यवर्ग	६/७९,८/१७
खंदमह	महोत्सववर्ग	८/१४, ९/११
खत्तिय	राजा/राजकर्मकर	८/१४-१८; ९/६-२९
खरमुहि	वाद्यवर्ग	१७/१३९
खाइम	खाद्यवर्ग	२/४८; ३/१-१२,१४,१५; ४/३७,११८; ५/३,३४,३५; ७/७७, ७९,८६,८७; ८/१-९,११,१४-१८; ९/४,५,१०,१२-१८,२१-२९,१०/२५-२८;११/७५-८०; १२/१५,१६,२९,३१,३२,४२; १५/७६,७८,७९,८२,८३,८६,८७,९०,९१,९४,९५; १६/१२, १३,१७,१८,२८,३४-३६; १७/१२५-१३३; १८/१७-३२
खारदाह	भूमि	३/७३
खारवच्च	वनस्पति सुखाने का स्थान	३/७७
खीर	खाद्यवर्ग	६/७९; ८/१७
खीरसाला	गृहवर्ग	९/७
खुज्जा	दासीवर्ग	९/२९
खेड	वसति के प्रकार	५/३४; १२/२०; १७/१४२
खोम	वस्त्र	७/१०-१२; १७/१२-१४

गंगा	जलाशयवर्ग	१२/४३
गंजसाला	गृहवर्ग	९/७
गंथिम	कलावर्ग	१२/१७
गज्जल	वस्त्रवर्ग	७/१०-१२; १७/१२-१४
गणि	पद	१४/५; १८/३७
गयजूहियाठाण	स्थान	१२/२६; १७/१४९
गयसाला	गृहवर्ग	८/१७
गहण	भूमि	१२/१९; १७/१४१
गातदाह	भूमि	३/७३
गाम	वसति के प्रकार	५/३४; १२/२०; १७/१४२
गामारक्खिय	रक्षक	४/३९,४४,४९
गाहावइकुल	कुल	२/३९; ३/१-१३,१५; ७/७८,७९; ८/१; ९/७; १५/६७
गिद्धपिट्ठ	मरण	११/९३
गिरिजत्ता	यात्रा	९/१७,१८
गिरिपक्खंदण	मरण	११/९३
गिरिपडण	मरण	११/९३
गिरिमह	महोत्सववर्ग	८/१४
गिलाणभत्त	पिण्डवर्ग	९/६
गिह	गृहवर्ग	३/७१
गिहंगण	गृहवर्ग	३/७१
गिहदुवार	गृहवर्ग	३/७१
गिहपडिदुवार	गृहवर्ग	३/७१
गिहमुह	गृहवर्ग	३/७१
गिहवच्च	गृहवर्ग	३/७१
गिहेलुग (य)	गृह उपकरण	३/७१
गुंजालिया	जलाशयवर्ग	१२/१८; १७/१४०
गुज्झसाला	गृहवर्ग	८/१६
गुल	खाद्यवर्ग	६/७९; ८/१७
गोणकरण	पशु-शिक्षण	१२/२४; १७/१४६
गोणगिह	गृहवर्ग	८/९; १५/७५
गोणजुद्ध	युद्धवर्ग	१२/२५; १७/१४७
गोणसाला	गृहवर्ग	८/९; १५/७५
गोपुर	स्थान	८/३; १५/६९
गोरमिगाईणग	वस्त्रवर्ग	७/१०-१२; १७/१२-१४
गोलुकी	वाद्यवर्ग	१७/१३६
गोलेहणिया	भूमि	३/७४
गोहिय	वाद्यवर्ग	१७/१३८
घय	खाद्यवर्ग	१/४; ३/१८,२४,३०,३८,३९,५२,६१; ४/५६,६२,६८,७६,७७,

		९०,९९; ६/५,१७,२७,३३,३९,४७,४८,६१,७०; ७/१६,२२,२८, ३६,३७,५०,५९; ११/१३,१९,२५,३३,३४,४७,५६; १५/१५, २१,२७,३५,३६,४९,५८,१००,१०१,१०७,११३,१२२,१३५, १४४; १७/१७,२३,२९,३७,३८,५१,६०,७१,७७,८३,९१,९२, १०५,११४
घर	गृहवर्ग	३/१५
चंपा	राजधानी	९/२०
चम्म	साधु के उपकरण	२/२२; १२/५
चम्मपाय	पात्रवर्ग	११/१-३
चम्मपासय	प्राणिबन्धन	१२/१,२; १७/१,२
चम्मबंधण	बन्धनवर्ग	११/४-६
चरिया	मार्ग	८/३; १५/६९
चाउलोदग	पानकवर्ग	१७/१३४
चामरग्गाह	राजकर्मकर	९/२७
चीणंसुय	वस्त्र	७/१०-१२; १७/१२-१४
चित्तकम्म	कलावर्ग	१२/१७
चिलाइया	दासीवर्ग	९/२९
चिलिमिली	साधु के उपकरण	१/१४; २/१३
चीरल्लपोसय	पक्षी-शिक्षण	९/२३
चुण्ण	प्रसाधन सामग्री	१/५; ३/१९,२५,३१,३५, ५३,६२; ४/५७,६३,६९,९१,१००; ६/६,२८,३४,४०,६२,७१; ७/१७,२३,२९,५१,६०; ११/१४, २०,२६,४८,५७; १४/१४,१५,१८,१९; १५/१६,२२, २८,५०, ५९,१०२,१०८,११४,१३६,१४५; १७/१८,२४,३०,५२, ६१,६९, ७५,८१,१०३,११२; १७/४६,४७,५०,५१
चुण्णपिंड	पिंडवर्ग	१३/७४
चूयवण	वनवर्ग	३/७९
चेतियमह	महोत्सववर्ग	८/१४
चेल	साधु के उपकरण	१७/१३२
चेलपाय	पात्रवर्ग	११/१-३
चेलबंधण	बन्धनवर्ग	११/४-६
छगणपीढग	निषीदन-आसन	१२/६
छणूसविय	वस्त्रवर्ग	१५/९८
छत्तग्गाह	राजकर्मकर	९/२७
जउणा	जलाशयवर्ग	१२/४३
जक्खमह	महोत्सववर्ग	८/१५; ९/११
जणवय	वसति के प्रकार	१६/२५,२६
जलणपक्खंदण	मरण	११/९३
जलणपवेस	मरण	११/९३

जलपक्खंदण	मरण	११/९३
जलपवेस	मरण	११/९३
जल्ल	राजकर्मकर	९/२२
जवोदग	पानकवर्ग	१७/१३४
जाणगिह	गृहवर्ग	८/७; १५/७३
जाणसाला	गृहवर्ग	८/७; १५/७३
जायरूवपाय	पात्रवर्ग	११/१-३
जायरूवबंधण	बन्धनवर्ग	११/४-६
जीरयवच्च	वनस्पति सुखाने का स्थान	३/७७
जुग्गगिह	गृहवर्ग	८/७; १५/७३
जुग्गसाला	गृहवर्ग	८/७; १५/७३
जोग	निमित्तशास्त्र	१३/२७
जोगपिंड	पिंडवर्ग	१३/७३
जोणिया	दासीवर्ग	९/२९
झल्लरी	वाद्यवर्ग	१७/१३६
झोडय	वाद्यवर्ग	१७/१३७
ठवणाकुल	कुल	४/१८
डमरूय	वाद्यवर्ग	१७/१३६
ढंकुण	वाद्यवर्ग	१७/१३७
णंदि	वाद्यवर्ग	१७/१३६
णगर	वसति के प्रकार	१२/२०; १७/१४२
णगरपह	पथवर्ग	१२/२३; १७/१४५
णगरमह	महोत्सववर्ग	१२/२१; १७/१४३
णगरवह	स्थान	१२/२२; १७/१४४
णगरारक्खिय	रक्षक	४/३,९,१५
णग्गोहवच्च	वनस्पति सुखाने का स्थान	३/७६
णड	नर्तक और खिलाड़ी	९/२२
णदिजत्ता	यात्रा	९/१५,१६
णदिमह	महोत्सववर्ग	८/१४
णवणीय	खाद्य	१/४; ३/१८,२४,३०,३८,३९,५२,६१; ४/५६,६२,६८,७६,७७, ९०,९९; ६/५,१७,२७,३३,३९,४७,४८,६१,७०; ७/१६,२२,२८, ३६,३७,५०,५९; ११/१३,१९,२५,३३,३४,४७,५६; १५/१५, २१,२७,३५,३६,४९,५८,१००,१०१,१०७,११३,१२२,१३५, १४४; १७/१७,३२,२९,३७,३८,५१,६०,७१,७७,८३,९१,९२
णहच्छेयणग (णक्खच्छेयणग)	साधु के उपकरण	१/१७,२१,२५,२९,३३,३७; २/१६
णागमह	महोत्सववर्ग	८/१४
णावा	यानवाहन	१८/१-१६
णिगम	वसति के प्रकार	५/३४

णिगमारक्खिय	रक्षक	४/४,१०,१६
णिच्चणियंसणिय	वस्त्रवर्ग	१५/९८
णिज्जाण	गृहवर्ग	८/२; १५/६८
णिज्जाणगिह	गृहवर्ग	८/२; १५/६८
णिज्जाणसाला	गृहवर्ग	८/२; १५/६८
णिज्झर	जलाशयवर्ग	१२/१८; १७/१४७
णितिय	शिथिल साधु	१५/९०-९३; १९/३२,३३
णिमित्तपिंड	पिण्डवर्ग	१३/६३
णिवेयणपिंड	पिण्डवर्ग	११/८२
णिवेसण	वसति के प्रकार	५/३४
णूम	गृहवर्ग	१२/१९, १७/१४२
तउआगर	खानवर्ग	५/३५
तउयपाय	पात्रवर्ग	११/१-३
तउयबंधण	बन्धनवर्ग	११/४-६
तउयलोह	धातुवर्ग	७/४-६; १७/६-८
तंबागर	खानवर्ग	५/३५
तडागमह	महोत्सववर्ग	८/१५
तणगिह	गृहवर्ग	८/६, १५/७२
तणपासय	प्राणिबंधन	१२/१,२; १७/१,२
तणपीढग	निषीदन आसन	१२/६
तणमालिया	मालावर्ग	७/१-३; १७/३-५
तणसाला	गृहवर्ग	८/६; १५/७२
तब्भवमरण	मरण	११/९३
तरुपक्खंदण	मरण	११/९३
तरुपडण	मरण	११/९३
तल	वाद्यवर्ग	१२/२७; १७/१४९
ताल	वाद्यवर्ग	१२/२७; १७/१५०
तिगिच्छापिंड	पिंडवर्ग	१२/६६
तित्तिरपोसय	पक्षी पोषक	९/२३
तिरीडपट्ट	वस्त्रवर्ग	७/१०-१२; १७/१२-१४
तिलोदग	पानकवर्ग	१७/१३४
तीत	निमित्तशास्त्र	१३/२१
तुंबवीणिय	वाद्यवर्ग	१७/१३८
तुडिय	वाद्यवर्ग	१२/२७; १७/१४९
तुडिय	आभूषणवर्ग	७/७-९; १७/९-११
तुण	वाद्यवर्ग	१७/१३८
तुसगिह	गृहवर्ग	८/६; १५/७२
तुसदाहठाण	भूमि	३/७३

तुससाला	गृहवर्ग	८/६; १५/७२
तुसोदग	पानकवर्ग	१७/१३४
तेल्ल	खाद्य	१/४; ३/१८,२४,३०,३८,३९,५२,६१; ४/५६,६२,६८,७६,७७, ९०,९९; ६/५,१७,२७,३३,३९,४७,४८,६१,७०; ७/१६,२२,२८, ३६,३७,५०,५९; ११/१३,१९,२५,३३,३४,४७,५६; १५/१५, २१,२७,३५,३६,४९,५८,१००,१०१,१०७,११३,१२६,१३५, १४४; १७/१७,२३, २९,३७,३८,५१,६०,७१,७७,८३,९१,९२
थारुगिणी	दासीवर्ग	९/२९
थूण	गृह उपकरण	१३/९; १४/२८; १६/४९; १८/६०
थूभमह	महोत्सववर्ग	८/१५
दंड (य, ग)	साधु के उपकरण	१/४०, २/२५; ४/२३; ५/१९-२२,६७
दंडारक्खिय	रक्षक	९/२८
दंतकम्म	कलावर्ग	१२/१६
दंतपाय	पात्रवर्ग	११/१-३
दंतबंधण	बंधनवर्ग	११/४-६
दंतमालिया	मालावर्ग	७/१-३; १७/३-५
दगठाण	स्थान	८/४; १५/७०
दगतीर	स्थान	८/४; १५/७०
दगपह	स्थान	८/४; १५/७०
दगमग्ग	स्थान	८/४; १५/७०
दमगभत्त	पिण्डवर्ग	९/६
दमणवच्च	वनस्पति सुखाने का स्थान	३/७७
दमिली	दासीवर्ग	९/२९
दरीमह	महोत्सववर्ग	८/१५
दव्वी	गृह उपकरण	४/३७, १२/१५,१६
दहमह	महोत्सववर्ग	८/१५
दहि	खाद्य	६/७९; ८/१७
दार	स्थान	८/३; १५/६९
दारुदंड	साधु के उपकरण	५/२५-३३
दारुपाय	पात्रवर्ग	१/३९; २/२४; ५/६५
दीवियग्गह	राजकर्मकर	९/२७
दीहिया	जलाशयवर्ग	१२/१८; १७/१४१
दुगुंछियकुल	कुल	१६/२७-३२
दुगुल्ल	वस्त्रवर्ग	७/१०-१२; १७/१२-१४
दुब्भिक्खभत्त	पिण्डवर्ग	९/६
दुवारियभत्त	पिण्डवर्ग	९/६
दूतिपिंड	पिण्डवर्ग	१३/६२
देसराग	वस्त्रवर्ग	७/१०-१२; १७/१२-१४

देसारक्खिय	रक्षक	४/५,११,१७,४०,४५,५०
दोणमुह	वसति के प्रकार	५/२४; १२/२०; १७/१४२
दोणमुहपह	पथवर्ग	१२/२३; १७/१४५
दोणमुहमह	महोत्सववर्ग	१२/२१; १७/१४३
दोणमुहवह	स्थान	१२/२२; १७/१४४
नगर	वसति के प्रकार	५/३४
नट्ट	नर्तक और खिलाड़ी	९/२२
नितिय	शिथिल साधु	४/३१,३२; १३/४९,५०
नितिय अग्गरपिंड	पिंडवर्ग	२/३१
नितिय अवड्डभाग	पिंडवर्ग	२/३५
नितियपिंड	पिंडवर्ग	२/३२
नितिय भाग	पिंडवर्ग	२/३४
नितिय वास	वास	२/३६
नीलमिगाईणग	वस्त्रवर्ग	७/१०-१२; १७/१२-१४
पउमचुण्ण	प्रसाधन सामग्री	१/५; ६/६
पउसी	दासीवर्ग	९/२९
पएस	वाद्यवर्ग	१७/१३६
पंकायतण	भूमि	३/७५
पक्कणी	दासीवर्ग	९/२९
पट्ट	आभूषणवर्ग	७/७-९; १७/९-११
पट्टण	वसति के प्रकार	५/३४; १२/२०; १७/१४२
पट्टणपह	पथवर्ग	१२/२३; १७/१४५
पट्टणमह	महोत्सव वर्ग	१२/२१; १७/१४३
पट्टणवह	स्थान	१२/२२; १७/१४४
पडह	वाद्यवर्ग	१७/१३६
पडिग्गह	साधु के उपकरण	७/८८,८९; १४/१-३६; १५/८०,८१,८४,८५,८८,८९,९२,९३, ९६,९७,१५३,१५४; १६/१९,२०; १८/१४
पडिग्गहग	साधु के उपकरण	९/४,५; १४/३७-३९
पडोल	वनस्पतिवर्ग	५/१४
पणग	वनस्पतिवर्ग	७/७५; १३/७८; १४/२७; १६/४८; १८/५९
पणगायतन	भूमि	३/७५
पणव	वाद्यवर्ग	१७/१३७
पणियगिह	गृहवर्ग	८/८; १५/७४
पणियसाला	गृहवर्ग	८/८; १५/७४
पत्त	वनस्पति वर्ग	५/४३; १४/३४; १७/१३१; १८/६६; १९/२१
पत्तच्छेज्ज	कलावर्ग	१२/१७
पत्तमालिया	मालावर्ग	७/१-३; १७/३-५
पत्तुण्ण	वस्त्रवर्ग	७/१०-१२; १७/१२-१४

परिपरि	वाद्यवर्ग	१७/१३९
परियट्टगाह	राजकर्मकर	९/२७
परियायगिह	गृहवर्ग	८/८; १५/७४
परियासाला	गृहवर्ग	८/८; १५/७४
परियावसह	गृहवर्ग	३/१-१२; ७/७८,७९; ८/१; १५/६७
पलंबसुत्त	आभूषणवर्ग	७/७-९; १७/९-११
पलालपीढग	निषीदन आसन	१२/६
पल्लल	जलाशय	१२/१८; १७/१४१
पल्हविया	दासीवर्ग	९/२९
पवग	नर्तक और खिलाड़ी	९/२२
पव्वय	भूमि	१२/१९; १७/१४१
पव्वयविदुग्ग	भूमि	१२/१९; १७/१४१
पसिण	निमित्त शास्त्र	१३/१९
पसिणापसिण	निमित्त शास्त्र	१३/२०
पसुभत्त	पिंडवर्ग	९/६
पहेण	भोज	११/८१
पागार	स्थान	८/३; १५/६९
पाण	खाद्यवर्ग	२/४८; ३/१-१२,१४,१५; ४/३७,११८; ५/३,३४,३५; ७/७७, ७९,८६,८७; ८/१-९,११,१४-१८; ९/४,५,१०,१२-१८,२१-२९,१०/२५-२८;११/७५-८०; १२/१५,१६,२९,३१,३२,४२; १५/७६,७८,७९,८२,८३,८६,८७,९०,९१,९४,९५; १६/१२, १३,१७,१८,२८,३४-३६; १७/१२५-१३३; १८/१७-३२
पाणसाला	गृहवर्ग	९/७
पाय	साधु के उपकरण	१/२७,२८,४१-४६; ३/८०; ११/७,८
पायच्छिन्न	विकलांगवर्ग	१४/७; १८/३९
पायपुंछण	साधु के उपकरण	२/१-८; ५/१५-१८,६६; ७/८८,८९; १५/७७,८०,८१,८४,८५, ८८,८९,९२,९३,९६,९७,१५३,१५४; १६/१९,२०,२९
पारसी	दासीवर्ग	९/२९
पालुकिमिय	प्राणिवर्ग	३/४०; ४/७५; ६/४९; ७/३८; ११/३५; १५/३७,१२३; १७/ ३९,९३
पासणिय	शिथिल साधु	१३/५५,५६
पासत्थ	शिथिल साधु	४/२४,२५; १३/४३,४४; १५/७८-८१; १९/२६,२७
पासाय	गृहवर्ग	१३/११; १४/३०; १६/५०; १८/६२
पाहुणभत्त	पिंड वर्ग	९/६
पिउमंद	वनस्पति वर्ग	५/१४
पिंड	पिंडवर्ग	२/३२
पिंडनियर	पिंडवर्ग	८/१५
पिच्छमालिया	मालावर्ग	७/१-३; १७/३-५

पिप्पलग	साधु के उपकरण	१/१६; २०,२४,२८,३२,३६; २/१५
पिप्पलिचुण्ण	खाद्यवर्ग	११/९२
पिप्पली	वनस्पतिवर्ग	११/९२
पिलक्खुवच्च	वनस्पति सुखाने का स्थान	३/७६
पुप्फ	वनस्पतिवर्ग	१४/३४; १८/६६
पुप्फमालिया	मालावर्ग	७/१-३; १७/३-५
पुलिंदी	दासीवर्ग	९/२९
पूरिम	कलावर्ग	१२/१७
पेस	वस्त्रवर्ग	७/१०-१२; १७/१२-१४
पेसलेस	वस्त्रवर्ग	७/१०-१२; १७/१२-१४
पोक्खर	जलाशयवर्ग	१२/१८; १७/१४०
पोंडकप्पास	कपास	३/७०; ५/२४
पोत्थकम्म	कलावर्ग	१२/१७
पोयपोसंय	राजकर्मकर	९/२३
फल	वनस्पतिवर्ग	१४/३४; १८/६६
फलमालिया	मालावर्ग	७/१-३; १७/३-५
फलिह	स्थान	१२/१८; १३/११; १४/३०; १६/५०; १७/१४०,१८/६२
फाणिय	खाद्यवर्ग	१३/३७
फालिय	वस्त्रवर्ग	७/१०-१२; १७/१२-१४
बद्धीसग	वाद्यवर्ग	१७/१३८
बब्बरी	दासीवर्ग	९/२९
बलभत्त	भक्तवर्ग	९/६
बहली	दासीवर्ग	९/२९
बीजमालिया	मालावर्ग	७/१-३; १७/३-५
बीय	वनस्पतिवर्ग	१४/३४; १८/६६
भंडागारसाला	गृहवर्ग	९/२७
भयगभत्त	भक्तवर्ग	९/६
भिंडमालिया	मालावर्ग	७/१-३; १७/३-५
भिगुपक्खंदण	मरण	११/९३
भिगुपडण	मरण	११/९३
भिण्णगिह	गृहवर्ग	८/५; १५/७१
भिण्णसाला	गृहवर्ग	८/५; १५/७१
भुसदाहठाण	भूमि	३/७३
भूतमह	महोत्सववर्ग	८/१५, १९/११
भूतिकम्म	निमित्त शास्त्र	१३/१८
भेरि	वाद्यवर्ग	१७/१३७
मउड	आभूषण	७/७-९; १७/९-११
मऊरपोसय	पक्षीपोषक	९/२३

मंच	गृहवर्ग	१३/११; १४/३०; १६/५०; १८/६२
मंडव	गृहवर्ग	१३/११; १४/३०; १६/५०; १८/६२
मंडावय	राजकर्मकर	९/२७
मंत	निमित्तशास्त्र	१३/२६
मंतपिंड	पिंडवर्ग	१३/७२
मंतसाला	गृहवर्ग	८/१७
मंसखल	भूमि	११/८१
मंसादीय	भोज	११/८१
मकरिय	वाद्यवर्ग	१७/१३८
मच्छंडिय	खाद्यवर्ग	६/७९; ८/१८
मच्छखल	भूमि	११/८१
मच्छादीय	भोज	११/८१
मज्जणिय	वस्त्रवर्ग	१५/९८
मज्जावय	राजकर्मकर	९/२७
मट्टियाखाणी	खान	३/७४
मट्टियापाय	पात्रवर्ग	१/३९; २/२४; ५/६७
मडंब	वसति के प्रकार	५/३४; १२/२०; १७/१४३
मडगगिह	गृहवर्ग	३/७२
मडगथंडिल	थंडिलवर्ग	३/७२
मडगथूभिय	गृहवर्ग	३/७२
मडगलेण	गृहवर्ग	३/७२
मडगवच्च	थंडिलवर्ग	३/७२
मडगासय	गृहवर्ग	३/७२
मड्डुय	वाद्यवर्ग	१७/१३६
मणि	रत्न	१३/३४
मणिकम्म	हस्तकौशल	१२/१७
मणिपाय	पात्रवर्ग	११/१-३
मणिबंधण	बन्धनवर्ग	११/४-६
मत्तग	साधु के उपकरण	१३/३१
मयणमालिया	मालावर्ग	७/१-३; १७/३-५
मरुंडी	दासीवर्ग	९/२९
मरुगवच्च	वनस्पति सुखाने का स्थान	३/७७
मरुपक्खंदण	मरण	११/९३
मरुपडण	मरण	११/९३
मलय	वस्त्रवर्ग	७/१०-१२; १७/१२-१४
मल्ल	नर्तक और खिलाड़ी	९/२२
महति	वाद्यवर्ग	१७/१३८
महाकुल	गृहवर्ग	८/९; १५/७५

महागिह	गृहवर्ग	८/९; १५/७५
महाणससाला	गृहवर्ग	९/७
महिसकरण	पशु शिक्षण	१२/२४; १७/१४६
महिसजुद्ध	युद्धवर्ग	१२/२५; १७/१४८
महिसपोसय	पशुपोषक	९/२३
मही	जलाशयवर्ग	१२/४३
महुरा	राजधानी	९/२०
मानपिंड	पिंडवर्ग	१३/६८
माणुम्माणियट्ठाण	स्थान	१२/२७; १७/१५०
मायापिंड	पिंडवर्ग	१३/६९
माल	स्थान	१३/११; १४/३०; १६/५०; १८/६२
मिगपोसय	पशुपोषक	९/२३
मिलक्खु	अनार्य	१६/२६
मिहिला	राजधानी	९/२०
मुइंग	वाद्यवर्ग	१७/१३६
मुंजपासय	प्राणिबंधन	१२/१,२; १७/१,२
मुंजमालिया	मालावर्ग	७/१-३, १७/३-५
मुगुंदमह	महोत्सववर्ग	८/१५
मुट्ठिय	नर्तक और खिलाड़ी	९/२२
मुत्तापाय	पात्रवर्ग	११/१-३
मुत्ताबंधण	बंधनवर्ग	११/४-६
मुत्तावली	आभूषणवर्ग	७/७-९; १७/९-११
मुद्दिय	राजा के प्रकार	८/१५-१९; ९/६-२९
मुद्धाभिसित्त	राजा के प्रकार	८/१५-१९; ९/६-२९
मुरव	वाद्यवर्ग	१७/१३६
मुहपोत्तिया	साधु के उपकरण	४/२०
मूल	वनस्पतिवर्ग	१४/३३; १८/६६
मूलयवच्च	वनस्पति सुखाने का स्थान	३/७७
मेंढपोसय	पशुपोषक	९/२३
मेहुणसाला	गृहवर्ग	८/१७
रज्जुपासय	प्राणिबन्धन	१२/१,२; १७/१,२
रण्णारक्खिय	रक्षक	४/४२,४७,५२
रयणावली	आभूषणवर्ग	७/७-९; १७/९-११
रयहरण	साधु के उपकरण	४/२३; ५/६८-७८
राय	राजा	४/१,७,१३
रायगिह	राजधानी	९/२०
रायदुवारिय	वस्त्रवर्ग	१५/९८
रायपिंड	पिंडवर्ग	९/१,२

रायपेसिय	कुल	९/२१
रायहाणी	वसति के प्रकार	५/३४; ९/२०
रायारक्खिय	रक्षक	४/२,८,१४
रुक्ख	वनस्पतिवर्ग	१२/१०
रुक्खमह	महोत्सववर्ग	८/१५
रुद्दमह	महोत्सववर्ग	८/१५
रुप्पपाय	पात्र	११/१-३
रुप्पबंधण	बन्धन	११/४-६
रुप्पलोह	धातुवर्ग	७/४-६; १७/६-८
लउसी	दासीवर्ग	९/२९
लक्खण	निमित्तशास्त्र	१३/२२
लट्ठिय	साधु के उपकरण	१/४०; २/२५; ४/२३; ५/१९-२३,६५
लत्तिय	वाद्यवर्ग	१७/१३८
लाउपाय	पात्रवर्ग	१/३९; २/२४; ५/६४
लाढ	जनपद-ग्राम	१६/२५,२६
लावयपोसय	पक्षीपोषक	९/२३
लासग	राजकर्मकर	९/२२
लासी	दासीवर्ग	९/२९
लोण	खाद्यवर्ग	११/९२
लोद्ध	प्रसाधन सामग्री	१/५; ३/१९,२५,३१,३५, ५३,६२; ४/५७,६३,६९,९१,१००; ६/६,२८,३४,४०,६२,७१; ७/१७,२३,२९,५१,६०; ११/१४, २०,२६,४८,५७; १४/१४,१५,१८,१९; १५/१६,२२, २८,५०, ५९,१०२,१०८,११४,१३६,१४५; १७/१८,२४,३०,५२, ६१,६९, ७५,८१,१०३,११२; १७/४६,४७,५०,५१
लोभपिंड	पिंडवर्ग	१३/७०
वइरपाय	पात्रवर्ग	११/१-३
वइरबंधण	बन्धनवर्ग	११/४-६
वइरागर	खानवर्ग	५/३५
वंजण	निमित्तशास्त्र	१३/२३
वंस	वाद्यवर्ग	१७/१३९
वंस	नौका-उपकरण	१८/१४
वग्घ	वस्त्रवर्ग	७/१०-१२; १७/१२-१४
वग्घपोसय	पशुपोषक	९/२३
वट्टयपोसय	पशुपोषक	९/२३
वडभी	दासीवर्ग	९/२९
वण	वन-उद्यान	१२/१९; १७/१४१
वणविदुग्ग	उद्यान	१२/१९; १७/१४१
वणीमगपिंड	पिंडवर्ग	८/१९, १३/६५

वण्ण	प्रसाधन सामग्री	१/५; ३/१९,२५,३१,३५, ५३,६२; ४/५७,६३,६९,९१,१००; ६/६,२८,३४,४०,६२,७१; ७/१७,२३,२९,५१,६०; ११/१४, २०,२६,४८,५७; १४/१४,१५,१८,१९; १५/१६,२२, २८,५०, ५९,१०२,१०८,११४,१३६,१४५; १७/१८,२४,३०,५२, ६१,६९, ७५,८१,१०३,११२; १७/४६,४७,५०,५१
वत्थ	साधु के उपकरण	१/२७,२८,४७-५२,५४; २/२३; ५/६३; ६/१९-२४; ७/८८, ८९; १२/६; १५/७७,८०,८१,८४,८५,८८,८९,९२,९३,९६-९८, १५३,१५४; १६/१९,२८; १८/३३-७३
वद्दलियाभत्त	भक्तवर्ग	९/६
वप्प	रक्षण	१२/१८; १७/१४०
वमण	चिकित्सा	१३/३९,४१
वलयमरण	मरण	११/९३
वसहपोसय	पशुपोषक	९/२३
वसट्टमरण	मरण	११/९३
वाणारसी	राजधानी	९/२०
वादिय	वाद्यवर्ग	१२/२७; १७/१४९
वामणी	दासीवर्ग	९/२९
वारोदग	पानकवर्ग	१७/१३३
वालिया	वाद्यवर्ग	१७/१३८
वावी	जलाशयवर्ग	१२/१८; १७/१४०
विज्जा	निमित्तशास्त्र	१३/२५
विज्जापिंड	पिंडवर्ग	१३/७१
विपंची	वाद्यवर्ग	१७/१३७
वियारभूमि	थंडिल	२/४०
विरेयण	चिकित्सा	१३/४०,४१
विवग्घ	वस्त्रवर्ग	७/१०-१२; १७/१२-१४
विसभक्खण	मरण	११/९३
विह	कलावर्ग	१२/१७
विहारभूमि	भूमि	२/४०
वीणा	वाद्य वर्ग	१७/१३७
वुग्गह	कलावर्ग	१३/१२
वेढिम	कलावर्ग	१२/१७
वेणु	वाद्य वर्ग	१७/१३९
वेणुदंड	साधु के उपकरण	५/२५-३३
वेणुसूइय	साधु के उपकरण	१/४०; २/२५; ५/१९-२२,६०
वेत्तदंड	साधु के उपकरण	५/२५-३३
वेत्तपासय	प्राणिबंधन	१२/१,२; १७/१,२
वेत्तपीढग	निषीदन आसन	१२/६

वेलंबग	नर्तक और खिलाड़ी	९/२२
वेवा	वाद्यवर्ग	१७/१३९
वेहासमरण	मरण	११/९३
वेहिम	कलावर्ग	१२/१७
संख	वाद्यवर्ग	१७/१३९
संखडि	भोज	३/१४
संखपाय	पात्रवर्ग	११/१-३
संखबंधण	बंधनवर्ग	११/४-६
संखमालिया	मालावर्ग	७/१-३; १७/३-५
संघाडी	साधु के उपकरण	५/१२,१३; १२/७
संघातिम	कलावर्ग	१२/१७
संथारग	साधु के उपकरण	२/४९-५७; ५/२३; १६/३५,३९
संबाह	वसति के प्रकार	५/३४; १२/२०; १७/१४२
संबाहपह	पथवर्ग	१२/२३; १७/१४५
संबाहमह	महोत्सववर्ग	१२/२१; १७/१४३
संबाहवह	स्थान/भूमि	१२/२२; १७/१४४
संमेल	भोज	११/८१
संवाह	राजकर्मकर	९/२७
संसट्ठपिंड	पिंडवर्ग	८/१८
संसत्त	शिथिल साधु	४/३२,३३; ८/१०; १३/५१,५२; १५/९४,९७; १९/३४,३५
संसेइम	पानकवर्ग	१७/१३३
सक्करा	खाद्यवर्ग	६/७९; ८/१७
सणकप्पास	कपास	३/७०; ५/२४
सणालिया	वाद्यवर्ग	१७/१३८
सण्णिवेस	वसति के प्रकार	५/३४; १२/२०; १७/१४२
सण्णिवेसपह	पथवर्ग	१२/२३; १७/१४५
सण्णिवेसमह	महोत्सववर्ग	१२/२१; १७/१४३
सण्णिवेसवह	स्थान/भूमि	१२/२२; १७/१४४
सत्तिग्गह	राजकर्मकर	९/२७
सत्तिवण्णवण	वनवर्ग	३/७९
सत्थवाह	राजकर्मकर	९/२७
सत्थोपाडण	मरण	११/९३
सदुय	वाद्यवर्ग	१७/१३६
सप्पि	खाद्यवर्ग	६/४९; ८/१७
सबरी	दासीवर्ग	९/२९
समवाय	भोज	८/१५
सर	जलाशयवर्ग	१२/१८; १७/१४०
सरउ	जलाशयवर्ग	१२/४३

सरपंतिय	जलाशयवर्ग	१२/१८; १७/१४०
सरमह	महोत्सववर्ग	९/१५
सरसरपंतिय	जलाशयवर्ग	१२/१८; १७/१४०
सलागा	गृह-उपकरण	१/२; ४/११३; ६/३; ७/८४
सलाहा	कलावर्ग	१३/१२
सव्वारक्खिय	रक्षक	४/६,१२,१८,४३,४८,५३
सहिण	वस्त्रवर्ग	७/१०-१२; १७/१२-१४
सहिणकल्लाण	वस्त्रवर्ग	७/१०-१२, १७/१२-१४
साइम	खाद्यवर्ग	२/४८; ३/१-१२,१४,१५; ४/३७,११८; ५/३,३४,३५; ७/७७, ७९,८६,८७; ८/१-९,११,१४-१८; ९/४,५,१०,१२-१८,२१-२९,१०/२५-२८;११/७५-८०; १२/१५,१६,२९,३१,३२,४२; १५/७६,७८,७९,८२,८३,८६,८७,९०,९१,९४,९५; १६/१२, १३,१७,१८,२८,३४-३६; १७/१२५-१३३; १८/१७-३२
साएय	राजधानी	९/२०
सागरमह	महोत्सववर्ग	८/१५
सागवच्च	वनस्पति सुखाने का स्थान	३/७७
सागारियकुल	कुल	२/४७
सागारियपिंड	पिंडवर्ग	२/४५,४६
सालवण	वनवर्ग	३/७८
सावत्थी	राजधानी	९/२०
सिंगपाय	पात्रवर्ग	११/१-३
सिंगबंधण	बंधनवर्ग	११/४-६
सिंगबेर	वनस्पतिवर्ग	११/९२
सिंगबेरचुण्ण	खाद्य	११/९२
सिंगमालिया	मालावर्ग	७/१-३; १७/३-५
सिंहली	दासीवर्ग	९/२९
सिक्कग	गृह उपकरण	१/१३; २/१२
सिप्प	कलावर्ग	१३/१२
सीमारक्खिय	रक्षक	४/४१,४६,५१
सीसलोह	धातुवर्ग	७/४-६; १७/६-८
सीसागर	खान	५/३५
सीहपोसय	पशु पोषक	९/२३
सुणहपोसय	पशु पोषक	९/२३
सुण्णगिह	गृहवर्ग	८/१५; १५/७१
सुण्णसाला	गृहवर्ग	८/१५; १५/७१
सुत्तपासय	प्राणिबन्धन	१२/१,२; १७/१,२
सुद्धवियड	पानकवर्ग	१७/१३३
सुमिण	निमित्तशास्त्र	१३/२४

सुयपोसय	पक्षीपोषक	८/२३
सुवण्णपाय	पात्रवर्ग	११/१३
सुवण्णबंधण	बंधनवर्ग	११/४-६
सुवण्णलोह	धातुवर्ग	७/४-६; १७/६-८
सुवण्णसुत्त	आभूषणवर्ग	७/७-९; ११/९-११
सुवण्णागर	खानवर्ग	५/३५
सूइ	साधु के उपकरण	१/१९,२३,२७,३१,३५; २/१४
सूकरकरण	पशुशिक्षण	१२/२४; १७/१४६
सूकरजुद्ध	युद्धवर्ग	१२/२५; १७/१४७
सूयरपोसय	पशुपोषक	९/२३
सेज्जा	साधु के उपकरण	२/४९-५७; ५/२३,५९-६१; १३/१-११; १६/१-३,३८
सेयायण	भूमि	३/७५
सेलकम्म	कलावर्ग	१२/१७
सेलपाय	पात्रवर्ग	११/१-३
सेलबंधण	बंधनवर्ग	११/४-६
सोवीर	पानकवर्ग	१७/१३३
हंसपोसय	पक्षी पोषक	९/२३
हडप्पगह	राजकर्मकर	९/२७
हड्डमालिया	मालावर्ग	७/१-३; १७/३-५
हत्थच्छिन्न	विकलांगवर्ग	१४/७; १८/३९
हत्थिआरोह	पशु शिक्षण	९/२६
हत्थिकरण	पशु शिक्षण	१२/२४; १७/१४६
हत्थिगुलगुलाइय	ध्वनि	१७/१३५
हत्थिजुद्ध	युद्धवर्ग	१२/२५; १७/१४७
हत्थिणापुर	राजधानी	९/२०
हत्थिदमग	पशु शिक्षण	९/२४
हत्थिपोसय	पशुपोषक	९/२३
हत्थिमिंठ	पशुपोषक	९/२५
हम्मतल	गृहवर्ग	१३/११; १४/३०
हयजूहियाठाण	स्थान	१२/२६; १७/१४८
हयसाला	गृहवर्ग	८/१७
हयहेसिय	ध्वनि	१७/१३५
हरिय	वनस्पतिवर्ग	५/४७,५७; ७/१५; १३/८; १४/२७; १६/४७; १८/५९
हरियमालिया	मालावर्ग	७/१-३; १७/३-५
हार	आभूषणवर्ग	७/७-९; १७/९-११
हारपुडपाय	पात्रवर्ग	११/१-३
हारपुडबंधण	बन्धनवर्ग	११/४-६
हिंगोल	भोज	११/८१
हिरण्णागर	खानवर्ग	५/३५

परिशिष्ट : ३
विशेषनामवर्गानुक्रम

(१) राजधानी

कंपिल्ल	महुरा	वाराणसी	सावत्थी
कोसम्बी	मिहिला	साएअ	हत्थिणापुर
चंपा	रायगिह		

(२) वसति

आगर	गाम	दोणमुह	रायहाणी
आसम	णिवेसण	पट्टण	संबाह
कब्बड़	नगर	मडंब	सण्णिवेस
खेड			

(३) रक्षक

गामारक्खिय	णिगमारक्खिय	रण्णारक्खिय	सव्वारक्खिय
णगरारक्खिय	देसारक्खिय	रायारक्खिय	सीमारक्खिय

(४) दासीवर्ग

आरबी	दमिली	पुलिंदी	लासी
ईसिणी	पउसी	बब्बरी	वडभी
खुज्जा	पक्कणी	बहली	वामनी
चिलाइया	पल्हविया	मरुंडी	सबरी
जोणिया	पारसी	लउसी	सिंहली
थारुगिणी			

(५) राजकर्मकर

अब्भंग	चामरग्गह	धणुग्गह	संवाह
असिग्गह	छत्तग्गह	परियट्टग्गह	सत्तिग्गह
उवट्ट	जल्ल	मंडावय	सत्थाह
कंचुइज्ज	दंडारक्खिय	मज्जावय	हडप्पग्गह
कहग	दीवियग्गह	लासग	
कोंतग्गह	दोवारिय	वरिसधर	

(६) पशुपक्षी पोषक

अयपोसय	पोयपोसय	लावयपोसय	सुणहपोसय
आसपोसय	मऊरपोसय	वग्घपोसय	सुयपोसय
कुक्कुडपोसय	महिसपोसय	वट्टयपोसय	सूयरपोसय
चीरल्लपोसय	मिगपोसय	वसहपोसय	हंसपोसय
तित्तिरपोसय	मेंढपोसय	सीहपोसय	हत्थिपोसय

(७) पशुपक्षी शिक्षण

आसकरण	आसारोह	महिसकरण	हत्थिकरण
आसदमग	उट्टकरण	सूकरकरण	हत्थिदमग
आसमिंठ	गोणकरण	हत्थिआरोह	हत्थिमिंठ

(८) गृह वर्ग

अट्ट	गयसाला	णिज्जाणगिह	मंच
अट्टालय	गिह	णिज्जाणसाला	मंडव
आगंतार	गिहंगण	तणगिह	मंतसाला
आरामागार	गिहदुवार	तणसाला	मडगगिह
उज्जाणगिह	गिहमुह	तुसगिह	मडगथूभिय
उज्जाणसाला	गिहवच्च	तुससाला	मडगलेण
उत्तरगिह	गुज्झसाला	पणियगिह	मडगासय
उत्तरसाला	गोणगिह	पणियसाला	महाकुल
उवस्सय	गोणसाला	परियायगिह	महागिह
कुवियगिह	गोपुर	परियायसाला	महाणससाला
कुवियसाला	घर	परियावसह	माल
कूडागार	जाणगिह	पाणसाला	मेहुणसाला
कोट्ठागार	जाणसाला	पासाय	सुण्णगिह
कोट्ठागारसाला	जुग्गगिह	भंडागारसाला	सुण्णसाला
खीरसाला	जुग्गसाला	भिण्णगिह	हम्मतल
गंजसाला	णिज्जाण	भिण्णसाला	हयसाला

(९) माला वर्ग

कट्ठमालिया	पिच्छमालिया	भिंडमालिया	संखमालिया
तणमालिया	पुप्फमालिया	मयणमालिया	सिंगमालिया
दंतमालिया	फलमालिया	मुंजमालिया	हड्डमालिया
पत्तमालिया	बीजमालिया	वेत्तमालिया	हरियमालिया

(१०) आभूषण

अद्धहार	कुंडल	पलंब	रयणावली
एगावली	केऊर	मउड	सुवण्णसुत्त
कडग	तुडिय	मुत्तावली	हार
कणगावली	पट्ट		

(११) महोत्सववर्ग

अगडमह	चेतियमह	थूभमह	रुक्खमह
आगरमह	जक्खमह	दरीमह	रुद्दमह
इंदमह	णदिमह	दहमह	सरमह
खंदमह	णागमह	भूतमह	सागरमह
गिरिमह	तडागमह	मुगुंदमह	

(१२) हस्तकौशल (कलावर्ग)

कट्ठकम्म	दंतकम्म	पोत्थकम्म	वेहिम
गंथिम	पत्तच्छेज्ज	विह	संघातिम
चित्तकम्म	पूरिम	वेढिम	सेलकम्म

(१३) वाद्य वर्ग

कंसताल	तंती	बद्धीसग	वादिय
कच्छभि	तल	भेरि	विपंची
खरमुहि	ताल	मकरिय	वीणा
गोलुकी	तुंबवीणिया	मड्डुय	वेणु
गोहिय	तुडिय	महति	वेवा
झल्लरी	तुण	मुइंग	संख
झोडय	पएस	मुरव	सणालिय
डमरुय	पडह	लत्तिय	सदुय
ढंकुण	पणव	वंस	
णंदि	परिपरि		

(१४) खान

अयागर	तंबागर	वइरागर	सुवण्णागर
तउआगर	मट्टियाखाणी	सीसागर	हिरण्णागर

(१५) धातु

अयलोह	तंबलोह	सिला	सुवण्णलोह
तउयलोह	रुप्पलोह	सीसगलोह	

(१६) जलाशय

उज्झर	णिज्झर	पोक्खर	सरपंतिय
उप्पल	दीहिया	वावी	सरसरपंतिय
गुंजालिया	पल्लल	सर	सागर

(१७) वनस्पति

अंतरुच्छुय	उच्छुखंडिय	तालपलंब	फल
अंब	उच्छुचोयग	पडोल	बिल
अंबचोयग	उच्छुडगल	पणग	बीज
अंबडगल	उच्छुमेरग	पत्त	मूल
अंबपेसि	उच्छुसालग	पिउमंद	रुक्ख
अंबभित्त	उप्पल	पिप्पलि	सिंगबेर
अंबसालग	ओसहिबीय	पिलक्खु	हरिय
आसत्थ	कंद	पुप्फ	
उच्छु	गहण		

(१८) वनस्पति सुखाने के स्थान

आसोत्थवच्च	खारवच्च	णग्गोहवच्च	मरुगवच्च
उंबरवच्च	जीरयवच्च	दमणवच्च	मूलयवच्च
कोत्थुंभरिवच्च	डागवच्च	पिलक्खुवच्च	सागवच्च

(१९) भूमि

इंगालदाह	गातदाह	पव्वय	वियारभूमि
उच्चारपासवणभूमि	गोलेहणिया	पव्वयविदुग्ग	विहारभूमि
कच्छ	तुसदाहट्ठाण	भुसदाहट्ठाण	सेयायण
खारदाह	पंकायतण	मसंखल	
गहण	पणगायतण	मच्छखल	

(२०) स्थान

अक्खाइयठाण	गयजूहियाठाण	तंती (ठाण)	तुडिय (ठाण)
अभिसेयठाण	गीय (ठाण)	तल (ठाण)	माणुम्माणिय (ठाण)
उज्जूहियाठाण	णट्ट (ठाण)	ताल (ठाण)	हयजूहियाठाण

(२१) शिथिल साधु

अहाछंद	कुसील	पासत्थ	संपसारय
ओसण्ण	नितिय	मामाय	संसत्त
काहिय	पासणिय		

(२२) साधु के उपकरण

अवलेहणिया	पाय	लट्ठिय	संथारय
कण्णसोहणय	पायपुंछणय	वत्थ	सूइ
चेल	मत्तय	वेणुसूइय	सेज्जा
दंडय	मुहपोत्तिया	संघाडी	
पडिग्गह	रयहरण		

(२३) पिंडवर्ग

अंतद्धाणपिंड	कोहपिंड	दूतिपिंड	लोभपिंड
अग्गपिंड	चुण्णपिंड	धाईपिंड	वणीमगपिंड
अणाहपिंड	जोगपिंड	मंतपिंड	विज्जापिंड
आजीवियपिंड	णिमित्तपिंड	माणपिंड	संसट्ठपिंड
उस्सट्ठपिंड	णिवेयणपिंड	मायापिंड	सागारियपिंड
किविणपिंड	तिगिच्छापिंड	रायपिंड	

(२४) पात्र

अंकपाय	जायरूवपाय	मणिपाय	संखपाय
अयपाय	तउयपाय	मुत्तापाय	सिंगपाय
कंसपाय	तंबपाय	रुप्पपाय	सुवण्णपाय
कायपाय	दंतपाय	लाउपाय	सेलपाय
चम्मपाय	दारुपाय	वइरपाय	
चेलपाय	मट्टियापाय		

(२५) बंधण

अंकबंधण
अयबंधण
कंसबंधण
कायबंधण
चम्मबंधण
चेलबंधण
जायरूवबंधण
तउयबंधण
तंबबंधण
दंतबंधण
मणिबंधण
मुत्ताबंधण
रुप्पबंधण
वइरबंधण
संखबंधण
सिंगबंधण
सुवण्णबंधण
सेलबंधण

(२६) वस्त्र

अंसुय
अमिल
आईण
आभरण
आभरणविचित्त
आय
उद्द
कंबल
कणग
कणगकत
कणगखचिय
कणगपट्ट
कणगफुल्लिय
कल्ल
काय
किण्हमिगाईणग
कोतव
खोम
गज्जल
गोरमिगाईणग
चीणंसुय
छण्णूसविय
णिच्चणियंसणिय
तिरीडपट्ट
दुगुल्ल
देसराग
नीलमिगाईणग
पत्तुण्ण
पावारग
पेस
पेसलेस
फाडिग
मज्जणिय
मलय
रायदुवारिय
वग्घ
विवग्घ
सहिण
सहिणकल्लाण

(२७) खाद्य

असण
उब्भिय (लवण)
ओसहि
खंड
खाइम
खीर
गुल
घय
णवणीय
तेल्ल
दहि
पाण
पिंड
पिप्पलिचुण्ण
फाणिय
बिल (लवण)
मच्छंडिय
लोण
सक्करा
सप्पि
साइम
सिंगबेरचुण्ण

(२८) पानकवर्ग

अंबकंजिय
आयाम
उस्सेइम
चाउलोदग
जवोदग
तिलोदग
तुसोदग
वारोदग
सुद्धवियड
संसेइम
सोवीर

(२९) निमित्त-शास्त्र

कोउगकम्म
जोग
तीत
पसिण
पसिणापसिण
भूतिकम्म
मंत
लक्खण
वंजण
विज्जा
सुमिण

(३०) भोज

आहेण
पहेण
मंसखल
मंसादीय
मच्छखल
मच्छादीय
संखडि
संमेल
हिंगोल

(३१) मरण

अंतोसल्ल	जलणपवेस	तरुपडण	वलयमरण
गिद्धपट्ठ	जलपक्खंदण	भिगुपक्खंदण	वसट्टमरण
गिरिपक्खंदण	जलपवेस	भिगुपडण	विसभक्खण
गिरिपडण	तब्भवमरण	मरुपक्खंदण	वेहासमरण
जलणपक्खंदण	तरुपक्खंदण	मरुपडण	सत्थोपाडण

(३२) भक्त वर्ग

कंतारभत्त	दमगभत्त	पाहुणभत्त	भयगभत्त
कयगभत्त	दुवारियभत्त	पिंडणियर	वद्दलियाभत्त
गिलाणभत्त	पसुभत्त	बलभत्त	समवाय

(३३) युद्ध

आसजुद्ध	गोणजुद्ध	सूकरजुद्ध	हत्थिजुद्ध
उट्टजुद्ध	महिसजुद्ध		

(३४) वनवर्ग

असोगवण	कप्पासवण	चंपगवण	सत्तिवण्णवण
इक्खुवण	कुसुंभवण	चूयवण	सालवण

परिशिष्ट : ४
प्रयुक्त ग्रंथ-सूची

ग्रंथ नाम	लेखक, संपादक, अनुवादक	संस्करण	प्रकाशक
• अंगसुत्ताणि (खण्ड-१) (आयारचूला)	वाचनाप्रमुख : आचार्य तुलसी सं. मुनि नथमल	२०३१	जैन विश्व भारती, लाडनूं (राज.)
• अणुओगदाराइं	वाचनाप्रमुख : गणाधिपति तुलसी सं. आचार्य महाप्रज्ञ	सन् १९९६	जैन विश्व भारती संस्थान लाडनूं (राज.)
• अनुयोगद्वार चूर्णि	जिनदास महत्तर	सन् १९२८	श्री ऋषभदेवजी केशरीमलजी, श्वेताम्बर संस्था, रतलाम
• अनुयोगद्वार मलधारीया वृत्ति	मलधारीया हेमचन्द्र	सन् १९३९	श्री केशरबाई ज्ञान मंदिर, पाटण
• अनुयोगद्वार हारिभद्रीया वृत्ति	श्री हरिभद्राचार्य	सन् १९२८	श्री ऋषभदेवजी केशरीमलजी श्वेताम्बर संस्था, रतलाम (मालवा)
• अभिधान चिन्तामणि	आचार्य हेमचन्द्र सं. नेमिचन्द्र शास्त्री	वि.सं. २०२०	चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी
• आचाराङ्गं सूत्रकृताङ्गञ्च (आचारांग वृत्ति, सूत्रकृतांग वृत्ति)	शीलांकाचार्य	वि.सं. १९९१	सिद्धचक्र साहित्य प्रचारक समिति, बंबई
• आप्टे	बी. एस. आप्टे	सन् १९५७	प्रसाद प्रकाशन, पूना
• आवश्यक चूर्णि १,२	श्रीजिनदास महत्तर	सन् १९२८,२९	श्री ऋषभदेवजी केसरीमलजी, श्वेताम्बर संस्था, रतलाम
• आवश्यक निर्युक्ति	आचार्य भद्रबाहु	वि.सं. २०३८	श्री भैरूलाल कन्हैयालाल कोठारी धार्मिक ट्रस्ट, मुंबई
• आयारो	वाचनाप्रमुख : आचार्य तुलसी सं. मुनि नथमल	वि.सं. २०३१	जैन विश्व भारती, लाडनूं (राज.)
• उत्तरज्झयणाणि	वाचनाप्रमुख : आचार्य तुलसी सं. युवाचार्य महाप्रज्ञ	सन् १९९२	जैन विश्व भारती संस्थान लाडनूं (राज.)
• उत्तराध्ययननिर्युक्ति (श्री उत्तराध्ययनानि)	आचार्य भद्रबाहु	सं. १९१७	सेठ देवचन्द्र लालभाई जैन पुस्तकोद्धार फण्ड, मुंबई
• उत्तराध्ययनानि (बृहद्वृत्ति)	शान्त्याचार्य	सं. १९७३	देवचन्द लालभाई जैन पुस्तकोद्धार फण्ड, मुंबई
• उवंगसुत्ताणि (भाग-४) (ओवाइयं)	वाचनाप्रमुख : आचार्य तुलसी सं युवाचार्य महाप्रज्ञ	सन् १९८७	जैन विश्व भारती, लाडनूं (राज.)

ग्रंथ नाम	लेखक, संपादक, अनुवादक	संस्करण	प्रकाशक
• उवंगसुत्ताणि (भाग-५) (पण्णवणा)	वाचनाप्रमुख : आचार्य तुलसी सं. युवाचार्य महाप्रज्ञ	सन् १९८९	जैन विश्व भारती, लाडनूं (राज.)
• एकार्थक कोश	वाचनाप्रमुख : आचार्य तुलसी सं. युवाचार्य महाप्रज्ञ	सन् १९८४	जैन विश्व भारती, लाडनूं (राज.)
• ओघनिर्युक्ति	आचार्य भद्रबाहु	सन् १९७५	आगमोदय समिति, मेहसाणा
• ओघनिर्युक्ति भाष्य		सन् १९१९	आगमोदय समिति, मुंबई
• कौटिलीय अर्थशास्त्र	आचार्य कौटिल्य सं. वाचस्पति गैरोला	चतुर्थ संस्करण सन् १९९१	चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी
• गोम्मटसार जीवकांड	नेमिचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री	सन् १९२७	जैन पब्लिशिंग हाऊस, लखनऊ
• गोम्मटसार जीवकांड (वृत्ति)	सं. कैलाशचन्द्र शास्त्री	सन् १९२७	जैन पब्लिशिंग हाऊस, लखनऊ
• छेदपिंड	सं. माणिकचन्द	वि. सं. १९७८	जैन ग्रन्थमाला
• जीतकल्पचूर्णि	आचार्य सिद्धसेनगणि सं. जिनविजयजी	सन् १९२६	जैन साहित्य संशोधक समिति, अहमदाबाद
• जीतकल्पभाष्य	वाचनाप्रमुख : आचार्य तुलसी प्र.सं. आचार्य महाप्रज्ञ सं./अनु. समणी कुसुमप्रज्ञा	सन् २०१०	जैन विश्व भारती, लाडनूं (राज.)
• जैन आगम साहित्य में भारतीय इतिहास	जगदीशचन्द्र जैन	सन् १९६५	चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी
• जैन साहित्य का बृहद् इतिहास (भाग-१,३)	डॉ. जगदीशचन्द्र जैन, डॉ. मोहनलाल मेहता	सन् १९६६,१९६७	पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी
• जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश	सं. जिनेन्द्र वर्णी	सन् १९४४	भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली
• ठाणं	वाचनाप्रमुख : आचार्य तुलसी सं. मुनि नथमल	वि.सं. २०३३	जैन विश्व भारती, लाडनूं (राज.)
• णायाधम्मकहाओ	वाचनाप्रमुख : आचार्य तुलसी सं. आचार्य महाप्रज्ञ	सन् २००३	जैन विश्व भारती, लाडनूं (राज.)
• तत्त्वार्थ वार्तिक	भट्ट अकलंक, सं. महेन्द्र कुमार जैन	सन् १९५३	भारतीय ज्ञानपीठ काशी, दुर्गाकुण्ड रोड बनारस
• दशवैकालिक (अगस्त्यसिंह चूर्णि)	अगस्त्यसिंह स्थविर	सन् १९७३	प्राकृत टेक्स्ट सोसायटी, अहमदाबाद
• दशवैकालिक (जिनदासकृत चूर्णि)	जिनदासगणि महत्तर	सन् १९३३	श्री ऋषभदेवजी केशरीमलजी श्वेताम्बर संस्था, रतलाम (मालवा)
• दशवैकालिक वृत्ति	आचार्य हरिभद्रसूरि	सं १९१८	देवचन्द लालभाई जैन पुस्तकोद्धार फण्ड, मुंबई
• दशवैकालिक निर्युक्ति	आचार्य भद्रबाहु	सन् १९७३	प्राकृत टेक्स्ट सोसायटी, अहमदाबाद
• दशाश्रुतस्कंध चूर्णि	जिनदासगणि महत्तर	वि.सं. २०११	श्री मणिविजयगणि ग्रंथमाला, भावनगर
• दसवेआलियं	वाचनाप्रमुख : आचार्य तुलसी सं. मुनि नथमल	सन् १९७४	जैन विश्व भारती लाडनूं (राज.)

ग्रंथ नाम	लेखक, संपादक, अनुवादक	संस्करण	प्रकाशक
• देशीशब्द कोश	वाचनाप्रमुख : आचार्य तुलसी सं. युवाचार्य महाप्रज्ञ	सन् १९८८	जैन विश्व भारती, लाडनूं (राज.)
• नंदी	वाचनाप्रमुख : गणाधिपति तुलसी सं. आचार्य महाप्रज्ञ	सन् १९९७	जैन विश्व भारती संस्थान, लाडनूं (राज.)
• नंदी सुत्तं (चूर्णि संयुक्त)	सं. मुनि पुण्यविजयजी	सन् १९६६	प्राकृत टेक्स्ट सोसायटी, अहमदाबाद
• नवसुत्ताणि (कप्पो, दसाओ, ववहारो, निसीहज्झयणं)	वाचनाप्रमुख : आचार्य तुलसी सम्पादक : युवाचार्य महाप्रज्ञ	सन् १९८७	जैन विश्व भारती लाडनूं (राज.)
• निर्युक्ति पंचक (दशाश्रुतस्कन्ध निर्युक्ति)	आचार्य भद्रबाहु सं. समणी कुसुमप्रज्ञा	सन् १९९९	जैन विश्व भारती, लाडनूं (राज.)
• निशीथ भाष्य (भाग १-४)	सं. उपाध्याय कवि श्री अमरमुनि	सन् १९८२	सन्मति ज्ञानपीठ, लोहामण्डी आगरा
• निशीथ सूत्रम्	सं. व्या. पूज्य श्री घासीलालजी	वि.सं. २०४९	जैन पुस्तकोद्धार समिति, मुंबई
• निशीथसूत्रम् (हिन्दी अनुवाद सहित)	प्र.सं. युवाचार्यश्री मिश्रीमलजी मधुकर	सन् १९९१	श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर
• निशीथ हुण्डी	श्रीमज्जयाचार्य	–	(अप्रकाशित)
• पंचकल्पभाष्य	लाभसागरगणी	वि.सं. २०२८	आगमोद्धारक ग्रंथमाला
• पंचकल्प चूर्णि			अप्रकाशित
• पाइयसद्दमहण्णवो	सं. पं. हरगोविन्ददास सेठ	सन् १९६३	प्राकृत ग्रन्थ परिषद्, वाराणसी
• पाणिनिकालीन भारतवर्ष	वासुदेव शरण अग्रवाल	सन् १९९६	चौखम्बा संस्कृत सीरिज ऑफिस वाराणसी
• पिण्डनिर्युक्ति	प्र.सं० आचार्य महाप्रज्ञ सं. समणी कुसुमप्रज्ञा	सन् २००८	जैन विश्व भारती, लाडनूं (राज.)
• पिण्डनिर्युक्ति वृत्ति	मलयगिरि	वि.सं. १९१८	देवचन्द्र लालभाई, जैन पुस्तकोद्वार, मुंबई
• पिण्डविशुद्धिप्रकरण टीका	श्री जिनवल्लभसूरि	वि.सं. २०११	ज्ञान भण्डार शीतलवाड़ी उपाश्रय, सूरत
• प्रवचनसारोद्धार	नेमिचन्द्र सूरि	वि.सं. १९२६	देवचन्द लालभाई जैन पुस्तकोद्धार, सूरत
• बृहत्कल्पभाष्य	सं. मुनि चतुरविजय, पुण्यविजय	वि.सं. २०५८	श्री आत्मानन्द जैन सभा, भावनगर
• भगवई (भाग-१)	वाचनाप्रमुख : गणाधिपति तुलसी सं. भा. : आचार्य महाप्रज्ञ	सन् १९९४	जैन विश्व भारती, लाडनूं (राज.)
• भगवई (भाग-२)	वाचनाप्रमुख : गणाधिपति तुलसी सं. भा. : आचार्य महाप्रज्ञ	सन् १९९४	जैन विश्व भारती, लाडनूं (राज.)
• भावप्रकाश निघण्टु	डॉ. गंगसहाय पांडेय	वि.सं. २०४२	चौखम्बा भारती अकादमी, वाराणसी
• भिक्षु आगम विषय कोश	सं. मुनि दुलहराज	सन् २००५	जैन विश्व भारती लाडनूं (राज.)
• महाभारत	सं. टी. आर. कृष्णाचार्य	वि.सं.१९०६	बम्बई
• रत्नप्रकाश	राजरूप टांक	सन् १९०९	दुलीचंद कीर्तिचंद टांक, जौहरी बाजार जयपुर

ग्रंथ नाम	लेखक, संपादक, अनुवादक	संस्करण	प्रकाशक
● विशेषावश्यक भाष्य	ले. जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण सं. दलसुखभाई मालवणिया		लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्या मंदिर, अहमदाबाद
● विशेषावश्यक भाष्य मलधारी हेमचन्द्रवृत्ति	आचार्य मलधारी हेमचन्द्र	वी.सं. २४८९	दिव्यदर्शन कार्यालय, अहमदाबाद
● व्यवहारसूत्रम् (भाष्य एवं वृत्ति सहित)	सं. मुनि माणेक	वि.सं. १९२६	केशवलाल भाई प्रेमचन्द्र अहमदाबाद
● षट्खंडागम	पुष्पदंत भूतबलि	१९४२	शीतलराय लक्ष्मीचन्द्र, अमरावती
● सन्देहविषौषधि	श्रीमज्जयाचार्य		अप्रकाशित
● समवाओ	वाचनाप्रमुख : आचार्य तुलसी सं. युवाचार्य महाप्रज्ञ	सन् १९८४	जैन विश्व भारती, लाडनूं (राज.)
● सामाचारी शतक	समयसुन्दरगणि	वि.सं. १९९६	जिनदत्तसूरि ज्ञान भंडार, सूरत
● सूयगडो	वाचनाप्रमुख : आचार्य तुलसी सं. युवाचार्य महाप्रज्ञ	सन् १९६०	जैन विश्व भारती लाडनूं (राज.)
● सूयगडो वृत्ति (आचाराङ्ग सूत्रकृताङ्ग च)	शीलांकाचार्य	वि.सं. १९९१	सिद्धचक्र साहित्य प्रचारक समिति, बम्बई
● स्थानांग वृत्ति	अभयदेव सं. मुनि जम्बूविजय	वि.सं. १९८५	मोतीलाल बनारसीदास इण्डोलाजिकल ट्रस्ट, दिल्ली
● हरिवंश पुराण	सं. पन्नालाल जैन साहित्याचार्य	वि.सं. १९६२	भारतीय ज्ञानपीठ काशी

जैन विश्व भारती द्वारा प्रकाशित आगम साहित्य

(मूल पाठ, पाठान्तर, शब्द सूची सहित)

ग्रंथ का नाम	मूल्य
• अंगसुत्ताणि भाग-१ (दूसरा संस्करण) (आयारो, सूयगडो, ठाणं, समवाओ)	७००
• अंगसुत्ताणि भाग-२ (दूसरा संस्करण) (भगवई-विआहपण्णत्ती)	७००
• अंगसुत्ताणि भाग-३ (दूसरा संस्करण) (नायाधम्मकहाओ, उवासगदसाओ, अंतगड-दसाओ, अणुत्तरोववाइयदसाओ, पण्णावागरणाइं, विवागसुयं)	५००
• उवंगसुत्ताणि खंड-१ (ओवाइयं, रायपसेणइयं, जीवाजीवाभिगम)	५००
• उवंगसुत्ताणि खंड-२ (पण्णवणा, जंबूद्दीवपण्णत्ती, चंदपण्णत्ती, कप्पवडिंसियाओ, निरयावलियाओ, पुप्फियाओ, पुप्फचूलियाओ, वण्हिदसाओ)	६००
• नवसुत्ताणि (द्वितीय संस्करण) (आवस्सयं, दसवेआलियं, उत्तरज्झयणाणि, नंदी, अणुओगदाराइं, दसाओ, कप्पो, ववहारो, निसीहज्झयणं)	६९५

कोश

• आगम शब्दकोष (अंगसुत्ताणि तीनों भागों की समग्र शब्द सूची)	३००
• श्री भिक्षु आगम विषय कोश, भाग-१	५००
• श्री भिक्षु आगम विषय कोश, भाग-२	७००
• देशी शब्दकोश	१००
• निरुक्त कोश	१००
• एकार्थक कोश	१००
• जैनागम वनस्पति कोश (सचित्र)	३००
• जैनागम प्राणी कोश (सचित्र)	३५०
• जैनागम वाद्य कोश (सचित्र)	१००

अन्य भाषा में आगम साहित्य

• भगवती जोड़ खंड-१ से ७ श्रीमज्जयाचार्य	सेट का मूल्य २९००
• आयारो (अंग्रेजी)	२५०
• आचारांगभाष्यम् (अंग्रेजी)	४००
• भगवई खंड-१ (अंग्रेजी)	५९५
• उत्तरज्झयणाणि भाग-१, २ (गुजराती)	१०००
• सूयगडो भाग-१, २ (गुजराती)	प्रत्येक ७५०

(मूल, छाया, अनुवाद, टिप्पण, परिशिष्ट-सहित)

ग्रंथ का नाम	मूल्य
• आयारो	२००
• आचारांगभाष्यम्	६००
• सूयगडो भाग-१ (दूसरा संस्करण)	३००
• सूयगडो भाग-२ (दूसरा संस्करण)	३५०
• ठाणं	७००
• समवाओ (दूसरा संस्करण)	प्रेस में
• भगवई (खंड-१)	५९५
• भगवई (खंड-२)	६९५
• भगवई (खंड-३)	५००
• भगवई (खंड-४)	५००
• भगवई (खंड-५)	प्रेस में
• नंदी	४००
• अणुओगदाराइं	४००
• दसवेआलियं (दूसरा संस्करण)	६००
• उत्तरज्झयणाणि (तीसरा संस्करण)	६००
• नायाधम्मकहाओ	५००
• दसवेआलियं (गुटका)	७
• उत्तरज्झयणाणि (गुटका)	२५
• कप्पो	५००
• दसाओ	प्रेस में
• ववहारो	प्रेस में

अन्य आगम साहित्य

• निर्युक्तिपंचक (मूल, पाठान्तर)	५००
• पिण्डनियुक्ति	३५०
• व्यवहार निर्युक्ति	१००
• जीतकल्प सभाष्य	५००
• इसिभासियाइं	३५०
• सानुवाद व्यवहार भाष्य	५००
• व्यवहार भाष्य (मूल, पाठान्तर, भूमिका, परिशिष्ट)	७००
• बृहत्कल्पभाष्य भाग-१	५००
• बृहत्कल्पभाष्य भाग-२	५००
• उवासगदसाओ	४००
• गाथा (आगमों के आधार पर भगवान महावीर का जीवन दर्शन रोचक शैली में)	३५०
• आत्मा का दर्शन (जैन धर्म : तत्त्व और आचार)	६००

ISBN - 81-7195-260-7
9788171952601
₹ 1000.00